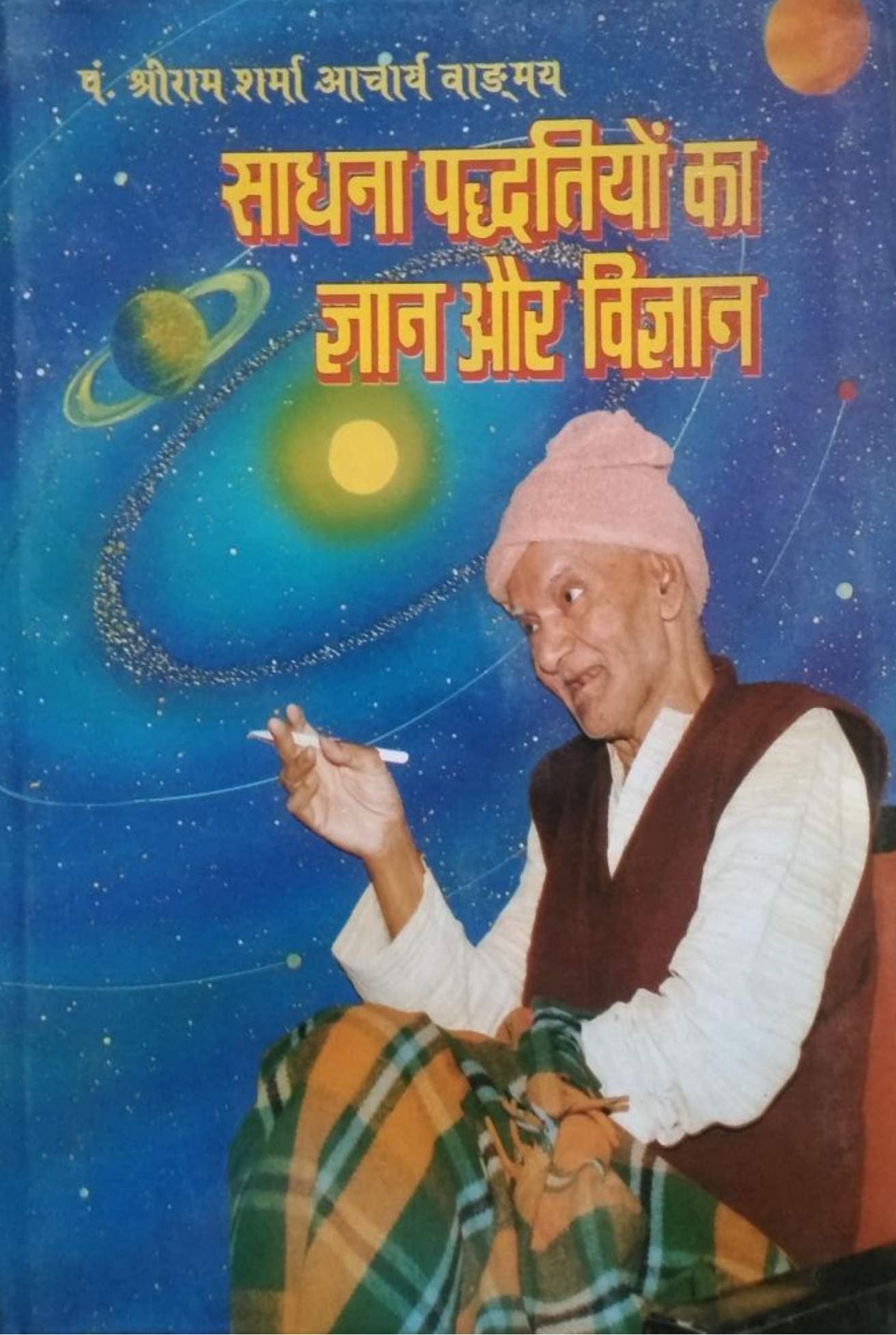
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करने वाले,
नूतन धर्म के प्रतिष्ठापक आचार्य जी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



स्नेहसलिला शक्तिस्वरूपा वन्दनीया माताजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोडों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा-नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

भारतीय संस्कृति का कोश अनेकानेक रत्नों से भरा पड़ा है । योगदर्शन उनमें से एक है जो व्यक्ति को उच्च से उच्चतर-उच्चतम सोपानों पर चढ़ाने की विधा का प्रशिक्षण देता है । साधना जो योगदर्शन के अन्तर्गत विभिन्न पद्धतियों के माध्यम से सिखाई जाती हैं कोई जादू-चमत्कार नहीं वरन् विशुद्ध विज्ञान है । मानवीसत्ता के कण-कण में दिव्यता भरी पड़ी है जो कि अद्‌भुत है, अनन्त है । उसी को परमस्तर तक पहुँचा देने के लिए जो प्राप्ति का पुरुषार्थ किया जाता है-आकांक्षा, साहसिकता, सक्रियता और तत्परता जुटायी जाती है, उसी को साधना कहते हैं । साधना का अर्थ अपने आपे को साधना-अपने कर्म को कुशलतापूर्वक संपादित कर लेना तथा विच्छृंखलित, अस्तव्यस्त स्थिति से सुव्यवस्थित, सुरुचिपूर्ण स्थिति में अपने व्यक्तित्त्व को पहुँचाना ।

मानवी जीवन कल्पवृक्ष की तरह असंख्य सत्परिणामों की संभावनाओं से भरापूरा है, पर यह लाभ मिलता तभी है तब उसे ठीक तरह साधा जाय-सँभाला जाय-संवाराजाय । योगसाधनाएँ इसी निमित्त सम्पन्न की जाती हैं । तपतितिक्षा से भी अधिक योग साधना में प्रवृत्त हो अपने हर कर्म को कौशल बना लेने को योगेश्वर कृष्ण परम पुरुषार्थ मानते हैं व गीता में कहते हैं-

तपस्वाभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।। ६/४६

अर्थात्-"योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ हैं, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है इसलिए हे अर्जुन ! तू योगी ही बन ।" परम पूज्य गुरुदेव ने जीवन भर साधना पद्धतियों के मूल में छिपे इसी ज्ञान-विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाया । दर्शन को साधनापद्धतियों के मूल मर्म को उनने इतना सुगम बना दिया कि हर कोई उसे अपना सकता है । उनने लिखा कि साधना आत्मिक क्षेत्र में भी होती है और भौतिक क्षेत्र में भी । जिस ओर सतर्कतापूर्ण सुनियोजन कर दिया जाएगा सफलता वैसी ही मिलती चली जाएगी । किन्तु वास्तविक अर्थों में साधना का क्षेत्र अन्तःजगत् है । अपने भीतर इतने खजाने दबे-छिपे पड़े हैं कि उन्हें उखाड़ लेने पर ही कुबेर जितना सम्पन्न बना जा सकता है । भीतरी विशिष्टताओं को ही तत्त्वदर्शियों ने देवी-देवता माना है और बाह्योपचारों के माध्यम से अन्तः संस्थान के भाण्डागार को करतलगत करने का विधिविधान बताया है ।

आत्म चेतना की जागृति रूपी इस साधना विज्ञान पर पतंजलि ऋषि ने विस्तार से लिखा है । इस विधा को उनने राजयोग नाम दिया है । इसके आठ अंग बताये गये हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । साधक द्वारा ये एक के बाद एक इसी क्रम से या साधकर एक साथ भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं । इस खण्ड में यम, नियम, आसन इन तीन पक्षों की ही विस्तार से चर्चा है । शेष पाँचों को विस्तार से तथा आसनों के मुद्रा-बंध के साथ से लेकर समाधि सिद्धि, तृप्ति,-तुष्टि शांति तुरीयावस्था तक की प्रक्रिया को वाङ्मय के अन्य खण्ड **"व्यक्तित्त्व विकास हेतु उच्च स्तरीय साधनाएँ "** में दिया गया है । साधना का भूमिका पक्ष-साधक की तैयारी वाला पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । यदि साधक का शरीर इस योग्य नहीं है, मानसिक धरातल अभी तैयार नहीं है तो साधना के उच्चस्तरीय सोपानों की पृष्ठभूमि कभी तैयार नहीं हुई, यह मान लिया जाना चाहिए । यम, नियम, आसन इसी पृष्ठभूमि को तैयार करते हैं । इन्हीं का विस्तार से विवेचन इस खण्ड में है । साधना विज्ञान का प्रथम चरण शरीर के आरोग्य का रक्षण, उसकी सक्रियता को व्यवस्थित एवं परिष्कृत करने के लिए है । यह स्थूल शरीर का प्रसंग हुआ । दूसरा है सूक्ष्म शरीर अर्थात् चिन्तन चेतना की दिव्य ज्योति जो व्यक्ति की दूरदर्शिता-सूझ-बूझ-तन्मयता के रूप में दिखाई देता है । तीसरा कारण-शरीर है जो भाव संवेदनाओं-आस्थाओं-समर्पण व तादाम्यता से सम्बन्धित है । इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तीनों को नीरोग सही स्थिति में बनाए रखने के लिए अनिवार्य है कि यम, नियम, आसन आदि का नियमित अभ्यास जीवन क्रम में होता चले । इसी तथ्य को विज्ञान सम्मत तर्कों के साथ पूज्यवर ने प्रकट किया है । योग के चित्तवृत्ति निरोध वाली पृष्ठभूमि सिद्धान्त: तो बिल्कुल सही है किन्तु व्यवहार में उतारी कैसे जाय इसका शब्दश: ऊँगली पकड़ कर मार्गदर्शन भी किया है ।

यम और नियम की पूज्यवर ने व्याख्या करते हुए पाँच यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के रूप में तथा नियम के रूप में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान के रूप में महर्षि पतंजलि द्वारा जिस प्रकार बताये गये हैं, भावार्थ के मर्म के साथ इस खण्ड में समझाने का प्रयास किया है । प्रत्येक के दार्शनिक पहलुओं को बड़े विस्तार से दिया है ताकि व्यक्ति के शब्दार्थों में न उलझकर भाव को समझें व उन्हें जीवन में उतारे । यम और नियम शरीर व मन की शुद्धि-पवित्र पृष्ठभूमि बनाने के लिए है तो आसन साधना की सिद्धि अवस्था में पहुँचाने के लिए हैं । इसी कारण आसनों को साधने की प्रक्रिया को आसन-सिद्धि कहा गया है, एवं मात्र अंगों को तोड़ -मरोड़ कर बैठने की प्रक्रिया ही नहीं अपितु सूक्ष्म नाड़ी विज्ञान के अनुसार चक्र उपत्यिकाओं को प्रभावित कर अष्टांगयोग की प्रक्रिया को सरल बनाने के निमित्त करने वाली विधा नाम दिया गया है ।

आसन न केवल स्थूल शरीर को स्वस्थ बनाते हैं-हारमोन्स अंत:स्रावी ग्रंथियों-एन्जाइम्स स्नायुकोशों को प्रभावित कर मन-अंत:करण को भी साधना विज्ञान की उच्चतम कक्षाओं में बैठने योग्य मनाते हैं । प्रारंभिक अभ्यास के नाते हर साधक को इस विवेचन को पढ़कर निश्चित ही वह लाभ मिलेगा जो साधना से सिद्धि के रूप में देखा जा सकेगा ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

—ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
अध्याय-१	
योगः कर्मसु कौशलम्	
योग क्या है ?	१.१
कर्म की कुशलता ही योग है	१.५
अपने पर आप भरोसा रखकर आगे बढ़िये	१.१४
जीवन का सबसे बड़ा श्रेय साधन कर्म कौशल	१.१५
योग साधना का उद्देश्य और स्वरूप	१.२०
योग का तत्व दर्शन और प्रतिफल	१.२७
योग और उसकी उपयोगिता	१.३२
योग साधन की प्रधान सामग्री	१.३५
योग आन्तरिक परिष्कार का विज्ञान	१.३८
योग का स्वरूप और उसकी गुप्त शक्तियाँ	१.४२
योग साधनाएँ हमें भीम भी बना सकती हैं	१.४४
व्यक्तित्व की जड़ सींचने के लिए योग एवं तप की आवश्यकता	१.४५
आत्मोत्कर्ष की दिशा में चलने के लिए दो चरण	१.४८
अन्तःकरण के परिमार्जन से दिव्य शक्तियों का उद्भव !	१.५५
योग साधना का उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध !	१.५७
योग के भावार्थ को हृदयंगम करें	१.६०
योग साधना से चरम लक्ष्य की पूर्ति	१.६३
योग साधनाएँ पूर्णतः विज्ञान सम्मत	१.६८
योग प्रसुप्त की जागृति का उच्चस्तरीय विज्ञान	१.७१
योगविद्या का वैज्ञानिक विश्लेषण	१.७४
योग मनुष्य के विकास का सर्वोत्तम मार्ग	१.७८
योगाभ्यास द्वारा अशुभ कर्मों का नाश	१.८३
योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार	१.८५
योग साधना के दो रथ चक्र	१.८६
क्रियायोग के चार विधान	१.८८

विषय	पृष्ठ
बहिरंग योग की सरल साधनाएँ	१.९०
अन्तरंग योग की पृष्ठभूमि	१.९२
व्यावहारिक क्रियायोग	१.९४
योग साधन सर्वसुलभ भी सर्वोपयोगी भी	१.९५
सरलतम किन्तु महत्त्वपूर्ण योगाभ्यास	१.९७
योगाभ्यास सामान्य जीवन के साथ भी हो सकता है	१.१०३
सिद्धियों की दिशा में ले जाने वाला राजमार्ग	१.१०७
योगानुभूतियों का एक ही राजमार्ग आत्म नियन्त्रण	१.१०९
एक कदम भर रख दें आप पहुँच तो जायेंगे ही	१.१११
योग साधना के त्रिविध चरण	१.११४
योग प्रविधि के पाँच प्रधान आधार	१.११६
योगो भवति दुःखहा	१.११८
योग साधना के चमत्कारी परिणाम	१.१२१
गुह्य योग साधनाओं का पात्रता सम्बन्धी अनुशासन	१.१२३
योग बाजीगरी नहीं वरन् उच्चस्तरीय पुरुषार्थ है	१.१२५
हठयोग लाभदायक भी हानिकारक भी	१.१२७
योग साधना से पहले	१.१२९
योग पूर्व परिचय व प्रारम्भिक तैयारी	१.१३०
योग सम्बन्धी भ्रान्तियों से उबरें वस्तुस्थिति को समझें	१.१३४
योग की साधना की जाय विडम्बना नहीं	१.१३९
योग विद्या बनाम बाजीगरी योग का गलत रूप	१.१४१
"योगा" और "मेडीटेशन" का कौतुक	१.१४३
योग साधना का मजाक न बने !	१.१४५
विदेशों में योग प्रचार बचकाना खिलवाड़ न बनाया जाय	१.१४८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
योग के प्रति विश्व आकर्षण और हमारा उत्तरदायित्व	१.१५१
महर्षि अरविन्द का पूर्ण योग	१.१५३
अध्याय-२	
पातंजलि योग का तत्व-दर्शन	
अहिंसा और उसकी परिधि	२.१
सत्य की समग्र साधना	२.३
अस्तेय का दर्शन एवं रहस्य	२.५
ब्रह्मचर्य शारीरिक ही नहीं मानसिक भी	२.६
पूँजी को रोककर न रखें	२.८
शुचिता और स्वच्छता	२.१०
असन्तोष की अवांछनीय मनःस्थिति	२.१२
तप साधना का परम पुरुषार्थ	२.१४
स्वाध्याय में प्रमाद न करें	२.१५
ईश्वर का विश्वास और आराधना	२.१७
सरल और सर्वोपयोगी आसन व्यायाम	२.१९
तीन सरल प्राणायाम	२.२१
अवांछनीयताओं का प्रतिकार-प्रत्याहार	२.२३
उत्कर्ष के लिए आवश्यक धर्म धारणाएँ	२.२५
सर्वोपयोगी ध्यान धारणा	२.२७
समाधि मात्र कौतूहल नहीं है	२.२९
अध्याय-३	
योगश्चित्तवृत्ति निरोधः	
चित्तवृत्ति निरोध का तत्व दर्शन	३.१
अन्तःकरण चतुष्टय का परिचय	३.२
मन, बुद्धि, चित्त अहंकार का स्वरूप	३.५
हमारे मन के चमत्कार	३.५
मन की तीन भूमियाँ	३.६
मनः क्षेत्र में चित्त की भूमिका	३.७
चित्तवृत्ति निरोध का विज्ञान व मनोविज्ञान	३.११
योग साधना का प्रथम चरण एकाग्रता सम्पादन	३.१४
चित्तवृत्तियों का निरोध ही योगाभ्यास है	३.१७
चित्तवृत्ति निरोध का साधन, अभ्यास	३.२०
अन्तःप्रकाश का दर्शन आन्तरिक शुद्धि से	३.२५

विषय	पृष्ठ
शक्तियों को बिखेरें नहीं एकत्रित करें	३.२६
चित्तशुद्धि योगाभ्यास का प्रथम आधार	३.२८
चित्त की वृत्तियों को रोकिए	३.३१
मनोनिग्रह} सबसे बड़ा पुरुषार्थ	३.३२
मन को रोकें नहीं दिशा दें	३.३४
चंचल मन का नियन्त्रण	३.३६
विकारमय स्वार्थी विचारों से मुक्ति	३.३६
मनोनिग्रह के लिए विचार, विवेक और वैराग्य	३.३७
मनोनिग्रह ऋद्धि सिद्धियों का भाण्डागार	३.३९
चित्तवृत्तियों का परिशोधन आहार से सम्भव	३.४१
सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते	३.४४
मनोनिग्रह और दिव्य शक्तियों का विकास	३.४४
ऋद्धि-सिद्धियों का अन्तराल में उद्घाटन कैसे हो ?	३.४६
परिष्कृत चेतना में ही दिव्य शक्तियों का अवतरण सम्भव	३.४८
अध्याय-४	
यम और नियम	
अहिंसा	४.२
सत्य	४.३
अस्तेय	४.५
ब्रह्मचर्य	४.७
अपरिग्रह	४.९
पाँच-नियम	४.१०
शौच	४.१०
सन्तोष	४.१२
तप	४.१३
स्वाध्याय	४.१५
ईश्वर प्रणिधान	४.१६
यम-नियमों का तात्पर्य	४.१८
यम-नियमों की शास्त्रीय विवेचना	४.१९
सत्य की परिभाषा	४.२०
अपरिग्रह	४.२०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
शौच	४.२०
सन्तोष	४.२१
तप	४.२१
स्वाध्याय	४.२१
यम-नियम की महिमा	४.२१
अध्यात्म अनुशासनों का मूलभूत प्रयोजन समझें	४.२३
मानवी काया का सूक्ष्म विश्लेषण एवं उसका योग द्वारा सुनियोजन	४.२६
दमन अपने आपे का	४.२६
अपरिग्रह आज क्यों इतना जरूरी है ?	४.३०
आत्मशोधन की संयम साधना	४.३२
सौन्दर्य-बोध का दुरुपयोग न हो, रसना पर नियन्त्रण हो	४.३५
आत्मिक प्रगति को सरल बनाती है, संयम साधना	४.३७
व्रतशीलता का दायित्वपूर्ण निर्वाह	४.३६
गाँधी दर्शन पर आधारित एकादश व्रत	४.४०
ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण	४.४७
छोटी बातों का बड़ा महत्त्व	४.४८
छोटी अच्छाइयों का सत्परिणाम	४.४८
गृहस्थ में तपश्चर्या का विधान	४.४८
ब्रह्मचर्य से जीवन विकास	४.४६
विवाहित जीवन की मर्यादाएँ	४.४६
मानसिक कुकल्पनाओं से बचें	४.४६
न्यूनतम मर्यादा का अनिवार्य परिपालन	४.५०
सन्तान के लिए श्रेष्ठ अनुदान	४.५०
सुसन्तति का अमूल्य उपहार	४.५०
आलस्य एक प्रकार की आत्म-हत्या है	४.५१
सबेरे जल्दी उठने की आदत	४.५१
नियमित दिनचर्या और क्रमबद्धता	४.५१
अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा	४.५१
अस्वाद और ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध	४.५२
मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्	४.५३
संयम हमारी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता	४.५६
इन्द्रिय संयम की आवश्यकता	४.५८
संयमी ही आत्म-जयी होते हैं	४.६०
जिह्वा के संयम से स्वास्थ्य की सिद्धि	४.६२
इन्द्रियों का सदुपयोग करना सीखें	४.६६
प्राणशक्ति सम्वर्धन हेतु ब्रह्मचर्य अनिवार्य	४.६८
ब्रह्मचर्य रक्षा कैसे करें ?	४.७०
ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय	४.७१
ब्रह्मचर्य और उपवास	४.७१
ब्रह्मचर्य और मनोविकार	४.७१
ईश्वर पारायणता और आस्तिक भाव	४.७२
भोजन का शुद्ध और सात्विक होना	४.७२
इन्द्रिय-संयम की महिमा	४.७३
हिन्दू धर्म की अनुपम निधि	४.७४
ब्रह्मचर्य की विश्वव्यापी महिमा	४.७४
वीर्य का प्रचण्ड प्रताप	४.७६
आधुनिक विद्वानों द्वारा समर्थन	४.७८
ब्रह्मचर्य के विषय में भ्रान्तियाँ उसकी उपेक्षा	४.७६
अध्याय-५	
अष्टांग योग में आसनों की उपयोगिता	
श्रम और विश्राम का सन्तुलन	५.१
यौगिक व्यायाम और उसका तात्विक आधार	५.२
आसनों की पाँच श्रेणियाँ	५.३
आसनों का प्राकृतिक स्वरूप	५.३
स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से चार प्रकार के आसन	५.४
आसन-व्यायाम के सम्बन्ध में विशेष सूचनाएँ	५.६
आसन क्यों ? और कैसे ?	५.८
अन्य आसन	५.१४
स्वास्थ्य-रक्षा के उपयोगी आसन	५.१४
(१) पाद-हस्तासन	५.१४
(२) हस्तपादांगुष्ठासन	५.१५
(३) पश्चिमोत्तानासन	५.१६
(४) भुजंगासन	५.१७
(५) शलभासन	५.१७
(६) धनुषासन	५.१८
(७) सर्वांगासन	५.१६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
(८) हलासन	५.२०
(९) अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन	५.२१
(१०) बज्रासन	५.२१
(११) बकासन	५.२२
(१२) गोमुखासन	५.२२
(१३) चक्रासन	५.२२
(१४) आकर्ण धनुषासन	५.२३
(१५) गरुड़ासन	५.२३
(१६) शवासन या दण्डासन	५.२३
आसन-व्यायाम के सामान्य नियम	५.२३
एक बहुउपयोगी योगाभ्यास सूर्य नमस्कार	५.२५
आध्यात्मिक साधना के लिए पद्मासन	५.२८
शवासन	५.२९
साधना की सफलता में आसन की उपयोगिता	५.३१
शीर्षासन का महत्त्व	५.३४
प्रयोग	५.३५
शीर्षासन के लिए सूचना	५.३६
इससे लाभ	५.३६
सरल और सर्वोपयोगी आसन-व्यायाम	५.३७
अंग-संचालन की सुगम प्रक्रिया	५.४१
सरल आसनों द्वारा अंगों को सक्रिय कैसे बनायें ?	५.४४
आसनों-व्यायामों की वैज्ञानिक मान्यता	५.४६
योगासन एक समग्र उपचार प्रक्रिया	५.४८
दुर्बलता की स्थिति में अति सरल व्यायाम	५.५०
यौगिक षट् क्रियाएँ	५.५२
(१) धोति	५.५२
(२) नेति	५.५२
(३) त्राटक	५.५२
(४) कपाल भाति	५.५३
(५) वस्ति	५.५३
(६) नौलिक्रिया	५.५३
पूर्ण एवं अपूर्ण कपाल भाति क्रिया	५.५३
अपूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि	५.५३
सम्पूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि	५.५३
शारीरिक-मानसिक विश्रान्ति की प्रक्रिया	
शिथलीकरण	५.५४
अशान्ति के क्षणों में शान्ति का आह्वान	५.५६
थकान मिटाने की सरल साधना	५.५८
तनाव का प्रबन्ध, योग द्वारा	५.६०
योग निद्रा द्वारा प्राण-शक्ति का सन्तुलन	
एवं अभिवृद्धि	५.६३
भावात्मक असन्तुलन का निदानोपचार	
योग निद्रा	५.६५
योग निद्रा विश्रान्ति के साथ पूरी नींद का लाभ	५.६७
स्फूर्तिदायिनी योग निद्रा अभ्यास का अंग बने	५.७२
ब्रह्मवर्चस साधना के कुछ सहयोगी आसन-व्यायाम	५.७४
आसन सिद्धि	५.७५
योगासनों से विभिन्न व्याधियों का उपचार	५.७६
सूक्ष्म उपत्यिकाओं व नाड़ी गुच्छकों का जागरण	
योगासनों से	५.७८

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

॥ योगः कर्मसु कौशलम् ॥

योग क्या है ?

गीता में योग की परिभाषा "योगः कर्मसु कौशलम्" (२-५०) की गयी है । दूसरी परिभाषा "समत्वं योग उच्यते" (२-४८) है । कर्म की कुशलता और समता को इन परिभाषाओं में योग बताया गया है । पातंजलि योग दर्शन में 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः (१-१) चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है । इन परिभाषाओं पर विचार करने से योग कोई ऐसी रहस्यमय या अतिवादी वस्तु नहीं रह जाती कि जिसका उपयोग सर्वसाधारण द्वारा न हो सके । दो वस्तुओं के मिलने को योग कहते हैं । पृथकता वियोग है और सम्मिलन योग है । आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ना योग होता है ।

"जीवात्म परमात्म संयोगो योगः" कहकर भगवान याज्ञवल्क्य ने जिस योग की विवेचना की वह केवल कल्पना नहीं, अपितु हमारे दैनिक जीवन की एक अनुभूत साधना है और एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा हम अपने साधारण मानसिक क्लेशों एवं जीवन की अन्यान्य कठिनाइयों का बहुत सुविधापूर्वक निराकरण कर सकते हैं । हमारे अन्दर मृग में कस्तूरी के समान रहने वाली जीवात्मा एक ओर मन की चंचल चित्तवृत्तियों द्वारा अपनी ओर खींची जाती है और दूसरी ओर परमात्मा उसे अपनी ओर बुलाता है । इन्हीं दोनों रज्जुओं से बँध कर निरन्तर काल के झूले में झूलने वाली जीवात्मा चिर काल तक कर्म कलापों में रत रहती है । यह जानते हुए भी कि जीवात्मा दोनों को एक साथ नहीं पा सकती और एक को खोकर ही दूसरे को पा सकना सम्भव है वह दोनों की ही खींचतान की द्विविधा में पड़ी रहती है । इसी द्विविधा द्वारा उत्पन्न संघर्षों का संकलन समाज और समाजों का सम्पादन विश्व कहलाता है ।

उपर्युक्त विवेचन का एक दूसरा स्वरूप भी है और वह यह है कि जीवात्मा और परमात्मा के बीच मन बाधक के रूप में आकर उपस्थित होता है । कुरुक्षेत्र में पार्थ ने मन की इस सत्ता से भयभीत होकर ही प्रार्थना की थी 'चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म' । मन मनुष्य को वासना की ओर खींचकर क्रमशः उसे परमात्मा से दूर करता जाता है । उसे सीमित करना पवन को बन्धन में लाने के समान ही दुष्कर है । आत्मा और परमात्मा के निकट आये बिना आनन्द का अनुभव नहीं होता । ज्यों-ज्यों जीवात्मा मन से सन्निकटता प्राप्त करती जाती है वह क्लेश एवं संघर्षों से लिपटती जाती है । आत्मा एवं परमात्मा का एकाकार ही परमानन्द की स्थिति है । सन्त कबीर ने इस एकाकार को ही आध्यात्मिक विवाह का रूप दिया है और गाया है—

जिस डर से सब जग डरे, मेरे मन आनन्द ।
कब भरिहों कब पाइहों पूरन परमानन्द ॥

मन को वश में करने की मुक्ति ही योग है । महर्षि पातंजलि ने कहा भी है—'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' । चित्तवृत्ति के निरोध से ही योग की उत्पत्ति होती है और इसी को प्राप्ति ही योग का लक्ष है । गीता में भगवान कृष्ण ने योग की महत्ता बतलाते हुए कहा है कि यद्यपि मन चंचल है फिर भी योगाभ्यास तथा उसके द्वारा उत्पन्न वैराग्य द्वारा उसे वश में किया जा सकता है ।

व्यावहारिक रूप से योग का तात्पर्य होता है जोड़ना या बाँधना । जिस प्रकार घोड़े को एक स्थान पर बाँधकर उसकी चपलता को नष्ट कर दिया जाता है उसी प्रकार योग द्वारा मन को सीमित किया जा सकता है । विस्तार पाकर मन आत्मा को आच्छादित न करले इसलिए योग की सहायता आवश्यक भी हो जाती है । भक्तियोग और राजयोग से ऊपर उठकर त्रिकालयोग के दर्शन होते है और यही सर्वश्रेष्ठ योग है ।

इन्हीं तीनों योगों का व्यावहारिक साधारणीकरण कर्मयोग है और आज के संघर्षमय युग में कर्मयोग ही सबसे पुण्य साधना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संसार और उसकी यथार्थता ही कर्मयोगी का कार्य क्षेत्र है । फल के प्रति उदासीन रहकर कर्म के प्रति जागरूक होकर ही मनुष्य क्रमशः मन पर विजय पाता है और परमात्मा से अपना सम्बन्ध सुदृढ़ करता है । कर्मयोग की प्रेरणा किसी कर्मयोगी के जीवन को आदर्श मानकर ही प्राप्त होती है । अपने कर्तव्य के प्रति तल्लीनता तथा विषय जन्य भावनाओं के प्रति निराशक्ति ही कर्मयोग की पहली सीढ़ी है ।

कर्मयोगी के जीवन में निराशा अथवा असफलता के लिए कोई स्थान नहीं क्योंकि एक तो वह इनकी सत्ता ही स्वीकार नहीं करता और दूसरे उसकी दृष्टि कर्म से उठकर परिणाम तक पहुँच ही नहीं पाती । यहाँ तक कि सच्चा कर्मयोगी परमात्मा की प्राप्ति के प्रति भी बीत राग हो जाता है । उस स्थिति पर 'तस्माद्योगी भवार्जुन' के अनुसार कर्मयोगी वह पद प्राप्त कर लेता है जहाँ 'मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश' के रूप में आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता ।

पार्थिव शरीर को जगत के लिए उपयोगी बनाने एवं उसके उपरान्त मुक्ति प्राप्त करने का एक मात्र साधन योग है ।

युजिर 'योग' धातु से योग शब्द सिद्ध होता है जिसका तात्पर्य जोड़ या मेल है । मनुष्य का मेल मनुष्य, पशु-पक्षी तथा जड़ पदार्थों से भी होता है, परन्तु उसका नाम योग नहीं, बल्कि संयोग है ।

अध्यात्म विद्या में जीव+ईश्वर संयोग को योग कहते हैं । परमात्मा इस जीवात्मा से सदैव सर्वस्थल में मिला हुआ है कभी पृथक् नहीं रहता, यहाँ तक कि जब मनुष्य भौतिक शरीर त्याग कर बाहर निकल जाता है तथा गर्भ में निवास करता है या मोक्ष को प्राप्त होता है तब भी जीव-ईश्वर की पृथकता नहीं होती । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब जीव और ईश्वर का वियोग किसी देश काल तथा अवस्था में होता नहीं तो फिर योग कैसा ? और उसकी आवश्यकता ही क्या ? इसका सरल उत्तर यह है कि यों तो आत्मा का ईश्वर से योग प्रत्येक दशा, काल तथा अवस्था में उसी परम देव की परम दया से होता है, यही जीवन है । परन्तु यह स्वाभाविक योग जीव की ओर से नहीं होता और न उसको इस योग का ज्ञान होता है और न उसका अनुभव व आनन्द ही जीव को प्राप्त होता है ।

अस्तु जीव को ईश्वर के मेल का ज्ञान होना ही योग है और इस अनुभव द्वारा प्रयत्नशील योगीजनों को साक्षात्कार हो जाना ही परमानन्द है । परमानन्द प्राप्त हो जाने के पश्चात शेष प्राप्त करने के लिए कुछ नहीं रहता यही परमपद और मोक्ष दशा है । जब तक इस अवस्था को मनुष्य प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक अनेकों शरीरों में घूमता हुआ नाना प्रकार के कष्टों को भोगता हुआ बहुत जन्मों के पश्चात शुभ कर्मों और शुभ संस्कारों एवं ईश्वर की परम कृपा से योग साधन करने के लिए मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है । परमानन्द अर्थात् जिसे प्राप्त कर लेने के बाद कभी भी जीव-दुःख को प्राप्त नहीं होता और न दुःख स्वरूप शरीरों को प्राप्त होता है अर्थात् सर्वदा परमानन्द में निवास करता है । यही परम आवश्यकता है ।

जीवात्मा को इस बात का यथार्थ ज्ञान और अनुभव व साक्षात्कार हो जाना कि वह घटघट वासी सर्व-व्यापक मेरे पास है और मैं उसकी गोद या शरण में हूँ ऐसी अवस्था का नाम जीवन का ईश्वर से योग है और इसके उपाय व क्रिया का नाम योगाऽनुष्ठान या योगाभ्यास है और इस योग से जो दुःख निवृत्ति तथा सुख प्राप्ति रूपी फल मिलता है उसको योग विभूति आदि समझना चाहिए ।

इस जीवात्मा का दो पदार्थों से सम्बन्ध रहता है । अर्थात् प्राकृतिक जगत व माया से या यों समझिए कि प्राकृतिक जगत व अप्राकृतिक जगदीश्वर से, क्योंकि मनुष्य का मन एक है और वह एक समय में, एक ही विषय को ग्रहण तथा अनुभव करता है और मन प्रकृति का पुत्र है, इसलिए वह अधिकार अपनी माता माया देवी से ही नियुक्त रहता है । यही कारण है कि वह जगत पिता परम देव मायापति की आज्ञा तथा अनुभव से विमुख तथा वियुक्त रहता है ।

जब इसको परमपिता की सत्ता का ही ज्ञान नहीं है तो उससे प्यार व योग का ज्ञान कैसे हो सकता है ? परन्तु माया की गोद में क्षणिक अस्थिर सुखाभास प्राप्त होता है । परमपिता के योग से स्थिर तथा चिरकाल तक रहने वाला चिरानन्द प्राप्त होता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे माता के क्षीर पान करने से थोड़ी देर के लिए क्षुधा तृषा से तृप्ति हो जाती है, यथार्थ तृप्ति रूप शान्ति नहीं । थोड़ी देर पश्चात फिर भूख-प्यास आकर सताती है, परन्तु योगाभ्यास करते-करते इस भौतिक शरीर के रहते हुए भी जग योगाभ्यासी कण्ठ कूप में जो तालू के काग के समीप एक कूप जैसा गढ़ा है, जब योगी उसमें संयम करता है, तो बहुत काल तक उसकी भूख-प्यास जाती रहती है । अर्थात् जब तक योगी इसका संयम करता रहेगा तब तक भूख प्यास न लगेगी । यथा—

"कण्ठे कूपे क्षुति विपासा निवृत्तिः"

—योग दर्शन वि. पा. सू. २९

अब समझो कि जब भौतिक माया माता का शरीर विद्यमान होते हुए भी मानस यज्ञ का दीक्षित यजमान (योगी) उस परम ज्योतिर्मय भगवान का ध्यान करता है तो उसकी भूख-प्यास पयान कर जाती है । यदि स्थूल भौतिक शरीर को त्याग कर सूक्ष्म दिव्य शरीर से केवल परमपिता का ही सेवन मुक्त पुरुष करता है तो फिर उसको भूख-प्यास से तनिक सम्बन्ध नहीं रहता ।

जैसे एक बालक अपनी माँ की गोद से पृथक होकर रोता और बिलबिलाता है उसको भूख ने सता रखा है, बिल्ली, कुत्ते व अन्धक़ार आदि ने डरा रखा है और वह अपनी प्यारी माता को नहीं देखता इसलिए दुःखी होकर रोता है और चिल्लाता है । परन्तु जब जननी अपने लाड़ले और सलौने पुत्र को अपनी प्रेममय गोद में उठा लेती है तो वह कैसा प्रेम पुलकित हो जाता है और छाती से लिपटकर दूध पीता है, उस समय पहली सारी पीड़ा भूल जाता है । यही दशा हम सब जीवों की परम जननी और जनक परमपिता परमेश्वर के सामने है । जब हम जगत के झगड़ों में फँसे हुए बहुत थक कर व्याकुल हो जाते हैं तब पिताजी गहरी नींद देकर अपने गोद अंगों में भर लेते हैं । उस समय लेश मात्र भी क्लेश नहीं रहता—यह "वैत्तिक योग" है जो सुषुप्ति अवस्था में हमको प्राप्त होता है । परन्तु शोक कि इसके महत्त्व को नहीं समझते हैं इसलिए इसका मान नहीं करते ! इसका भी मुख्य कारण है कि जैसे किसी सोते हुए बालक को उसकी माता प्यार करती है परन्तु सुप्त सपूत को उसकी कुछ भी सुधि नहीं है इसलिए वह उसके प्यार की न प्रतिष्ठा करता है और न उसका धन्यवाद देता है । यही दशा सुषुप्ति अवस्था में हमारे साथ परम प्रेमी के प्यार व योग की है । इसका प्रयोजन यह है कि परमेश्वर अपने योग द्वारा अपनी दशा दर्शाते और प्यार दिखाते हैं । परन्तु हम कपूत कृतघ्न बालक उनके प्यार की कुछ परवाह नहीं करते, न उसको धन्यवाद देते हैं

जब हम दुःखमय दुनिया में बहुत दुःखी हो जाते हैं और प्रभु से मिलने की सत्य उत्कण्ठा हमारे मन में उत्पन्न होती है और हम प्रयत्न करके अपने मन-मन्दिर हृदयाकाश में उस प्यारे को विराजमान देखते हैं और समस्त संसार की सामग्री की सुधबुध अपने मन से भुला देते हैं, तब हमको अपने अन्तःकरण में उस विभु के विराजमान होने का ज्ञान होता है और चक्षु से अपने आत्माराम के समक्ष जाज्वल्यमान देखते हैं उसका नाम योग है ।

'योग' के विषय को लोगों ने ऐसा जटिल बना रखा है कि इसका नाम ही भयंकर हो गया है । इसका कारण यह है कि इधर कुछ समय से लोग 'योग' शब्द से केवल 'हठयोग'—केवल आसन, मुद्रा आदि को समझने लगे हैं । आसन, मुद्रा आदि एक तो स्वयं जटिल विषय है, दूसरे इन शारीरिक क्रियाओं से आध्यात्मिक लाभ क्या है और कहाँ तक हो सकता है सो भी समझना कठिन है । बात तो यों है कि अभ्यासात्मक योग के सब तत्वों को समझना गुरु के बिना कठिन है । परन्तु थोड़ा-सा विचार करने से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि 'हठयोग' यद्यपि योग का अंग अवश्य है, पर तो भी वह केवल एक अंग है, स्वयं योग नहीं । अर्थात् वह योग का एक साधन मात्र है और सो भी प्रधान नहीं ।

ऐसे अंग योग के आठ कहे गए हैं—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (५) प्राणायाम, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि । इनमें पाँच योग के बाह्य अंग हैं बाकी तीन अन्तरंग (योगभाष्य ३।१) ये तीन हैं धारण, ध्यान, समाधि । ये ही तीन प्रधान हैं । कारण यह कि ये ही तीन प्रक्रियाएँ जरूरी हैं जिनका उपयोग सब कार्यों में होता है । जब किसी ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा हो तो उसके लिए जब ये तीनों लगायी जाती हैं तभी वह ज्ञान उचित रूप में प्राप्त होता है । जब तक ज्ञेय पदार्थ पर मन एकाग्र रूपेण नहीं लगाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता, तब तक उसका ज्ञान असम्भव है । इसलिए प्रथम श्रेणी हुई यही एकाग्रता, जिसे 'धारणा' कहा है (सू. ३-१), इसके बाद जब मन बहुत काल तक इसी प्रकार एकाग्र रहे तो यह हुआ ध्यान (सू. ३-२) और जब मन इस ध्यान में इस तरह मग्न हो जाय कि ध्येय पदार्थ में लय हो गया तो यही हुई समाधि (सू. ३-३) । किसी कार्य के सम्पन्न होने में तीनों की ही आवश्यकता होती है । यह केवल आध्यात्मिक अभ्यास या ज्ञान के ही लिए आवश्यक नहीं है, प्रत्येक कार्य के लिए इनका होना अनिवार्य है । कोई भी कार्य हो जब तक उसमें मन नहीं लगाया जाता, कार्य सिद्ध नहीं होता । इसी मन लगाने को धारणा, ध्यान, समाधि कहते हैं ।

ये तीनों एक ही प्रक्रिया के अंग हैं । इसी से इन तीनों का एक साधारण नाम 'संयम' कहा गया है (सू. ३-४) । इसी 'संयम' अर्थात् धारण, ध्यान, समाधि से ज्ञान की शुद्धि होती है ।

योग-सूत्रों में वर्जित इन उपदेशों को जब हम मामूली कामों में लगाते हैं और इनके द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं, तब हमको मानना पड़ता है कि 'योग' का सबसे उत्कृष्ट और उपयोगी लक्षण वही है जो भगवान ने कहा है—

'योगः कर्मसु कौशलम्'

इस 'योग' के अभ्यास के लिए प्रत्येक मनुष्य को सदा तैयार रहना चाहिए । 'गुरु मिलें तब तो योगाभ्यास करें' ऐसे आलस्य के विचार निर्मूल हैं । जो कोई कर्तव्य सामने आ जाय उसमें 'संयम' (अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि) पूर्वक लग जाना ही योग है । इसमें यदि कोई स्वार्थ कामना हुई तो यह योग अधम श्रेणी का हुआ और यदि निष्काम है—कर्तव्य बुद्धि से किया गया है और फल जो कुछ हो ईश्वर को अर्पित है तो यही 'योग' उच्चकोटि का हुआ । जब अपने सभी काम इसी रीति से किए जाते हैं तो वही आदमी 'जीवन्मुक्त' कहलाता है ।

कैसा सुगम मार्ग है, पर लोगों ने दुर्गम बना रखा है । मन की 'लाग' चाहिए—तत्परता, तन्मयता । यह कठिन नहीं है—दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है—अपने हाथ का खेल है, पर श्रद्धा और साहस चाहिए ।

इसमें शास्त्रार्थ या तर्क-वितर्क की जरूरत नहीं है । इसको कोई भी आदमी, किसी सामान्य कार्य के प्रति इस प्रक्रिया की परीक्षा करके स्वयं देख सकता है । पर आरम्भ में श्रद्धा और आगे चलकर साहस की आवश्यकता होगी, जिससे प्रक्रिया अपनी चरम कोटि तक पहुँच जाय ।

कारण योग है ही परमसत्ता से सम्पर्क सान्निध्य स्थापित करने की एक विशेष प्रक्रिया । चूँकि इसका काम दो सत्ताओं को परस्पर जोड़ना है, इसलिए इसका नाम 'योग' और इस प्रक्रिया को पूरा कर सकने वाली क्षमता का 'योगशक्ति' रखा गया । इसकी अनेकानेक शाखाएँ हैं, पर हर एक का लक्ष्य एक ही है—चिन्तन—चेतना को परिष्कृत कर विचार-बुद्धि को सुस्थिर रखना और आत्मसत्ता को परमात्म सत्ता से एकाकार करना ।

'योग' शब्द का अर्थ-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । जिस 'योग' का जो विशेष अर्थ उद्देश्य होता है, उसका संकेत करने वाला शब्द आगे जोड़ दिया जाता है । जैसे भक्तियोग का अर्थ है—ब्रह्मसत्ता, भक्तिभाव से जुड़े रहने की जीवन पद्धति । ज्ञानयोग का अर्थ है—ज्ञान साधना द्वारा सर्वव्यापी सत्ता की अखण्ड अनुभूति । मन्त्रयोग अर्थात् मन्त्र जप द्वारा आत्म चेतना का ब्रह्म चेतना से समरसता प्राप्त करने का प्रयास । कर्मयोग को प्रखर कर्मनिष्ठा एक जीवन साधना कहा गया है । हठयोग यानी पूर्ण स्वस्थता के लिए की जाने वाली विशिष्ट शारीरिक मानसिक क्रियाओं का साग्रह अभ्यास ।

भगवद्गीता में योग और योगी के स्वरूप का जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहाँ योग के ऐसे ही लक्षणों का संकेत—निर्देश हुआ है, जो आत्मचेतना को ब्रह्मचेतना से जोड़ने पर आनन्द-उल्लास-सक्रियता-स्फूर्ति, कर्मनिष्ठा-चरित्रनिष्ठा के रूप में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । साधक के व्यक्तित्व में उस प्रकाश की ये अभिव्यक्तियाँ ही योग सफलता के चिन्ह हैं । इसी तथ्य को गीता में भिन्न-भिन्न ढंग से प्रतिपादित किया गया है, यथा—'समत्वं योग उच्यते,' अर्थात् समत्व बुद्धि सुसन्तुलित मनःस्थिति ही योग है । 'योग संन्यस्त कर्माणम्' अर्थात् संन्यस्त भाव से निर्लिप्त एवं उत्साहपूर्ण रहकर काम करना योग है ''ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनम्'—समदर्शी बुद्धि से सर्वत्र परमात्मा को देखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाले व्यक्ति योग युक्त होते हैं । 'योगः कर्मसु कौशलम्'—कर्म-कौशल या उत्कृष्ट कर्मनिष्ठा ही योग है । 'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संग त्यक्तत्वात्मशुद्धये'—योगी वह है, जो आत्मशुद्धि के लिए मोहासक्ति छोड़कर कर्म करता है । 'नैव किंचित्करोमीति युक्ती मन्येत तत्ववित्'—तत्ववेत्ता जानता है कि आत्मसत्ता स्वयं स्थूल कर्म नहीं करती, कर्म तो इन्द्रियादिक द्वारा आत्मचेतना की उपस्थिति में संम्पन्न हो रहे हैं अतः उनमें सफलता विफलता से असन्तुलित हो उठने जैसी कोई बात नहीं । 'योगयुक्तो विशुद्धात्मा'—योगयुक्त व्यक्ति की आत्मसत्ता विशुद्ध, प्रखर हो जाती है । 'समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि'—समाधि स्थिति की तरह स्थिर, अविचल बुद्धि होने पर ही योगस्थिति प्राप्त होती है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तरंग चेतना का परिष्कार ही समस्त योग-साधनाओं का वास्तविक अभीष्ट है और इस परिष्कार में निरन्तर प्रवृत्त रहने की क्षमता ही योगशक्ति है । योगशक्ति का यह स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर यह परिणाम भी उतना ही स्पष्ट हो जाता है कि योगशक्ति व्यक्तित्व का विकास करती है, उसकी संकीर्णताओं को नष्ट कर उसे प्रखर—परिष्कृत बना देती है ।

यही देवत्व-शक्ति के विकास की अवस्था है । यह शक्ति आत्मपरिष्कार के साथ आती और व्यक्तित्व की प्रखरता के साथ बढ़ती जाती है । यह परिष्कृति ही योगशक्ति है । कुण्डलिनी जागरण और ऊर्ध्वारोहण इसी का दूसरा नाम है । इसके उपरान्त क्रियाशीलता, स्फूर्ति, उत्फुल्लता तथा आनन्द अजस्र स्रोत फूट पड़ता है । आत्मसत्ता अधिकाधिक विशुद्ध प्रखर, विस्तृत विराट् होती चली जाती है, जिसकी चरम परिणति ब्रह्मसत्ता से पूर्ण तादात्म्य के रूप में सामने आती है । यही मोक्ष-मिलन, विलय-विसर्जन क्षुद्र सत्ता और महत् सत्ता का मात्र योग है ।

कर्म की कुशलता ही योग है

मानव जीवन की संरचना इस प्रकार हुई है कि उसे निरन्तर कार्यरत रहना पड़ता है । रात्रि को शरीर की उथली परत ही विश्राम करती है । भीतर के सभी तन्त्र अनवरत रूप से काम में जुटे रहते हैं । श्वास-प्रश्वास, रक्ताभिसरण, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष -उन्मेष आदि क्रम क्षण भर के लिए भी चैन नहीं लेता है । मस्तिष्क की ऊपरी परत ही निद्रा का लाभ ले पाती है । अचेतन और सुपर चेतन दोनों ही परतें बिना विराम का नाम लिए जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अपना काम करती रहती हैं । धड़कन एक क्षण के लिए रुक जाय तो जीवन लीला की समाप्ति ही समझनी चाहिए ।

आहार, पाचन क्षमता का उत्पादन यह एक पूरा चक्र है । इसकी एक कड़ी कभी टूट जाय तो समझना चाहिए कि गाड़ी दल-दल में फँस गयी अथवा खाई में गिरकर उलट गयी । आहार से रक्त बनता है इसमें पेट, आँतें आदि का परिश्रम तो मुख्य है ही, पर इसके अतिरिक्त अन्यान्य सभी अवयवों को श्रम करना पड़ता है । न किया जाय तो पाचन लड़खड़ा जायेगा और क्रिया शक्ति कुण्ठित होगी । जो हिस्सा निकम्मा पड़ा रहेगा वह जंग खाये पुर्जे की तरह क्षीण होता चला जायेगा । इसलिए जीवन व्यवस्था में कर्म को नितान्त आवश्यक माना गया है । खाली दिमाग तो शैतान की दुकान होती है । ठाली शरीर भी निस्तेज, दुर्बल और रुग्ण रहने लगता है ।

मनुष्य समेत सभी जीव-जन्तुओं को कार्यरत रहना अनिवार्य हो जाय, इसलिए प्रकृति ने उन्हें आहार जुटाने और वंश चलाने के दो कार्य ऐसे सौंपे हैं जिनके बहाने शरीर और मन को कुछ न कुछ ताना-बाना बुनना पड़ता है । भाग-दौड़ में निरत रहना पड़ता है । यह शरीर की निर्वाह शृंखला के साथ जुड़ी हुई कर्म व्यवस्था हुई । अन्य प्राणियों का काम इस दौड़ धूप से भी चलता रहता है, पर मनुष्य इस स्तर से बहुत आगे है । उसकी अन्यान्य आवश्यकताएँ तथा जिम्मेदारी भी हैं और वे सभी ऐसी हैं जो बढ़ा-चढ़ा कार्यकौशल चाहती हैं । इसके लिए उसे अनेक प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त करने पड़ते हैं और अतिरिक्त कार्यक्रम बनाने पड़ते हैं । शरीर का काम क्षुधा निवारण भर से नहीं चल पाता । वर्तमान संसार की उलझी हुई परिस्थितियों में सही तरीके से पार जाने के लिए विद्या, प्रतिभा, कुशलता, दूरदर्शिता आदि का संग्रह करना पड़ता है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसका पूरा जीवन परिवार तथा समाज के साथ गुंथा हुआ है । इसमें पग-पग पर नीतिमत्ता, उदारता एवं जिम्मेदारी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोग करना पड़ता है । अनीति का प्रचलन भी कम नहीं है उसके दाँव-पेचों से अपने को बचाने एवं आक्रमणों से पीछा छुड़ाने के लिए अनेक प्रकार से दाँव पेच समझने होते हैं । पेट प्रजनन तक सीमित न रहना हो, उन्नतिशील जीवन जीना हो, सन्तोष, उत्साह और उल्लास अर्जित करना हो तो वे कार्यक्रम भी अपनाने पड़ते हैं जिन्हें उत्कृष्ट एवं आदर्शमय कहते हैं ।

मनुष्य यों सर्वत्र स्वतन्त्र मालूम पड़ता है । वह भले बुरे जैसे भी चाहे काम कर सकता है । इतने पर भी वह कृत्यों के परिणाम भुगतने के लिए प्रकृति व्यवस्था के अनुरूप बाधित है । अनेकानेक जिमेदारियों से बँधा हुआ है । कर्तव्यों के परिपालन से बाधित है । पशु-पक्षी प्रकृति प्रेरणा का अनुसरण करने मात्र से अपनी जीवनचर्या एक क्रमबद्ध ढाँचे के अनुसार पूरी कर लेते हैं पर मनुष्य का काम इतने भर से नहीं चलता । उसे आत्मा की पुकार सुननी पड़ती है । सामाजिक अनुबन्धों का निर्वाह और वर्जनाओं का प्रतिपादन करना होता है । प्रशंसा और प्रतिष्ठा का ध्यान रखना होता है । निन्दा, भर्त्सना, उपहास से बचना होता है । मात्र शरीर ही नहीं परिवार का भरण-पोषण, चरित्र-स्तर एवं भविष्य बनाना होता है । यह सब कार्य अनायास ही नहीं हो जाते, इनके लिए समुचित जागरूकता बरतनी पड़ती है और कठोर श्रम करना होता है । यह सारा परिकर मिलकर कर्तव्य बनता है । कर्तव्य पालन से ही उत्तरदायित्वों का निर्वाह होता है और जीवन सन्तोष व्यक्त कर सकने योग्य बनता है । इसकी उपेक्षा करने वाले दुत्कारे जाते और जहाँ-तहाँ धिक्कार सहते हैं ।

कर्तव्य को शास्त्रकारों की भाषा में धर्म कहा गया है । जो दायित्वों का ठीक तरह निर्वाह करता है वह धर्मात्मा है और जो उनकी अवज्ञा करता है वह अधर्मी है । धर्मात्मा पुण्य फल प्राप्त करके प्रत्यक्ष में सुखी रहते हैं और परोक्ष में स्वर्ग सन्तोष का लाभ लेते हैं । अधर्मियों के लिए प्रत्यक्षतः दुःख दुष्परिणाम सामने रहते हैं और परोक्ष में आत्म-प्रताड़ना का, विरोध-विग्रह का नरक भुगतना पड़ता है ।

आर्षजनों का अभिमत है कि कर्म ही ईश्वर पूजा है । यहाँ कर्म का अर्थ मात्र श्रम नहीं वरन् सत्कर्मों का अवलम्बन है । हर विवेकशील व्यक्ति के लिए उचित है कि वह आजीविका कमाते समय ईमानदारी का ध्यान रखे उसका व्यतिरेक न होने दे । खर्च करते समय समझदारी का उपयोग करे । ऐसा न हो कि अपव्यय अपनाया जाय और उसकी पूर्ति के लिए कुकृत्यों का आश्रय लिया जाय ।

निजी जीवन शरीर और परिवार तक सीमित है । इसमें आजीविका उपार्जन और उसके उपयोग में औचित्य का समावेश तो प्रमुख है ही, साथ ही यह तथ्य भी जुड़ता है कि शरीर और सम्बद्ध परिकर में से कोई कुमार्गगामी न बनाने पाये । इसके अतिरिक्त धर्म की दूसरी मंजिल आती है जिसे पुण्य या परमार्थ कहते हैं । यह सामाजिक प्रचलनों में औचित्य का अधिकाधिक समावेश करने, सत्प्रवृत्तियों को सींचने और कुप्रथाओं का उन्मूलन करने वाले कदमों को उठाने का प्रयास है । यह उतना ही आवश्यक है जितना शरीर और परिवार का निर्वाह । मनुष्य की प्रगति और अवनति बहुत करके समाज की सुव्यवस्था पर निर्भर है । वातावरण में गन्दगी भरती जा रही है तो एक व्यक्ति की सज्जनता भी उस माहौल में जीवित न रह सकेगी । श्रेष्ठ वातावरण में सामान्य व्यक्ति भी सुधरने और उठने लगते हैं । मनुष्य समाज का ऋणी है । अधिकांश सुविधाएँ उसे दूसरों के सहयोग से ही मिली हैं । यहाँ तक कि बोलना-पढ़ना जैसी आरम्भिक योग्यताएँ भी दूसरों के अनुग्रह से ही मिली हैं । ऐसी दशा में उसे अपने को समाज का ऋणी मानना चाहिए और उसे श्रेष्ठ समुचित बनाने का प्रयत्न करना अपना परम पवित्र कर्तव्य मानना चाहिए । यही पुण्य परमार्थ है । यही विराट ब्रह्म की यथार्थवादी सेवा पूजा है । इस प्रयोजन के लिए भी हमारी क्षमता का एक बड़ा अंश नियोजित रहना चाहिए ।

नित्य कर्म में ईश्वर उपासना के लिए एक निर्धारित समय रहना चाहिए । आत्मा की श्रेष्ठताओं का समुच्चय परमात्मा है । हम उसके निकटतम जायें—घनिष्ठ पहुँचने तक बनते जायें, यही भजन भाव एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम माना जाना चाहिए । अन्तःकरण की पवित्रता अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए यह आवश्यक है । जैसे मलीनता के शोधन हेतु शरीर को नहलाना, कपड़ों को धोना, कमरे को बुहारना, बर्तनों का मांजना आवश्यक है इसी प्रकार ईश्वर की पवित्रता और प्रखरता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रभाव आत्मा पर अधिकाधिक आच्छादित करने के लिए हमारे नित्य कर्म में उपासना सम्मिलित रहनी चाहिए ।

उपरोक्त सभी कर्तव्य कर्म एक से एक अधिक आवश्यक हैं । इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए और न ऐसा सोचना चाहिए कि किसी एक का पालन करने से काम चल जायेगा । मनुष्य जीवन का एक क्षण भी बेकार या बर्बाद नहीं होना चाहिए । खाली दिमाग शैतान की दुकान होती है और खाली समय मनुष्य के ऊपर पतन और पराभव थोपता है । इसलिए कर्तव्य मार्ग में हमें निरन्तर संलग्न रहना चाहिए । व्यस्तता ही जीवन में श्रेय का समावेश करती है । जो भी काम हाथ के नीचे है उसे पूरी दिलचस्पी के साथ किया जाना चाहिए । उसे सही तरीके से पूरा करना, अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न मानना चाहिए । बेगार भुगतने की तरह आधे अधूरे मन या श्रम से किया हुआ काम हर दृष्टि से काना-कुबड़ा और फूहड़ होता है । उसका बाजारू मूल्य तो कम होता ही है साथ ही जिसने किया है उसे अनगढ़ माना जाता है । बया पक्षी कैसा सुन्दर घोंसला बनाता है । यह उसके मनोयोग का फल है । उसमें रहकर सुखी तो वह पक्षी ही रहता है पर राह चलते दर्शक उसकी प्रशंसा करते जाते हैं । बेगार भुगतने के लिए कबूतर छितरे हुए तिनकों का फूहड़ घोंसला बनाता है । जरा-सी हवा चलते ही वह अण्डे बच्चों समेत जमीन पर आ गिरता है । बेचारे को दुबारा मेहनत करनी पड़ती है । साथ ही हँसी होने और गालियाँ पड़ने की बेइज्जती मुफ्त में ही होती रहती है । मनुष्य को अपने हर काम में कबूतर जैसा फूहड़पन न दिखाकर बया जैसी मुस्तैदी दिलचस्पी का परिचय देना चाहिए । जिम्मेदारी से काम करने वालों की कुशलता दिन-दिन बढ़ती जाती है और समय आने पर वे अपने विषय के प्रवीण पारंगत कहलाने लगते हैं ।

गीताकार ने काम को कर्मयोग कहा है और इसे मनोयोग पूर्वक करने से योग सिद्धि की बात कही है । उस कथन में एक बड़ी मार्मिक बात यह है कि लाभ-हानि की चिन्ता न करके कर्म को परिपूर्ण श्रद्धा के साथ करना चाहिए । काम को आगा-पीछा सोचकर तो करना ही चाहिए पर करते समय खिलाड़ी की मनोवृत्ति रहनी चाहिए । खिलाड़ी बीसियों बार हारते जीतते रहते हैं पर मन भारी नहीं होने देते । दोनों ही स्थितियों में मुस्कराते रहते हैं । काम की सफलता अपने हाथ में नहीं । कई बार परिस्थितियाँ ऐसी बन पड़ती हैं कि समझदारी से काम करने पर भी असफलता सामने आ खड़ी होती है । यदि कर्त्ता की तबियत छोटी है तो वह हिम्मत हार बैठेगा और भविष्य में उससे कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा । इसी तरह किसी प्रकार बन्दर के हाथ अदरक लग गया और स्वल्प प्रयास में बड़ी सफलता मिल गयी तो अहंकार का ठिकाना न रहेगा और उस असन्तुलित मनःस्थिति में आगे ठोकर खायेगा । इसलिए गीताकार ने कर्मयोगी के लिए परामर्श दिया है कि वह सच्चाई के साथ किए गए कर्म को ही प्रसन्नता का परिपूर्ण माध्यम समझें । ऐसी मनःस्थिति होने पर सफलता के अहंकार और असफलता के पश्चात्ताप से बचाव हो जाता है । ऐसी सन्तुलित मनःस्थिति एक प्रकार की योग विभूति है । जब कर्म करने में ही अपनी पूर्ण प्रसन्नता मान ली गयी तो सफलता की राह नहीं जोतनी पड़ती और सच्चाई के साथ किया हुआ प्रत्येक कार्य अपने आप में सफलता देने वाली प्रसन्नता जैसी अनुभव होता है । ऐसी निरन्तर हर हालत में प्रसन्न रहने की विद्या जिसे हाथ लग गयी समझना चाहिए कि वह मन का विजेता हो गया और उन हाथों से जो भी काम होगा वह शानदार होगा इसका निश्चय हो गया ।

यदि हमारे सभी कार्य लोक मंगल की दृष्टि से— कर्तव्य भावना की पूर्ति का लक्ष्य रखकर किए गए हैं तो वे उच्च भावना के अनुरूप पुण्य फलदायक ही होंगे । इन भावनाओं के रहते उनमें दुष्टता का समावेश नहीं हो सकता । कोई व्यावहारिक ज्ञान की कमी से त्रुटि रह भी जायेगी तो उस कृत्य को दूषित नहीं कहा जायेगा । स्वार्थ बुद्धि से किया गया परमार्थ भी व्यवसाय बन जाता है । यह तथ्य जिसकी समझ में आ गया, उसका कर्तव्यपरायण जीवन एक प्रकार से योगियों जैसा हो जाता है ।

योग के कितने ही प्रयोग उपचार हैं । उनमें से एक अति सरल और अति व्यावहारिक कर्मयोग है । उसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों का साथ-साथ निर्वाह होता है । लोक और परलोक दोनों सधते हैं । संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सेवा और आत्म-कल्याण दोनों का समान रूप से समावेश हो जाता है । निठल्ले बैठे रहना तो ऐसे भी किसी के लिए सम्भव नहीं । प्रकृति किसी को खाली बैठने नहीं देती और शरीर और मन की संरचना ही ऐसी ही है जिसमें कुछ न कुछ किए बिना काम ही न चले, चैन ही न पड़े । ऐसी दशा में समय काटने वाले निरुद्देश्य काम ज्यों-त्यों करके करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि अपने हर काम में उच्च उद्देश्य का समावेश किया जाय और उसे पूरी तन्मयता तथा तत्परता के साथ सम्पन्न किया जाय । कोई यह न समझे कि अधिक काम करने में व्यस्त रहने से शरीर या मन को क्षति उठानी पड़ेगी । कर्मयोगी की सन्तुष्टि एवं प्रसन्नता उसे हर क्षेत्र में प्रगतिशील एवं सम्पन्न बनाती है । इसलिए कर्म को धर्म समझकर उसे परिपूर्ण श्रद्धा के साथ करना ही श्रेयस्कर है ।

गीता (२/५०) में योग को कर्म की कुशलता कहा गया है । जिस उपाय से कर्म (इष्ट) सहज सुन्दर स्वाभाविक रूप से सिद्ध हो सके और साथ ही वह बन्धन का कारण न हो उसी का नाम योग है—"योगः कर्मसु कौशलम्" । प्राचीन काल में ऋषिकुमार यज्ञ के लिए कुश बटोर कर लाने को जाया करते थे । उसमें तीन श्रेणी के बालक होते थे । एक श्रेणी के बालक इस सावधानी के साथ कुश उखाड़ते थे कि कुश उखड़ भी आता और उनका हाथ भी न कटता । दूसरी श्रेणी के कुश उखाड़ते समय अपना हाथ काट लेते थे और तीसरी श्रेणी के बालक हाथ कटने के भय से अपने अन्य साथियों से माँगकर काम चला लेते । "कुशं लाति इति कुशलः" कुश ले भी आते हैं और अपना हाथ भी नहीं काटते अर्थात् जो संसार के सब काम भी करते हैं पर उसकी माया में बद्ध नहीं होते वे ही कुशल हैं । उनके इस भाव को ही कौशल या योग कहते हैं । इस कुश एकत्र करने की प्रणाली को संसार के कर्म-काण्ड के प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है । जो लोग संसार में अनासक्त, निर्लिप्त रहकर, फलाकांक्षा रहित हो संसार के सब कर्म सम्पादित कर सकते हैं, वे ही योगी हैं । जो लोग संसार में कर्म करते हुए, संसार की चोटों से घायल हो जाते हैं वे संसारी हैं और जो संसार को दुःख, कष्ट, बन्धन का कारण समझकर संसार से दूर रहते हैं और दूसरों के कर्मफल के ऊपर निर्भर करते हैं वे भिक्षुक या संन्यासी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । कहना न होगा कि यहाँ गीतोक्त संन्यासी की बात न कहकर साधारण वेशधारी संन्यासियों का ही जिक्र किया गया है ।

"कर्म की निपुणता योग है" इस भाव से 'योग' शब्द कितने प्रकार से देश और भाव-राज्य के पतन के साथ नीचे गिर गया है और कितने विकृत अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा है, यह भी यहाँ पर विचारणीय है । वर्तमान समय में ऐन्द्रिजालिक कौशल (जादू आदि) भी योग का अंग समझा जाने लगा है । मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि की ओर ही आजकल के योगियों का विशेष ध्यान रहता है । किसी प्रकार की कोई अस्वाभाविक क्रिया दिखाने वालों को ही आजकल सब लोग योगी समझ लेते हैं, उनकी भक्ति करते हैं और ठगते हैं । ताबीज, कवच आदि के द्वारा जो लोगों के कर्म-फल को खण्डन करने का ढोंग करते हैं, जो बन्ध्या को पुत्र प्राप्ति की दवा देते हैं और रोगियों का रोग बिना चिकित्सा के ही दूर करने की बात करते हैं, वे भी आजकल योगी कहे जाते हैं और पूजित होते हैं । प्राचीन काल में जिनके हाथ ऊँचे रहकर भगवत्-कार्य करने में ही लगे रहते थे वे ही ऊर्द्धबाहु होते थे । आजकल जो लोग भगवदुद्देश्य की अवहेलना करके, प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके दोनों हाथों को निरन्तर ऊपर उठाकर सुखा डालते हैं, वे ही ऊर्द्धबाहु योगी माने जाते हैं ! प्राचीन समय में योगी धारणा, ध्यान, समाधि में इतने तन्मय हो जाया करते थे कि शरीर की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था, उनके बालों की जटाएँ बँध जातीं, शरीर पर धूल, मिट्टी आदि आकर जम जाती । आजकल उसकी जगह वड़ के दूध इत्यादि से तावड़तोड़ जटा बना ली जाती हैं और शरीर में मिट्टी, राख आदि मलकर योगी का स्वांग बना लिया जाता है और भोले लोग भी यह देखकर वशीभूत हो जाते हैं । बड़े-बड़े शहरों में जब घर के मालिक आफिस या बाजार चले जाते हैं तब जाने कितने पाखण्डी धूर्त योगी की पोशाक गेरुआ वस्त्र आदि धारणकर गृहस्थों के घर में जाकर भोली स्त्रियों पर अपना प्रभाव जमाकर छल, बल, कौशल से कितने प्रकार से धन ठगते हैं उस बात का ख्याल आने से मर्माहत होना पड़ता है । आजकल ऐसे धूर्त योगियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की संख्या और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गयी है कि इनके कारण वास्तविक योगियों ने लोकालय और प्रसिद्ध तीर्थों आदि से दूर जाकर रहना आरम्भ कर दिया है और गृहस्थ नकली योगियों द्वारा ठगे जा रहे हैं । भीतर से भगवत्प्राप्ति जनित ब्रह्मानन्द के नशे में विभोर न होकर आज के बने हुए योगी मदिरा, गाँजा, भाँग आदि नशीली चीजों को साधना का अंग कहकर उनका प्रचार करते हैं । यहाँ तक कि देवादिदेव महादेव के हाथों में भी उन्होंने संकोच छोड़कर अब सिद्धियों के बदले भाँग का लोटा और गाँजे की चिलम दे दी है ।

देश और लोगों के मनोभाव के पतन के साथ ही साथ सभी बातों में कुछ विकृति आ जाती है । वर्तमान समय में उसमें उचित संशोधन की आवश्यकता है । योगादि साधन-प्रणाली के अन्दर जब बहुत से उत्तम तत्व निहित हैं, उसकी सहायता से जब स्वास्थ्य-प्राप्ति, एकाग्रता-शान्ति, आनन्द-प्राप्ति, उन्नति-प्राप्ति, भगवद्-दर्शन, भगवत्-प्राप्ति जीव का कल्याण-साधन आदि कार्य सहज, सुन्दर और स्वाभाविक रूप से साधित होने की सम्भावना है, तब इस योग-साधन-प्रणाली का संशोधन करने, इसकी उन्नति का उपाय करने, इसकी शिक्षा देने तथा सर्वसाधारण के सामने योग के उदार मत और भाव उच्च आदर्श रखने की विशेष आवश्यकता है । यह सर्वसाधारण को समझा देना होगा कि वास्तविक योग क्या है ? वह कितने रूपों में विभक्त है ? उसकी साधन-प्रणाली क्या है ? किस तरह संसार के जीवों के हित-साधन में—उन्हें आनन्द प्रदान करने में इसका प्रयोग किया जा सकता है । कर्मयोगी किस प्रकार कर्म के रहस्य को समझकर अनासक्त, निष्काम, फलाकांक्षा से रहित होकर केवल भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म किया करते हैं, यह सुन्दर रूप से समझा देना होगा । ज्ञानयोगी इन्द्रियों को संयत करके, चित्त को शुद्ध और शान्त करके स्वरूप प्रतिष्ठ, आत्म भाव में स्थित होकर किस प्रकार समाधियोग द्वारा परमात्मा में तन्मय हुए रहते हैं, यह भी समझ लेना होगा ।

साधन-राज्य के योग-तत्व का अर्थ यही है कि हमारे भीतर भगवान की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम और आनन्द निहित है । हमारी कामना, वासना, आशक्ति, हमारी अज्ञानता, हमारे कुसंस्कार, हमारा स्वार्थ, आत्म-सुख की स्पृहा, अहंकार और प्रतिष्ठा का मोह आदि उस भगवत् शक्ति के विकास में बाधा पहुँचाते हैं । अतएव हम जितना ही इन सब बाधाओं से मुक्त, शुद्ध, शान्त, पवित्र होंगे उतने ही भगवत्-भाव हमारे अन्दर प्रकाशित होंगे और हम साधन-राज्य में सफलता प्राप्त करेंगे । इसका एकमात्र उपाय है निष्काम भाव से कर्मरत रहना ।

वस्तुतः गीता ने जिस "कर्म की कुशलता" को योग बताया है, वह एक ऐसा तत्व है जिसका उपयोग हर एक को अनिवार्यतः करना पड़ता है, शरीर और मन की रचना ही इस प्रकार हुई है कि उन्हें हर घड़ी काम में जुटा रहना पड़ता है । जब नींद में पड़कर हम सो जाते हैं तो भी शरीर एवं मन की भीतरी क्रियाएँ बराबर जारी रहती हैं, यदि एक क्षण के लिए भी यह रुक जाय तो बस मृत्यु ही समझिये । निद्रावस्था के अतिरिक्त शेष समय में शरीर की बाह्य क्रियाएँ भी जारी रखनी पड़ती हैं, शारीरिक और मानसिक भूखें ऐसी प्रबल हैं कि वे बलात् मनुष्य को कार्य करने के लिए खींच ले जाती हैं, उनसे बचने का न तो कोई उपाय है और न कुछ लाभ ।

कर्म का कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है । ऐसा कोई कर्म नहीं जो निष्फल जाता हो, निश्चय पूर्वक उसका परिणाम उपस्थित होता ही है । मनुष्य को प्रकृति के नियमों की अभी बहुत ही कम जानकारी हुई है, उस अधूरी जानकारी के आधार पर यह पता लगाना कठिन है कि इस कार्य का निश्चय पूर्वक यही फल होगा । नदी में तैरने के लिए एक तैराक कूदता है और सोचता है कि मैं तैरता हुआ दूसरे किनारे पर पहुँच जाऊँगा पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह अपने प्रयत्नों में सफल न होकर बीच में ही डूब जाय और दूसरा किनारा प्राप्त न हो सके । एक व्यापारी लाभ कमाने के लिए व्यापार करता है पर यह भी सम्भव है कि कोई ऐसे कारण उपस्थित हो जायें कि लगाई हुई पूँजी भी हाथ से चली जाय । एक डॉक्टर रोगी को रोग मुक्त करने लिए बहुत मनोयोग के साथ चिकित्सा करता है पर यह सम्भव है कि रोग उलटा बढ़ जाय या रोगी की मृत्यु हो जाय ।

हजारों वर्ष से मनुष्य जाति जो अनुभव एकत्रित करती चली आ रही है, उसके आधार पर यद्यपि बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंशों में यह मालूम हो गया है कि अमुक प्रकार के कामों का परिणाम अमुक प्रकार का होता है, जैसे पाप का फल दुःख तथा पुण्य का फल सुख होना जान लिया गया है तो भी ऐसे प्रसंग आते देखे गए हैं कि पाप से सुख और पुण्य से दुःख मिलता है । ऐसे अवसरों पर बुद्धि को विचलित करने की जरूरत नहीं है, कारण यही है कि अभी हर एक कर्म विषयक की एक मोटी रूपरेखा ही मालूम हो सकी है उसमें जो छोटी-छोटी बारीकियाँ और पेचीदगियाँ हैं उनका ठीक-ठीक ज्ञान अभी भी प्राप्त नहीं हुआ है आगे चलकर शायद मानव बुद्धि कर्मफल विषयक उन सूक्ष्म रहस्यों का भी पता लगा ले जो अभी तक बहुत ही उलझे हुए और रहस्यमय बने पड़े हैं ।

दो-चार दिन के अभ्यास से कोई व्यक्ति मोटर चलाने की क्रिया जान लेता है और उन मोटे नियमों तथा चलाने बन्द करने के पुर्जों का परिचय प्राप्त करके मोटर को चला ले जा सकता है और निश्चित स्थान पर लेकर पहुँच सकता है, परन्तु यदि मशीन के किसी भीतरी भाग में कोई ऐसी बारीक खराबी उत्पन्न हो जाय जिसके कारण मोटर बीच में ही रुक जाय तो नौ सिखिये ड्राइवर के लिए एक बड़ी उलझन भरी बात होगी । वह सोचेगा कि मैंने चलाने का जो ज्ञान प्राप्त किया है वह कहीं झूठ तो नहीं है । वास्तव में उसका ज्ञान झूठा नहीं है वरन् अपूर्ण है, जितना कुछ उसने सीखा है वह तो ठीक है पर जो सीखना बाकी है वही कमी है, यदि वह ड्राइवर इंजन के बारीक कल पुर्जों के बारे में सारे नियमोपनियम जानता और खराबी को ठीक कर लेने के साधन उसके पास होते तो वह रास्ते में रुक गयी मोटर को सम्भाल लेता और नियत स्थान तक जा पहुँचता ।

उस नौसिखिये ड्राइवर की अवस्था में ही आज मनुष्य जाति है । उसे मोटे-मोटे नियम तो मालूम हैं कि ब्रह्मचर्य से आरोग्य वृद्धि होती है और वीर्य पात से स्वास्थ्य गिरता है, अधिकांश में यह नियम ठीक भी उतरता है पर ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं कि ब्रह्मचारी दुर्बल एवं अस्वस्थ रहें और व्यभिचारी लोहे के लट्ठे की तरह मजबूत, स्वस्थ और बलवान रहें । रजवाड़ों में हमने अनेक राजपूत ऐसे देखे हैं जिनके दर्जनों विवाहित और पच्चीसियों रखैलें रहती हैं, वे परले सिरे के व्यभिचारी हैं । एक-एक दिन में चार-चार बार वीर्यपात करते हैं, मद्य-माँस आदि स्वास्थ्य विरोधी वस्तुएँ खाते हैं फिर भी लोहे के लट्ठे की तरह स्वस्थ और मजबूत हैं । ऐसे उदाहरणों को देखकर ब्रह्मचर्य का खण्डन या व्यभिचार का मण्डन नहीं कर सकते, केवल इतना ही कह सकते हैं कि स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ अन्य ज्ञात, अज्ञात नियम भी हैं जिनके कारण ब्रह्मचर्य की उपयोगिता को पूर्णतः फलितार्थ होने में कभी-कभी बाधा उपस्थित हो जाती है । फिर भी, उपरोक्त विपरीत उदाहरणों के होते हुए भी ब्रह्मचर्य का ही समर्थन करना पड़ेगा क्योंकि अधिकांश में ब्रह्मचर्य की उपयोगिता साबित करने वाले ही उदाहरण पाये जाते हैं ।

कर्म करना जीवन का अनिवार्य नियम है । कर्म का फल अवश्य ही मिलता है, पर निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक कर्म का अमुक समय तक, अमुक प्रकार का फल प्राप्त हो ही जायेगा, उसमें अपवाद उपस्थित हैं और बहुत बड़े परिमाण में होते हैं । पुराने कर्म आगे फल देते हैं या अब के कर्म आगे फल देते हैं या ईश्वर की मर्जी ऐसी ही है या भाग्य का ऐसा ही लेखा है आदि इस प्रकार के अनेक उत्तरों से इन अप्रत्याशित घटनाओं का समाधान किया जाता है और किया जा सकता है, हम उनकी गहराइयों में नहीं उतरना चाहते । हमें तो यही कहना है कि कारण कुछ भी क्यों न हो पर प्रत्यक्ष बात यह है कि सदैव मन चाहे अवसर प्राप्त नहीं होते । ठीक तरह से निर्धारित नियमों का पालन करते हुए भी उसका फल कई बार ऐसा होता है कि भारी सन्देह, उलझन, गड़बड़, और बेचैनी उत्पन्न कर देता है । मानव जाति चाहती है कि ऐसा न हो, कोई ऐसे नियम मालूम हो जावें जो बिल्कुल खरे और अपवाद रहित निकलें । इस इच्छा की पूर्ति के लिए जी तोड़ परिश्रम हो रहे हैं, दिन-दिन प्रगति हो रही है, प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का धीरे-धीरे उद्घाटन हो रहा है, पर अभी तक जो कुछ प्राप्त हो सका है वह बहुत ही कम है, बहुत ही अपूर्ण तथा बहुत ही अपर्याप्त है । प्रकृति नियम रहित है, ऐसी बात नहीं ईश्वरीय शासन में अव्यवस्था नहीं है पर उस व्यवस्था का रहस्य बहुत ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुरूह होने के कारण 'नेति' कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है ।

जब कर्म फल इतना संदिग्ध और अनिश्चित है तो उस पर अवलम्बित रह कर कार्य करना अपने को दुःख और निराशा के समुद्र में धकेल देने के बराबर है । भगवान कृष्ण ने गीता में निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया है । वे कहते हैं कि फल की आशा छोड़कर कर्म करना चाहिए । इस कथन का तात्पर्य यह है कि काम तो मन लगाकर करो, पूरे उत्साह से करो पर फल की लालसा में उतावले मत बनो । कई व्यक्ति निष्काम कर्म का गलत अर्थ करते हैं उनका ख्याल होता है कि बिना विचारे, बिना आगा-पीछा सोचे, बिना हानि-लाभ का विवेक किए यों ही अन्धाधुन्ध काम करते जाना चाहिए और जो कुछ उल्टा-सीधा नतीजा निकले उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिए । यह अर्थ बिल्कुल गलत, असम्भव और मानव स्वभाव के सर्वथा विपरीत है । कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है बिना किसी लाभ की आशा से कोई मनुष्य कार्य को कैसे कर सकता है ? बिना किसी स्वार्थ के एक कदम भी किसी दिशा में नहीं उठ सकता, फिर यह सोचना मूर्खता है कि फल का विचार किए बिना कर्म किया जायेगा । यदि बिना समझे कोई काम शुरू भी किया जाय तो उसे उत्साह दृढ़ता के साथ विघ्न बाधाओं का मुकाबला करते हुए बराबर जारी रखना तो सर्वथा असम्भव ही समझना चाहिए ।

किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसके परिणाम के सम्बन्ध में भली प्रकार विचार करना चाहिए, खूब बारीकी के साथ हानि-लाभ का निरूपण करना चाहिए । यदि सब प्रकार उस कार्य का करना उचित और हितकारी जान पड़े तो ही उसे करने के लिए कदम उठाना चाहिए किन्तु जब उसे आरम्भ कर दिया जाय तो फल की लालसा में हर घड़ी लार टपकाते रहने की अपेक्षा उस कार्य-प्रणाली में इतना व्यस्त हो जाना चाहिए कि फल की ओर ध्यान ही न जावे । छोटे बालक आम की गुठली मिट्टी में गाड़ देते हैं उस पर जरा-सा पानी छिड़कते हैं, फिर दो-चार मिनट बाद ही उस गुठली को उखाड़ कर देखते हैं कि अभी उसमें से अंकुर निकला या नहीं ? वे चाहते हैं कि हमारी बोई हुई गुठली बहुत जल्द बड़ा भारी विशाल वृक्ष बन जाय, जिस पर मनों मीठे-मीठे फल लगें और हम उन्हें भर पेट खावें । फल की लालसा इतनी तीव्र होती है कि उन्हें एक-एक क्षण भारी पड़ता है । गुठली स्वाभाविक रीति से उपज कर विशाल वृक्ष का रूप धारण करे इतने समय तक प्रतीक्षा करने का धैर्य उनमें नहीं होता, इसलिए घण्टे दो घण्टे या एक दो दिन तो वे गुठली को उलट-उलट कर देखते हैं किन्तु निराश होकर उस मधुर फल खाने के स्वप्न को दुःख पूर्वक छोड़ देते हैं । कभी गुठली में दोष लगाते हैं या कभी पानी को कोसते हैं, कभी-कभी भाग्य पर टीका-टिप्पणी करते हैं, कभी अपने को अयोग्य ठहराते हैं । इसी प्रकार वे बालक दूसरा काम शुरू करते हैं और इसी क्रम से उतावली में उसे भी छोड़ देते हैं, यही क्रम चलता है उनके हाथ केवल असफलता और उससे उत्पन्न होने वाली निराशा तथा बेचैनी ही लगती है । अन्त में वे बहुत ही बेजार और किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं ।

फल की आशा पर निर्भर रहने वालों को ठीक इन बालकों का ही उदाहरण बनना पड़ता है । फल प्राप्त होने के लिए जो सुनहरी सुखद कल्पनाएँ बना रखी हैं यदि उनके चरितार्थ होने में विलम्ब लगता है तो इस उतावली में मनुष्य धैर्य को छोड़ देता है, अधीर होकर दूसरों पर दोषारोपण करता है, सिर धुनता है, हाथ मलता है, पछताता है, दुःखी होता है और न जाने क्या-क्या न करने योग्य करता है या करने की इच्छा करता है ।

कहते हैं कि लालच मनुष्य को अन्धा बना देता है । अन्धे को मार्ग नहीं सूझ पड़ता, जो आदमी प्रशंसा या यश उपार्जित करने के लिए छटपटा रहा है वह लालच के मारे न करने योग्य कार्यों को कर बैठता है और फिर उसका दुःखदाई परिणाम भोगता है । एक दम धनी बन जाने की इच्छा से लोग चोरी डैकती आदि भयानक कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं और फिर लोक-परलोक में दुःख भोगते हैं । लालच की लगन इतनी प्रबल होती है कि उसी में वृद्धि का अधिकांश भाग खप जाता है । सुखद कल्पनाओं के ख्याली महल बनाने में इतनी अधिक रुचि हो जाती है कि कार्य करने के तरीके में त्रुटि रहने लगती है, उनमें पूरा ध्यान और पूरी शक्ति का संयोग नहीं हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माता-जी। जितनी सावधानी रखी जानी चाहिए उतनी नहीं रह पाती, कार्य-प्रणाली में जो दोष आ गए हैं और काम में जो बिगाड़ होने आरम्भ हो गए हैं उन तक दृष्टि नहीं पहुँच पाती फलतः छोटा छिद्र बड़ा होकर एक दिन सारा गुड़ गोबर कर देता है ।

शेखचिल्ली की कहानी सबको मालूम है । वह चार पैसे की मजूरी करने चला था इन पैसों से अण्डा लूँगा, अण्डे से मुर्गी होगी, उसके बच्चे बढ़ेंगे, उनसे बकरी, फिर गाय, फिर भैंस लूँगा उसे बेचकर शादी करूँगा, बच्चे होंगे उन्हें खिलाते हुए 'उहुँक' कहकर दुत्कार दिया करूँगा, दुत्कारने की चेष्टा करते हुए शेखचिल्ली के सिर पर रखी हुई हाँडी गिर पड़ी । मजूरी मिलना तो दूर बेचारे पर बुरी तरह मार पड़ने लगी । हम लोग शेखचिल्ली पर हँसते हैं कि मूर्ख फल के लालच में इतना व्यस्त हो गया कि अपने काम की सावधानी भूल गया जिससे बच्चे खिलाने का स्वप्न तो दूर रहा उल्टे मार खानी पड़ी, परन्तु हमारा इस तरह का हँसना बेकार है क्योंकि प्रकारान्तर से करीब ऐसा ही हमारा आचरण होता है कि कार्य-प्रणाली में अनेक दोष और त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं परिणाम की जो इच्छा की जाती है उससे उल्टा नतीजा सामने आ जाता है ।

कर्मयोग का पूरा नाम निष्काम कर्मयोग है जिसका अर्थ होता है, फल की आशक्ति छोड़कर कर्म करना । यहाँ इस भेद को भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि इच्छा का नहीं आशक्ति का निषेध किया गया है । परिणाम की इच्छा के बिना तो कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता, स्वाभाविक इच्छा तो अवश्यम्भावी है और आवश्यक भी है । निषेध उस आशक्ति का है जिसके लोभ से कार्य-प्रणाली के गुण-दोषों की ओर से आँखें बन्द हो जाती हैं । दूसरे शब्दों में इस तथ्य को यों कहा जा सकता है कि भविष्य के मनसूबे बाँधते रहने की अपेक्षा वर्तमान काल को तत्परता पूर्वक उपयोग करो । कर्मयोग का सन्देश है कि आज के कार्य में पूरी तरह तन्मय हो जाओ, आज जो काम सामने पड़ा हुआ है उसे समस्त बुद्धिमत्ता, दिलचस्पी, सावधानी और मेहनत के साथ करो, उसमें इतने तत्पर हो जाओ कि कल की चिन्ता उसके सामने गौण हो जावे उसका ध्यान ही न आने पावे । इस प्रकार जब सम्पूर्ण इच्छा शक्ति के साथ आज का काम किया जायेगा तो निःसन्देह उसका फल आशातीत सफलता युक्त होगा ।

ऐसी बात नहीं कि निष्काम कर्म करने वाले को फल ही न मिलता हो । यह तो मिलना ही है, मिलकर रहेगा ही, कर्म निष्फल नहीं किया जा सकता । सच तो यह है कि निष्काम कर्म करने से कई गुना अधिक और अच्छा फल मिलता है । अधिक और उत्तम फल प्राप्त करने का एक वैज्ञानिक तरीका अनाशक्ति है, गणित के त्रैराशिक सिद्धान्त की तरह यह स्पष्ट है कि जब कल के मन्सूबे छोड़कर आज के कार्य पर जुट जाया जायेगा तो सारी शक्ति का एक ही ओर उपयोग होगा और जो कार्य अधिक शक्ति के साथ किया जायेगा वह अधिक फलदायक होगा । अनासक्त कर्म निःसन्देह अधिक प्राप्त करने का एक उत्तम तरीका है ।

दिलचस्पी को फल की उलझन में से निकाल कर कार्य-प्रणाली लगा देना, अपनी हर घड़ी को आनन्दमय बना लेना है । एक नौकर अपने काम पर जाते ही छुट्टी का समय गिनने लगता है, थोड़ी-थोड़ी देर बाद घड़ी देखता है कि कब यहाँ से छुटकारा मिलेगा उसका मन काम में नहीं लगता बार-बार जी ऊबता है, क्या इस तरीके से वह अपना अच्छा काम और पूरा कर सकेगा ? कदापि नहीं, इस नौकर के कामों का जरा निरीक्षण कीजिए वे बहुत ही अधूरे, भद्दे और खराब होंगे, कारण यह है कि उसने अपनी आधी शक्ति तो छुट्टी की प्रतीक्षा में गँवा दी, शेष आधी से तो आधा अधूरा काम ही हो सकता है । दिलचस्पी एक समय में दो स्थानों पर नहीं रह सकती, यदि छुट्टी में मन अटका है तो सामने का काम बेगार की तरह लगेगा, उसमें चित्त ऊबा रहेगा भार की तरह जो कार्य किया जा रहा है उसमें रस भला किस प्रकार आ सकता है ? ऐसा व्यक्ति छुट्टी के समय में प्रसन्न जरूर होगा किन्तु शेष समय को कुड़कुड़ाते हुए आनन्द रहित व्यतीत करेगा ।

दूसरा नौकर इसके विपरीत स्वभाव का है, उसे अपना काम खेल की तरह मनोरंजक प्रतीत होता है, पूरी दिलचस्पी के साथ अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उस काम में ही पूरा आनन्द लेता है और इतना तन्मय हो जाता है कि छुट्टी के समय की ओर ध्यान भी नहीं देता । ठीक समय पर छुट्टी इस नौकर को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी मिलेगी साथ-साथ चौगुना आनन्द भी प्राप्त होगा । (१) काम के घण्टे आनन्द और मनोरंजन के साथ बीत जायेंगे, (२) काम इतना बढ़िया होगा कि देखने वाले प्रशंसा करेंगे और आदर देंगे, (३) अपनी योग्यता, बुद्धि और शक्ति सतेज होगी, (४) मालिक खुश रहेगा पुरस्कार और तरक्की देगा । बस, ठीक यही अनासक्त कर्म का रहस्य है । छुट्टी की प्रतीक्षा में उलझा रहने वाला नौकर आशक्ति के कारण अपने को उद्विग्न रखता है, काम खराब करता है, अयोग्य बनता है, असफल रहता है । निन्दा का पात्र बनता है और हानि उठाता है, किन्तु काम में दिलचस्पी लेने वाला अनासक्त नौकर चौगुना फायदा कर लेता है । यही कर्म कौशल है, इसी क्रिया-कुशलता को गीता ने कर्मयोग का सुन्दर नाम दिया है ।

यह पहले बताया जा चुका है कि सदा ही इच्छित फल प्राप्त नहीं होता, किसी अज्ञात कारण से ऐसे अवसर आ सकते हैं कि प्रयत्न करते हुए भी इच्छित फल न मिले वरन् उसका उल्टा परिणाम उत्पन्न हो जाय, ऐसी दशा में जो व्यक्ति मुद्दतों से आशाओं के महल बनाये बैठा है उसका दिल टूट जायेगा, निराशा का एक भारी झटका लगेगा और उस शोक में सम्भव है अपनी बुद्धि या तन्दुरुस्ती या जिन्दगी गँवा बैठे । अपने प्रियजन की मृत्यु पर, धन या प्रतिष्ठा नष्ट होने पर, अनेक व्यक्ति आत्म हत्या करते, पागल होते, बीमार पड़ते देखे गए हैं । शोक का इतना गहरा घाव उन्हें लगता है जो इन वस्तुओं में अतिशय आसक्त होते हैं । जिन्हें इतना ज्यादा मोह नहीं होता उन्हें गहरी व्यथा भी नहीं होती, वे बड़े-बड़े झटकों को आसानी से सह लेते हैं । राजा हरिश्चन्द्र का ऐसा ही उदाहरण है, राज्य के चले जाने, स्त्री के बिक जाने, पुत्र के मर जाने पर भी वह मरघट में अपने कर्तव्य पर ठीक तरह डटे रहे । हजारों वर्ष बीत जाने पर भी उनका आदर्श ज्यों का त्यों जीवित है ।

अनासक्त कर्मयोग की उपासना करने वाला व्यक्ति सांसारिक पंच भौतिक वस्तुओं की नश्वरता को गम्भीर दृष्टि से देखता है और अनुभव करता है कि यह सारे दृश्य पदार्थ गतिवान् हैं, यह उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान को चलते हैं और नष्ट हो जाते हैं । किसी को आज किसी को कल नष्ट होना है, इस नाशवान गतिशीलता को भली प्रकार ध्यान में रखते हुए वह किसी को न तो अपनी समझता है और न किसी पर मालिकी गाँठता है, जो वस्तुएँ उपयोग के लिए मिली हुई हैं उनको ठीक तरह काम में लाता है और अपनी जिम्मेदारी उनके प्रति निवाहता है फिर भी मोह ममता में नहीं फँसता । यदि कोई प्यारी से प्यारी वस्तु नष्ट हो जाय तो वह अपने को शोकार्त नहीं होने देता वरन् अपने को सम्भाल लेता है, मन को समझा लेता है । जो क्रम संसार की समस्त वस्तुओं के ऊपर लागू हो रहा है, वही यदि अपने निकट वाली वस्तु के ऊपर भी लागू हो जाय तो इसमें आश्चर्य, क्षोभ या व्यथा की कौन-सी बात है ? अतीत काल से नित्य असंख्य मनुष्य मरते आ रहे हैं फिर यदि अपना कोई प्रिय जन आज मर जाता है तो इसमें छटपटाने की क्या बात है ? इसी प्रकार धन, यश, स्वास्थ्य जैसी अस्थिर वस्तुएँ डाँवाडोल हो जाती हैं तो 'हाय-हाय' करने का क्या कारण है ?

कर्मयोगी इन सब तथ्यों को समझता है, इसलिए हानि-लाभ की उलट-पलट को देखकर वह विचलित नहीं होता वह दोनों की परवाह नहीं करता । परवाह करने योग्य एक ही बात उसे प्रतीत होती है, वह है अपना कर्तव्य कर्म । अपनी ड्यूटी ठीक तरह अदा करता हूँ यही एक बात उसके सन्तोष के लिए पर्याप्त है । अपने आनन्द को वह दूसरों के हाथ बेच नहीं देता, वरन् अपनी मुट्ठी में रखता है । अमुक फल मिलना अपने हाथ की बात नहीं, वरन् दूसरों के हाथ की बात है फिर ऐसा आधार क्यों पकड़ा जाय कि जब दूसरे की कृपा प्राप्त हो तब सुख मिले और जब दूसरा पक्ष चुप ही रहे या विपरीत उत्तर दे तो दुःख में बिलखें । यह तो पराधीनता का बन्धन हुआ, भाग्य के, प्रारब्ध के, ईश्वर के, धनी के, समर्थ आदि किसी के भी आश्रित आप क्यों बनें । अच्छा यह है कि आप स्वाधीन रहें । अपनी स्वतन्त्रता किसी के हाथ न बेचें । फल न सही, कर्म करना तो अपने हाथ में है या कर्म में ही सन्तुष्ट रहिये उसी में आनन्द ढूँढ़ निकालिए । फल की प्रतीक्षा में मुद्दतों तक बैठना पड़ता है पर कर्म तो आप आज भी कर रहे हैं, अभी भी कर रहे हैं, फिर क्यों न अपने को आज से ही अभी से ही आनन्दित रखना आरम्भ कर दिया जाय ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबसे बड़ा आध्यात्मिक लाभ इसमें है कि अन्तः चेतना सांसारिक विषयों में लिप्त नहीं होती और जीव भव बन्धन में नहीं पड़ता । फलाशा में मोह—आकर्षण होता है इसलिए उसका ध्यान बहुत काल तक उत्सुकता पूर्वक बना रहता है । यह उत्सुकता एक प्रकार के गहरे संस्कार के रूप में जम जाती है और जीव को मृत्यु के उपरान्त फिर भी अपनी ओर खींच लाती है । जड़ भरत की कथा ऐसा ही उदाहरण है उन्हें एक मृग में मोह हो जाने के कारण स्वयं मृग बनना पड़ा था । गढ़े हुए धन के मोह में जिनका प्राणान्त होता है वे दूसरे जन्म में सर्प बनकर उस धन की चौकीदारी करते हैं । इसी प्रकार जो जिस प्रसंग में अत्यधिक मोहित एवं तल्लीन हैं उसे अगले जन्मों में उसी क्षेत्र में जन्म के लिए विवश होना पड़ सकता है, उस आसक्ति का आकर्षण निकृष्ट मार्ग पर घसीट ले जा सकता है, मुक्ति में, ईश्वर की प्राप्ति में, आत्मोन्नति में यह भारी बाधक हो सकती है इसलिए कर्मयोग की साधना में अलिप्त रहने की व्यवस्था की गयी है । कमल की बेल पानी में रहती है पर उसके पत्ते जल की सतह से सदा ऊँचे रहते हैं उसमें डूबते नहीं, कर्मयोगी का यही आदर्श होना चाहिए । संसार में रहकर अपने सामने आये कर्मों को पूर्ण मनोयोग के साथ करना चाहिए पर उनमें मोहित नहीं होना चाहिए । यह तभी सम्भव है जब फल की आशा में तल्लीन न होकर कर्तव्य में ही सन्तुष्ट रहा जाय ।

कर्म में दिलचस्पी रखना एक सात्विक और स्वाभाविक वृत्ति है इसमें मोह का अंश नहीं है । हल जोतने, घास खोदने, लिखने, तोलने आदि क्रियाएँ दिलचस्पी से करने पर वे मनोरंजन, मन बहलाव या आत्म तुष्टि का कारण होंगी । यदि खेती की आमदनी की लम्बी चौड़ी प्रतीक्षा नहीं है तो हल जोतना खेल की तरह एक रुचिकर मनोरंजन होगा, इसमें बन्धन में पड़ने का अवसर न आयेगा । जो व्यक्ति फल को छोड़कर कर्म में ही निर्लोभ आनन्द लेते हैं वे माया के बन्धन में नहीं पड़ते, उनके चित्त पर बन्धनकारी का जमाव नहीं होता, फलस्वरूप आवागमन की फाँसी से सहज ही उन्हें छुटकारा मिल जाता है ।

जिसको नित्य हल चलाने का काम करना है उसे उसको ठीक तरह सीख लेना चाहिए, वरना सम्भव है कि हलकी फाल टेड़ी होकर बैल का पैर फाड़ दे या अपने को कुछ नुकसान हो जाय । जिसको नित्य कर्म करना है उसे कर्म की कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए अन्यथा सम्भव है कि सुख करते दुःख खड़ा हो जाय । कर्मयोग इसी कुशलता का नाम है, जो इस प्रकार कला पूर्ण ढंग से काम करना जानता है कि किए हुए काम का फल उल्टा न निकले वही कर्मयोगी है । हमें सबको कर्मयोग का अभ्यास करना ही चाहिए यह हमारे लिए इतना ही जरूरी है जितना लेन-देन करने वाले को हिसाब-किताब जानना ।

अपने पर आप भरोसा रखकर आगे बढ़िये

जीवन को उन्मुक्त होकर संसार की लहरों में बहने दीजिए । कभी लहर आप पर होकर गुजरेगी, कभी आप लहरों पर उतरायेंगे, लेकिन समुद्र की गोद में उसकी तरंगों से खेलने का साहस—आत्म विश्वास आप में जागृत होगा । जो अकेलेपन अथवा डूब जाने के भय से पानी में उतरता ही नहीं, जो इस सोच-विचार में पड़े रहते हैं कि क्या करूँ ? कैसे करूँ ? मैं कैसे मंजिल तक पहुँचूँगा ? वे कुछ भी नहीं कर पाते, उनका विश्वास मर जाता है । उनका जीवन निष्प्राण हो जाता है । कोई तेज, चेतना नहीं रहती उनमें व्यापार में, अध्ययन में, किसी कार्य विशेष में लगने से पूर्व जिनके संकल्प अधूरे रहते हैं, जो संशय में पड़े रहते हैं, वे कोई बड़ा काम नहीं कर पाते और कुछ करते हैं तो उनमें असफल ही होते हैं, जिसके कारण उनका रहा सहा विश्वास भी नष्ट हो जाता है ।

आत्म विश्वास की ज्योति प्रज्ज्वलित करने के लिए इस कार्य में प्राण पण से जुट जायें जो आपको हितकर लगता है, जिसे आप अच्छा समझते हैं उस काम को अपने जीवन का, स्वभाव का एक अंग बना लें, इससे आपके विश्वास को बल मिलेगा । लेकिन इस मार्ग में एक खतरा है वह है—सफलता, असफलता में अपना सन्तुलन खो बैठना । इसके लिए आवश्यक है कि आप सफलता असफलता को गौण मान कर उस कार्य को प्रधान मानें । आप उसे किस तरह करते हैं, इसको महत्त्व दें । सफलता में हर्षातिरेक और असफलता में निराशा दोनों से बचने के लिए आप उन्हें महत्त्व ही न दें । हाँ सफलता मिलती है तो उससे उत्साहित होकर और असफलता से सीख लेकर अपने पथ पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरन्तर आगे बढ़ते रहें । कर्म की यह निरन्तर साधना ही आप में विश्वास का अखिल स्रोत खोज निकालेगी ।

व्यर्थ की शंका विघ्न विचारों को मन से निकाल फेंकिए । इनसे आपका आत्म-बल गिरेगा । मस्तिष्क की आविष्कारक शक्ति नष्ट होगी और फिर विश्वास का कोई आधार ही न रहेगा । अतः अपने को अभागा समझेंगे । आप अपने आपको जैसा समझेंगे, वैसी ही प्रतिक्रिया संसार में होगी और संसार उसी के अनुसार आपको मार्ग देगा । अपने आपको अभागा, दीन हीन, मलीन समझने वालों के लिए संसार में कोई स्थान नहीं है, उन्हें एक ओर ढकेल दिया जाता है ।

अपने आपको भाग्यशाली, महत्त्वपूर्ण समझने वाले को संसार भी रास्ता देता है । यह भावना हृदय में कूट-कूट कर भर लें कि आपको किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए धरती पर भेजा गया है । आप अवश्य उस काम को करें । इसी महान श्रद्धा के बल पर आप क्या से क्या बन सकते हैं । इसी तरह के किसी महान आदर्श को, मिशन को अपनी श्रद्धा का आधार बनावें और इस तरह की बलवती श्रद्धा आपके विश्वास को परिपुष्ट करेगी ।

जीवन का सबसे बड़ा श्रेय साधन कर्म कौशल

जीवन की सफलता के सम्बन्ध में कई व्यक्तियों की कई मान्यताएँ पायी जाती हैं । कुछ लोग सम्पत्तिवान होने को जीवन लाभ मानते हैं और सोचते हैं जितना अधिक धन मिल सके उतने ही अधिक सुविधा साधन मिलेंगे और दूसरों को आकर्षित करने अथवा दबाने का अवसर मिल जायेगा । उसका संचय इसलिए किया जाता है कि सम्पत्ति सुख का लाभ जीवन भर अपने को मिलाता रहे और उत्तराधिकारी उसी सुविधा का उपभोग करते रहें ।

कुछ को ख्याति बहुत प्रिय होती है । अपनी जानकारी जितने अधिक लोगों को हो उतना अच्छा, यह सोचकर वे कुछ ऐसी तरकीबें लड़ाते हैं जिससे उनके नाम की चर्चा दूसरों के मुख से होती रहे । विवाह शादियों की धूमधाम में यही लिप्सा काम करती है । कई व्यक्ति संस्थाओं में पदाधिकारी बनने की फिराक में इसीलिए रहते हैं कि उन्हें बहुत लोग जानेंगे । वक्ता, गायक, नेता, अभिनेता बनने का शौक बहुतों को होता है इसमें भी ख्याति की छिपी कामना ही लोक-सेवा का आवरण ओढ़कर सामने आती है । कइयों से कुछ नहीं बनता तो भूत-प्रेतों का पाखण्ड रचने से लेकर गुण्डागर्दी मचाने जैसे निकम्मे तरीके अपनाते हैं । शृंगार सज्जा में भी प्रायः यही प्रवृत्ति काम कर रही होती है । धनी लोग अपनी ख्याति के लिए इमारतें बनाते हैं । तीर्थयात्रा, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मभोज आदि के उत्सव करते देखे जाते हैं ।

कइयों को शक्तिवान होने के पद पाने की अभिलाषा रहती है ताकि अपने नियन्त्रण में औरों को रख सकें और अपना वर्चस्व सिद्ध कर सकें । नाम छपाना भी एक नशा है । योग्यता न होते हुए भी कई लोग लेखक, सम्पादक बनते हैं । जहाँ-तहाँ से जोड़ गाँठ करके किसी तरह अपनी आकांक्षा तृप्त करते हैं ।

ऐसे-ऐसे अनेकों और भी उपाय हैं जिनमें दूसरों की आँखों में अपना मूल्यांकन कराने की, दूसरों की जीभ से अपनी चर्चा प्रशंसा सुनने की अपेक्षा की जाती है । यह साधन साध्य होने से सरल तो है पर स्थिर नहीं । जिनके पास चतुरता, फुरसत और सम्पत्ति मौजूद है वे कितने ही उपायों से बड़प्पन खरीद सकते हैं । इस कार्य में उन्हें थोड़े प्रलोभन के मूल्य पर खरीदे हुए चमचे भी मिल जाते हैं और काम किसी न किसी हद तक बन ही जाता है । ईमानदारी या बेईमानी से कुशल व्यक्ति पैसा भी कमा लेते हैं । लोकसेवी या धर्मात्मा का आवरण ओढ़ लेना इन सबसे सरल है ।

इन उपायों से उपलब्ध की गयी सफलता बाहरी होती है । उसके लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है । दूसरे तो दूसरे ही हैं उनकी मति न तो स्थिर होती है और न यही पता चलता है कि जैसा दर्शाया जा रहा है वैसा ही उनका भीतरी मन भी है या नहीं । लोक चर्चा बहुत ही उथली होती है । उसका प्रवाह उलटने में भी देर नहीं लगती । मात्र अफवाहें तो उस उथले उपार्जन को हल्के तिनके की तरह उड़ाकर कहीं से कहीं ले जा सकती हैं । फिर जनता की स्मृति इतनी उथली होती है कि पीठ फेरते ही औरों की बातें विस्मरण हो जाती हैं । असल में हर व्यक्ति अपने निजी कार्यों और झंझटों में इतना अधिक व्यस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है कि उसे दूसरों की निन्दा प्रशंसा में कोई गहरी दिलचस्पी नहीं होती । सामने की बातों पर या घटनाओं पर हल्की-सी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के उपरान्त हर आदमी अपने काम में लग जाता है । ऐसी दशा में दूसरों के प्रशंसा-प्रमाण पत्र बादल की छाया जैसे होते हैं । इनसे बालकौतुक भरा पूरा होता है; जीवन की सफलता जैसे महान प्रयोजनों की पूर्ति में उससे कोई सन्तोषजनक सहायता नहीं मिलती ।

आत्मसन्तोष ही सफलता का सबसे बड़ा लक्षण है और वही अन्तरंग के साथ रहता है । उसी का अभिमत वास्तविक होता है और चिरस्थायी भी । आत्म-तृप्ति और आत्म-तुष्टि इसी के सहारे सम्भव है । यह सन्तोष कैसे पाया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर एक ही है कि अपने क्रिया-कलापों में अधिकतम आदर्शवादिता का समन्वय किया जाय । अपने दैनिक कामों में तत्परता, कलाकारिता और उत्कृष्टता का इतना अधिक समन्वय किया जाय कि वे दूसरों को भले ही सामान्य दिखें, पर अपने आपको उसकी विशिष्टता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती रहे । सुबासित, सुन्दर पुष्पों का गुलदस्ता आँखों के आगे रहता है तो बहुत सुहावना लगता है । अपने कामों का स्तर इतना ऊँचा होना चाहिए कि उनकी श्रेष्ठता से अन्तःकरण निरन्तर पुलकित होता रहे ।

जीवन की सफलता की बात यदि गम्भीरता से सोची गयी है और उसके लिए सच्चे मन से प्रयास करने का उत्साह उठा हो तो उसकी योजना एक ही बनानी चाहिए कि अपने दैनिक कामों का स्वरूप और स्तर ऊँचा उठा दिया जाय । स्वरूप से तात्पर्य यह है कि वह अनैतिक और सार्वजनिक हित विरोधी नहीं होना चाहिए । मद्य-माँस जैसे व्यवसाय करने पड़ते हों, अनैतिक प्रवृत्तियों में संलग्न क्रिया-कलाप में नौकरी करनी पड़ रही हो तो उसे बदलने का प्रयत्न करना चाहिए । श्रम ऐसे कामों के लिए किया जाय जिनके फलस्वरूप दुष्प्रवृत्तियों के पनपने में सहायता न मिलती हो । इसके उपरान्त परिस्थितिवश जो भी काम करने पड़ें उन्हें सामान्य असामान्य का भेद-भाव किए बिना उत्साहपूर्वक करना चाहिए । अमुक काम समाज में सम्मानित समझा जाता है, अमुक को छोटे लोगों का माना जाता है । इस झंझट में पड़ने की आवश्यकता नहीं है । काम न कोई छोटा है न बड़ा । अपने-अपने स्थान पर सभी की उपयोगिता है । सम्मानित कहलाने वाले काम ही यदि सब लोग करने लगें, सभी मेज, कुर्सी का काम तलाश करें तो फिर खेतों और कारखानों में होने वाले उत्पादन के अभाव में सर्वत्र भुखमरी फैल जायेगी । परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप जहाँ जो काम मिल सकें उन्हें ही अपनाया जा सकता है । सम्मानित काम ढूँढ़ने के लिए बैठे रहना सर्वथा अनुपयुक्त है ।

आजीविका के लिए किए जाने वाले कामों में जितना समय लगता है प्रायः उतना ही शरीर और परिवार की व्यवस्था में भी लग जाता है । यह निजी कहलाने या नित्य कर्म समझे जाने वाले क्रिया-कलाप भी आखिर काम ही हैं । आवश्यक नहीं कि जो आजीविका के लिए किया जाय उसी को काम की संज्ञा दी जाय । परमार्थ प्रयोजनों से लेकर भजन, उपासना के कृत्य भी अपने-अपने ढंग के काम ही हैं इन्हें करने की प्रक्रिया और दृष्टि समुन्नत होनी चाहिए, यह समावेश हो जाने से छोटे काम भी कर्मयोग की संज्ञा में गिने जाने योग्य बन जाते हैं ।

काम साधारणतया थकान उत्पन्न करता है । उसमें शक्ति व्यय होती है । अस्तु हर कोई श्रम से बचना और आराम से समय काटना चाहता है । किन्तु यदि उसे खेल मान लिया जाय तो उसे जितना भी किया जाय प्रसन्नता मिलती जायेगी और उत्साह बढ़ता जायेगा । बच्चे उठने से लेकर सोने तक खेलते रहते हैं । इसमें उन्हें कितनी उछल-कूद करनी पड़ती है इसका लेखा-जोखा लिया जाय तो शरीर के अनुपात को देखते हुए वह लगभग उतना ही हो जाता है जितना कि किसी श्रमिक को आठ घण्टे की मजूरी में करना होता है । इतने पर भी बच्चों में थकान और उदासी के कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ते । काम को भार या पराया समझकर उदास मन से किया जाता है तो ही वह भारी पड़ेगा अन्यथा विनोद की तरह किए गए कामों में जितनी शक्ति खपती है उतनी ही विनोद के कारण दूसरी ओर से मिलती भी जाती है । डायनेमो और बैटरी का परस्पर सम्बन्ध बन जाय तो बैटरी डायनेमो को चलाती है और डायनेमो बैटरी चार्ज करता है इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक बने रहते हैं । किसी की भी शक्ति चुकने नहीं पाती ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मनिष्ठ होने का गौरव प्राप्त करना अन्य सभी सफलताओं से बढ़कर है । काम यदि ईमानदारी और दिलचस्पी के साथ किया जाय तो उसका स्वरूप और परिणाम ऐसा सुन्दर एवं सुखद होता है जिस पर सहज ही गर्व किया जा सके । बेगार भुगतने की तरह हाथ के काम को किसी तरह निपटाने से निश्चित रूप से आधा-अधूरा, काना-कुबड़ा ही बन सकेगा, किन्तु उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर अपनी सारी कुशलता को दाब पर लगा दिया जाय तो उपलब्धि इतनी सुन्दर होगी जिसके लिए हर किसी की जीभ से प्रशंसा के स्वर ही निकलेंगे । ऐसे कार्य नयनाभिराम होते हैं, उनसे दूसरे प्रेरणा लेते हैं, अनुकरण का उत्साह प्राप्त करते हैं तथा जो भूल करते थे उसे सुधारते हैं ।

दूसरों को कई तरह की नसीहतें देने के लिए कई लोग कई तरह की योग्यताएँ प्राप्त करते हैं । कई प्रकार की कलाएँ सीखते और विशेषताएँ बढ़ाते हैं । यह सब भी ठीक ही है, किन्तु यदि काम को तन्मयता, तत्परता कुशलता के साथ किया जा सके तो यह जन-साधारण को सिखाने के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धर्मोपदेश है । अधर्म का निवारण और धर्म का अवधारण बहुत ही अच्छी बात है, किन्तु उससे भी पहला कदम यह है कि आदमी अपना काम ऐसी अच्छी तरह सम्पन्न करे जिसमें व्यक्तित्व को गौरवान्वित करने और अच्छे काम का समुचित प्रतिफल पाने का अवसर प्राप्त हो सके । इसमें व्यक्ति और समाज दोनों का तात्कालिक हित साधन होता है । अतएव उसे भी धर्म धारणा में ही सम्मलित किया जा सकता है । सही काम करने की नसीहत ऐसी है जिसे धर्म अध्यात्म सिखाने की तरह ही श्रेयस्कर माना जा सकता है । यह शिक्षण वाणी से नहीं, अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने से ही सम्पन्न होता है । अपनी कृति दिखाकर दूसरों को जितनी अच्छी तरह प्रभावित किया जा सकता है, उतना और किसी प्रकार नहीं ।

सफलताएँ किसी भी क्षेत्र की क्यों न हों वे उत्कृष्ट स्तर के श्रम से ही मिलती हैं । बिना पुरुषार्थ किए आसमान से किसी के भी गले में विजयश्री की माला नहीं पड़ती । अभीष्ट कुछ भी क्यों न हो उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ तो करना ही होगा । सामान्य काम और पुरुषार्थ में इतना-सा ही अन्तर है कि एक को किसी प्रकार उदास मन से निपटा दिया जाता है और दूसरे के लिए यह ध्यान रखा जाता है कि अपनी किसी कृति में घटियापन न रह जाय । उसका स्तर हलका रह जाने से अपने को शर्मिन्दगी न उठानी पड़े । जिसे इस प्रकार से काम करने का अभ्यास हो गया, उसे हर दिशा में सफलता ही मिलती चली जायेगी ।

जीवन खाने-सोने में दिन बिताने को नहीं कहते, उसका मूल्यांकन मनुष्य की कृतियों से होता है । ऐतिहासिक महामानवों की गरिमा उनकी कृतियों के आधार पर ही बनी है । उनके काम सामान्य श्रमिकों जैसे नहीं हुए होते वरन् जो करते हैं उसमें ईमानदारी, जिम्मेदारी और बाहरी श्रमशीलता का समावेश रहा होता है । अन्य सफलताएँ मात्र पुरुषार्थ पर निर्भर नहीं रहतीं, किन्तु कर्मनिष्ठा की दृष्टि से गौरवान्वित हो सकना हर किसी के लिए सम्भव है ।

कर्म, योग स्तर का हो, इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं—प्रथम तो कर्म के प्रति प्रेम होना चाहिए, द्वितीय उस व्यक्ति के प्रति प्रेम होना चाहिए, जिसके लिए कार्य किया जा रहा हो । यदि कर्म के प्रति प्रेम हो, पर उसके निमित्त कारण व्यक्ति के प्रति श्रद्धा न हो, तो किया गया कार्य स्तरीय न होगा और वैसा प्रतिफल उत्पन्न न कर सकेगा, जिसकी आशा-अपेक्षा की गयी है । इसी प्रकार यदि व्यक्ति के प्रति श्रद्धा हो, किन्तु कार्य के प्रति निष्ठा न हो, तो भी कार्य सन्तोषजनक न हो सकेगा । इसके लिए निष्ठा और श्रद्धा दोनों तत्वों का साथ-साथ होना नितान्त आवश्यक है ।

अस्पताल में नर्स और मरीज दोनों होते हैं । नर्स का कार्य बीमारों की सेवा-सुश्रूषा करना होता है । इसमें उसे रस भी आता है, पर जिस रोगी की परिचर्या में वह लगी हो, उसके प्रति श्रद्धा न हो, घृणा उपजती हो, तो क्या वह उसकी सेवा उसी लगन से कर सकेगी, जैसी अपने स्वजन सम्बन्धियों, परिवार-कुटुम्बियों की करती है ? कदाचित नहीं । चूँकि रोगी की देख-भाल करना उसकी स्वयं की जिम्मेदारी के अन्तर्गत है, अतः यहाँ वह मात्र खानापूर्ति के लिए कार्य करेगी और जैसे-तैसे कर उसे किसी प्रकार निबटाना चाहेगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसके विपरीत किसी माँ का पुत्र जब बीमार पड़ता है, तो उसकी सेवा में वह रात-दिन एक कर देती है । चूँकि परिवार की परिचर्या करने में माँ को मजा आता है और पुत्र उसका सबसे प्रिय होता है, अतः इस दौरान वह दारुणा-से-दारुण दुःख और बड़े-से-बड़ा कष्ट हँसते-हँसते सह लेती है । यदि इस समय उस माँ से कोई यह जाकर कहे कि आपने बहुत कष्ट उठाये । अब आप आराम कीजिए । बच्चे की देख-भाल मैं करता हूँ, तो शायद ही माँ इसके लिए तैयार हो, क्योंकि बेटा हर माँ का सबसे प्रिय पात्र होता है, अस्तु इस स्थिति में वह किसी भी हालत में बेटे से विलग होना पसन्द न करेगी, भले ही उसे इस मध्य कितनी ही रातें जागनी और कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, वह सरलतापूर्वक सब कुछ झेल लेती है ।

उपरोक्त उदाहरणों में दोनों कार्य एक ही प्रकार के हैं, पर एक में कर्त्ता के लिए वह भारभूत बन जाता है, जबकि दूसरे में सन्तोषजनक सिद्ध होता है । एक कार्य की दो प्रकार की परिणतियाँ हैं । इस अन्तर के लिए एक ही कारक जिम्मेदार है—वह है सेविका का बीमार के प्रति प्रेम का भाव । निश्चय ही यह 'तत्व' अच्छे परिणाम के लिए आवश्यक है ।

ऐसे ही यदि "कार्य के प्रति समर्पण" पर विचार करें, तो ज्ञात होगा कि कार्य में आनन्दानुभूति के लिए यह तत्व भी उतना ही आवश्यक है, जितना श्रद्धा तत्व, और क्रिया का परिणाम उत्कृष्ट स्तर का तभी होता है, जब उसमें मन रम जाय । मन नहीं रमने से कार्य बोझ-सा और नीरस प्रतीत होता है । जिस पिता को पाठ पढ़ाना-समझाना अरुचिकर लगता हो, उससे यदि उसका पुत्र कोई प्रश्न पूछ बैठे, तो वह उसका उत्तर लगन और मनोयोगपूर्वक न दे सकेगा व जैसे-तैसे समझा कर उससे पिण्ड छुड़ाने की कोशिश करेगा । यद्यपि पिता का पुत्र से अगाध प्रेम है, पर पढ़ाने सम्बन्धी कार्य उसकी अभिरुचि का नहीं है, अतः वह उसे भार-सा महसूस होगा । इसके विपरीत प्राचीन गुरुकुलों के आचार्यों का अध्यापन और विद्यार्थी के प्रति समान रूप से प्रेम होता था, अस्तु वे इस कार्य में असीम आनन्द की अनुभूति करते थे और इसमें ऐसे खो जाते थे कि सामने क्या हो रहा है, इसकी भी सुध नहीं रहती थी । यह लगन और प्रेम का संयुक्त परिणाम है । इससे दो लाभ मिलते थे—एक ओर जहाँ आचार्य प्रत्यक्ष स्वर्ग के आनन्द की प्रतीति करते थे, वहीं दूसरी ओर तत्परतापूर्वक दी गयी विद्या के कारण शिष्यगण हर प्रकार से योग्य होकर निकलते थे ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्म को रसमय बनाने, उसे कर्मयोग बनाने के लिए व्यक्ति में निष्ठा और श्रद्धा के दोनों तत्व विद्यमान होने चाहिए । यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि कर्म छोटा है या बड़ा । महत्त्व इस बात का है कि उसे करते हुए कौन कितना, किस अनुपात में स्वयं को भुला पाता है ? इसी में उसकी स्वर्ग मुक्ति का आनन्द है । रैदास को जूते सिलने में ऐसी मस्ती आती थी कि वह उसकी भक्ति बन गयी । इसी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान प्रकट हुए और रैदास निहाल हो गए । कर्म में भक्ति ऐसी ही होनी चाहिए । कर्त्ता का कल्याण इसी में निहित है ।

गोरा कुम्हार का प्रिय काम मटके बनाना था । इस कार्य में उसे बड़ा आनन्द आता था । मटके बनाकर वह जिन लोगों को बेचता, वे उसे देवतुल्य लगते थे । उनके प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा थी । जनता में मानों उसे साक्षात् ईश्वर की झाँकी होती । उन्हें धोखा देने का उसके मन में तनिक भी विचार नहीं आता था । घड़े बनाने में उसकी दृष्टि यह होती थी कि जो घड़े बनें, वे इतने मजबूत हों कि कई पीढ़ियाँ उसका प्रयोग करें । उसे इसका जरा भी पश्चात्ताप नहीं होता कि मजबूत घड़े बनने और लम्बे काल तक सुरक्षित रहने से उसके धंधे पर इसका बुरा असर पड़ता है, वरन् उसे इससे असीम सन्तोष मिलता था । इसलिए जब वह घड़े की मिट्टी रूँदता, तो उसमें ऐसे खो जाता था, जैसे विज्ञानवेत्ता अपने प्रयोग-परीक्षणों में, गणितज्ञ अपने सवालों में और कवि अपने काव्य-सृजन में । यह निष्ठा और श्रद्धा का परिणाम है । कार्य के प्रति निष्ठा हो और जिसके लिए यह किया जा रहा है, उसके प्रति मन में श्रद्धा हो, तो हर कोई हर किसी कार्य में स्वर्ग की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर सकता है ।

कर्म, अकर्म तब बन जाता है, जब उसमें कर्त्ता का अहंकार घुस पड़ता है । ऐसे में न तो उसे किसी सुख की अनुभूति होती है और न क्रिया का कोई कहने लायक परिणाम ही सामने आ पाता है । उलटे व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कार्य के मूल्य और स्तर दोनों गिर जाते हैं । अब यदि किसी ऐसे व्यक्ति की सेवा का मूल्यांकन किया जाय, जिसे सेवा-कार्य करने का अवसर तो बहुत प्राप्त होता है, पर उतना ही अहंकार-प्रदर्शन भी करता है तो ज्ञात होगा कि उसकी सेवा अत्यन्त तुच्छ है । चूँकि सेवा कार्य और अहंकार दोनों की संख्या बराबर-बराबर है, अतः सेवा में अहंकार की संख्या से भाग देने से भागफल १ (एक) आयेगा, अस्तु उसकी कीमत एक के बराबर हुई । १ की रुपया-पैसा कोई भी इकाई मानी जा सकती है । इस प्रकार उस व्यक्ति की सेवा का मूल्य १ रुपया अथवा पैसा हुआ । इसी तरह एक माँ की सेवा का अनुमान करें, तो वह अनन्त मालूम होगी । अपने प्रिय पुत्र के लिए वह सब कुछ सहने को तैयार रहती है । कष्ट, कठिनाई, विपत्तियाँ कितनी ही झेल लेती है, फिर भी उसके रुझान में कमी नहीं आती और अहंकार तनिक भी नहीं । अभिमान हो भी कैसे ? वह तो इसे अपना धर्म मानती है । इसका आकलन करने पर, उसकी सेवा में पूर्ण निरहंकारिता (अर्थात् शून्य) का भाग देने पर भागफल अनन्त (१/० = ∞) आता है, अस्तु उसकी सेवा का मूल्य रुपयों-पैसों में किसी भी प्रकार नहीं आँका जा सकता वह अनन्त है ।

इस प्रकार अहंकार रहित भक्तिमय कर्म की ही सार्थकता है । हम जो भी कार्य करें, चाहे वह पड़ोसी का हो, समाज अथवा राष्ट्र का हो, कृषि सम्बन्धी, विद्यालय या ऑफिस सम्बन्धी हो, छोटा या बड़ा हो, उसमें समर्पण भाव होना चाहिए, पूर्ण मनोयोग जुड़ना चाहिए, तभी वह कार्य उत्तम, परिणाम उत्कृष्ट और कर्त्ता श्रेष्ठ कहलाता है ।

पुण्डलीक माता-पिता की सेवा में तल्लीन था । उसकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान बिट्ठल प्रकट हुए, पर उन्हें देख उसने सेवा-कार्य बन्द नहीं कर दिया, वरन् उनकी ओर एक ईंट बढ़ा कर उन्हें बैठने के लिए कह दिया और स्वयं सेवा में जुटा रहा । माता-पिता के आगे प्रत्यक्ष भगवान को भी इन्तजार करना पड़ा, क्योंकि पुण्डलीक को उन्हीं में साक्षात् ईश्वर के दर्शन हो रहे थे और उनकी सेवा उसे अद्भुत सुख प्रदान कर रही थी । इसलिए समीप खड़े भगवान को भी प्रतीक्षा करने के लिए कह दिया । कर्म में यही भाव होना चाहिए । एक अभंग में संत तुकाराम ने भी कहा है कि चक्की, चर्खा, कृषि, कारखाना ऑफिस, प्रयोगशाला सब हमारा ईश्वर है । यह कार्य कर प्रकारान्तर से हम ईश्वर की ही सेवा करते हैं । जब तक व्यक्ति के अन्दर यह भाव विकसित नहीं होता, तब तक कार्य भारभूत लगते हैं । जब उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इनके द्वारा वह जनता-जनार्दन की, विराट् ब्रह्म की सेवा कर रहा है, तो कर्म का बोझ स्वतः समाप्त हो, वह भक्तिमय बन जाता है । यही निरहंकार की स्थिति है । अहंकार के मिटते ही भक्ति विकसित होती है और भक्ति के आते ही अहंकार का पलायन होता है । लकड़ी का लट्ठा बहुत भारी होता है । किसी के कन्धे पर रख दिया जाय, तो वह बोझ से दब कर मर सकता है, किन्तु जब उसे जला दिया जाता है, तो वह भारी नहीं रह जाता । फिर साधु उसकी राख शरीर में मलते और उसके भार को खुशी-खुशी ढोते फिरते हैं । बोझ और भक्ति में यही अन्तर है । कर्म के साथ जब अहंकार जुड़ता है, तो वह बोझ बन जाता है और जब हट जाता है तो वही भक्ति कहलाता है । अतः अहंकार रहित कर्म ही भक्ति का आनन्द दे सकता है । इसी ओर हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिए ।

कार्य उबाऊ और नीरस तब बन जाता है, जब हमारी संकीर्ण भावनाएँ उसके साथ जुड़ जाती हैं । हम कार्यों में विभेद करने लगते हैं । उन्हें अपने पराये के वर्गों में बाँटते हैं । कोई भी कार्य सम्पन्न करने से पूर्व हम यह देखते हैं कि प्रस्तुत कार्य अपना है या दूसरे का । पराया नाम सुनते ही मन-मस्तिष्क ढीले पड़ जाते हैं, उत्साह समाप्त हो जाता है । फिर यदि कार्य पूरा करना जरूरी ही हुआ, तो उसी स्थिति में जैसे-तैसे करके बेमन से काम समाप्त कर दिया जाता है । दूसरों के कार्य करने में व्यक्ति की एक अन्य दृष्टि यह होती है कि इससे उसका अपना स्वार्थ कितना सधेगा उसे क्या लाभ मिलेगा ? यदि कुछ इस प्रकार की गुंजायश हुई तो वह उसे लगन से करता है, अन्यथा औंधे-सीधे ढंग से पूरा करके टाल देता है ।

यह स्वार्थपरायणता हुई । कार्य को भारभूत बनाने में इसकी भी महती भूमिका होती है । इससे उबरने के लिए आत्म-विस्तार करना पड़ता है । दूसरों में स्वयं की और स्वयं में दूसरों की अनुभूति करनी पड़ती है । इस मनःस्थिति में जो कार्य बन पड़ता है, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपना निजी प्रतीत होता है । फिर उसमें लाभ-हानि की दृष्टि नहीं रहती । तब कार्य यह मान कर करना पड़ता है कि भले ही इसमें अपना लाभ न हो, पर समय, समाज और राष्ट्र का तो निहित है, हम समाज और राष्ट्र के हैं एवं राष्ट्र व समाज हमारा है । उसकी उन्नति-प्रगति हमारी अपनी उन्नति-प्रगति है और उसकी अवनति हमारी अवनति है । इस भावना से सम्पादित कार्य में कर्त्ता का उत्साह क्रिया के साथ सदा जुड़ा रहने से उसका प्रतिफल भी उच्चकोटि का सामने आता है । पिछले दिनों यदि ऐसा नहीं हुआ होता, स्वतन्त्रता सेनानी अपना स्वार्थ त्याग आगे नहीं बढ़े होते, तो आज हम परतन्त्र ही बने रहते । तात्पर्य यह है कि क्रिया के प्रति कर्त्ता में परायेपन का भाव उदित होते ही कार्य की सरसता समाप्त हो जाती है । ऐसे में किया गया कार्य न तो वह परिणाम उत्पन्न कर पाता है, जिसकी आशा-अपेक्षा की गयी थी और न योग की अनुभूति करा पाता है ।

कर्म की गणना योग में की गयी है । इसकी तीन प्रमुख धाराओं में एक कर्म भी है । योग का अर्थ होता है—समर्पण, विलय, विसर्जन । कर्म कर्मयोग तभी बन पाता है, जब उसमें कर्त्ता का घनिष्ठ तादात्म्य जुड़ा हो । घनिष्ठता तब बन पड़ती है, जब कर्त्ता तल्लीनतापूर्वक कार्य में संलग्न हो, अर्थात कार्य के प्रति उसकी गहरी अभिरुचि हो । तभी उसे कर्म में कुशलता भी प्राप्त हो सकती है और यह स्थिति प्राप्त करना ही योग है । इसी को गीता में "योगः कर्मसु कौशलम्" कहकर अभिहित किया गया है । यही वह स्थिति है, जिसमें योग का आनन्द और क्रिया का सत्परिणाम दोनों साथ-साथ प्राप्त होते हैं । सभी को इसी "कर्मयोग" की साधना करनी चाहिए ।

योग साधना का उद्देश्य और स्वरूप

योग कहते हैं जोड़ने को, दो और दो मिलकर चार होते हैं । यह योग है । आत्मा और परमात्मा में एकता स्थापित करना योग का उद्देश्य है । सामान्यतया दोनों के बीच भारी मनमुटाव और मतभेद रहता है । एक दूसरे की उपेक्षा भी करते हैं और रुष्ट भी रहते हैं । ईश्वर चाहता है कि मनुष्य जीवन के अनुपम अनुदान का श्रेष्ठतम सदुपयोग किया जाय । अनुकरणीय कार्य पद्धति अपनाकर जन-साधारण को अनुगमन की प्रेरणा दी जाय । इसी अवसर का लाभ उठाकर पूर्णता का महान लाभ प्राप्त कर लिया जाय । संसार को सुसंस्कृत समुन्नत बनाने में हाथ बँटाया जाय । महत्त्वाकांक्षाओं को मानवी गरिमा के अनुरूप बनाया जाय किन्तु देखा जाता है कि मनुष्य इसके ठीक विपरीत आचरण करता है । पेट और प्रजनन की पशु प्रवृत्तियों से ऊँचा नहीं उठना चाहता । वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के अतिरिक्त चिन्तन और कर्तव्य का अन्य कोई विषय नहीं रहता । ईश्वर भक्ति की विडम्बना भी मनुष्य निकृष्ट मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए ही रचता रहता है । ईश्वर को इस प्रकार की जीवन पद्धति में मानव जीवन की असाधारण अनुदान की अवमानना दीखती है । इसलिए वह खिन्न और रुष्ट रहता है । दूसरी ओर मनुष्य भी खींचता है । वह असीम और अनावश्यक भोग साधन माँगता है । वे अभीष्ट मात्रा में नहीं मिलते तो अभाव अनुभव होता रहता है । दूसरे दुष्प्रवृत्तियों की परिणति आये दिन की विपत्ति बन कर सामने आती रहती है । इसमें वह अपना नहीं ईश्वर का दोष मानता है फलतः उसकी भी अश्रद्धा एवं उपेक्षा बनी रहती है । किसी का किसी से प्रेम नहीं । इस असहयोग में मनुष्य ही घाटे में रहता है । ईश्वरीय अनुग्रह से जो लौकिक वैभव और आत्मिक वर्चस्व मिलता है उससे वह प्रायः वंचित ही बना रहता है ।

इस असमंजस भरी स्थिति को हटाने का उपाय योग है । इस प्रक्रिया के द्वारा साधक की मनःस्थिति को ईश्वर की ओर मोड़ा-मरोड़ा जाता है उसे ईश्वरीय निर्देशों के अनुरूप ढलने एवं चलने की प्रेरणा मिलती है । दोनों की दिशा धारा एक हो जाने से परस्पर घनिष्ठता उत्पन्न होती है—और आदान-प्रदान का द्वार खुलता है । जीव और ब्रह्म की आकांक्षाएँ एक हो जाने से उनके बीच समुचित तालमेल बैठता है और इस आधार पर विकसित व्यक्तित्व में ऋषि तत्वों की, देव तत्वों की मात्रा दिन-दिन बढ़ती चली जाती है दर्पण पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसमें से भी वैसी ही चमक प्रादुर्भूत होती है । योगी का अन्तःकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कषाय कल्मषों से मुक्त हो जाने के कारण इतना स्वच्छ हो जाता है कि उस पर ईश्वर का प्रतिबिम्ब चमकता हुआ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे । ऐसे व्यक्तियों का भावनात्मक स्तर दिव्य मान्यताओं से, दिव्य आकांक्षाओं से, दिव्य योजनाओं से उमगता रहता है, फलतः उसका चिन्तन और क्रिया-कलाप वैसा आदर्श होता है जैसा कि ईश्वर भक्तों का—योगियों का होना चाहिए । स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों में क्षमताएँ एवं विभूतियाँ भी उच्च स्तरीय ही पायी जाती हैं । वे सामान्य मनुष्यों की तुलना में निश्चित ही उतने समर्थ और उत्कृष्ट होते हैं कि उनकी प्रतिभा एवं क्षमता को बिना संकोच के चमत्कारी कहा जा सकेगा । व्यक्तित्व की पूर्णता ही मानव जीवन की सबसे बड़ी सफलता है । अस्तु योगियों के सिद्धपुरुष होने की मान्यता सच ही होती है । महापुरुष सिद्धपुरुष आदि नामों से किसी को स्त्री-पुरुष के लोक भेद का भ्रम नहीं करना चाहिए । अध्यात्म क्षेत्र में पुरुषार्थियों को पराक्रमियों को पुरुष कहा जाता है । इस अर्थ में नर और नारी दोनों के ही योगी एवं चमत्कारी सिद्ध हो सकने की बात स्पष्ट हो जाती है ।

योग का स्वरूप और उद्देश्य समझते हुए मनीषियों ने कहा है—

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
एक्यं जीवात्मनोराहुर्योग योगविशारदाः ॥

—देवी भागवत

योग आसमान से नहीं टपकता न जमीन फाड़कर निकलता है । आत्मा और परमात्मा के मिलन को ही योग कहा गया है ।

द्विज सेवित शाखस्य श्रुति कल्पतरोः फलम् ।
शमन भव तापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥

—गोरक्ष.

वेदरूपी कल्प वृक्ष के फल इस योग शास्त्र का सेवन करो । जिसकी शाखा मुनि जनों से सेवित है और यह संसार के तीन प्रकार के ताप को शमन करता है ।

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम् ।

—गरुड़ पुराण

इस संसार के दुःखियों को योग ही उत्तम औषधि है ।

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वामृच्छति ॥

—योग सन्ध्या

योग रूप अग्नि शीघ्र ही पाप के समूह को दग्ध करता है और ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान से मोक्ष होता है ।

दुःसहा राम संसार विष वेगा विसूचिका ।
योगगारुड़ मन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति ॥

—योग वाशिष्ठ

हे राम ! यह संसार रूप विष विसूचिका का वेग बड़ा दुःखदायी है वह योग रूप गरुड़ के मन्त्र करके शान्ति को प्राप्त होता है ।

अथ तदृर्शनाभ्युपायो योगः
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

—योग बीज

उस आत्मा के साक्षात्कार करने में ही एक उपाय है दूसरा नहीं, योगाभ्यास द्वारा ही उस आत्मदेव को जानकर श्रेष्ठ पुरुष हर्षशोक (जन्म-मरण) रूप संसार का परित्याग करते हैं ।

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम् ।
तस्मिन् परिश्रमः कार्यः किमन्यच्छास्म भाषितम् ॥

—शिव संहिता

निश्चय जिसके जानने से सब संसार जाना जाता है ऐसे योग शास्त्र के जानने के लिए परिश्रम करना अवश्य उचित है फिर जो अन्य शास्त्र हैं उनका क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।

वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ।
मन्त्र सिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः ॥

—शिव संहिता

योगी के मुख में सर्वदा निरन्तर सरस्वती देवी नृत्य करती रहती है और योगी की ही साधना से मन्त्र आदि उपचारों की सिद्धि होती है ।

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्न योग शास्त्रं परं मतम् ॥

—शिव संहिता

सम्पूर्ण शास्त्रों पर बार-बार विचार करने के उपरान्त यह सुनिश्चित मत निर्धारित हुआ कि एक योग शास्त्र ही सर्वोपरि है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चाऽत्मरतोऽमलः ।
विषयेन्द्रियसंयोगात्केचिद्योगं वदन्ति वै ॥

—अग्नि पुराण

आत्मा को निर्मल बनाकर, इन्द्रियों का संयम कर उसे परमात्मा के साथ मिला देने की प्रक्रिया का नाम योग है ।

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा ।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥
न वेषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः ॥

—हठयोग प्र.

युवा, वृद्ध, अति वृद्ध, रोगी, दुर्बल कोई भी योगाभ्यास करके सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।।६४।।

सिद्धि वेष धारण से नहीं मिलती । केवल पढ़ने, सुनने से भी काम नहीं चलता । अभ्यास करने से ही सफलता मिलती है यह निःसन्देह है ।।६६।।

एते गुणाः प्रवर्तन्ते योगमार्गकृतश्रमैः ।
यस्माद्योगं समादाय सर्वदुःखबहिष्कृतः ॥

—ब्रह्म–विद्योपनिषद् ५८

योगाभ्यास में जो श्रम किया जाता है वह निरर्थक नहीं जाता । प्रयत्नपूर्वक की हुई साधना समस्त दुःख, शोकों का निवारण कर देती है ।

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम् ।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ॥

—योग–शिखोपनिषद

योग से श्रेष्ठ न कोई पुण्य है, न कोई कल्याणदायक है और न कोई सूक्ष्म वस्तु है अर्थात् योग से बढ़कर कुछ नहीं है ।

(१) योग साधना करने वाले के पितर धन्य होते हैं । देश और कुल कृतार्थ होता है । अभाव मिटते हैं । सिद्धियाँ उभरती हैं और भव सागर से पार होने का अवसर मिलता है ।

(२) ग्रहस्थों में, वानप्रस्थों में, ब्रह्मचारियों में योगाभ्यास की ही अधिक श्रेष्ठता है ।

कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् ।
जायते योगवान्यत्र दत्तमक्षय्यातां व्रजेत् ॥
दृष्टः संभाषितः स्पृष्टः पुप्रकृत्योर्विवेकवान् ।
भवकोटिशतायातं पुनाति वृजिनं नृणाम् ॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण

गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च ।
ब्रह्मचारिसहस्रेण योगाभ्यासी विशिष्यते ॥

—ब्रह्मांड पुराण

योग साधना एक प्रबल पुरुषार्थ है जिसके सहारे प्रसुप्त आत्म-शक्तियों को जगाया जाता है । दैवी अनुग्रह आकर्षित करने का चुम्बकत्व योग साधना के साथ जुड़ा हुआ है । स्वाध्याय, चिन्तन, सत्संग आदि का अपना महत्त्व है, पर इतने से ही काम नहीं चल सकता ज्ञान के साथ कर्म भी चाहिए । ब्रह्म विद्या चिन्तन प्रधान है । उसके माध्यम से श्रद्धा को स्थिर किया जाता है और अज्ञान का निवारण होता है इतने पर भी योग रूपी परम पुरुषार्थ की आवश्यकता बनी ही रहती है । उसी परिश्रम से आत्म सत्ता की उर्वरता निखरती है । उसी के सहारे आत्मतेज एवं ब्रह्म तेज से सुसम्पन्न बन सकने का अवसर मिलता है ।

योगे न रक्षते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।

—विदुरनीति

योग से धर्म और विद्या दोनों की रक्षा होती है ।

ज्ञान निष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
बिना योगे न देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥

कोई मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी, विरक्त, धार्मिक और जितेन्द्रिय क्यों न हो पर वह बिना योग के मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।
योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यहोत ॥

—योग–तत्वोपनिषद

बिना योग का ज्ञान निश्चय करके मोक्ष का देने वाला कैसे हो सकता है और बिना ज्ञान के योग भी मोक्ष देने में समर्थ नहीं है, इसलिए मोक्षाभिलाषी ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता से अभ्यास करे ।

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ।
योगः परं तपोज्ञेयस्ताद्युक्तः समभ्यसेत् ॥

—अग्नि संहिता

योग साधना से ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है, योग ही धर्म का लक्षण है, योग ही परम तप है इससे योग का सदा अभ्यास करना चाहिए ।

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि ।
सच योगश्चिरंकालमभ्यासादेव सिद्धयति ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥

—अष्टांग योग सिद्धि

मात्र आत्म ज्ञान के द्वारा मुक्ति होती तो है, परन्तु योग साधन के बिना नहीं होती और योग साधन चिरकाल के अभ्यास से सिद्ध होता है । योग रूपी अग्नि में सभी पाप समूल नष्ट हो जाते हैं, जिससे स्वच्छ ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान-प्राप्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

जीवात्मा की सामर्थ्य सीमित है । परमात्मा की असीम । एक लघु है तो दूसरा विभु । एक सरोवर है तो दूसरा चेतना शक्ति का महासागर । सामर्थ्य सीमित होते हुए भी जीवात्मा के विकसित होने—असीम बनने और परमात्म सत्ता के स्तर तक जा पहुँचने की पूरी-पूरी गुंजाइश है । लघु के विभु, बिन्दु के सिन्धु, सीमित के असीम और चेतना के महाचेतना में विकसित होने की प्रक्रिया जिस माध्यम से सम्पन्न होती है उसे योग कहते हैं ।

बोलचाल की भाषा में योग का अर्थ होता है—जुड़ना । आध्यात्मिक अर्थ में योग कहते हैं—जीवात्मा के परमात्मा से जुड़ जाने को । जीव सत्ता-विराट् सत्ता से अपना सम्पर्क सूत्र जोड़ ले—तादात्म्य स्थापित कर उसमें एकाकार हो जाय, इसे ही योग कहा गया है । योग का लक्ष्य है जीवात्मा का विराट् चेतना से सम्पर्क जोड़कर-दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग खोल देना । निःसन्देह अपना आपा महान है । सामर्थ्यवान है । पर सीमाबद्ध होने से उसकी शक्ति सीमित रह रही है । अपने एकाकी बलबूते वह कोई महान प्रयोग पूरा नहीं कर पाता । विराट् से—चेतना के महासागर से जुड़ जाने—असीम स्रोत से सम्पर्क मिल जाने से अपनी सामर्थ्य भी उसी स्तर की बन जाती है ।

सम्पर्क में आने—जुड़ जाने के चमत्कार पग-पग पर दिखाई पड़ते हैं । बिजली के दो तार जुड़ते हैं तो प्रचण्ड धारा मध्य से प्रवाहित होने लगती है । नर-नारी के सान्निध्य, घनिष्ठता से सन्तानोत्पादन का क्रम चल पड़ता है । नये परिवार एवं नये समाज की रचना का अभिनव आरम्भ हो जाता है । यह तो समान स्तरीय व्यक्तियों एवं पदार्थों की सम्मिलन की प्रतिक्रिया हुई, जिसकी विलक्षण परिणति दैनिक जीवन में सर्वत्र परिलक्षित होती है ।

जुड़ने का एक असामान्य पक्ष भी है जिसमें एक का स्तर निम्न तथा दूसरे का महान होता है । एक की शक्ति सीमित तथा दूसरे की असीम होती है । एक नगण्य होता है तो दूसरा विशेषताओं-विभूतियों से सम्पन्न । पर सम्पर्क में आने, जुड़ जाने से सामान्य वस्तु एवं व्यक्ति भी अपने से विशिष्ट क्षमता एवं विशेषता सम्पन्न की न केवल विशेषताएँ प्राप्त कर लेते हैं बल्कि उसी प्रकार के बन भी जाते हैं । लकड़ी अग्नि के निकट आती है और अन्ततः अग्नि का स्वरूप प्राप्त कर लेती है । बल्ब होल्डर के निकट आते ही जल उठता, पंखा चलने लगता, हीटर गरम हो उठता, रेफ्रीजरेटर ठण्ड प्रदान करता आदि सभी अपने-अपने अनुरूप विशेषताओं को विद्युत शक्ति से ग्रहण कर लेते हैं । विभिन्न वाट के विद्युत क्षमता वाले बल्ब अपने-अपने अनुरूप प्रकाश प्राप्त कर लेते हैं । विद्युत उत्पादन पानी से होता है पर उसका मूल स्रोत है समुद्र । नदियों, तालाबों, झरनों की जल सम्पदा भी समुद्र से ही मिलती है । सतत् वाष्पित होकर उड़ने और बादल बनकर बरसने में समुद्र का अथाह जल ही काम आता है । अस्तु प्राप्त होने वाले विद्युत का मूल स्रोत भी समुद्र है । समुद्र से सीधा सम्पर्क जुड़ सके तो उसके भाण्डागार से असामान्य शक्ति प्राप्त की जा सकती है ।

सीमित की अपेक्षा बड़े स्रोतों से जुड़े रहने से उसी अनुपात में अनुदान भी मिलते हैं । कितनी ही नदियाँ किसी बड़े स्रोत से न जुड़ी रहने के कारण सूख जाती हैं । गंगा और यमुना का अजस्र प्रवाह हिमालय के व्यापक स्रोत से जुड़े होने से वे कभी नहीं सूखतीं । उनकी गरिमा और विशेषताएँ भी अन्य नदियों की तुलना में कहीं अधिक हैं । इनके भौतिक एवं आध्यात्मिक अनुदानों से हर कोई लाभ उठाता है । जो श्रद्धाभाव इनके प्रति है अन्यों के प्रति नहीं । झीलों से निकलने वाली नदियाँ भी नहीं सूखती हैं । कारण है—अथाह जलराशि के स्रोत से उनका जुड़ा रहना ।

सरकारी सेवाओं में नियुक्ति होने पर कितने ही अधिकार वेतन के अतिरिक्त भी अपने आप प्राप्त हो जाते हैं । न्यायाधीश को अपराधियों को दण्डित करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का अधिकार मिलता है । अधिकारी, कर्मचारी को विभिन्न प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं । बैंक का खजांची विपुल धनराशि का मालिक बना रहता है । जिलाधीश को पूरे जनपद की देख-रेख करने और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए निर्णय लेने की पूरी छूट होती है । पुलिस के सिपाही सन्देह होने पर किसी को भी गिरफ्तार कर सकते हैं । प्रान्त के गवर्नर और देश के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री को व्यापक अधिकार होते हैं, जिसका उपयोग वे देश के हितों को ध्यान में रखते हुए करते रहते हैं । पर सेवा विमुक्त होने और मन्त्रिमण्डल से निकलते ही प्राप्त सभी अधिकार अपने आप समाप्त हो जाते हैं । व्यक्ति वही और उसकी क्षमताएँ भी वही बनी रहती हैं, पर कारण क्या है कि प्राप्त अनेकों प्रकार के अधिकार समाप्त हो गए । अन्तर एक ही है—वह पहले सरकार से जुड़ा था और अब वह सम्पर्क टूट गया फलस्वरूप अधिकार भी जाते रहे ।

घनिष्ठ सम्पर्क में आने—जुड़े रहने के कितने ही लाभ हैं । बच्चा माता-पिता से कितनी ही बातें सीखता है—सुविधाएँ प्राप्त करता है । संरक्षण और भावनात्मक पोषण, स्नेह, दुलार पाता है । उत्तराधिकार में उसे पिता की कमाई सम्पत्ति मिल जाती है । माँ का ममत्व उसके अन्तराल में सहज ही उतरता रहता और उसके अन्तराल को तृप्त करता तथा व्यक्तित्व को परिपुष्ट बनाता है । पत्नी पति से जुड़ जाती है । उसे पति का प्यार मिलता और उसकी सम्पत्ति की अधिकारी हो जाती है । पत्नी की अवमानना—अपमान को पति का अपमान माना जाता तथा अपमान करने वाले को सामाजिक तिरस्कार, प्रताड़ना से लेकर सरकारी दण्ड का भाजन बनना पड़ता है । दाम्पत्य सम्बन्धों के कारण पति-पत्नी में भावनात्मक आदान-प्रदान ही नहीं करते, लड़ते-झगड़ते भी हैं । अन्यों के साथ यह सब नहीं चल पाता ।

वायु के सम्पर्क में आने पर धूल कण भी वायुमण्डल में उड़ने लगते और व्यापक क्षेत्र में विचरण करने का आनन्द लेते हैं । बेल पेड़ का अवलम्बन पकड़कर पेड़ की जितनी ऊँचाई तक जा चढ़ती है । नगण्य बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती तथा गन्दा नाला गंगा में मिलकर गंगाजल बनकर उसकी विशेषताएँ प्राप्त कर लेता है । पानी दूध में मिलकर खोता नहीं पाता अधिक है—अपना मूल्य और स्तर बढ़ा लेता है । पारस पत्थर से छू जाने पर लोहा सोना बन जाता है ।

भौतिक वस्तुओं एवं व्यक्तियों के सम्पर्क जुड़ने एवं उनके परिणाम एवं फलितार्थ की तुलना में जीवात्मा के परमात्मा से योग की उपलब्धियाँ असंख्य गुनी अधिक और अनुभूति अत्यधिक आनन्ददायक है । वह समस्त संसार का अधिष्ठाता है और चेतना का महासागर । भौतिक और आध्यात्मिक सभी विभूतियाँ उसमें समाहित हैं । सृष्टि के सभी जड़-चेतन उसी से अपने-अपने अनुरूप सामर्थ्य प्राप्त करते हैं । जड़ की जड़ से मिलन की प्रतिक्रिया इतनी चमत्कारी चेतन जीवों की इतनी सुखद और सरस हो सकती है तो जो इन सबका मूल स्रोत है उसका सम्पर्क कितना सरस, आनन्ददायक और विलक्षण होगा, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । जड़ पदार्थ सामर्थ्य, गति एवं विलक्षणता तथा चेतन प्राणी जीवन, प्राण उस महा स्रोत से सीमित मात्रा में प्राप्त कर थिरकन करते, उछलते-फुदकते और सरसता का आनन्द लते हैं । योग बन जाने—स्रोत से सीधा सम्पर्क जुड़ जाने और दिव्य आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ने की विधि व्यवस्था कितनी सरस, हृदय को दिव्य आनन्द से भर देने वाली होगी, यह सोचकर मन पुलकित हो उठता है ।

सामान्यतया तृष्णा, वासना और अहंता की फूहड़ परितृप्ति के लिए मृग-मरीचिका में मनुष्य जीवन पर्यन्त भटकता रहता है । क्षणिक आनन्द में मोद मनाने और उसमें व्यतिक्रम उपस्थित होते ही दुःख और शोक से आकुल-व्याकुल हो उठता है । मन बन्दर की भाँति वस्तुओं एवं व्यक्तियों से सुख के लिए उनके इर्द-गिर्द मचलता, उछलता, चक्कर काटता रहता है । अतृप्ति और अशान्ति ही अन्ततः पल्ले पड़ती । समूचा जीवन ही ऐषणाओं की पूर्ति में खप जाता है । दिव्य चेतना से संयोग न बन पाने पर शाश्वत आनन्द से मनुष्य को जीवन पर्यन्त वंचित रहना पड़ता है । अतृप्ति लेकर पैदा होता और अतृप्त ही चला जाता है । यह भटकाव मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी हार कही जायेगी ।

योग का प्रयोजन है इस भटकाव को रोकना और उस विराट् चेतना से तादात्म्य जोड़ देना और दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त करना । परमात्मा कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति नहीं शक्ति है जिसकी अनुभूति अन्तःकरण में उच्चस्तरीय आस्थाओं एवं भाव सम्वेदनाओं के रूप में की जा सकती है । आत्म साक्षात्कार—ब्रह्म साक्षात्कार का अर्थ है अपनी आस्थाएँ परिष्कृत स्तर की—देवोपम दीखने लगें । संकीर्ण स्वार्थपरता, अहंकारिता, अनुदारता जैसी दुष्प्रवृत्तियों के भव-बन्धन से छुटकारा मिल जाय । परिष्कृत चिन्तन की सुखद प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए ही उसे स्वर्ग कहा गया है । ललक और लिप्सा, निकृष्टता एवं कुसंस्कारिता के भव-बन्धनों को तोड़ फेंकने की स्थिति मुक्ति कहलाती है । स्वर्ग, मुक्ति के विस्तृत अलंकारिक आख्यायिकाओं में तथ्य इतना भर है कि परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने वाला स्वर्गीय सुख सन्तोष पाता है और आत्मीयता के विस्तार के साथ सम्बद्ध सेवा उदारता की नीति अपनाते हुए लोभ-मोह के पाश से मुक्त हो जाता है । इस योग दृष्टि का विकास परमात्मा से जुड़ने से ही सम्भव हो पाता है ।

आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देने का तात्पर्य है—क्षुद्रता को महानता के साथ, कामना को भावना के साथ, स्वार्थ को परमार्थ के साथ बाँध देना—बदल देना और तद्नुसार बना देना । समर्पण इसी उच्चस्तरीय भूमिका का नाम है । विलय-विसर्जन, समन्वय, समापन, शरणागति उसी के दूसरे पर्याय हैं । इस आरम्भ की पूर्णाहुति जीव और ब्रह्म के साथ पूर्ण एकता स्थापित होने से होती है । इसी स्थिति को अद्वैत कहते हैं ।

चेतना के विराट् समुद्र में जीव बिन्दु का विसर्जित होना 'सायुज्य' है । यही परम पद की प्राप्ति है । व्यष्टि जीव सत्ता का समष्टि ब्राह्मी सत्ता में विसर्जित होना ही प्रभु समर्पित जीवन है । ईंधन आग की, नदी नाले की, दूध जल की, दीप पतंगे की उपमा इसी स्थिति के लिए दी जाती है । व्यक्ति अपने स्वार्थ की परिधि से निकल जाता है—मन-मस्तिष्क में एकमात्र परमार्थ छाया रहता है । अहंता शरीर, परिवार तक सीमित न रहकर सोहम् शिवोहम्, सच्चदानन्दोहम्, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरजोमसि की स्थिति में पहुँच जाती है । 'अपनी सत्ता सब में' और 'सब अपने में' दृष्टिगोचर होने लगते हैं । 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु की अनुभूति इसी स्तर पर पहुँचने में होती है । योग की सिद्धावस्था यही है, परमपद-जीवन मुक्ति इसी का नाम है । व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ आकांक्षाएँ समाप्त हो जायें, मात्र ईश्वरेच्छा ही रोम-रोम में समाई रहे यही है जीव ब्रह्म की एकता का लक्षण । दोनों के बीच शिकायत, उलाहना की, खींचतान की न कोई गुंजाइश है न कोई वास्तविक कारण । दोनों की एक भावना, एक कामना, एक योजना और एक दिशाधारा हो । यही है योग का परम लक्ष्य ।

संक्षेप में चेतना के भावपक्ष को उच्चस्तरीय उत्कृष्टता के साथ एकात्म कर देने का नाम ही योग है । यह आस्थाओं एवं आकांक्षाओं का परिष्कार है । अपनी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं को, लालसा और लिप्साओं को पैरों तले रौंदकर ईश्वरीय संकेतों और उच्चस्तरीय आदर्शों का अनुसरण करने का जो साहस जुटाते हैं, वही योगी हैं । योगी की मनोभूमि इसी प्रकार की होती है । वह शरीरगत तथा मनोगत वासनाओं, तृष्णाओं की उपेक्षा करता, उन्हें नगण्य, हेय और महानता के मार्ग में बाधक मानता है । तीनों ऐषणाओं से उसे सहज ही विरति हो जाती है । उसे कण-कण में परमेश्वर दिखाई पड़ने लगता है—विश्व उसकी साकार प्रतिमा है । हर किसी से प्रेम करने को जी करता है । इस प्रेम में 'दुलार' और 'सुधार' का सन्तुलित और समुचित समन्वय विवेक के आधार पर किया जाता है । व्यष्टि, समष्टि और प्रकृति के गतिचक्र को समझ लेने के कारण उसे किसी प्रिय-अप्रिय स्थिति में असन्तुलन ग्रसित नहीं होना पड़ता है । कमल पत्रवत् स्थिति बनी रहती है । खिलाड़ी की तरह रंग-मंच पर अभिनय करने वाले नट की तरह वह अपने कर्तव्यों को तो पूरा करता है, पर हानि-लाभ, मान-अपमान का बोझ नहीं ओढ़ता । जब जीवन के रंग-मंच पर खेल ही खेलना है तो हर स्थिति में विनोद की मनःस्थिति क्यों न रखी जाय ? योगी इसी तरह सोचने का अभ्यास करता है । ईश्वर के हाथों अपने जीवन की बागडोर सौंपकर वह निश्चिन्त रहता है । अपनी सारी क्षमता, सत्कर्मों, सद्विचारों एवं सद्भावों में नियोजित रखने वाला ही वस्तुतः सच्चा योगी है ।

पेट और प्रजनन के सीमित प्रयोजन जीवन रूपी अमूल्य सम्पदा को खपा देने वाले नर कीटकों से सर्वथा भिन्न मनोभूमि वाले चरित्रवान, सन्मार्ग पर चलने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहस रखने वाले, लोक-मंगल के लिए आत्म समर्पण करने वाले तत्वदर्शी, युगान्तकारी समर्थ व्यक्ति महामानव देवदूत, सिद्ध पुरुष, ऋषि, योगी, पतन-प्रवाह की ओर बहने वाली भीड़ से अलग ही दीख जाते हैं । धारा को चीरकर उल्टी दिशा में चल पड़ने का साहस आत्म-बल का चमत्कार है । जन-मानस के परिष्कार और युग प्रवाह को पलट देने का कार्य उच्चकोटि की ऋद्धि-सिद्धि जैसा ही है । योगी इन विभूतियों से विराट् चेतना से सम्पर्क बना लेने के बाद सुसम्पन्न बन जाते हैं ।

योग के तीन पक्ष कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग की तीन धाराएँ इस हिमालय से निकलती हैं । कर्मयोग का अर्थ है—लोक मंगल के उच्चस्तरीय प्रयोजनों में पुरुषार्थ को नियोजित किए रहना । कर्मयोगी को यही करना होता है । क्रियाएँ निष्काम और ईश्वरीय अनुशासन एवं संकेतों के अनुरूप होती हैं तो वह कर्मयोग बन जाता है । जिसमें कर्मयोगी सक्रिय और तत्पर तो रहता है, पर होता है—सब कुछ ईश्वरीय प्रयोजनों के लिए ही । वैचारिक क्षेत्र में चिन्तन एवं रुझान जब विराट् चेतना से जुड़ जाता है तो ज्ञानयोग हो जाता है । ज्ञानयोग अर्थात् परिष्कृत चिन्तन । दृष्टिकोण परिमार्जित होकर उदात्त बन जाय । उच्चस्तरीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों का उसमें समावेश हो । व्यक्तिवादी निकृष्टता से विरति एवं अरुचि हो जाय । भक्तियोग का अर्थ है—अन्तःकरण की भाव सम्वेदनाएँ । परमात्मा से—विश्वात्मा से जुड़ जाना—एकाकार हो जाना । भक्तियोग के अनुयायी को यही करना होता है । इन त्रिविधि योगों में भाव परक आधार समर्पण के द्वारा ही बनता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सभी योगों की सफलता समर्पण योग के आधार पर ही बनती है । गीता में भगवान इसी तथ्य को विस्तारपूर्वक समझाते हुए अर्जुन से कहते हैं—"हे अर्जुन, अपने मन, बुद्धि और समस्त चेष्टाओं को भगवान को समर्पित कर दे । इतने भर से तेरा कल्याण हो जायेगा ।" यहाँ भगवान से तात्पर्य उस विराट् चेतन शक्ति से है जो विश्व ब्रह्माण्ड में समायी हुई है ।

मिलन होने पर अपनी अलग सत्ता नहीं रहती । बूँद जब समुद्र में मिलती है तो अपना स्वरूप, स्वभाव सभी खो देती है और समुद्र तरंगों की तरह ही लहराने लगती है । चूँकि समुद्र खारा है इसलिए बूँद अपने में भी खारापन भर लेती है । कोई ऐसा चिन्ह नहीं रहने देती जिससे उसका अस्तित्व अलग से पहचाना जा सके । ईश्वर से मिलने का अर्थ है—अपने आपको गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से ईश्वर जैसा बना लेना अथवा जो उसे हमसे अभीष्ट है करने लगना । पतिव्रता स्त्री अपने आचरण, स्वभाव एवं क्रिया-कलाप को पति की इच्छानुरूप ढाल लेती है । इसके बिना दाम्पत्य-जीवन कैसा ? मिलन का आनन्द कहाँ ? समर्पण के आधार पर ही है द्वैत को अद्वैत के रूप में परिणत किया जाता है । ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा बनाकर उसके संकेतों एवं निर्देशों को अपनी आकांक्षा और क्रिया में जोड़ देना इसी का नाम समर्पण है । अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ईश्वर के समक्ष गिड़गिड़ाने—नाक रगड़ने का नाम भक्तियोग—प्रार्थना नहीं है । भक्तियोगी की एकमात्र पहचान यही है, जिसने अपनी आकांक्षाओं, वासनाओं की बलि दे दी हो और ईश्वर की मनमर्जी के अनुरूप अपने आपको चलने के लिए सहमत कर लिया हो । भक्ति की सच्चे उपासक की यही कसौटी है । वह भगवान को अपनी मर्जी के अनुसार चलाने के लिए विवश नहीं करता वरन् उनकी इच्छा को अपनी इच्छा बनाकर अपनी विचार प्रणाली और कार्यपद्धति का पुनर्निर्धारण करता है । तब उसके सामने इस विश्व को अधिक श्रेष्ठ बनाने की—अधिक समुन्नत एवं सुन्दर बनाने की एकमात्र इच्छा शेष रह जाती है । वह अपने आपको काया की तथा परिवार की संकीर्ण परिधि में आवद्ध नहीं करता वरन् सबमें अपनी आत्मा को समाया देखता और लोक-मंगल के लिए जीता है । वसुधैव कुटुम्बकम् के अनुरूप अपनेपन की परिधि को अति व्यापक बना लेता है । तब उसे अपनी काया ईश्वर के देव मन्दिर जैसी दीखती है और अपनी सम्पदा ईश्वर की पवित्र धरोहर जैसी, जिसका उपयोग ईश्वरीय महान प्रयोजनों में किया जाता है । यह दृष्टि ही योग दृष्टि है और सम्बद्ध अनुभूति ईश्वर दर्शन । इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट समझना हो तो यों कहना चाहिए कि स्वार्थपरता का परमार्थ में, व्यक्तिवाद का समूहवाद में, संकीर्णता का उदारता में, निकृष्टता का उत्कृष्टता में विसर्जन ही समर्पण का वास्तविक उद्देश्य है । भक्तियोग में इसी समर्पण शरणागति की प्रधानता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन पर मलीनता के आवरणों के कारण उस महान सत्ता से सम्पर्क नहीं जुड़ पाता, दिव्य आदान-प्रदान का क्रम नहीं चल पाता । चले भी कैसे ? आदान-प्रदान के लिए कुछ तो एकरूपता होनी चाहिए । विद्युत का प्रवाह तारों में बहता है—लकड़ी में नहीं । दैवीय चेतना का प्रवाह पवित्र अन्तःकरण में अवतरित होता है । विराट् से सम्बन्ध जुड़ने एवं अनुदान प्राप्त करने के लिए मन की निर्मलता आवश्यक है अन्यथा दैवी अनुदान अवतरित हों तो भी मलीनता के कषाय-कल्मषों के कारण उससे लाभ उठाना नहीं बन पड़ता । सूर्य का प्रकाश, ताप प्राप्त करनें के लिए कम से कम कमरे की खिड़की तो खोलनी पड़ती है । कोठरी छोड़कर धूप में बाहर निकलने जितना न्यूनतम पुरुषार्थ तो करना ही होगा । इतना भी न बन पड़ा तो सूर्य की गर्मी प्राप्त कर पाना कैसे सम्भव होगा ? ईश्वर से जुड़कर उसके दिव्य अनुदानों का लाभ उठाना तभी शक्य है जब अन्तःकरण पवित्र और उदात्त हो—मन निर्मल हो । परमेश्वर को निर्मलता, पवित्रता प्रिय है । एकरूपता स्थापित करने के लिए प्रारम्भिक चरण मनोनिग्रह के लिए उठाना पड़ता है । ध्यान साधना के विविध उपचार इसी प्रयोजन के लिए करने होते हैं ताकि मन की वृत्तियाँ परिमार्जित, परिष्कृत हो जायें ।

योग का तत्व दर्शन और प्रतिफल

सामान्यतया मनुष्य का चिन्तन पेट-प्रजनन में लगा रहता है । वासना, तृष्णा और अहंता के भव-बन्धनों में जकड़ा हुआ इन्हीं ललक लिप्साओं की पूर्ति में कोल्हू का बैल बना रहता है । इस स्थिति को उलटकर अन्तःकरण की भावनाएँ और मनःसंस्थान की विचारणाओं की उत्कृष्ट आध्यात्मिकता के साथ जोड़ देने के सुयोग को योग कहते हैं । साधारणतया स्वभाव संस्कार इसे करने नहीं देते । ऊँचा चढ़ने की इच्छा को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति रोकती है और बलपूर्वक नीचे घसीटती है । ऊपर चढ़ना, खींचना या उछालना अभीष्ट हो तो फिर साधन एवं सामर्थ्य जुटाने की आवश्यकता पड़ती है । आत्मा जब परमात्मा तक पहुँचने के लिए प्रयत्न करती है तो संचित कुसंस्कार इस मार्ग में अनेकानेक अड़चनें उत्पन्न करते हैं । उनके जूझने के लिए जो सरंजाम जुटाना है, इसी को योग साधना कहा जाता है ।

योगाभ्यास के नाम से बताई-अपनाई जाने वाली विभिन्न आकार-प्रकार की क्रिया-प्रक्रियाओं के मूल में एक ही उद्देश्य सन्निहित है कि अन्तरात्मा को पशु-प्रवृत्तियों से विरत करके महान की विशालता के साथ जोड़ दिया जाय । योग का अर्थ है—जोड़ना । किसे किसके साथ जोड़ा जाय ? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—आत्मा को परमात्मा के साथ । यहाँ आत्मा से अभिप्राय जीव की उस स्थिति से है जिसमें वह संचित कुसंस्कारों की दलदल में फँसा हुआ हेयन्द्र प्रयोजनों में रस लेता और उन्हीं में प्रवृत्त रहकर जीवन सम्पदा को समाप्त करता है । यहाँ परमात्मा से तात्पर्य ब्रह्म चेतना की उस तंरग से है जो जब भी मनुष्य से मिलेगी, आदर्शवादी उत्कृष्टता अपनाने की प्रेरणा अन्तःकरण में उत्पन्न करेगी । विशालता उसका स्वरूप है । यह आत्मीयता की व्यापकता है—जिसकी उदार सेवा साधना से ही तृप्ति होती है । पक्षी सुविस्तृत आकाश में उड़ने पर व्यापक अन्तरिक्ष को अपना कार्यक्षेत्र पाता है । परमात्मा की परिधि में प्रवेश करने वाले साधक को भी सर्वत्र अपना ही आपा दीखता है । वसुधैव कुटुम्बकम् की रीति-नीति अपनाने वाला दृष्टिकोण एवं कार्यक्रम ही वरण करना होता है ।

योग का तात्पर्य है—सीमित को असीम के साथ, क्षुद्र को महान के साथ, नर को नारायण के साथ, कामना को भावना के साथ, स्वार्थ को परमार्थ के साथ जोड़ देना । योगाभ्यास का समूचा परिकर साधक को उसी आस्था का अभ्यस्त बनाने के लिए सृजा गया है ।

घर में बल्ब, पंखे, हीटर, कूलर, रेडियो आदि उपकरण अपने आप में सही होने पर भी चलते तभी हैं, जब उनका सम्बन्ध बिजलीघर से जुड़ा हो । यह जोड़ने वाले तार न तो बिजली घर हैं और न उपकरण । फिर भी उन्हीं के आधार पर बिजली की शक्ति का लाभ मिल पाता है ।

बड़े तालाब और छोटे तालाब की ऊपरी सतह एक करनी हो तो दोनों के बीच नाली बना दी जाती है । बड़े का पानी छोटे में आने लगता है और वह प्रवाह तब तक चलता ही रहता है, जब तक कि दोनों की सतह एक जैसी नहीं हो जाती । योग साधना में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा और परमात्मा दोनों परस्पर जुड़ते हैं अन्ततः एक जैसे हो जाते हैं ।

बेल की कमर पतली होती है । वह फैल तो सकती है, पर ऊँची नहीं चढ़ सकती । पेड़ से लिपट जाने पर वह क्रमशः ऊपर उठने लगती है और पेड़ की ऊँचाई तक पहुँच जाती है । आत्मा बेल की तरह है, पर परमात्मा रूपी पेड़ से लिपटने लगे तो उसका स्तर भी उतना ऊँचा उठ जाता है ।

पतंग की डोर किसी कुशल उड़ाने वाले के हाथ में रहे तो वह कागज का टुकड़ा आसमान चूमता है । लकड़ी के नगण्य से टुकड़े से बनी कठपुतली जब बाजीगर के हाथों अपने को सौंप देती है तो उसका अभिनय देखते ही बनता है । उड़ाने वाले के हाथ से डोर छूट जाने पर पतंग जमीन पर ही पड़ी दिखाई देगी । यह बात कठपुतली के सम्बन्ध में भी है । बाजीगर से सम्पर्क न रहने पर वह किसी कोने में छितराई पड़ी होगी । डोरी को उपासना कह सकते हैं जो सही और सुदृढ़ हो तो आत्मा पतंग की तरह ऊपर उठेगी और कठपुतली की तरह प्रशंसा योग्य अभिनय करेगी ।

बाँस का टुकड़ा अपने को खाली कर देता है । साथ ही वादक के होठों के साथ सटकर समर्पण में भी कमी नहीं रहने देता; वादक की फूँक के अनुरूप बजने लगता है । यही है बंशरी का सौभाग्य जिससे उसकी ध्वनि पर सभी मोहित होते हैं । हिरन खड़े रह जाते हैं और साँप नाचने लगते हैं । योग में साधक को साध्य के प्रति यही आत्मसर्पण कथनी तक सीमित न रहकर करनी में उतारना पड़ता है ।

सीप का मुँह खुला होता है तो स्वांति बूँदों का अनुग्रह उसमें मोती उत्पन्न करने का सुअवसर प्रदान करता है । चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुए झाड़-झंखाड़ भी वैसे ही सुगन्धित बन जाते हैं । इसे एकात्मता का चमत्कार कह सकते हैं ।

आग के समीप पहुँचने पर हर वस्तु गरम होने लगती है । इसी प्रकार बर्फ की समीपता से ठण्डक का आनन्द मिलता है । ईंधन जब आग के साथ एकात्म होता है तो उसका अपना मूल्य नगण्य होने पर भी अग्नि के समस्त गुणों से भरपूर बन जाता है । उपासना की योगपरक प्रक्रिया यही है । उसमें आत्मसमर्पण और अनुशासन का अवधारण करना पड़ता है । तादात्म्य होने का यही तरीका है, इसमें भक्त को भगवान के अनुशासन मानने होते हैं, उसे अपनी मर्जी पर चलाने, मनोकामना को पूरी करने के लिए बाधित नहीं करना पड़ता । चिड़ीमार—मछली मार की तरह फुसलाकर चंगुल में फँसा लेने और उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कुचेष्टा कोई सच्चा भक्त नहीं कर सकता है और न वैसा कुछ सोच ही सकता है ।

नाला नदी में मिलकर तद्रूप होता है । नदी को लौटकर नाला बनने के लिए बाधित नहीं करता । बूँद समुद्र में अपने को विलीन करके उतनी ही विशाल बनती है, किन्तु समुद्र को बूँद बना लेने की बात नहीं सोचती । लोहा पारस से मिलकर अपनी कालिका गँवा देता है और उसका परिवर्तित स्वरूप सोना बनकर चमकता है । उसका यह आग्रह नहीं होता कि पारस को लोहा बनना चाहिए । पत्नी-पति को आत्मसमर्पण करती है और बदले में उसके यश-वैभव की उत्तराधिकारिणी बन जाती है । आग ईंधन नहीं बनती । ईंधन को ही आग बनना पड़ता है । पानी दूध में मिलता है और उसी में विलय हो जाता है । उसका यह हठ नहीं होता है कि दूध को पानी बनना चाहिए । वरिष्ठ के साथ कनिष्ठ जुड़ते हैं । वरिष्ठ को कनिष्ठ बनने के लिए विवश नहीं करते हैं । यही अध्यात्म योग है । आँधी के साथ चलने वाले तिनके और पत्ते आसमान में उड़ते दिखाई पड़ते हैं । भक्त की स्थिति भी भगवान को आत्म-समर्पण करने के उपरान्त ऊँची उठती चली जाती है और अन्ततः दोनों इकट्ठे होकर रहते हैं । बादल के साथ मिलकर समुद्र का खारी-भारी और अचल पानी आकाश की सैर करता है । वर्षा जल बन कर सबकी प्यास बुझाने का श्रेय प्राप्त करती है । भक्ति की प्रक्रिया एवं प्रतिक्रिया भी यही होती है ।

इस तरह से योग का अर्थ है जोड़—मिलना । अध्यात्म साधना के क्षेत्र में यह शब्द आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाली पुण्य प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त होता है । इसे सद्ज्ञान और सत्कर्म का समन्वय भी कह सकते हैं । ठण्डे गरम तार मिलने से विद्युत धारा प्रवाहित होती है । दोनों तारों में रहती तो वह पहले से ही है, पर परिचय तभी मिलता है जब दोनों का मिलन हो । संसार में सबसे बड़ा दुःख वियोग है । प्रिय परिजनों से विछुड़ जाने पर जितना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कष्ट होता है उतना अन्यत्र कहीं भी कभी नहीं होता । आत्मा को अपने परम प्रिय परमात्मा से विलग होने पर अहिर्निश पग-पग पर कुकर्म घेरते हैं और शोक-सन्ताप तथा दुःख देते हैं । अपहरण की घटना के बाद सीताजी को भी दुःख सहना पड़ा और राम भी उद्विग्न ही बने रहे ।

मोटे शब्दों में भौतिक और अध्यात्म का समन्वय योग कहा जा सकता है । साधनों की कमी नहीं । निर्धन कहलाने वाले व्यक्ति के पास भी शरीर, मन, बुद्धि, प्रतिभा आदि साधन होते हैं । सहयोग, प्रभाव, सम्पर्क भी हर किसी को न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध रहता ही है । धन तथा अन्य साधन भी किसी कदर होते ही हैं । यह सब मिलकर इतना हो जाता है कि इतने का ही यदि ठीक प्रकार उपयोग हो सके, उनको उचित रीति से उचित प्रयोजनों में संलग्न किया जा सके तो कुछ ही समय में आश्चर्यजनक प्रतिफल दृष्टिगोचर हो सकते हैं । पर होता अत्यन्त विचित्र है । यह सभी साधन आदर्शवादी लक्ष्य के अभाव में ऐसे ही अस्त-व्यस्त होते रहते हैं और उस अपव्यय के फलस्वरूप चित्र-विचित्र दुष्परिणाम उत्पन्न होते रहते हैं । अपनी ही क्षमता अपने ही विनाश में संलग्न रहे तो इसे अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना ही कहा जायेगा ।

साधन और सत् प्रयोजन का समन्वय हो सके तो उसे व्यावहारिक जीवन का योग कहा जायेगा । इस सुयोग की व्यवस्था जिनने भी बनाई होगी वे स्वल्प साधनों से भी आशातीत प्रगति कर सकने में समर्थ हुए होंगे । जिन्हें यह सन्मार्ग नहीं मिला । जो साधनों को बाल क्रीड़ा के मनोविनोदों में गँवाते रहे और दुर्जनों की भाँति उन्हें दुष्कर्मों में नष्ट करते रहे ऐसे मनुष्यों की जीवन सम्पदा सुर दुर्लभ होते हुए भी अभिशाप दुर्भाग्य ही सिद्ध होती रहेगी ।

मनुष्य जीवन का मूल्य, उत्तरदायित्व एवं सदुपयोग न समझ सकने के कारण ही हेय गतिविधियाँ गले बँधती हैं और सर्वनाश का पथ-प्रशस्त होता है । जन्म-जन्मान्तरों से संग्रहीत पशु प्रवृत्तियाँ अपने उन्हीं हेय संस्कारों के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाने के लिए आकर्षित करती रहती हैं जो निकृष्ट योनियों में भले ही उपयोगी रही हों पर मनुष्य स्तर में पहुँचने के बाद वे सर्वथा अनुपयुक्त पड़ती हैं । बचपन के कपड़े बड़े होने पर निरर्थक हो जाते हैं । बड़ा आदमी बच्चों की तरह तोतली बोली बोले या खिलबाड़ करे तो उससे मात्र उपहास ही होगा । पशु प्रवृत्तियों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए यदि नर वानरों जैसा चिन्तन एवं कर्तृत्व अपनाया जाय तो उस रीति-नीति को दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा ।

योगाभ्यास का आरम्भ चित्तवृत्तियों के निरोध से आरम्भ होता है । पातंजलि योग दर्शन के पाद १ सूत्र २ में योग की व्याख्या करते हुए उसे चित्तवृत्तियों को रोकने की प्रक्रिया बताया गया है । आमतौर से इसका अर्थ चित्त निरोध-एकाग्रता का अभ्यास समझा जाता है । यह अभ्यास योग का बहुत छोटा अंश है—इसे योग का भौतिक भाग कह सकते हैं । एकाग्रता अध्यात्म साधकों को ही नहीं ऐसे अनेक संसारी उसमें पारंगत होते हैं जिनका अध्यात्म से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है । सरकस के नट-नर्तकों का सारा खेल एकाग्रता की सिद्धि पर ही टिका होता है । यदि उनका ध्यान बँटने लगे तो तार पर चलने, झूलों पर उछलने, जलती मशालों की शृंखला उछालने जैसे करतव दिखा सकना किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा । हिसाब-किताब सही रखने वाले मुनीमों में अपने काम में समुचित एकाग्रता रखने की ही विशेषता होती है । वैज्ञानिक, कलाकार, चित्रकार, मूर्तिकार साहित्यकार आदि अपने-अपने विषयों में तन्मय हो सकने की विशेषता उत्पन्न करते और सफल होते हैं । बन्दूक का सही निशाना लगाना एकाग्रता की शक्ति पर ही निर्भर है। ऐसे ही अन्य अनेक काम हैं जिनसे लोग एकाग्रता सम्पादित करते हैं और चमत्कारी सफलताएँ प्राप्त करते हैं । इसे एक मस्तिष्कीय कौशल कह सकते हैं । अध्यात्म प्रयोजनों में भी इस विशेषता की आवश्यकता पड़ती है । इतना होते हुए भी मात्र इसी विशेषता के आधार पर किसी को योगी नहीं कहा जा सकता ।

चित्त निरोध का अर्थ है—मन की अस्त-व्यस्त उछल-कूद को नियन्त्रित करके किसी विशेष प्रयोजन में लगे रहने का अभ्यास । यह आवश्यक भी है और सराहनीय भी, पर इससे योग साधना का प्रयोजन पूरा नहीं होता । आत्मिक प्रगति के लिए मात्र चित्त की नहीं—गहराई में उतर कर चित्तवृत्तियों के निरोध की बात सोची जानी चाहिए । चित्त निरोध और चित्तवृत्तियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के बीच का अन्तर प्रत्येक विचारशील के मन मस्तिष्क में स्पष्ट रहना चाहिए ।

कितने ही अध्यात्म क्षेत्र के महामानव ऐसे हुए हैं जिनमें एकाग्रता कम और चंचलता अधिक थी । मीरा, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, सूरदास आदि भक्त शिरोमणि स्तर के समझे जाने वाले मूर्धन्य अध्यात्मवादियों को एकाग्रता की नहीं वरन् व्याकुलता की सिद्धि थी । लक्ष्य के प्रति व्याकुलता का भी उतना ही मूल्य है जितना एकाग्रता का । स्वामी विवेकानन्द से किसी ने पूछा कि ईश्वर प्राप्ति की सम्भावना किस स्तर की मनोभूमि में होती है ? इसका उत्तर देने के लिए उन्होंने बात को फिर कभी के लिए टाल दिया । एक दिन वे उस प्रश्न कर्त्ता को अपने साथ नदी स्नान के लिए ले गए । उसे भी अपने साथ भीतर चलने के लिए कहा । कंठ तक पानी में उतर जाने पर उन्होंने जिज्ञासु की गरदन पकड़ ली और उसे बलपूर्वक पानी में डुबो दिया । जब वह घबराया तो उन्होंने उसे छोड़ दिया । इस विचित्र व्यवहार का कारण पूछने पर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यही तुम्हारे उस दिन के प्रश्न का उत्तर है जिसमें ईश्वर को प्राप्त करने की मनःस्थिति के बारे में पूछा गया है । डूबते समय तुम्हें अपनी प्राण रक्षा के लिए उत्कट प्रयत्न करने के अतिरिक्त और किसी बात का ध्यान नहीं था । ठीक यही स्थिति साधक की होनी चाहिए उसे ईश्वर की प्राप्ति के लिए इतनी व्याकुलता हो कि अन्य कोई बात सूझ ही न पड़े । इस प्रसंग में उस एकाग्रता का समर्थन है जो व्याकुलता के कारण उत्पन्न हुई हो ।

किन चित्तवृत्तियों का अवरोध करना होगा इसका संकेत पातंजलि योग दर्शन के पाद १ सूत्र ६ में दिया गया है । कहा गया है—"प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृतयः" प्रायः यही पाँच प्रकार की चंचलताएँ मन पर छाई रहती हैं और उसे उच्च उद्देश्यों से विरत करके पशु प्रवृत्तियों में उलझाती हैं । प्रमाण वृत्ति उसे कहते हैं जो इन्द्रिय विषयों के पूर्वाभ्यास के सम्बन्धित विषयों के प्रसंग सामने आने पर उभरती है, विपर्यय कहते हैं । प्रतिकूल ज्ञान को वस्तु स्थिति की जानकारी न होने से चित्त कस्तूरी के हिरन की तरह मृग तृष्णा में मारे-मारे फिरने वाले मृग की तरह उद्विग्न फिरता है । विकल्प का अर्थ है—भय, आशंका, सन्देह, अशुभ सम्भावना आदि कुकल्पनाओं से उत्पन्न कातरता । निद्रा का अर्थ है—आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, अवसाद, अनुत्साह । स्मृति वे संस्मरण हैं जो निकृष्ट योनियों में रहते समय अभ्यास में आते रहे—स्वभाव के अंग बने रहे । उनकी छाया मनुष्य योनि में भी छाई रहती है और उसके फलस्वरूप कई बार इतने जोर से उभरती है कि विवेक मर्यादाओं के बाँध तोड़कर वैसा करा लेती है जिसके सम्बन्ध में पीछे पश्चात्ताप करना ही शेष रह जाता है ।

जिस युग में, जिस समाज में, जिस वातावरण में हम रहते हैं उसमें अवांछनीय प्रचलनों की कमी नहीं । उनका आकर्षण मन को अपनी ओर खींचता लुभाता है । पानी स्वभावतः नीचे गिरता है । अधिकांश लोग अवांछनीय गतिविधियाँ अपना कर अनुपयुक्त जीवन जीते हैं । इसमें वे तात्कालिक लाभ भी पाते हैं, पीछे भले ही उन्हें दुष्परिणाम भुगतने पड़ें । इस तत्काल लाभ की बात सहज ही मन को आकर्षित करती है और दबी हुई दुष्प्रवृत्तियाँ उभर कर उस मार्ग पर घसीट ले जाती हैं जो मनुष्य जैसे विवेकवान प्राणी के लिए अशोभनीय है ।

योग साधना का मूल उद्देश्य इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के साथ प्रचण्ड संघर्ष खड़ा कर देना है । जिस महाभारत में कृष्ण और अर्जुन ने सम्मिलित भूमिका निवाही थी वह आत्म-परिष्कार में योग साधना के साथ पूरी तरह सम्बन्धित है । कौरव दल इन्हीं कुसंस्कारों का नाम है जो निकृष्ट योनियों से साथ चले आ रहे हैं और वातावरण में घुसी अवांछनीयता के कारण भड़कते हैं । कौरवों ने पाण्डवों की सारी सम्पदा हथिया ली थी । उसे वापस लेने के लिए युद्ध करना पड़ा । आत्मिक गरिमा पर असुरता आच्छादित हो रही है । उसे इस चंगुल से छुड़ाने के लिए विरोध प्रतिरोध का महाभारत खड़ा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय रह नहीं गया था । योगाभ्यास में भी इसी 'निरोध' प्रतिरोध का विरोध संघर्ष का उल्लेख है । इसमें आत्मा और परमात्मा का, सद्ज्ञान सत्कर्म का, समन्वय करने पर विजय सर्वथा निश्चित हो जाती है ।

योग के इस दार्शनिक पक्ष को परिपुष्ट करने के लिए कतिपय वृथा कृत्यों का अवलम्बन करना पड़ता है । पहलवान बनने के लिए व्यायामशाला में सिखाये जाने वाले दण्ड, बैठक आदि कर्मकाण्डों को पूरा करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है । साथ ही ब्रह्मचर्य, पौष्टिक आहार, मालिश आदि की विधि व्यवस्था अपनानी पड़ती है । इन अभ्यासों से अन्तरंग में छिपी बलिष्ठता उभरती है और मनुष्य कुछ ही समय में पहलवान स्तर का बनता चला जाता है । योगाभ्यास की निर्धारित गतिविधियाँ अपनाने का भी ऐसा ही प्रतिफल होता है ।

इन अभ्यासों की उपयोगिता भी है और आवश्यकता भी । शास्त्रकारों ने योग साधना का महात्म्य भी बताया है और उसके स्वरूप एवं तत्व दर्शन को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा है—

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्वज्ञानं च लभ्यते ॥

—घेरण्ड संहिता १।५

जैसे क ख ग घ से अक्षरारम्भ का अभ्यास करते हुए शास्त्रज्ञ, विद्वान् बन जाते हैं, वैसे ही योग का अभ्यास करते-करते तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

ज्ञान और कर्म के उभय युग्मों के समन्वय को योग से योग की प्राप्ति कहा जाता है ।

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगे न सयोगी रमते चिरम् ॥

—महायोग विज्ञान

योग साधना से ही योग को जानना चाहिए । साधना से ही योग की प्राप्ति होती है । जो सावधानी के साथ योग साधना में निरत है, वही चिरकाल तक आनन्द पाता है ।

तथेति स-होवाच—

योगेन योगो ज्ञातव्या योगो योगात् प्रवर्धते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन न रमते चिरम् ॥१॥

—सौभाग्य-लक्ष्म्युपनिषद् १

उन्होंने कहा—योगाभ्यास से योग की अभिवृद्धि होती है । योग के द्वारा ही योग को जानना चाहिए । योग में ही दत्त चित्त रहने वाला व्यक्ति चिर शान्ति उपलब्ध करता है ।

योग न तो कठिन है, न अशक्य है वह सर्वसाधारण के लिए सुलभ है । इस मार्ग पर न्यूनाधिक जितना भी चला जा सके उतना लाभ ही है । हानि की तो आशंका है ही नहीं ।

जड़ पदार्थों में १+१ का जोड़ २ बनता है । प्राणियों की चेतना का सहयोग समन्वय होने से यह तथ्य भिन्न प्रकार से होता है । १ और १ को बराबर रख देने से ११ बन जाते हैं । दो सच्चे मित्र सहयोगी मिलकर असाधारण काम करते हैं, दो बैलों की जोड़ी से खेती का सारा काम चलता है । गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी का सहयोग छोटे से परिवार में स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है । यदि आत्मा और परमात्मा का सद्ज्ञान और सत्कर्म का समन्वय हो सके तो समझना चाहिए इस उच्चस्तरीय योग का परिणाम एक से एक बढ़ी-चढ़ी सिद्धियों और विभूतियों के रूप में सामने उपस्थित होगा ।

आध्यात्मिक भाषा में योग उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके आधार पर दो प्रमुख आध्यात्मिक तत्वों का मिलन होता है । मस्तिष्क और हृदय को, माया और मुक्ति को, पाप और पुण्य को, मन और आत्मा को एक सूत्र में बाँध देने, एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत कर देने से द्वैत मिट कर अद्वैत बन जाता है और विछोह दूर होकर एकीकरण का ब्रह्मानन्द प्राप्त होने लगता है ।

योग का कार्य है जोड़ना, मिलाना । आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाले जितने भी साधन, उपाय, मार्ग हैं, वे सब आध्यात्मिक भाषा में योग कहे जायेंगे । योगों की संख्या असीमित है । भारतीय योग शास्त्रों में सब मिलाकर लगभग ६००० योग साधन अब तक देखे जा चुके हैं । शोध करने पर उनकी संख्या अभी इससे कई गुनी अधिक निकलेगी । संसार के विविध देशों, धर्मों और विज्ञानों के अनुसार योगों की संख्या इतनी बड़ी है कि उनकी गणना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । इतना होते हुए भी इन समस्त वेगों का उद्देश्य एवं कार्य एक ही है । वे सभी पृथकता को मिटाकर एकता की स्थापना करते हैं । अभाव को भाव से, अपूर्णता से मिलने की विद्या योग कही जाती है । जीव अपूर्ण है, अभावग्रस्त है, दुःख-द्वन्द्वों से आच्छादित हो रहा है इसको पूर्णता से, साधनों से, ज्ञान से, आनन्द से परिपूर्ण बनने के लिए जो उपाय काम में लाये जाते हैं वे योग कहलाते हैं ।

योग साधना सबसे बड़ी, सबसे महत्त्वपूर्ण विद्या है, क्योंकि उसके द्वारा उन वस्तुओं की प्राप्ति होती है जो मनुष्य के लिए सबसे अधिक आवश्यक, सबसे अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयोगी है । जिस उपाय से जितने बड़े लाभ की प्राप्ति होती है वह उतना ही बड़ा लाभ समझा जाता है । अन्य सांसारिक चतुरताओं, शक्ति सत्ताओं द्वारा जो लाभ प्राप्त किए जाते हैं वे भौतिक और क्षणिक होते हैं । उनके द्वारा केवल सांसारिक वस्तुएँ किसी हद तक प्राप्त की जाती हैं किन्तु योग के द्वारा जो वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं वे अधिक ऊँची श्रेणी की होती हैं, उनमें अधिक स्थायित्व होता है । उनके द्वारा मनुष्य को सुख भी अधिक ऊँची श्रेणी का, अधिक ऊँची मात्रा में प्राप्त होता है, इसलिए योग को सर्वश्रेष्ठ विद्या माना गया है ।

सांसारिक योग्यताओं तथा शक्तियों द्वारा धन, स्त्री, पुत्र, पद, वैभव, स्वास्थ्य, विद्या आदि को प्राप्त किया जा सकता है । पर इन चीजों की प्राप्ति होने पर भी न तो मनुष्य को तृप्ति मिल सकती है और न अभाव जन्य दुःखों की निवृत्ति होती है, क्योंकि वस्तुओं में सुख तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक वे प्राप्त हों । पर थोड़ा-बहुत रस उनमें तब तक रहता है जब तक कि उस वस्तु के प्रति आकर्षण की मात्रा विशेष रहती है, जैसे ही वह आकर्षण पड़ा कि वह वस्तु भार निरर्थक, उपेक्षणीय एवं तुच्छ प्रतीत होने लगती है । फिर उसकी ओर से मन हट जाता है और नई वस्तु में सुख तलाश करने लगता है । यह क्रम चलता ही रहता है । प्राप्ति के साथ-साथ तृष्णा बढ़ती है । फलस्वरूप कितनी ही बड़ी मात्रा में, कितनी ही उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति हो जाय मनुष्य को सन्तोष नहीं हो सकता और सन्तोष के बिना शान्ति असम्भव है ।

सच्ची शान्ति तब मिलती है जब वह वस्तु मिल जाय जिसके बिछुड़ने से आत्मा को बेचैनी रहती हो । वह वधू जिसका हृदयेश्वर प्राण पति बिछुड़ गया है तब तक चैन नहीं पा सकती जब तक उसको अपने बिछुड़े हुए साथी की प्राप्ति न हो जाय । वह माता जिसका बालक खो गया है तब तक चैन से न बैठेगी जब तक अपने बालक को पाकर उसे छाती से न लगा ले । वियोगिनी माता या विरहिणी वधू को उनके प्रिय जन प्राप्त न हो जायें । यदि अन्य वस्तुएँ देकर उनके विछोह के दूर करने का प्रयत्न किया जावे तो सफलता न मिलेगी । वे किसी अन्य वस्तु को लेकर सन्तुष्ट न हो सकेंगी । यही बात आत्मा की है । वह परमात्मा के वियोग में अतृप्त, बेचैन, विरहिणी बनी हुई है । हमारा मन उसके सामने तरह-तरह के प्रलोभनकारी खेल-खिलौने उपस्थित करके बहलाना चाहता है; उसके वियोग को भुलाना चाहता है पर आत्मा की बेचैनी वैसी नहीं है जो इन खेल-खिलौनों से दूर हो सके । फलस्वरूप सुख-शान्ति के लिए कितनी श्री, समृद्धि, कीर्ति, शक्ति एकत्रित करली जाय, पर आत्मा का असन्तोष दूर नहीं होता । बेचैनी मिटती नहीं । अशान्त आत्मा को लोक और परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलता ।

योग और उसकी उपयोगिता

आत्मा और परमात्मा को—जड़ और चेतन को—प्रकृति और पुरुष को जोड़ देने की प्रक्रिया का नाम योग है । यह ज्ञान और कर्म के दो युग्मों में विभक्त है । ज्ञान योग वह है जो चिन्तन को हेय स्तर से ऊँचा उठाकर देव स्तर तक ले जाता है । और मनोवृत्तियों को ब्रह्म चेतना में नियोजित करता है । कर्मयोग वह है जिसमें दैनिक क्रिया-कलाप को परमार्थ प्रयोजन के आधार पर संचालित किया जाता है । शरीर और मन को पूर्व संचित पशु संस्कारों से विरत करके दिव्य जीवन के लिए अभ्यस्त करने की जो शारीरिक, मानसिक व्यायाम पद्धतियाँ हैं वे भी योगाभ्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं । आसन प्राणायाम, जप, ध्यान, व्रत, तप, मुद्राबंध आदि साधनाएँ उसी स्तर की हैं ।

ज्ञान और कर्म की दोनों ही धाराएँ जब पशुस्तर से ऊँची उठकर देवस्तर की ओर अग्रसर होती हैं तो उसे समग्र साधना कहते हैं । केवल स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन, ध्यान प्रभृति, ज्ञान पक्ष तक सीमित रहने वाली प्रक्रिया अपूर्ण एवं एकांगी है । उसी प्रकार जिन्होंने चिन्तन परिष्कार को तिलांजलि देकर मात्र जप, तप के हठयोग के काय-कष्ट तक सीमित विधि-विधान को ही सब कुछ मान लिया है वे भी एक पहिये की गाड़ी चलाने वालों की तरह असफल रहते हैं ।

बिजली के ठण्डे और गरम दो तार जब मिलते हैं तब विद्युत प्रवाह संचालित होता है । इसी प्रकार ज्ञान और कर्म का—समन्वित रूप से भावना और साधना का स्तर समान रूप से—आगे बढ़ाया जाता है तो योग साधना की समग्र प्रक्रिया पूर्ण होती है और उसका वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभ मिलता है जो सच्चे योगियों को प्राप्त होता रहा है । अध्यात्म शास्त्र में वर्णित योग साधना का महत्त्व ऐसी ही सर्वांगपूर्ण साधना से सम्पन्न होता है ।

योग के महत्त्व महात्म्य की कुछ चर्चा इस प्रकार मिलती है—

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्वज्ञानं च लभ्यते ॥

—घेरण्ड संहिता १।५

जैसे क ख ग घ से अक्षरारम्भ का अभ्यास करते हुए शास्त्रज्ञ, विद्वान बन जाते हैं, वैसे ही योग का अभ्यास करते-करते तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

ज्ञान और कर्म के उभय युग्मों के समन्वय को योग से योग की प्राप्ति कहा जाता है ।

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगे न सयोगी रमते चिरम् ॥

—महायोग विज्ञान

योग साधना से ही योग को जानना चाहिए । साधना से ही योग की प्राप्ति होती है । जो सावधानी के साथ योग साधना में निरत है, वही चिरकाल तक आनन्द पाता है ।

तथेति स-होवाच—

योगेन योगो ज्ञातव्या योगो योगात् प्रवर्धते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन न रमते चिरम् ॥१॥

—सौभाग्य-लक्ष्म्युपनिषद् १

उन्होंने कहा—योग से योग की अभिवृद्धि होती है । योग के द्वारा ही योग को जानना चाहिए । योग में ही दत्त चित्त रहने वाला चिर शान्ति उपलब्ध करता है ।

योग न तो कठिन है, न अशक्य है वह सर्व-साधारण के लिए सुलभ है । इस मार्ग पर न्यूनाधिक जितना भी चला जा सके उतना लाभ ही है । हानि की तो आशंका है ही नहीं ।

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा ।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥
न वेषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः ॥

—हठयोग प्रदीपिका १।६४-६६

युवा, वृद्ध, अति वृद्ध, रोगी, दुर्बल कोई भी योगाभ्यास करके सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।

सिद्धि वेष धारण से नहीं मिलती । केवल पढ़ने, सुनने से भी काम नहीं चलता । अभ्यास करने से ही सफलता मिलती है यह निःसन्देह है ।

एते गुणाः प्रवर्तन्ते योगमार्गकृतश्रमैः ।
यस्माद्योगं समादाय सर्वदुःखबहिष्कृतः ॥

—ब्रह्म विद्योपनिषद् ५८

योगाभ्यास में जो श्रम किया जाता है वह निरर्थक नहीं जाता । प्रयत्नपूर्वक की हुई साधना समस्त दुःख, शोकों का निवारण कर देती है ।

यह न सोचना चाहिए कि वृद्ध होने पर सब कार्यों से निश्चिन्त होकर योग साधना करेंगे वरन् सही बात तो यह है कि जब तक शरीर और मन समर्थ है तब तक युवावस्था में ही इस पुरुषार्थ को कर गुजरना चाहिए । भगवान कृष्ण ने युवा अर्जुन की योग साधना को प्रशंसनीय एवं उचित बताते हुए कहा—

त्वया साधु समारब्धि न वे वयसि यत्तपः
ह्रियन्ते विषयैः प्रायो वर्षीयासोऽपि यादृशाः,

—किरातार्जुनीयम्

हे अर्जुन ! यौवन में तपश्चर्या आरम्भ करके तूने ठीक ही किया है । मेरे जैसे बूढ़े पुरुषों को भी विषय अपनी ओर आकर्षित करते हैं ।

साधयेद्या चतुर्वर्ग सैवास्ति नुसाधना ।

—मनु

जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही सधते हों वही सच्ची योग साधना है ।

योग साधना की महत्ता का उल्लेख करते हुए तन्त्र शास्त्रों में कहा गया है—

योगहीनं कथं ज्ञान मोक्षदं भवतीश्वरि ।

—योगबीज १०

हे परमेश्वरि ! योग रहित, ज्ञान रहित ज्ञान किस तरह मोक्ष दायक हो सकता है ?

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये ॥

—योग बीज ३१

प्रिये ! ज्ञान निष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय और देवता भी योग के बिना मोक्ष लाभ नहीं कर सकते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि ।
सारस्तुत् योगिभिः पीतस्तकं पिबन्ति पण्डिताः ॥

—ज्ञानसंकालिनी तन्त्र ५१

चारों वेद और समस्त शास्त्रों को मथ कर सारा मक्खन तो योगी चाट गए हैं और असार भाग पण्डित पी रहे हैं ।

ऊर्ध्वरिता भवेद्यस्तु सदेवो न तु मानुष्यः

—तन्त्र

ऊर्द्धरिता योगी मनुष्य नहीं ईश्वर ही होता है ।

अनेक शत संख्याभिस्तर्क व्याकरणादिभिः ।
पतितः शास्त्रा जालेषु प्रज्ञया ते विमोहिताः ॥

—योग बीज ८

सैकड़ों तर्कशास्त्र तथा व्याकरण आदि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जाल में फँसकर विमोहित हो जाते हैं । वास्तविक ज्ञान तो योग से ही होता है ।

देहेस्मिन् वर्तते मेरुः सप्त द्वीप समान्वितः ।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥
ऋषयो मुनयेः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्यतीर्थानि पाणेनि वर्तन्ते पीठ देवताः ॥
सृष्टि संहार कर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नमो वायुश्च वानिश्च जलं पृथ्वी तर्थवच ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि यानि सर्वाणि देहतः ।
मेरुं सवेष्ठय सर्वत्र व्यवहारा प्रवर्तति ॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ।
ब्रह्माण्ड संज्ञके देहे यथा देश व्यवास्थितः ॥

—शिव संहिता प. २

इस मानव-देह में मेरु पर्वत, सातों द्वीप, समस्त नदियाँ और समुद्र, पर्वत, समस्त प्रदेश, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, सिद्धपीठ और उनके देवता सृष्टि का संहार करने वाले—सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पाँचों तत्व सब कुछ पाया जाता है । तीनों लोक में जो कुछ है वह सब इस देह में भी मौजूद है । जो इस रहस्य को पूर्ण रूप से जानता है वही सच्चा योगी है । जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह इस मानव देह रूप पिण्ड में भी पाया जाता है ।

योग महिमा के ऐसे सैकड़ों श्लोकों का वर्णन तन्त्रों में आया है । डॉ. राधाकमल मुकर्जी के अनुसार, "वास्तव में इस उपासना का प्रारम्भ कामना तथा मनोभावों से होता है और इसका पर्यवसान यौगिक समाधि में होता है । योग सम्बन्धी अनुकूल नाड़ियों, चक्रों तथा चक्रों के अन्दर रहने वाली शिराओं को ध्यान के द्वारा जागृत कर उपासक अपने शरीर और मन पर अधिकार कर लेता है और अन्त में जाकर निराकार के ध्यान से स्थित प्राप्त करने में समर्थ होता है ।

तन्त्र अष्टांग योग का भी अनुकरण करता है । यथा—

यमनियमगुणौश्च स्वात्मशुद्धिं विधाय
स्ववशविविधपीठैरेव भूत्वा स्थिरात्मा ।
असुनियमजलेन स्नापयेद्दिव्यलिङ्ग
प्रकटितचुरङ्ग ब्राह्यमेतद्विधानम् ॥
शम्भोरथेन्द्रियनिवर्तनमेव गन्धो
ध्यानं प्रासूननिचयो दृढ़धारणा सा ।
धूपः समाधिरथशुद्धमहोपहारं
आभ्यन्तराख्यचतुरङ्गविधानमेतत् ॥
एवमष्टाङ्गयोगेन सदान्तः पद्मसद्मनि ।
पूज्येन्परमं देवं किं बाह्यैर्देवपूजनैः ॥

यमनियमों से सम्बन्धित २४ गुणों से आत्म-शुद्धि करना, आसनों से शरीर की स्थिरता करना, प्राणायाम रूपी जल से दिव्यलिंग का अभिषेक करना ही बाह्य चतुरंग कहा जाता है । शम्भु की इन्द्रियों के विषय निवृत्ति रूप प्रत्याहार को गन्ध कहते हैं । पुष्प की संज्ञा इन्द्रिय निवृत्ति से अन्तर्मुख हुए मन में शिव-ध्यान जमाना है, उन्हें दृढ़तापूर्वक धारण करने को धारणा कहा गया है और ज्ञाताज्ञात रूप-समाधि ही नैवेद्य है । इसे आभ्यन्तर चतुरंग कहते हैं । शिव-योगी को इस तरह अष्टांग योग की साधना करते हुए अपने हृदय में शिव का पूजन करना चाहिए ।

तन्त्रों में अष्टांग योग के सभी अंगों का विस्तृत विवेचन है । शारदातिलक (२५।७) में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार व शौच का वर्णन है, जिन्हें यम यहा जाता है । अगले श्लोक (८) में तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देव-पूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्रीं, मति, जप व होम दस नियम बताये गए हैं । आसनों का वर्णन श्लोक ९।१५ में है । प्राणायाम का वर्णन १६।२२ में है । पाँच प्राणों—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान और उप-प्राण—नाग, कूर्म,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कृक्र, देवदत्त और धनञ्जय का वर्णन १।४४ में है । (२५।२३) में प्रत्याहार की व्याख्या है । २४, २५ में धारणा का विवेचन है । २६वें श्लोक में ध्यान की परिभाषा की गयी है ।

अत्रिसंहिता में उल्लेख है—

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम् ।
योगः परं तपो ज्ञेयस्तस्माद्योगं समभ्यसेत् ॥१॥
नचतीव्रेण तपसान् स्वाध्यायैर्न चेज्यया ।
गतिं गन्तुं द्विजाः शक्ता योगात्संप्राप्नुवन्तियाम् ॥२॥

योग से ज्ञान प्राप्त होता है, योग ही धर्म का लक्षण है और योग ही परम तप है, इसलिए योग का अभ्यास करना चाहिए ।। १।।

कड़ी तीव्र तपस्या, सर्वदा शास्त्रों के अध्ययन से जो गति नहीं मिलती वह द्विजों को योगाभ्यास से मिल जाती है ।।२।।

विदुर नीति में भी कहा है—"योगेन रक्ष्यते धर्मो विद्या रक्ष्यते" योग से विद्या और धर्म रक्षित होते हैं । फिर कहा है कि संसार के ताप से तपे हुए मनुष्यों को योग ही परम औषधि है "भव तापेन तप्तानां योगहि परमौषधम् ।"

यजुर्वेद में कहा है कि—

"सीरा युञ्जन्ति कवयोयुगा
वितन्वते पृथक् धीरा देवेषु सुम्न्या ।"

—य. अ. १२ मं. ६७

(कवयः) जो विद्वान योगी लोग और (धीराः) ध्यान करने वाले हैं वे (सीरा युञ्जन्ति) यथायोग्य विभाग से नाड़ियों में अपनी आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं (युगः) जो योग युक्ति कर्मों में तत्पर रहते हैं (वितन्वते) अपने ज्ञान और आनन्द को विस्तृत करते हैं (देवेषुसुम्नया) वे विद्वानों के बीच में प्रशंसित होकर परमानन्द को प्राप्त करते हैं । गीता में कहा है—

वेदषु यज्ञेषु तपः सुचैव, दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

—गी. अ. ८ श्लोक २८

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों को पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादिकों के करने में जो पुण्यफल कहा है उस सबको छलांग जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है । इसलिए भगवान श्रीकृष्णजी ने कहा है कि—

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

—भ. गी. अ. ६ श्लोक ४६

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ और शास्त्र के ज्ञांन वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो ।

योग भ्रष्ट पुरुष पुनर्जन्म में भी योगरत् होता है । यदि योगी, योग को यथावत् पूर्ण करने से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो, तो उसका योग निष्फल नहीं जाता । जैसा कि भगवान कृष्ण जी ने कहा है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

—भ. गी. अ. ६ श्लोक ४१

योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादिक उत्तमं लोकों को प्राप्त होकर उनमें बहुत वर्षों तक वास करके शुद्धाचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है ।

योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरंलोके जन्म यदीदृशम ॥

—भ. गी. अ. ६ श्लोक ४२

वैराग्यवान पुरुष उन लोकों अर्थात् लोगों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है परन्तु इस प्रकार का जो जन्म है सो संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है । इस विषय का वेदोक्त प्रमाण भी लिखते हैं—

विधेमते परमे जन्मन्नग्ने विधे मस्तोमैरैवरेसधस्थे ।
यस्म द्योरुदारिथा यजेतं प्रत्वेहवीं ँ पिजुहुरेस्समिद्धे ॥

—यजु. अ. १७ मं. ७५

इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है, इस तरह संसार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाले होते हैं । सब योगीजन जैसे अग्नि ईंधन को जलाता है वैसे ही समस्त दुःख, अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं । इस मन्त्र से पुनर्जन्म भी सिद्ध होता है ।

योग साधन की प्रधान सामग्री

ब्रह्म विद्या के जिज्ञासु मुमुक्षु (स्त्री हो या पुरुष) सभी को योगाभ्यास करना उचित है । पूर्ण योगी होने के निमित्त उसको अग्रलिखित सामग्री बलपूर्वक प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहिए । श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा यह योग साधन सामग्री है । इसी के द्वारा पुरुष योगी होता है ।

(१) 'श्रद्धा'—परमात्मा में विश्वास पूर्वक दृढ़ भक्ति और प्रेम भाव तथा लोक और परलोक के विषयों में तृष्णा रहित योग में होने वाली रुचि को 'श्रद्धा' कहते हैं ।

(२) 'वीर्य'—श्रद्धालु तथा विवेक के अर्थी पुरुष का योग सम्पादन के लिए जो उत्साह है उसको 'वीर्य' कहते हैं ।

(३) 'स्मृति'—उत्साह वाले पुरुष को वेद अनुमान तथा आचार्योपदेश से जाने हुए योग साधनों में होने वाले स्मरण का नाम 'स्मृति' हैं ।

(४) 'समाधि'—समाहित चित्त अर्थात् चित्त की सावधानता तथा एकाग्रता 'समाधि' कहलाती है ।

(५) 'प्रज्ञा'—निर्मल बुद्धि जिससे कठिन विषय भी शीघ्र समझ में आ सके तथा उससे किसी प्रकार का संशय (शंका) भ्रांति न रहे, ऐसी विमल ज्ञान कारिणी बुद्धि को 'प्रज्ञा' जानो ।

इन उक्त पाँचों साधनों का अभ्यास करके मुमुक्ष जिज्ञासु योगीपन की योग्यता स्वरूप सामग्री प्राप्त करें । यहाँ श्रद्धा आदि उपायों का परस्पर कार्यकरण भाव है । अर्थात् प्रथम श्रद्धा से वीर्य, वीर्य से स्मृति, स्मृति से समाधि और समाधि से प्रज्ञा एवं प्रज्ञा से परवैराग्य (तृष्णा का त्याग करना) तथा परवैराग्य असम्प्रज्ञात समाधि होती है । उक्त श्रद्धा आदि साधनों वाले योगियों के मध्य में जिनको शीघ्र असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ होता है पातंजलि महर्षि ने योगदर्शन में कहा है—

"तीव्र संवेगानामासन्नः"

—पा. समाधि पा. सु. २१

अर्थात् तीव्र वैराग्य वाले योगियों को शीघ्र समाधि तथा फल कैवल्य 'मोक्ष' का लाभ होता है ।

योग साधकों को अपना आहार-विहार कैसा रखना चाहिए, इस सम्बन्ध में शास्त्रों में विस्तृत उल्लेख है ।

योग साधकों को अपने भोजन औशयन पर पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि शरीर धारी के समस्त कार्य उसके अहार-विहार पर निर्भर हैं । भगवान श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है—

नात्वश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैवचार्जुन ॥

—भ. गीता अ. ६ श्लोक १६

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही (सिद्ध होता है) फिर कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

—भ. गीता अ. ६ श्लोक १७

यह दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथा योग्य शयन करने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है ।

लघु पाक प्रियं स्निग्धं यथा धातु प्रपोषणम् ।
मनोभिलषितं भोज्यं योगी भोजनमाचरेत ॥

दूध, भात, हल्की रोटी (फुल्के) इत्यादि प्रकार का शीघ्र पचने वाला और अपनी इच्छा के अनुसार प्रिय तथा स्निग्ध रक्त वृद्धि करने वाला, ऐसा भोजन योगाभ्यासी को करना चाहिए "अभ्यास काल प्रथमे शस्तं क्षीराज्य भोजनम्" अभ्यास के आरम्भ काल में भोजन में दूध और घृत विशेष होना चाहिए । पश्चात न्यून होने पर भी काम चल सकेगा ।

साधकों को चाहिए कि जब दाहिना स्वर चले तब भोजन करें और जब बायाँ स्वर चले तब शयन करें । जब मनुष्य कोई भी शुभ कार्य करना आरम्भ करता है तब उसके सामने नानाप्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं । जो उन विघ्नों को देखकर घबरा जाता है अथवा भयभीत हो जाता है वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है । इसलिए शुभ कार्म आरम्भ करते ही विघ्नों से सतर्क रहना चाहिए और पूर्ण दृढ़ता और धैर्य के साथ विघ्नों की किंचित् भी परवाह न करते हुए कर्म में लगा रहना चाहिए । समस्त विघ्न जो भी उपस्थित होते हैं वे वास्तव में हैं कुछ भी नहीं, केवल दिखाई ही भयंकर पड़ते हैं । जब कर्मनिष्ठ पुरुष दृढ़तापूर्वक धैर्य के साथ अपने कर्म में रहता है और विघ्नों की किंचित् परवाह नहीं करता तो विघ्न अपनी प्रबल शक्ति से उपस्थित होकर बड़ा भय दिखाता है और प्रयत्न करता है कि कर्मनिष्ठ पुरुष कर्म भ्रष्ट हो जाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परन्तु जब देखता है कि कर्मनिष्ठ पुरुष अपने कर्म में ही लगता है तो फिर तत्काल ही विलीन हो जाता है और कर्मपुरुष सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

आलस्यं प्रथमो विघ्न उपभोगो द्वितीयकः ।
कीर्ति तृतीयकः प्रोक्तं औदासिन्यं चतुर्थकः ॥ १॥
विघ्नाश्वस्वार एवंहि प्राप्नुवन्ति पुनः पुनः ।
तस्मात्बल धैर्येण योगी विघ्नान्निवारयेत् ॥ २॥

आलस्य पहला विघ्न है, विषय भोग दूसरा, लोक में यशी होना तीसरा, सिद्धि में देर होने से उदासीनता होना चौथा विघ्न है । यह चारों विघ्न बार-बार आते हैं इसलिए योगी बड़े धैर्य से इन विघ्नों की परवाह न करके योगाभ्यास करता रहे ।

"वह्नि स्त्री पति सेवानामादौ वर्जन माचरेत्"

—(ह. प्र.)

अग्नि सेवन, स्त्री सेवन (स्त्रियों से संग, एकान्त में भाषण आदि) एवं राह चलना मना है ।

अत्याहारः प्रयासश्च प्रबल्यो नियम वाः ।
जन संगश्च लौक्ष्यंव षदभिर्योगो विनश्यति ॥

—(ह. प्र.)

बहुत आहार करना, विशेष श्रम होने का काम करना, अधिक योजना, उपवास करना (आवश्यक उपवास छोड़ के) जो योगाभ्यासी नहीं हैं ऐसे लोगों से विशेष संग करना और मन को चंचल करना इन ६ बातों के करने से योगी का योगाभ्यास नष्ट हो जाता है इसलिए योगी को इन उपरोक्त बातों से दूर रहना चाहिए ।

उत्साहात्साहसा द्धैर्यात्तत्व ज्ञानाञ्च निद्रायात् ।
जन संग परित्यागात्षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति ॥

—(ह. प्र.)

उत्साह रखने से, साहस करने से, धैर्य करने से, तत्वज्ञान (योग से मोक्ष मिलेगा ऐसी भावना) करने से, यावज्जीवन अभ्यास चलाने का निश्चय रखने से और विषयी लोगों के संग का त्याग करने आदि इन ६ बातों से योगाभ्यास में सिद्धि प्राप्त होती है ।

महाभारत में लिखा है कि एक समय धर्मात्मा युधिष्ठर के पूछने पर भीष्म जी ने कहा कि—

नैवास्याग्नि न चारिष्टो न मृत्युर्नच दश्यवः ।
प्रभवन्ति धनत्यागाद्विमुक्तस्य निराशिषः ॥शी. गी.॥

रत्नादि वैभवों के त्यागी एवं आशारहित और मुक्ति स्वरूप मनुष्य को अग्नि, चोर, डाकू और मृत्यु का भय नहीं होता । अर्थात् योग साधक में त्याग गुण अवश्य आना चाहिए । क्योंकि—

नात्यक्ता सुखमाप्नोति नात्यक्ता विन्दते परम् ।
नात्यक्ता चा भयः शेतेत्याक्ता सर्व सुखीभव ॥शी. गी.॥

त्याग के बिना सुख, निर्भयता, परमपद की प्राप्ति नहीं होती इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सांसारिक वैभवों को छोड़ त्याग को धारण करे ।

मोक्ष धर्मेषु निरतो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ।
प्रप्नोति परम स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥हा. गी.॥

मोक्ष धर्म में रत स्वल्पहारी और जितेन्द्रिय पुरुष ही प्रकृति से पृथक परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है ।

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसा निंदयोः समः ।
एतत्पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रयेत ॥हा. गी.॥

संन्यासियों का परम पवित्र मार्ग प्रशंसा और निन्दा में समदर्शी होकर रहना ही है ।

'आत्मना यः प्रशान्तात्मा लध्वाहारी जितेन्द्रियः ।
वाचो वेगं मनसः क्रोध वेगं, हिंसा वेगमुदरोपस्थ वेगम् ।
एतान्वेगान्विनये द्वैतपस्वी, निन्दा चास्य हृदय नोपहन्यात्
॥हा. गी.॥

समदर्शी हो, फलादि खाकर जीवन बिताये, स्वभाव से शान्त चित्त लघु भोजी और जितेन्द्रिय, मन वचन कर्म से हिंसा न करे और उपस्थेन्द्रिय के वेगों को सहन करने वाला हो यह तप है । जो तपस्वी हैं उन्हीं के हृदय को लोक निन्दा दुःखी नहीं कर सकती इसीलिए सबसे पहले गृहस्थाश्रम में ही फल की इच्छा को छोड़कर कार्य करने का अभ्यास करना चाहिए ।

शैशवेभ्यस्तु विद्यानां, यौवने विषयैषिणाम् ।
वृद्धिके मुनि वृत्तिनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम । रघुवंश

बालकपन में विद्याध्यन करे, यौवन काल में विषय का सेवन अर्थात् सन्तान उत्पत्ति करे, वार्धक (तृतीयावस्था) में मुनि वृत्ति को धारण करे, तत्पश्चात अन्त में योग से शरीर को त्याग दे । ताकि पुनः शरीर को प्राप्त करके नष्ट भोग न करना पड़े । यही मनुष्य जीवन का लाभ है । सुख-दुःख की किंचित भी परवाह न करते हुए योग में लगा हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करके फिर सदैव उसी में निवास करता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो सुख-दुःख के वेग को सहन नहीं कर पाता वही अनन्त काल तक दुःख ही दुःख भोगता रहता है अर्थात् जीवन-मरण का कार्य कभी समाप्त नहीं होता । शिव.

सुखं वा यदि वा दुखं, प्रियं वा यदिवाऽप्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत, हृदये ना पराजितः ॥ पिं. गी. ॥

सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय इनमें से जो भी जिस समय आ प्राप्त हो उसको बड़ी सावधानी से सहन करे ।

यच्चकाम सुखं लोके यच्चदिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ पिं. गी. ॥

संसार में विषय एवं अन्य जो बड़े-बड़े सुख हैं तृष्णा के नष्ट हो जाने से सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं रह जाते हैं ।

सदा संहरते कामान्, कर्मोऽङ्गानीवं सर्वशः ।
तदात्म ज्योतिरात्मायमात्मन्येव प्रयश्यति ॥ पिं. गी. ॥

कछुए के अंग की तरह समेंटने से यह आत्मा जिस समय सम्पूर्ण कर्मों का संहार कर देती है उस समय उसको आत्म ज्योति स्वयं दीखने लगती है ।

नास्ति विद्या समं चक्षुः नास्ति सत्य समं तपः ।
नास्ति राग समं दुःखं नास्ति त्याग समं सुखम् ॥ म. भा. ॥

विद्या के समान नेत्र नहीं, सत्य के समान तप नहीं, राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है ।

नविभेति यदा चायं, यदा चास्मान्न विभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि, ब्रह्म संपद्यते सदा ॥ पिं. गी. ॥

यह आत्मा जब किसी से नहीं डरती तथा न इससे कोई भयभीत होता है और इच्छा द्वेष से रहित होता है तभी इस आत्मा को ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

उभे सत्याघृतेत्यक्ता, शोकानन्दो भयाभये ।
प्रियाऽप्रिये परित्यज्य प्रशान्ता भविष्यति ॥ पिं. गी. ॥

सत्य, झूठ, शोक, हर्ष, भय, अभय, प्रिय, अप्रिय इन सबका परित्याग करने से ही चित्त को शान्ति होती है ।

"सुखं निराशः स्वपिति नैराश्य परमं सुखम्"

जो कोई किसी वस्तु की आशा (इच्छा) नहीं करता है वही सुख की नींद सोता है ।

योग : आन्तरिक परिष्कार का विज्ञान

जीवन के विस्तृत अध्ययन के बाद ऋषियों ने यह तत्व-दर्शन खोजा और प्रतिपादित किया कि व्यष्टि का समष्टि से संयोग हुए बिना शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती । वैयक्तिक चेतना का विराट् विश्व में विस्तीर्ण एकरस चेतना में मिलने पर ही मनुष्य की अशान्ति का अन्त हो सकता है । इस लक्ष्य के लिए निर्दिष्ट समस्त पद्धतियाँ योग का अंग हैं, क्योंकि योग का अर्थ ही है व्यष्टि का समष्टि से तादात्म्य, लघु का विभु, अणु का महत्, जीव का परमात्मा से पूरी तरह जुड़ जाना, एकरस हो जाना ।

कहने में यह सरल लगता है, पर है अत्यन्त कठिन । कठोपनिषद् में यमाचार्य और नचिकेता के सम्वाद में इस मार्ग की दुरूहता का संकेत है । वाजिश्रवा के पुत्र नचिकेता की ब्रह्म-जिज्ञासा देख, यमाचार्य ने पहले उन्हें बार-बार समझाया—

"देवैरमापि विचिकित्सितं पुरा,
न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म : ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व,
मामोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ।"

—कठो. १।२१

नचिकेता ! इस (ब्रह्म के स्वरूप) के सम्बन्ध में तो देवता भी सन्देह ग्रस्त हैं । योग-विज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म है । वह शीघ्र समझ में नहीं आता । तुम इस कठिनाई में मत पड़ो । कोई अन्य वरदान माँग लो ।

जब आत्मजयी नचिकेता अटल और दृढ़ रहा तथा समस्त ऐहिक भोगों, सांसारिक सुखों के प्रति गहरी अनासक्ति व्यक्त की, तभी यमाचार्य सन्तुष्ट हुए और उन्होंने कहा भी—"जो दृढ़ निश्चयी है, जिसमें कठिनाइयों से जूझ सकने का साहस है, वही योगी हो सकता है ।"

योग-मार्ग की कठिनाइयाँ इसलिए अनन्तगुनी बढ़ जाती हैं कि यहाँ अपने से ही संघर्ष करना होता है और अपनी ही अभ्यस्त इच्छाओं, प्रवृत्तियों को मारना पड़ता है । यह काम बिना समझे-बूझे होने पर अनर्थकारी भी हो सकता है या फिर हताशा और असफलता मिलती है । अतः इस योग-मार्ग में—प्रवेश के पूर्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही उसका तत्वज्ञान समझ लेना अनिवार्य है । यही कारण है कि चपल बाल बुद्धि वाले लोगों को योग-पथ पर चलने की अनुमति नहीं मिलती । निष्ठावान साधकों को ही इस कठिन योग-मार्ग पर आरूढ़ होने की आज्ञा दी जाती है ।

महर्षि पातंजलि ने कहा है—

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।"

—योग-दर्शन पाद १। सूत्र २

चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है । यदि मनुष्य मन में निरन्तर उठने वाली बहुरंगी कामनाओं, वासनाओं को रोककर, उनका प्रयोग इन्द्रियों की इच्छा से नहीं, अपनी इच्छा से इस प्रकार कर सकने की सामर्थ्य विकसित करले जिस तरह सारथी रथ में जुते घोड़ों का करता है, तो वह व्यक्ति अपनी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाकर परमात्मा की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है ।

चित्तवृत्तियों को सामान्यतः तो समझा भी नहीं जा पाता । योग-दर्शन के पाद १ सूत्र ६ के अनुसार—

'प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ।

अर्थात्—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच चित्तवृत्तियाँ वशवर्ती करना योगी के लिए परमावश्यक है ।

प्रमाण वृत्ति को वशवर्ती करने का अर्थ सामान्यतः यह है कि प्रत्यक्ष सुख की-सी अनुभूति कराने वाली चित्तवृत्तियों को नियन्त्रित किया जाय । यों प्रमाण वृत्ति के सूक्ष्म भेदोपभेदों का विश्लेषण जटिल व दुरूह विषय हो जायेगा । अतः उस विस्तार में अभी हम नहीं जाते ।

कान मधुर ध्वनि सुनने के इच्छुक रहते हैं, यह श्रोता की प्रत्यक्ष सुख की-सी अनुभूति हुई । जहाँ कहीं भी मधुर शब्द सुनाई पड़ते हैं, संगीत या सुन्दर वाद्य हो रहा होता है, मन उधर ही चल पड़ता है ।

आँखें रूप पसन्द करती हैं । वस्तुओं का सौन्दर्य हो, स्थान का अथवा नर-नारियों के शरीर का । आँखें सौन्दर्य देखते ही रम जाना चाहती हैं । जीभ रस की प्यासी रहती है । नासिका सुगन्ध को पसन्द करती है । यह इन्द्रियाँ अपने-अपने सुखों की प्रचण्ड कामना करती हैं । व्यक्ति जितना ही इन सुखों में रमण करता है, शरीर उतना ही दुर्बल और निस्तेज होता जाता है । साथ ही मन भी क्षीण तथा आत्मा निष्प्रभ होती चलती है । इसीलिए प्रत्यक्ष सुखानुभूति परक प्रतीत होने वाली इन चित्तवृत्तियों का नियन्त्रित करना आवश्यक है ।

इन आकर्षणों से मन को विरत करने मात्र से ही इन्द्रियाँ शान्त हो जायेंगी । द्रवित वासनाएँ निश्चय ही अधिक वेग से उठती हैं । फ्रायड की यह बात सही है, किन्तु उतना ही एडलर और युंग का सबलीमेशन का उदात्तीकरण का सिद्धान्त भी सही है ।

कामनाओं को अन्तर्वर्ती बना लेने पर प्रत्यक्ष पदार्थों में प्रतीयमान सुख मन और आत्मा में विद्यमान दिखने लगेगा । अभी हम थोड़े-से रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्दों, ध्वनियों के आकर्षण में अपनी शक्ति गँवाकर बेचैन हो सकते हैं । पर अपने अन्तर्जगत में तो सभी विषय-वासनाओं की तृप्ति का अनन्त भण्डार मौजूद है । उस अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए यदि हम क्षणिक वासनाओं को वशवर्ती कर उनकी सुखानुभूति से वंचित होते हैं, तो यह घाटे का नहीं, लाभ का ही सौदा है ।

दूसरी वृत्ति है विपर्यय या अज्ञानता जिसे हम मृगतृष्णा के उदाहरण से समझ सकते हैं । मरुभूमि में दूर से चमकते, सिकता-कणों को देखकर जल का मिथ्या बोध होता है । रुपये-पैसे, सौने-चाँदी, स्त्री-पुत्रों आदि के प्रति हमारी आसक्ति भी ऐसे ही मिथ्या-बोध पर आधारित है । उनके प्रति हमारे अन्दर मात्र आसक्ति होती है, कोई तात्विक व्याख्या नहीं । हमें जो वस्तु प्रिय लगी, उसी के पीछे लग गए । प्रिय क्यों लगी ? इसके विचार का हमारे पास समय नहीं । यह प्रियता-बोध अक्सर अभ्यासवश या अनुकरणवश होता है । उसका आत्महित से कोई सम्बन्ध भी है या नहीं, यह जानने की हमें फुरसत ही नहीं । यही विपर्यय या मिथ्याज्ञान है । योगी को विपर्यय-वृत्ति से विरत होना ही पड़ेगा । उसे संसार के प्रत्येक पदार्थ का वैज्ञानिक स्वरूप समझकर उसकी ग्रहणीयता पर शान्त चित्त से विचार करना जरूरी है । अपनी मात्र मनोमान्यता के अनुसार चलते रहना नहीं ।

निद्रा वृत्ति का सम्बन्ध आहार-विहार से है । योगारूढ़ को संयमित आहार-विहार करना आवश्यक है । बुरे आहार करने पर नींद अधिक आती है या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जागते हुए भी आलस्य घेरे रहता है । योगाभ्यासी को अपनी तामसिक वृत्तियों पर नियन्त्रण कर निद्रा में कमी करनी चाहिए ।

पाँचवीं वृत्ति है स्मृति । ऊपर कहे हुए सुखों की स्मृति, उनका बार-बार याद करना भी मन को विषय-सुखों की ओर आकर्षित करता है । ऐसे मानसिक चिन्तन से वस्तुतः बहुत अधिक शक्ति बरबाद होती है । मधुर स्वप्नों का बार-बार स्मरण भी इसी में शामिल है ।

इन सभी चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण करते हुए अपने लक्ष्य-पथ पर चलने पर ही योगी अन्ततः सफल होता है ।

योग में शारीरिक, मानसिक व्यायामों, साधनात्मक कर्मकाण्डों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर तभी जब उनका उद्देश्य चिन्तन के स्वरूप को ऊँचा उठाने की दिशा में अग्रसर होता है । योग का बहिरंग रूप इन व्यायामों, कर्मकाण्डों के रूप में सामने आना आपत्तिजनक नहीं, किन्तु यह है योग कलेवर ही, यह स्मरण रखा जाना और कराया जाना चाहिए । प्राण है—उपनिषद् प्रतिपादित वह अध्यात्म-दर्शन, जो उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तव्य की प्रेरणा देता था तथा जिसे प्राचीनकाल में ब्रह्म-विद्या कहा जाता था ।

चिन्तन स्तर की अन्तरंग उमंगें ही बहिरंग जीवन पर छाई रहती हैं । उनसे ही दिशा-निर्धारण और परिस्थिति-निर्माण होता है । भावना का यह मर्मस्थल परिष्कृत-सन्तुलित बने, यही योग एवं अध्यात्म शिक्षा का लक्ष्य हो सकता है ।

अन्तर्मन की संरचना ऐसी जटिल है कि उस क्षेत्र के प्रवाहों को रोकना, मोड़ना बहुत कठिन जान पड़ता है । तर्क में विचार बदले-जा सकते हैं, पर जमे विश्वासों को उलटना टेढ़ी खीर है । वह जिस गहराई में अपनी जड़ें जमाये रहते हैं वहाँ तक न तर्क पहुँच पाते हैं और न ही तथ्यों का असर पड़ता है । मूढ़ मान्यताएँ—अन्य परम्पराएँ अपनाने तथा दुराग्राही होने का लांछन लगने पर भी लोग अपनी पुरानी लकीर को पीटते रहते हैं । मौखिक समर्थन करने पर भी औचित्य का—स्वभाव का अंग बन सकना किन्हीं विरलों के लिए ही सम्भव होता है ।

अचेतन को प्रभावित किए बिना संचित पशु प्रवृत्तियों से छुटकारा पाना कठिन है । यदि इस क्षेत्र में सफलता न मिले तो मनुष्य व्यक्तित्व के क्षेत्र में अनगढ़ ही बना रहेगा । भले ही वह समृद्ध शिक्षित समझा जाता रहे । अन्तरंग को बदलने की—आत्म नियमन की क्षमता जिस भाग्यवान को मिल सके समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य का भाग्योदय सामने आकर खड़ा हो गया ।

इस दिशा में सफलता प्राप्त करने का एक ही उपाय है—योगाभ्यास । ध्यानयोग के अन्तर्गत आने वाले धारणा और प्रत्याहार उपचारों को अपनाने से साधक की संकल्प शक्ति इतनी प्रखर हो सकती है कि मनोनिग्रह एवं स्वभाव परिष्कार सम्भव हो सके ।

चित्तवृत्तियों का नियमन, सरकसों के लिए हिंसक पशुओं को साधने के समान कठिन होते हुए भी असाधारण लाभदायक है । इस प्रयास में योग-साधना एवं तपश्चर्या का हण्टर ही काम देता है । अन्यथा वे छेड़खानी करने वाले पर ही उलट कर हमला करती हैं । महर्षि पातंजलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को 'योग' कहा है । योग का अभिप्राय चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण करना है । इस साधना पथ को राजयोग या अष्टांग योग के नाम से सम्बोधित किया जाता है । इसका उद्देश्य मन को सही रूप से समझ कर उसकी अपार शक्ति को नियन्त्रित करके सदुपयोग करने का है ।

इस योग-प्रक्रिया के आठ सोपान हैं अन्तिम सोपान समाधि है । समाधि का उद्देश्य मनुष्य की आन्तरिक चेतना का विकास वह महान क्षमता अर्जित करता है, जिससे जीवन की वास्तविकता को समझ कर उसकी समस्याओं का आत्यन्तिक समाधान हो सके । प्रथम पाँच सोपान—यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार हैं, ये पाँच योग के बहिरंग साधन कहलाते हैं । इनके अभ्यास से ही शरीर और मन अगले सोपानों के लिए पृष्ठभूमि बनते हैं । धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अन्तरंग अभ्यास कहे जाते हैं ।

चित्त की वृत्तियों के बारे में योगदर्शन के पहले पाद के छठे सूत्र में कहा गया है—मानव-मन की वृत्तियाँ—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति से बनी हैं । बहुत से लोग मन में उठने वाले विचारों, दृश्यों एवं उनके उतार-चढ़ाव को समझने में भूल कर देते हैं । मन में तरंगों की भाँति उठने वाले दृश्य, विचार वृत्तियाँ होती हैं । उद्वेग भावनाएँ या अनुभूतियाँ,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ताएँ, स्मृतियाँ आदि सब चित्त की वृत्तियाँ ही होती हैं । वस्तुतः हमारे हर क्षण बदलते क्रिया-कलापों के पीछे छिपी चेतना ही चित्त कही जाती है ।

चित्त के संस्कार ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । चेतना के विकास के साथ-साथ संस्कार छूटते जाते हैं । योगाभ्यास द्वारा मानव-मन सशक्त एवं सक्षम बनता जाता है, साथ ही निर्मल व परिष्कृत भी होता जाता है । वस्तुतः मन का परिष्कार ही चित्त का परिष्कार है । चित्त का परिष्कार होते समय बुरे एवं कुत्सित विचार निष्कासित होते हैं जिन्हें देखकर बहुत से साधक प्रारम्भिक अवस्था में घबरा उठते हैं जबकि ऐसी कोई भयोत्पादक बात नहीं । यह स्वाभाविक है कि जब अशुद्धियाँ निष्कासित होती हैं तो दुर्गन्ध आती ही है । इसी प्रकार चित्त की शुद्धि के समय बुरे विचार, अनुभव बाहर निकलते हैं । गन्दगी विचारों के रूप में निकलती चली जाती है, जिनमें अनेकों दबी-छुपी इच्छाएँ, वासनाएँ सम्मलित होती हैं ।

मनुष्य का चित्त बड़ा ही विलक्षण है । चित्त जब पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाता है तो उसकी अन्तिम स्थिति असाधारण शक्ति सम्पन्न उसी प्रकार की होती है जैसे यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि की अवस्था आणविक ऊर्जा होती है । विभिन्न स्तरों पर ऊर्जा विभिन्न गुणों के रूप में प्रकट होती है । तमोगुण की अधिकता वाले व्यक्ति में विकास की प्रक्रिया अत्यधिक मन्द गति से होती है जिसका अनुभव बड़ी मुश्किल से होता है । रजोगुण प्रधान साधक में विकास की गति तीव्र होती है । सतोगुणी के विकास में सन्तुलित स्थिति रहती है । जीवन के दैनिक क्रिया-कलापों में तीनों गुणों के माध्यम से ही चित्त कार्य करता है । अष्टांग योग के सम्यक् अभ्यास से व्यक्ति चेतना के उच्चस्तर तक पहुँच जाता है । मस्तिष्क के विभिन्न भागों को क्रियाशीलता के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—बायाँ भाग एवं दायाँ भाग इन्हें ही सेरेब्रल हेमिस्फियर्स कहते हैं । खोजों से ज्ञात हुआ है कि मस्तिष्क का दाहिना भाग जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की मेधा व प्रज्ञा से होता है । इसके विकसित होने से सृजनात्मक बुद्धि चित्रकला, नृत्यकला, स्नेह व उदारता तथा अन्तरप्रज्ञा का विकास होता है । इसके विपरीत बाँये भाग की सक्रियता के फलस्वरूप विश्लेषणात्मक व तार्किक बुद्धि का विकास होता है, इसके विषय गणित, विज्ञान, साहित्य, लेखन, कानून, शासन आदि हैं । अभी तक की उपेक्षित कला प्रियता के अभाव में शिक्षाविदों व मनोवैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्क का एक पक्षीय विकास मानव जीवन पर हानिकारक प्रभाव डालता है ।

प्रसिद्ध शिक्षा शोधार्थी श्री विवियन शेरमेन ने न्यूटन, आइन्सटीन जैसे महान वैज्ञानिकों के उदाहरणों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उन्हें वैज्ञानिक उपलब्धि अन्तरप्रज्ञा के विकसित होने के कारण मिली जो मस्तिष्क के दाएँ भाग का कार्य है और बाद में बाएँ मस्तिस्क के सक्रिय होने पर उसे भौतिक स्वरूप प्रदान किया गया । श्री विवियन के अनुसार यदि मस्तिष्क के बाएँ भाग को सक्रिय न किया गया और भौतिक लिप्सा की प्राप्ति हेतु मात्र बाएँ मस्तिष्क की कला-कुशलता पर जोर दिया गया तो कुछ पीढ़ियों के बाद मस्तिष्क का एक भाग पूर्ण निष्क्रिय हो जायेगा, जिसके घातक परिणाम मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत होंगे ।

अध्यात्म विज्ञान के अन्तर्गत मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच समन्वय स्थापित करने वाली नाना प्रकार की योग साधनाएँ हैं इनमें मन्त्र, जप से लेकर ध्यान, धारणा, आसन, प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्रक्रिया आदि वैज्ञानिकों द्वारा मान्यता प्राप्त बायोफीडबैक के व्यायाम इस कार्य में विशेष लाभकारी सिद्ध हुए हैं । योगाभ्यास के अन्तर्गत इसे क्रियायोग की संज्ञा दी जाती है । वैज्ञानिक वेनक्वेट ने क्रियायोग के प्रयोग से यह सिद्ध कर दिखाया है कि इसके सतत् अभ्यास से दोनों मस्तिष्कों का समान विकास होता है, जिससे मानसिक सन्तुलन बढ़ता है व असामान्य मनःस्थिति नियन्त्रित होती है । ध्यान, धारणा व क्रियायोग के सतत् अभ्यास से एक समय ऐसा भी आता है जबकि मनुष्य की अन्तरप्रज्ञा जागृत होती है और बिना किसी प्रकार के अध्ययन के ही नाना प्रकार के गूढ़ रहस्यों का विवेचन सम्भव होता है तथा प्रकृति की अनेक रहस्यमयी जानकारियाँ उसके करतलगत हो जाती हैं । भारतीय ऋषि व योगी इसके अनुपम उदाहरण हैं । वैज्ञानिकों ने अपने अनुसन्धानों में पाया कि दाएँ मस्तिष्क का सम्बन्ध इड़ा नाड़ी से व बाएँ का सम्बन्ध पिंगला नाड़ी से है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मस्तिष्कीय विकास एवं कौशल अभ्यास के लिए प्रशिक्षण की अनेक व्यवस्थाएँ मौजूद हैं । वे मनुष्य को चतुर बनाती हैं । चतुरता से सम्पन्नताओं और सफलताओं का पथ-प्रशस्त होता है । इतने पर भी अन्तराल में सन्निहित मान्यताएँ और पशु प्रवृत्तियों के निष्कासन में इस बुद्धि वैभव का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । व्यक्तित्व की निकृष्टता पिछड़े और प्रगतिशील समझे जाने वाले दोनों ही वर्गों में प्रायः एक जैसी पायी जाती हैं । स्पष्ट है कि मनुष्य की उत्कृष्टता, प्रामाणिकता एवं चिरस्थायी सफलता के लिए व्यक्तित्व का उच्चस्तरीय होना आवश्यक है । इसके लिए क्या कहा जाय कि यह तो सर्वविदित है, पर क्या किया जाय इसका उपाय खोजने पर दरवाजे बन्द प्रतीत होते हैं । अचेतन की हठवादिता को बदल सकना सहज काम नहीं है ।

इस प्रसंग में एक ही उपचार बार-बार हो सकता है—वह है योगाभ्यास और तप साधना । तपश्चर्या की आग में कुसंस्कारों को गलाया जाता है और योग साधनों से उसे उपयुक्त साँचे में ढाला जाता है । कुसंस्कारिता से छुटकारा पाने और सुसंस्कारी व्यक्तित्व निर्मित करने के लिए योगसाधन का जितना महत्त्व है उतना और किसी उपाय, उपचार का नहीं ।

योग का स्वरूप और उसकी गुप्त शक्तियाँ

यह तो सभी लोग जानते हैं कि मनुष्य के भीतर अनेकं प्रकार की गुप्त शक्तियाँ हैं जिनको विशेष साधनों द्वारा विकसित किया जा सकता है । इनमें से जिस साधन द्वारा आत्मिक शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं उसका नाम हमारे देश में योगाभ्यास है । पर योग के असली अभिप्राय को आजकल के लोग प्रायः भूल गए हैं और वे शारीरिक, मानसिक, चमत्कार दिखाने वालों को ही योगी समझ लेते हैं । पर वे तो साधारण तमाशे की सी बातें हैं जिन्हें अनेक जादूगर और तन्त्र-मन्त्र वाले भी भली प्रकार दिखला सकते हैं । योग का दर्जा इनसे कहीं ऊँचा है ।

योग का सार तत्व भगवान ने गीता में दिया है । यद्यपि हिन्दू धर्म के अनुयायी 'योग' से एक विशेष शास्त्र या दर्शन का ही अभिप्राय लेते हैं, पर वास्तव में वह इस महान शास्त्र का केवल एक भाग है । गीता में योगशास्त्र का वर्णन किया गया है और इसके भिन्न-भिन्न विभागों का परस्पर सम्बन्ध भी दिखलाया गया है । इस प्रकार गीता के योगशास्त्र के अन्तर्गत अठारह प्रकार के विशेष योगों का वर्णन है, जो क्रमशः गीता के अठारह अध्यायों में बतलाये गए हैं । इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के योग हो सकते हैं । साधारणतः हम समझते हैं कि भिन्न-भिन्न प्रकार के योगों में कोई मेल नहीं है, पर गीता में दिखलाया गया है कि वास्तव में उनमें कोई अन्तर नहीं है । चाहे किसी भी रास्ते से मनुष्य चले वह अन्त में एक ही नतीजे पर पहुँचेगा ।

इस प्रकार 'सांख्य' और 'योग' इन दो योगों का मिलान करते समय भगवान कहते हैं—

सांख्ययोगी पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

—गीता अध्याय ५ श्लो० ४-५

अर्थात् "सांख्य और योग को बालक पृथक-पृथक समझते हैं, पण्डित लोग नहीं । जो समुचित भाव से एक में स्थित रहता है, वह दोनों के फलों को प्राप्त करता है । सांख्य द्वारा जो स्थान प्राप्त होता है, योग द्वारा भी वही प्राप्त किया जा सकता है ।"

जो बात यहाँ सांख्य और योग के विषय में कही गयी है, वही अन्य प्रकार के योगों के सम्बन्ध में कही जा सकती है । यही कारण है कि चाहे जिस किसी योग के मार्ग से विचार कीजिए, भगवान हमेशा अर्जुन को यह सिद्ध करके दिखला देते थे, कि प्रत्येक के समझने से यही आशय निकलता है कि उस समय अर्जुन का युद्ध में भाग लेना परम कर्तव्य है । पातंजलि योगसूत्र में योग का लक्षण "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" बतलाया है, पर गीता में यही कहा गया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

—गीता अ० २, श्लोक. ४८

अर्थात् "हे धनंजय ! योगस्थ होकर "संग" (कामना) का त्याग करो और सिद्धि तथा असिद्धि में समता भाव रखकर कर्म करो, समता को ही योग कहते हैं ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार समता की भावना अथवा योग स्थापित कर लेने पर विश्व की सारी शक्तियाँ मनुष्य के अधिकार में आ जाती हैं । अपने आपको जानना ही समस्त विश्व को जानने की कुँजी है । इस प्रकार आत्मज्ञान का अनुभव प्राप्त कर लेने से जीवन सम्बन्धी सभी नियम मनुष्य को साक्षात् दिखलायी पड़ने लगते हैं । उसकी शक्तियाँ भी उसी परिमाण से बेहद बढ़ जाती हैं ।

योग की रीतियों और साधारण वैज्ञानिक प्रक्रियाओं में प्रधान अन्तर यही मिलता है । वास्तव में योग विज्ञान के ही अवलम्ब पर है । धर्म और विज्ञान दोनों एक हैं । अन्तर दोनों में केवल इतना ही है कि वर्तमान विज्ञान का सम्बन्ध स्थूल जगत की ही वस्तुओं अथवा नियमों से है और धर्म का सम्बन्ध स्थूल और सूक्ष्म, दृश्य और अदृश्य विश्व के सभी पदार्थों और नियमों से है । अन्यथा धार्मिक नियमों की जाँच भी उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार वैज्ञानिक नियमों की जाँच की जाती है । इन दोनों में इतना अन्तर अवश्य है कि वैज्ञानिक प्रयोगों में बाहरी यन्त्रों और अन्य सामग्रियों द्वारा जाँच की जाती है, पर यौगिक प्रक्रियाओं में मनुष्य के भीतर स्थित अत्यन्त पेचीदा यन्त्रों का ही उपयोग किया जाता है । मनुष्य के शरीर और मन की बनावट ऐसी विचित्र और दुरूह है कि उसमें स्थूल से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों के सार भरे हैं । उनके विकास से मनुष्य इस लोक की कौन बात, आकाश में अति दूर स्थित अन्य लोकों में भी भ्रमण कर सकता है और उनका अनुभव प्राप्त कर सकता है ।

ये कोई काल्पनिक बातें नहीं हैं । आज भी हमारे मध्य में ऐसे अनेक मनुष्य विद्यमान हैं जिन्होंने योग साधन द्वारा अपनी अनेक गुप्त शक्तियों को विकसित कर लिया है और इसके परिणामस्वरूप बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँच गए हैं । हममें से प्रत्येक व्यक्ति, जो उचित परिश्रम करना चाहे, स्वयं योग साधन द्वारा इन बातों की सच्चाई या झुठाई का पता लगा सकता है । पर केवल जबानी कहने अथवा मन में ख्याल कर लेने से ही कोई काम नहीं सध सकता । यदि कोई आदमी विद्युतशास्त्र अथवा रसायनशास्त्र के किसी नियम की जाँच करना चाहे तो पहले उसे कुछ वर्षों तक उस विषय का अध्ययन करके उसका ज्ञान प्राप्त करना होता है उसके बाद ही वह किसी वैज्ञानिक द्वारा स्थापित किसी नियम की वास्तविकता की जाँच कर सकता है । उसी प्रकार योग साधना में भी पहले बहुत कुछ सीखना पड़ता है तथा विशेष प्रकार से रहना पड़ता है, तब गुप्त शक्तियों का क्रमशः विकास होता है ।

योग की कोई प्रक्रिया आरम्भ करने के पहले मनुष्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि योगाभ्यास के असली तत्व सदा गुप्त रखे जाते हैं । उनको गुप्त रखने का कारण भी बहुत गूढ़ नहीं है । योग की कितनी ही रीतियाँ ऐसी हैं जिनके अभ्यास से मनुष्य थोड़े ही समय में अपने कुछ चक्रों को जागृत कर सकता है और इस प्रकार उसके हाथ में कोई असाधारण शक्ति आ सकती है, पर यदि उसके सदुपयोग के लिए पहले ही चरित्र-गठन, निःस्वार्थता तथा सेवा के सद्गुणों की नींव स्थापित नहीं हो चुकी है, तो वह बहुधा उस शक्ति का दुरुपयोग ही करेगा और इस दुरुपयोग से केवल उसी को हानि नहीं पहुँचेगी वरन् दूसरों की भी बड़ी हानि हो सकती है । योग की कुछ विधियाँ ऐसी सुगम हैं कि थोड़े अभ्यास से ही मनुष्य विचित्र ज्योति तथा भाँति-भाँति के रंग और रूपों को देख सकता है । इन्हें देखकर मनुष्य अक्सर धोखे में आ जाते हैं और इसी को आध्यात्मिक जीवन समझ कर इन्हीं शक्तियों को बढ़ाने की फिक्र में लग जाता है, पर ये शक्तियाँ मनुष्य को कुछ आगे नहीं पहुँचाती हैं, वरन् उसें तरह-तरह के अदृश्य आक्षेपों का केन्द्र बना देती हैं । इसी कारण योगी लोग योग के भेदों को अत्यन्त गुप्त रखते हैं और केवल अधिकारी पुरुषों को ही बतलाते हैं ।

केवल पुस्तकों को पढ़कर योगाभ्यास कभी आरम्भ नहीं करना चाहिए । योग की अनेक बातें ऐसी हैं जो कभी पुस्तकों में प्रकाशित नहीं की जा सकतीं । पुस्तकों से योग का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उसकी जिज्ञासा बढ़ाई जा सकती है, पर योगाभ्यास का मर्म बिना अनुभवी पुरुष की सहायता के समझना असम्भव है । इसके अतिरिक्त पुस्तक में तो केवल साधारण भाव से किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है, पर योगाभ्यास में उन साधारण बातों के अलावा बहुत-सी ऐसी भी बातें हैं जो प्रत्येक अभ्यास करने वाले की शारीरिक अवस्था और व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखती हैं, पुस्तकों द्वारा उन सबको बतला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सकना असम्भव ही है । जो व्यक्ति इन बातों पर ध्यान न देकर मनमाने ढंग से योगाभ्यास शुरू कर देते हैं वे ही प्रायः रोगी या पागल बनकर अपनी भूल का दुष्परिणाम सहन करते हैं और साथ ही योग विद्या को भी बदनाम करने का कारण बनते हैं ।

योग साधनाएँ हमें भीम भी बना सकती हैं

मनुष्य के अन्दर इतना कुछ असाधारण छिपा दबा पड़ा है कि उसे ढूँढ़ने उभारने में संलग्न होने वाला ऐसी असाधारण विभूतियाँ करतलगत कर लेता है जैसी कि बाहरी उपार्जन से किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकती ।

सिद्धियों की चर्चा जहाँ-तहाँ होती रहती है और ऐसे विवरण सामने आते रहते हैं जिनसे प्रकट होता है कि बाहरी दौड़-धूप तक सीमित रहने की अपेक्षा अधिक सुखी समुन्नत बनने के लिए अपने अन्तरंग में छिपी हुई शक्तियों को ढूँढ़ना—जगाना कम लाभदायक नहीं है ।

बौद्ध धर्म की योग साधनाओं में एक जैन साधना थी, जिसके ध्वंशावशेष जापान आदि देशों में भी पिछले दिनों तक पाये जाते रहे हैं ।

एक कोरियाई नाटा दुर्बल पहलवान अमेरिका गया और उसने वहाँ के नामी गिरामी पहलवानों को चुनौतियाँ देनी आरम्भ कर दीं । आखिरकार एक दंगल आयोजित किया गया, जिसमें अमेरिका के तत्कालीन चेम्पियन पहलवान डिकरियल के साथ कुश्ती का जोड़ लिखाया गया । दोनों जब अखाड़े में उतरे तो जनता ठठा कर हँस पड़ी । कोरियाई पहलवान मास देखने में डिकरियल से दो फीट छोटा ही न था, वरन् आकार में भी बच्चा जैसा लगता था । कहाँ ६ फुट ७ इंच का डिकरियल और कहाँ ४ फुट १ इन्च का बौने लड़के जैसा दिखने वाला मास । दर्शकों का उत्साह ठण्डा हो गया और वे इस बेजोड़ बेतुकी कुश्ती का सहज परिणाम समझ कर समय से पहले ही उठ कर जाने लगे किन्तु तब चमत्कार ही हो गया जब कुछ ही दाँव-पेचों के बाद मास ने डिकरियल को चित्त कर दिया और एक हजार डालर का इनाम जीत लिया ।

अमेरिकी जनता इस पराजय को अपना राष्ट्रीय अपमान समझने लगी और मास पर धोखा-धड़ी की लड़ाई-लड़ने का आरोप लगाया गया और अखबारों में इस सम्बन्ध में कटु आलोचनाएँ छपीं । खिन्न मास ने इन आरोपों का उत्तर एक नई चुनौती के रूप में दिया । उसने विज्ञापन छपाया कि कोई भी अमेरिकी यदि उसे हरादे तो वह मिली हुई उपहार की रकम—एक हजार डालर—उसी को खुशी-खुशी वापस लौटा देगा । निदान दूसरे दंगल का आयोजन हुआ, इसमें एक पुलिस अफसर से कुश्ती लिखी गयी । यह अफसर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पहलवान था । वह बहुत ही आवेश में लड़ने आया था, किन्तु हुआ इस बार भी अचरज कि मास ने उसे ऐसी पटक दी कि बेचारे की दो हड्डियाँ ही टूट गईं । इस पर अमेरिकी और भी खीजे और मारने पर उतारू हो गए । किसी प्रकार भाग कर वह अपने होटल पहुँचा और जान बचाई ।

यह तो अमेरिका की बात हुई । इससे पहले मास ने जापान में भी अपने पराक्रम की धूम मचा दी थी । यों वह जन्म से कोरियाई था पर वहाँ से वह बचपन में ही अपने बाप के साथ जापान आ गया था और वहाँ का नागरिक बन गया था । उसने एक विशेष प्रकार की व्यायाम कला—जैन साधना—सीखी और उसी के बल पर वह चमत्कारी योद्धा बन गया ।

अक्सर चुनौती प्रदर्शन में उसके सामने अत्यन्त मजबूत पत्थर जैसी कठोर पकी हुई दो ईंटें दी जाती हैं । ईंटों की मजबूती को विशेषज्ञ परखते हैं । इसके बाद दोनों हथेलियों के बीच वह इन ईंटों को रखता और उँगलियों के खाँचे भिड़ा कर इस तरह दबाता कि ईंटों का चूरा हो जाता । दर्शक अवाक् रह जाते ।

एक बार जापान में उसे विचित्र प्रकार की कुश्ती का सामना करना पड़ा । हारे हुए पहलवानों ने मिल-जुल कर उसे चुनौती दी कि वह साँड़ से कुश्ती लड़ने को तैयार हो । पहले तो वह आनाकानी करता रहा पर पीछे जब चिढ़ाया जाने लगा तो वह तैयार हो गया । इसके लिए एक अत्यन्त क्रोधी और १३ मन (१ मन = ३७.३२४१ किलोग्राम) भारी साँड़ विशेष रूप से तैयार किया गया और नशा पिलाकर प्राणघातक आक्रमण करने में प्रवीण बनाया गया । इस दंगल को देखने के लिए जापान के कौने-कौने से लोग आये । डॉक्टरों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुलिस वालों का एक विशेष केम्प लगाया गया कि यदि मास साँड़ की चपेट में आ जाय तो कम से कम उसकी मरणासन्न स्थिति में कुछ तो उपचार किया जा सके और लाश को यथा स्थान पहुँचाया जा सके । तब क्रुद्ध साँड़ को काबू करने का भी सवाल था । यह काम पुलिस ही सँभाल सकती थी । सो भी सभी आवश्यक प्रबन्ध पहले से ही नियोजित कर लिए गए ।

मास पूरी तरह निहत्था था । मुट्ठियाँ ही एक मात्र उसकी ढाल तलवार थीं । लड़ाई आरम्भ हुई । आक्रमण को पहले करने का अवसर प्रशिक्षित साँड़ को दिया गया । मास अपनी जगह चट्टान की तरह खड़ा रहा । टक्कर खाकर वह उखड़ा नहीं वरन् घूँसे से प्रत्याक्रमण किया । घूँसा ऐसा करारा बैठा किं वह एक में चक्कर खाकर गिर पड़ा और वहीं ढेर हो गया । १३ मन भारी उस महादैत्य साँड़ को एक ठिगना-सा २ मन से भी कम वजन का मनुष्य इस तरह गिरा सकता है । यह दृश्य लोगों के लिए आश्चर्यचकित करने वाला था । कई तो इसे भूतप्रेत की सिद्धि या जादू मन्त्र का चमत्कार तक कहने लगे ।

अपनी शक्ति का रहस्य बताते हुए मास सदा अपनी योग साधना का वर्णन विस्तारपूर्वक किया करता था और उस प्रक्रिया का इतिहास बताया करता था ।

जापान में 'जैन साधना' भूतकाल में भी बहुत प्रख्यात और सम्मानित रही है । बौद्ध धर्मानुयायी सन्त इसे अपने शिष्यों को बताते सिखाते रहे थे । इस आधार पर मनुष्य न केवल आध्यात्मिक वरन् भौतिक शक्तियाँ भी प्राप्त कर सकता है । जैन साधना को नट विद्या नहीं वरन् विशुद्ध योगाभ्यास ही समझा जाना चाहिए । जापान की 'जुजुत्सु' विद्या संसार भर में प्रसिद्ध थी । इसके आधार पर कोई मनुष्य अपने से कहीं अधिक बलवान प्रतिद्वन्द्वी को बात की बात में धराशायी कर सकता था । इसकी पुष्टि करने वाली न केवल दन्त कथाएँ ही वहाँ प्रसिद्ध थीं, वरन् जापानी उसमें निष्ठानि भी होते थे।

मास को बचपन से ही योग विद्या का शौक था । उसने जैन साधना में निष्ठानि महाभिक्षु फुना कोशी से दीक्षा ली और उन्हीं के पास रहकर यह विद्या सीखने लगा । उस प्रयोजन के लिए उसने पर्वतों की निर्जन गुफाओं में डेरा डाला और बर्फ से ढकी कन्दराओं में वनस्पतिय खाकर साधना जारी रखी । कई वर्ष बाद वापस लौटा तो उसकी जटाएँ और दाड़ी बड़ी हुई थी । लोगों ने उसे पागल समझा, पर इससे क्या वह धुन का धनी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही रहा और आखिर उसने अपने को जैन साधना का सिद्ध पुरुष ही बना लिया ।

जापान आदि देशों में जैन साधना का बहुत सम्मान है । वह भारत की योग विद्या का ही एक अंग है । ईसा की पाँचवीं शताब्दी में भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन गए । उनके नेता का नाम था—'धरुम' । यह नाम धर्म शब्द का ही अपभ्रंश हो सकता है । उन योगियों ने जहाँ धर्म, सदाचार, अध्यात्म आदि की शिक्षाएँ दीं, वहाँ एक विशेष प्रकार की योग साधना भी सिखाई । यही है जैन साधना जो तब से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में उस क्षेत्र में जीवित ही बनी हुई है ।

जैन साधना का मूल आधार मनः शक्ति संकल्प बल एकाग्रता और निर्धारित प्रयोजन से सम्बन्धी श्रद्धा के साथ तत्परता बरतना । शारीरिक योग के लिए अपनी माँसपेशियाँ और नस नाड़ियों पर एकाग्रता पूर्वक अधिकार करना पड़ता है । अस्तु वे फौलाद जैसी कठोर हो जाती हैं और आक्रमण सहने तथा करने में अपराजेय सिद्ध होती हैं । इसी आधार पर मनः शक्ति को केन्द्रित एवं समर्थ बनाकर इस योग्य भी बनाया जाता है कि उससे दूसरे के मनः संस्थान को करारी टक्कर दी जा सके । यह टक्कर भले या बुरे किस प्रयोजन के लिए दी गयी और उससे दूसरे का क्या हित अनहित हुआ यह प्रयोक्ता के उद्देश्य पर निर्भर है । किन्तु इतना हर हालत में निश्चित ही रहता है कि योग साधना के बल पर शारीरिक एवं मानसिक क्षेत्र में चमत्कारी क्षमता उत्पन्न की जा सकती है ।

व्यक्तित्व की जड़ सींचने के लिए योग एवं तप की आवश्यकता

मनुष्य यों देखने में हाड़ माँस का पिण्ड दिखाई पड़ता है पर वस्तुतः वह चेतना का पुंज है । इस चेतना में ही उसका व्यक्तित्व घुला रहता है । इसी को उसका अस्तित्व अथवा वास्तविक मूल्य कहा जा सकता है । चेतना ही जीवन है, प्राण के निकल जाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर शरीर सड़ने लगता है और उसकी जल्दी ही अन्त्येष्टि करनी पड़ती है ।

इस चेतना के बारे में हमें अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और सीखना चाहिए कि किस प्रकार उसे विकृति स्थिति से उबारा और परिष्कृत दिशा में अग्रसर किया जा सकता है ।

मानवी चेतना को मनोविज्ञान वेत्ताओं ने तीन भागों में बाँटा है—(१) सचेतन—कान्सस, (२) अर्द्धचेतन—सबकान्सस, (३) अचेतन—अनकान्सस । सचेतन—वह जो हमारी विवेक बुद्धि के रूप में काम करता है । अर्द्धचेतन—वह जो रक्त संचार—श्वास-प्रश्वास—आकुंचन-प्रकुंचन आदि शरीर की संचालन प्रक्रियाओं का नियन्त्रण करता है । अचेतन—वह जिसकी गहन पर्तों में हमारे भूत कालीन संस्कार सुसुप्त अवस्था में जमे पड़े रहते हैं और अवसर पाकर सजग होते रहते हैं ।

सचेतन को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) ज्ञानात्मक नालिज, (२) भावात्मक फीलिंग, (३) कार्यात्मक विलिंग ।

विद्वान जुंग ने चेतना स्तर को पाँच भागों में बाँटा है—(१) सम्वेदना, (२) भावना, (३) अन्तर्दृष्टि, (४) स्मृति, (५) संवेग । उन्होंने उनमें से प्रत्येक के कई उपभेद भी गिनाये हैं ।

किसी वस्तु की पहले हमें जानकारी प्राप्त होती है फिर उसके सम्बन्ध में प्रिय या अप्रिय इच्छा उत्पन्न होती है । इसके उपरान्त उसे पाने, हटाने या उपेक्षा करने की क्रिया आरम्भ होती है । इस दृष्टि से प्राथमिकता ज्ञान की है । इच्छा और क्रिया का उदय इसके उपरान्त होता है ।

विचार उठने से लेकर किसी निर्णय निष्कर्ष पर पहुँचने तक चेतना द्वारा उस पर कितने ही दृष्टिकोणों से विचार कर लिया जाता है । साधारणतया इन परखों के लिए जाँच पड़ताल के कुछ आधार मनःक्षेत्र में प्रस्तुत रहते हैं । इन आधारों को (१) समानता, (२) विपरीतता, (३) समीपता, (४) बारम्बारता, (५) नवीनता, (६) प्रबलता, (७) प्राथमिकता । इन्हीं आधारों पर हमारे तर्क—पक्ष-विपक्ष की सम्भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं । अपने या दूसरों के अनुभवों के सहारे—प्रमाण साक्षी ढूँढ़कर—सम्भावनाओं का कल्पना चित्र खड़ा करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो इच्छा उठ रही है उसे किस हद तक और किस प्रकार पूरा किया जा सकता है ।

छोटे बच्चों में इच्छा एवं कल्पना की ही भरमार रहती है । तर्क-वितर्क करके किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए गुण अवगुण समझाने वाले दृष्टिकोण का उनमें विकास नहीं होता, अस्तु उनकी कल्पनाएँ मधुर या भयानक होते हुए भी वे कुछ निर्णय नहीं कर पाते । ऐसी दशा में उनके अंग भी इच्छा पूर्ति के लिए आवश्यक क्रियाएँ कर नहीं पाते । उनके अंग कोमल होते हैं सो ठीक है पर उससे भी अधिक बड़ा अशक्तता का कारण निर्णायक शक्ति का अभाव ही होता है ।

अन्य जीव-जन्तुओं के सचेतन मन की अपेक्षा अचेतन-अधिक समर्थ होता है । इसलिए उनके परम्परागत चिरसंचित अनुभव जो अभ्यास या संस्कार के रूप में जमे होते हैं उपयोगी निर्णय सहज ही कर देते हैं । उन्हें कब क्या करना है इसका निष्कर्ष निकालने के लिए बहुत सोच-विचार नहीं करना पड़ता—इसके लिए उन्हें तर्क-वितर्क का सहारा नहीं लेना पड़ता । उनकी सहज चेतना ही आवश्यक मार्गदर्शन कर देती है, किन्तु मनुष्य के बारे में यह बात नहीं है । उसका सचेतन प्रबल होता है और अचेतन की हर बात को सहज ही स्वीकार नहीं करता । उनके लिए परिस्थितियों और सम्भावनाओं के भले-बुरे पक्षों को समझकर अन्तिम फैसला करना चाहता है । इसलिए निर्णायक मार्गदर्शन अचेतन के हाथ से निकलकर सचेतन के कन्धों पर चला जाता है । इसी विशेषता के कारण उसे मननशील मनुष्य—कहा जाता है । मनुष्य के सर्वांगीण उत्कर्ष ने उसे अनेक परिस्थितियों और समस्याओं से निपटने के लिए बाध्य किया है इसलिए उसकी चेतना का भी बहुमुखी विकास हुआ है । अन्य जीवों के सामने वैसा कुछ नहीं उन्हें मात्र शरीर यात्रा के सम्बन्ध में ही सोचना पड़ता है । आहार, विश्राम, सुरक्षा एवं प्रजनन की समस्याओं को सुलझाने के अतिरिक्त उन्हें अधिक कुछ नहीं सोचना पड़ता । उनका समाज बहुत छोटा और बहुत उथला होता है घोंसले के अतिरिक्त और कुछ निर्माण या संचय उन्हें नहीं करना पड़ता । अस्तु मस्तिष्क को अधिक कुछ सोचने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती । आवश्यकता को आविष्कारों की जननी कहा गया है । चेतनात्मक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास से मनुष्य को लाभान्वित कराने का श्रेय उसकी परिस्थितियों एवं समस्याओं को ही है जिन्हें उसने अपने क्रमिक विकास के साथ-साथ अनवरत रूप से आगे बढ़ाया है ।

मनोविज्ञानी ड्रमण्ड एवं मैलोने यह मानते हैं कि चिन्तन की प्रखरता जो सामान्यतया सचेतन मन की दक्षता प्रतीत होती है वस्तुतः अचेतन द्वारा प्रदत्त की हुई होती है । अचेतन एक तिजोरी है जिसमें उपयोगी और अनुपयोगी सभी प्रकार के रस-विष भरे होते हैं उनमें से जिन्हें आगे कर लिया गया होगा वे ही सचेतन पर अधिकार जमा लेंगी और उसकी अभीष्ट दक्षता प्रखर करती चली जायेंगी । बुद्धिमान, विवेकशील, दूरदर्शी और निर्णय लेने वाले और सही ढंग से काम करने वाले व्यक्ति वस्तुतः अचेतन की गहरी पर्तों से ही अपनी इन विशेषताओं को उपलब्ध करते हैं ।

जे. डब्ल्यू. ब्रिज ने बताया है कि व्यक्तित्व को पतनोन्मुख और अस्त-व्यस्त बनाने की प्रक्रिया भी अनजाने ही चलती रहती है । अचेतन में सब कुछ भला-भला ही जमा नहीं है, वरन् पाशविक कुसंस्कार भी उसमें सत्प्रवृत्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में जमे रहते हैं । बगीचे में जितने उपयोगी पेड़-पौधे होते हैं उससे कहीं बड़ी मात्रा में घास-पात, खर-पतवार उगते हैं । उन्हें काटा-छाँटा न जाय तो फिर उपयोगी पेड़ों का विकास क्रम रुक जायेगा यही बात मनःक्षेत्र में उगी हुई प्रवृत्तियों के बारे में लागू होती है । अवांछनीयताओं पर नियन्त्रण न किया जाय—उनकी उपेक्षा बरती जाय तो वे सत्प्रवृत्तियों की अपेक्षा कहीं आगे बढ़ती हैं । इस बढ़ोत्तरी से घिरा हुआ व्यक्ति गँवार, अस्त-व्यस्त, अदूरदर्शी और कुमार्गगामी बन जाता है ।

सिगमण्ड फ्रायड का मत यह है कि अव्यक्त मनःक्षेत्र ही व्यक्तित्व का आधारभूत कारण है । मनुष्य जैसा भी कुछ है उसकी जड़ अचेतन में गहराई तक घुसी हुई पायी जायेगी ।

सचेतन को शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन आदि द्वारा प्रशिक्षित एवं परिष्कृत किया जा सकता है पर अचेतन पर इन प्रक्रियाओं का बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है । उसे निरन्तर के दीर्घकालीन अभ्यास ही प्रभावित करते हैं । इस दृष्टि से तत्व वेत्ताओं ने कितने ही प्रकार की विशिष्ट साधनाएँ विनिर्मित की हैं । इन्हें योगाभ्यास के नाम से पुकारा जाता है । जप और ध्यान इस प्रयोजन की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी करते हैं । आसन, प्राणायाम, व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, तप आदि क्रिया करके अभ्यासों का दीर्घकालीन सेवन भी अचेतन मन को उत्कृष्ट स्तर का बनाने में सहायक होता है । लोहे को गर्म करके ही अभीष्ट आकृति में ढाला जा सकता है । अचेतन को अवांछनीय स्थिति से छुड़ा कर परिष्कृत स्तर का बनाने के लिए योग और तप जैसे उपायों का अवलम्बन लेना पड़ता है ।

सचेतन और अचेतन की किसी ऊँचे पर्वत के शिखर और उसकी तलहटी से उपमा दी जा सकती है । शिखर दूर से दीखता है और सूर्य प्रकाश से चमकता है जब कि घाटी की तलहटी दबी छिपी और अँधेरी पड़ी रहती है । समुद्र में तैरने वाले आइस वर्ग पर्वतों का बहुत बड़ा भाग पानी में डूबा रहता है जो ऊपर उभरा रहता है वही दीखता है । ठीक इसी प्रकार हम किसी का व्यक्तित्व एवं बुद्धि-कौशल ही देख समझ पाते हैं जबकि उसकी वास्तविक सत्ता एवं पूँजी अव्यक्त मनःक्षेत्र में ही दबी छिपी होती है । नाटक के पात्र जब रंगमंच पर आते हैं तो वे आकर्षक सज-धज में होते हैं पर उसकी तैयारी उन्हें उस ग्रीन रूम में करनी पड़ती है जिसे दर्शक देख नहीं पाते । अव्यक्त मन एक प्रकार का ग्रीन रूम है जिसमें व्यक्तित्व सँजोया सँभाला जाता है । परिचय क्षेत्र में तो उस तैयारी की साधारण सी जानकारी भर मिलती है । यदि किसी का अव्यक्त मन देखा समझा जा सका होता तो पता चलता कि वस्तुतः यह व्यक्ति अपने यथार्थ रूप में है क्या ?

मूल व्यक्तित्व की तीन परतें होती हैं—(१) अहम्—ईगो, (२) परिष्कृत चेतना—सुपर ईगो, (३) इदम् 'इड'—बहिरंग समूह चेतना ।

अहम् वह स्तर है जिसमें हमें आत्म-सत्ता का बोध होता है । परिष्कृत वह जिसमें आदर्शों के अपनाने एवं विशिष्ट बनने की आकांक्षा प्रबल रहती है । इदम् वह जो अपने परिवार एवं समाज के साथ जुड़ा रहता है । परिस्थितियों के अनुरूप अपने सम्बन्ध में सुख-दुःख की—उत्थान-पतन की—मान्यताएँ बदलता रहता है । इसी सन्दर्भ में स्त्री-पुरुष की मान्यता भी है । प्राणी अपने को नर या नारी मान लेता है तो उसी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुरूप उसकी विचारणा एवं चेतना ढलने लगती है । यौन अवयवों का विकास इस मान्यता के अनुरूप ही होता है । पुराना शरीर छोड़ने पर भी यह मान्यता बनी रहती है और अगले जन्म में उसी वर्ग में जन्म ग्रहण कराती है । जो पुनर्जन्म नहीं मानते उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रज-वीर्य के गुण सूत्रों में पाये जाने वाले जीवाणुओं की संख्या में पायी जाने वाली प्रबलता भ्रूण में नर-नारी के लक्षण पैदा करती है । शरीर की स्थिति के अनुरूप प्राणी अपने आपको नर-नारी लिंग का मानता है यह बात स्थूल विश्लेषण की दृष्टि से ही सही है । गहराई तक उतरा जाय तो यह पता चलता है कि जीवधारी की सूक्ष्म सत्ता में जो नर या नारी की मान्यता घुसी होती है वही उसमें लिंग भेद के लक्षण उत्पन्न करती है ।

अपने सम्बन्ध में जैसी भी मान्यताएँ अचेतन में जमी हुई होंगी हमारा जीवन शकट उसी दिशा में अग्रगामी होगा और परिस्थितियाँ उसी प्रकार की बनती ढलती चली जायेंगी । यों प्रयत्न पुरुषार्थ के बाह्य प्रयत्नों से भी अभीष्ट दिशा में प्रगति की जा सकती है पर अन्तःक्षेत्र की अनवरत प्रेरणा से तो मनुष्य अनायास ही स्वसंचालित यन्त्र की तरह आगे बढ़ता जाता है । अन्तःस्थिति के अनुरूप बाह्य साधनों का विकसित होते जाना और उसी दिशा में अनवरत प्रगति होते जाना सहज स्वाभाविक है ।

अचेतन मन की व्याख्या स्नायु सिद्धान्त—न्यूरोलॉजीकल थ्योरी एवं मानसिक सिद्धान्त—साइकोलॉजीकल थ्योरी—के आधार पर की जाती है, शरीर गत स्नायु संस्थान की उत्तेजना से अचेतन मन की स्थिति बनती या बदलती है यह प्रतिपादन स्नायु सिद्धान्त वादियों का है । मानसिक सिद्धान्त वाले यह कहते हैं कि मनःस्थिति का शरीर पर पूरा नियन्त्रण है । मन जिस दिशा में चलेगा शरीर को उसी ओर चलना पड़ेगा । यह पक्ष मृत्यु तक को स्वनिर्मित या स्वेच्छित बताता है जबकि यह कहना सुनना बहुत अजीब सा लगता है ।

उपरोक्त दोनों मान्यताओं का समन्वय विद्वान मार्टिन प्रिंस ने किया है वे मनो स्नायु सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं । उनकी साइको न्यूरोलॉजिकल थ्योरी—स्नायु संस्थान और अचेतन मन के समन्वय पर ही व्यक्तित्व की कोई दिशा धारा निर्धारित होना मानते हैं । दोनों पक्षों को अपूर्ण ठहराते हैं और कहते हैं इनमें से किसी एक की गति-विधियाँ अपूर्णता और अस्त-व्यस्तता के रूप में ही बनी रहती हैं ।

व्यावहारिक जीवन में जो क्रिया-कलाप मनोयोग पूर्वक देर तक अपनाया गया है वही संस्कार बनकर अचेतन में समा जायेगा और फिर उसी की प्रेरणा से व्यक्तित्व की अनेक धाराओं एवं क्रियाओं का प्रवाह बढ़ेगा । अचेतन अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी स्वनिर्मित नहीं हैं, हमारे दीर्घकालीन मनोयोगों एवं क्रिया-कलापों से ही उसका निर्माण एवं परिवर्तन होता है ।

मस्तिष्क के बुद्धि संस्थान को विकसित करने के लिए जिस प्रकार मस्तिष्क को शिक्षित और हाथों को अभ्यस्त करनें का दीर्घकालीन प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार अचेतन को पाशविक कुसंस्कारों से मुक्त करके देवोपम अन्तःस्थिति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधना क्रम अपनाना पड़ता है । योग और तप का महत्त्व इसी दृष्टि से है जिस प्रकार अनाड़ी मस्तिष्क प्रगति में बाधक है उसी प्रकार असंस्कृत अचेतन भी व्यक्तित्व को विकसित होने के मार्ग में प्रधान अवरोध है । ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार सामान्य प्रशिक्षण प्रयासों की उपयोगिता समझी गयी है उससे भी अधिक आवश्यकता अचेतन को परिष्कृत करने के लिए योग एवं तप की समझी जानी चाहिए ।

आत्मोत्कर्ष की दिशा में चलने के लिए दो चरण

शरीर से कोई महत्त्वपूर्ण काम लेना हो तो उसके लिए—उसे प्रयत्नपूर्वक सधाना पड़ता है । कृषि, व्यवसाय, शिल्प, कला आदि के जो भी कार्य शरीर से कराने हैं उनके लिए, उसे अभ्यस्त एवं क्रिया-कुशल बनाने के लिए आवश्यक ट्रेनिंग देनी पड़ती है । लुहार, सुनार, दर्जी, बुनकर, मूर्तिकार आदि काम करने वाले अपने शिल्पों को बहुत समय तक सीखते हैं, तब उनके हाथ उपयुक्त प्रयोजन के लिए ठीक प्रकार सधते हैं । गायक, चित्रकार, अभिनेता, पहलवान आदि को अपने-अपने कार्यों को ठीक तरह कर सकने की देर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है । अस्तु शरीर को अभीष्ट कार्यों के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता सर्वत्र समझी जाती है और उसके लिए साधन जुटाये भी जाते हैं ।

शिक्षा का दूसरा क्षेत्र है मस्तिष्क । मस्तिष्क का ही शरीर पर नियन्त्रण है । जीवन की समस्त दिशा धाराओं को प्रवाह देना मस्तिष्क का ही काम है । "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निबुद्धिस्य कुतोबलम्" सूक्ति में सच ही कहा है जिसमें बुद्धि है, उसी में बल है । बुद्धिहीन तो सदा दुर्बल ही रहता है । प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? हाथी को गधे जैसा लदते और सिंह तथा बन्दर को समान रूप से नाचते देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता कि दुर्बल मनुष्य अपने बुद्धिबल से किस प्रकार सृष्टि के समस्त प्राणियों पर शासन कर रहे हैं । इस प्रशासन के अन्तर्गत वे जीव भी आते हैं जो शारीरिक प्रतियोगिता में मनुष्य को हजार बार पछाड़ सकते हैं ।

मस्तिष्कीय शिक्षण के लिए ज्ञान और अनुभव सम्पादित करना पड़ता है । जानकारी और अभ्यास की इसके लिए आवश्यकता होती है । इसका बहुत कुछ प्रयोजन स्कूली शिक्षा, साहित्य, सत्संग, मनन, चिन्तन आदि के सहारे पूरा होता है । मस्तिष्कीय क्षमता विकास की उपयोगिता भी सर्वविदित है । इसलिए अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार स्कूली अथवा दूसरी प्रकार की शिक्षा-पद्धति अपनाई जाती है और जानकारी, समझदारी बढ़ाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया जाता है । शिक्षा का दूसरा चरण जानकारी की कमी को पूरा करना है । इससे विचार शक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है और व्यवहारकुशलता आती है । बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा परक जो भी उपाय किए जाते हैं, वे सभी सराहनीय हैं । शारीरिक कुशलता की ही तरह मस्तिष्कीय विकास भी आवश्यक है । अस्तु शिक्षा के इन दोनों क्षेत्रों में अधिकाधिक समावेश करने के प्रयत्नों की प्रशंसा ही की जायगी ।

शिक्षा का प्रवेश प्रायः शरीर एवं मस्तिष्क तक ही सीमित रहता है, अन्तःकरण का स्तर बदलने में तथाकथित ज्ञान सम्पादन की कोई विशेष उपयोगिता सिद्ध नहीं होती । यदि मस्तिष्कीय शिक्षण से आस्थाएँ बदली जा सकतीं तो हर राजनेता सच्चे अर्थों में देश-भक्त होता—हर सरकारी कर्मचारी लोक-सेवा में उसी निष्ठापूर्वक संलग्न रहता जैसा कि उसे ट्रेनिंग की पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ाया गया था । सब धर्मोपदेशक नीति और सदाचार का ही आदर्श प्रस्तुत करते दिखाई पड़ते । साधु-सन्तों में से हर एक को ब्रह्मवेत्ता ऋषि रूप में पाया जाता पर सब वैसा नहीं होता । छद्म, मत्सर और आडम्बर को—आदर्शवाद की वकालत करने वालों में ही जब भरमार पायी जाती है तो लगता है बौद्धिक शिक्षा शरीर और मस्तिष्क को विकसित करने में कितनी ही उपयोगी क्यों न सिद्ध होती हो, अन्तःकरण को उत्कृष्टता की ओर उठाने में उसका नगण्य-सा ही योगदान रहता है ।

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यक्तित्व को सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने के लिए क्या किया जाय ? इसके उत्तर में एक ही तथ्य सामने आता है कि आस्थाओं के सहारे आस्थाओं को उभारा जाय । जंगली हाथी पकड़ने में प्रशिक्षित हाथियों का उपयोग होता है । काँटे से काँटा निकालने और विष से विष को मारने की कहावत प्रसिद्ध है । लोहे को लोहे से काटा जाता है । डूबे को पानी में से निकालने के लिए स्वयं डुबकी लगानी पड़ती है । अन्तःकरण के आस्था क्षेत्र को कुसंस्कारों से मुक्त करने के लिए सदुद्देश्यपूर्ण आस्थाओं की नये सिरे से प्रतिष्ठापना करनी पड़ती है ।

जीवन के मध्य केन्द्र—नाभिक को अन्तःकरण कहते हैं । उसी की स्थिति व्यक्ति को महान बनाती है और उसी के आधार पर निकृष्टता के गर्त में गिरना पड़ता है । समुन्नत और पतित व्यक्तियों में एक जैसे साधन रहते हुए भी अन्तर क्यों आया ? इसका कारण ढूँढ़ने हों तो उनकी आस्थाओं में अन्तर रहना ही प्रधान निर्मित परिलक्षित होगा । धन वैभव की दृष्टि से व्यवहार, कुशलता, अवसर, साधन, सहयोग आदि का महत्त्व हो सकता है, पर व्यक्तित्व के उत्थान-पतन की बात तो पूरी तरह व्यक्ति के अन्तःकरण की स्थिति पर ही टिकी हुई है । गीताकार ने व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए ठीक ही कहा है—"श्रद्धामयोऽयं पुरुष योयच्छ्धः स एव स" अर्थात् यह मनुष्य श्रद्धामय है । जिसकी जैसी श्रद्धा है वस्तुतः वह ठीक वही है । तात्पर्य स्पष्ट है—मनुष्य का स्वास्थ्य, ज्ञान, धन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पद उसका मूलस्वरूप नहीं, वह तो आवरण शृंगार मात्र है जिनकी कभी भी उलट-पुलट हो सकती है । स्थायित्व तो अन्तःकरण में भावस्थित आस्थाओं, विश्वासों, आकांक्षाओं पर निर्भर है । वे जिस स्तर की होंगी, मनुष्य उसी के अनुरूप ढलेगा और अन्ततः उसी के अनुरूप उठने, गिरने का आधार बनेगा ।

यहाँ समझने योग्य तथ्य इतना ही है कि आवरणों को सब कुछ न मानकर व्यक्ति की मूलसत्ता प्राण चेतना को ऊँचा उठाने की बात सामने हो तो फिर अन्तःकरण को परिष्कृत करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । अब प्रश्न यह उठता है कि यह किया किस प्रकार की जाय ? इसके दो ही उपाय हैं—(१) आत्म-विश्लेषण के द्वारा स्व सत्ता की स्थिति तथा दिशा का सही बोध कराने वाली आस्थाओं की गहन अन्तराल में प्राण-प्रतिष्ठा की जाय । (२) साधनाओं के क्रिया-कलाप द्वारा संचित कुसंस्कारों को उखाड़ने और उत्कृष्ट आस्थाओं को जमा सकने में समर्थ प्राणशक्ति को प्रखर बनाया जाय ।

प्रथम उपाय के लिए ब्रह्मविद्या का—तत्वदर्शन का—अवगाहन करना होता है । अध्यात्म विज्ञान का ज्ञान-भाग इसी के लिए विनिर्मित हुआ है । आत्मबोध के लिए उच्चस्तरीय स्वाध्याय-सत्संग, मनःचिन्तन की आवश्यकता पड़ती है । आत्म-चिन्तन और आत्म-मन्थन पर विचार शक्ति को केन्द्रित करना होता है । भगवान बुद्ध आदि आत्मज्ञानियों को अपनी साधना का केन्द्र बिन्दु इसी को मान कर चलना पड़ा था । अध्यात्म की भाषा में इसे योग कहते हैं । योग का अर्थ है जोड़ना । यह चिन्तन पर प्रक्रिया है । आत्मा को परमात्मा से—जीव को ब्रह्म से—सामान्य को असामान्य से सम्बद्ध करने के लिए चिन्तन का उपयोग भी करना पड़ता है और भावनाओं का भी । ब्रह्म विद्या का विशालकाय-कलेवर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है । योग क्रियापरक नहीं विचारक है । उसकी परिधि में आत्मा और परमात्मा के बीच जुड़े हुए असंख्य सूत्रों का विविध आधारों पर गहन चिन्तन करना पड़ता है । दर्शन शास्त्र की रचना इसीलिए हुई है । इसी परिधि में भावनाओं को उच्चस्तरीय प्रगति की दिशा में उभारना भी आता है । इसे भक्ति कहते हैं । प्रेम का निकृष्ट स्वरूप तो मोह और वासना के स्वरूप जैसा घटिया और घिनौना हो जाता है, पर उसकी ऊँची स्थिति आत्मीयता की सम्वेदनाओं को अधिकाधिक व्यापक बनाने के रूप में होती है । 'रसो वै स' सूत्र में सत्य ही कहा गया है कि—'प्रेम ही परमेश्वर है ।' इससे बढ़कर सरसता अन्यत्र कहीं है ही नहीं । जिस पदार्थ या प्राणी पर आत्मीयता बिखेर दी जाती है उसी में सुन्दरता एवं सरसता की अनुभूति होने लगती है । त्याग, बलिदान, सेवा, उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियों का उभार तभी आता है जब उच्चस्तरीय 'प्रेम' का अन्तराल में उदय होने लगे । प्रेम तत्व की सम्वेदनाएँ जागृत करने के लिए 'ईश्वर भक्ति' के रूप में भावनाएँ उभारनी पड़ती हैं । इसके लिए पूजा, अर्चा, कीर्तन, ध्यान, लीलाओं का श्रवण, दर्शन आदि उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है । अर्जुन को विराट् ब्रह्म के रूप में ईश्वर की झांकी जिस दिव्य दृष्टि से हुई थी उसी को अपनाने से 'सियाराम मय सब जग जानी' की श्रद्धा उभरती है और स्वार्थ संकीर्णता से ऊँचे उठ कर लोक-मंगल की दिशा में चल पड़ने की उमंग क्रियान्वित होती है ।

तप आत्मोत्कर्ष का दूसरा चरण है । चेतना के साथ जो तीन कलेवर लिपटे हैं वे सामान्यतया जीवन निर्वाह के आवश्यक क्रिया-कलाप पूरे करने भर के लिए मालूम पड़ते हैं, पर वस्तुतः उनके अन्तराल में शक्तियों और सिद्धियों के अजस्र भाण्डागार छिपे पड़े हैं । इस रत्न राशि को खोज निकालने और उखाड़-उभार कर ऊपर ले आने की वैज्ञानिक पद्धति का नाम तप है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की मोटी गति-विधियाँ सर्वविदित हैं । स्थूल शरीर रक्त माँस का बना—क्रिया-कलाप के उपयुक्त और जीवन धारण की आवश्यक कार्य-पद्धति पूरी करने के लिए बना है । सूक्ष्म शरीर से मन और बुद्धि के विविध कार्य सम्पन्न होते हैं । कारण शरीर भावनाओं का केन्द्र है—इच्छाएँ, प्रेरणाएँ, उमंगें, सम्वेदनाएँ इसी में भरी रहती हैं । सन्तोष-असन्तोष, आनन्द-अवसाद का अनुभव इसी में होता है । इन तीनों शरीरों की मिली-जुली गतिविधियों को जीवन का स्वरूप कहते हैं । यह सामान्य बात हुई । असामान्य को देखा खोजा जाय तो प्रतीत होगा कि शरीर की ओजस्विता—मस्तिष्क की मनस्विता और अन्तःकरण की तेजस्विता की सामर्थ्यें कितनी महान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । यह चेतनात्मक ऊर्जाएँ जिसमें जितनी मात्रा में बढ़ी-चढ़ी होती हैं वह उतना ही प्रभावी, पराक्रमी, समुन्नत एवं अभिवन्दनीय बनता चला जाता है । यही वह वैयक्तिक चुम्बक है जिसके सहारे सिद्धियाँ सफलताएँ, विभूतियाँ अनायास ही खिंचती चली आती हैं । सामान्य परिस्थितियों में जन्मे और गए-गुजरे साधनों से काम चलाने वाले व्यक्ति भी जब पग-पग पर आने वाले अवरोधों, अभावों, संकटों और संघर्षों का सामना करते हुए दुस्साहसी शूरवीरों की तरह प्रगति पथ पर एक-एक सीढ़ी पार करते हुए सफलता के उच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं तो उस चमत्कार के पीछे यही चुम्बकत्व काम कर रहा होता है । इतिहास में ऐसे अनेकों महामानवों की यशगाथाएँ भरी पड़ी हैं जो परिस्थितियों की दृष्टि से गयी-गुजरी स्थिति में रहते हुए भी प्रखर मनःस्थिति के कारण आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कर सकें । उन्हें ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने में कौन शक्ति काम कर रही थी, इसकी खोज-बीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि उनके व्यक्तित्व की प्रखरता ही शक्तिपुञ्ज बनी रही है और उसी ने स्वल्प साधनों के सहारे महानतम प्रयोजन सिद्ध किए ।

यह वैयक्तिक चुम्बक हर व्यक्ति के भीतर न्यूनाधिक मात्रा में मौजूद है । वह आत्मा का गुण है । आत्मा की अविच्छिन्न ऊर्जा तीनों शरीरों में तेजस्, मनस् एवं ओजस् के रूप में झांकती और काम करती देखी जा सकती है । जन्मजात रूप से हर व्यक्ति इस क्षमता को अपने साथ लेकर आता है, पर वह प्रसुप्त स्थिति में रहता है । जिनके पास पूर्व संग्रह है उनमें आरम्भ से ही इनकी अधिकता रहती है । जिनके पास ऐसा संचय नहीं है वे प्रयत्नपूर्वक उसे उभार सकते हैं । तप का प्रयोजन यही है कि व्यक्तित्व रूपी समुद्र में मन्थन क्रिया के द्वारा पौराणिक कथानक की तरह चौदह रत्नों जैसी सिद्धियाँ प्राप्त करने के मार्ग पर चलने का सरंजाम जुटाया जाय ।

तप का स्वरूप है तपाना गरम करना । आग पर गरम करने से सामान्य वस्तुओं की भी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है फिर व्यक्तित्व की प्रखरता उससे क्यों न बढ़ेगी ? कच्चे अन्न को चूल्हे पर पका कर मिष्ठान्न, पकवान बनते हैं । ईंटों को भट्ठे में लगाने से वे टिकाऊ बन जाती हैं । धातुओं को शुद्ध और सुदृढ़ बनाने के लिए उन्हें भट्ठी में डाला जाता है । पानी को गरम करने पर जो भाप बनती है उसकी सामर्थ्य से रेल गाड़ियाँ दौड़ती हैं । भस्में और रसायनें अग्नि संस्कारों से बनती हैं । बारूद में ताप पहुँचते ही भंयकर विस्फोट होता है । गर्मी से अण्डे पकते हैं । कृमि-कीटकों को मारने के लिए आग जलाई जाती है । प्रकाश और शक्ति का वैभव प्रकारान्तर से ताप की ही प्रतिक्रिया है । बिजली क्या है ? ताप का ही एक रूप है । शरीर में तभी तक जीवन है जब तक उसका तापमान नियत मात्रा में बना रहे, उसके गिरने पर निष्क्रियता बढ़ती जायेगी और प्राणान्त होकर रहेगा । जितनी मशीनें चलती हैं वे सभी अपने-अपने स्तर के ईंधन माँगती हैं । तेल, कोयला, भाप, गैस आदि तरह-तरह के ईंधन ही अग्नि संयोग से वह शक्ति उत्पन्न करते हैं जिससे मशीनें काम कर सकें और कारखाने चल सकें । शरीरों को यही ईंधन आहार के माध्यम से मिलता है । गतिशीलता बनाये रहने के लिए गर्मी आवश्यक है । पृथ्वी के पदार्थ और प्राणी अपनी हलचलें जारी रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा सूर्य से प्राप्त करते हैं ।

व्यक्तित्व के अनेकानेक घटकों एवं परतों को आवश्यक ताप पहुँचा कर उन्हें उत्तेजित किया जाता है और जो अद्भुत क्षमताएँ कण-कण में दबी पड़ी हैं उन्हें जागृत बना कर सामान्य मनुष्य को देव दानव स्तर तक पहुँचाने में सफल बनाया जाता है । सफलताएँ किसी के ऊपर आसमान से नहीं बरसतीं, उन्हें पुरुषार्थ का मूल्य चुका कर खरीदा जाता है । पुरुषार्थ को सही दिशा में, सही मात्रा में उत्पन्न एवं नियोजित कर सकने की कुशलता तपश्चर्या के आधार पर उत्पन्न की जाती है । इसलिए प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति को तप करने के लिए कटिबद्ध होना पड़ता है । भौतिक प्रयोजनों के लिए भौतिक स्तर का और आत्मिक प्रगति के लिए इस प्रकार का तप करना पड़ता है । साधना विधानों की संरचना इसी निमित्त की गयी है । प्रत्येक साधक को तप पुरुषार्थ करने पड़ते हैं और उसी के फलस्वरूप अनुदानों, वरदानों के महत्त्वपूर्ण प्रतिफल प्राप्त होते हैं ।

मान्यता है कि देवी-देवताओं की मनुहार मन्त्र-तन्त्रों के आधार पर करने से वे प्रसन्न हो जाते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साधनारत व्यक्ति उनसे मनोवांछित वरदान प्राप्त करते हैं । इस मान्यता का एक अन्धा पक्ष है दूसरा उजाला । अन्धा यह है कि देवी-देवताओं के पास और कुछ काम धन्धा न हो—पूजा प्रार्थना के लिए उनके मुँह में लार टपकती रही हो और प्रशंसा सुनने एवं सस्ते भेंट उपहार पाने भर से वे किसी पर लट्टू होकर ऐसे वरदान देते हों जो भारी उच्चस्तरीय पात्रता सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिल सकते हैं । यदि यह मान्यता सही हो, तो फिर देवी-देवताओं को रिझाना ही लाटरी लगाने की तरह अत्यन्त लाभप्रद व्यवसाय है । साधना विज्ञान में छाई हुई इस मूढ़ मान्यता का कोई आधार नहीं है । न इसके पीछे कोई तर्क है और न आधार ।

उजला पहलू यह है कि मानवी अन्तराल में एक से एक अद्भुत क्षमता केन्द्र प्रसुप्त स्थिति में पड़े हैं । यही देवी-देवता हैं । इन्हें साधना पुरुषार्थ में उसी प्रकार बलिष्ठ बनाया जा सकता है जैसे व्यायाम से माँसपेशियों को और अध्ययन से मस्तिष्कीय ज्ञानकोषों को । कारण शरीर का व्यायाम भी तप साधन है । इससे देव संस्थानों को जागृत होने का अवसर मिलता है । देवताओं की सुषुप्ति और जागृति के रोचक कथानक पुराण साहित्य में भरे पड़े हैं । आषाढ़ सुदी एकादशी देवशयनी मानी जाती है और पूरे चार महीने गहरी निद्रा का आनन्द लेकर कार्तिक सुदी एकादशी को देव उठनी (देवोत्थान) पर्व मनाया जाता है । विष्णु भगवान शेषनाग पर निरन्तर शयन ही करते रहते हैं उनकी यह निन्द्रा भंग न होने पाये इसलिए लक्ष्मी जी पैर दबाती और नारद जी चँवर डुलाते रहते हैं । शरीर में कुण्डलिनी महाशक्ति सदा सोती ही रहती है बड़े प्रयत्न पूर्वक कुण्डलिनी जागरण होता है षट्चक्र तथा दूसरे शक्ति संस्थान मूर्छाग्रस्त ही रहते हैं । वेधनक्रिया द्वारा उनके स्फुरण उत्पन्न की जाती है । इन समस्त प्रतिपादनों के पीछे एक ही रहस्य है कि अणु-ऊर्जा की तरह इस समस्त विश्व के जड़-चेतन में क्षमता तो अजस्र मात्रा में भरी पड़ी है, पर उसका उपयोग तभी हो सकता है जब जागरण के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया जाय । इसी प्रयास को तप साधना कहते हैं । तप से अपने ही अन्तस् के प्रसुप्त को जागृत किया जाता है और उसके फलस्वरूप दिव्य अनुदानों-वरदानों का प्रतिफल मिलता है । यही देवाराधन का उजाला पक्ष है । इस मान्यता के पीछे तर्क भी है और तथ्य भी । साधना में सिद्धि मिलने वाली मान्यता इस आधार पर पूर्णतया प्रामाणिक मानी जा सकती है ।

संक्षेप में चेतना के भावपक्ष को उच्चस्तरीय उत्कृष्टता के साथ एकात्म कर देने को 'योग' कहते हैं । यह आस्थाओं एवं आकांक्षाओं का परिष्कार है । योगी की मनोभूमि इसी प्रकार की होती है । वह शरीरगत तथा मनोगत वासनाओं, तृष्णाओं की उपेक्षा करता है उन्हें तुच्छ नगण्य मानता है । तीनों ऐषणाओं से उसे सहज विरति हो जाती है । उसे कण-कण में परमेश्वर दिखाई पड़ता है । हर किसी से प्रेम करने को जी करता है । इस प्रेम में दुलार और सुधार का सन्तुलित और समुचित समन्वय दूरदर्शी विवेक के आधार पर किया गया होता है । योगी की संकीर्ण स्वार्थपरता मिट जाती है । विश्वनागरिक अपने को मानता है, वसुधैव कुटुम्बकम् की दृष्टि रहती है और प्राणिमात्र के साथ आत्मीयता का सूत्र जुड़ जाता है । विचारणा में उत्कृष्टता और क्रिया पद्धति में आदर्शवादिता का अधिकाधिक समन्वय होता चलता है । व्यष्टि, समष्टि और प्रकृति के गतिचक्र को समझ लेने के कारण उसे किसी भी प्रिय-अप्रिय स्थिति में असन्तुलन ग्रसित नहीं होना पड़ता है । कमलपत्रवत् स्थिति बनी रहती है । खिलाड़ी की तरह-रंगमंच पर अभिनय करने वाले नट की तरह वह अपने प्रयास तो पूरे करता है, पर हार-जीत का मान-अपमान का बोझ नहीं ओढ़ता । जब खेल ही खेलना है तो हर स्थिति में विनोद ही विनोद की मनःस्थिति क्यों न रखी जाय ? योगी इसी तरह सोचने का अभ्यास कर लेता है ।

तपस्वी की गति-विधियों में प्रखरता की ज्योति जगमगाती देखी जाती है । शरीर में आलस्य फटकने नहीं पाता । नियमितता और समय व्यवस्था का सदा ध्यान रहता है । सक्रियता और स्फूर्ति से अंग प्रत्यंग गेंद की तरह उछलते रहते हैं । मन को प्रमाद करने का अवसर नहीं मिलता । हर काम में मनोयोग का समावेश रहने से वे सभी दर्शनीय और प्रशंसनीय बन पड़ते हैं । मन और बुद्धि का आधा-अधूरा प्रयोग करने वाले दीर्घसूत्री ही भूलें करते और भटकते देखे जाते हैं । जिसने मानसिक जागरूकता बनाये रहने का अभ्यास कर लिया है, ऐसा मेधावान् हर बात पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गहराई में सोचता है, विवेकपूर्ण दूरदर्शी निर्णय करता है और जो हाथ में लिया है उसे सफल बना कर रहता है । शरीर और मन को सरकस के जानवरों की तरह सधा लेने पर वे कितने उपयोगी सिद्ध होते हैं । इसे तपस्वी रीति-नीति अपनाने वाले का जीवन विकास क्रम देखकर सहज ही समझा जा सकता है ।

तपस्वी न्यूनतम समय और धन में निर्वाह की योजना बनाता है । फलतः उसे अपनी तृष्णा विलासिता पर खर्च होने वाली शक्तियों को बचाने और उन्हें महत्त्वपूर्ण परमार्थ प्रयोजनों में लगा सकने का अवसर मिल जाता है । महामानवों में से प्रत्येक को संकीर्ण स्वार्थपरता की जंजीरें तोड़नी पड़ी हैं । इसके लिए आवश्यक तपश्चर्या से ही उत्पन्न होता है । सेवा-धर्म अपनाये बिना न आज तक किसी को आत्म-सन्तोष मिला है और न किसी की आत्मिक प्रगति हुई है । इस मार्ग पर चलना उदारता, सहृदयता और आत्मीयता से ओत-प्रोत अन्तःकरणों के लिए ही सम्भव होता है अन्तरात्मा में यह विशेषता तप साधना से ही उभरती है । अन्तः और बाह्य क्षेत्र में घुसी हुई अवांछनीयताओं से संघर्ष करना—प्रतिपक्ष के आघात बिना उद्विग्न हुए सहते रहना यह शूरवीरों और दुस्साहसियों का ही काम है । ऐसा दिव्य स्वभाव प्रायः पूत मनःस्थिति में ही उत्पन्न होता है । निकृष्टताओं को उत्कृष्टताओं के साथ जोड़ देने का प्रयोजन तभी पूरा होता है । जब तप में कष्टसाध्य परिस्थितियों से रस आने लगे और उस मार्ग पर चलने में अपना वास्तविक हित दृष्टिगोचर होने लगे ।

धातुओं के टुकड़े जोड़ने में 'बेल्डिंग' प्रक्रिया काम में लायी जाती है । तप को आत्मा और परमात्मा को एक सूत्र में जोड़ देने वाली 'बेल्डिंग' पद्धति कह सकते हैं । खदान में से कच्चा लोहा निकलता है तब उसमें मिट्टी का बहुत बड़ा भाग मिला रहता है । इसे बार-बार भट्ठियों में डालकर शुद्ध किया जाता है । इसी क्रम के बार-बार चलने से उसे फौलाद स्टेनलैस स्टील—बनने का अवसर मिलता है । रसायन शास्त्री अभ्रक जैसी सामान्य वस्तु को बार-बार अग्नि संस्कार से उसे रसायन बना देते हैं । धातुओं के जरण-मरण की—विषों के संशोधन करने की—लगातार घोंटने-पीसने की विधियाँ चिकित्सा क्षेत्र के रसायन शास्त्र में आती हैं । स्वभाव और संस्कारों की घुटाई-पिसाई को तपश्चर्या कहा जा सकता है । एक में पदार्थ को कष्टसाध्य परिस्थिति में प्रवेश करके अपना महत्त्व बढ़ाना पड़ता है, दूसरे में व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक उच्चस्तरीय प्रयोजनों में अपने ऊपर नियन्त्रणों, प्रतिबन्धों और सत्प्रयोजनों के लिए आवश्यक कठिनाइयाँ शिरोधार्य करनी होती हैं । तपस्या इसी को कहते हैं । रंगाई से पहले धुलाई आवश्यक होती है । धोबी कपड़े का मैल छुड़ाने के लिए उसे उबालने, साबुन में गलाने, पत्थर पर पीटने, धूप में सुखाने जैसे कई कठिन उपचार काम में लाता है । यदि ऐसा न किया जाय तो कपड़े की मलीनता दूर न होगी, वह धबल-उज्ज्वल दिखाई न पड़ेगा । रंग तो उस पर चढ़ेगा ही नहीं । व्यक्तित्व को निर्मल बनाने और उच्च संस्कारों से सुसम्पन्न करने की प्रक्रिया को धुलाई, रंगाई के समतुल्य माना जा सकता है । सोने को शोधने से लेकर आभूषण बनाने तक की प्रक्रिया में लगातार अग्नि सम्पर्क और हथौड़ी की चोटें सहनी पड़ती हैं । इससे इन्कार करने पर उसे गले का आभूषण और मस्तक का अलंकार बनने का अवसर नहीं मिल सकता । अनगढ़ डेली को चित्राकर्षक अलंकार बना देने का श्रेय स्वर्णकार की उस कुशलता को मिलता है जिसके साथ असीम शुभकामना उज्ज्वल भविष्य की विवेकपूर्ण सम्भावना के साथ-साथ कष्ट सहन करने की विवशता भी जुड़ी है । प्राचीनकाल में गुरुकुलों का कष्टसाध्य जीवन अमीर घर के बालकों को भी अंगीकार करना पड़ता था । उनके अभिभावक जानने थे कि इससे कम में उनके प्राणप्रिय बालकों का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता । पहलवान को अखाड़े में—किसान को खेत में—विद्यार्थी को स्कूल में तप करना पड़ता है । यदि वे सुविधा और सरलता की बात सोचते रहें—मन की मौज को प्रधानता देते रहें तो फिर समझना चाहिए कि इनमें से एक को भी सफलता न मिल सकेगी और उनके मनोरथ किसी प्रकार पूरे न होंगे ।

आत्मिक प्रगति के लिए तप मार्ग स्वीकार करने की आवश्यकता इसलिए है कि जन्म-जन्मान्तरों के अन्तःकरण पर चढ़े हुए कुसंस्कारों का पशु प्रवृत्तियों का—मल आवरण विक्षेपों का समाधान सम्भव हो सके । आत्मशोधन की जितनी भी महिमा गाई जाय उतनी ही कम है । हठयोग में नाड़ी शोधन के छः कर्म प्रधान हैं । राजयोग में यम नियम की प्रमुखता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गुण, कर्म, स्वभाव का परिशोधन प्रथम और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान दूसरा चरण है । जीर्णरोगियों को चिकित्सक लोग वमन, विरेचन, स्नेन, स्वेदन के पंचकर्मों द्वारा मलशोधन कर्म करते हैं । प्राकृतिक चिकित्सा का तो आधार ही यह है कि वास्ति कर्म और उपवास द्वारा मल-निष्कासन करने की बात को ही रोग-मुक्ति का प्रधान आधार मानते हैं । नये घर में प्रवेश करने से पूर्व उसकी धुलाई पुताई कराई जाती है । तप द्वारा कुसंस्कारों का निराकरण करना इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना दैवी सुसंस्कारों का अवतरण सम्भव ही न हो सकेगा । मल त्याग द्वारा पेट खाली कर लेने के उपरान्त ही भूख लगती है और भोजन करने का लाभ मिलता है । गन्दी साँस छोड़ने के पश्चात ही नाक में नई स्वच्छ साँस का प्रवेश होता है । पाप-प्रायश्चितों की चान्द्रायण व्रत आदि कितने ही कष्ट साध्य उपाय तपश्चर्या में सम्मिलित किए गए हैं । अपने गुप्त पापों को किसी विश्वस्त मार्गदर्शक के सम्मुख खोलकर रख सकने का साहस भी तपश्चर्या का ही एक अंग माना गया है ।

कषाय-कल्मषों का दबाव अन्तःकरण पर से हट जाने पर उसमें सन्निहित दिव्य शक्तियों का उभार अनायास ही होने लगता है । दर्पण स्वच्छ कर देने पर मुख साफ दीखने लगता है । स्वच्छ जल में ही प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । अंगारे पर चढ़ी हुई राख की परतें यदि हटा दी जायें तो उस पर छाई हुई कालिमा एवं तेजहीनता दूर हो जायेगी और अंगारा अपनी ऊष्मा एवं आभा सहित पूर्वस्थिति में आ जायेगा । जंग छुड़ा देने पर लोहा भी चाँदी जैसे चमकने लगता है । यह कार्य तप साधना से ही सम्भव होता है ।

मानवी व्यक्तित्व को विभूतियों की रत्न-राशि का भण्डार कहा जा सकता है । शरीर को साध लेने वाले कितने प्रतिभाशाली, बलिष्ठ, सुन्दर एवं दीर्घजीवी होते हैं ।

यह सभी जानते हैं और यह किसी से भी छिपा नहीं है कि सशक्त स्फूर्तिवान शरीर वाले कितनी सांसारिक सफलताएँ प्राप्त करते हैं । कहना न होगा कि शरीरगत दिव्य क्षमताओं को विकसित कर सकना तप साधना द्वारा सम्भव हो सकता है । शरीर के अंग-प्रत्यंगों पर उसकी गतिविधियों पर नियन्त्रण कर लेने से शारीरिक विद्युत का संचय और उपयोग सीख जाने से मनुष्य अपनी इतनी विशेषतायें—असमानताएँ प्रदर्शित कर सकता है जिन्हें देखकर लोग आश्चर्यचकित होने लगते हैं ।

मस्तिष्कीय शक्तियों की खोज-बीन करने वाले वैज्ञानिक खोपड़ी में रखे हुए इस छोटे से किन्तु अत्यन्त रहस्यमय कम्प्यूटर की महत्ता और सम्भावना पर विचार करते-करते दंग रह जाते हैं । साधारणतया मस्तिष्क सोचने समझने के काम आने वाला अवयव मात्र है, पर गम्भीरता से देखने पर पता चलता है कि दैनिक जीवन में तो मस्तिष्क का ७ प्रतिशत भाग ही काम आता है शेष ९३ प्रतिशत चेतन-अचेतन की परतें इतनी चमत्कारी हैं कि उनकी सम्भावनाओं का कोई अन्त नहीं । इन दिनों मनुष्य की अतीन्द्रिय क्षमता के सम्बन्ध में पैरासाइकोलॉजी—न्यूरालॉजी—मैटाफिजिक्स —आकल्ट साइन्स आदि के क्षेत्रों में गहरी खोजें हो रही हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा रहा है कि मानवी मस्तिष्क जादू का पिटारा है । उसमें भरे हुए रहस्य—घटकों को समझा-उभारा जा सके तो अब तक हुई भौतिक प्रगति से असंख्यों गुने आधार हर व्यक्ति में भरे पूरे पाये जा सकते हैं । त्रिकालदर्शी ऋषियों ने अपने भीतर असंख्य ऋषि-सिद्धियों के भण्डार तप साधना द्वारा जागृत किए थे । ध्यान, धारणा, प्रत्याहार और समाधि यह चार साधनाएँ मस्तिष्कीय संस्थान के परिशोधन एवं जागरण का उद्देश्य पूरा करती हैं ।

अन्तःकरण—कारण शरीर—जीव और ईश्वर के मिलन संगम का केन्द्र है । तप साधना द्वारा अन्तरात्मा को परमात्मा स्तर तक पहुँचाया जा सकता है और वह स्थिति पैदा की जा सकती है कि ईश्वर साक्षात्कार का आत्मसाक्षात्कार कां परमानन्द लाभ लिया जा सके । ईश्वर ही इस सृष्टि का अधिपति और सृष्टि की समस्त सम्पदाओं का स्वामी है । उसके साथ यदि गहन सम्पर्क सम्भव हो सके—आत्मीयता जुड़ सके—तो फिर पारस्परिक आदान-प्रदान में कोई कमी-कोताही नहीं रहती । व्यक्ति आत्म समर्पण करके ईश्वर को अपना सब कुछ सौंपता है साथ ही जो उसके पास है वह सब कुछ प्राप्त भी कर लेता है । यह उभयपक्षीय सौदा पटाने में अन्तरात्मा को तप प्रक्रिया द्वारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्चस्तरीय बनाया जाता है । पार्वती ने शिव को पाया । भागीरथ ने गंगावतरण सम्भव किया—अगस्त्य ने समुद्र सुखाया जैसे पौराणिक उपाख्यान तपश्चर्या के फलस्वरूप मिलने वाले देव वरदानों की ओर संकेत करते हैं । प्राचीनकाल की ऋषि परम्परा में तपश्चर्या ही वह अस्त्र था जिसके सहारे उन्हें इसी माँस पिण्ड में देवात्मा के अवतरण का सुयोग्य-सौभाग्य मिल सका ।

चेतना का परिष्कार एवं उत्कर्ष मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ एवं पुरुषार्थ है । अपूर्णता से पिण्ड छुड़ा कर पूर्णता प्राप्त करना—भवबन्धनों को काट कर मुक्ति के अधिकारी बनना—आत्मा और परमात्मा की एकता सम्भव करना यही तो जीवन लक्ष्य है । यह प्रयोजन आत्म विकास से भी सम्भव होता है। पात्रता और प्रामाणिकता सिद्ध करके ही हम महत्त्वपूर्ण एवं स्थायी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं । इसके लिए योग तप का साहचर्य लिए बिना और कोई उपाय नहीं । योग से चेतना को, चिन्तन को, आस्था-आकांक्षा को, आत्मसत्ता को उस महानता के साथ जोड़ा जाता है जो सर्वसमर्थ और सर्वोपरि है । विषयानन्द की नगण्य सी अनुभूति से यह आभास मिल सकता है कि ब्रह्मानन्द कितना अधिक उल्लासपूर्ण हो सकता है । यह उपलब्धि योग साधना का ही प्रतिफल है । नाला गंगा में मिल कर गंगा बनता है—बूँद समुद्र में मिल कर समुद्र हो जाती है—स्त्री आत्म समर्पण करके पति की प्राणबल्लभा बनती है । आत्मा ईश्वर में जुड़ कर परमात्मा बनती है । योग का लक्ष्य है आत्मा को परमात्मा से जोड़ देना । यह भाव प्रक्रिया है इसमें करना कुछ नहीं पड़ता मात्र चिन्तन और भाव सम्वेदन के समुद्र में अधिकाधिक गहराई तक प्रवेश करते ही चला जाना पड़ता है ।

तप में तीनों शरीर तपाने पड़ते हैं । उन पर चढ़े कल्मषों का निराकरण और दबे हुए शक्ति स्रोतों का जागरण यही है तपश्चर्या का उद्देश्य । हम योग और तप का महत्त्व समझें उनकी ओर कदम बढ़ाएँ तो इसी जीवन में उतना कुछ प्राप्त कर सकते हैं जिस पर संसार भर के विलास-वैभव को निछावर किया जा सके ।

अन्तःकरण के परिमार्जन से दिव्य शक्तियों का उद्भव !

आत्मोत्कर्ष के लिए साधना क्षेत्र में उतरना ही एक मात्र उपाय है । अन्तःक्षेत्र का परिशोधन परिमार्जन करना पड़ता है । मलीनताएँ सम्मिश्रित किए रहने पर उसका मूल्यांकन ठीक नहीं हो पाता । जमीन से धातुएँ जब निकलती हैं तो उन सबके साथ मिट्टी मिली होती है । आग की प्रचण्ड भट्ठी में डालकर उसे तपाना-पिघलाना पड़ता है । इससे मिट्टी वाला अशुद्ध अंश जलकर पृथक् होता है और शुद्ध धातु अपने असली रूप में सामने आती हैं ।

सौरमण्डल के ग्रह, उपग्रह जिस क्रम और जिस गति से अपनी धुरी और कक्षा में घूमते हैं, उसी प्रकार परमाणु भी नाभिक की परिक्रमा करते और धुरी पर घूमते हैं । परमाणु के इर्द-गिर्द घूमने वाले इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन की भी वही रीति-नीति होती है, जो सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रहों की । इनकी गतिविधियों और परमाणुओं के क्रिया-कलापों में नगण्य-सा ही अन्तर पाया जाता है इसी तथ्य पर समस्त ब्रह्माण्ड का गति चक्र चलता है । ईश्वर को ब्रह्माण्ड माना जाय तो व्यक्तित्व को एक सौरमण्डल माना जा सकता है । सौरमण्डल को एक इकाई माना जाय तो परमाणुओं को उनका अंशधर मानना पड़ेगा । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य के अन्तराल में विद्यमान शक्तियों की न्यूनता नहीं । प्रश्न केवल इतना भर है कि उन्हें प्रसुप्त स्थिति में पड़े रहने दिया जाय या जागृत सशक्त—सक्रिय बनाया जाय ।

इसका एक ही उपाय है कि जो अवांछनीयताएँ उभरी हुई हैं, उन्हें दबाया जाय और जो श्रेष्ठता के तत्व विद्यमान हैं, उनमें नव जीवन का संचार किया जाय । यह कार्य साधना माध्यम से ही हो सकता है ।

साधना के दो पक्ष हैं—एक तप, दूसरा योग । तप का अर्थ है तपाना । किसी वस्तु को तपाने से जो उसमें अनावश्यक तत्व हैं वे हट जाते हैं और शुद्ध स्थिति की सुदृढ़ता उत्पन्न होती है । मिट्टी के बने पात्रों को गरम करने से वे सुदृढ़ और टिकाऊ हो जाते हैं । ईंटें पकने के उपरान्त पत्थर का काम करती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धातुएँ पकाने से अपने शुद्ध स्वरूप में निखर आती हैं । धूप में कपड़े सुखाने से उनकी सीलन और बदबू उड़ जाती है । पानी को तपाने से ऐसी सशक्त भाप बनती है, जो रेलगाड़ी जैसे भारी-भरकम वाहन को खींचे-खींचे फिरे । रस भस्में अग्नि संस्कार प्रक्रिया से बनती हैं । शरीर का तापमान जब तक सही रहता है तभी तक जीवन है । घटने से दुर्बलता और बढ़ने से उत्तेजना ऐसी सवार होती है, जो प्राण घातक बन सके ।

योग का अर्थ है जोड़ना । जोड़ना किसको, किससे ? इसका उत्तर एक ही है आत्मा को परमात्मा से । टंकी के साथ नल का तारतम्य जुड़ा रहता है, तो नल की टोंटी से तब तक पानी निकलता रहेगा, जब तक कि टंकी पूरी तरह खाली नहीं हो जाती । बिजली घर के साथ जेनरेटर ट्रांसफार्मर जुड़ते हैं और फिर उनके कनेक्शन जहाँ कहीं तक जाते हैं, वहाँ करेण्ट बराबर चलता रहता है । हिमालय के साथ जुड़ी हुई नदियों का प्रवाह तब तक चलता रहता है जब तक कि हिम भण्डार पूरी तरह गल कर समाप्त नहीं हो जाता । यही स्थिति आत्मा की भी है । सम्बन्ध मजबूती से जुड़ जाय तो दोनों की एकता में कोई अन्तर नहीं रह जाता । परमात्मा के गुण आत्मा में प्रकट होने लगते हैं ।

तप में तितिक्षा द्वारा अपने को तपाना और दुर्गुणों को जलाना पड़ता है । इसमें दोष, दुर्गुणों, कुसंस्कारों को जलाकर व्यक्तित्व में सन्निहित श्रेष्ठता के तत्वों को उजागर करना पड़ता है । शुद्ध स्थिति में पहुँचने पर वस्तु का मूल्य अनायास ही अत्यधिक बढ़ जाता है । कोयले का शुद्ध स्वरूप हीरा है । भाप से उड़ाया हुआ पानी डिस्टिल्ड वाटर कहलाता है और औषधि के समतुल्य उपयोग किया जाता है । मनुष्य की उत्कृष्टता दुर्गुणों के छिद्रों से होकर बह जाती है । यदि उन्हें रोक दिया जाय, तपाकर मजबूत टाँके लगे बर्तन जैसा बना दिया जाय तो फिर प्रवाह की निरर्थकता का खतरा नहीं रहता ।

योग में जब परमात्मा सत्ता के साथ आत्मसत्ता की घनिष्ठता होती है तो द्वैत मिटकर अद्वैत बन जाता है । परमात्मा की सभी विशेषताएँ आत्मा में अवतरित होने लगती हैं । नाला जब नदी में मिल जाता है, तो उसका गन्दा जल भी गंगा जल के सदृश्य पवित्र मान जाने लगता है । आग में जब ईंधन पड़ता है, तो दोनों की घनिष्ठता एक रूप में प्रकट होती है । ईंधन भी आग की तरह जलने लगता है और कुछ क्षण पहले जो लकड़ी-सा नगण्य था वही अग्नि के गुणों से भर जाता है और उसे कोई छूने का साहस नहीं करता । बेल में निजी गुण जमीन पर फैलने का है, पर जब वह पेड़ से लिपट जाती है, तो उतनी ही ऊपर उठ जाती है, जितना लम्बा कि पेड़ होता है । बाँसुरी जब अपने को पोला कर देती है, अपनी निजी अहंता का परित्याग कर देती है तो वंशी के रूप में विकसित हो जाती है और वादक द्वारा छेड़े गए मधुर स्वर उसमें से निनादित होते हैं । व्यक्ति काया की दृष्टि से ही जीवधारी रहता है, पर गुण, कर्म, स्वभाव से वह ईश्वरवत् हो जाता है ।

तपस्वी को अपनी अवांछनीय आदतों से संघर्ष करना होता है और उन्हें परास्त करना पड़ता है । संकीर्ण स्वार्थपरता, विलासिता, मोहग्रस्तता, लोभ, लिप्सा, अहंता जैसे अनेक कुसंस्कार ऐसे हैं, जिनका उन्मूलन न किया जाय तो अन्तराल की स्थिति झाड़-झंखाड़ उगे बीहड़ जैसी हो जाती है और उस स्थान पर उपयोगी कृषि करना, उद्यान उगाना सम्भव नहीं हो पाता । कपड़ा पहले धोया जाता है तब उस पर रंग चढ़ता है । तप को कपड़ा धोना समझना चाहिए और योग को परमात्मा के रंग में अपने को रंगना ।

जिस प्रकार दोनों पहिये सही होने पर गाड़ी सही रीति से चल पड़ती है, आन्तरिक दिव्य क्षमताओं को विकसित करने के लिए इन्हीं दो क्रिया-कलापों को खाद पानी की तरह प्रयुक्त करना पड़ता है । आत्मशोधन एवं आत्म परिष्कार ही दिव्यशक्तियों की सिद्धियों-ऋद्धियों को अपने भीतर से उभारने का एक मात्र उपाय है ।

जो छद्म प्रयोजनों के तान्त्रिक जैसे आधारों का अवलम्बन करके कोई चमत्कारी विशेषताएँ उत्पन्न कर लेते हैं, बाजीगरी स्तर की होती हैं । न तो उनमें वास्तविकता होती है और न टिकाऊपन । उनका उपयोग मात्र लोगों को प्रभावित करने, भ्रम में डालने भर के लिए किया जा सकता है । वे चकाचौंध उत्पन्न करके किसी की आँखों को चौंधिया सकती हैं । ऐसा तो सम्मोहन विद्या हिप्नोटिज्म से भी हो सकता है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साँप, बिच्छू, शेर, ईश्वर, देवता आदि के दर्शन करा दिये जायें । यह दिवा स्वप्न है जो समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरते । जिसको देवता अनुग्रह पूर्वक दर्शन दें उन्हें अपनी दिव्य विभूतियाँ प्रदान करके उच्चस्तरीय भूमिका में क्यों नहीं पहुँचा देंगे ? यदि ऐसा कोई परिवर्तन अपने में दृष्टिगोचर नहीं हुआ है, चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में निकृष्टता ही छाई रही है तो समझना चाहिए कि स्थिति पूर्ववत् गयी-गुजरी ही बनी हुई है । लोगों को भ्रम में डालने के लिए अपने प्रभाव और प्रताप के झूठे किस्से भी गढ़े जा सकते हैं । बाजीगरों की भाँति किन्हीं को भ्रम में डालने वाला कौतुक-चमत्कार भी दिखाया जा सकता है, किन्तु यह निश्चित है कि व्यक्तित्व को परिमार्जित किए बिना कोई सिद्ध पुरुष नहीं बन सकता ।

योग साधना का उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध !

योग का उद्देश्य "चित्तवृत्तियों" का संशोधन है । महर्षि पातंजलि की योग-परिभाषा यही है । पशुप्रवृत्तियों को परिवर्तित कर दिव्य आस्थाओं का स्वरूप दे देने की प्रक्रिया योग है । दीर्घकाल से संग्रहीत कुसंस्कारों को उच्चस्तरीय आस्थाओं में परिणत करने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ अपेक्षित होता है । सद्ज्ञान और सद्भावनाओं का सतत् सम्वर्धन ही इस पुरुषार्थ का स्वरूप है ।

शरीर को सक्रिय और मन को सन्तुलित रखने पर ही इतना प्रबल पुरुषार्थ सम्भव है । छेनी, हथौड़ा ठीक रहे तो लुहार ढलाई, गढ़ाई भली-भाँति कर सकता है । नाई हजामत बनाने का कीम ठीक से कर सके इसके लिए कैंची, उस्तरे पर धार होनी जरूरी है । शारीरिक सक्रियता तो योगी ही क्यों भोगी के लिए भी जरूरी है और मन की एकाग्रता व सन्तुलन की शक्तियाँ भी दोनों को जरूरी हैं । आसन, प्राणायाम आदि शारीरिक, मानसिक व्यायामों का यही उपयोग हैं । इनकी जरूरत तो योगी-भोगी दोनों को ही है । इन क्रियाओं का महत्त्व व उपयोग तो है, पर यही योग नहीं ।

एकाग्रता मन-मस्तिष्क की व्यवस्थित चिन्तिन विधि है । सभी प्रतिभाशाली अपने काम को मनोयोगपूर्वक करते हैं और इस तरह 'मेडीटेशन' की प्रक्रिया को ही अपनाते हैं । मेडीटेशन वस्तुतः मस्तिष्क की अस्त-व्यस्तता और बिखराव पर नियन्त्रण पाने की एक कला है । वह एक मस्तिष्कीय व्यायाम है । उसे आध्यात्मिक साधना का पर्याय बताना अनुचित है । आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र इतना संकीर्ण नहीं है । मस्तिष्कीय व्यायाम का महत्त्व तो बताया जाना चाहिए, पर उसे ही रहस्यमयी शैली में योग व अध्यात्म-साधना का समानार्थक नहीं प्रचारित कर दिया जाना चाहिए । मस्तिष्क को साधने की कला का एक अत्यन्त छोटा-सा हिस्सा एकाग्रता है । निःसन्देह उसका महत्त्व है, पर उस एकाग्रता का उद्देश्य क्या है ? अध्यात्म की दृष्टि से यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

ध्यान के अभ्यास में तरह-तरह की आकर्षक प्रतिमाएँ सामने रखकर अथवा उन्हें कल्पना-क्षेत्र में बिठाकर उनके साथ एकाग्रता जोड़ने का अभ्यास किया जाता है । यदि उसमें पूर्ण सफलता मिल जाय और मन उन प्रतिमाओं में पूरी तरह एकाग्र रहने लगे, तो भी आध्यात्मिक प्रगति में इससे कोई सहायता मिलने वाली नहीं । वह तो तभी सम्भव है, जब अपनी चेतना को विश्व-चेतना का घटक मानकर स्वार्थ का परमार्थ में विकास किया जाय ।

योग का लक्ष्य है—आत्मा को परमात्मा से जोड़ना । व्यक्तिसत्ता का समष्टिता में समर्पण ही योग है । यह भावोत्कर्ष की साधना द्वारा ही सम्भव है । व्यक्तिवादी, अहंता और स्वार्थवादी महत्त्वाकांक्षा में परिधिबद्ध मन को सार्वभौम चेतना से जोड़कर अपने चिन्तन और कर्तृत्व को उत्कृष्ट बनाना ही आध्यात्मिक प्रगति है । इससे कम कुछ भी नहीं । सही दिशा में चलने पर मनुष्य में देवत्व के उदय की प्रक्रिया का प्रारम्भ अनिवार्य है । योग वस्तुतः एक भाव विज्ञान है, जो जीव को ब्रह्म से चिरमिलन की भाव भूमिका की ओर ले जाता है । लघु को महान बनाने की यह विद्या है । यह मूल लक्ष्य यदि विस्मृत-उपेक्षित रहा, तो फिर आसन, प्राणायाम, मेडीटेशन, मुद्रा, बध, नेति, धोति, वस्ति आदि का अभ्यास, विस्तार एक सामान्य व संकीर्ण मनःक्रीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग-विज्ञान में प्रगति का प्रमाण यही है कि उसमें प्रवृत्त मनुष्य अनेक दृष्टियों से असामान्य हो जाता है । महामानव, देवदूत, सिद्ध पुरुष, ऋषि, योगी, तपस्वी आदि इसी स्तर के होते हैं । यों सिंह की खाल ओढ़कर कोई गर्दभराज भी वनराज बनने का स्वांग कुछ समय तक रचे रह सकते हैं, पर सम्पूर्ण जीवन-क्रम ही इस प्रगति की वास्तविक कसौटी नहीं है ।

पेट और प्रजनन की इच्छापूर्ति में दिन-रात जुटे सामान्य नर-कीटकों से सर्वथा भिन्न मनोभूमि वाले चरित्रवान्, सन्मार्ग पर चलने का साहस रखने वाले, लोक-मंगल के लिए आत्म-समर्पण करने वाले, तत्वदर्शी, युगान्तरकारी समर्थ व्यक्ति प्रवाह पतित लोगों की भीड़ में अलग ही दीख जाते हैं । धारा को चीरकर उलटी दिशा में चल पड़ने का आत्मबल ही वस्तुतः अनुपम चमत्कार है । जन-मानस के आमूल परिष्कार और युग-प्रवाह को पलट देने का कार्य अत्युच्चकोटि की ऋद्धि-सिद्धि के ही जैसा है । इस कोटि का आत्मबल कोई बौद्धिक सामर्थ्य नहीं है । वस्तुतः वह तो अतीन्द्रिय सामर्थ्य से भी उच्चकोटि की शक्ति है । यह योग-विज्ञान की प्रगति द्वारा ही प्राप्त है ।

अनिवार्य तो नहीं, पर योग की किसी-किसी शाखा का आश्रय लेकर अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी विकसित की जा सकती हैं । वे भी चमत्कारी नहीं । वस्तुतः वह मस्तिष्कीय विद्या की प्रगति है, जो कि आत्म-विद्या का ही एक अंग है ।

चेतन-मस्तिष्क की सक्रियता अचेतन की शक्ति-तरंगों को काटती है । इसीलिए चेतन मस्तिष्क ही जब अधिक सक्रिय होगा, अचेतन अविकसित ही पड़ा रहेगा । बौद्धिक संस्थान सक्रियता को शिथिल करने पर अचेतन केन्द्र जागृत होता है । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जैसी साधनाओं द्वारा चेतन मस्तिष्क को शिथिल निष्क्रिय एवं शून्य स्थिति में ले जाया जाता है । तब ही दूरदर्शन, दूर-दृष्टि, विचार-प्रेरणा, भविष्य ज्ञान, अदृश्य का प्रत्यक्ष आदि अनेक विशेषताएँ प्राप्त की जा सकती हैं । बौद्धिक मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छा-शक्ति, प्राण-शक्ति को अचेतन के विकास में प्रयुक्त करने पर शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन सम्भव है । अति दीर्घजीवी होना, अति शक्तिशाली होना, अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त करना आदि उसी स्थिति में सम्भव है ।

कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तु बौद्धिक दृष्टि से मनुष्य से पिछड़े होते हैं । उनका चिन्तन और चेतन क्षेत्र शिथिल रहता है । इसी का लाभ उनके चेतन को मिलता है । कुत्तों की घ्राण-शक्ति अति सूक्ष्म होती है । चमगादड़ के ज्ञानतन्तु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं । उसका अचेतन मस्तिष्क अपने साधारण से शरीर द्वारा ही विभिन्न वस्तुओं से उत्सर्जित तरंगों को पहचानने में समर्थ होता है और इसी कारण से अँधेरे में भी वह अपने परिवेश का तथा वहाँ की वस्तुओं का स्वरूप एवं स्थान समझकर बिना किसी वस्तु से टकराये, उड़ने का क्रम जारी रखे रहता है ।

ह्वेल मछली का अचेतन मस्तिष्क भी बहुत क्रियाशील होता है और उसके शरीर में पनडुब्बियों की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं ।

समुद्री-झींगे 'सीएरे' की शरीर-प्रणाली, जेट-विमान की प्रणाली जैसी होती है । उसका अचेतन मस्तिष्क ही इस तीव्र दौड़ में उसे समर्थ बनाता है ।

उत्तरी अमरीका की नदियों में रहने वाली ईल मछली के शरीर से ५०० से भी अधिक वोल्ट की बिजली निकलती है । यह विद्युत-शक्ति ईल के अचेतन द्वारा ही नियन्त्रित होती है ।

अचेतन-नियन्त्रित ऐन्टेना तितली के सींग रेडियो और टेलीविजन का काम करते हैं । नर-झींगुर के कामोत्तेजित होने पर उसका अचेतन मस्तिष्क एक विशेष प्रकार की तान छेड़ने की प्रेरणा देता है, जिसके आकर्षण से मादा झींगुर खिंची चली आती है । अफ्रीका का 'काटन रेल' जाति का खरगोश हिंसक जन्तुओं का खतरा देखते ही पिछली टाँग एक विशेष विधि से धरती पर पटकता है, इस प्रहार से एक विद्युत धारा उत्पन्न होकर भूमि की ऊपरी परत पर दूर तक फैल जाती है । दूसरे खरगोश तथा अन्य छोटे जानवर भी इस 'टेलीफोन' का सन्देश समझकर सजग हो जाते हैं और सुरक्षा की व्यवस्था कर लेते हैं । यह अचेतन का ही करिश्मा है ।

अपनी आवश्यकतानुसार अनेक जीव-जन्तुओं का अचेतन अनेक नई शारीरिक विशेषताएँ पैदा कर लेता है । मेढकों की आँखों में पहले चश्मा नहीं होता था,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इधर कुछ अरसे से उन्होंने एक विशेष प्रकार का चश्मा विकसित कर लिया है, जो गोताखोरों की तरह जल में प्रवेश करने पर आँखों में चढ़ाया जा सकता है । कछुये ने मगर मच्छों से अपनी सुरक्षा के लिए अपनी चमड़ी को मोटा किया है । तितलियों के बच्चे और रेशम के कीड़े अपने देह-रस को निकाल कर उस पर पत्तियाँ चिपकाकर अपनी सुरक्षा-व्यवस्था करते हैं । रावन प्लाण्ट और ग्रेट मुलर पौधों ने आत्म-रक्षा के लिए पिछले दिनों नोंकदार काँटे विकसित किए हैं, ताकि पशु उन्हें चर न पायें, गिलहरी के गालों में दो जेवें तथा बन्दर के गले में एक थैली खाद्य-पदार्थ के संग्रह हेतु होती है । कंगारू के पेट की थैली शिशु-रक्षण के काम आती है ।

अनेक जीव-जन्तु मौसम की अग्रिम जानकारी पा लेने में अपनी अचेतन सामर्थ्य द्वारा समर्थ होते हैं । वर्षा की सम्भावना समीप देख मकड़ी अपना जाला खुले स्थानों से समेटकर सुरक्षित स्थान में फैलाती है । कोई मकान गिरने वाला हो, तो बिल्ली उसमें से थोड़े ही समय पहले अपने बच्चे समेट कर अन्यत्र चली जाती है । अनुकूल ऋतु की खोज में अनेक पक्षी सहस्रों मील की उड़ान भरते हैं—पहाड़, सागर लाँघते हुए कहीं से कहीं पहुँचते हैं और फिर ऋतु परिवर्तन पर पुनः पूर्वस्थान में बिना भटके वापस आ जाते हैं । कई मछलियाँ प्रसव काल में उपयुक्त स्थान ढूँढ़ती हुई हजारों मील दूर जा पहुँचती हैं और वापस भी आ जाती हैं ।

हमें गर्मी-सर्दी का सही पता थर्मामीटरों द्वारा ही चलता है, पर छोटे कीड़ों का अचेतन उन्हें सामान्य स्थिति में ही इसका भान करा देता है । १६० डिग्री फारेनहाइट पर सभी कीटाणु अपना काम बन्द कर देते हैं । ५० डिग्री ताप पर मक्खियाँ अपने लिए सुरक्षित स्थान ढूँढ़ वहाँ छिप जाती हैं । ५५ डिग्री पर चीटियाँ—मधुमक्खियाँ अपने घरों में घुस जाती हैं । ८५ डिग्री तापमान होने के बाद ही मधुमक्खियाँ काम पर निकलती हैं । टिड्डे ९५ डिग्री पर संगीत शुरू करते हैं । भोजन-सामग्री जुटा पाने की दृष्टि से वर्षा की ऋतु आने के पूर्व ही चीटियाँ तथा अन्य कीड़े आहार इकट्ठा कर लेते हैं । ये सभी विशेषताएँ इनके अचेतन मस्तिष्क का ही परिणाम है । मनुष्य के चेतन की अति सक्रियता से उत्पन्न ऊष्मा अचेतन को दबा देती है । तब उसका चेतन सामान्य शारीरिक आवश्यकताओं को सुचारु रूप से पूरी करते रहने में ही जुटा रह जाता है । अलौकिक क्षमताएँ तो प्रसुप्त ही पड़ी रहती है ।

मात्र शरीर-संचालन तक ही मस्तिष्कीय जागरूकता सीमित रहने पर परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव मनः स्थिति को भी प्रभावित करता है । मन हर्ष-विषाद के ज्वार-भाटे से आन्दोलित होता रहे, तो उसमें उथल-पुथल भरी मानसिक ऊष्मा की वृद्धि होती है । इस ऊष्मा से अचेतन मस्तिष्क की दिव्यता पर आघात पहुँचता है, वह क्षीण होती है ।

इसीलिए योग में प्रथम चरण के रूप में 'मानसिक सन्तुलन' पर बल दिया जाता है । अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो आती ही रहने वाली हैं । व्यक्ति, समाज और संस्थाओं का ढाँचा ही कुछ ऐसा है कि उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ, प्रिय-अप्रिय सम्वेदनाएँ पैदा करती रहती हैं । प्रकृति-क्रम भी मनुष्य की इच्छानुकूल तो रहता नहीं । अकाल-सुकाल, ऋतु-परिवर्तन, जरा-मरण, रीति-नीति आदि के घटनाचक्र हमें क्षुब्ध व उत्तेजित करने को पर्याप्त होते हैं । इन स्थितियों में चित्त अनुदोलित रहने का अभ्यास योग का प्रारम्भिक चरण इसीलिए है कि उसमें मानसिक ऊष्मा में अनावश्यक वृद्धि नहीं होती । सन्तुलित मनःस्थिति में सचेतन मस्तिष्क भी अपेक्षाकृत कम शक्ति खर्च कर अधिक काम कर डालता है और अचेतन मस्तिष्क में भी क्षीणता तथा बिखराव नहीं आ पाता ।

मानसिक सन्तुलन का प्रथम चरण सध जाने पर, अगला चरण उठाया जाता है । चेतन मस्तिष्क की गतिविधियों को कुछ समय के लिए रोककर उस संस्थान में क्रियाशील विद्युत-शक्ति को अचेतन क्षेत्र में नियोजित करने पर अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित होती है ।

स्पष्ट है कि निश्चित जीवन-दर्शन के अभाव में 'मेडीटेशन' 'एकाग्रता' का अभ्यास, इस दिशा में लाभदायक न सिद्ध होगा । यदि जीवन-लक्ष्य मात्र शरीर-संचालन तक ही सीमित रहा, तो एकाग्रता का अभ्यास शारीरिक स्फूर्ति एवं निपुणता मात्र ही देगा । अधिक कुछ नहीं । ऐसी निपुणता एक अभ्यास एवं व्यायाम मात्र है, योग कदापि नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जब उद्देश्य निश्चित हो और परम तत्व की खोज की प्यास प्रबल हो, तब ही इस एकाग्रता का लाभ उठाया जा सकता है । एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जागृत दिशा में ही लय कर देना समाधि है । इसके लिए प्रत्याहार, धारणा ध्यान की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं । इन साधनाओं के द्वारा सचेतन मस्तिष्क की चिन्तन-शक्ति एवं संकल्प-शक्ति को शिथिल करते हुए वहाँ लगे तेजस् को अचेतन में नियोजित किया जाता है, तभी अनुपम दिव्यताएँ प्रकट होना शुरू होती हैं । इस दिशा में जो जितनी अधिक प्रगति करता है वह उतना ही समर्थ सिद्ध पुरुष कहा जाता है । बौद्धिक-चेतना नियन्त्रित रहे और वह अचेतन को दबाने की बजाय उसकी सहायता करे, यही योग-साधना की दिशा है ।

मनोविज्ञानी ड्रेमण्ड एवं मैलोने यह मानते हैं कि चिन्तन की प्रखरता भी अचेतन द्वारा ही प्रदत्त होती है, यद्यपि प्रतीत यही होता है कि वह सचेतन मन की दक्षता है । बुद्धिमान, विवेकशील, दूरदर्शी और शीघ्रता से सही निर्णय लेने में समर्थ तथा सही ढंग के काम करने वाले व्यक्ति अपने अचेतन की गहरी परतों से ही इन विशेषताओं को प्राप्त करते हैं । अचेतन एक तिजोरी है, हम उससे जिस तरह के रत्नों, आभूषणों को आगे कर लेंगे, उनकी ही आभा सचेतन में दीप्त होती दिखेगी । अचेतन एक समुद्र है, जिसमें सभी तरह के रस एवं विष भरे हैं, हम जिसे उभार लें, वे ही सचेतन पर अधिकार जमाये दीखेंगे ।

अचेतन में सब कुछ दिव्य और भला ही नहीं है । पाशविक कुसंस्कार वहाँ सत्प्रवृत्तियों की अपेक्षा अधिक ही है । जिस तरह कि उद्यान में उपयोगी पेड़-पौधों से खर-पतवार की मात्रा ज्यादा ही होती है ।

जे. डब्ल्यू. ब्रिज के अनुसार व्यक्तित्व की गहराई में उसे पतनोन्मुख और अस्त-व्यस्त बनाने की प्रक्रिया भी भीतर चलती रहती है । अवांछनीयताओं पर नियन्त्रण न किया जाय, इसके प्रति लापरवाही बरती जाय, तो वे ही बलवती होती जाती हैं ।

न्यूरोलॉजिकल थ्योरी मानने वाले स्नायु सिद्धान्त वादियों के अनुसार शरीरगत स्नायु संस्थान की उत्तेजना से अचेतन मन की स्थिति बनती या बदलती है । उधर साइकोलॉजीकल थ्योरी के पक्षधरों—यानी मनोसिद्धान्तवादियों का कहना है कि मन ही शरीर का नियन्त्रक है । वह जिधर चलेगा, शरीर को उधर ही चलना होगा । अतः मनःस्थिति का ही शरीर पर प्रभाव पड़ता है । स्नायुविक उत्तेजनाएँ भी मन की स्थितियों का ही परिणाम हैं ।

विद्वान मार्टिन प्रिंस ने अपनी 'साइको न्यूरोलॉजिकल थ्योरी' में इन दोनों मान्यताओं का समन्वय किया है । वे दोनों पक्षों को अपूर्ण ठहराते हैं और स्नायु संस्थान तथा अचेतन मन के समन्वय पर ही व्यक्तित्व की कोई दिशा निर्धारित होना मानते हैं ।

अचेतन अत्यन्त शक्तिशाली है—यह सत्य है, पर वह स्वनिर्मित नहीं है । उसके भी निर्माता हम ही हैं । दीर्घकालीन मनोयोग एवं क्रियाकलाप ही उसे निर्मित, प्रभावित, परिवर्तित करते हैं । व्यावहारिक जीवन में मनोयोगपूर्वक दीर्घ समय तक अपनाये गए क्रिया-कलापों का प्रभाव संस्कार रूप में अचेतन मन में समा जाता है और उन्हीं संस्कारों की प्रेरणा व्यक्तित्व की विविध धाराओं और क्रियाओं को प्रवाहित—प्रेरित करती रहती है । इसलिए अचेतन को कुसंस्कारों से मुक्त करने के लिए योग और तप का आध्यात्मिक साधना-मार्ग अपनाना पड़ता है ।

योग के भावार्थ को हृदयंगम करें

योग का सामान्य अर्थ होता है—जोड़ना । आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देने की प्रक्रिया अध्यात्म भाषा में 'योग' कहलाती है । इसे आरम्भ करने के लिए जिन क्रिया-कलापों को अपनाना पड़ता उन्हें 'साधन' कहते हैं । साधन अपने आप में एक छोटा उपकरण मात्र है । उसका महत्त्व इसलिए है कि वह 'साध्य' को प्राप्त कराने में सहायता करती है । कई लोग साधन को ही 'साध्य' समझ बैठते हैं और उन उपचारों की ही योग कहने लगते हैं जो साधना प्रयोजन में प्रयुक्त होते हैं ।

योग-साधना में कई प्रकार के शारीरिक, मानसिक क्रिया-कृत्य अपनाने पड़ते हैं । इनका उद्देश्य आत्म-चेतना को परमात्म-चेतना से जोड़ने वाली मनःस्थिति उत्पन्न करना है । यह ध्यान में रखकर चला जाय तो ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य की पूर्ति होनी सम्भव है । यदि चेतनात्मक परिष्कार के लिए प्रयत्न न किया जाय और मात्र उन क्रिया-कृत्यों को ही योगाभ्यास मान लिया जाय तो उस भ्रान्ति के कारण घोर परिश्रम करते रहने पर भी कोल्हू के बैल की तरह जहाँ के तहाँ बने रहना पड़ेगा ।

शारीरिक श्रम में आसन, प्राणायाम, बन्ध मुद्रा, व्रत, मौन, नेति, धेति, वस्ति, न्यौलि, वज्रौली, कपाल भाँति भूमिशयन, सर्दी-गर्मी सहना, कीर्तन आदि कितने ही उपचार काम में लाये जाते हैं, इनका उद्देश्य स्तस्थता, समर्थता एवं पवित्रता उत्पन्न करना है । ताकि मल-भारों से लदे व्यक्ति को आत्मिक प्रगति की मंजिल पार करने में सुविधा हो । इसी प्रकार मानसिक उपासनाओं में—जप, ध्यान, नाद, एकाग्रता, तन्मयता, स्वाध्याय, सत्संग आदि साधनों का आश्रय लिया जाता है ताकि चेतना को दिशा एवं प्रेरणा दी जा सके और अपनी जीव समीपता को ब्रह्म असीमता में घुला देने के लिए आवश्यक प्रकाश एवं प्रशिक्षण मिल सके ।

लक्ष्य विहीन साधना मनोरंजक भटकाव ही कहा जा सकता है । शारीरिक और मानसिक क्रिया-कृत्यों को योगाभ्यास के आधार मानना ही पर्याप्त है । उन कृत्यों को ही जादुई मान बैठना और उनकी प्रवीणता मिल जाने मात्र से लक्ष्य पूरा हो जाना मान लिया जायेगा तो यह विशुद्ध भ्रान्ति ही सिद्ध होगी । एक व्यक्ति दूसरे तक अपने मनोभाव पहुँचाने के लिए कागज कलम का प्रयोग करता है । यह उपकरण निश्चय ही बड़े महत्त्वपूर्ण हैं । इनके बिना विचारों का आदान-प्रदान करने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी । फिर भी यह मात्र कागज, कलम से पत्राचार का उद्देश्य पूरा नहीं होता । उसमें भावों की अभिव्यक्ति का तथ्य भी जुड़ा रहना चाहिए । यदि ऐसे ही कागज पर कलम घिसते रहा जाय और कुछ भी टेड़ी-सीधी लकीरें बनाई जाती रहें तो उससे पत्र-व्यवहार द्वारा विचारों के आदान-प्रदान का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । लेखन क्रिया के साथ भावों की अभिव्यक्ति नितान्त आवश्यक है । योगाभ्यास में प्रयुक्त होने वाले उपचारों में मात्र शारीरिक, मानसिक हलचलों को ही सब कुछ मानकर सन्तुष्ट नहीं हो बैठना चाहिए, उत्कृष्ट प्रयत्न यह होना चाहिए कि आत्मा को परमात्मा से जोड़ देने पर उपयुक्त भाव चेतना उत्पन्न की जा सके । महत्त्व तो इस भाव उभार का ही है । वह उभरेगा तो गाड़ी आगे चलेगी अन्यथा तथाकथित योगाभ्यासों की हलचलें कुछ समय तक श्रम-साधना में जितनी कुछ अनुभूति दे सकती हैं, उसे देकर समाप्त हो जायेंगी ।

योग को चित्तवृत्तियों का निरोध कहा गया है । चित्त की वृत्तियाँ 'प्रेम' को वासना, तृष्ण, मोह, अहंता आदि भौतिक लिप्सा-लालसाओं की पूर्ति को ही सुखद मानती हैं, उन्हीं की इच्छा करती हैं और उन्हीं में निरत रहती हैं । पानी का स्वाभाव नीचे की ओर गिरना है इस पतनोन्मुख प्रवृत्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए वैसा ही प्रयत्न करना पड़ता है जैसे कुएँ से पानी खींचने अथवा तालाब का पानी टंकी में चढ़ाने के लिए । मन को ढीला छोड़ देने से वह जन्म-जन्मान्तरों की संग्रहीत एवं अभ्यस्त पशु प्रवृत्तियों के अस्तबल में अपने आप घुस जायेगा । घड़े से गिरते ही पानी नीचे की ओर बहने लगता है । चित्त का भी यही स्वभाव है । उसे उलटने का जो पुरुषार्थ करना पड़ता है उसी को चित्तवृत्ति-निरोधी कहा जायेगा । महर्षि पातंजलि ने इसी प्रयास को योग कहा है ।

कई व्यक्ति चित्तवृत्तियों के निरोध की बात को नहीं समझते और मात्र 'चित्त-निरोध' को ही योग मान लेते हैं । उनका तात्पर्य 'एकाग्रता' से होता है । एकाग्रता होना ही उनकी दृष्टि में योगाभ्यास की सफलता है और उसका न होना असफलता । यह भ्रम है । एकाग्रता एक चीज है और एकाग्रता का अपना महत्त्व और अपना लाभ है—उसका औचित्य और उपयोग समझा जा सकता है, पर एकाग्रता को ही योग का उपासना का आधार मान बैठना गलत है । एकाग्रता के भी स्तर हैं मेस्मेरिज्म हिप्नोटिज्म में भी एकाग्रता प्रयुक्त होती है और देव प्रतिमा के समक्ष उसकी पूजा, आरती, स्तुति आदि से भी एकाग्रता का पाठ पढ़ा जाता है । पीछे यह बढ़ते-बढ़ते उस स्थिति तक भी पहुँच सकती है जिसे तन्मयता, भाव-समाधि, विचार-शून्यता आदि का नाम दिया जा सके । यह अन्तिम और समय-साध्य स्थिति है । लोग इसी को पहले दिन प्राप्त करना चाहते हैं ।

'काम में मन लगाना' एक गुण है । यह प्रयोग दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में करते रहना चाहिए । श्रम और मनोयोग के सम्मिश्रण से होने वाले लाभों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को जानना चाहिए और आलस्य, प्रमाद से उत्पन्न होने वाली हानियाँ समझनी चाहिए । अपने काम को पूरी तत्परता, दिलचस्पी के साथ करने का अभ्यास डालें । यही स्वभाव 'भजन में मन लगाने' का भी आधार हो सकता है । जो लोग लापरवाही, उदासी एवं उपेक्षापूर्वक अपने काम करते हैं उनका भजन भी उसी प्रकार का होगा । भजन भी एक काम है और उसमें मन लगाना इस बात पर निर्भर है कि काम में मन लगाने की आदत है या नहीं । भजन में मन लगाने की पृष्ठभूमि विस्तृत है इसके लिए पूरी कार्य-पद्धति को ही नये ढाँचे में ढालना होगा और दिलचस्पी तथा तत्परतापूर्वक काम करने की आदत विकसित करनी पड़ेगी । इस दिशा में जितनी चेष्टा होगी उसी अनुपात से प्रत्येक कार्य में मन लगेगा—साथ ही भजन में भी । हर काम को उपेक्षा और उदासी से करने वाले लोग मात्र भजन में ही मन लगाने की अपेक्षा रखेंगे तो उन्हें निराश ही होना पड़ेगा ।

एकाग्रता की स्थिति समय-साध्य है । उसके लिए धैर्य और प्रयत्न पूर्वक बहुत समय तक अभ्यास करते रहने की आवश्यकता होगी । यह स्थिति न आये तो उतना हर्ज नहीं, जितना समझा जाता है । आत्मिक प्रगति के लिए मन की दिशा और धारा बदल देने की आवश्यकता है, उतने भर से 'चित्तवृत्ति-निरोध' की योग आवश्यकता पूरी होने लगती है ।

'प्रेय' की लिप्सा 'श्रेय' की आकांक्षा में बदली जानी चाहिए । पेट प्रजनन भर के लिए जीने में संलग्न पशु-स्तरीय प्रवृत्ति को बदलकर आत्मा को परमात्मा स्तर तक विकसित करने की देव-स्तरीय प्रवृत्ति में प्रवेश करना चाहिए । आकांक्षाएँ बदल जाने से मन की विचारणा और शरीर की कार्य-पद्धति में काया-कल्प प्रस्तुत हो जायेगा । प्रेय की निरर्थकता और श्रेय की सार्थकता में विश्वास बढ़ चले तो उसका प्रभाव कल्पना क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगेगा ।

आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली यही सड़क है । श्रेय की प्राप्ति को लक्ष्य मानकर चलने से चित्तवृत्तियों में पूर्व की अपेक्षा असाधारण परिवर्तन हो जाता है । निकृष्टता उत्कृष्टता की दिशा में उलट पड़ती है इसी ऊर्ध्वगमन को 'चित्तवृत्ति-निरोध' कहा जाता है । पतनोन्मुख पशु प्रवृत्तियाँ जब उत्थान की दिशा में देव प्रवृत्तियों का रूप बना लेती हैं तो उस स्थिति को योग-स्थिति कह सकते हैं । गीता में योगी की गतिविधियों का स्वरूप बताते हुए कहा है कि—'जब लोग सोते रहते हैं तब वह जागता है ।' जब लोग जागते हैं तो योगी सोता है ।' इस रहस्यवाद के पीछे यही तथ्य छिपा है कि लोक-प्रवाह में पशु प्रवृत्तियों की ही प्रधानता है । इस प्रवाह को आत्मिक साहस के बल पर उलटने का नाम 'चित्तवृत्ति-निरोध' है । यही योगी का प्रबल परुषार्थ माना जाता है ।

एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः होता है और वह समय साध्य है । इसलिए उसमें उतावली बरतने की आतुरता प्रदर्शित करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । निरन्तर जीवन लक्ष्य का ध्यान रखा जाय तो उस धारा प्रवाह को 'एक दिशा' कहा जा सकता है और उससे एकाग्रता का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

वस्तुतः जिसे हम एकाग्रता कहते हैं वह सब चित्त की भागदौड़ को असीम से रोककर एक सीमित क्षेत्र में प्रतिबन्धित करना है । मन बार-बारं भागता है और उसे पकड़-पकड़कर बार-बार निश्चित ध्यान परिधि में लाया जाता है । यही प्रयोग चलता रहता है । पूर्ण एकाग्रता समाधि अवस्था है और वह पूर्णता तक जा पहुँचने पर ही मिलती है । उसके लिए किसी को भी अधीर नहीं होना चाहिए ।

हजारों बार इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि पूर्ण एकाग्रता साधना काल की आरम्भिक प्रक्रिया या आवश्यकता किसी भी दृष्टि से नहीं है । उसके लिए न तो लालायित होना चाहिए न खिन्न । प्रयत्न करते रहना भर पर्याप्त है । मीरा, सूर, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस आदि भक्तजनों की भावस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे एकाग्रता प्राप्त कर सके और उन्हें लक्ष्य मिल गया । भक्त सम्प्रदाय में प्रणय, वियोग, अश्रुपात, समर्पण आलिंगन जैसे भावोन्मादों की घटाएँ ही उमड़ती रहती हैं । उस मनःस्थिति में एकाग्रता किसी भी प्रकार सम्भव नहीं । यदि एकाग्रता ही सर्वोपरि होती तो भक्तजनों पर हर घड़ी छाया रहने वाला भावोन्माद तथा उसके उभार में उठने वाले हास्य, रोदन, नृत्य, अवसाद आदि की उद्विग्नता लक्ष्य प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा बन गयी होती, पर ऐसा हुआ नहीं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ एकाग्रता का महत्त्व घटाया नहीं जा रहा है और न उसे त्याज्य या उपेक्षणीय कहा जा रहा है । एकाग्रता की उपयोगिता में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए, इतने पर भी सर्वसाधारण के मन में जमी हुई उस भ्रान्ति का निराकरण होना ही चाहिए कि—'भजन में मन लगाना अर्थात् चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है, वह है—तो भजन की सफलता—नहीं है तो असफलता' इस चिन्तन को हटाकर यों सोचना चाहिए कि 'चित्त-निरोध' नहीं, चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है । एकाग्रता नहीं 'एक दिशा' अभीष्ट है यदि ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि योग-साधना की सही पृष्ठभूमि बन चली ।

समूची ब्रह्म सत्ता को समझा जा सकना मनुष्य की छोटी बुद्धि के लिए असम्भव है । ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है, उसका विस्तार हमारी कल्पना शक्ति से बाहर है । अपनी पृथ्वी पर प्रकृति की जो कार्य-पद्धति है, अन्य लोकों में उससे भिन्न है । पृथ्वी के प्राणधारियों की आकृति, प्रकृति चिन्तन एवं जीवन-यापन पद्धति में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है । फिर अन्य लोक वासी चैतन्य प्राणियों की रीति-नीति के बारे में तो कहा ही क्या जा सकता है ? समूचा ब्रह्माण्ड न तो हमारी समझ में आ सकता है और न उसे समझने की आवश्यकता है । मानवी चेतना के साथ ब्रह्म चेतना का जितना अंश सम्बन्धित है उस भाग को ईश्वर या परमेश्वर कहते हैं । हमारे आनन्द एवं उत्थान में उसी की भूमिका रहती है । अस्तु साधना के लिए उसी छोटी ब्रह्म परिधि के साथ हमारा सम्पर्क मिला लेना पर्याप्त माना गया है । उपासना का केन्द्र बिन्दु यह ईश्वर ही रहता है ।

ब्रह्म एक है । अनेक रूपों में देवी-देवताओं की मान्यता से इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि वे एक दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र हैं । परमेश्वर असंख्य शक्तियों का भण्डार है । उसकी जिस क्षमता के साथ हमारा विशेष आकर्षक या लगाव होता है उसी को प्रधान मानकर चलने से अभीष्ट शक्ति तत्व की अधिक मात्रा अपनी ओर आकर्षित करने का अवसर मिलता है । सूर्य की धूप में अल्ट्रावायलेट—अल्फावायलेट आदि अनेकों विशेष गुणों वाली क्षमताएँ सन्निहित रहती हैं । वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से शेष किरणों के समूह में छांटकर अपने लिए आवश्यक किरणों को ही पकड़ा और प्रयोग में लाया जा सकता है । ब्रह्म को सूर्य और उसकी असंख्य किरणों को असंख्य देवता माना जा सकता है जो अभीष्ट हो उस पर उपासना केन्द्रित की जा सकती है ।

आवश्यकतानुसार विशेष सूक्ष्मशक्ति उपार्जन करने के लिए अमुक देवी-देवताओं की उपासना की भी खण्ड साधना की जा सकती है, पर अपना अनुभव और परामर्श यह है कि समग्र ब्रह्म की साधना ही सर्वोत्तम है । आहार वही आदर्श माना जाता है जिसमें पोषण के सभी तत्व मौजूद हों । प्रोटीन कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अकेले उसी को खाना लाभदायक न रहेगा । अमुक देवता की उपासना अकेली प्रोटीन, अकेली कैल्सियम खाने की तरह है । आवश्यकता पड़ जाने पर चिकित्सा उपचार की तरह कोई विशेष तत्व अमुक मात्रा में लिया जाता है, इसी प्रकार विशेष प्रयोजन के लिए कोई देव-साधना उपयोगी हो सकती है, पर सर्वतोन्मुखी प्रगति के लिए-सर्वकालिक साधना समग्र ब्रह्म की ही होनी चाहिए ।

यहाँ यह बात पूरी तरह ध्यान में रखने की है कि आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ा जाना ही योग का एक मात्र लक्ष्य है । इसके लिए चित्तवृत्तियों का निरोध, दिशा-परिवर्तन अनिवार्य रूप से आवश्यक है । आखिर आत्मा और परमात्मा को मिलने की भूमिका तो चित्त को ही सम्पादित करनी है । वह अन्य दिशा में उलझा रहेगा तो लक्ष्यप्राप्ति के मार्ग पर बढ़ चलना किसके सहारे सम्भव होगा । यदि चित्त की अस्त-व्यस्तता सुव्यवस्था में बदली जा सके तो समझना चाहिए कि वह प्रयोजन पूरा होने वाला है जिसके लिए विविध साधनात्मक कर्मकाण्ड करने की आवश्यकता पड़ती है ।

योग साधना से चरम लक्ष्य की पूर्ति

आत्मिक प्रगति के दो साधनों में एक योग और दूसरा तप है । इन दोनों को साथ-साथ आहार के अन्न, जल की तरह प्रयुक्त करना पड़ता है । इनमें से पिछले लेख में योग साधना में चित्तवृत्तियों के निरोध और उन्हें आत्मा एवं परमात्मा के बीच सघनता के बन्धन में बाँधने के लिए प्रयुक्त किए जाने की चर्चा की गयी है । अब उसी प्रसंग में यह जानना होगा कि यह आत्मा और परमात्मा आखिर है क्या ? और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनकी सघनता एवं एकता, किस लिए आवश्यक है और किस प्रकार सम्भव है ?

परमात्मा को निखिल ब्रह्माण्ड-व्यापी चेतना कहा जा सकता है । चेतना की शक्ति असीम है । उन शक्तियों में प्रमुख है इच्छा । इच्छा से चिन्तन, चिन्तन से कर्म और कर्म से पदार्थ उत्पन्न होता है । इस तथ्य को जीवन के हर क्षेत्र में नित्य ही प्रयुक्त होते देखा जा सकता है । धन का लाभ सोचकर उसे कमाने की आकांक्षा उठती है, मस्तिष्क उसके लिए व्यवसाय ढूँढ़ता है, शरीर उसके लिए श्रम करता है, फलतः विभिन्न पदार्थों का उत्पादन एवं विनिमय आरम्भ हो जाता है । इसी तथ्य ने सृष्टि के आदि में ब्राह्मी चेतना में हलचल उत्पन्न की । इसे एक से बहुत बनकर क्रीड़ा कल्लोल करने की इच्छा उत्पन्न हुई । उसी से सत् चित आनन्द की, सत्य शिव सुन्दर की, ब्रह्मा विष्णु महेश की, सत रज तम की, त्रिविध चिन्तन धाराएँ उभरने लगीं । शान्त वातावरण में विक्षोभ उत्पन्न हुआ, चिन्तन हलचलों में बदला, कर्म का गठन हुआ और उस सूक्ष्म कर्म ने स्थूल पदार्थ का रूप धारण कर लिया ।

स्थूल जगत् की सबसे छोटी इकाई परमाणु है । उसके भीतर भी छोटे-छोटे इलेक्ट्रॉन घटक हैं । वे घटक गतिशील हैं । नदी प्रवाह में जिस तरह भ्रमर पड़ते हैं । शक्ति प्रवाह के यह भ्रमर—विद्युतीय अन्धड़ के चक्रवात हैं । वे अपनी मूल सत्ता, ब्रह्माण्डीय स्थिति अथवा सौरमण्डलीय प्रक्रिया के अनुरूप गतिशील रहते हैं । यह गति ही उनका स्वरूप निर्धारण करती है और सघन होते-होते वे तत्वों के रूप में विकसित हो जाते हैं । इन्हीं के समूह, यौगिकों और रासायनिक पदार्थों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । उन्हीं के उत्पादन, विकास एवं परिवर्तन से प्रकृति की सूक्ष्म गतिविधियाँ तथा स्थूल हलचलें होती रहती हैं । प्रकृति प्रक्रिया इसी का नाम है । इसका अस्तित्व ब्रह्म चेतना की इच्छा शक्ति से प्रकाश में आया । परमाणु सत्ता से दृश्य जगत आरम्भ होता है, पर उससे पूर्व की स्थिति में वह विशुद्ध रूप से विद्युतीय आवेश भर होता है । इस आवेश को ब्रह्म और प्रकृति का संयुक्त अन्तराल कह सकते हैं ।

विज्ञानवेत्ता अपने आरम्भिक प्रयोगों में इस विद्युतीय आवेश को अचेतन मानते थे । इसलिए उन्होंने जड़वाद की भौतिकी को ही सृष्टि का मूल आधार माना पर वह मान्यता एक शताब्दी पूर्व की है । इस बीच बात बहुत आगे बढ़ गयी । आज का आधुनिकतम विज्ञान यह सोचने को विवश हो गया है कि सृष्टि प्रवाह अनैच्छिक नहीं है । इसमें सन्तुलन की विचित्र चतुरता भरी पड़ी है । सन्तुलनवाद, इकोलॉजी के सूक्ष्मदर्शी इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि सृष्टि की जड़ और चेतन दोनों धाराएँ एक दूरदर्शी योजना का परिणाम हैं । प्रकृति के अन्तराल में जो चित्र-विचित्र हलचलें चलती हैं वे न तो निरुद्देश्य हैं और न निरर्थक, अनगढ़, वरन् इनके पीछे वे चतुरतापूर्ण परिवेश काम कर रहे हैं जिनके बिना इस सुन्दर संसार का न तो कुछ स्वरूप ही बन सकता था और न उसमें कुछ क्रम ही रह सकता था ।

कृति को जड़ इस मायने में समझा जाता है कि उसके घटक हलचल निरत हैं, सम्वेदना प्रकट नहीं करते । चेतन इस अर्थ में कह सकते हैं कि उन हलचलों के पीछे अत्यन्त दूरदर्शिता और अतीव बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रेरणा काम कर रही है । बात को और भी स्पष्ट करने के लिए यों कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक यन्त्रों और प्रयोगशालाओं की पकड़ में आने वाली प्रकृति जड़ है और तत्वदर्शन की सूक्ष्म बुद्धि से समझी जाने वाली प्रकृति की मूल प्रेरणा चेतन है । इन्हें उपनिषदकारों ने परा और अपरा प्रकृति के नाम से पहले ही दो भागों में बाँट दिया है ताकि सूक्ष्मदर्शी और प्रत्यक्षवादी अपने-अपने क्षेत्र में सन्तुष्ट रह सकें और अधिक समझदारी बढ़ चलने पर दोनों का समन्वय कर सकें ।

आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बताने के लिए प्रकृति की चर्चा अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गयी क्योंकि इसके बिना दोनों की पृथकता को समझाया जा सकना कठिन है और उनकी एकता के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों की आवश्यकता को गले उतारना कठिन है ।

जीवात्मा ईश्वर का अंश है । समुद्र की लहरों और सूर्य की किरणों से उसकी तुलना की गयी है । इस भिन्नता को घटाकाश और मठाकाश के रूप में भी समझाया जाता है । घटाकाश अर्थात् घड़े के भीतर की सीमित पोल और मठाकाश अर्थात् विशाल विश्व में फैली हुई पोल । घड़े के भीतर की पोल वस्तुतः ब्रह्माण्डव्यापी पोल का ही एक अंश है । घड़े की परिधि से आवृत्त हो जाने के कारण उसकी स्वतन्त्र सत्ता दिखाई पड़ती है, पर तात्विक दृष्टि से वह कुछ है नहीं । घड़े के आवरण ने ही यह पृथक् रूप से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने और सोचने का झंझट खड़ा कर दिया है । शान्त समुद्र में लहरें नहीं उठतीं, पर विक्षुब्धता की स्थिति में वे अलग-सी लगती हैं और उछलती दिखाई पड़ती हैं । सूर्य के तेजस् की विस्तृत परिधि ही उसके किरण विस्तार की सीमा है । सूर्य सत्ता का जहाँ तक जिस स्तर का विस्तार है वहाँ तक उसी स्तर की धूप का अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है । इस प्रभा विस्तार की जो विभिन्न प्रकार की हलचलें हैं उन्हीं को किरणें कहते हैं । किरणों को सात रंगों में अथवा अल्ट्रावायलेट, अल्फावायलेट, एक्स-लैसर आदि में अलग से जाना माना जा सकता है, पर यह विभाजन सूर्य से भिन्न किसी पृथक् सत्ता का भान नहीं करता । ऐसे ही उदाहरणों से जीवन और ईश्वर की एकता भिन्नता समझी जा सकती है ।

पानी में से असंख्य बुलबुले उठते, तैरते और फिर उसी में समा जाते हैं । विश्वव्यापी अग्नि तत्व तीली या लकड़ी में प्रकट और प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । आग बुझ जाने से वह उसी मूल सत्ता में लय हो जाता है । इन उदाहरणों में भी जीव और ईश्वर की पृथकता एवं एकता का अनुमान लगाया जा सकता है । एक बड़ा ढेला फूटकर रज-कण के रूप में बिखर जाता है । पानी ऊपर से गिरने पर जमीन से टक्कर खाता है और उसकी बूँदें अलग से छितराती हुई दीखती हैं । जीव और ईश्वर की पृथकता के सम्बन्ध में ऐसे ही उदाहरणों से वस्तुस्थिति समझी जा सकती है । सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म ने 'कोऽहम् बहुस्याम' की इच्छा की और उसने अपने आपको टुकड़ों में बिखेर दिया यह बिखराव प्रकृति के साथ संयुक्त हुआ और इसके साथ घुलकर अहंता का आवरण अपने ऊपर लपेट बैठा । सूखी मिट्टी पर जब पानी पड़ता है तो वह गीली हो जाती है और उस पर काई तथा दूसरी वनस्पति जमने लगती है । आत्मा के अंश प्रकृति के साथ मिलकर आधे तीतर, आधे बटेर बन जाते हैं । कच्ची धातुएँ खदान से मिट्टी मिली स्थिति में निकलती हैं, पीछे उन्हें भट्ठी में डालकर शुद्ध किया जाता है । जीव को मिट्टी मिला लोहा कहा जा सकता है जिसमें प्रकृति और पुरुष दोनों का समन्वय है ।

जीव की मूल सत्ता ईश्वरीय है । चेतना का समुद्र इस विश्व में एक ही है । उससे भिन्न या प्रतिपक्षी दूसरी कोई सत्ता देवी-देवताओं के या जीवों के रूप में कहीं नहीं है । तत्ववेत्ताओं ने जाना है—"यहाँ केवल एक है दूसरा नहीं ।" जीव की पृथकता प्रवृत्ति के समन्वय से है । प्रकृति के तीन स्तर सत, रज, तम कहलाते हैं । इन्हीं तीनों की तीन पर्तें जीव के ऊपर चढ़ जाती हैं और वे तीन शरीर कहलाती हैं । स्थूल शरीर अर्थात् हाड़-माँस की जन्मने-मरने वाली काया । सूक्ष्म शरीर अर्थात् बुद्धि संस्थान, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, अपने-विराने का अन्तर करने वाला मस्तिष्कीय विचार विस्तार । कारण शरीर अर्थात् मान्यताओं एवं भावनाओं का समुच्चय—अन्तरात्मा, जिसे अन्तःकरण भी कहा गया है । इन तीनों शरीरों की यों प्याज के छिलके, केले के तने या एक के ऊपर एक पहने हुए वस्त्रों से तुलना की जाती है, पर यह उपमा बहुत ही अधूरी है । कारण कि यह सब आवरण एक-दूसरे से पृथक् हैं जबकि शरीर एक-दूसरे के साथ इस प्रकार घुले हुए हैं जैसे दूध में घी, सरसों में तेल । प्रयत्नपूर्वक इन्हें पृथक् किया जा सकता है । मृत्यु के उपरान्त स्थूल और सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध टूट जाता है । क्लोरोफार्म सुँघा देने या गहरी नींद आ जाने पर सूक्ष्म शरीर का चेतन भाग मूर्च्छित हो जाता है, अचेतन भाग जागता रहता है । समाधि अवस्था में सूक्ष्म शरीर को कारण से अलग किया जा सकता है । मुक्ति अवस्था में कारण शरीर का आवरण भी छूट जाता है और बूँद समुद्र में समा जाने की तरह आत्मा का लय परमात्मा में हो जाता है । इस प्रकार यह तीनों ही आवरण हटाये तथा मिटाये जा सकते हैं, पर सामान्य स्थिति में वे परस्पर घुले-मिले ही रहते हैं ।

जीव को इन आवरणों में लिपटे रहने से कई तरह के, कई स्तर के सुख मिलते हैं; इसलिए वह उन्हें छोड़ना नहीं चाहता फलतः 'बद्ध' अवस्था में बना रहता है । स्थूल शरीर में कई प्रकार के वासनात्मक सुख हैं । सूक्ष्म शरीर में कल्पना लोक के मनोरम स्वप्न, विनोद, मनोरंजन, सफलता, पद, सम्मान, वैभव आदि के बुद्धि-विलास के अनेकों साधन मौजूद हैं । कारण शरीर में 'अहंता' की गहरी पर्तें जमी हैं । 'मैं' अत्यन्त प्रिय है । इस 'मैं' की परिधि में जितना क्षेत्र आता है वह मेरा बन जाता है और जिस प्राणी या पदार्थ पर यह मेरापन' आलोकित होता है वह भी प्रिय लगने लगता है । आकांक्षाओं की उमंग इसी केन्द्र से उठती है । मान्यताओं की आस्था और सम्वेदनाओं की पुलकन खट्टी-मीठी गुदगुदी तो है, पर कुल मिलाकर है—मधुर । जीवन में प्रिय-अप्रिय प्रसंग आते-जाते रहते हैं, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कुल मिलाकर स्थिति ऐसी है जिसके कारण इन तीनों शरीर आवरणों को छोड़ने को मन नहीं करता, फलतः जीव सत्ता का ऐसा सघन अस्तित्व बन जाता है जिसे स्वतन्त्र भी कहा जा सकता है ।

दर्शनशास्त्र के सभी पक्षों ने ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों का अस्तित्व तो माना है, पर उनके पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में अपने-अपने विचार भिन्न रूप से व्यक्त किए हैं । त्रैत, द्वैत और अद्वैत मान्यताओं में इसी प्रकार का मतभेद है । त्रैतवादी कहते हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति की तीनों सत्ताएँ अनादि एवं स्वतन्त्र हैं—उनका सह-अस्तित्व भर है । द्वैतवादी, ब्रह्म और माया-पुरुष और प्रकृति की दो सत्ताएँ मानते हैं, उनकी दृष्टि में जीव का इन दोनों से समन्वय ऐसा ही है जैसा दिन और रात के मिलन से उत्पन्न हुआ संध्या काल । अद्वैत मत में एक ही ब्रह्म चेतना की सत्ता को जड़ और चेतन के रूप में माना गया है । प्रकृति ब्रह्म का विकार है और यहाँ जो कुछ दीख (भास) रहा है वह बुद्धि विपर्यय का ऐसा ही जादू है जैसा इन्द्र धनुष का अथवा स्वप्न संसार का दीखना । इस स्थिति को भ्रान्ति अथवा माया कहा गया है ।

इन दार्शनिक मतभेदों के रहते हुए भी हम एक समन्वित तथ्य और सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं; वह यह कि जीवात्मा को प्रिय-अप्रिय की विक्षुब्ध अव्यवस्था विवशता से उबरना चाहिए और ऐसी स्थिति में रहना चाहिए जहाँ आदतों की, संस्कारों की पराधीनता उसे अवांछनीय कर्तृत्व, अवांछनीय चिन्तन एवं अवांछनीय सम्वेदनाओं का कष्ट देने में समर्थ न हो सके । समस्त विपन्नताओं की जड़ यह पराधीनता ही है । जीवन का आनन्द उठाने से इसी विवशता के कारण वंचित रहना पड़ता है । यही बन्धन मनुष्य को उच्चस्तर तक पहुँच कर देवोपम आनन्द, उल्लास उपलब्ध करने के मार्ग में एक मात्र व्यवधान बने रहते हैं । इस स्थिति को बदल सकना यही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है—इसी को 'मुक्ति' कहा गया है । मुक्ति प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य माना गया है ।

मुक्ति का अर्थ है—स्वाधीनता । पराधीनता के बन्धनों को काट देना ही स्वाधीनता है । यह पराधीनता—मात्र चिर-संचित संस्कारों की है जो स्वभाव बनकर हमारे चिन्तन एवं कर्म को अपने ढर्रे पर चलाती है—अपनी लाठी से हाँकती है । शरीर को यह पराधीनता वासना के बन्धन में बाँधकर बेतरह घसीटती है, उसका स्वास्थ्य चौपट करती है, दीर्घजीवन से वंचित करती है और सत्कर्म निरत रहकर समृद्धियाँ, सफलताएँ प्राप्त करने के स्थान पर ऐसा कुछ करते रहने में लगाती है जिनके कारण रुग्णता, निन्दा, असफलता, दरिद्रता, कुरूपता जैसी विपन्नताएँ ही आये दिन सामने खड़ी रहती हैं । विवेक कई बार सोचता है कि अपनी गतिविधियों में अमुक प्रकार का परिवर्तन करना चाहिए । किन्तु औचित्य समझते हुए भी वैसा कुछ बन नहीं पड़ता । आदतें इतनी जबरदस्त सिद्ध होती हैं कि उपयोगी सुधार के मनसूबे एक कोने में रखे रह जाते हैं और आदतें अपनी बेढंगी राह पर शरीर को घसीटती चली जाती हैं और वे काम कराती हैं जिनके लिए पीछे पश्चात्ताप ही करना शेष रह जाता है । यदि आदतें शरीर का संचालन न करें, विवेक के हाथ से नियन्त्रण, संचालन किया जाने लगे तो स्वास्थ्य, सौन्दर्य, दीर्घजीवन जैसी उपलब्धियाँ तो अति साधारण हैं ! समर्थ काया से अभीष्ट प्रयोजनों में आश्चर्यजनक सफलताएँ देने वाले पराक्रम पुरुषार्थ का अभिनव स्रोत खुल सकता है और उसके फलस्वरूप जो जीवन लाभ मिल सकता है, उसकी कल्पना मात्र से आँखें चमकने लगती हैं । दुर्बल शरीर इन्द्रिय सुख की लिप्सा भर में लगा रहता है, साधन उपस्थित होने पर भी वह उनका समुचित आनन्द नहीं ले सकता । भोजन का आनन्द कड़ाके की भूख लगने वाले को ही मिल सकता है । रतिक्रीड़ा एवं गहरी निद्रा का लाभ शरीर पर नियन्त्रण रख सकने वाले ही भोगते हैं । आलस्य, प्रमाद को भगाकर—व्यवस्थित दिनचर्या बनाना और उस पर निष्ठापूर्वक आरूढ़ रहना—सफलताओं का प्रधान आधार माना गया है । शरीर भौतिक पदार्थों से बना है, भौतिक जगत् से सीधा सम्बन्ध उसी का है । समर्थ शरीर ही भौतिक उपलब्धियों का केन्द्र होता है । शरीर पर विवेक का नियन्त्रण जिस मात्रा में होता जाता है उसी अनुपात से भौतिक सफलताओं का पथ-प्रशस्त होता चला जाता है । यह स्थिति शरीर क्षेत्र की मुक्ति कही जा सकती है । इसका प्रतिफल है भौतिक सुख ।

सूक्ष्म शरीर के क्षेत्र में हमारा चिन्तन उस ढर्रे में ढला हुआ होता है, जिसकी प्रतिक्रिया ही हमें अर्द्धविक्षिप्त स्तर का बनाये रहती है । कितने प्रकार की सनकें, कितने वहम, कितने भ्रम मस्तिष्क में लदे होते हैं यदि उन्हें ठीक तरह समझा जाय तो प्रतीत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगा कि विवेकवान व्यक्ति की तुलना में 'चालू आदमी' निःसन्देह अधपगला होता है । लोक-प्रवाह का संशोधन करने अवतारी आत्माएँ उतरती हैं उनके चले जाने के बाद फिर विकृतियाँ भरने लगती हैं और सामाजिक प्रचलनों में गन्दे नाले जैसी गन्दगी भरती चली जाती है । जन मान्यताएँ —लोगों के प्रचलित ढर्रे ही अपने को सुहावने लगते हैं । कुरीतियाँ, मूढ़ मान्यताएँ, अन्धविश्वासों के सहारे न जाने कितनी उपहासास्पद भ्रान्तियाँ मस्तिष्क में जड़ जमाकर बैठ जाती हैं । लोगों में प्रचलित भ्रष्टाचार अपने को भी ललचा लेता है । विकृत चिन्तन के कारण मनुष्य न सोचने योग्य सोचता है और बाल बुद्धि की योजनाएँ बनाकर उनमें बहुमूल्य विचार शक्ति को नष्ट करता रहता है । चिन्ता, निराशा, खीज, आवेश, उत्तेजना, निष्ठुरता, घबराहट, कायरता, कृपणता, ईर्ष्या, द्वेष, आत्म-हीनता, उद्दण्डता जैसे अनेकों मानसिक रोग मस्तिष्क को घेरे रहते हैं और सौ रोगों से ग्रसित शरीर की जो दुर्गति होती है वैसा ही वे मनोविकार, विचार संस्थान को, सूक्ष्म शरीर को बनाये रहते हैं । यह मनोगत कुसंस्कारों की, चिन्तन विकृतियों की पराधीनता है जिसके कारण हर दृष्टि से 'अद्भुत' विचारणा सर्वनाश के गर्त में गिरती और नष्ट होती रहती है ।

यदि कुसंस्कारों के बन्धनों से मस्तिष्क को छुटकारा मिल सके तो प्रस्तुत चिन्तन तन्त्र का सुव्यवस्थित सदुपयोग करके कोई भी व्यक्ति विद्वान, वैज्ञानिक, कलाकार, दूरदर्शी, मनीषी बन सकता है । विचारणा को सन्मार्गगामी बना सकने वाले व्यक्ति—सामान्य साधनों के बल पर—सामान्य परिस्थितियों में रहते हुए—व्यक्तित्व को परिष्कृत ढाँचे में ढाल सकते हैं और महामानवों की श्रेणी में गिने जा सकने की स्थिति में सरलतापूर्वक जा पहुँचते हैं । ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन तत्व का विश्लेषण करने पर विशेषता एक ही दिखाई पड़ती है कि उन्होंने अपने चिन्तन तन्त्र को व्यवस्थित किया, अभ्यस्त विचार-पद्धति का नये सिरे से पर्यवेक्षण किया, अनौचित्य को साहस पूर्वक सुधारा और विवेक का आश्रय लेकर विचारणा को उच्चस्तरीय बनाया । लोक-प्रवाह के विपरीत आदर्शवादी मौलिकता अपनाई; फलस्वरूप उनका चिन्तनात्मक काया-कल्प हो गया । आरम्भ में ऐसे लोगों का मखौल बनता और विरोध होता है, पर जब वे अपनी निष्ठा का परिचय देते हैं तब दुनिया उनके चरणों में झुक जाती है और सिर आँखों पर बिठाकर भाव भरी श्रद्धांजलि समर्पित करती है ।

परिष्कृत सूक्ष्म शरीर—चिन्तन की उत्कृष्टता के कारण स्वयं हर घड़ी सदा सन्तुष्ट, उल्लसित एवं प्रफुल्लित बना रहता है । अवांछनीय मानसिक भार से छुटकारा पाने के कारण उसकी सूझ-बूझ दूरदर्शी, तत्वदर्शी बन जाती है और उसका लाभ न केवल सम्पर्क क्षेत्र को वरन् समस्त संसार को मिलता है ।

मस्तिष्क का कुल मिलाकर प्रायः ७ प्रतिशत भाग काम में आता है, शेष ९३ प्रतिशत प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है । उसे जागृत करना अपने भीतर की असंख्यों अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास कर लेना है । मस्तिष्क की तुलना का चमत्कारी सूक्ष्म यन्त्र इस संसार में और कोई नहीं है, इसे यदि प्रयत्नपूर्वक सक्षम बना लिया जाय तो कालिदास जैसे मन्द बुद्धि भी मूर्धन्य विद्वान बन सकते हैं । चमत्कारी सिद्धियों के नाम से कितने ही विशिष्ट कौशल कई सिद्ध पुरुषों में यदा-कदा देखे जाते हैं, यह और कुछ नहीं जादू की पिटारी—मस्तिष्कीय चेतना की फुलझड़ियाँ मात्र है । इन्द्रिय शक्ति से—मनःशक्ति से हम परिचित हैं, इसलिए उसके द्वारा दैनिक जीवन में प्रस्तुत होते रहने वाले चमत्कारों को 'सामान्य' माना जाता है । अचेतन अविज्ञात है इसलिए उसकी जागृत अतीन्द्रिय शक्ति अद्भुत—अलौकिक लगती है, पर वस्तुतः चमत्कार जैसी कोई चीज इस संसार में है नहीं । जो कुछ है प्रकृति व्यवस्था के पूर्णतया अनुकूल ही है । चमत्कारी सिद्धियाँ भी प्रसुप्त अतीन्द्रिय क्षमता का ऐसा जागरण है जो आमतौर से देखा, सुना नहीं जाता । ऐसे तो नये आविष्कार भी कुछ दिन तक चमत्कार ही कहे जाते रहे है ।

तीसरा कारण चेतना की आस्थाएँ सुधर जाने से मनुष्य महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा बन सकता है । यह वह ध्रुव केन्द्र है जहाँ आत्मा और परमात्मा का पारस्परिक पतला-सा सम्बन्ध सूत्र जुड़ा हुआ है उसे तनिक-सा और परिष्कृत कर दिया जाय तो ब्रह्म चेतना का—जीव चेतना से विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और ऐसे आदान-प्रदान का पथ-प्रशस्त कर सकता है जिसके आधार पर नर में नारायण का अवतरण प्रत्यक्ष देखा जा सके । ऐसी स्थिति में पहुँची हुई आत्माओं की देव संज्ञा दी जाती है । देवताओं की अलौकिकता कथा पुराणों में भरी पड़ी है, उन्हें इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देव पुरुषों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । हाँ, इतना अवश्य है कि वे उसका प्रदर्शन करके ईश्वरीय विधि-व्यवस्था में अकारण विक्षेप उत्पन्न नहीं करते ।

अध्यात्म विज्ञान की पृष्ठभूमि को संक्षेप में इतना कुछ समझ लेने के उपरान्त तत्व ज्ञान के एक जिज्ञासु को इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य को मिली हुई तीन शरीरों के रूप में तीन विभूतियाँ प्राणि जगत की सबसे बड़ी ईश्वर प्रदत्त उपलब्धियाँ हैं ।

इन तीन क्षेत्रों में जो विकृतियाँ घुस पड़ी हैं उन्हीं ने जीव को निकृष्ट स्तर का दीन-दयनीय बनाकर रख दिया है । प्रकृति का, भौतिकता का, अनावश्यक और अवांछनीय भार लद पड़ने से पिता और पुत्र का वियोग उपस्थित हो गया है । इसी अशक्ति, अविद्या और अलक्ष्मी से जीव की दुर्गति हुई है । प्रकृतिगत आकर्षणों की ओर अस्वाभाविक और असाधारण रूप से दौड़ पड़ने से ही कुसंस्कारों की पर्तें जमी हैं और उसने पतनकारी दुर्दशा उत्पन्न की है । उस अवांछनीयता से जूझना ही वह साधना समर है, जिसमें प्रत्येक हनुमान और अर्जुन को—साधक को अपना पराक्रम दिखाना पड़ता है ।

आत्मा को परमात्मा से मिला देने के लिए कुसंस्कारों से पीछा छुड़ाना पड़ता है और ईश्वरीय प्रेरणा का अनुगमन करते हुए अपनी अन्तरंग और बहिरंग स्थिति ऐसी बनानी पड़ती है जो ब्राह्मी कही जा सके । दूध और पानी एक रस होने से घुल सकते हैं । लोहा और पानी का घुल सकना कठिन है । हम अपने भौतिकतावादी स्तर से ऊँचे उठें और ईश्वरीय चेतना के अनुरूप अपनी क्रिया, विचारणा एवं आस्था को ढालें तो ईश्वर प्राप्ति का जीवन लक्ष्य पूरा हो सकता है । वियोग का अन्त योग में होना चाहिए—यही ईश्वर की इच्छा है । बच्चा दिन भर खेलकूद और पढ़ने-लिखने में संलग्न रहे, पर रात को घर लौट आये और एक ही बिस्तर पर सो जाय, ऐसी माता की इच्छा रहती है । परमात्मा भी अपने पुत्र आत्मा से ऐसी ही अपेक्षा करता है । उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए हमें जो चेतनात्मक पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसी का नाम योग है । योग साधना हमारे लिए सर्वोपरि श्रेय साधन है उसमें अपनी प्रवृत्तियों को तत्परतापूर्वक लगाया जा सके उसी में कल्याण है ।

योग साधनाएँ पूर्णतः विज्ञान सम्मत

अध्यात्म विज्ञान के साथ एक आश्चर्य चकित करने वाली सम्भावना जुड़ी हुई है । वह है—अचेतन मनः क्षेत्र की प्रसुप्त पड़ी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाना एवं सक्रिय बनाना । इस सन्दर्भ में भौतिक विज्ञानी भी कुछ कुरेद बीन करते रहे हैं और जो उनके हाथ लगा है उसे देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—व्यक्ति में विज्ञान पराक्रम जन्य क्षमताओं की तुलना में कहीं अधिक उच्चस्तरीय प्रभावी एवं समर्थताओं से भरी-पूरी सत्ता विद्यमान है । दूरदर्शन, दूर श्रवण, भविष्य कथन, विचार संचालन जैसे अगणित प्रयोग परीक्षण—परा- मनोविज्ञान-मैटाफिजिक्स के आधार पर हुए हैं और उस आधार पर इस तथ्य की परिपूर्ण पुष्टि हो चुकी है कि मानवी अन्तराल में दिव्य क्षमताओं का अजस्र भण्डार छिपा पड़ा है । नोबेल पुरस्कार विजेता एलेक्सिस कैरेल ने अपनी 'मेनदि अननोन' पुस्तक में अगणित तथ्य प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है कि सामान्य जीवन में चेतना की सामर्थ्य का मात्र सात प्रतिशत ही प्रयुक्त होता है जो उपयोग में आता है वह हल्का, उथला एवं इतना है जिससे अन्य प्राणियों की तरह निर्वाह क्रम चलता रहे । ज़ो विभूतियाँ अन्तराल में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हैं उन्हें जाना और जगाया जा सके तो निःसन्देह मानवी अस्तित्व को उतना सक्षम पाया जा सकता है कि वह अपनी कायिक एवं मानसिक प्रयोगशाला के सहारे भौतिक जगत की उन सभी सम्पूर्णताओं एवं सम्पदाओं को उपलब्ध कर सके जिन्हें विज्ञानी बहुमूल्य उपकरणों के सहारे हस्तगत करते हैं ।

जानने योग्य एक बात और भी है कि जिस तरह परमाणु में सन्निहित असीम शक्ति विश्वव्यापी पदार्थ प्रकृति का एक अंश मात्र है, उसी प्रकार व्यक्ति चेतना भी विश्व चेतना की एक अंश है । परमाणु की सामर्थ्य उसका निजी वैभव नहीं है, वरन् विराट् विश्व की शक्ति समुद्र की एक लहर बूँदभर है । उसी प्रकार चेतना की अपनी स्वतन्त्र हस्ती कुछ भी नहीं है । वह विश्व चेतना में अपनी पात्रता एवं आवश्यकता के अनुरूप सामर्थ्य अर्जित करती रहती है । इस चेतना लोक का अपना अस्तित्व है । अदृश्य सूक्ष्म जगत में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकृति की ऐसी अविज्ञात शक्तियों का आभास मिल चुका है जो विदित एवं उपलब्ध वैभव की तुलना में असंख्यों गुना अधिक है । ठीक इसी प्रकार चेतना के दिव्य लोक का अपना अस्तित्व है और उसमें इस स्तर का वैभव भरा पड़ा है जिसकी परब्रह्म की विश्व चेतना के रूप में तत्व दर्शन द्वारा चर्चा की जाती रही है ।

इस दिव्य लोक का निरूपण पुरानी भाषा में परमेश्वर, देव परिकर, ऋद्धि-सिद्धि स्वर्ग-मुक्ति आदि के रूप में किया जाता रहा है । उसके लिए योग, तप, जप, ध्यान, पूजा, पुरश्चण आदि की प्रक्रिया अपनाई जाती रही है और ऐतिहासिक साक्षियों के आधार पर यह सुखद परिणति भी उपलब्ध होती रही है जिन्हें देखते हुए इन प्रयोग परीक्षणों की परिपूर्ण सार्थकता सिद्ध की जा सके ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए—मध्यकाल में सर्वत्र अन्धकार युग फैला और विकृतियों एवं अवांछनीयताओं का बोलबाला रहा । राजनीति से लेकर अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में जब अनाचार अपना सिर आसमान तक उठाये हुए है तब धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में ही यह आशा कैसे की जाय कि वह छद्म सनक एवं निहित स्वार्थों की पकड़ से बचा रहेगा । पिछले दिनों यही स्थिति रही है और आज भी वैसी ही है । ऐसी दशा में अध्यात्म का तत्व दर्शन ही नहीं, प्रयोग उपचार भी बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया है । जो बना है उसे एक प्रकार से छिलका, छूँछ, खिलौना, नमूना भर कह सकते हैं । प्रत्यक्ष है जो कुछ इन दिनों अध्यात्म के नाम पर माना अपनाया जाता है वह न केवल अधूरा है, वरन् भ्रान्तियों एवं विकृतियों की भी उसमें बुरी तरह घुसपैठ है । फार्मूला गलत होने पर निरर्थक हो जाता है । ऐसा ही इन दिनों भी हो रहा है । उपासनात्मक उपचार करने वाले जब प्रतिफलों के सम्बन्ध में निराश होते हैं तो एक प्रकार से नास्तिक ही बनते जाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि एक अत्यन्त उच्चस्तरीय एवं महान सम्भावनाओं से भरे-पूरे विज्ञान को उपहासास्पद बनना—तिरस्कृत होना पड़ता है । इस स्थिति से भारी हानि यह हो रही है कि उन असाधारण उपलब्धियों से व्यक्ति और समाज को वंचित रहना पड़ रहा है जो समस्त मानवी समुदाय को आन्तरिक उत्कृष्टता एवं बहिरंग सुसम्पन्नता से भरा-पूरा रख सकती थीं ।

सृष्टि के इतिहास में कई बार खण्ड प्रलय होती रही है । हिम युग आये हैं और उनमें भयानक विनाश के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के अनेक उपार्जनों को भी एक प्रकार से विस्मृत किया है । इतने पर भी स्रष्टा का वह अनुदान मनुष्यों को मिलता ही रहा है कि आनुवंशिकी के आधार पर पूर्वजों के संचित ज्ञान की हल्की-फुल्की ज्योति जलाये रह सके और समयानुसार उसे पुनर्जीवित कर सकने में सफल हो सके । खण्ड प्रलयों के इतिहास से अवगत मनीषी बताते हैं कि विभीषिकाओं के युग कितने ही विनाशकारी एवं लम्बे क्यों न रहे हों, वे जब समाप्त हुए हैं तो मनुष्य ने देर-सबेर उसे किसी न किसी प्रकार एक या दूसरे रूप में पुनः उपलब्ध कर लिया है । अध्यात्म विज्ञान के यथार्थवादी पुरातन स्वरूप के मध्यकाल के अन्धकार युग में विलुप्त या विकृत हो जाने की स्थिति को भी हिम प्रलय जैसी दुर्भाग्य पूर्ण दुर्घटना की तरह ही समझा जा सकता है । इतने पर भी निराश होने का कोई कारण नहीं । आनुवंशिकी का आश्वासन है कि जो खोया है उसे नये सिरे से प्रबल पुरुषार्थ में जुट पड़ने पर पुनः प्राप्त किया जा सकता है ।

भौतिक शक्तियों के चमत्कारों से हम सभी परिचित हैं । लेसर किरणों की—ऐण्टी मैटर—ऐण्टी यूनीवर्स आदि की चर्चा दाँतों तले अँगुली दबाकर की जाती रहती है । अब इसी स्तर की एक और उपलब्धि करतलगत हो सकने की बात बन रही है जिसके आधार पर अतीन्द्रिय क्षमताओं को उभार कर मनुष्य को न केवल चरित्र व्यवहार, वैभव की दृष्टि से वरन् अन्तःशक्ति के साथ जुड़ी हुई विलक्षण ऋद्धि-सिद्धियों की दृष्टि से भी सुसम्पन्न बनाया जा सके । इस सम्भावना को दैव युग का पुनर्जीवन अथवा धरती पर स्वर्ग के अवतरण वाला सतयुग कहा जा सकेगा ।

आत्मिकी के ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म जैसे प्रतिपादन कुल मिलाकर मनुष्य को नीति समर्थक एवं उदार बनने की प्रेरणा देते हैं । यदि उनका उच्छेदन कर दिया जाय और कहा जाय कि "मनुष्य मात्र चलता फिरता पेड़ है, उदरपूर्ति एवं प्रजनन तक ही उसका अस्तित्व है, मरण के उपरान्त उसका कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता, स्वचालित अणु-परमाणुओं का संयोग वियोग ही मनुष्य जीवन है, तो समझना चाहिए कि वह सारा आधार ही नष्ट हो गया जो मानवी गरिमा के नाम से जाना जा रहा है ।" प्रकारान्तर में उन सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मान्यताओं का खण्डन हो गया जो मनुष्य को संयमी, सदाचारी कर्तव्यपरायण, उदार एवं सदाशयता के समर्थन में कष्ट तक उठाने की उदारता बरतकर प्रसन्न होने की प्रेरणा देती हैं । कहना न होगा कि आदर्शों से रहित—निरंकुश मानवी बुद्धि के लिए तब उद्धत स्वार्थ साधना के लिए पूरा द्वार खुल जायेगा । ऐसी दशा में जंगल का कानून ही चलेगा । तब बड़ी मछली छोटी को निगलेगी । बड़ा पेड़ समीपवर्ती पौधों की खुराक खींचने में कोई संकोच न करेगा । "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का 'सर्वाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का सिद्धान्त सही और स्वाभाविक ठहराये जाने पर मानवी सभ्यता की कैसी दुर्दशा हो सकती है, मनुष्य की बुद्धि उन मान्यताओं को अपनाकर किस सीमा तक अनाचरण पर उतर सकती है—इसकी आज तो एक झाँकी भर मिल रही है । वह दिन दूर नहीं जब इस अभिनव प्रतिपादन के परिपूर्ण रूप में होने पर हिम-युग एवं खण्ड प्रलय से भी अधिक भयानक स्थिति उत्पन्न होगी । आज तो लुक-छिपकर अनाचरण बरते जाते हैं किन्तु अगले दिनों नृशंस स्वेच्छाचारी शासकों की तरह सर्वत्र कत्लेआम मचाते दृष्टिगोचर होंगे । अन्तःकरण की पुकार से लेकर मानवी गरिमा तक के उन आदर्शों के लिए कहीं कोई स्थान रह नहीं जायेगा जिनके कारण "बन्दर की औलाद" कहे जाने वाले मनुष्य ने विश्व का मुकुटमणि बनने की स्थिति तक पहुँचने में प्रगति की है ।

यह सब पारस्परिक सहयोग और उदार अनुदान की नीति अपनाने से ही सम्भव हुआ है । सामाजिक सभ्यता और वैयक्तिक संस्कृति का प्रादुर्भाव तथा उत्थान इन्हीं उत्कृष्टता की—पक्षधर आस्थाओं के सहारे सम्भव हुआ है । यदि यह आधार नष्ट हो गया तो हमें फिर आदिम युग की ओर वापस लौटना होगा । शायद वह भी न पड़े क्योंकि बुद्धि कौशल के रहते आदर्शहीन व्यक्ति मात्र पिशाच ही बन सकते हैं । पशुता के स्तर तक उतर कर सन्तोष कर लेने के लिए भी उन्हें सहमत न किया जा सकेगा । इस सम्भावना की आंशिक झाँकी आज भी हो रही है । अनास्था युग के बाल्यकाल में जब स्वार्थपरता का विस्तार निष्ठुरता से लेकर आततायी प्रवृत्तियों के रूप में बेतरह विकसित हो रहा है तो फिर प्रौढ़ता आयेगी तो हर व्यक्ति अपने समीपवर्तियों की गर्दनें नापता हुआ दूरवर्तियों का सफाया करेगा । फलतः सृष्टि विकास के समय उपजे अनगढ़ महागजों, महासरीसृपों, महाव्याघ्रों की तरह अभावों और आक्रमणों की आग में जल कर समाप्त होना पड़ेगा ।

आज जो उपेक्षा, असहयोग विज्ञान और अध्यात्म के मध्य दिखाई पड़ती है उसे मिटाकर, विग्रह की वृत्ति को हटाकर, सहयोग भरी रीति-नीति की प्रतिष्ठापना कर, समुद्र मन्थन जैसे सत्परिणाम पा सकना पुनः इस धरती पर सम्भव है । दैनन्दिन जीवन में सहकर के परस्पर विरोधी परिणामों के प्रतिफल आये दिन सामने आते रहते हैं पर जब विज्ञान व अध्यात्म परस्पर मिलेंगे तो उनका सहयोग अनूठा ही होगा । सभी मानते हैं कि ठण्ठे व गरम तार मिलकर बिजली का प्रवाह बनाते हैं । जब दो विध्वंसकारी रचनात्मक शक्तियाँ एक ही उद्देश्य हेतु नियोजित होंगी तो उनके सम्मिलित प्रयासों की फलश्रुति अपनी इस धरती को सुन्दर और अधिक सुव्यवस्थित व सुसंस्कृत बनाने के रूप में ही निकलेगी इसमें कोई सन्देह नहीं । यह एक स्वप्न नहीं वास्तविकता है । आग-पानी के मिलने से भाप बनने तथा उसके रचनात्मक कार्यों में लगने पर कमाल दिखाने जैसी परिणति विज्ञान-अध्यात्म सहयोग की होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं । अनेकानेक प्रमाण-तथ्य बताते हैं कि इस परिकल्पना को साकार रूप देने पर कितने ही सुन्दर परिणाम निकल सकते हैं ।

मरणोत्तर जीवन का जब अस्तित्व सिद्ध होने ही जा रहा है तो फिर उस कड़ी को भी जोड़ना ही पड़ेगा जिसके अनुसार पितरों की दुनिया का जीव जगत के साथ आदान-प्रदान चल पड़े । ऐसा सम्भव हो गया तो समझना चाहिए कि एक और अपनी जैसी ही नई दुनिया के साथ रिश्ता जुड़ गया । इसमें दोनों ही लोकों के निवासियों का सुखी समुन्नत होना और एक दूसरे की महत्त्वपूर्ण सहायता कर सकना सम्भव हो सकता है ।

व्यक्ति के हिस्से में थोड़ी-सी समर्थता आयी है किन्तु वह जिस विराट् भण्डार से—परब्रह्म से जुड़ा है उनकी सामर्थ्य का कोई अन्त नहीं । कम ताकत का बल्ब धीमी रोशनी देता है, पर यदि उसी स्थान पर बड़ी ताकत का बड़ा बल्ब लगा दिया जाय तो उसी बिजली फिटिंग से अनेक गुना प्रकाश उत्पन्न हो सकता है । बिजली की लाइन में उतनी सामर्थ्य रहती है कि छोटे उपकरणों के स्थान पर बड़े लगा देने पर अधिक ऊर्जा पायी और अधिक सुविधा उठाई जाय । परब्रह्म सत्ता के साथ आमतौर से आत्मा का सीमित एवं सामान्य सम्बन्ध ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है, पर यदि व्यक्ति को अधिक परिष्कृत बनाया जा सके तो वह अदृश्य जगत की महान दैवी शक्तियों से भरपूर लाभ उठा सकता है और उस आधार पर अपनी सफलताओं में चार चाँद लगा सकता है ।

अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से व्यक्ति के अन्तराल को परिष्कृत करके आज की तुलना में उसे अनेक गुना समर्थ एवं श्रेष्ठ बनाया जा सकता है । उसी प्रकार विश्व चेतना की असीम सम्भावनाओं में उसे इतना कुछ आकर्षित किया जा सकता है जिससे मनुष्य के स्तर स्वरूप एवं वर्चस् में काया कल्प जैसा सुखद सत्परिणाम उत्पन्न हो सके । ऐसी ही उपलब्धियों को प्राचीन काल में दैवी वरदानों के नाम से पुकारा जाता था । आज भी इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होते रहने की सम्भावना पूर्ववत् ही बनी हुई हैं ।

अन्तरिक्ष में पदार्थ सम्पदा उससे कहीं अधिक भरी पड़ी है जितनी कि जल और थल में, तरल एवं ठोस रूप में पायी जाती है । जिस प्रकार जल और थल का वैभव मनुष्य के काम आता है उसी प्रकार अन्तरिक्ष में भरी-पूरी वही सम्पदा फिर से ठोस एवं द्रव के रूप में परिणत करके धरती की सम्पदा में असंख्य गुनी वृद्धि हो सकती है ।

यज्ञ प्रक्रिया प्राचीन काल में शारीरिक, मानसिक दुर्बलता और रूग्णता के निवारण में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती रही है । इसके अतिरिक्त उस माध्यम से वातावरण का परिशोधन एवं प्राणपर्जन्यों का अभिवर्षण भी सम्भव होता रहा है । इसमें व्यक्ति और समाज की स्वस्थता, समृद्धि एवं प्रगति की कितनी ही सम्भावनाएँ बढ़ती हैं । इस उपेक्षित एवं अस्त-व्यस्त यज्ञ प्रक्रिया को यदि फिर से नये परीक्षणों के साथ एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया का रूप दिया जा सके तो उसकी परिणति समस्त संसार पर दैवी वरदान बरस पड़ने के समान ही सौभाग्य भरी सिद्ध होगी ।

प्रकृति को भौतिक समझकर उसकी पदार्थ सत्ता स्तर पर अब तक की माथा पच्ची होती रही है । अब उस ब्रह्माण्ड में चेतना का समुद्र भरा-पूरा अनुभव किया जा सके और उसी क्षेत्र के मणि-मुक्तक ढूँढ़ने में लग पड़ा जाय तो विश्व वैभव में निश्चय ही आश्चर्यजनक प्रगति हो सकती है ।

अपनी पृथ्वी इस विशाल ब्रह्माण्ड परिवार का एक छोटा-सा घटक है । उसे जो भी प्रत्यक्ष, परोक्ष वैभव मिला हुआ है वह ब्रह्माण्डीय सम्पदा का एक अंग है । पृथ्वी उत्तरी ध्रुव के माध्यम से उसमें से उपयोगी अंश खींचती और जो अनुपयोगी है उसे दक्षिणी ध्रुव से बाहर फेंक देती है । यह प्रकृतिगत आकर्षण, विकर्षण मानवी चेतना के एकाकी एवं संयुक्त चुम्बकत्वों द्वारा सामयिक आवश्यकता के अनुरूप खींचा एवं रोका जा सकता है । अन्तर्ग्रही कारणों से पृथ्वी पर अनेकों विपत्तियाँ आती हैं, उन्हें रोकने एवं अनुकूलताओं को बढ़ाने के लिए चेतनात्मक प्रयोग उपचार हो सकते हैं । इस क्षमता को भी पूर्व काल की तरह इन दिनों अध्यात्म एवं विज्ञान के सिद्धान्तों का समन्वय करके सहज ही उपलब्ध किया जा सकता है ।

योग साधनाओं का ज्ञान-विज्ञान इन दोनों के समन्वय पर ही आधारित है । इस तत्व दर्शन को भली-भाँति हृदयंगम करने वाले सभी उपलब्धियों से लाभान्वित हो सकते हैं जिनकी प्रशस्ति धर्म शास्त्रों में की गयी है ।

योग : प्रसुप्त की जागृति का उच्चस्तरीय विज्ञान

रायल मेडीकल सोसायटी के सम्मुख सन् १८९६ में चिकित्सा विज्ञान के निष्णान्त डॉ. ग्लौस्टन ने कहा था "शारीरिक रोगों के उपजने-बढ़ने से लेकर अच्छे होने या कष्ट साध्य बनने में मानसिक स्थिति की बहुत बड़ी भूमिका होती है ।" शारीरिक कारणों या परिस्थितियों का जितना सम्बन्ध रोगों के उतार-चढ़ाव से है उससे कहीं अधिक मनोदशा उसे प्रभावित करती है । यदि व्यक्ति मानसिक दृष्टि से सुदृढ़ हो तो फिर रोगों की सम्भावना बहुत ही कम रह जायेगी । आक्रमण करने पर भी वे बहुत समय ठहर न सकेंगे । इसलिए चिकित्सा के औषधि-उपचार पर जितना ध्यान दिया जाता है उससे अधिक मनःस्थिति को सही बनाने का प्रयत्न होना चाहिए ।

'मन और स्वास्थ्य' पुस्तक के लेखक हेक ट्यूक ने शरीर पर पड़ने वाले मानसिक प्रभाव का सुविस्तृत पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है । वे कहते हैं—यों शरीर पर आहार-विहार का भी प्रभाव पड़ता है और अभाव तथा व्यतिरेक भी अपनी प्रतिक्रिया छोड़ते हैं तो भी उस पर सर्वाधिक प्रभाव व्यक्ति की अपनी मनःस्थिति का पड़ता है । यह प्रभाव प्रतिक्रिया नाड़ी मण्डल पर ३६ प्रतिशत, अन्तःस्रावी हारमोन ग्रन्थियों पर ५६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिशत, माँसपेशियों पर, ८ प्रतिशत पायी गयी है । कई रोगियों के पर्यवेक्षण पर पाया गया है कि उनके शरीर में कोई ऐसी गड़बड़ी नहीं है जिससे उन्हें गम्भीर रोगों का शिकार बनना पड़े, तो भी वे हृदयरोग, कैन्सर, कोलाइटिस, हिस्टीरिया, रक्तचाप, अनिद्रा, अपच आदि के मरीज पाये गए । कठिनाई यह भी बनी रही कि किसी औषधि उपचार से उन्हें कोई राहत न मिली जबकि उनका चिन्तन प्रवाह मोड़ देने पर बिना उपचार के ही बहुत कुछ ठीक हो गया ।

श्री हेक ने अपने प्रतिवेदन का अन्तिम निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है—फेथ (विश्वास), होप (आशा), कॉन्फीडेन्स (श्रद्धा), विल (इच्छा) और सजेशन (स्वसंकेत) जैसे प्रयोगों को अब स्वास्थ्य सम्वर्धन में प्रयोग किया जाना चाहिए । रोग निवारण का यह सबसे सस्ता; सुनिश्चित और हानि रहित निर्धारण है ।

योगशास्त्र के निर्धारणकर्त्ता पातंजलि गीता के प्रस्तोता व्यास और 'योग-वशिष्ठ' के उपदेष्टा वशिष्ठ का इस तथ्य पर पूर्णतया मतैक्य है कि मानसिक संयम से मनुष्य सुखी रहता और प्रगति पथ पर अग्रसर होता है । योग दर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है । अनियन्त्रित, अस्तव्यस्त और भ्रान्तियों में भटकने वाली मनःस्थिति को मानवी क्षमताओं के अपव्यय एवं भक्षण के लिए उत्तरदायी बताया है और उनको दिशा विशेष में नियोजित रखने का परामर्श दिया है । गीताकार मन को ही मनुष्य का मित्र एवं शत्रु ठहराते हैं और उसे भटकाव से उबारकर अपना भविष्य बनाने का परामर्श देते हैं । वशिष्ठ का कहना है कि जिसने मन जीत लिया उसे त्रैलोक्य विजेता कहना चाहिए । इन प्रतिपादनों में एक ही संकेत है कि मनोदशा की गरिमा शारीरिक स्वस्थता से भी बढ़कर मानी जाय और समझा जाय कि अनेकानेक समस्याओं के उद्भव एवं समाधान का आधार इसी क्षेत्र की सुव्यवस्था पर निर्भर है । इसलिए प्रयत्नपूर्वक मन की अनगढ़ कुसंस्कारिता का नियमन करना चाहिए ।

आत्मानुशासन (साइकोफिजिकल डिसीप्लिन), आत्म-सन्तुलन (इक्वानिमिटी ऑफ स्प्रिट) का अभ्यास ही योग साधना है । इससे नाड़ी मण्डल और स्नायु-संस्थान पर इच्छित नियमन की क्षमता उपलब्ध होती है फलतः मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य अपना स्वामी आप बन जाता है जबकि अव्यवस्थित कल्पनाओं और अनुपयुक्त इच्छाओं में उलझा हुआ व्यक्ति अपने साथ ठठोली करने और अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने जैसी विडम्बनाएँ रचता रहता है । निरोग और दीर्घायु वे ही रह सकते हैं जो अपने के स्वामी आप हैं । इच्छाओं और आदतों के गुलाम को आत्म निरीक्षण करने तक ही फुर्सत नहीं मिलती और न इतना साहस रहता है कि पतनोन्मुख प्रवाह को रोकें और उसे श्रेय पथ की दिशा में मोड़ें । यह असमर्थता ही मनुष्य की वास्तविक दरिद्रता और दुर्बलता है । इसे हटाये बिना दुर्गति से बचने का और कोई उपाय नहीं । यही कारण है कि सुव्यवस्थित प्रगतिशील और प्रसन्नता भरा जीवन जीने के लिए आत्म-नियमन सीखना होता है । शरीर निर्वाह के लिए सुविधा-साधनों के सहारे काम चल जाता है किन्तु यदि इतना ही पर्याप्त न लगे और मानवोचित वरिष्ठता प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हो तो फिर उसके लिए मनोनिग्रह की व्यवस्था भी जुटानी पड़ेगी । उद्दण्डता और बलिष्ठता के सहारे अपहरण और संग्रह भर हो सकता है । आतंक में डराने और विवश करने भर की क्षमता है । स्नेह और सहयोग अर्जित करने के लिए जिन सद्गुणों की आवश्यकता है उन्हें अपने में उगाने और बढ़ाने के लिए मानसिक सुसंस्कारिता की अनिवार्य आवश्यकता है उसके लिए संचित कुसंस्कारिता से जूझना पड़ता है । इस संघर्ष को धर्म-संघर्ष का धर्म-युद्ध या साधना-समर कहा गया है । अर्जुन को दिव्य सत्ता ने इसी के लिए दबाव देकर बाधित किया था ।

धारणा (कन्सन्ट्रेशन), ध्यान (मेडीटेशन) और समाधि (कन्टमप्लेशन) के अभ्यासों में साधक को एक ही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनाया जाता है कि वह मन की अस्त-व्यस्तता पर नियमन करना सीखे । इसके उपरान्त ही सीधे हुए मन को उत्कृष्टता की दिशा में चल सकने योग्य प्रशिक्षित पाया जा सकता है । शारीरिक और मानसिक अनुशासन (साइकोफिजिकल डिसीप्लन) बन पड़ने पर व्यक्तित्व की प्रौढ़ता परिपक्वता मानी जाती है और उसी को महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने की क्षमता एवं सम्भावना आंकी जाती है । बालकों जैसी चंचलता और लक्ष्य हीनता की स्थिति में पड़े हुए लोग बन्दरों की तरह निरर्थक उचक-मचक तो बहुत-सी करते रह सकते हैं, पर वे ऐसा कुछ कर नहीं पाते जिसे दिशाबद्ध—क्रमबद्ध या महत्त्वपूर्ण कहा जा सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग न तो रहस्यवाद है न पलायनवाद । उसमें काय कष्ट का वैसा विधान नहीं है जैसा कि कई अतिवादी अपना दुस्साहस दिखाकर भावुकजनों पर विशिष्टता का आतंक जमाते और उस आधार पर शोषण करते देखे गए हैं । योग कल्पना लोक में अवास्तविक विचरण भी नहीं है और न उसे जादू चमत्कारों की श्रेणी में गिना जा सकता है । देवताओं को वशवर्ती बनाकर या भूत-प्रेतों की सहायता लेकर मनोकामना पूरी करने-कराने जैसी ललक लिप्सा पूरी करने जैसा भी इस विद्या में कोई आधार नहीं है । योग एक विशुद्ध विज्ञान है जिसका वास्तविक आधार है—आत्मानुशासन का अभ्यास और क्षमताओं का उच्चस्तरीय प्रयोजन के लिए सफल नियोजन । जो इतना कर सकते हैं उन्हें सच्चे अर्थों में सिद्ध पुरुष कहा जा सकता है ।

मानवी विशेषता में उसके चेतन स्तर को ही दैवी विभूति माना गया है । वह उसे प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है, उसका सुनियोजन और सदुपयोग तो चाहिए भी । यह न बन पड़े तो समझना चाहिए कि दुरुपयोग से अमृत के भी विष हो जाने जैसी कहावत इस क्षेत्र में भी लागू होगी और मानसिक क्षमता की विशेषता उलटी विपत्तियाँ खड़ी करेगी । जैसा कि सामान्य-जनों को निर्वाह सुविधा उपलब्ध रहने पर नाना प्रकार के शोक-सन्तापों में ग्रसित देखा भी जाता है । अन्य प्राणियों को पदार्थ विनिर्मित शरीर मिला है वे पदार्थ परम्परा के अधिष्ठानों प्रकृति के निर्धारित अनुशासनों को समझते पालते और सुखी रहते हैं । मनुष्य को न केवल शरीर वरन् उच्चस्तरीय मनःसंस्थान भी मिला है । इसलिए समझदारी बताती है कि उसे दुहरी जिम्मेदारी निभानी चाहिए । शारीरिक स्वस्थता के लिए प्रकृति अनुशासन और मानसिक विशिष्टता के लिए उसे आत्मिक अनुशासन अपनाना चाहिए । इस क्षेत्र में जो असन्तुलन बन पड़ा है उसे सुधारने के लिए योगाभ्यास आवश्यक है । इस सुधार प्रयोजन के बिना यह सम्भव नहीं कि मानवी क्षमताओं का उपयुक्त प्रयोजनों के लिए उपयुक्त रीति-नीति अपनाते हुए—उपयुक्त नियोजन सम्भव हो सके ।

शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों से छुटकारा पाना ही नहीं अवांछनीय आदतों के कारण उत्पन्न होती रहने वाली विषम परिस्थिति से निपटने के लिए परिष्कृत मनोभूमि चाहिए । महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए कुछ कर सकना तो इसके बिना बनता ही नहीं इसलिए मानसिक दक्षता की उपयोगिता समझने वाले हर व्यक्ति को योगाभ्यास की बात सोचनी और व्यवस्था बनानी चाहिए ।

महामानवों में से प्रत्येक को अन्तःचेतना की उत्कृष्टता (हाई लेवल कान्सेन्स) को किसी न किसी प्रकार अर्जित करना ही पड़ा है । जो उस दिशा में बढ़ना चाहते हों उनके लिए सरल और सुनियोजित विधि-व्यवस्था योगाभ्यास की सामने है । बलिष्ठता के लिए व्यायाम, विद्वता के लिए अध्ययन, उपार्जन के लिए पराक्रम की जिस प्रकार आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार मनस्वी बनने के लिए योग साधना का स्वरूप समझें तथा प्रयोग करने की दिशा में भी कदम बढ़ाने चाहिए ।

सन् १९६३ में औषधि विज्ञान की खोज पर नोबेल पुरस्कार विजेता जान एकल्स ने कहा था—"वे सिद्ध कर सकते हैं कि हर मनुष्य को एक जीव रसायन तथा रहस्यमयी ऊर्जा से बना एक ऐसा पदार्थ प्राप्त है जिसे आत्मा कहा जा सकता है ।"

कैलेच विश्वविद्यालय के प्राध्यापक रोजर स्पेरी को सन् १९८१ में रासायनिक अध्ययन पर नोबेल पुरस्कार मिला था । उनका आत्मा के सम्बन्ध में कहना है कि यह एक सुनिश्चित तथ्य है । रासायनिक पदार्थों के मस्तिष्कीय गुणों से सम्बन्ध होने पर एक ऐसी सत्ता बन जाती है जो न केवल मनःक्षेत्र के दस अरब न्यूरोनों पर वरन् समूचे शरीर पर शासन चलाती है । इसका कार्य क्षेत्र सीमित नहीं वरन् असीम एवं व्यापक है ।

भौतिक शास्त्र में १९६३ के नोबेल पुरस्कार विजेता यूजीन डिगमर ने आत्मा को ऐसी अचेतन सामर्थ्य कहा है जो चेतन का नियन्त्रण और सूत्र संचालन करती है ।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के भौतिकी विशेषज्ञ ब्रियान जोसेफन ने लिखा है—मानवी सत्ता एक गठन है जो रसायनों और ऊर्जाओं के साथ गुथा रहने पर भी उनके अधीन नहीं है, वरन् अपनी सत्ता को चेतना सम्पन्न होने के कारण अपने क्षेत्र पर पूरी तरह शासन करता है ।

स्प्रिचुअल सोसाइटी के अध्यक्ष जान एकिल्स ने कहा है—'हम आत्मा की प्रत्यक्षता का क्रमशः अधिकाधिक अनुभव करते जा रहे हैं । वह दिन दूर नहीं जब वह अदृश्य या अविज्ञात न रहकर सामने प्रस्तुत होगी । उसे हम उसी तरह अनुभव कर सकेंगे जैसे सम्बद्ध अन्य शक्तियों का स्पष्ट अनुभव करते हैं ।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मा रसायन है ऊर्जा या ब्रह्माण्ड में संव्याप्त महाचेतना की एक अविच्छिन्न इकाई है । यदि इस विवाद में न पड़ा जाय तो भी यह मानना होगा कि वह जो भी है वह असाधारण सामर्थ्य की पुँज है । उसकी रहस्यमय परतें ऐसी हैं जिन्हें जागने, उभारने, सुधारने और सही रीति से प्रयुक्त कर सकने की क्षमता अर्जित कर सकने वाला कोई भी व्यक्ति अपनी विशिष्टता का परिचय दे सकता है । इस समर्थता को अर्जित करने के लिए योग साधना ही एक असंदिग्ध मार्ग है ।

अमेरिकी हिल्टन होटल शृंखला के मालिक कोनराल्ड हिल्टन अपने समय के गिने-चुने धन कुबेरों में से एक थे । अनवरत रूप से मिलती गयी सफलताओं का कारण वे 'भीतर की आवाज' को बताते थे । उनके साथी गणित और तथ्यों के आधार पर योजनाएँ बनाते थे और हिल्टन के आधार को अवैज्ञानिक बताते थे तो भी यह बात आश्चर्यजनक ही बनी रही कि 'भीतरी आवाज' ने कभी धोखा नहीं खाया जबकि तथ्यानुयायी अनेक बार असफल रहे और घाटे की चपेट में आये । यह रास्ता उन्होंने अलास्का हिमाच्छादित प्रदेश में तेल की खुदाई का ठेका लेने वाले लिडलेन हेस से सीखा था । उन्होंने वह दुस्साहस भरा काम हाथ में लिया था और असाधारण धन तथा यश कमाया था । हेस अपने पुरुषार्थ को दाँव कहते थे और उस बाजी को जीतने में अन्तःप्रेरणा के मार्गदर्शन को श्रेय देते थे ।

विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण सफलता पाने वाले लोगों की विशेषता का क्या कारण हो सकता है । यह जानने के लिए दो रहस्यवादी अनुसंधानकर्त्ताओं ने कदम बढ़ाया और उस स्तर के लोगों के साथ सम्पर्क साधा । ऐसे सफल लोगों में उद्योगपतियों को प्रथम महत्त्व का समझा जाता है । इसलिए उन्होंने उस वर्ग को प्रधानता देते हुए अन्य क्षेत्र के लोगों को भी द्वितीय-तृतीय श्रेणी का गिना और अनुसंधान का कार्यक्रम बनाया । इस अन्वेषण के निमित की गयी पूछताछ से पता चला कि उनमें से जिन्हें भीतर की आवाज पर विश्वास था और असमंजस की घड़ियों में उन्होंने उन्हीं का सहारा लेकर कदम बढ़ाया है ।

यह क्षमता किन्हीं में जन्मजात रूप से उत्पन्न हुई या अनुमान से मिली भी हो सकती है कोई उसे योग साधना द्वारा भी उत्पन्न कर सकता है । किन्हीं-किन्हीं में अनायास ही प्रकट होते देखा जाता है । यह प्रकटीकरण यह बताया है कि यह क्षमताएँ तो हर किसी में विद्यमान हैं, पर उनका दृश्य स्वरूप यदि संयोगवश देखा जा सकता है तो यह आशा करने का औचित्य है कि प्रयत्नपूर्वक उन्हें जागृत किया जा सके तो उन्हें भी वैसी ही मानसिक विशेषताओं की तरह प्रयुक्त किया जा सकेगा जैसी कि कलाकौशल आदि के रूप में जगाया और काम में लाया जाता है । अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न मनुष्यों के कितने ही उदाहरण समय-समय पर सामने आते रहते हैं ।

चेतना क्षेत्र की इन्हीं विशेषताओं में अतीन्द्रिय क्षमताओं का क्षेत्र आता है । सामान्यतया मानवी क्रिया-प्रक्रिया की एक छोटी सीमा है । आँखें एक सीमित दूरी तक ही देख सकती हैं । बुद्धि उन्हीं का अनुमान लगा सकती है जो किन्हीं प्रमाणों या साधनों से जाना जा सके । इसके अभाव में उसे बहुत दूर की, कालान्तर की, देशान्तर की जानकारियाँ प्राप्त कर सकने की क्षमता नहीं है किन्तु ऐसा भी देखा गया है कि उन जानकारियों को प्राप्त किया जा सका जो मस्तिष्क तथा इन्द्रिय तन्त्र की पकड़ से सर्वथा बाहर है । इसे मतीन्द्रियक्षमता कहते हैं । मानवी मस्तिष्क का एक अविज्ञात निष्क्रिय पक्ष जिसे शरीर शास्त्री 'डार्क एरिया' के नाम से पुकारते हैं । सामान्य ज्ञान व्यवहार में मानवी मस्तिष्क का बहुत थोड़ा प्रायः ७ प्रतिशत अंश ही काम में आता है । ९३ प्रतिशत क्षेत्र ही प्रसुप्त क्षेत्र है जिसके बारे में शरीर शास्त्री मनः शास्त्री यह जानने में समर्थ न हो सके कि यहाँ क्या छिपा है और उसे किस प्रकार किन प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है ।

तत्वज्ञानी इस प्रसुप्त क्षेत्र को अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न कहते हैं । इसका कुछ भाग यदाकदा अपनी रहस्यमय परतों की थोड़ी झाँकी कराता है तो प्रतीत होता है कि हर किसी में वे विशेषताएँ विद्यमान हैं जो यदाकदा सिद्ध पुरुषों द्वारा प्रकट होती देखी जाती हैं ।

योगविद्या का वैज्ञानिक विश्लेषण

चेतन मस्तिष्क के चमत्कार सर्वसाधारण को विदित है । विद्वान लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, व्यवसायी आदि अनेकों वर्ग के बुद्धिजीवी अपनी बौद्धिक चेतना के बल पर अपना तथा दूसरों का कितना हित साधन करते हैं यह किसी से छिपा नहीं है । बौद्धिक चेतना का महत्त्व समझते हुए ही विद्यालयों की स्थापना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती है और उस विद्या अनुष्ठान में अगणित छात्र एवं अध्यापक संलग्न रहते हैं । बौद्धिक सम्पदा को एक बहुत बड़ी उपलब्धि माना जाता है ।

अचेतन मस्तिष्क इससे भी अधिक रहस्यपूर्ण है । उस क्रिया-कलाप का केवल सात प्रतिशत ही मनोविज्ञानी तथा वृत्तत्व वेत्ता जान सके हैं । शरीर यात्रा की स्वसंचालित गतिविधियों का संचालन, नियन्त्रण, परिवर्तन अचेतन मस्तिष्क द्वारा होता रहता है । हमारी अभिरुचि, प्रकृति और आदतें बहुत कुछ इसी अविकसित मस्तिष्क में जड़ें जमाये रहती हैं । मोटे तौर पर इतना ही जाना जा सकता है । पर अब इस सम्बन्ध में मैटाफिजिक्स, पैरासाइकोलॉजी अतीन्द्रिय विज्ञान आदि विज्ञान की कितनी ही धाराओं ने अचेतन मस्तिष्क के बारे में खोज शुरू की है और पाया है कि यह संसार का सबसे अधिक रहस्यमय, अद्‌भुत और शक्तिशाली तन्त्र है । यदि अचेतन मस्तिष्क में सन्निहित सम्भावनाओं को पूरी तरह समझा जा सके और उन्हें कार्यान्वित किया जा सके तो इतना बड़ा चमत्कार उत्पन्न हो सकता है जितना कि पदार्थ विज्ञान की अब तक प्रगति से भी सम्भव नहीं हुआ है ।

अप्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय—इस मानव जीवन में और इस विश्व में बहुत कुछ है । विराट् ब्रह्माण्ड को खोज करके अब तक बहुत कुछ प्राप्त किया जा चुका है—जो प्राप्त किया जाता है कहीं उससे भी अधिक शेष है लेकिन मानवीय शरीर अभी तक बहुत कम खोजा जा सका । आनाटोकी और फिजियोलॉजी के आधार पर ज्ञान बहुत ही मोटा और भोंड़ा है । ऊतक, कोशिकाओं, जीन्स, हारमोन्स आदि कितने अति सूक्ष्म किन्तु अति समर्थ अवयवों की विचित्र शक्ति का रहस्योद्‌घाटन होता चलता है कि रुग्णता-आरोग्यता के आधार आमाशय गुर्दे आदि नहीं वरन् उनके भीतर काम करने वाले यही छोटे तत्व हैं । मस्तिष्क विद्या न्यूरोलॉजी—साइकोलॉजी से आगे की अतीन्द्रिय विद्या है जो अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्ध रखती है । यदि इस शक्ति केन्द्र को समझा सँभाला जा सके तो यहाँ सब कुछ देवलोकों के अद्‌भुत वर्णन चित्रण जैसा दिखाई पड़ सकता है । अति महत्त्वपूर्ण यन्त्रों से हो सकने वाले क्रिया-कलाप तब मानवीय अचेतन क्षमता के माध्यम से ही सम्पन्न हो सकते हैं ।

अतीन्द्रिय विद्या के शोधकर्त्ताओं का कथन है कि चेतन मस्तिष्क की सक्रियता—अचेतन की क्षमता तरंगों को काटती है इसलिए उसे अविकसित स्थिति में पड़ा रहना पड़ता है । यदि बौद्धिक संस्थान की गतिविधियाँ मन्द से शिथिल की जा सकें तो उसी अनुपात से अचेतन केन्द्र जागृत हो सकता है और उसके माध्यम से अविज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । योगविद्या के आचार्य बहुत पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं और उन्होंने प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि जैसी साधनाओं के माध्यम से चेतन मस्तिष्क को शिथिल निष्क्रिय एवं शून्य स्थिति में ले जाने की सफलता प्राप्त की । यह सफलता ही अनेक चमत्कारी सिद्धियों की जननी है । दूरदर्शन, दूर-श्रवण, विचार-प्रेरणा, भविष्य ज्ञान, अदृश्य का प्रत्यक्ष आदि कितनी ही ऐसी विशेषताएँ प्राप्त की जा सकती हैं जो साधारणतया मनुष्यों में होती नहीं ।

बौद्धिक मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छा शक्ति, प्राण शक्ति यदि अचेतन को विकसित करने में लगाई जा सके तो व्यक्ति अपने शरीर में कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर सकता है—अति दीर्घजीवी हो सकता है—अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त करके उसमें चल रही हलचलों को मन्द शिथिल एवं परिवर्तित कर सकता है । इन सम्भावनाओं को योग साधना द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता रहा है । अब भी उनके प्रत्यक्ष और प्रमाणित किए जाने की पूरी गुंजाइश है ।

योग साधना का मूल सिद्धान्त 'चित्तवृत्तियों का निरोध' है । इसका तात्पर्य है मस्तिष्कीय अतिशय सक्रियता को नियन्त्रित करके चेतनात्मक शक्ति के अपव्यय को बचा लेना और उस बचे हुए प्राण-प्रवाह को अचेतन के विकसित करने में नियोजित कर देना । निःसन्देह यह एक पूर्ण विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है । इसके लाभ अलौकिक उपलब्धियों के रूप में देखे जा सकते हैं । समाधि स्थिति तक पहुँचा हुआ व्यक्ति त्रिकालदर्शी और विश्व की जड़चेतन सत्ता को प्रभावित कर सकने में समर्थ बन जाय तो इसमें कुछ भी अचम्भे की बात नहीं है ।

विश्व के अगणित जीव-जन्तुओं में विवध प्रकार की ऐसी अद्‌भुत क्षमताएँ पायी जाती हैं जिनसे मनुष्य वंचित है । इसका एक ही कारण है मनुष्य के बौद्धिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्थान को अति सक्रिय होने से उसकी ऊष्मा अचेतन को दबा लेती है और उससे शरीर संचालन भर की गतिविधियाँ पूरी हो पाती हैं । अलौकिक और अद्‌भुत प्रयोजन पूरे कर सकने वाला माद्दा तो एक प्रकार से कुण्ठित हुआ ही पड़ा रहता है ।

कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तु बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े होते हैं । उनका चिन्तन और चेतन शिथिल रहता है । इसका लाभ उनके अचेतन को मिलता है और वे योगियों जैसे कितने ही अद्‌भुत कार्य कर सकते हैं । कुत्तों की घ्राण शक्ति अति सूक्ष्म होती है । वे व्यक्तियों की शारीरिक गंध में रहने वाली भिन्नता को पहचान लेते हैं और जनसंकुल भीड़ में उसी गंध के आधार पर खोजते हुए अपने मालिक को तलाश कर लेते हैं । चोरों का पता लगाने में प्रशिक्षित कुत्ते अब बहुत कारगर सिद्ध हो रहे हैं । वे जिस आधार पर चोरी का, चोरी के माल का पता लगाते हैं वह उनके अधिक विकसित अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्धित घ्राण शक्ति ही है । प्रयत्न करने से मनुष्य भी उस क्षमता को विकसित कर सकता है जो बुद्धिहीन कुत्ते करते हैं । इस कार्य को मनुष्य और भी अच्छी तरह कर सकता है ।

चमगादड़ के ज्ञान तन्तु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं । उसका अचेतन मस्तिष्क अपने साधारण से शरीर के आधार पर विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली रेडियो तरंगों को भली-भाँति पहचान लेता है और घोर अँधेरे में भी अपने आस-पास की वस्तुओं का स्वरूप एवं स्थान को समझ कर अपने उड़ने का क्रम बिना किसी से टकराये हुए जारी रख सकता है ।

समुद्री मछली 'डाल्फिन' अपने शरीर से एक प्रकार की रेडियो तरंगें निकालती हैं । पानी के भीतर ही वे दूर तक फैलती हैं और उस क्षेत्र के जीव-जन्तुओं से टकरा कर उसी के पास वापस लौट आती हैं । अचेतन मस्तिष्क क्षण भर में यह जान लेता है कि कौन जीव किस आकृति-प्रकृति का कितनी दूर है । उसी आधार पर वह अपने बचाव तथा आक्रमण की योजनाबद्ध तैयारी करती है ।

बहुत से जीव-जन्तुओं ने अचेतन मन में अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार शरीरों में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न कर ली हैं जो आरम्भ में नहीं थीं । गोताखोरों की तरह मेढक ने जल में प्रवेश करने पर आँखों पर चढ़ाया जा सकने वाला एक विशेष प्रकार का चश्मा विकसित कर लिया है जो चिर अतीत में नहीं था । रावन प्लाण्ट और ग्रेट मुलर पौधों ने पशुओं द्वारा चरे जाने से आत्म-रक्षा के लिए नोंकदार काँटे विकसित किए हैं । तितलियों के बच्चे और रेशम के कीड़े शरीर से रस निकाल कर उस पर पत्तियाँ चिपका लेते हैं और आत्म-रक्षा की सुविधा उत्पन्न करते हैं । कछुये ने मगर मच्छों से अपने स्वादिष्ट माँस को बचाने के लिए चमड़ी को मोटा किया है । ह्वेल मछली ने पनडुब्बियों की सारी खास-खास विशेषताएँ अपने शरीर में उपस्थित कर रखी हैं । लगता है मनुष्य ने शायद ह्वेल की शरीर रचना देख कर ही पनडुब्बियों का विकास किया हो । मगर मच्छ अपने दाँत साफ कराने के लिए मुँह खोल कर धूप में पड़े रहते हैं । चिड़ियाँ निर्भय होकर उसके मुँह में भीतर तक अपनी गर्दन प्रवेश करती हैं और सफाई में लगी रहती हैं । वे जानती हैं कि माँसाहारी होने पर भी इस समय मगर की इच्छा क्या है और उसे पूरा करते समय उनके जीवन को संकट उत्पन्न होने की आशंका नहीं । गिलहरी ने अपने गालों में दो जेबें विकसित की हैं ताकि वह उनमें उपलब्ध खाद्य सामग्री जल्दी से जमा कर सके । बन्दर के गले में भी ऐसी ही थैलियाँ होती हैं । कंगारू के पेट में भी एक ऐसी ही जेब होती है ताकि वह उसमें अपने बच्चे रख सके ।

गर्मी-सर्दी का सही पता हमें थर्मामीटरों के आधार पर लगता है, पर छोटे कीड़ों का अचेतन उन्हें स्थिति का ज्ञान उसी सामान्य शरीर से करा देता है । ४० डिग्री फारेनहाइट पर सभी कीटाणु अपना काम बन्द कर देते हैं ५० डिग्री ताप पर मक्खी अपने लिए सुरक्षित स्थान ढूँढ़ कर वहाँ छिप जाती है । ५५ डिग्री पर चीटियाँ और मधुमक्खियाँ अपने घरों में घुस जाती हैं । शहद की मक्खियाँ तभी काम पर निकलती हैं जब ८५ डिग्री तापमान हो जाता है । ९५ डिग्री पर टिड्डों का संगीत शुरू होता है । आहार उपलब्धि की दृष्टि से असुविधा का समय समीप आते ही चीटियाँ तथा दूसरे कीड़े अपने लिए आहार जमा करने लग जाते हैं उनका भविष्य ज्ञान बिल्कुल सही होता है । दीमक और चीटियों के झुण्डों की लड़ाई देखने ही योग्य है । उनकी मोर्चेबन्दी, आक्रमण तथा बचाव की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रक्रिया से मनुष्य योद्धाओं के लिए बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है ।

अफ्रीका का 'काटन रेल' जाति का खरगोश हिंसक जन्तुओं का खतरा देख कर अपनी पिछली टाँगें एक खास तरीके से जमीन में मारता है, उससे एक विद्युतधारा पैदा होती है जो भूमि की ऊपरी पर्त पर दूर तक फैल जाती है । दूसरे खरगोश उस टेलीफोन को तुरन्त सुन लेते हैं और सजग होकर अपने बचाव की तैयारी करने लगते हैं । खरगोश ही नहीं दूसरे छोटे जानवर भी इस टेलीफोन से लाभ उठाते हैं और बचने की व्यवस्था बना लेते हैं । जेट विमान की हूबहू प्रणाली के आधार पर समुद्री झींगे 'सीएरे' की शरीर रचना है । द्रुतगति से दौड़ने की यह प्रणाली उसके अद्‌भुत अचेतन की अनौखी देन है ।

उत्तरी अमेरिका की नदियों में पायी जाने वाली 'ईल' मछली अपने-आप में एक अच्छा खासा डायनुमा है । घरों की बत्तियाँ २२० वोल्ट पर जलती हैं पर उसके शरीर से ५०० से भी अधिक वोल्ट की बिजली उत्पन्न होती देखी गयी है । ऐन्टेना तितली के सींग रेडियो और टेलीविजन की जरूरत पूरी करते हैं । नर झींगुर अपनी काम तृप्ति के लिए एक विशेष प्रकार की तान छेड़ता है और उसके आकर्षण से मादाएँ उसके समीप एकत्रित होती हैं । 'निर्गर' मछली के गले में एक छुरी छिपी रहती है जिससे वह अपने शिकार को हलाल करती है और कोई बड़ा जानवर उसे निगल ले तो इसी छुरी से उसका पेट चीर कर बाहर निकल आती है ।

वर्षा की सम्भावना निकट आते ही मकड़ी अपना जाला खुली जगहों में से समेट कर बचाव की जगह पर चली जाती है । गिरने वाले मकान में से बिल्ली अपने बच्चों को लेकर कुछ समय पूर्व सुरक्षा के लिए प्रयास करती देखी गयी है । कछुआ अण्डे बालू में देता और अपनी मानसिक चेतना से उन्हें सेता पकाता है । अनुकूल ऋतु की तलाश में पक्षी हजारों मील उड़ कर समुद्र और पर्वतों को लाँघते हुए कहीं से कहीं चले जाते हैं और फिर सुविधा की ऋतु आने पर फिर इतनी लम्बी यात्रा बिना भूले-भटके पार करके वापस आ जाते हैं । कई मछलियाँ अण्डे देने के लिए अपनी पूर्व जानकारी के उपयुक्त स्थान पर पहुँचने के लिए हजारों मील की यात्रा करती हैं और फिर वापस आती हैं । बया पक्षी का घोंसला कितना मजबूत होता है, रेशम के कीड़े अपने लिए कैसा अच्छा खोल बनाते हैं ।

यह सब क्रिया-कलाप इन छोटे जीव-जन्तुओं का अचेतन मन कराता है । यदि अचेतन मन की सामान्य शक्ति को चेतन मस्तिष्क की उत्तेजित ऊष्मा नष्ट न किया करें तो अन्य जीवों की तुलना में हजारों गुना अधिक विकसित मानवीय मस्तिष्क इतने अधिक दिव्य कर्त्तत्व सम्पन्न कर सकता है कि जितने में समस्त जीव-जन्तुओं की सम्मिलित अचेतन सत्ता से भी सम्भव नहीं हो सकें ।

योग साधना इसी प्रयोजन को पूरा करती है । वह विद्या विलास या बौद्धिक विकास पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती । मानसिक उत्कर्ष, विद्याध्ययन, कलाकौशल और व्यवस्थापक शिक्षा की उसमें पूरी छूट है । प्रतिबन्ध केवल इस बात का है कि मनःक्षेत्र को उत्तेजित, विक्षुब्ध एवं अशान्त न होने दिया जाय । गीता, 'योग-वशिष्ठ' तथा दूसरे अध्यात्म ग्रन्थों में शम, दम, तितीक्षा आदि का उपदेश दिया है । अनासक्ति और स्थिति प्रज्ञता पर जोर दिया है । समत्व का प्रतिपादन किया है । इसका तात्पर्य यह है कि अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती ही रहने वाली हैं । उत्तेजना पैदा करने वाली स्थिति घटित होते रहना स्वाभाविक है । संस्थाएँ समाज और व्यक्ति का निर्माण ही कुछ ऐसे ढंग से हुआ है कि पारस्परिक मिलन से प्रिय-अप्रिय सम्वेदनाएँ उत्पन्न हों और मन को प्रसन्नता या अप्रसन्नता के ज्वार-भाटे की तरह आन्दोलित करें । प्रकृति का क्रम भी सदा मनुष्य की इच्छानुकूल नहीं रहता । ऋतु प्रभाव की तीव्रता, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, इति भी जरा-मरण, जैसे परिवर्तनशील घटना क्रम आये दिन उलटते-पलटते रहते हैं । इनसे क्षुब्ध न होने और चित्त अनुगृहीत बनाये रहने के लिए यदि मन को साध लिया जाय तो वह समत्व की स्थिति जहाँ अधिक बुद्धिमत्ता प्रगति पथ पर चलने का द्वार खोलती है वहाँ अचेतन मस्तिष्क की दिव्यता की काट करने वाली उथल-पुथल भरी मानसिक ऊष्मा को भी बढ़ने नहीं देती । फलतः व्यक्ति इस सन्तुलन के कारण बौद्धिक क्षमता को भी अधिकाधिक विकसित करने का लाभ उठाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अचेतन मन को भी अस्त-व्यस्त एवं दुर्बल नहीं होने देता ।

योग का प्रथम चरण यही 'मानसिक सन्तुलन है । दूसरा चरण है कुछ समय के लिए चेतन मस्तिष्क की गतिविधियों को रोक कर उस संस्थान में काम करने वाली विद्युत-शक्ति को अचेतन मस्तिष्क को विकसित करने के लिए नियोजित करने की क्षमता प्रदान करना । इस साधना में एकाग्रता के लिए प्रयत्न करना पड़ता है । मन में उठने वाले विभिन्न संकल्पों को रोक कर उसे एक केन्द्र पर स्थिर रहने के लिए साधना सिखानी पड़ती है । बहुमुखी चिन्तन की अपेक्षा एक सीमित परिधि में चिन्तन है तो अस्त-व्यस्तता में बिखरी रहने वाली चेतना केन्द्रित होने लगती है । छोटे से आतिशी शीशे पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें जब एक बिन्दु पर एकत्रित कर ली जाती हैं तो वहाँ आग जला सकने वाला ताप उत्पन्न हो जाता है । विचारों का एकत्रीकरण भी ऐसी ही मानसिक क्षमता उत्पन्न करता है । एकाग्रता एक अद्‌भुत मानसिक समर्थता है । मैस्मेरिज्म हिप्नोटिज्म इसी एकाग्रता इच्छा शक्ति और चक्षु तेजस् सम्मेलन का छोटा किन्तु प्रत्यक्ष चमत्कार है ।

एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जागृत अवस्था में ही संकल्प पूर्वक लय कर देना समाधि है । इसके लिए प्रत्याहार धारण करने की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं । इन साधनाओं के द्वारा, सचेतन बुद्धि संस्थान की चिन्तन और संकल्प क्षमता को शिथिल करके वहाँ लगे हुए तेजस् को जब अचेतन के साथ जोड़ दिया जाता है तो उसकी वे दिव्यताएँ जो अद्‌भुत और अनुपम हैं सजग और सक्षम हो शुरू कर देती हैं । इस दिशा में जो जितनी सफलता प्राप्त करता चलता है उसे उतना ही समर्थ सिद्ध पुरुष कहा जाता है ।

हठ योगियों ने इस दिशा में कुछ पगडण्डियाँ दूसरी भी निकाली हैं । किन्हीं वनस्पतियों की सहायता से सचेतन केन्द्र को प्राप्त करना ऐसी ही एक पगडण्डी है । कहते हैं कि चिर अतीत में योगी लोग सोमपान करते थे और मध्यकाल में गाँजा जैसी वनस्पतियों का प्रयोग किया जाता था । सम्भवतः यह इसलिए किया गया होगा कि मन को विवेक पूर्वक अभ्यास और वैराग्य के द्वारा साधने में देर लगती तथा परिश्रम पड़ता था और दृष्टिकोण तथा क्रिया-कलापों में हेर-फेर करना पड़ता था । यह कष्ट साध्य, श्रम साध्य और समय साध्य प्रक्रिया अपनाने की अपेक्षा लोग सरल मार्ग ढूँढ़ने लगे होंगे । हो सकता है कि तात्कालिक कुछ लाभ भी इस प्रकार होता हो और चेतन-मस्तिष्क को शून्य करके उसे चेतना को बचाने और उसे अचेतन में लगाने की सफलता किसी अंश में मिल जाती हो, पर यह रास्ता पूर्णतया गलत है । नशे द्वारा चेतन मस्तिष्क को यदि तन्द्रा ग्रस्त कर भी लिया जाय तो उस अनिश्चित स्थिति में ऐसा संकल्प बल सँजोये रखना कठिन है जिससे उस बची हुई चेतना को विधिवत् अचेतन में लगाया जा सके वह अस्त-व्यस्त भी हो सकती है । साथ ही नशेबाजी से शारीरिक, मानसिक क्षतियों का होना तो स्वयंसिद्ध है ।

योग का सर्वमान्य सिद्धान्त यही है कि बौद्धिक-चेतना पर नियन्त्रण स्थापित करके अचेतन को दबाने से रोकना और सहायता के रूप में नियुक्त करना । इन प्रयोगों को यदि व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके तो निःसन्देह मनुष्य साधारण न रह कर असाधारण ही बन सकता है ।

योग : मनुष्य के विकास का सर्वोत्तम मार्ग

भारतीय दर्शन के छः विभागों में योग हिन्दुओं की और भारत की विश्व को एक महान देन है । संसार की और शुष्क विचारधाराओं से यह भिन्न है क्योंकि यह क्रियात्मक या (प्रैक्टीकल) है । योग अपने आप में एक विज्ञान है । इसे हम चाहें तो पूर्वात्य मनोविज्ञान भी कह सकते हैं । भारतीय संस्कृति में रुचि रखने वाले योग को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि यह आध्यात्मिक चमत्कारों से परिपूर्ण है । योग का प्रारम्भ महर्षि पातंजलि ने किया था । उनके अनुसार योग वह विद्या है जिससे मनुष्य अपने मन को पूर्ण वश में कर ईश्वरीय आत्मा में अपने आपको लय कर सकता है ।

'योग' शब्द का अर्थ है "मिलन" या 'जुड़ना' । दो बिछुड़े हुए व्यक्तियों का मिलन भी कितना सुखद होता है । परस्पर एक-दूसरे से जुड़कर हम दृढ़ और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मजबूत बनते हैं । आन्तरिक आह्लाद का अनुभव करते हैं । हमारी आत्मा को सुख मिलता है । मनुष्य के अन्तःस्थल में जो शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, सत्, चित, आनन्द, शिव, सुन्दर, अजर-अमर है, वह आत्मा ही है । इस आत्मा का जगत् पिता ईश्वर की आत्मा विश्वात्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है । योग साधना द्वारा आत्मा का जब परमात्मा से मिलन होता है तो बिछुड़ी हुई माता और छोटी स्तनपान करने वाली कन्या के मिलने से मन की जो दशा होती है, वही आनन्ददायक अनुभूति हमें प्राप्त होती है ।

आत्मा से परमात्मा के मिलन की जो अनुभूति होती है, वह सर्वाधिक आनन्द और शाश्वत शान्ति देने वाली है । भक्त ईश्वर की आराधना और अन्ततः मिलन के द्वारा जो सुख प्राप्त करते हैं, वह अनिर्वचनीय है । एक उदाहरण लीजिए ।

मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए बालि से भगवान राम ने पूछा कि तुम स्वर्ग, मुक्ति या जो सद्गति चाहो मुझसे इसी समय प्राप्त कर सकते हो तो बालि ने उत्तर दिया—

"जेहि योनि जन्मों कर्मवश,
तहँ राम-पद अनुरागऊँ ।"

"हे भगवान ! मुझे स्वर्ग या मुक्ति नहीं चाहिए, मुझे तो यह वरदान दीजिए कि कर्मवश जहाँ जिस योनि में मेरा जन्म हो, उस जन्म में मुझे राम के चरणों का अनुराग (या भक्ति) प्राप्त होती रहे । मुझे अपनी अक्षय भक्ति दीजिए ।"

यही भावनाएँ प्रायः अन्य सभी योगियों को अपनी आत्मा को ईश्वर में लय कर देने से प्राप्त होती हैं । योग वह विद्या है जिसके द्वारा स्वर्ग और मुक्ति का सुख यहीं प्राप्त हो जाता है । अनेक साधक अपनी भौतिक सम्पदाओं में लात मार कर आत्मिक साधनाओं (योगासन, प्राणायाम, ध्यान, यम-नियम) में तल्लीन होते हैं, क्योंकि भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मिक सुख को ही वे प्रधानता देते हैं । योगियों ने विश्वात्मा से मिलन के अपने अनुभव लेख बद्ध किए हैं । अतः योग का चमत्कार जानने और अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि जिज्ञासु स्वाध्याय तथा आत्मवादियों, योगियों एवं विद्वानों के सत्संग द्वारा योग विद्या को भली प्रकार समझें । आजकल तो केवल आसन और प्राणायाम मात्र ही करना योग हो गया है । ये तो शरीर के स्वास्थ्य के लिए गौण यौगिक साधन हैं, प्रधान तो मनोयोग और आत्मयोग है । योगशास्त्र के अध्ययन में पर्याप्त उत्साह, सद्गुरु की प्राप्ति और दीर्घकालीन अभ्यास—ये आवश्यकताएँ योग साधना के लिए जरूरी हैं ।

योग के कई अंग हैं जैसे—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और राजयोग । यम-नियम वे आधार हैं जिनके बिना कोई योग-मार्ग पर प्रवृत्त नहीं हो सकता । योगी श्री अरविन्द ने आत्म-समर्पण पर बहुत बल दिया है ।

योग साधना क्या है ? मानव अन्तःस्थल में जो शुद्ध-बुद्ध चैतन्य अमर सत्ता है, वही परमात्मा है । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चतुष्टय को जीव कहते हैं । यह जीव आत्मा से भिन्न भी है और अभिन्न भी है । इसे द्वैत भी कह सकते हैं, अद्वैत भी । अग्नि में लकड़ी जलने से धुआँ उत्पन्न होता है । धुएँ को अग्नि से अलग कहा जा सकता है, पर अग्नि बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं अतः वह अग्नि का ही अंग है, यह अद्वैत है । आत्मा अग्नि है और जीव धुआँ है । दोनों अलग भी हैं और एक भी । उपनिषदों में इसे वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों की उपमा दी गयी है । गीता में इन दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक को क्षर (नाशवान) तथा एक को अक्षर (अविनाशी) कहा गया है ।

भ्रम से, अज्ञान या माया से अथवा शैतान के नाना प्रलोभना से दोनों (जीव और परमात्मा) की एकता पृथकता में बदल जाती है । वहाँ दुःख और शोक का कारण है । पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, सास-बहू में जब तक एकता रहती है, दोनों पक्ष आपस में प्रेम रखते हैं, एक दूसरे का हित चाहते हैं, सामंजस्य रखते हैं, तो घर में सुख रहता है, श्री वृद्धि होती है और सभी स्वर्ग का आनन्द लेते हैं । यही स्थिति मानव-जीवन की भी है । जहाँ मन और आत्मा का एकीकरण होता है, जहाँ जीव की इच्छा, रुचि एवं कार्य-प्रणाली विश्वात्मा की इच्छा रुचि प्रणाली के अनुसार होती है, वहाँ अपार आनन्द का स्रोत उमड़ता रहता है, पर जहाँ दोनों में विरोध होता है, जहाँ नाना प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व चलते रहते हैं, वहाँ आत्मिक शान्ति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन और आत्मा का सम्बन्ध पति-पत्नी और पिता-पुत्र की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ है । इसलिए उन दोनों की एकता की और भी आवश्यकता है । दोनों का दृष्टिकोण एक होना चाहिए । दोनों की इच्छा, रुचि एवं कार्यप्रणाली एक होनी चाहिए । तभी जीवन में सच्ची शान्ति के दर्शन हो सकते हैं, पर इस स्थिति को विरले ही प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार हमारे घर या परिवार में अनैक्य के कारण कलह, क्लेश और सन्तापों की भरमार है, वैसे ही आन्तरिक, आत्मिक एकता न होने से मनुष्य के मनः क्षेत्र में घोर अशान्ति मची रहती है । इस अव्यवस्था के सन्ताप से उसका अन्तःलोक दावानल की तरह जलता रहता है । मनुष्य के पास भौतिक सुख-साधन कितने ही क्यों न हों, उसके अन्तःकरण को तनिक भी शान्ति उपलब्ध नहीं होती । अनेक धन-दौलत के स्वामी सेठ, पूँजीपति भाँति-भाँति की चिन्ताओं, आवेशों और सन्तापों से घिरे रहते हैं । इससे प्रकट है कि धन-दौलत से कोई भी व्यक्ति जीवन का सच्चा और स्थाई आनन्द या सुख प्राप्त नहीं कर सकता ।

इसी प्रकार अनेक ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनके पास रुपया पैसा या अन्य भौतिक सम्पदाएँ नहीं हैं, फिर भी वह खूब मस्त रहते हैं । सुख की नींद सोते हैं और अपने चारों ओर आनन्द देखते हैं । इससे प्रकट है कि धन-दौलत के या साधनों के न होने से सच्चे सुख में कोई कमी नहीं आती । अमीरों का भी दुःखी रहना और गरीबों का भी सुखी होना इस बात का प्रमाण है कि सुख का वास्तविक स्थान बाहर नहीं है, बाहर की वस्तुओं में नहीं है ।

मन और अन्तःकरण की एकता में दोनों के मिलन में ही सुख है । इसी को यौगिक शब्दावलि में आत्मा और परमात्मा का मिलन कह सकते हैं । इस मिलन का ही दूसरा नाम 'योग' है । आत्मा और परमात्मा के मिलन से दोनों के योग से एक ऐसे आनन्द का आविर्भाव होता है, जिसकी तुलना संसार के अन्य किसी भी सुख से नहीं की जा सकती । इसी सुख को परमानन्द, जीवनमुक्ति, ब्रह्म-निर्वाह, आत्मोपलब्धि, प्रभुदर्शन आदि नामों से पुकार जाता है ।

मनुष्य के मन का वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं है । वह आत्मा का ही एक उपकरण, औजार या यन्त्र है । आत्मा की कार्य-पद्धति को सुसंचालित करके चरितार्थ कर स्थूल रूप देने के लिए मन का अस्तित्व है । इसका वास्तविक कार्य यह है कि आत्मा की इच्छा एवं रुचि के अनुसार विचारधारा एवं कार्य-प्रणाली को अपनाये । इस उचित एवं स्वाभाविक मार्ग पर यदि मन की यात्रा चलती रहे, तो मानव प्राणी जीवन सच्चे सुख का रसास्वादन करता है । पर दुर्भाग्य की बात है कि आज हम में से अधिकांश को वह स्थिति उपलब्ध नहीं है । आत्मा सत् प्रधान है । उसकी इच्छा एवं रुचि सात्विकता की दिशा में होती है । जीवन की हर घड़ी सात्विकता में सराबोर हो, हर विचार और कार्य सात्विकता से परिपूर्ण हो, यह आत्मा की माँग है ।

पर माया या अविद्या के कुचक्र में फँसकर वे दूसरी ओर चल देते हैं । रज और तम में उसकी प्रवृत्ति दौड़ती है । इस कार्य-विधि को निरन्तर प्रोत्साहन मिलने से वह इतनी प्रबल हो जाती है कि आत्मा की पुकार के स्थान पर मन की तृष्णा ही प्रधानता प्राप्त कर लेती है ।

मन और अन्तःकरण के मेल अथवा एकता से ही आनन्द प्राप्त हो सकता है । इस मेल अथवा एकता को एवं उसकी कार्य-पद्धति को योग साधना कहते हैं । यह योग साधना प्रत्येक उच्च प्रवृत्तियों वाले साधक के जीवन का नित्य कर्म होना चाहिए भारतीय संस्कृति के अनुसार सच्ची सुख-शान्ति का आधार योग साधना ही है । योग द्वारा सांसारिक संघर्षों से व्यथित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्मा के निकट बैठता है तो उसे अमित शान्ति का अनुभव होता है ।

उपर्युक्त पंक्तियों से भारतीय योग पद्धति की महत्ता पर कुछ प्रकाश पड़ता है । योग पूर्वीय दृष्टिकोण का मनोविज्ञान है । इसके अनुसार मनुष्य को अपनी वासना को परमात्मा में लय कर देना और इस प्रकार ऊँचा उठना चाहिए । इसके विपरीत पाश्चात्य मनोविज्ञान यह कहता है कि वासना को खोल देना चाहिए । भारतीय मनोविज्ञान—यह योग पद्धति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे मनुष्य की रुचि और प्रवृत्ति ऊँची रहती है । सात्विकता, देवत्व को विकसित होने का प्रचुर अवसर मिलता है । योग साधना का प्रथम लाभ तो यह होता है कि मन शान्त हो जाता है । अशान्त मन में योग का आधार नहीं हो सकता । विचारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का तूफान आने पर भी योगी का मन स्थिर और अविचल बना रहता है । दूसरा लाभ एकाग्रता है । निरन्तर ध्यान और चिन्तन करने से एकाग्रता की वृद्धि होती है । आध्यात्मिक शक्तियाँ बढ़ती हैं । आजकल की पाश्चात्य मनोविज्ञान की प्रणालियाँ जैसे साइकोथिरैपी, मैस्मेरिज्म, थाटरीडिंग, क्लेरोवेन्स आदि सभी योग द्वारा सम्भव हैं ।

आज योग विद्या के सही दृष्टिकोण को निखारने की अतीव आवश्यकता है । आसन और प्राणायाम मात्र ही करना आजकल योग हो गया है, पर वास्तविक महत्त्व आन्तरिक साधना का ही है । उस समय योगी मृगछाला इसलिए पहनते थे कि वह आसानी से मरे पड़े हुए मृगों से मिल जाती थी । आजकल बन्दूक की गोली से मरे हुए जानवर की खाल होती है, यह निन्दनीय है । अब चिमटे की आवश्यकता नहीं रह गयी है । योगिराज अरविन्द, महात्मा गाँधी जी, स्वामी दयानन्द जी, स्वामी शिवानन्द जी आदि की तरह का सीधा-साधा जीवन ही उपयुक्त है । पर आज तो योग का नाम सुनते ही कितने ही लोग चौंक उठते हैं । उनकी निगाह में यह एक ऐसी चीज है जिसे लम्बी जटा वाले और मृग चर्मधारी साधु जंगलों या गुफाओं में किया करते हैं । इसलिए वे सोचते हैं कि ऐसी चीज से हमारा क्या सम्बन्ध ? हम उसकी चर्चा ही क्यों करें ?

पर ऐसे विचार इस विषय में उन्हीं लोगों के होते हैं जिन्होंने कभी इसे सोचने-विचारने का कष्ट नहीं किया, अन्यथा योग जीवन की एक सहज, स्वाभाविक अवस्था है जिसका उद्देश्य समस्त मानवीय इन्द्रियों और शक्तियों का उचित रूप से विकास करना और उनको एक नियम में चलाना है । इसीलिए योगशास्त्र में "चित्तवृत्तियों का निरोध" करना ही योग बतलाया गया है । गीता में 'कर्म की कुशलता' का नाम योग है तथा 'सुख-दुःख के विषय में समता की बुद्धि रखने' को भी योग बतलाया गया है । इसलिए यह समझना कोरा भ्रम है कि समाधि चढ़ाकर, पृथ्वी में गड्ढा खोदकर बैठ जाना ही योग का लक्षण है । योग का उद्देश्य तो वही है जो योगशास्त्र में या गीता में बतलाया गया है । हाँ, इस उद्देश्य को पूरा करने की विधियाँ अनेक हैं, उनमें से जिसको जो अपनी प्रकृति और रुचि के अनुकूल जान पड़े वह उसी को अपना सकता है । नीचे हम एक योग विद्या के ज्ञाता के लेख से कुछ ऐसे योगों का वर्णन करते हैं जिनका अभ्यास घर में रहते हुए और सब कामों को पूर्ववत् करते हुए अप्रत्यक्ष रीति से ही किया जा सकता है—

(१) कैवल्य योग—कैवल्य स्थिति को योगशास्त्र में सबसे बड़ा माना गया है । दूसरों का आश्रय छोड़कर पूर्ण रूप से अपने ही आधार पर रहना और प्रत्येक विषय में अपनी शक्ति का अनुभव करना इसका ध्येय है । साधारण स्थिति में मनुष्य अपने सभी सुखों के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है । यह एक प्रकार की पराधीनता है और पराधीनता में दुःख होना आवश्यक है । इसलिए योगी सब दृष्टियों से पूर्ण स्वतन्त्र होने की चेष्टा करते हैं । जो इस आदर्श के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाते हैं वे ही कैवल्य की स्थिति में अथवा मुक्तात्मा समझे जा सकते हैं । पर कुछ अंशों में इसका अभ्यास सब कोई कर सकते हैं और उसके अनुसार स्वाधीनता का सुख भी भोग सकते हैं ।

(२) सुषुप्ति योग—निद्रावस्था में भी मनुष्य एक प्रकार की समाधि का अनुभव कर सकता है । जिस समय निद्रा आने लगती है उस समय यदि पाठक अनुभव करने लगेंगे तो एक वर्ष के अभ्यास से उनको आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान हो जायेगा । सोते समय जैसा विचार करके सोया जायेगा उसका शरीर और मन पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा । जिस व्यक्ति को कोई बीमारी रहती है वह यदि सोने के समय पूर्ण आरोग्य का विचार मन में लायेगा और "मैं बीमार नहीं हूँ ।" ऐसे श्रेष्ठ संकल्प के साथ सोयेगा तो आगामी दिन से बीमारी के दूर होने का अनुभव होने लगेगा । सुषुप्ति योग की एक विधि यह भी है कि निद्रा आने के समय, जिसको जागृति और निद्रा का सन्धि समय कहा जाता है, किसी उत्तम मन्त्र का जप अर्थ का ध्यान रखते हुए करना और वैसे करते-करते ही सो जाना और जब आप जगेंगे तो वह मन्त्र आपको अपने मन में उसी प्रकार खड़ा मिलेगा । जब ऐसा होने लगे तब आप यह समझ लीजिए कि आप रात भर जप करते रहे, यह जप बिस्तर पर सोते-सोते ही करना चाहिए और उस समय अन्य किसी बात का ध्यान मन में नहीं लाना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) स्वप्न योग—स्वप्न मनुष्य को सदा ही प्रायः आया करते हैं, उनमें से कुछ अच्छे होते हैं और कुछ खराब । इसका कारण हमारे शुभ और अशुभ विचार ही होते हैं । इसलिए आप सदैव श्रेष्ठ विचार और कार्य करके तथा सोते समय वैसा ही ध्यान करके उत्तम स्वप्न देख सकते हैं । इसके लिए जैसा आपका उद्देश्य हो वैसा ही विचार भी कर सकते हैं । उदाहरण के लिए यदि आपकी इच्छा ब्रह्मचर्य पालन की हो तो भीष्म पितामह का ध्यान कीजिए, दृढ़ व्रत और सत्य प्रेम होना हो तो श्रीरामचन्द्र की कल्पना कीजिए, बलवान बनने का ध्येय हो तो भीमसेन का अथवा हनुमानजी का स्मरण कीजिए । आप सोते समय जिसकी कल्पना और ध्यान करेंगे स्वप्न में आपको उसी विषय का अनुभव होता रहेगा ।

(४) बुद्धि योग—तर्क-वितर्क से परे और श्रद्धा-भक्ति से युक्त निश्चयात्मक ज्ञान धारक शक्ति का नाम ही बुद्धि है । ऐसी ही बुद्धि की साधना से योग की विलक्षण सिद्धयाँ प्राप्त होती हैं । यद्यपि अपने को आस्तिक मानने से आप परमेश्वर पर भरोसा रखते हैं, पर तर्क-युक्त बात ऐसे योग में काम नहीं देती । अपना अस्तित्व आप जिस प्रकार बिना किसी प्रमाण के मानते हैं, इसी प्रकार बिना किसी प्रमाण का ख्याल किए सर्वमंगलमय परमात्मा पर पूरा विश्वास रखने का प्रयत्न और अभ्यास करना चाहिए । जो लोग बुद्धि योग में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं उनको ऐसी ही तर्क रहित श्रद्धा उत्पन्न करनी चाहिए तभी आपको परमात्मा विषयक सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा ।

(५) चित्त योग—चिन्तन करने वाली शक्ति को चित्त कहते हैं । योग-साधन में जो आपका अभीष्ट है उसकी चिन्ता सदैव करते रहिये अथवा अभ्यास करने के लिए प्रतिमास कोई अच्छा विचार चुन लीजिए । जैसे "मैं आत्मा हूँ और मैं शरीर से भिन्न हूँ ।" इसका सदा ध्यान अथवा चिन्तन करने से आपको धीरे-धीरे अपनी आत्मा और शरीर का भिन्नत्व स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा । इस प्रकार अच्छे कल्याणकारी विचारों का चिन्तन करने से बुरे विचारों का आना सर्वथा बन्द हो जायेगा और आपको अपना जीवन आनन्दपूर्ण जान पड़ने लगेगा ।

(६) इच्छा योग—जिससे मनुष्य किसी बात की प्राप्ति अथवा निवृत्ति की इच्छा करता है उसको इच्छा शक्ति कहते हैं । मनोविज्ञान की दृष्टि से इच्छा शक्ति का प्रभाव अपार है, जिसके द्वारा सब तरह का महान कार्य सिद्ध किया जा सकता है । बुराई से बचने का मुख्य साधन इच्छा शक्ति ही है । आप अपनी प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा रोगों के आक्रमण को रोक सकते हैं । मानसिक प्रेरणा देने से बड़ी-बड़ी बीमारियाँ दूर हो सकती हैं । चरित्र सम्बन्धी सब दोषों को भी इच्छा शक्ति द्वारा दूर किया जा सकता है और उत्तम आचरण ग्रहण किए जा सकते हैं । यह शक्ति प्रत्येक में होती है, प्रश्न केवल उसे बुराई की तरफ से भलाई की तरफ प्रेरित करने का है ।

(७) मानस योग—मन का धर्म अच्छे और बुरे का विचार करना है । मन को एकाग्र करने से उसकी शक्ति बहुत बढ़ सकती है और उसे उन्नति तथा कल्याण के कार्यों में लगाया जा सकता है । इसके लिए अभ्यास द्वारा मन को आज्ञाकारी बनाना चाहिए जिससे वह उन्हीं विचारों में लगे जिनको आप उत्तम समझते हैं ।

(८) अहंकार योग—अहंकार शब्द का अर्थ "घमण्ड" भी होता है पर यहाँ उस अर्थ से हमारा तात्पर्य नहीं है । यहाँ पर इसका भाव अपनी अन्तरात्मा से है । अहंकार योग का उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपने को भौतिक शरीर से भिन्न समझे और आत्मा के अजर, अमर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली आदि गुणों का ध्यान करके उनको ग्रहण करने का प्रयत्न करे । जब मनुष्य के भीतर यह विचार जम जाता है तो वह जिस कार्य का या अनुष्ठान का निश्चय कर लेता है, उसे फिर पूरा करके ही रहता है, क्योंकि उसे यह दृढ़ विश्वास होता है कि मैं शक्तिशाली आत्मा का रूप हूँ जिसके लिए कोई कार्य असम्भव नहीं ।

(९) ज्ञानेन्द्रिय योग—ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच मानी गयी हैं—आँख, कान, नाक, जीभ और चर्म । इनका सम्बन्ध क्रमशः अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल और वायु के साथ होता है । इनमें योग साधन के लिए सबसे प्रमुख इन्द्री आँख को माना गया है । मन की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए आँखों की दृष्टि को किसी एक स्थान या केन्द्र पर जमाना होता है । इससे मन की शक्ति बढ़ जाती है और उसका दूसरों पर विशेष रूप से प्रभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ने लगता है । इसके द्वारा फिर अन्य इन्द्रियों पर भी कल्याणकारी प्रभाव पड़ने लगता है ।

(१०) कर्मेन्द्रियाँ योग—कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं—वाणी, हाथ, पाँव, गुदा और शिस्न । इनमें सबसे अधिक उपयोग वाणी का ही होता है और वह मानव-जीवन के विकास का सबसे बड़ा साधन है । वाणी द्वारा हम जो शब्द उच्चारण करते हैं उनमें बड़ी शक्ति होती है । योग साधन वाले को वाणी से सदैव उत्तम और हितकारी शब्द ही निकालने चाहिए । इस प्रकार का अभ्यास करने से अन्त में आपको वाक्सिद्धि की शक्ति प्राप्त हो सकेगी ।

वास्तव में मनुष्य का समस्त जीवन ही एक प्रकार का योग है । मनुष्य के रूप में आकर जीवात्मा, परमात्मा को पहचान सकता है और उसे प्राप्त कर सकता है । इसलिए हमको अपनी प्रत्येक शक्ति को एक विशेष उद्देश्य और नियम के साथ विकसित करनी चाहिए जिससे वह उन्नत होती चली जाय । अगर मनुष्य इस प्रयत्न में सच्चे मन के बराबर लगा रहेगा तो उसे सब प्रकार की दैवी शक्तियाँ प्राप्त हो जायेंगी और वह परमात्मा के निकट पहुँचता जायेगा ।

योगाभ्यास द्वारा अशुभ कर्मों का नाश

भारतीय अध्यात्म-विद्या के जानकारों ने चार प्रकार के योग माने हैं—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग । मन्त्रयोग में किसी मन्त्र के सहारे चित्त को एकाग्र किया जाता है । किसी मन्त्र का उच्चारण करने तथा उसके अर्थ की भावना करने से साधक का मन संसार के विभिन्न विषयों से खिंचकर एक लक्ष्य की ओर लग जाता है । किसी बाहरी मूर्ति का भी इसमें सहारा लिया जा सकता है । मन्त्रयोग आत्मा की परोक्ष अनुभूति कराने का अन्यतम उपाय है । चेतन सत्ता को अपने से पृथक् मानकर उसकी आराधना की जाती है । मन्त्रयोग, भक्ति का एक रूप है । जब ध्यान करने वाले और ध्येय में अत्यन्त घनिष्ठता हो जाती है तो उनका एक्य हो जाता है । अपने ही स्वरूप को अपने से पृथक् कल्पना करके उस तक पहुँचने की चेष्टा मन्त्रयोग द्वारा की जाती है ।

दूसरा हठयोग है । मन्त्रयोग में आत्मा के स्वरूप की विस्मृति रहती है । हठयोग में व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक अपने आपको बाहरी विषयों और विचारों से अलग करना चाहता है । आत्मा से पृथक् प्रत्येक पदार्थ से विचारों को अलग करने की चेष्टा हठयोग में होती है । जिस-जिस जगह मन जाय, उस-उस स्थान से मन को अलग करते रहने का प्रयास करना हठयोग है । हठयोग के द्वारा आत्मा की सम्बन्ध सत्ता की अनुभूति होती है । क्योंकि जब हम अपनी मनोवृत्तियों का सदा नियन्त्रण करते रहते हैं, तो हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हम वृत्तियों से पृथक् कोई स्वतन्त्र पदार्थ हैं । इस प्रकार का ज्ञान मानसिक झंझटों का अन्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है । पहले-पहले मन जिस विषय से प्रयत्न करने पर भी नहीं हटता, उसी विषय पर से हठयोग का अभ्यास करने से शीघ्रता से हट जाता है ।

मान लीजिए, हमारा मन बार-बार किसी प्रकार की खाने की वस्तु में जाता है, हठयोग के द्वारा मन को उस वस्तु के प्रति उदासीन किया जा सकता है । स्वामी रामतीर्थ को सेब से बड़ा प्रेम था । वे जब सेब को देखते तो उनका मन और सब बातें भूलकर उसी का चिन्तन करने लगता था । इस प्रकार मन के चंचल हो जाने से विचार में विक्षेप हो जाता था । इस कमजोरी को दूर करने के लिए उन्होंने एक सेब खरीदा और उसे अपने पढ़ने की मेज के ऊपर सामने ही रख लिया । वे प्रतिदिन उसकी ओर टकटकी लगाकर देखते थे । इस प्रकार आठ दिन तक उन्होंने उसकी ओर देखा । फिर जब वह सूख गया तो उसे उठाकर फेंक दिया । इस प्रकार उन्होंने एक महीने तक अभ्यास किया और कई सेबों को सड़ाकर फेंका । इसके बाद उनके मन में सेब की बात कभी नहीं आती थी । बार-बार वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने से वे शिथिल हो जाती हैं और मन वश में हो जाता है ।

मनुष्य जिस प्रकार का निर्देश अपने आपको देता है, उसका स्वभाव वैसा ही बन जाता है । उसमें अज्ञात शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं । जब मनुष्य प्रतिदिन यह अभ्यास करता है तो सुन्दर से सुन्दर वस्तु के प्रति आकर्षित नहीं होता । इसका एक उदाहरण 'साइकोलॉजी एण्ड मोरल्स' नामक पुस्तक में दिया गया है । एक व्यक्ति को कोकीन खाने की आदत पड़ गयी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी । वह चाहता था कि मैं इस हानिकारक आदत को छोड़ दूँ पर अनेक प्रयत्न करने पर भी वह नहीं छूटती थी । वह अपने पास कोकीन नहीं रखता था, पर जब कभी कोकीन की दुकान के पास से निकलता तो अनायास वहाँ ठहर जाता और कोकीन खरीद कर खा लेता । इस लत को नष्ट करने के लिए उसे 'मति-निर्देश' का अभ्यास कराया गया । इस अभ्यास में वह व्यक्ति कल्पना में अपने को उस दुकान के पास से निकालता और उसकी कुछ भी परवाह न करता हुआ ध्यान करता था । इस प्रकार के अभ्यास से कुछ समय में उसमें अद्‌भुत परिवर्तन हो गया । अब उस व्यक्ति को उस दुकान के पास से बार-बार निकल जाने पर भी उसकी याद नहीं आती थी और इससे उसका कोकीन का व्यसन छूट गया ।

किसी विचार को मन से भुलाने के लिए किसी भी एक तार होने वाली क्रिया पर ध्यान देना अथवा लययोग का अभ्यास करना उपयोगी होता है । कानों में भीतर से आने वाली ध्वनि पर मन को लगाना, श्वास-प्रश्वास की ध्वनि पर मन को लगाना, ॐ की ध्वनि करना अथवा किसी बाजे की एकाकार ध्वनि में मन को लगा देना आदि विधियों से भी मन शान्त हो जाता है । आत्म-निर्देश भी मन को शान्त अवस्था में ले जाता है । अपने आपको बार-बार यह सुझाने से कि 'मैं शान्त हूँ' मन शान्त हो जाता है ।

राजयोग में आध्यात्मिक विचार की प्रधानता रहती है । जब मनुष्य को अपने स्वरूप का निश्चय हो जाता है, तब उसे प्रसन्न करने वाले नये-नये विचार उत्पन्न होते हैं । तब वह बाहरी विषयों से उत्तेजित होकर विचार नहीं करना, पर भीतर से प्रेरणा होने पर विचार करता है । उसके विचार रचनात्मक होते हैं । जब तक मनुष्य के विचार किसी निश्चय से प्रेरित होकर क्रियमाण नहीं होते, तब तक वे संसार का वास्तविक कल्याण नहीं करते । अपने आपका और संसार का कल्याण करने वाले विचार आत्म-प्रेरणा से तथा निश्चयात्मक मनोवृत्ति से उत्पन्न होते हैं । जब मनुष्य को अपने स्वरूप का निश्चय हो जाता है, तब फिर वह आत्म तत्व को ही सब ओर देखता है और उसे सभी कामों में आत्म-साक्षात्कार होता है—

जहँ-जहँ जाऊँ सोइ परिक्रमा,
जोइ-जोइ करूँ सो पूजा ।
सहज समाधि सदा उर राखूँ,
भाव मिटाऊँ दूजा ॥

राज योग सभी लोगों के लिए सम्भव नहीं होता । जब तक मनुष्य अपने आपको परमात्मा का एक यन्त्रमात्र नहीं मान लेता और सभी प्रकार के कर्म अहंभाव छोड़कर नहीं करता तभी तक उसके कर्म उसके बन्धन के कारण बनते हैं पर जब कोई काम मनुष्य अपने आपको सर्वात्मा का यन्त्रमात्र मानकर करता है, तब उसके कर्म और विचार, पुराने अशुभ कर्मों और विचारों के संस्कारों को नष्ट कर देते हैं । राज योग और आत्मज्ञान की मनोवृत्ति में कोई भेद नहीं है । राजयोगी या ज्ञानी को मन से संघर्ष नहीं करना पड़ता । वह मन को किसी न किसी प्रकार के व्यवसाय से लगाये रहता है । वह व्यवसाय के करने में आनन्द की अनुभूति करता है और व्यवसाय करना ही उसका स्वतः लक्ष्य बन जाता है । जहाँ दूसरे लोग बाहरी फल के लिए लालायित रहते हैं और फल प्राप्त होने पर अपने-आपको भाग्यशाली मानते हैं, आत्म-ज्ञानी बाह्य को नहीं देखता, वह क्रिया के लिए ही क्रिया करता है । इस प्रकार की क्रिया का बाह्य शुभ परिणाम भी होता है, परन्तु इस परिणाम को प्राप्त करना उसके कार्य का उद्देश्य नहीं रहता है । काम करने में जो आनन्द रहता है, उसका वही लक्ष्य रहता है ।

जो ज्ञान मनुष्य को आत्म-निर्देश अथवा अन्तःदर्शन के रूप में प्राप्त हुआ है और जिससे उसे अलौकिक शान्ति प्राप्त हुई है, उसका दूसरे लोगों में वितरण करना भी बड़ा पुनीत कार्य है । इस कार्य से आत्म-साक्षात्कार में सहायता मिलती है । ज्ञान जितना ही अधिक दूसरों को दिया जाता है उतना ही वह बढ़ता है । बार-बार किसी भावना को मन में लाने से यह भावना दृढ़ होती है । वह मनुष्य के चेतन मन से फिर अचेतन मन में चली जाती है और उसके स्वभाव का अंग बन जाती है ।

योगाभ्यास कर्म—संस्कारों का नाशक है । किसी भी भले अथवा बुरे कर्म के फल मनुष्य के मन में रहते हैं । ये हमारे अदृश्य मन में संस्कार रूप में पड़े रहते हैं । ये संस्कार समय आने पर फल देते हैं । हमारी पुरानी अनुभूतियाँ अनेकों प्रकार की वासनाएँ उत्पन्न होती हैं ये वासनाएँ फिर बाह्यजगत में प्रकाशित होती हैं । इन पुराने संस्कारों तथा वासनाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगाभ्यास द्वारा नष्ट किया जा सकता है । कोई भी भावना, प्रतिकूल भावना द्वारा नष्ट हो सकती है । कर्मों की जड़ अज्ञान और बहिर्मुखता में है । जब मनुष्य आत्मज्ञान के लिए यत्न करने लगता है और अन्तर्मुखी होने की चेष्टा करता है, तब उसके अनेक कर्म संस्कार अपने आप नष्ट हो जाते हैं । ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है । थोड़े समय का योगाभ्यास भी अनेक जन्म के अशुभ कर्मों के फल को नष्ट करने में समर्थ होता है ।

योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार

योग विद्या भारतवर्ष का एक अति प्राचीन ज्ञान है । योगशास्त्रों और पुराणों में तो इसके आद्य प्रणेता ब्रह्मा अथवा शंकर को बतलाया गया है, पर इतिहास और अन्य प्रमाणों द्वारा भी यह विदित होता है कि योगाभ्यास की कुछ क्रियाओं का प्रचार वैदिक काल के अन्तर्गत ही हो गया था । इसका मुख्य उद्देश्य आत्मा का आत्मलीन होना है, क्योंकि संसार में जो भौतिक पदार्थ पाये जाते हैं वे सब आत्मा की दृष्टि से विजातीय हैं और इस कारण उन दोनों का उपयुक्त ढंग से मेल नहीं हो सकता है । योग के द्वारा ही हम सृष्टि और ईश्वरीय लीला के तत्वों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और उसके द्वारा चित्त को एकाग्र कर ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर सकते हैं । यही अवस्था संसार में सर्वोपरि है और जीव का अन्तिम उद्देश्य भी यही है । जिस व्यक्ति ने योगाभ्यास द्वारा आत्म-साक्षात्कार कर लिया है तो फिर उसे सांसारिक ईति गीति का कोई भय नहीं रहता और न वह कभी पतन के गर्त में गिर सकता है ।

योगाभ्यास का सर्वप्रधान सिद्धान्त चित्त अथवा मन की पूर्ण एकाग्रता है । यही कारण है कि 'योगदर्शन' में सबसे पहले सूत्र में यही बतलाया गया है कि "चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है ।" योगविद्या के सर्वप्रधान व्याख्याता महर्षि पांतजलि ने तो विभूतियों को,. न सिद्धियों को और न चमत्कारों को योग का प्रधान अंग बतलाया है वरन् चित्तवृत्तियों को सब तरफ से खींचकर किसी भी विषय पर एकाग्र कर सकने की शक्ति को ही समस्त आध्यात्मिक उन्नति का मूल मन्त्र मानकर उसी को सिद्ध करने का उपदेश लोगों को दिया । अन्य शास्त्रों ने भी ऐसी सम्मति प्रकट की है । "कठोपनिषद" में कहा गया है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नास्माहितः ।
नशान्तमानसोवापि प्रज्ञाने नैनमाप्नुयात् ॥

अर्थात् "जो व्यक्ति पाप से छूट नहीं पाया है, जो इन्द्रियों के वशीभूत है और जो असमाहित अर्थात् चंचल चित्तवाला है, वह कभी आत्म-साक्षात्कार नहीं पा सकता है ।"

एक अन्य स्थान में इसी विषय का वर्णन यों किया गया है—

यदा पञ्चायतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहु परमां गतिम् ॥
तां योगमिति गन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम् ।
अप्रमतस्तदा भजति योगोहि प्रभयाप्ययौ ॥

अर्थात् "जब मनुष्य की पाँचों इन्द्रियाँ मन के वश में रहती हैं और बुद्धि की चंचलता मिट जाती है, तो इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि की उसी स्थिर अवस्था को आत्मज्ञान प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग मानते हैं और ऐसी ही इन्द्रियों की स्थिरता को वे योग के नाम से पुकारते हैं ।"

पर चित्त का स्थिर करना सहज कार्य नहीं है । साधारण मनुष्यों की क्या बात, बड़े-बड़े सन्त, महात्मा, विद्वान् बुद्धिमान भी समय-समय पर मनोवेग की शक्ति के सामने परास्त हो जाते हैं और अकर्म समझते हुए भी कितने ही कार्यों को कर डालते हैं । पौराणिक कथानकों से विदित होता है कि विश्वामित्र, पाराशर जैसे सर्वोच्च श्रेणी के ऋषि भी प्रलोभनों के सामने मन और बुद्धि को स्थिर न रख सके और पतन के गर्त में गिर गए । रावण जैसा विद्वान और विश्वविजेता भी एक नारी के कारण मतिभ्रष्ट हो गया और अपने साम्राज्य के नाश का कारण बन बैठा । इसलिए योगाभ्यास में इस बात पर बहुत अधिक जोर दिया गया है कि उसका साधन करते समय मन में किसी प्रकार का प्रमाद अथवा भोग लिप्सा उत्पन्न न हो जाय । इस सम्बन्ध में योगाचार्यों का मत है कि चित्तवृत्ति का प्रवाह दो कारणों से होता है—एक वासना अर्थात् भावनामय संस्कार और दूसरा शरीर के भीतर के प्राणों का प्रवाह । प्राण के स्पन्दन से मन में भी स्पन्दन उत्पन्न होता है, इसलिए योगियों ने प्राण की गति को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियमित और वशीभूत करने की विभिन्न विधियाँ निकाली हैं । हठयोग, राजयोग, ध्यानयोग, जप योग, जय योग, भक्तियोग आदि योग की शाखाओं का आविष्कार इसी कारण हुआ है । इन साधन विधियों में बहुत अन्तर दिखलायी पड़ता है, पर प्राण प्रवाह पर नियन्त्रण प्राप्त करने का उद्देश्य सब में पाया जाता है । यह बात योगशास्त्र में ही नहीं बतलायी गयी है भगवान मनु ने भी अपनी स्मृति में लिखा है—

दह्यन्ते ध्मायमाननां धातूनां हि यथा भला ।
तथान्द्रियाणा दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहोत् ॥

अर्थात् "जिस प्रकार धातुओं के मैल आग में तपाकर जला दिये जाते हैं उसी प्रकार इन्द्रियों के सब प्रकार के विकार प्राण वायु के निग्रह द्वारा नष्ट किए जाते हैं ।"

प्राण-निरोध का एक अन्य उद्देश्य हमारे शरीर यन्त्र पर नियन्त्रण प्राप्त करना भी होता है । यद्यपि उच्चकोटि के योगी शरीर को आत्मा से पृथक् समझ कर उसके सुख-दुःख को कोई महत्त्व नहीं देते, पर साधारण श्रेणी के साधकों के शरीर में यदि कोई विशेष दुःख या कष्ट हो तो उनका ध्यान अवश्य उस ओर चला जाता है और चित्त की एकाग्रता में बाधा पड़ जाती है । प्राण-वायु पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेने पर प्राण को इच्छानुसार देह के किसी भाग में संचालित किया जा सकता है और उसके द्वारा किसी भी विकार को दूर करना सम्भव होता है । इस प्रकार अपने शरीर को क्लेशरहित बनाकर योगीजन चित्त को एकाग्र करने में समर्थ होते हैं ।

शारीरिक क्लेशों से भी बढ़कर चित्त की चंचलता का कारण सांसारिक वासनाएँ हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार सभी मनुष्यों के मन में पाये जाते हैं और इनके कारण साधन करते समय भी चित्तवृत्ति में चंचलता उत्पन्न हो जाती है । मनुष्य परमात्मा का ध्यान करना चाहता है, पर उसका मन बार-बार सांसारिक विषयों की ओर खिंच जाता है । इसीलिए योगशास्त्र में सर्वप्रथम यम नियम का विधान किया गया है । अर्थात् जो मनुष्य योगाभ्यास द्वारा आत्म-साक्षात्कार का अभिलाषी है उसे सबसे पहले विभिन्न क्रियाओं और अभ्यासों द्वारा अपने शरीर तथा मन की शुद्धि कर लेनी चाहिए । योगी के लिए ब्रह्मचर्य, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह का अभ्यास करना, अनिवार्य बतलाया गया है । जब मनुष्य इन व्रतों को ग्रहण कर लेता है तो स्वभावतः उसका ध्यान सांसारिक विषयों की तरफ से हटकर अध्यात्मिक विषयों की ओर आकर्षित होने लगता है । फिर प्राण पर नियन्त्रण हो जाने से मन की लगाम हाथ में आ जाती है और सांसारिक बातों में इधर-उधर भटकते मन को सहज ही वहाँ से खींचकर आत्म-चिन्तन में लगाया जा सकता है । इसी विचार से 'योग-वशिष्ठ' में कहा गया है—

दुःसहा राम संसारविपवेग विषूचिका ।
योग गारूड़ मन्त्रेण पावने नोय शाम्यति ॥

अर्थात् "जिस प्रकार गारुड़ मन्त्र का ज्ञाता विष को दूर कर देता है उसी प्रकार सांसारिक विषयों के विष का शमन योगाभ्यास द्वारा ही किया जा सकता है ।"

इसमें सन्देह नहीं कि योग द्वारा तरह-तरह की अलौकिक शक्तियाँ, विभूतियाँ तथा सिद्धियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं और होती हैं, पर उनकी ओर ध्यान देना या उनका विशेष महत्त्व समझना भूल है । जो व्यक्ति योग द्वारा कोई चमत्कारिणी शक्ति प्राप्त करके सांसारिक स्वार्थों को सिद्ध करना चाहते हैं ये वास्तव में बड़े मूर्ख और अधम श्रेणी के व्यक्ति हैं । योग विद्या का एकमात्र उद्देश्य चित्त को सांसारिक और मानसिक विषयों से हटाकर आत्मोन्नति में लगाना है जिससे मनुष्य को सच्चे सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है । इसके विपरीत जो योग से प्राप्त होने वाली शक्ति को सांसारिक विषयों में लिप्त होने का साधन बनाना चाहते हैं उनको मूर्ख और अधम न कहा जाय तो और क्या कहा जाय ? ऐसे व्यक्ति योगी कहलाने के बजाय योग-भ्रष्ट कहलाते हैं और उनको किसी प्रकार का लाभ होने के बजाय उल्टे नरकगामी बनना पड़ता है । इसलिए हमको भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि योग का वास्तविक उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार ही है, जिससे मनुष्य स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ का जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सकता है ।

योग साधना के दो रथ चक्र

योगाभ्यासों को दो भागों में विभाजित किया गया है—एक ध्यानयोग । दूसरा क्रिया योग । ध्यानयोग वर्ग में अभ्यास आते हैं जिनमें अन्तर्मुखी होकर अन्तःक्षेत्र में गुहा प्रवेश किया जाता है और गहराई में उतरकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुद्र तली में छिपे मणि-मुक्तक ढूँढ़ने जैसा प्रयत्न किया जाता है । इस प्रक्रिया को खदानें खोदने और बहुमूल्य खनिज निकालने की भी उपमा दी जा सकती है । चिन्तन का बिखराव होते रहने पर उसकी सामर्थ्य का पता नहीं चल पाता, पर जब उसे एकाग्र कर लिया जाता है तो बन्दूक की नली से बारूद दागने और गोली के निशाना वेधने जैसी परिणति हाथ लगती है । केन्द्रीभूत चिन्तन कितना सशक्त होता है इसे मैस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म आदि प्रयोगों के रूप में प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है । उसके परोक्ष परिणाम तो और भी अधिक आश्चर्यजनक पाये गए हैं ।

क्रिया योग वह है जिसमें शरीरगत चेष्टाओं की सहायता से मन के निरोध का अभ्यास किया जाता है । काम करते समय उसमें लगे श्रम मनोयोग के सहारे उद्देश्य पर भी ध्यान जमता है और उस जमाव की छाप से मनःक्षेत्र प्रभावित होता है विचार और कर्म के समन्वय से संस्कार बनने के तथ्य को मनःशास्त्र के विद्यार्थी भी जानते हैं । मात्र चिन्तन से भी स्व-सम्मोहन और स्व-सम्वेदन, अनुशासन, स्व-निर्देशन सम्भव तो है पर इसके लिए मनःशक्ति की प्रखरता अर्जित करनी होती है, अन्यथा कल्पना की उड़ानें उड़ने भर से बात बनती नहीं । अपने आपको दबोचने-घसीटने के लिए संकल्प शक्ति चाहिए । इसके अर्जित करने पर भी ध्यान द्वारा उपलब्ध हो सकने वाली सफलताओं का द्वार खुलता है । इसलिए ध्यानयोग को उच्चस्तरीय साधना माना गया है । इससे पहले की बाल-कक्षा क्रियायोग के रूप में ही सम्पन्न करनी पड़ती है ।

क्रिया योग के सरल साधनों में तीर्थयात्रा, परिक्रमा, आसन, प्राणायाम, जप, हवन, पूजा, अर्ता, दान-पुण्य, व्रत, उपवास आदि की गणना होती है । उच्च उद्देश्यों के निमित्त अपनायी गयी शारीरिक हलचलों को क्रिया योग कहा गया है । श्रम नियोजन के पीछे उच्च उद्देश्यों का समावेश रहे तो फिर उस मानसिक एकीकरण का प्रतिफल संकल्प शक्ति विकसित होने के रूप में हस्तगत होता है । इस बढ़े हुए मनोबल का उपयोग ध्यानयोग की परिधि में आने वाली साधनाओं को निमित्त किया जा सकता है ।

कुछ साधनाएँ ऐसी हैं जिसमें क्रिया परक साधनाओं के साथ-साथ अपेक्षाकृत अधिक मनोयोग लगाना होता है । तीर्थयात्रा, व्रत, उपवास में शरीर को अधिक और मन को कम काम करना होता है । किन्तु कुछ योगाभ्यासों में झूलने भर से काम नहीं चलता उनमें मात्र कृत्यों की ही प्रधानता नहीं है, साथ ही अधिक मनोयोग लगाने की भी आवश्यकता पड़ती है । बँध और मुद्राओं का स्वरूप ऐसा ही है । खेचरी मुद्रा में यदि तालु से जीभ भर सटा ली जाय और ब्रह्मरन्ध्र से अमृत टपकने के रसास्वादन पर मनोयोग केन्द्रित न हो सके तो समझना चाहिए कि प्रयास अधूरा रहा और श्रम निरर्थक चला गया । सोऽहम् साधना के सम्बन्ध में भी यही बात है उसमें श्वासोच्छवास के सन्तुलित रखने के साथ-साथ महाप्राण के परब्रह्म स्वरूप प्रवेश की भावभरी अनुभूति भी होनी चाहिए, साथ ही अहंता के निष्कासन का भी श्वास के बहिर्गमन के साथ-साथ सघन विश्वास जुड़ना चाहिए । क्रिया की सार्थकता इससे कम में बनती नहीं ।

विशुद्ध ध्यानयोग में शारीरिक हलचलों का उपयोग नहीं के बराबर ही करना पड़ता है । इसमें अधिकांश प्रयास भावना स्तर का ही होता है । एकाग्रता और संकल्प के समन्वय से प्रचण्ड आत्म-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है और उसका प्रहार अन्तराल के प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों पर करते हुए उन्हें जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है । षट्चक्रवेधन और कुण्डलिनी जागरण की साधना इसी आधार पर सम्पन्न होती है ।

मन्त्र जप के साथ इष्ट का ध्यान आवश्यक है । मात्र शब्दों को रटने दुहराने भर से काम नहीं चलता । यह कार्य तो तोता भी कर सकता है और टेप रिकार्डर द्वारा भी किन्हीं शब्दों की पुनरावृत्ति कराई जा सकती है । इतने भर से मन्त्र फल उत्पन्न हो सकना सम्भव नहीं । जप के समय मन जहाँ-तहाँ भागता रहे तो एकाग्रता नहीं सधेगी । भावना का समन्वय न हो तो श्रद्धा कैसे जागेगी । ज्वाला जलने, लपटें उठने के लिए आग-ईंधन और हवा तीनों ही चाहिए । इनमें से एक तो हो पर दूसरे दो न हों तो उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । इसी प्रकार मन्त्रोच्चार में इष्ट की छवि पर कल्पना जुड़नी चाहिए और साथ ही उसके साथ स्नेह समर्पण तथा श्रद्धा का भी गहरा पुट रहना चाहिए । भावना, विचारणा के साथ-साथ जप प्रक्रिया का समन्वय सधे तो समझना चाहिए कि कृत्य समग्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ और उसके उपयुक्त प्रतिफल की सम्भावना बनी । मन्त्र की शब्द रचना और उच्चारण प्रक्रिया का अपना महत्त्व है तो भी उसके साथ ध्यान और श्रद्धा का समन्वय आवश्यक है । अधूरी चिन्ह पूजा करने वाले प्रायः असफलता की शिकायत करते पाये जाते हैं ।

इसके विपरीत हानि में आवश्यक पवित्रता एवं सतर्कता बरतने भर से काम चल जाता है । प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के सही होने—विधि विधान की सतर्कता एवं समग्रता रहने से वैसा वातावरण बनने लगता है जिसके सहारे अग्निहोत्र के सम्बन्ध में वर्णित महात्म्य को प्रत्यक्ष किया जा सके । यों प्रसंग के अनुरूप भावना का होना तो प्रत्येक धर्म, कृत्य एवं साधना विधान में आवश्यक है पर क्रियायोग प्रधान प्रसंगों में उनकी मात्रा कम होने पर भी काम चल जाता है ।

भावना प्रधान लोगों के लिए भक्तियोग, बुद्धिवादियों के लिए ज्ञानयोग और पुरुषार्थ परायणों के लिए कर्मयोग रुचिकर भी होता है और सरल भी पड़ता है । आत्मीयता, घनिष्ठता, एकात्मता को रस कहा गया है । दाम्पत्य-जीवन में इसी आधार पर 'दो शरीर एक आत्मा' की उक्ति चरितार्थ होती है । मित्र मित्रों पर जान निछावर करते हैं । माता और बच्चे के बीच कुलकन इसी कारण छाई रहती है । परमात्म सत्ता के साथ दीप-पतंग जैसा, नदी-नाले जैसी, सिन्दु-बिन्दु जैसी, दूध-चीनी जैसी एकात्मता स्थापित करने की भाव सम्वेदना में भक्त जा खोता है उससे अधिक पाता है । ईंधन का समर्पण उसे अग्निवत् बना देता है, भक्त भी अपनी अहंता को विराट् की महानता में घुलाकर अपने को तत्सम अनुभव करता है ।

ज्ञानी को दूरदृष्टि और दिव्यदृष्टि प्राप्ति होती है । दूरदर्शिता के आधार पर वह इस जीवन से पूर्व वाले भूत और पश्चात वाले भविष्य को देखता है । दोनों के मध्य सुखद संगति बिठाने वाले वर्तमान का निर्धारण करता है । दिव्य दृष्टि मिलने पर ज्ञानी को कलेवर की कठपुतली को नचाने वाली आत्मा दीखती है जबकि सामान्य जनों को मात्र काया की ही प्रतीति और प्रीति रहती है । ज्ञानी दृष्टा होता है उसे भव-बन्धनों से मुक्ति मिलती है और इसी विश्व उद्यान में परिभ्रमण करते हुए तृप्ति, तृष्टि और शान्ति का रसास्वादन करने की स्वर्ग सम्पदा हस्तगत होती है ।

कर्मयोगी का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार कर्तव्य पालन के आधार पर विनिर्मित होता है । वह सामाजिक उत्तरदायित्व को पहचानता और मर्यादा का अनुशासन पालते हुए उदारता की रीति-नीति अपनाता है । गरिमा का बोझ रहने से वह भटकता नहीं । शालीनता के राज मार्ग पर बिना भटके ठहरे अनवरत गति से चलता रहता है । ये सभी साधनापरक योगाभ्यास हैं । इन योगों को ज्ञान और कर्म दो भागों में भी बाँटा जा सकता है । ध्यानयोग से व्यक्तित्व का परिष्कार बन पड़ता है । क्रियायोग से जीवन प्रवाह ऐसे प्रयासों के साथ जुड़ता है जिनमें आत्मकल्याण और लोक-मंगल के दोनों ही लक्ष्य समान रूप से सध सकें । ध्यानपूर्वक सतर्कता के साथ जीवन चर्या की क्रिया-प्रक्रिया अपनाने पर कोई भी व्यक्ति योगी बन सकता है ।

क्रियायोग के चार विधान

कायिक और मानसिक, बहिरंग और अन्तरंग के अतिरिक्त योग त्रिवेणी की तीसरी धारा है—क्रिया योग । इसमें शरीर और मन के अतिरिक्त ऐसा ही कुछ करना पड़ता है जो रहस्यमयी अतिरिक्त शक्तियों को प्रसुप्त से जागृति की स्थिति में ला सके । अतीन्द्रिय क्षमताओं को सशक्त एवं सक्रिय कर सके । इसी को क्रियायोग कहते हैं । इसके भी चार चरण हैं—अर्चना, जप, ध्यान और प्राणायाम ।

अर्चना प्रतीक की स्थापना और उपचार पदार्थों से उसका पूजन बन्धन है । प्रतीक रूप में इष्ट की कोई प्रतिमा बनानी पड़ती है । मुसलमान काबा में रखे 'संगे असवद' का बोसा लेते हैं । विभिन्न देशों के अपने-अपने झण्डे होते हैं और उन्हें देशभक्ति की भावना से फहराया और नमन किया जाता है । लेनिनग्राड में लेनिन के मृत शरीर को प्रतिष्ठापित किया गया है और विश्व भर के कम्युनिस्ट उसकी झाँकी करने पहुँचते हैं । यह उनकी मनःस्थिति है जिनका ईश्वर से कोई सीधा वास्ता नहीं । प्रतीक पूजा में एकलव्य के मृतिका विनिर्मित द्रोणाचार्य और मीरा के पाषाण रूप में गिरधर गोपाल की चर्चा होती है, जिन्हें श्रद्धा का दृश्यमान केन्द्र के रूप में गढ़ा गया था और उनके सहारे भावनाओं के उभार में समुचित सहयोग लिया गया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्यजनों को भी कोई न कोई यज्ञ प्रतीक बनाना होता है । निराकारवादी भी प्रकाश ज्योति—किसी ग्रन्थ या शरीरधारी गुरु को माध्यम बनाते हैं और उसके सम्मुख नमन-वन्दन ही नहीं, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि से अर्चन करते हैं । स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का यह सरल मार्ग है । उनके लिए भी यह उपयुक्त है जो इन्द्रिय प्रधान हैं जिनमें तत्वज्ञान की भूमिका का अभी उत्थान नहीं हुआ है । यह साकार पूजा है । मन्दिरों की संरचना और मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा इसी बहुसंख्यक बाल वर्ग के निमित्त हुई है । तत्वज्ञानी होने पर भी इसे अपनाये रहना आवश्यक है । क्योंकि उनके अनुकरण से अन्य अनेकों को भी उपासना का अवसर मिलता है और इससे श्रद्धा न सही मान्यता का भाव तो जगता ही है । परिवार में छोटे-बड़े वर्ग के विभिन्न लोग रहने से—उन्हें इस प्रतिमा पूजा माध्यम से नमन-वन्दन का अवसर मिलता है जो प्रकारान्तर से किसी न किसी रूप में आस्तिक भावनाओं के पोषण में सहायक सिद्ध ही होता है ।

इसके अतिरिक्त दूसरा चरण है—ध्यान । ध्यान अन्तरंग में कोई प्रतिमा स्थापित करके उसके साथ घनिष्ठता—तन्मयता स्थापित करने को कहते हैं । साकार वादी किसी प्रतिमा, देवालय, नदी, सरोवर, बर्तन, दीपक सूर्य आदि का जो रुचिकर लगता हो उसका ध्यान कर सकते हैं । इसमें आँखें बन्द रखनी पड़ती हैं और कमर सीधी । सुखासन या कमलासन पर स्थित । हाथ गोदी में । यह ध्यान मुद्रा है । इसे अपनाते हुए इष्टदेव का ध्यान किया जाता है और उसके साथ तद्रूप होने की भावना परिपक्व की जाती है । दीप पतंग की तरह । यह द्वैत को मिलाकर अद्वैत स्थिति में पहुँचने की साधना है—समर्पण की ।

गायत्री के साकार उपासकों को कहा जाता है कि वे छोटे बालक की तरह माता के अंचल तले बैठें और स्तनपान जैसा आनन्द लें । निराकारवादियों को कहा जाता है कि वे प्रातःकाल के उदीयमान सूर्य सविता का ध्यान करें और इस अनुभूति को परिपक्व होने दें कि उनके बालवत् नग्न शरीर पर सविता की किरणें आच्छादित एवं प्रविष्ट होती चली जाती हैं । स्थूल शरीर में बल, सूक्ष्म शरीर में ज्ञान और कारण शरीर में दिव्य भाव के रूप में अपनी जड़ें गहरी जमाती चली हैं । इस प्रकार की कल्पना ही नहीं साथ ही भावना भी करनी चाहिए । कल्पना में किसी दृश्य का आभास भर दिव्य चक्षुओं से होता है, किन्तु भावना में उस प्रकार की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है । अपने आप को विश्वास ही नहीं अनुभव भी वैसा होता है, यह अनुभव जितना-जितना सघन होता जाता है, उसी अनुपात से वह चेतना का अंग बताया जाता है और अनुभव होता है कि वस्तुतः वैसा होने लगता है । आदित्य की ऊष्मा और आभा अपने व्यक्तित्व को तपाने लगी और अपनी स्थिति एक सीमित सूर्य जैसी हो गयी । अन्य सम्प्रदायों में अन्य प्रकार के ध्यान भी बताये गए हैं, पर उन सबका आधारभूत सिद्धान्त वही है जो ऊपर बताया गया है ।

जप क्रियायोग का तीसरा चरण है जो ध्यान के साथ ही चलता है । ध्यान और जप को विलग कर दिया जाय तो शरीर और मन में से एक को काम मिलेगा और दूसरा छुट्टल रहने से अनगढ़ क्रिया करने लगेगा । मात्र ध्यान हो तो शरीर को जहाँ-तहाँ खुजाने या कुछ हरकत करने की इच्छा होगी । यदि एकाकी जप हो तो मन छुट्टल रहेगा और वह आकाश-पाताल की कल्पनाएँ करने की घुड़दौड़ लगाने लगेगा अस्तु दोनों का समन्वय ही अभीष्ट है ।

जप में गायत्री या अन्य मन्त्र का बार-बार रटन करने से उसकी स्थिति जिह्वा तक सीमित न रहकर अचेतन मन में उतर जाती है और उस मन्त्र के अर्थ एवं भाव के अनुरूप अपनी चेतना ढलने लगती है ।

क्रियायोग का चौथा चरण है—प्राणायाम । प्राण को प्राण विद्युत कहा गया है । वह चेतन भी है और सर्वव्यापी भी । प्राणायाम विधि से न केवल समुचित मात्रा में साँस भीतर पहुँचती है और फेफड़ों को परिपक्व करती है, वरन् उसका मूल तत्व है कि साधक के संकल्प से विश्वव्यापी महाप्राण की एक बड़ी मात्रा खींची जाती है और वह शरीर के कण-कण में समाविष्ट होती है ।

भौतिक विद्युत का आवेश जहाँ भी समाविष्ट होता है वहाँ हलचल हरकत प्रारम्भ हो जाती है । प्राण विद्युत से झटका मारने और अनिष्ट करने जैसा कोई जोखिम नहीं है, पर वह संकल्पपूर्वक खींचे जाने और भीतरी अंग-प्रत्यंगों द्वारा अवशोषित किए जाने पर वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक उत्साह भरा उभार प्रकट करती है । अंगों की निर्बलता निष्क्रियता दूर होती है और नई चेतना का संचार नये सिरे से होता है । यह बैटरी चार्ज करने के समान है । शक्ति समाप्त होने पर बैटरी एक प्रकार से समाप्त हो जाती है और नाममात्र का प्रभाव परिचय देती है, पर जब उसे चार्जर के साथ जोड़कर नये सिरे से शक्ति सम्पन्न कर दिया जाता है तो वह नई के समान कार्य करने लगती है । प्राणायाम थकान मिटाने का अनौखा तरीका है उससे न केवल शरीर के अवयव सक्षम होते हैं, वरन् यह भी होता है कि मनःक्षेत्र में प्रतिभा, प्रज्ञा और मेधा का उदय हो और उस क्षेत्र की प्रसुप्त शक्तियाँ जागृत होकर सिद्ध पुरुषों जैसी अतीन्द्रिय क्षमताओं का चमत्कारी परिचय दें ।

.प्राण का निरोध दीर्घ जीवन का अमोघ उपाय है । प्राण धीमा पड़ने पर दुर्बलता आ घेरती है और उसके निकल जाने पर मृत्यु निश्चित है । किन्तु यदि प्राण निरोध विज्ञान का अभ्यास किया जा सके तो मरण को चिरकाल तक आगे धकेला जा सकता है । प्राणायाम की गति तीव्र कर देने से शरीर में ऊर्जा की मात्रा बढ़ जाती है और उसके सहारे शीत ऋतु में भी कम वस्त्रों में अथवा बिना वस्त्रों के भी रहा जा सकता है ।

प्राणायाम की एक उच्चस्तरीय विधि है—सोऽहम् साधना । इसमें नादयोग का समावेश हो जाता है । साँस खींचते समय सो और निकालते समय 'हम्' की ध्वनि होती है इसका श्रवण कर्णेन्द्रिय की सूक्ष्म तन्मात्रा के सहारे ही होता है । इस शब्द विन्यास में जब मन लगने लगता है तो न केवल मन की एकाग्रता प्रगाढ़ होती है, वरन् आत्मा और परमात्मा के मिलन की सरस अनुभूति भी होने लगती है । 'सोऽहम्' साधना को 'हंसयोग' भी कहा गया है । चौबीस अवतारों में एक हंसावतार भी है । पक्षियों में सबसे पवित्र और उत्कृष्ट हंस माना जाता है । हंसयोग की साधना में सोऽहम् प्राणायाम से जीवात्मा में वे सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं जो हंस में पायी जाती हैं । नीर, क्षीर विवेक के कारण—सरोवर में से मुक्ता ढूँढ़ निकालने के कारण हंस की प्रशंसा है । ऐसी ही विभूतियों कों उपलब्ध करने में सोऽहम् साधना की प्राणायाम भी मदद करता है ।

बहिरंग योग की सरल साधनाएँ

साधना का प्रथम चरण है—शरीर का संशोधन । इसमें आहार और विहार में पिछले अभ्यासों को छोड़कर नवीन अवधारणाएँ कार्यान्वित करनी होती हैं । आहार के सम्बन्ध में हमारे अभ्यास स्वाद प्रधान होते हैं और ठूँस-ठूँसकर खाने को भी यह दोनों ही व्यवहार आहार को तामसिक बना देते हैं । स्वाद वही उपयुक्त हैं जो पदार्थ में प्रकृति समाविष्ट होते हैं । फलों के अपने-अपने शाक हैं । कच्चे खाये जा सकने योग्य शाकों के भी अपने भिन्न रस हैं । उन्हीं की भिन्नता में रस लेना चाहिए और प्रसन्न रहना चाहिए । अन्नों को—शाकों को उबाल लेने पर उनकी कठोरता या अस्वादिष्टता मिट जाती है । उबले शाक प्रायः एक जैसे स्वाद के होते हैं । उबले अन्नों में दाल, चावल, दलिया, खिचड़ी आदि का अपना स्वाद होता है । यह सभी सुपाच्य भी होते हैं । कठिनाई उत्पन्न होती है तलने भूनने में—चिकनाई का समावेश करने से यह शक्कर एवं नमक मसालों की ऊपर से भरमार करने से यह तामसिक स्वाद एक प्रकार से नशेबाजी की तरह आदत के अंग बन जाते हैं । इस लोलुपता में आहार की उचित मात्रा का ध्यान नहीं रहता और पेट की पाचन क्षमता से कहीं अधिक खा लिया जाता है । यह व्यतिक्रम आलस्य और प्रमाद पैदा करते हैं, साथ ही मन में उत्तेजना और चंचलता भी । रोगों की जड़ यहीं से जमती है । यदि आधे पेट खाने—आधे में हवा पानी के लिए गुंजाइश छोड़ने का नियम अपनाया जा सके तो समझना चाहिए कि समान्य स्वास्थ्य में अभिवृद्धि होगी और रोगी शरीर में सुधार का सिलसिला तत्काल करना पड़ेगा । स्वल्पाहारी योगी होते हैं । इसके लिए सर्वप्रथम अस्वाद व्रत पालन करना पड़ता है । संयमों में सर्वप्रथम स्वाद जप है । इसका तात्पर्य है प्राकृतिक रूप में पदार्थों का जो स्वरूप है उसी में सन्तुष्ट रहना । ऊपर से चिकनाई या मसालों का समावेश नहीं होने देना । जो अन्न या आलू जैसे कठोर प्रकृति के हैं उन्हें उबाल लेना । स्वाद की उपेक्षा करते ही आहार की अनावश्यक मात्रा घट जाती है और उतना ही उदरस्थ करने का अभ्यास बन पड़ता है जो पाचन की मर्यादा के अन्तर्गत है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विहार में शयन—जागरण एवं विश्राम के घण्टों का निर्धारण है । आत्मानुशासन का यह दूसरा चरण है । समय का एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाया जाय । श्रम, विश्राम, टहलने, स्वाध्याय, सत्संग जैसे अनावश्यक कार्यों में अपने समय को इस प्रकार बाँध लेना चाहिए कि उसमें आलस्य प्रमाद के प्रवेश की कहीं कोई गुँजाइश न रह पाये । मन-मर्जी की दिनचर्या चलने देने में प्रकारान्तर से आवारागर्दी अपनाना है । ऐसी उच्छृंखलता लगती अच्छी है पर समय सम्पदा का ऐसा अनावश्यक अतिक्रमण होता है जिसमें कोई महत्त्वपूर्ण कार्य हाथ में लेकर पूरा करने की बात बन ही नहीं पड़ती । भौतिक या आत्मिक स्तर के जो भी कार्य किए जाते हैं सभी आधे-अधूरे लँगड़े—काने-कुबड़े रह जाते हैं । उनके कारण असन्तोष उपजता है, अपयश मिलता है और कौशल का स्तर गिरता चला जाता है ।

विहार में स्वच्छता और सादगी का भी समावेश है । वस्त्र, उपकरण जिन्हें भी काम में लाया जाय वे भड़कीले, महँगे न हों । हर वस्तु को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखा जाय । सादगी सज्जनता और शीलता की साक्षी देती है । स्वच्छ, स्वच्छता, सुरुचि, सुसंस्कारिता और व्यवस्थित बुद्धि की यह मानसिक जागरूकता का चिन्ह है कि वस्तुओं को साफ-सुथरी रखा जाय और उन्हें सम्भाल सुधार कर इस प्रकार रखा जाय कि वे सुन्दर प्रतीत हों । व्यवस्था पूर्वक कूड़ा भी कूड़ेदान में ढककर रखा जाय तो कुरूप, नहीं लगता है और बहुमूल्य पात्रों, उपकरणों, वस्त्रों पुस्तकों को भी बेतरतीब बखेर दिया जाय तो वे कूड़ा प्रतीत होती हैं । हर आँगन, दीवार, फर्नीचर यदि सँभाला जाता रहे तो यह सब भी सुन्दर चेहरे की तरह आकर्षक लगते हैं । साधना का यह तीसरा प्रसंग है जिसमें मनोयोग का भी समावेश है । यों इसकी गणना विहार में भी हो सकती है ।

सुव्यवस्था समय सम्पदा का सुनियोजन करने के साथ मितव्ययता पर भी आधारित है । हम उतना खर्च करें जितना जीवन धारण करने के लिए नितान्त आवश्यक है । कोई व्यक्ति अधिक कमाता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसे अनावश्यक खर्च करने की छूट मिल गयी । समूचा मानव समुदाय एक परिवार है । इसमें समर्थ और असमर्थ सभी मिल-जुलकर रहते हैं । कमाने वाले ही सब कुछ खर्च नहीं कर डालते, वरन् मिल-जुलकर खाते और एक जैसी सुविधा का लाभ उठाते हैं । कमाऊ अधिक खर्चें और जो असमर्थ हैं वे मुँह-जोहें, तरसें तो यह अनीति किसी सहृदय के लिए अपनाने योग्य नहीं है । हमें औसत भारतीय स्तर का गुजारा करना चाहिए जो अदक्षता अथवा परिस्थिति के कारण गयी-गुजरी स्थिति में दिन गुजारते हैं । यदि उन्हें सहारा मिल सके तो निश्चय ही ऊँचे उठने और आगे बढ़ने की स्थिति अपनाने के लिए गतिशील हो सकते हैं । नैतिक जीवन—आध्यात्मिक जीवन की यह भी एक अनिवार्य शर्त है । शान-शौकत में अनावश्यक अपव्यय करने पर हम आध्यात्मवादी जीवन नहीं जी सकते । इस अनाचार से प्रत्यक्ष ही अहंकार बढ़ता है और अनेकों का ईर्ष्याभाजन बनना पड़ता है । वैभव एवं प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं हम मात्र सज्जनता और सदाशयता को अपनाये रहकर ही श्रद्धा एवं प्रशंसा के पात्र बन सकते हैं ।

व्यावहारिक जीवन में अध्यात्मवादी बनने की बौद्धिक प्रक्रिया यह है कि हम दूरदर्शी विवेकशील बनें । अपने चारों और भले-बुरे का मिश्रित पुद्गल भरा पड़ा है । इसमें से कुछ भी ऐसा नहीं जिसे यथावत् अपनाया जा सके । यहाँ कीचड़ में कमल खिलते हैं और सुरम्य पौधे पर विष वृक्ष फलते हैं । सुन्दरता के पीछे कुरूपता झांकती है और कुरूपता के अन्तराल में सुन्दरता भरी होती है । अनाज को छाँटा, फटका, छाना न जाय तो साथ में मिले हुए कंकड़ दाँत तोड़ेंगे और पेट में पहुँचकर शूल उत्पन्न करेंगे । न सब पुरातन ही अच्छा या बुरा है और न नवीन ही । पुराने खण्डहरों और कपड़ों को छोड़ना पड़ता है । पुराना घी बदबू देने लगता है । इसी प्रकार नये प्रचलनों में फैशन परस्ती, नशेबाजी, उच्छृंखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ प्रगतिशीलता कहलाने लगी हैं । अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे काम करने वाले अपने ही इर्द-गिर्द बड़ी संख्या में विद्यमान रहते हैं फिर इनमें से किसका अन्धानुकरण किया जाय । सम्प्रदाय और धर्मोपदेशकों के कथन में इतना मतभेद होता है कि इनमें से किसी एक को पूर्ण सही ठहराया जाना कठिन है ऐसी दशा में एक ही मार्ग सुरक्षित रहता है कि सोना खरीदते समय उसे कसौटी पर कसा और आग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में तपाया जाय । इसके उपरान्त ही जो खरा हो उसे अपनाया और जो खोटा है उसे त्याग दिया जाय । विवेक की कसौटी पर कसने के उपरान्त किसी कथन या प्रचलन को अपनाया जाय तो यह सत्य के निकट पहुँचने की सरलतम और प्रामाणिक रीति होगी ।

बहुत कार्य ऐसे होते हैं जो तत्काल लाभदायक प्रतीत होते हैं और अन्ततः दुःखदायी परिणाम उत्पन्न करते हैं । सस्ते अपराधों की तरह बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जो कष्ट पूर्वक हस्तगत होते हैं, पर पीछे चिरकाल तक सुख देते हैं । तप साधन और गोताखोर के मोती चयन की तरह इनमें से किसे अपनाया जाय इसका सही निर्णय वह कर सकता है जिसे दूरगामी परिणाम का अनुमान लगा सकने की क्षमता है । अन्यथा कुछ के बदले ऐसा कुछ हाथ लगता है जिससे चिरकाल तक पश्चात्ताप करना पड़े ।

अनगढ़ मन और सुसंस्कृत विवेक में सदा महाभारत मचा रहता है । लोभ, मोह और अहंकार के दैत्य पल-पल अपनी ओर घसीटते हैं और मानवोचित गौरव गरिमा का आग्रह, संयम अपनाने और शालीनता की राह पर चलने का होता है । यह अर्न्तद्वन्द्व छोटे-बड़े रूप में सभी के भीतर चलता है । कुसंस्कार मन और अनगढ़ परिवार धर्म की मूर्खता और अधर्म की बुद्धिमत्ता बताता है । तथाकथित स्वजन सम्बन्धी भी बहुमत और प्रचलन की दुहाई देकर कौरव सेना में भर्ती होने के लिए कहते हैं । इस गीतोक्त महाभारत में अर्जुन की तरह गाण्डीव उठाना और भगवान के हाथों रथ की बागडोर सौंप देना विजयश्री वरण करने का उपयुक्त मार्ग है ।

अन्तरंग योग की पृष्ठभूमि

साधना वस्तुतः किसी देवी देवता या भगवान की मनुहार के बदले फुसलाकर मनमर्जी की चीजें पकड़ लेने की जादूगरी नहीं है । अधिकांश लोग इसी विभ्रम में जहाँ तक भटकते और चित्र-विचित्र पूजा-पत्री के विधान करते हों तो भी हमें भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं । हमें शास्त्रकारों, आप्तजनों और अनुभवी पथ-प्रदर्शकों का सार संक्षेप में इसी रूप में अपनाना चाहिए कि साधना का पूरा नाम है जीवन साधना जो उसके बहिरंग और अन्तरंग पक्षों को परिष्कृत कर लेते हैं, वे ही इस असली साधना के बदले यथार्थवादी सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

सर्वव्यापी भगवान एक नियम अनुशासन ही हो सकते हैं । सारी सृष्टि इसी व्यवस्था क्रम में बँधकर अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । जो भी व्यतिक्रम करता है टूट कर चूर-चूर हो जाता है । सृष्टा के सम्बन्ध में हम इतनी अटूट मान्यता रखें और उनका अनुशासन समझें और अपनाएँ तो समझना चाहिए कि भक्ति भावना की उच्चस्तरीय भूमिका निभ गयी ।

अब उनके अनुग्रह और वरदानों की बात आती है । यह परमात्मा का नहीं आत्मा का विषय है । हम जितना ही अपने को विकसित परिष्कृत कर लेते हैं उसी अनुपात से सिद्धियों, विभूतियों, सफलताओं और महानताओं को अपनी ओर खींच बुलाते हैं । यह विभाग परमात्मा ने हर आत्मा के जिम्मे छोड़ है और कहा है कि वह अपनी इच्छानुसार ऊँचा उठे या नीचा गिरे । परमात्मा किसी को कुछ करने के लिए बाधित नहीं करता । उसका तो व्यवस्थाक्रम ही इस प्रकार चल रहा है कि कोल्हू में ऊपर से तिल या निबौली जो डाली जाय इसी का उसी गन्ध और स्वाद वाला तेल नीचे निकल पड़ेगा । इस प्रसंग में चापलूसी में फुसलाने और भेंट पूजा में बरगलाने की चतुरता रत्ती भर भी काम नहीं आती । आखिर भगवान मनुष्य जैसा लालची और खुशामदी तो है नहीं । पात्रता के अनुरूप उपलब्धियाँ पाने की ही उसकी सृष्टि में अविच्छिन्न व्यवस्था है ।

जीवन के अन्तरंग पक्ष को भी बहिरंग पक्ष की तरह हमें स्वयं ही सँभालना पड़ेगा । इस क्षेत्र का प्रथम चरण यह है कि हम अन्तर्मुखी होना सीखें अपने भीतर घुसें और यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर अपनी त्रुटियों और विशेषताओं को खोजें । त्रुटियों को झटके में या धीरे-धीरे हटाना अपने साहस पर निर्भर है, पर वे हटानी अवश्य पड़ेंगी यही बात विशेषताओं के सम्बन्ध में है । वे जितनी कुछ भी हैं उनमें खाद पानी देने और बढ़ाने की चेष्टा दृढ़तापूर्वक करनी चाहिए ।

यह कार्य आत्म चिन्तन मनन से सम्पन्न होता है । अन्तरंग की योजनाएँ इसी आधार पर बनती हैं । आमतौर से लोग दूसरों की बुराई देखते हैं और अपने सम्बन्ध में बेखबर रहते या पक्षपात बरतते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तर्मुखी होकर ही यह सुधार परिष्कार, निर्माण या विकास का कार्य किया जा सकता है । इसलिए दिनचर्या में इसके लिए कोई समय और स्थान निश्चित रूप से निर्धारित करना चाहिए । समय ऐसा जिसमें एकान्त मिले, स्थान ऐसा जहाँ कोलाहल होने से ध्यान न बँटे । ऐसी स्थिति में सुस्थिर बैठकर अपने अन्तरंग की गुफा में प्राण चेतना को घुस जाने और ध्यानपूर्वक भले-बुरे का पर्यवेक्षण करना चाहिए ।

असंयम ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है । उसके चार भाग हैं—इन्द्रिय असंयम, ध्यान असंयम, समय असंयम और विचार असंयम । अपनी दिनचर्या तथा आदतों पर पैनी दृष्टि डालकर यह देखना चाहिए कि इन चार महाशत्रुओं में से किसी ने अपने स्वभाव में घुसकर अधिकार तो नहीं कर लिया । जहाँ जो गड़बड़ी दीख पड़े उसे हटाने और अधिकाधिक संयमी बनने का प्रयत्न करना चाहिए । सही नीर क्षीर विवेक है यही राजहंस परमहंसों की सराहनीय सत्प्रवृत्ति । यह अभ्यास हर दिन किया जाय । शरीर, वस्त्र, मकान की तरह अपने अन्तराल में इन कूड़े-करकटों का कोई ढेर जमा न होने देना चाहिए । जो कुसंस्कार जम गए हों उन्हें पूरी तत्परता के साथ झाड़बुहार कर फेंकना चाहिए । यही है अन्तराल की स्वच्छता जिसमें भगवान को बुलाया या बिठाया जा सकता है ।

एक बड़ा गुड़-गोबर यह हो गया है कि हमने आत्मा को शरीर में घुला दिया है । शरीर अलग से सोचने और आत्मा अलग से विचारने की चीज है । इसके बिना हम अपने हित और स्वार्थ को भी नहीं समझ पाते । घोड़े पर सोने का साज सजाने और सवार का फटे चिथड़े पहने फिरने जैसा उपहासास्पद है ठीक हमारी रीति-नीति वैसी ही होती है । शरीरगत वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के लिए हम दिन रात खपते हैं । यहाँ तक कि अनीति पर भी उतर आते हैं और परिणामतः असह्य दुःखों को सहते हैं ।

आत्मा एक कोने में सिसकती रहती है । उसकी भूख जिस आत्मशोधन और पुण्य परमार्थ से हो सकती है, उसे जुटाने के लिए न मन होता है और न अवकाश निकलता है । शरीर मजा उड़ता है और पाप का गट्ठर सिर पर लादकर आत्मा को जाना पड़ता है ।

इस अन्तर को अधिकाधिक स्पष्ट करना आध्यात्मिक जीवन का महत्त्वपूर्ण चरण है । हम जीवन और मृत्यु को साथ-साथ मिलाकर जियें । ऐसी पूर्व तैयारी सँजोयें जिसमें मरण के समय व्यामोह में और मरने के उपरान्त दुर्गति में न रहना पड़े ।

अन्तरंग योग का तीसरा चरण है—समस्वरता । अपनी मनःस्थिति को अविचल बनाये रहना । सांसारिक परिस्थितियों से अत्यधिक प्रभावित न होना । जीवन क्रम के साथ अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ जुड़ी रहती हैं । परिस्थितियों पर किसी का काबू नहीं । लहरों की तरह इस सरोवर में लहरें उठती रहती हैं । रात दिन की तरह परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं । इनसे हर्ष-शोक की अतिशय अनुभूति से अपने आपको बचाये रखा जाय । एक का मरण दूसरे स्थान का जीवन है । एक को हानि होती है तो दूसरा लाभ उठाता है । इस उतार-चढ़ाव से बचा नहीं जा सकता, पर अपनी मनःस्थिति को ऐसे ढाँचे में ढाला जा सकता है कि भावनाओं को अत्यधिक प्रभावित होने से रोका जा सके । "अति हर्ष न अति विषाद" यही उपयुक्त है । गीताकार ने इसे स्थिति प्रज्ञा या योगी की स्थिति कहा है । उद्वेगों से अपने को बचाये रहने वाला शारीरिक और मानसिक रोगों से बचता है । निराशा नीरसता उसे नहीं सताती । वह अपने को दीन असहाय अनुभव नहीं करता और अपनी प्रसन्नता को अक्षुण्ण बनाये रहता है । यह बड़ी बात है, महत्त्वपूर्ण भी । ऐसा ही स्थिर मन उच्चस्तरीय भूमिका अपनाने और ऊर्ध्वगमन कर सकने में समर्थ होता है । आत्म-साक्षात्कार के लिए ईश्वर दर्शन के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि है ।

अन्तरंग योग का चौथा चरण है—अपने संकीर्ण सीमा बन्धनों की विशालता में विकसित करना । संसार को भगवान के विराट् रूप में देखना । अपनत्व को थोड़े व्यक्तियों, थोड़े साधनों तक सीमित न रखकर असीम में सुविकसित कर देना । जो जितने थोड़े दायरे में है अपने 'स्व' को बाँधे हुए है वह उतना ही दयनीय है । कूप मण्डूक को छोटे से जलाशय में ही सीमित रहना पड़ता है । गूलर के भुनगे बहुत छोटी स्थिति में अपनी जिन्दगी गुजारते हैं । नाली के कीड़ों को सड़ी कीचड़ में ही गुजारा करना पड़ता है । यही स्थिति उन लोगों की है जो लोभ और मोह के छोटे दायरे में मरते-खपते रहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । जिन्हें अपने ही मतलब से मतलब रहता है । जो न पड़ौसियों की दशा पर दृष्टि डालते हैं और न जिन्हें देश, धर्म, समाज संस्कृति से सरोकार रहता है । प्रशंसा के लिए दान का विज्ञापन कर सकते हैं । यों धूर्तों द्वारा मूर्खों द्वारा जेब काटने के जीते जागते उदाहरण बनते हैं । अपनी गतिविधियाँ ऐसे कार्यों तक सीमित रखते हैं जिनसे भले ही प्राणियों का सुख सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में भले ही राई रत्ती योगदान मिलता है पर उन्हें तीसमारखाँ बनने का अवसर अवश्य मिले । ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने बेतुके मन्दिरों, किलों, स्मारकों में विपुल सम्पदा तो लगाई, पर आत्मिक प्रगति के लिए विचारशील उदारता से वस्तुतः वंचित ही बने रहे ।

व्यावहारिक क्रियायोग

योग दर्शन का एक सूत्र है—"तपः स्वाध्याय, ईश्वर प्रणधाननि क्रियायोगः । अर्थात् क्रियायोग के तीन पक्ष हैं—(१) तप (२) स्वाध्याय (३) ईश्वर प्रणधान योग । साधना का यह क्रिया पक्ष है । अनेक प्रसंगों, विवादों सन्दर्भों में उलझने और अनेकानेक क्रिया-काण्डों में से किसे चुनना—यह कार्य बड़ा कठिन है । क्योंकि शास्त्रकार अपने-अपने प्रतिपादनों पर इतना जोर देते हैं कि विश्वासी के लिए वह सर्वोत्तम प्रतीत होता है । फिर जिज्ञासु के लिए अन्य ग्रन्थों को पढ़ने की भी मनाही नहीं है । उनका अवलोकन करने पर दूसरे पक्ष सामने आते हैं । इन पर अविश्वास कैसे किया जाय ? वे ग्रन्थ और उनके लेखों को अप्रामाणिक कैसे कहा जाय ? फिर भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि मनीषी या जिज्ञासु मिल कर कोई सर्वोपयोगी विधान निकाल लें और उस विधान को सर्वमान्य करने का प्रयत्न करें । ऐसा सम्भव न होने पर जिज्ञासु के सामने यह कठिनाई आती है कि प्रतिपादनों, निर्धारणों की अनेकों दिशाएँ—धाराएँ होने के कारण यह कैसे सम्भव हो कि उनमें से किसी को सन्देह रहित होकर अपनाया जाय और जब तक समग्र विश्वास का समीकरण न हो तब तक उस कृत्य में सफलता कैसे मिले ?

अध्यात्म मान्यताओं और साधना की विशिष्टता श्रद्धा विश्वास के आधार पर ही फलित होती है । इस धारणा में जब शास्त्रकार और गुरुजन ही परस्पर सहमत न हो पायें और जिज्ञासु के सम्मुख अनेक सिद्धान्तों का अनेक विधानों की हाट खोल कर रखें तब यह बड़ी कठिनाई होती है कि इनमें से किसका चयन किया जाय । निश्चय ही दिग्भ्रान्त स्थिति में पड़ा हो तो किसी मार्ग को अपनाना कैसे बन पड़े । सन्देह सदा यही बना रहेगा कि जो किया जा रहा है वह भटकाव तो नहीं है । इसकी तुलना में यदि अन्य मार्ग अपनाया गया होता तो क्या बुरा होता ?

इन कठिनाइयों में से निकालने वाले और साथ ही सरल, शक्य व्यावहारिक मार्ग ढूँढ़ने वाले के लिए योग दर्शन का उपरोक्त सूत्र बहुत की उपयुक्त बैठता है जिसमें 'क्रियायोग' की व्याख्या करते हुए केवल तीन साधन बताये हैं । उन निर्देशनों का नाम क्रियायोग इसलिए दिया गया है कि वे व्यावहारिक जीवन में उतारने योग्य हैं उनमें ऐसे दुस्साहस नहीं करने पड़ते जैसे कि हठयोग आदि का अभ्यास में भूल-चूक रहने पर साधक को लाभ के स्थान पर घाटा देते और नये संकट में फँसाते हैं ।

क्रियायोग के तीनों पक्ष ऐसे हैं जिनमें उतनी कठिनाई या उलझन नहीं है जिससे ऊँच-नीच सोचनी पड़े और संकल्प विकल्पों के फेर में पड़ा रहना पड़े ?

इन तीन में प्रथम है—'तप' । तप का अर्थ है तपाना । उस तरह जिस तरह कि धातुओं को शुद्ध करने के लिए उन्हें कसौटी पर कसा या आग में तपाया जाता है । इसके लिए कष्ट साध्य क्रियाएँ करने की आवश्यकता नहीं है, वरन् अपने असंयमी कुसंस्कारों से जूझना भर है । सर्वसाधारण के लिए 'तप' का अर्थ संयम होना चाहिए । वही सुलभ भी है । संयमशील व्यक्ति मन की दुर्वासनाओं से लड़ता है, पर हाथों हाथ उसका सत्परिणाम भी उपलब्ध करता है ।

इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम का पालन करने में अपनी ही अस्त-व्यस्तताओं से निपटना और उन्हें सुव्यवस्था के अनुशासन में बरतना पड़ता है । पुरानी आदतों को छोड़ने में कुछ समय तो अनख लगता है, पर सुव्यवस्था को व्यवहार में उतारते ही यह प्रतीत होने लगता है कि बर्बादी से बचकर सर्वतोन्मुखी प्रगति का मार्ग मिल गया ।

नेकी, भलाई, पुण्य, परमार्थ, संयम, सदाचार के मार्ग पर चलने उद्धत बहुमत का उपहास विरोध भी सहना पड़ता है, किन्तु थोड़े ही दिन में जब उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी आदर्शवादिता परिपक्व दीखने लगती है तो सभी का मस्तक झुकता है और जन-सम्मान एवं जन समर्थन मिलने में कमी नहीं पड़ती । परखा यही जाता है कि आदर्शवाद की बकवास, विज्ञापनबाजी की जा रही है या वस्तुतः उसे सच्चे मन से अपनाया गया है । यह प्रामाणिकता सिद्धान्तों के लिए कष्ट सहने के उपरान्त ही हस्तगत होती है ।

दूसरा पक्ष है—स्वाध्याय । स्वाध्याय का तात्पर्य ऐसे युग मनीषियों के विचार प्रतिपादन पढ़ना है जो सामयिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान सुझाते हैं और चिन्तन, चरित्र, व्यवहार का स्तर ऊँचा उठाते हैं । ऐसी पुस्तकें युग मनीषियों द्वारा लिखी हुई हो सकती हैं । उसके लिए उन पुराने इतिहास पुराणों या निर्धारणों को पढ़ते रहने से उलटा भ्रम जंजाल गले बँधता है, जो अब असामयिक हो गए हैं । समय के साथ बहुत कुछ बदलता है इसमें समाधानकारक विचारधारा भी सम्मिलित हैं ।

जो पढ़ा या सुना है, उस पर निज का विचार मन्थन आवश्यक है । उसी के आधार पर यह समझा जा सकता है कि क्या ग्राह्य है क्या अग्राह्य । युग मनीषियों में भी मतभेद पाये जा सकते हैं । उनमें से जो सत्य, विवेक और व्यवहार की दृष्टि से उपयुक्त जँचता हों, ऐसा साहित्य ही तलाशना और पढ़ना चाहिए इस सन्दर्भ में प्रज्ञा साहित्य से किसी भी विचारशील को अपेक्षाकृत अधिक औचित्य हस्तगत हो सकता है ।

तीसरा मार्ग है—ईश्वर प्रणधान । ईश्वर क्या है ? इसके सम्बन्ध में उसका विराट् ब्रह्म रूप सर्वोत्तम है । यह परमात्मा विश्व मानव या समष्टि ब्रह्म है । तुलसीदासजी ने इसी को "सियाराम मय सब जग जानी" कह कर प्रणाम किया और अपनाया था । कल्पित देवी देवताओं की अपेक्षा विश्वमानव को—आदर्शों के समुच्चय को आराध्य मानना प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त बैठता है । इसी के प्रति साधक का प्राणिधान—अर्थात् ईश्वर समर्पण करना चाहिए । समर्पण का तात्पर्य सेवारत होना है । विश्व सेवा का अर्थ है—आदर्शों का समर्थन और सम्वर्धन इसका व्यावहारिक स्वरूप उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और शालीन व्यवहार से बन पड़ता है । आत्म-परिष्कार और लोक-मंगल ईश्वर भक्ति की दिशा में उठाये हुए सही कदम हैं ।

तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणधान ही क्रियायोग है । यह अपेक्षतया अधिक सही है और सरल भी ।

योग साधन सर्वसुलभ भी सर्वोपयोगी भी

मनुष्य के सामने जितनी सुविधा सम्वर्धन की समस्या है उतनी ही अवरोधों से जूझने और संकटों से आत्म रक्षा करने की भी है । जो इन सभी मोर्चों पर सतर्क रहते हैं वे ही प्रगतिशील जीवन जी पाते हैं । अन्यथा एक दिशा में सतर्क और दूसरी में बेखबर रहने से ऐसी अप्रत्याशित समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है जो किए-धरे सारे प्रयत्नों को चौपट करके रखदें ।

विद्याध्ययन, धन उपार्जन, पद सम्मान, परिवार पोषण जैसे प्रयत्नों में संलग्न रहना उचित है । पर ध्यान यह भी रखा जाना चाहिए कि जिस शरीर और मस्तिष्क की समर्थता से यह सारे काम सम्पन्न हो सकते हैं उसे स्वस्थ और सक्षम रखा जा रहा है या नहीं, कहीं इनमें घुन तो नहीं लग गया । उपेक्षा करने में तो जड़ों में लगी हुई दीमक ही विशालकाय वृक्षों को धराशायी कर देती है ।

पेट भरने और मल विसर्जन करने से शरीर की और मनोरंजन, विश्राम से मस्तिष्क की आवश्यकता पूरी की जाती है । पर ध्यान रखने योग्य यह है कि यह दोनों संस्थान अपने आप में अत्यधिक सम्वेदनशील होने के कारण अधिक समर्थ बने रहने की आवश्यकता तभी पूरी करते हैं जब उनकी अधिक सतर्कता रखी जाय और अतिरिक्त पोषण दिया जाय । उपेक्षा पूर्वक जिस-तिस तरह गुजारा पाते रहने पर वे जीवन यात्रा का पहिया भर घुमाते रह सकते हैं । कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रस्तुत कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं होता ।

मानवी सत्ता एक प्रकार से कल्प वृक्ष के समान है । उससे जो माँगा जाता है उतना ही मिलता है । माँगने का तात्पर्य है आकांक्षा प्रबल करना और उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ करने को तत्पर होना । शरीर की क्रियाशीलता उतनी ही विकसित होती है जितना कि उसका उपयोग होता है । यही बात मन के सम्बन्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में भी है । बुद्धिमान वे बनते हैं जो अपनी मानसिक क्षमता का उपयोग अधिक ऊँचे प्रयोजनों के लिए करते हैं । मूर्ख वे रह जाते हैं जिन्हें बुद्धि का उपयोग करने के लिए उदासीनता से अथवा अवसर न मिलने से सुयोग ही प्राप्त नहीं होता है । शरीर से दुर्बल वे रहते हैं जो उसके खाने सोने भर को ऐसा कुछ देते रहते हैं जिसमें स्वाद तो होता है पर पोषण नहीं । रुग्णता इसलिए बनी रहती है कि पीड़ा निवारण के लिए औषधि उपचार तो समय-समय पर होता है पर जीवनी शक्ति का भण्डार बढ़ाने के लिए ऐसा कुछ नहीं किया जाता जिसके सहारे रोगों का शरीर में प्रवेश ही न हो सके । विशेष समर्थता बढ़ाने के लिए विशेष पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है जो इस तथ्य को जानते हैं वे मूल्य चुकाते और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ पाते हैं ।

शरीर और मस्तिष्क की प्रसुप्त क्षमताओं को जागृत करने की सामर्थ्य योग साधना में है । मध्यकाल से वैरागियों का एक विशेष वर्ग ही इसका प्रयोग करता रहता है और कष्ट साध्य प्रयोग पढ़ने सुनने में आते रहे हैं । पर बात ऐसी है नहीं । योग साधन, मनुष्य की सुसुप्त क्षमताओं के विकास की एक विशिष्ट पद्धति है जिसके आधार पर शरीर और मस्तिष्क को अधिक स्वस्थ रखना और अधिक सक्षम बनाना सम्भव हो सकता है । जहाँ तक रोग निवारण का सम्बन्ध है वहाँ तक उस पद्धति की उपयोगिता और भी अधिक है । औषधियाँ विषाणुओं को मारती हैं साथ ही सुरक्षा सैनिकों का भी नाश होता है । जितना लाभ उससे अधिक हानि होने के कारण औषधि उपचार के सहारे सम्पन्न हुआ रोग निवारण भी जीवनी शक्ति घटाने का निमित्त बनने के कारण अनन्ततः घाटे का सौदा ही सिद्ध होता है । योग द्वारा सामर्थ्य के अभिवर्धन करने की प्रक्रिया आरोग्य का सर्वतोन्मुखी सम्वर्धन करती है और उस प्रयत्न में रोग निवारण का लाभ भी अनायास ही मिलता रहता है ।

योग साधन बाल-वृद्ध नर-नारी सभी के लिए सरल और सम्भव है । हर स्थिति के व्यक्ति के लिए उसके स्तर के अनुरूप साधनाओं का विधान विद्यमान है । जन्म जात बालक और वयोवृद्ध के रोगों में अलग-अलग स्तर की औषधियाँ दी जाती हैं । बच्चों के, प्रोढ़ों के, वृद्धों के, व्यायाम भी अलग-अलग हैं । इतने पर भी वे सभी अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप व्यायाम कर सकते हैं । ठीक यही बात योग साधनों के सम्बन्ध में भी है । आवश्यक नहीं कि वे ईश्वर दर्शन या सिद्ध चमत्कार जैसे उच्च स्तर के प्रयोजनों के निमित्त ही किए जायें । आरोग्य सम्वर्धन, रोग, निवारण मानसिक सन्तुलन, प्रतिभा परिष्कार जैसे उन प्रयोजनों के निमित्त भी योगाभ्यास किया जा सकता है जो सामान्य जीवन क्रम में प्रगति एवं सुव्यवस्था के लिए आवश्यक हैं ।

संक्षेप में योगाभ्यास उन प्रसुप्त क्षमताओं के सम्वर्धन प्रयास को कहा जा सकता है जो सामान्य आहार विहार से सम्भव नहीं हो सकता है । स्थूल कलेवर और उसकी स्थूल क्षमता तक ही जिनकी पहुँच है वे उसी स्तर के प्रयास भी करते हैं और उतने से ही सन्तुष्ट भी रहते हैं । किन्तु मानवी सत्ता में सन्निहित सूक्ष्मता का जिन्हें ज्ञान है और उसकी उपलब्धियों का जिन्हें आभास हैं वे योगाभ्यास को भी नित्यकर्म में सम्मिलित करते हैं । फलतः वे शारीरिक मानसिक समर्थता ही नहीं बनाये रहते, रुग्णता के आक्रमण से आत्मरक्षा ही नहीं करते वरन् प्रगति पथ पर बढ़ चलने के रहस्य और आधार भी उपलब्ध कर लेते हैं ।

यद्यपि प्रारम्भ से ही सावधान रहा जाय तो योगासन, व्यायाम एवं प्राकृतिक शक्ति साधनों के अवलम्बन से रोगों से सर्वथा मुक्त रहा जा सकना सम्भव है । योगबल से चिकित्सा करने की भारत की प्राचीन परम्परा रही है । इसमें रोगमुक्ति के साथ साथ दुबारा रोगग्रस्त होने की भी सम्भावना कम रहती है । योग चिकित्सा द्वारा शरीर को न केवल तुरन्त स्वस्थ किया जा सकता है, अपितु रोग निरोधक शक्ति भी उत्पन्न की जा सकती है ।

आसन-मुद्रा, प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएँ स्नायु-शिराओं, माँसपेशियों, रक्त-नाड़ियों और ग्रन्थियों के साथ ही हृदय और फेफड़ों को भी बलवान बनाती हैं । योगाभ्यासी के शरीर में रोग के जीवाणु तथा विषाणु प्रवेश नहीं कर पाते । आज हारमोन्स की महत्ता का वैज्ञानिक प्रतिपादन करते दिखाई देते हैं । पिट्यूटरी व थायरॉइड ग्रन्थियों द्वारा समस्त चयापचय क्रियाएँ संचालित होती हैं, जीवनी शक्ति बढ़ती है—यह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब सर्वविदित है परन्तु इस तथ्य का योगियों को पूर्ण ज्ञान था । सरल व्यायामों द्वारा दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन तथा स्थायी यौवन प्राप्त किया जा सकता है । निर्धन भारत को असाध्य रोगों से बचा सकने में केवल ऐसी ही 'पैथी' समर्थ है जो योग, प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद की मूल मान्यताओं पर अपना कार्य करे । हठयोग के अनुसार हमारा शरीर साधना की मुख्य आधारभूमि है । यदि यह आधार दृढ़ है तो महान जीवन का भवन इस पर निर्मित हो सकता है । शरीर यदि यन्त्र है तो आत्मा उसका संचालक (ड्रायवर) है । मस्तिष्क, बुद्धि आदि वे जीवित तत्व हैं जो इस आत्मा के अंग हैं एवं स्नायु तथा ग्रन्थियों द्वारा अपना कार्य किया करते हैं । यदि स्नायु एवं ग्रन्थि प्रणाली का कार्य सामान्यतया स्वस्थ है तो न केवल हम हृष्ट-पुष्ट रहेंगे, अपितु इसी शरीर से आत्म-साक्षात्कार भी कर सकेंगे ।

शारीरिक अवयवों एवं ग्रन्थियों के क्षतिग्रस्त होने से ही मनुष्य में विकृतियाँ आती हैं जो शारारिक एवं मानसिक कुस्वास्थ्य के रूप में परिलक्षित होती हैं । योग द्वारा उचित आहार-विहार से अवयवों एवं ग्रन्थियों का दोषनिवारण किया जाता है । हठयोग द्वारा शारीरिक एवं लययोग द्वारा मानसिक रोगों का उपचार किया जाता है । हमारी श्वास प्रंणाली के मुख्य अवयव हैं—इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना । यदि हम इड़ा और पिंगला पर नियन्त्रण रखना सीख लें तो हमारे सभी प्रकार के रोग नष्ट हो सकते हैं । सुगठित शरीर में कुण्डलिनी ही वास्तविक ठोस जीवनी शक्ति है । योगासन शरीर के सत, रज तथा तम नामक शक्ति-तत्वों का उचित अनुपात बनाये रख कर उसे स्वस्थ रखते हैं ।

धूम्रपान और मद्यपान के कारण होने वाली व्याधियों के उपचार हेतु अब पश्चिम जर्मनी में योग का सहारा लिया जा रहा है । उत्तर राइन जिले में स्वास्थ्य शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु एक बड़ा योग केन्द्र खोला गया है । इन आदतों को सुधारने में शिक्षा और प्रचार आन्दोलन नितान्त असफल रहे हैं । डॉक्टरों ने बताया है कि योगाभ्यास की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया और आसन वर्त्तमान समाज में व्याप्त अधिकांश मानसिक परेशानियाँ एवं दिमागी उलझन दूर करने में सफल हुए हैं । इसके अलावा चिकित्सा, मिट्टी से स्नान, नमक के गड्ढे में विश्राम आदि उपचार द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार भी किया जाता है ।

योग एक ऐसा विज्ञान है जिसे पूर्ण विश्वास है कि जब तक मन नियन्त्रण में न हो, कोई भी यान्त्रिक प्रणाली अपने आपको शरीर के परिवर्तनशील वातावरण के अनुकूल ढाल नहीं सकती । अन्तः स्रावी ग्रन्थियों पर छप्पन प्रतिशत प्रभाव भावनाओं का पड़ता है । इस तरह चिकित्सकों के अनुसार कैंसर एवं हृदय रोग से लेकर साधारण पेट की पीड़ा तक के अनेकों रोग मन के द्वारा प्रभावित तथा उत्पन्न होते हैं । मानसिक दशा पक्षाघात का कारण बन सकती है और शरीर में हिस्टीरिया द्वारा मृत्यु तक भी पहुँच सकती है, जबकि कोई भी इसके और कारण विद्यमान न हों । यदि मन अथवा चित्त को ठीक दिशा में प्रयोग किया जाय तो यह रोगों को ठीक करने में पर्याप्त रूप से प्रभावशाली सिद्ध होता है । विश्वास, आस्था, श्रद्धा, इच्छाशक्ति और सुझाव 'मैटर' पर मन की शक्ति के प्रभाव के प्रतीक हैं ।

महर्षि पातंजलि के अनुसार मन, मन के कार्यों, ज्ञानेन्द्रियों, भावनाओं और इच्छाओं को वश में करने को ही योग कहा जाता है ।

महर्षि व्यास ने 'योग-वशिष्ठ' में लिखा है कि योग मानसिक और शारीरिक अनुशासन (साइकोफिजीकल डिसीप्लेन) की एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है जो शरीर और मन पर पूर्ण नियन्त्रण द्वारा कार्य में पूर्णता लाती है ।

योग एक गहन रहस्यमय विद्या ही नहीं, अपितु चिकित्सा सम्बन्धी आधार पर शारीरिक और मानसिक समर्थ सम्बन्ध की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें रोग निवारण का लाभ अनायास ही मिल जाता है ।

सरलतम किन्तु महत्त्वपूर्ण योगाभ्यास

एक स्थान पर कई रास्तों से पहुँचा जा सकता है । केन्द्र वही रहता है पर पहुँचने की राहें कई पगडण्डियों से होकर वहाँ तक पहुँचती हैं । उन सड़कों और पगडण्डियों की राहें अलग-अलग होती हैं । उनके बीच में मील के पत्थर भी अलग-अलग प्रकार से गढ़े होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । वृक्ष, कुँए आदि भी भिन्नता लिए हुए होते हैं फिर भी सीधे-तिरछे सभी पहुँचते वहीं हैं ।

यही बात योग साधना के सम्बन्ध में भी है । लक्ष्य एक ही है—भगवान की प्राप्ति । आत्मा और परमात्मा का संयोग । पर उनके लिए योगाभ्यास की कई विधियाँ और क्रिया-प्रक्रिया निर्धारित की गयी हैं । इससे साधक की रुचि, क्षमता, श्रद्धा, भावना, शारीरिक और मानसिक स्थिति, अवगत परम्परा आदि अनेकों बातों का ध्यान रखना पड़ता है । सभी को एक राह नहीं बताई जा सकती । एक ही रोग के रोगियों को चिकित्सक उनकी व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए अलग-अलग प्रकार की दवाएँ देते हैं । सभी भेड़ों को एक लकड़ी से नहीं हाँकते । शिक्षक की परम्परा और विद्यार्थी की अभिरुचि पात्रता की दोनों ही प्रकार से देख-भाल करनी पड़ती है । इसके उपरान्त ही सम्भव होता है कि निर्धारण क्या किया जाय । अध्यापक ने यदि मराठी भाषा सीखी है तो वह उसी को पढ़ाने का प्रयत्न करेगा । ऐसे पारंगत तो विरले ही होते हैं जो सभी भाषाएँ जानते हों । ऐसे चिकित्सक विरले ही होते हैं जो आयुर्वेद, ऐलोपैथी, होम्योपैथी आदि में पारंगत हों और सभी के उपयुक्त चिकित्सा प्रणाली अपना सकें । उन्होंने जो पढ़ा है उसी के आधार पर चिकित्सा करते हैं फिर चाहे वह अनुकूल पड़े या प्रतिकूल । यही कारण है कि साधकों के व्यक्तित्व और स्तर देखकर शिक्षक के निजी अनुभव का अनुमान लगा कर निर्णायक स्थिति बनती है । उसी आधार पर योगाभ्यासों का क्रम बिठाना पड़ता है । उसमें भी यह देखना पड़ता है कि कौन कितना वजन उठा सकता है । गधे का वजन बकरे पर नहीं लादा जा सकता । इसलिए यह भी देखना पड़ता है कि किसकी मनःस्थित कैसी है ? किसके अभ्यास और चरित्र कैसे हैं ? पूर्वजनों के संचित संस्कार कैसे हैं ? इन सब बातों का पर्यवेक्षण करने के उपरान्त ही अनुभवी मार्ग-दर्शक शिष्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाएँ बताते हैं । शिष्य ने यदि किसी साधना का महात्म्य बढ़-चढ़ कर बता दिया है और उसकी ललक उसी में लगी हुई है तो गुरु के लिए यह आवश्यक नहीं कि जिसके लिए हठ किया जा रहा है वही बताने लगें । पात्रता की कमी रहते हुए भी वजन लाद देना या हिमाच्छादित पर्वतों का मार्ग बता देना दोनों के लिए हानिकारक ही सिद्ध होता है । दोनों ही अपयश पाते हैं ।

योग साधनाओं की संख्या असीम है । विभिन्न धर्मों, देशों, कालों में विभिन्न प्रकार की साधनाओं का प्रचलन रहा है । पुस्तकों में उन सभी का वर्णन है । कुछ साधनाएँ ऐसी भी हैं उनका गुरु परम्परा से प्रचलन चला आता है । उनका पुस्तक के रूप में कहीं उल्लेख नहीं हुआ है । विशेषतया तान्त्रिक साधनाओं का क्रम तो ऐसा ही है जो परम्परागत चला आता है । गुरु-शिष्यों में से कोई पढ़ा-लिखा नहीं होता फिर उन्हें गोपनीय रखने का प्रतिबन्ध भी है । आदिवासियों में ऐसी विलक्षण देवी देवताओं की मान्यताएँ और पूजा की विधियाँ चलती हैं जिनका पुस्तक रूप में कहीं वर्णन नहीं हुआ है । इसी प्रकार अफ्रीकी देशों में हवशी और उनके पुरोहित नर-बलि से लेकर अनेक प्रकार के अभिचार करते रहते हैं । वे किसी को लाभ तो नहीं पहुँचा सकते पर गुह्य तान्त्रिक अभिचारों के आधार पर हानि अवश्य पहुँचा देते हैं । किन्तु उनकी भी कोई लिखी पुस्तक नहीं है । जब सारा समाज अनपढ़ अनगढ़ है तो पुस्तकों के लिखे, जाने विधानों के छपने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । यह प्रशिक्षण एक से दूसरे को गुप्त रूप से बताये जाते रहे हैं ।

विश्व भर में किन क्षेत्रों में कितने प्रकार के योग चलते रहे हैं और कितने चल रहे हैं इसका समग्र विवरण तो उपलब्ध नहीं है, पर उनकी संख्या अगणित है । इन दिनों भारतवर्ष में जिनका प्रमुख रूप से प्रचलन है उन्हें राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कुण्डलिनीयोग, तन्त्रयोग आदि नामों से जाना जाता है । इनमें से जो उत्कृष्टतम् हैं, उनका सार संक्षेप लेकर प्रज्ञायोग विनिर्मित किया गया है । वह सरल भी है, सुगम भी और हर किसी के लिए अपनाये जाने योग्य भी । उसमें उतने प्रतिबन्ध नहीं हैं, जितने अन्य योगों में होते हैं ।

अगर इन्हें दो खण्डों में बाँटना चाहें तो उनका वर्गीकरण दो खण्डों में भी किया जा सकता है । एक शारीरिक, दूसरा सामाजिक । शारीरिक योगों में आसन, प्राणायाम, जप आदि की गणना होती है । जननेन्द्रिय और ब्रह्मरन्ध्र मस्तिष्क मध्य तक मेरुदण्ड मार्ग से चलने वाली इड़ा-पिंगला विद्युत धाराएँ कुण्डलिनी जागरण का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजन पूरा करती हैं । यह भी शारीरिक विद्युत का खेचरी चमत्कार ही है । इसके अतिरिक्त ध्यान प्रमुख है । ध्यान की कितनी ही शाखा प्रशाखाएँ हैं । नादयोग, त्राटकयोग, लययोग इनके साथ प्रायः मानसिक क्षेत्र की गतिविधियाँ ही काम करती हैं । शरीर और मन दोनों से मिलकर जीवन बनता है । दोनों ही एक गाड़ी के दो पहिये हैं । इनके मिलकर सहयोगपूर्वक अग्रसर होने से ही प्रगति पथ पर आगे बढ़ना होता है । एक पहिया लड़खड़ा जाय तो दूसरा अकेले उसे लेकर अग्रसर नहीं हो सकता है । इसी प्रकार आत्मिक प्रगति के लिए किए गए योगाभ्यास को सफल नहीं बनाया जा सकता ।

शारीरिक साधना को संयम कहते हैं । इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम, विचार संयम आदि यह प्रत्यक्ष जीवन की चार तपश्चर्याएँ हैं, जो प्रत्यक्ष जीवन का परिशोधन करती हैं । व्यक्ति यदि इन्द्रियों को काबू में रखे, विशेषतया जीभ और जननेन्द्रिय का व्यतिरेक न होने दे तो उसकी जीवनी शक्ति घटेगी नहीं, न दुर्बलता, न रुग्णता उसे हैरान करेगी । अकाल मृत्यु भी न मरना पड़ेगा । इसी प्रकार अर्थ संयम बरतने वाले, आमदनी से कम खर्च का बजट बना कर चलने वाले, सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाने वाले आर्थिक तंगी नहीं भुगतते और न किसी के ऋणी होते हैं । समय का संयम करने वाले, सीमित समय में ही इतने अधिक काम कर लेते हैं, इतनी योग्यता बढ़ा लेते हैं कि लोगों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । विचार संयम बरतने वाले ऊँचा ही सोचते हैं, ऊँची ही योजनाएँ बनाते हैं और ऊँचा ही कर गुजरते हैं । ऐसे ही महामानवों की गणना देव-पुरुषों में होती है । वे भव-सागर से स्वयं पार होते हैं और दूसरों को पार लगाते हैं । यही मध्यवर्ती तप-साधना है, उससे मनुष्य का भौतिक जीवन हर दृष्टि से प्रगतिशील बनता और सुखी समुन्नत बनता है ।

संयमी जीवन व्यतीत करना योगाभ्यास में यही तरीका सबसे अच्छा है कि संसार की सत्ता समाप्त की जाय, ताकि न कोई व्यक्ति या पदार्थ दीखे और न कहीं मन चले । फिर एक केन्द्र को जैसे सूर्य, शिव आदि की भावना करते हुए अपने को उसी सत्ता के साथ समन्वित देखा जाय । आग और ईंधन की तरह आत्मा और परमात्मा को एकीभूत कर दिया जाय, ताकि अद्वैत की प्राप्ति हो । यही योगाभ्यास का सार-संक्षेप है । तप और योग मिल जाने से दोनों की पूर्णता बन जाती है ।

मानवी सत्ता दो भागों में विभक्त है—काया और चेतना । काया का परिशोधन करने के लिए तप का और चेतना को परिष्कृत करने के लिए योग का विधान है । अध्यात्म विज्ञान इन्हीं दो धाराओं में गंगा-यमुना की तरह विभक्त है । दोनों का समन्वय होने पर जो संगम बनता है वही परम पवित्र तीर्थराज है । पूजा पाठ इसी प्रगति पक्ष के आरम्भिक चरण हैं । उच्चस्तरीय साधना में इन्हीं का विकसित रूप योग साधना और तपश्चर्या के रूप में क्रियान्वित होता है ।

योग का अर्थ है जोड़ना, तप का अर्थ है तपाना । आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देने का तात्पर्य है—क्षुद्रता को महानता के साथ, कामना को भावना के साथ, स्वार्थ के साथ बाँध देना—बदल देना—तदनुसार बना देना । योग का व्यावहारिक रूप है—समर्पण । इसी स्तर के दूसरे नाम हैं—विलय, विसर्जन, समन्वय समापन, शरणागति । इस शुभारम्भ के पूर्णाहुति जीव और ब्रह्म के साथ पूर्ण एकता स्थापित होने के रूप में होती है । इसी स्थिति को अद्वैत कहते हैं । यही ईश्वर प्राप्ति है ।

विराट् समुद्र का उसमें जीव बिन्दु का विसर्जित हो जाना सायुज्य है । यही परम पद की प्राप्ति है । व्यष्टि का समष्टि में विसर्जन होने का नाम ही प्रभु समर्पित जीवन है । ईंधन और आग की, नदी नाले की, दूध जल की, दीप पतंग की उपमा इसी स्थिति के लिए दी जाती है । व्यक्ति का अपना स्वार्थ समाप्त हो जाता है उसके स्थान पर एक मात्र परमार्थ ही छाया रहता है । अहंता—शरीर परिवार तक सीमित न रहकर सोऽहम्-शिवोऽहम् सच्चिदानन्दोऽहम्-तत्व मसि-आत्मा ब्रह्म-शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरजनोऽसि की स्थिति में पहुँच जाता है । अपना सब में और सब अपने में दृष्टिगोचर होते हैं । 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अनुभूति इसी स्तर पर पहुँचने में होती है । यही योग की सिद्धावस्था है । परम पद इसी को कहते हैं । जीवन मुक्ति इसी स्थिति का नाम है । व्यक्ति की अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाना और मात्र ईश्वरेच्छा ही रोम-रोम में समाई रहना यही है जीव और ब्रह्म की एकता का लक्षण । दोनों में खींचतान का, शिकायत उपलम्भ का कोई कारण ही शेष नहीं रहता, दोनों की एक भावना, एक कामना, एक योजना और एक दिशा धारा होती है । इसी का नाम है योग साधन—प्रभु मिलन ।

योग, चेतना का विषय है इसलिए यह चिन्तन प्रधान है । तप, काया का विषय है । शरीर और मन पर चढ़े हुए कषाय कल्मषों को अशुद्धियों को तपश्चर्या की आग में तपा कर शुद्ध किया जाता है । खदान में से निकलने वाली मिट्टी में मिली कच्ची धातुओं को जिस प्रकार भट्टी में तपा कर शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार तपश्चर्या से जीवन शोधन का उद्देश्य पूरा होता है । जागृत और परिशोधित आत्मा से इन समस्त शक्तियों, विभूतियों और विशेषताओं का परिचय मिलता है जो ईश्वर में विद्यमान है । सिद्धावस्था इसी को कहते हैं । तप से ऋद्धियाँ मिलती हैं और योग से सिद्धियाँ, ऋद्धियाँ भौतिक होती हैं और सिद्धियाँ आत्मिक । इन दोनों की उपलब्धि योग और तप की समन्वित साधना पर निर्भर है ।

चेतना को जीव ब्रह्म की एकत्व स्थिति में अद्वैतावस्था में पहुँचा देने का उद्देश्य पूरा करने के लिए कुछ साधनों प्रयोगों, अभ्यासों और उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है । उन्हीं को योग साधना या योगभ्यास कहते हैं । इन साधनों विधानों की संख्या असीम है तो भी उनकी प्रमुख धाराएँ पाँच ही हैं । उच्चस्तरीय गायत्री साधना को पंच कोशी कहा जाता है । गायत्री माता के पाँच मुखों के अलंकार में इसी तथ्य का संकेत है ।

शरीर रक्त, माँस, अस्थियाँ, त्वचा, रोम इन पाँच भागों में विभक्त है । उस काया का निर्माण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों के सम्मिश्रण से हुआ है । प्रकृति पदार्थों की अनुभूति शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श की तन्मात्राओं द्वारा होती है । यह सब पाँच-पाँच होने से प्रपंच कहलाते हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों की सहायता से इस काय कलेवर की गाड़ी अपनी पटरी पर लुढ़कती रहती है ।

सूक्ष्म शरीर के भी पाँच विभाग हैं । उन्हें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश कहते हैं । चेतना की गतिविधियाँ प्राणतत्व के आधार पर चलती हैं । यह प्राण भी पाँच हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान । यों इन्हीं की सहायक प्रक्रिया का निर्वाह करने के लिए पाँच उप प्राण और हैं । सूक्ष्म शरीर की अनेकों गतिविधियाँ विशेषताएँ, विभूतियाँ जिन पाँच विभागों में विभक्त की जाती हैं उन्हें पंच कोश कहते हैं । ऊपर की पंक्तियों में उन्हीं की चर्चा है । इन कोशों के जागरण से जो विशेषताएँ, विभूतियाँ साधक में दृष्टिगोचर होती हैं उनकी तुलना प्रसिद्ध पाँच देवताओं की अनुकम्पा से मिलने वाली सिद्धियों में की जाती हैं ।

योगाभ्यास की सरलतम किन्तु महत्त्वपूर्ण साधनाएँ पाँच हैं—(१) ध्यान, (२) प्राणायाम, (३) त्राटक, (४) नाद, (५) मुद्रा । इन्हीं के भेद, उपभेद अनेकानेक साधना विधानों में विभक्त होते चले गए हैं । साधक की स्थिति के अनुरूप अभ्यास करने के लिए अनुभवी मार्गदर्शक उपयुक्त परामर्श देते हैं इन सबका उद्देश्य जीव और ईश्वर के बीच एकता स्थापित करना है । अभ्यास भिन्नता इसलिए रखी गयी है कि सूक्ष्म शरीर के पाँच विभाग विभाजनों को उनकी प्रकृति के अनुरूप साधनों में लगाकर परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अग्रसर बनाया जाय ।

जप और पूजन स्थूल योग साधन है । जप में वाणी का और पूजन में पदार्थों का उपयोग होता है । यह बाल कक्षाएँ हैं । वाणी से स्वाध्याय, पाठ, कीर्तन, स्तवन आदि की जो भी क्रिया सम्पन्न होती हैं वे सभी जप वर्ग की हैं । पूजन में हवन, तर्पण, षोडसोपचार, अभिषेक, देव दर्शन, आरती, परिक्रमा आदि पदार्थ परक और हलचल परक उपक्रमों का समावेश है । विचारों और क्रियाओं के समन्वय से संस्कार बनते हैं । स्वाध्याय, सत्संग, मनन आदि के द्वारा विचारणा विकसित की जाती है और धर्मानुष्ठानों के क्रिया-कृत्य, कर्मकाण्ड अपनी हलचलों से चेतना पर प्रभाव संस्कार डालते हैं । श्रीगणेश इसी क्रम से होता है । प्राथमिक कक्षाओं में इन सब की वैसी ही उपयोगिता है जैसी उच्च भूमिका में पहुँचने पर योगाभ्यास और तप साधना की ।

चेतना की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना, अन्तर्जगत की विशेषताओं को देखना, आत्मा के स्वरूप और लक्ष्य को समझना जैसे प्रयोजन ध्यान द्वारा ही सम्पन्न होते हैं । ईश्वर पदार्थ परिधि से ऊपर है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी समीपता शरीर से नहीं चेतना के समीप चेतना के पहुँचने से ही बन पड़ती है यह कार्य भी ध्यानावस्था में ही सम्पन्न हो सकता है । ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं है इसीलिए इसका सान्निध्य अनुभव भी काय कलेवर और उसकी इन्द्रियों की सहायता से नहीं हो सकता । ध्यानावस्था के अतिरिक्त ईश्वर की निकटता एवं अनुभूति प्राप्त करने का और कोई मार्ग है नहीं ।

ध्यानयोग का क्षेत्र बहुत बड़ा है । सच तो यह है कि प्रकारान्तर से अन्य सभी साधनाएँ इसी परिधि के अन्तर्गत आ जाती हैं । विभिन्न माध्यमों से ध्यान की भौतिकतावादी पशु प्रवृत्तियों से हटाकर आत्मवादी देव प्रवृत्तियों के साथ जोड़ा जाता है । प्राणायाम, त्राटक, नाद, मुद्रा की चार अन्य साधनाओं पर भी दृष्टिपात करने से पता चलता है कि उनकी क्रिया पद्धतियों में भिन्नता आवश्यक है किन्तु तथ्यतः वे उद्देश्य ध्यान का ही पूरा करती हैं । चिन्तन का उच्च उद्देश्यों पर केन्द्रीकरण ही इन सबका एकमात्र आधार है । मानसिक बिखराव को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने से एकाग्रता जन्य ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे जिस भी दिशा में नियोजित किया जायेगा उसी में चमत्कार उत्पन्न करेगी, आत्मिक प्रगति के लिए उसे लगाया जाय तो उस दिशा में भी उसका लाभ मिलेगा ही । वैज्ञानिक, शोधकर्त्ता जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति इस मानसिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप ही अपने-अपने कार्यों में विविध सफलताएँ प्राप्त करते हैं । आत्मिक प्रगति के लिए योगी जन इसी शक्ति का उपयोग करके अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं । ध्यानयोग को चेतनात्मक पुरुषार्थों में अत्यन्त उच्चकोटि का समझा जा सकता है । ध्यान का विषय अधिक विस्तृत होने से उस पर अन्य लेख में स्वतन्त्र प्रकाश डाला जायेगा ।

रूप परक ध्यान में प्रायः भगवान की अनेक छवियों को ही माध्यम बनाया जाता है । खुले नेत्रों से देखने के लिए मूर्तियों अथवा तस्वीरों का प्रयोग होता है । प्रत्यक्ष ध्यान का यही तरीका है । आँखें बन्द करके जो छवि कल्पना क्षेत्र में—भाव पटल पर उतारी जाती है उसे रूप ध्यान कहते हैं । इससे इष्ट देव के प्रति घनिष्टता उत्पन्न होती है । भक्ति भावना के सहारे आत्मीयता बढ़ती है । इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की दूरी घटती और समीपता बढ़ती है । इष्ट प्रतिमा के साथ तदात्म्य स्थापित होने पर मन उसी आकृति में रस लेने लगता है और उसके अंग-प्रत्यंगों को वस्त्र, आभूषण, आयुध, वाहन आदि को अपना क्रीड़ा क्षेत्र बनाकर क्रमशः अधिक घनी एकाग्रता का अभ्यास बढ़ाता चलता है ।

कीट और भृंग का उदाहरण सर्वविदित है । झींगुर को भृंग की आकृति और गुंजार देर तक मस्तिष्क पर छाई रहती है तो उसी ढाँचे में ढल जाता है उसकी आकृति और प्रकृति बदल कर वैसी ही हो जाती है । साँचे में ढलकर उसी आकृति के खिलौने, आभूषण, औजार, पुर्जे आदि बनते चले जाते हैं । साधक भी भगवान के जिस स्तर का जिस स्वरूप का—ध्यान करता है उसकी स्थिति तदनुरूप बनती जाती है । टिड्डा जब तक हरी घास पर रहता है तब तक उसका रंग हरा रहता है किन्तु जब घास सूखकर पीली हो जाती है तब उसका शरीर भी पीला बन जाता है । फल, शाक एवं वृक्षों पर जो कीड़े पाये जाते हैं वे प्रायः उसी रंग के होते हैं जो उनके सामने रहते हैं ।

भले-बुरे चिन्तन से मनुष्यों के स्वभाव बनते बदलते आये दिन देखे जाते हैं । कामुक चिन्तन से मनुष्य की गतिविधियाँ उसी दिशा में बढ़ने लगती हैं और स्वप्न दोष तक होने लगते हैं । यही बात चिन्तन की प्रत्येक भली-बुरी धारा पर लागू होती है । विचार शक्ति के चमत्कारों के सम्बन्ध में सभी जानते हैं । मनुष्य की प्रकृति बदलना, व्यक्तित्व बनाना और भविष्य का निर्माण करना बहुत कुछ विचार शक्ति पर ही निर्भर रहता है । ध्यान वस्तुतः विचारों को घनी भूत करके एक दिशा विशेष में लगा देता है । इसका परिणाम बारूद को बन्दूक की नली में बन्द करके एक दिशा विशेष में दागने और गोली को निशाने तक पहुँचाने की तरह ही प्रभावशाली होता है । ध्यान के आधार पर साधक अपने व्यक्तित्व की गहरी परतों में आवश्यक परिवर्तन और परिष्कार करके यह तथ्य अपने उदाहरण से प्रमाणित करता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है और स्वयं ही अपने भविष्य की संचरना अपने हाथों करता है ।

छवि परक ध्यान की ही तरह दूसरी धारा नादानुसंधान है । इसे नाद योग भी कहते हैं । नाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

योग में शब्द के माध्यम से ध्यान किया जाता है । अनन्त अन्तरिक्ष में सूक्ष्म जगत की हलचलें और घटनाएँ दृश्य रूप में बदल कर ध्वनि बन जाती हैं । उन श्रवणातीत ध्वनियों को स्थूल कानों से तो नहीं पर कर्णेन्द्रिय की सूक्ष्म शक्ति को विकसित करके सुन सकने और उनके मूल कारण को जान सकने में सफलता मिल सकती है । टेलीफोन से की हुई वार्ता तार में जाकर बिजली के रूप में बदल जाती है । दूसरे छोर पर उसी बिजली को फिर ध्वनि बना लिया जाता है । टेलीविजन में दृश्य और इसी प्रकार तरंगें बनती हैं और निर्दिष्ट स्थान पर जाकर फिर दृश्य बन जाती हैं । इसी प्रकार संसार में घटित हो रही एवं हो चुकी घटनाएँ भी आकाश में तरंग बनकर भ्रमण करती रहती हैं । उन्हें नाद योग के अभ्यासी अपनी सूक्ष्म कर्णेन्द्रियों द्वारा पकड़ सकता है और जान सकता है कि कहाँ क्या हो रहा है, क्या हो चुका है ? इतना ही नहीं भावी सम्भावनाओं की खिचड़ी भी सूक्ष्म जगत की हाँडी में पकती रहती है । उसकी गंध से पता चल जाता है कि निकट भविष्य में कब कहाँ क्या होने वाला है ? गर्भस्थ शिशु का लिंग एवं स्वरूप आँखों से नहीं दिखाई पड़ता किन्तु विशेषज्ञ अपने उपकरणों से यह पता चला लेते हैं कि भावी सन्तान की क्या स्थिति है ? ठीक इसी प्रकार नाद योग के ज्ञाता इस भौतिक जगत की भावी हलचलों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और तदनुसार गतविधियाँ अपना कर भवतव्यता का लाभ उठाते हैं ।

नाद योग में कानों के छिद्र बन्द कर सूक्ष्म कर्णेन्द्रियों को जागृत करने का विधान है । श्रवणातीत ध्वनियों से कई प्रकार के वाद्य यन्त्रों तथा मेघ गर्जन, निर्झर, आंधी, गुंजन जैसी ध्वनियों का श्रवण करते हैं । उनके उतार चढ़ावों को देख कर न केवल प्रकृति की परिस्थितियों का वरन् शरीर के विभिन्न अवयवों के भीतर चल रही अदृश्य गतिविधियों का भी पता लगा लेते हैं । यह निदान एवं आभास शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है ।

यह प्रकृतिगत नाद श्रवण हुआ । इससे आगे की अनाहत ध्वनियाँ सूक्ष्म जगत है । निखिल ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय संदेशों एवं संकेतों का परिभ्रमण होता रहता है । दैवी शक्तियाँ अपना काम करती रहती हैं । उनकी इच्छाएँ, गतिविधियाँ एवं योजनाओं का पता उन दिव्य ध्वनियों को सहारे लग सकता है जो चेतन दिव्य शक्तियों द्वारा पृथ्वी निवासियों के लिए भेजी जाती हैं । नाद योग की प्रारम्भिक स्थिति में तो मात्र सन्देशों, संकेतों एवं सम्भावनाओं की जानकारी होती है । किन्तु साधना की ऊँची स्थिति में नाद योगी को सन्देश प्रसारण की योग्यता भी प्राप्त हो जाती है । तब वह इस बिना तार के सन्देश वाहक से साधना की देव शक्तियों के साथ वार्तालाप का आदान-प्रदान का—माध्यम बना सकता है । दिव्य ध्वनियों का श्रवण उच्चकोटि की पुष्टाई की तरह सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीरों को परिपुष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करता है । दिवंगत आत्माओं से, सिद्ध पुरुषों से, सूक्ष्म शरीर धारी देवात्माओं से सम्पर्क बनाने में नादयोग का अभ्यास उपयोगी माध्यम का काम करता है । तान्त्रिक साधना में कर्ण पिशाचिनी, यक्षिणी आदि ऐसी सिद्धि साधनाओं का वर्णन है जो अविज्ञात तथ्यों की जानकारियाँ बताती सुनाती रहती हैं ।

मधुर संगीत के आकर्षण और प्रभाव की पुष्टि भावना स्तर पर ही नहीं वैज्ञानिक परीक्षणों से भी होती है । संगीत की मादकता पर सर्प और हिरन तक मोहित होते और पकड़े जाते हैं । संगीत लहरी की मस्ती में सामान्य लोगों का भी मन मयूर नाचने लगता है । भावनाएँ उद्वेलित करने वाले संगीत प्रवाह का आनन्द कितनों ने ही चखा है । दीपक राग से बुझेदीपक जलने और मेघ मल्हार में बादल बरसने की बात चाहे संदिग्ध भले ही हो पर इतनी निश्चित है कि बुझे मनों को प्रकाशवान बनाने और उमंगों की वर्षा कराने में संगीत का विशिष्ट महत्त्व है । पेड़-पौधों और खेती की मधुर संगीत के प्रभाव से अधिक बढ़ोत्तरी और उपज होती देखी गयी है । दुधारू पशु अधिक दूध देते और पक्षी अधिक अण्डे देते हैं । स्नायुविक और मानसिक रोगों की चिकित्सा में संगीत के प्रभाव का उपयोग आशाजनक सत्परिणाम उत्पन्न करता है । मनोरंजन की दृष्टि से उसका उपयोग संसार भर में सबसे अधिक संगीत का ही होता है ।

यह सब संगीत के भौतिक लाभ हुए, आध्यात्म क्षेत्र में उसकी गरिमा और भी अधिक बढ़ी-चढ़ी है । चारों वेदों की समस्त रचनाएँ छन्द बद्ध हैं । सामवेद तो पूरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह गायन ही है, उसकी संरचना स्वर शक्ति के आधार पर ही हुई है । तन्त्र शास्त्र में लय, ध्वनि और ताल के आधार पर वाक् शक्ति को विद्युत रूपी बनाया जाता है और उसका उपयोग शब्द भेदी वाण की तरह लक्ष्य प्राप्ति के लिए किया जाता है । तन्त्र शास्त्र के बीज मन्त्रों में ध्वनि विज्ञान की ही महत्ता है ।

नादयोग में सूक्ष्म जगत की गीतमयी दिव्य ध्वनियों को सुनने का अभ्यास किया जाता है । इससे मन की चंचलता दूर होने और शान्ति मिलने का लाभ तो स्पष्ट ही है । इसके अतिरिक्त इस मार्ग पर चलते हुए परमेश्वर को शब्द ब्रह्म के रूप में—परब्रह्म के रूप में—प्राप्त किया जा सकता है । आत्मा तक ईश्वर की वाणी पहुँचने में—ईश्वर तक आत्मा की वाणी पहुँचाने में नाद योग का माध्यम अत्यन्त शक्तिशाली है । योगाभ्यास में नाद योग के असाधारण प्रचलन हैं । कबीर पन्थ, नाथ सम्प्रदाय, राधास्वामी आदि में तो इसी की प्रधानता है । अन्य साधक भी अपने-अपने ढंग से नादब्रह्म का उपयोग करते रहते हैं ।

मन्त्र विद्या में लय और ताल के आधार पर विशिष्ट प्रकार के शब्द चक्र विनिर्मित किए जाते हैं और वे अपने ढंग के विचित्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं । उनका शक्तिशाली प्रवाह वातावरण को विशेष प्रकार के आवेशों से भर सकता है । व्यक्ति विशेष के लिए शुभ कामनाएँ एवं सहायताएँ इसी ध्वनि प्रवाह के माध्यम से भेजी जा सकती हैं भले ही वह कितनी ही दूरी पर रहता हो । नादयोग साधनाशास्त्र का उच्चस्तरीय अभ्यास है । इसके प्रतिफल का अनुभवी साधकों ने विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है ।

योगाभ्यास सामान्य जीवन के साथ भी हो सकता है

योग साधना में ध्यान धारणा के कितने ही प्रयोग विनियोग हैं । इनमें त्राटक का अपना विशिष्ट स्थान है । इसे एक प्रकार से निराकार ब्रह्म के ज्योति स्वरूप का ध्यान कह सकते हैं । आरम्भिक अभ्यास में भगवान की मनुष्याकृति छवियों का अवलम्बन लिए बिना काम नहीं चलता । उसके साथ भावनात्मक आदान-प्रदान सरल पड़ता है । भक्तियोग की साधना भगवान की मनुष्याकृति छवि के साथ आत्मीयता सम्बन्ध करने के अभ्यास से ही आरम्भ होती है । प्रेम की सरसता इसके बिना आती नहीं और श्रद्धा की परिपक्वता का अवलम्बन बनता नहीं । मन की एकाग्रता के लिए आरम्भ में यही अभ्यास सरल पड़ता है ।

ऊँची कक्षा में ज्ञान की प्रधानता होती है । तब भावुकता के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं पड़ती । विवेक और तत्वदर्शन भी उतना ही आनन्द लेने लगता है जितना कि आरम्भिक छात्रों को भक्ति भावना के सहारे मिलता है । आत्म दर्शन—आत्म साक्षात्कार—आत्मानुभूति, ब्रह्म परायणता की स्थिति में तत्व निष्ठा ही प्रधान होती है । ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होने पर आत्मा और परमात्मा का चेतनस्वरूप भली प्रकार दृष्टिगोचर हो जाता है । तब फिर कल्पित आकृतियों का अवलम्बन अपनाना बाल बुद्धि जैसा लगता है । प्रौढ़ावस्था में ज्ञान की गरिमा ही सर्वोपरि हो जाती है । आत्मबोध और तत्व बोध से ही पूरा-पूरा समाधान हो जाता है । तब सहज स्वाभाविक आनन्द की प्रधानता रहने लगती है । भगवान का सत् चित् आनन्द स्वरूप ही आराध्य बन जाता है उस स्थिति में सत्यं शिवं सुन्दरम् की जो तात्विक अनुभूति होती है वह भक्ति भावना की तुलना में न्यून नहीं वरन् अधिक की होती है । समाधान तो तथ्य से ही होता है । व्यापक सत्ता का निराकार होना ही तथ्य है । उच्चस्तरीय साधना तत्व बोधिनी ब्रह्म विद्या पर अवलम्बित होती है । वेदान्त विज्ञान की यही पृष्ठभूमि है ।

ध्यान के लिए आकार का आश्रय आवश्यक है । साधना का प्रमुख अवलम्बन ध्यान है । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए पर ब्रह्म को प्रकाश पुंज माना जाता है । प्रकाश पुंज की ईश्वर प्रदत्त प्रतिमा सूर्य है । उसी की छोटी-बड़ी आकृतियाँ बनाकर निराकार वादी ध्यान करते हैं । दृश्यमान प्रकाश को ज्ञान और ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है । परब्रह्म परमात्मा की सविता के रूप में इसी आधार पर प्रतिष्ठापना की गयी है । गायत्री का प्राण सविता है । सविता की आकृति प्रातःकाल के उदीयमान स्वर्णिम सूर्य जैसी मानी गयी है ।

प्रकाश रूप में ध्यान साधना के सभी प्रकार 'त्राटक' कहलाते हैं । सिद्धान्त यह है कि आरम्भ में खुले नेत्रों से किसी प्रकाश प्रतीक को देखा जाय फिर आँखें बन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके उस ज्योति का ध्यान किया जाय । उगते हुए सूर्य को दो पाँच सेकण्ड खुली आँखों से देखकर आकाश में उसी स्थान पर देखने का कल्पना चित्र बनाया जाता है । वहाँ अधिक स्पष्ट अनुभूति के साथ दीखने लगे । इसके लिए चिन्तन क्षमता पर अधिक दबाव दिया जाता है । सूर्य की ही तरह चन्द्रमा पर, किसी तारक विशिष्ट पर भी यह धारणा की जाती है । प्रकाश को भगवान का प्रतीक माना जाता है और उसकी किरणें अपने तक आने की (चेतना में प्रवेश कर जाने की) दिव्य बलिष्ठता प्रदान करने की धारण की जाती है । मोटे तौर से इसी को त्राटक साधना का आरम्भिक अभ्यास कहा जाता है ।

इससे आगे का अभ्यास अन्तःत्राटक का है । दोनों नेत्रों के बीच आज्ञाचक्र है । इसे तृतीय नेत्र भी कहते हैं । शिव और दुर्गा की देवियों में तीन नेत्र दिखाई पड़ते हैं । यह विशिष्ट अवयव प्रत्येक मनुष्य में होता है, किन्तु प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है । जगाने से जाग जाता है । इसके जागृत होने पर दिव्य दृष्टि जागृत होती है । दिव्य दर्शन—दूरदर्शन इसी जागरण का नाम है । गान्धारी ने इसी दिव्य दृष्टि को जगा लिया था और उसी के सहारे उसने अपने पुत्र दुर्योधन का शरीर वज्रवत बनाया था । संजय ने इसी जागृत क्षमता के सहारे महाभारत के सारे दृश्य घर बैठे देखे और धृतराष्ट्र को सुनाये थे । भगवान शिव ने तृतीय नेत्र को खोलकर उसकी ऊर्जा से कामदेव को जलाकर भस्म किया था । ऐसे-ऐसे कितने ही प्रसंगों का वर्णन मिलता है जिनसे प्रतीत होता है कि जागृत तृतीय नेत्र की (आज्ञाचक्र की) समर्थता कितनी महत्त्वपूर्ण है ?

अन्तःत्राटक से प्रकाश ज्योति की धारणा शूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत विद्यमान अतीव क्षमता सम्पन्न शक्ति केन्द्रों पर की जाती है । षट चक्रों का वर्णन साधना विज्ञान में विस्तारपूर्वक दिया गया है । उन्हें जागृत बनाने के लिए जिन उपायों को काम में लाया जाता है । उनमें एक यह भी है कि उन केन्द्रों पर प्रकाश ज्योति जलने का ध्यान किया जाय । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञाचक्र यह षट चक्र हैं । उनके स्थान सुनिश्चित हैं । उन्हीं स्थानों पर प्रकाश को धारण करने से उनमें हल-चल उत्पन्न होती है और मूर्छना जागृति में बदल जाती है । दक्षिण मार्गी साधना में जागरण की प्रक्रिया ऊपर से नीचे की ओर चलती है और वाम मार्ग में नीचे से ऊपर । गायत्री की उच्चस्तरीय पंचकोषी साधना में आज्ञाचक्र प्रथम है और कुण्डलिनी जागरण में मूलधार से यह जागरण प्रक्रिया आरम्भ होती है ।

ध्यानयोग में अन्तःत्राटक का अभ्यास आज्ञा चक्र से आरम्भ होता है । सूर्य या दीपक की लौ का प्रकाश आज्ञाचक्र के स्थान पर किया जाता है और विश्वास किया जाता है कि उस अतिरिक्त ऊर्जा के पहुँचने से उस केन्द्र में आलोक उत्पन्न होता है और प्रकाश से सूक्ष्म शरीर में अभिनव ऊष्मा का शक्ति संचार बढ़ता है ।

दीपक सर्वसुलभ है । वह हर समय सर्वत्र, सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकता है । सूर्य तो देखने योग्य तभी तक रहता है जब तक वह स्वर्णिम है । श्वेत होते ही उसकी ध्यान उपयोगिता चली जाती है । हर जगह, हर किसी को, हर दिन यह सुविधा भी नहीं होती कि नियत समय पर स्वर्णिम सूर्य का दर्शन करने के साथ-साथ त्राटक का अभ्यास आरम्भ कर सके । कुछ दिन बाद तो बिना किसी प्रकाश अवलम्बन के ही संकल्प से दिव्य नेत्रों द्वारा प्रकाश ज्योति के दर्शन होने का क्रम चल पड़ता है पर आरम्भ में तो माध्यम चाहिए । इसके लिए दीपक को सरल माना गया है । पाँच सेकण्ड खुले नेत्रों से दीपक की लौ को देखकर आँखें बन्द कर ली जाती हैं और भ्रूमध्य भाग के भीतरी खोखले में उस ज्योति के जागृत होने की भावना की जाती है । उस प्रकाश से सूक्ष्म शरीर का सारा क्षेत्र ज्योतिर्मय एवं सशक्त होने की धारणा की जाती है । जब प्रकाश दर्शन धूमिल होने लगे तो आँखें खोल कर उसे देखने और फिर पलक बन्द कर लेने की प्रक्रिया अपना कर उस क्रिया को चलाते रहते हैं । यह अभ्यास दस मिनट से आरम्भ किया जाता है और उसे धीरे-धीरे बढ़ा कर आधा घण्टे तक पहुँचाया जाता है ।

भ्रूमध्य भाग की सीध में मस्तिष्कीय मध्य भाग में पीनियल और पिट्यूटरी नामक दो ग्रन्थियाँ हैं । उनके हारमोन स्राव तथा ऊर्जा प्रवाह शरीर और मस्तिष्क को विभिन्न प्रकार के अनुदान प्रदान करते हैं । शरीर शास्त्री इन ग्रन्थियों के असाधारण महत्त्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को स्वीकार करते हैं । मनःशास्त्र के सूक्ष्म विज्ञानी इन ग्रन्थियों में चेतना की अतीन्द्रिय क्षमताओं की रहस्यमय परतें समाविष्ट मानते हैं ।

इन ग्रन्थियों को अधिक सक्रिय सक्षम बनाने के लिए अन्तःत्राटक द्वारा प्रकाश प्रवेश का अभ्यास किया जाता है । इसमें क्रमशः जितनी सफलता मिलती जाती है उसी अनुपात में आज्ञा चक्र की जागृति का तृतीय दिव्य नेत्र खुलने का लाभ मिलने लगता है । इस जागरण के सत्यपरिणामों का (असाधारण महिमा एवं फलश्रुति का) साधना विज्ञान में विस्तार पूर्वक वर्णन विवेचन हुआ है । आज्ञा चक्र के जागरण की भौतिक और आत्मिक सिद्धियों के अतिरिक्त लक्ष्य प्राप्ति का उच्चस्तरीय उद्देश्य भी इस साधना से प्राप्त होता है । परब्रह्म का अन्तर्जगत में प्रकाश पुँज सविता के रूप में दर्शन करना यह गायत्री मन्त्र की प्राण चेतना का ही साक्षात्कार है । समीपता बढ़ने से ज्योति से ज्योति मिलाकर साधक परम ज्योति बनता है । 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' सूत्र में आत्मा की परम यात्रा का लक्ष्य परम प्रकाश की प्राप्ति को ही बताया गया है । त्राटक अन्तरंग हो और बहिरंग यह साधक की स्थिति पर निर्भर है । दोनों से ही अन्धकार से छूटने और परम प्रकाश को पाने का उद्देश्य पूरा होता है ।

ध्यान नाद और त्राटक के उपरान्त योग साधना का चौथा चरण प्राणायाम और पाँचवाँ मुद्रा है । प्राणायाम में नासिका द्वारा विशेष विधि और विशेष क्रम से साँस खींचने और निकालने की प्रक्रिया अपनाई जाती है । साथ ही संकल्प शक्ति का उपयोग भी किया जाता है । इससे वायुमण्डल में संव्याप्त प्राण तत्व खिंचकर शरीर में प्रवेश करता है और स्थूल तथा सूक्ष्म तथा सूक्ष्म शरीर में प्राण शक्ति की प्रखरता का संचार सम्वर्धन करता है ।

कई व्यक्ति हवा में मिले ऑक्सीजन भाग में प्राण मानते हैं, पर बात ऐसी नहीं है ऑक्सीजन मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक तत्व हैं । वायु में घुला रहने के कारण वह प्रचुर मात्रा में सर्वसुलभ भी है । इतने पर भी वह मात्र पदार्थ है । प्राण चेतन तत्व है । जो ईश्वर तत्व की तरह ही अदृश्य रहते हुए भी सर्वत्र संव्याप्त है । साँस के साथ मात्र हवा और उसके साथ घुली हुई गैसें ही शरीर में प्रवेश करती हैं । संकल्प शक्ति चेतन है । उसका चुम्बकत्व ही आकाश में भरे हुए जीवन तत्व को (प्राण को) अपनी सामर्थ्य के अनुरूप खींचता है । प्राणायाम में श्वास लेने की विशेष विधि और विशेष प्रकार की संकल्प शक्ति का समन्वय ही वैसा अनुकूलन उत्पन्न करता है जिससे साधकों को अधिकाधिक प्राणवान बनने का अवसर मिलता चला जाय । प्राणशक्ति का परिचय शरीर में जीवनी शक्ति के—बलिष्ठता, दृढ़ता, प्रतिकूलताओं को सहन करने की क्षमता के रूप में मिलता है । मन में प्राण की मात्रा का आभास साहस, स्फूर्ति, पराक्रम, पुरुषार्थ, धैर्य, सन्तुलन जैसे गुणों के रूप में मिलता है । अन्तःकरण में प्राण शक्ति को श्रद्धा, निष्ठा प्रज्ञा के—सुनिश्चित दृष्टिकोण एवं प्रचण्ड संकल्प शक्ति के रूप में पाया जाता है । इन विशेषताओं के कारण व्यक्तित्व हर दृष्टि से निखरता और सुसम्पन्न होता है । सर्वतोन्मुखी प्रगति के पथ पर चल सकना इन्हीं विभूतियों के सहारे सम्भव होता है । बाहरी साधनों एवं परिस्थितियों की भी अपनी उपयोगिता है किन्तु व्यक्तित्व जिस आधार पर अन्तः प्रतिभा से सुसम्पन्न होते और उच्चस्तरीय प्रयोजन पूरे करते हैं उन्हें प्राण शक्ति के रूप में ही जाना जाता है । इस तत्व का जो जितना संचय कर सके समझना चाहिए कि उसने उतनी ही मात्रा में वास्तविक समर्थता का सम्पादन कर लिया ।

प्राणायामों में उच्चस्तरीय प्राण विनियोग सोऽहम् साधना है । इसे हंसयोग के नाम से जाना जाता है । शरीर में श्वास के प्रवेश के साथ 'सो' की और निकालने के साथ 'हम्' की सूक्ष्म ध्वनि होती है । श्वास-प्रश्वास क्रिया के साथ अनायास ही चलने वाले इस ध्वनि प्रवाह पर मन को केन्द्रित करके उस दिव्य ध्वनि को श्रवण करने का अवसर मिलता है जो जीव और ब्रह्म के संयोग समन्वय से उत्पन्न होती है । प्रकृति और ब्रह्म के मिलन केन्द्र के ओंकार की ध्वनि निसृत होती है । उसी समागम से उत्पन्न महत्त्व से यह सारा सृष्टि संचार (प्रपंच) चल रहा है । जीव और ब्रह्म के मिलन संयोग में 'सोऽहम्' का संचार होता है । इन दोनों ही ध्वनि प्रवाहों के सहारे ब्रह्मतत्व तक पहुँच सकना सम्भव हो सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साँस के साथ शरीर में प्राण प्रवेश के साथ 'सो' शब्द का श्रवण प्रयत्न इस भावना के साथ करते हैं कि 'स'—वह परमात्मा इस कलेवर में प्रवेश करके साँस के साथ-साथ कण-कण को प्रभावित परिपोषित करता है । साँस छोड़ते समय 'हम्' ध्वनि की अनुभूति की जाती है और निष्ठा जमाई जाती है कि अहम् अहंकार (मैं पन) बाहर निकल रहा है वहिष्कृत हो रहा है । अहंता का विसर्जन दिव्यता का संस्थापन—यही है वह प्रत्यावर्तन जिसके आधार पर मानवी काया में देवत्व का दर्शन होता है । सोऽहम् प्राण साधना को—अजपा गायत्री भी कहते हैं । इसकी महिमा योगाभ्यासों की पंक्ति में बहुत ही उच्चस्तरीय गिनाई गयी है ।

सामान्य प्राणायामों में सूर्य वेदना लोम विलोम, प्राणाकर्षण भस्त्रिका, भ्रामरी, शीतली, शीत्कारी, उज्जायी, आदि ८४ प्रमुख प्राणायामों की गणना है । उन्हें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए (विभूतियों के निराकरण के लिए) चिकिसा उपचार की तरह प्रयोग किया जाता है । प्राण विद्या का अपना स्वतन्त्र विज्ञान है । योगाभ्यास के आध्यात्म प्रयोजनों में उसकी उच्चस्तरीय विधियों का ही प्रयोग होता है ।

योग साधना का पाँचवाँ सोपान है मुद्रा । बन्ध और मुद्राओं का विस्तृत उल्लेख "घेरण्ड संहिता", "शिव संहिता", "गोरक्ष पद्धति" आदि साधना ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक मिलता है । "मूल बन्ध", "जालन्धर बन्ध" "उड्डियान बन्ध" प्रमुख हैं । महाबन्ध और त्रिबन्ध इन्हीं के संयोग से बनते हैं । शक्ति चालिनी मुद्रा, महामुद्रा, शांभवी मुद्रा, उन्मनी मुद्रा, आश्विनी मुद्रा, योनि मुद्रा अथवा चेतनी मुद्रा, खेचरी मुद्रा आदि के नाम मुद्रा प्रकरण में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । मुद्रा और बन्धों का युग्म है । दोनों की गणना एक ही प्रकरण में होती है । मुद्राओं में खेचरी मुद्रा को गायत्री उपासना की उच्चस्तरीय साधना में प्रमुखता दी गयी है ।

जिह्वा को पलट कर तालु से लगाना । जीभ की नोंक से तालु को धीरे-धीरे सहलाना—उस सहलाने से रसानुभूति का अनुभव करना, संक्षेप में यही खेचरी मुद्रा का मोटा रूप है । सिर शीर्ष को ब्रह्माण्ड की उपमा दी गयी है । उसकी पोल में भरे हुए द्रव को क्षीर सागर कहते हैं । इसके मध्य में अवस्थित सहस्त्रार चक्र को सहस्त्र फन वाला शेष सर्प गया है जिस पर विष्णु भगवान—सोये हुए हैं । ब्रह्मलोक की प्रतिकृति ब्रह्मरन्ध्र को (मस्तिष्कीय गह्वर को) माना गया है । तीनों देवताओं के लोक भी इसी गह्वर को अपनी निष्ठा के अनुरूप अनुभवी आचार्यों ने इसी क्षेत्र को बताया है । ब्रह्माजी का नील जल-सहस्त्रदल कमल इसी क्षेत्र में है । जहाँ उन्होंने तप किया और सृष्टि रची । मानसरोवर, कैलाश सहित शिव लोक के रूप में ही इसी क्षेत्र का वर्णन है । ब्रह्मलोक का आधार—तल ही तालु है । इसमें तालु तल की कितनी ही उपमाएँ दी गयी हैं । आकाश में टँगे तारकों की तरह इसके छोटे कोष्ठकों को बताया गया है । यह मधुच्छन्न भी है जिसमें से अमृत मधु टपकते रहने की बात कही गयी है । तालु कोष्ठकों को इन्द्र की सहस्त्र आँखें एवं सहस्त्र योनियाँ बताया गया है और उनसे सोम रस टपकने की बात कही गयी है । काकचंचु को कामधेनु गौ का स्तन बताया गया है । अमृत कलश इसी शीर्ष भाग को कहते हैं । अमृत वर्षा की बूँदें यहीं से टपकती हैं । ऐसे-ऐसे अनेकों प्रतिपादन, विभिन्न साधना विज्ञानियों ने अपने-अपने तर्क प्रमाण और अनुभवों को साक्षी देते हुए प्रस्तुत किए हैं ।

खेचरी मुद्रा के सहारे—तालु संस्थान के साथ जिह्वा के अग्रभाग का समन्वय होता है तो क्रमशः कई प्रकार की मधुर सम्वेदनाएँ उभरती हैं । तन्त्र ग्रन्थों में इसे रतिक्रिया के समतुल्य सरस बताया गया है । उसका एक नाम आत्म रति भी मिलता है । माता के स्तन से दूध पीते समय बालक को जैसी तुष्टि, पुष्टि और संतुष्टि का आनन्द मिलता है वैसी ही खेचरी मुद्रा के अभ्यास से भी कही गयी है । 'खे' कहते हैं आकाश को 'चर' कहते हैं विचरण करने को । आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों एवं ग्रह नक्षत्रों को 'खेचर' कहते हैं । स्वच्छ आकाश में परिभ्रमण करने वाली मनःस्थिति को खेचरी कहा गया है । जिस प्रकार पिंजरे से निकल पर पक्षी आकाश में उड़ता है । उसी प्रकार इस साधना के सहारे भव-बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छतापूर्वक अभीष्ट दिशा से उड़ चलने का अवसर जिस स्थिति में मिले उसे खेचरी मुद्रा नाम दिया गया है । इस साधना में सफलता मिलने पर साधक को जीवन मुक्त स्थिति में पहुँचने का लाभ मिलता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव लोक अपने काय कलेवर में विद्यमान हैं । ब्रह्म गह्वर उनका केन्द्र है । तालु को उसका प्रवेश द्वार माना गया है । द्वार खटखटाने पर खोलने वाले उसे खोल देते हैं । तालु और जिह्वा के अग्रभाग का समागम एक प्रकार से परब्रह्म का द्वार खटखटाना ही है । उस अनुरोध पर प्रवेश की सम्भावना बढ़ती है । बच्चा स्तन पान करता है तो उसे दूध भी मिलने लगता है । खेचरी मुद्रा के अभ्यास को इन्हीं प्रयोजनों से मिलती-जुलती प्रक्रिया समझा जाना चाहिए ।

योगाभ्यास के पाँच प्रकरणों में खेचरी मुद्रा अन्तिम है किन्तु उसका प्रभाव ध्यान, नाद, त्राटक, प्राणायाम को पूर्व चरणों की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं है । इनमें से कौन किसे, किस तरह, कितनी मात्रा में सम्पन्न करे यह अपनी स्थिति का उचित पर्यवेक्षण करते हुए किसी अनुभवी साधक से ही निर्णय निर्धारण कराया जाना चाहिए ।

सिद्धियों की दिशा में ले जाने वाला राजमार्ग

मन की चंचलता प्रसिद्ध है । वह क्षण-क्षण में अस्त-व्यस्त बना इधर-उधर उड़ता रहता है । एक स्थान पर न टिक पाने से किसी महत्त्वपूर्ण दिशा में गम्भीरतापूर्वक सोच सकना और तन्मयतापूर्वक प्रस्तुत कार्य कर सकना सम्भव नहीं हो पाता । एकाग्रता और तत्परता के बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती । जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य दत्तचित्त होकर करने से ही सम्पन्न होते हैं । चंचलता प्रगति पथ की सबसे बड़ी बाधा है । इसके रहते हुए सुयोग्य व्यक्ति भी पग-पग पर ठोकरें खाते और असफल रहते देखे जाते हैं । भौतिक क्षेत्र की भाँति आत्मिक क्षेत्र की सफलताएँ भी चंचलता के चित्तवृत्तियों के निरोध-परिष्कार पर निर्भर हैं । योग की परिभाषा करते हुए महर्षि पातंजलि ने उसे चित्तवृत्तियों का निरोध बताया है । इस चित्तवृत्ति को दो रूपों में देखा जाता है—एक तो अस्थिर चंचलता, दूसरे पाशविक कुसंस्कारों की ओर रुझान । इन दोनों ही अवांछनीयताओं पर नियन्त्रण स्थापित करने से चित्तवृत्ति निरोध की योग साधना सम्भव होती है । दीर्घकाल से संग्रहीत कुसंस्कारों पशु प्रवृत्तियों को परिवर्तित कर उच्चस्तरीय दिव्य आस्थाओं का स्वरूप दे देने की प्रक्रिया योग है । इसके लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ अपेक्षित है ।

शरीर को सक्रिय और मन को सन्तुलित एवं एकाग्र पर ही इतना प्रबल पुरुषार्थ सम्भव है । एकाग्रता मन-मस्तिष्क की एक व्यवस्थित चिन्तन विधि है जिसके लिए आसन, प्राणायाम आदि की शारीरिक-मानसिक प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं । ध्यान-धारणा से मस्तिष्कीय अस्तव्यस्तता और बिखराव पर नियन्त्रण पाया जाता है साथ ही साथ अचेतन मन की गहन परतों में दबी पड़ी विभूतियों को उभारा जाता है । इस अभ्यास में तरह-तरह की आकर्षक प्रतिभाएँ सामने रखकर अथवा उन्हें भावना क्षेत्र में बिठाकर उनके साथ एकाग्रता जोड़ने का अभ्यास किया जाता है । अध्यात्म साधना की यह एकाग्रता सम्पादन प्रक्रिया मस्तिष्क को साधने की दिशा में एक अत्यन्त छोटा-सा प्रयास मात्र है । समग्र आध्यात्मिक प्रगति तभी सम्भव है जब अपनी चेतना को विश्व चेतना का घटक मानकर स्वार्थ को परमार्थ में विकसित किया जाय ।

योग का लक्ष्य है—आत्मा को परमात्मा से जोड़ना । व्यष्टि सत्ता का समष्टि सत्ता में समर्पण ही योग है । यह भावोत्कर्ष की साधना द्वारा ही सम्भव है । व्यक्तिवादी अहंता और स्वार्थवादी महत्त्वाकांक्षा में परिधिबद्ध मन को सार्वभौम चेतना से जोड़कर अपने चिन्तन और कर्तृत्व को उत्कृष्ट बनाना ही आध्यात्मिक प्रगति है । इससे कम कुछ भी नहीं । सही दिशा में चलने पर मनुष्य में देवत्व के उदय की प्रक्रिया का प्रारम्भ अनिवार्य है । योग वस्तुतः एक भाव विज्ञान है, जो जीव को ब्रह्म से चिरमिलन की भावभूमिका की ओर ले जाता है । लघु को महान बनाने की यह विद्या है । यह मूल लक्ष्य यदि विस्मृत-उपेक्षित रहा, तो फिर आसन, प्राणायाम, ध्यान, बन्ध मुद्रा आदि का अभ्यास-विस्तार एक सामान्य व संकीर्ण मनःक्रीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

योग की अनेकानेक शाखाएँ हैं । उनमें से किसी एक का आश्रय लेकर अतीन्द्रिय क्षमताएँ विकसित की जा सकती हैं, परन्तु वे चमत्कारी नहीं कही जा सकतीं । वस्तुतः वह आत्म विधा का ही एक अंग है । योग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उद्देश्य वस्तुतः अचेतन मन का परिष्कार एवं विकास है । व्यक्ति का निर्माण अचेतन मन की गहरी परतें ही सम्पन्न करती हैं । मनोविकार बुद्धि क्षेत्र में नहीं, वरन् स्वभाव के अन्तर्गत आदतें बनकर घुस बैठते हैं । मनुष्य उनकी बुराइयाँ समझता है और छोड़ना भी चाहता है, किन्तु संचित अभ्यासों का दबाव इतना अधिक होता है कि अपने ही निर्णय के विरुद्ध रास्ते पर चलने के लिए बाध्य होना पड़ता है । इन आदतों के पीछे अचेतन मन ही काम करता है ।

शरीर की अनवरत गतिविधियों में सचेतन मन या जागृत मस्तिष्क का नगण्य जितना अधिकार होता है । संचालन अचेतन की अभ्यस्त प्रवृत्तियाँ ही करती हैं । माँसपेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन, पलकों का निमेष-उन्मेश, भूख-प्यास, फेफड़ों का श्वास-प्रश्वास, निद्रा-जागृति आदि असंख्य शारीरिक क्रिया-प्रतिक्रियाएँ अचेतन मन के नियन्त्रण में ही चलती हैं । हारमोन ग्रन्थियों से लेकर प्राणों के अवधारण तक पर अचेतन का ही प्रभाव है । मनोविकारों के कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाना और सद्भावनाओं के आधार पर व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समुन्नत होते चलना इसी संस्थान की संरचना के कारण सम्भव होता रहता है । उत्थान और पतन के बीज इसी क्षेत्र में उगते हैं । व्यक्तित्व की सुविस्तृत जड़ें इसी भूमि में घुसी होती हैं ।

अचेतन को ही 'चित्त' कहते हैं । योग द्वारा इसी का निरोध और परिष्कार-परिशोधन किया जाता है । मस्तिष्क का प्रेरक केन्द्र यही है । वह गयी-गुजरी स्थिति में पड़ा रहे तो सचेतन की बुद्धिमत्ता का उपयोग धूर्तता, दुष्टता जैसे निकृष्ट प्रयोजनों के अतिरिक्त किसी रचनात्मक कार्य में सम्भव न हो सकेगा और बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य भी उज्ज्वल भविष्य का सृजन न कर सकेगा । यों तो सचेतन मन और बुद्धि को विकसित करने के लिए शिक्षा, साहित्यिक सम्पर्क जन्य, अनुभव सम्पादन करने जैसी अनेक विधि-व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं, किन्तु अचेतन मन की (चित्त की) चिकित्सा करने में यौगिक उपाय-उपचारों को ही काम में लाया जाता है जिसे अध्यात्म की भाषा में मनोमय कोश की साधना भी कहते हैं । यद्यपि आज परामनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान के अन्तर्गत भी अचेतन की क्षमता को समझने और उसमें अभीष्ट परिवर्तन करने के उपाय खोजे तथा सोचे जा रहे हैं, किन्तु तत्वदर्शियों की अनुभूत पद्धति योग साधना के अतिरिक्त और कोई कारगर मार्ग अभी तक करतलगत हुआ नहीं है ।

प्रख्यात मनःशास्त्री सर अलेक्जेण्डर कैनन का कहना है कि मनुष्य इस विश्व की सबसे विलक्षण संरचना है । उसका सारतत्व मन-मस्तिष्क है और उसका नवनीत अचेतन संस्थान है । दुर्भाग्य से इसी केन्द्र की न्यूनतम जानकारी हमें उपलब्ध है । वैज्ञानिक अभी तक यह नहीं जान सके कि इस संस्थान को प्रभावित, परिवर्तित और परिष्कृत करने के लिए क्या किया जा सकता है । शरीर चिकित्सा में काम आने वाले उपचारों की पहुँच वहाँ तक है नहीं । लगता है स्वसम्वेदन, स्वसम्मोहन और स्वनिर्देशन जैसे उन्हीं उपायों को काम में लाना पड़ेगा जिन्हें पुरातन योगीजन अपने ढंग से काम में लाते रहे हैं । जो भी हो संसार की सुखशान्ति और मानवी प्रगति से मर्म केन्द्र तक हमें पहुँचना ही होगा । किसी उपाय से अचेतन को नियन्त्रित करने की विधि-व्यवस्था हस्तगत करनी ही होगी । इसके बिना समुन्नत व्यक्ति और समृद्ध विश्व की सम्भावना नहीं बन सकेगी ।

इस तथ्य को दूरदर्शी अध्यात्मवेत्ता ऋषि-मनीषियों ने चिरकाल पूर्व ही जान लिया था । उन्होंने मानवी व्यक्तित्व का आधार केन्द्र मन के अचेतन भाग चित्त को माना है और इस बात पर बहुत जोर दिया है कि समृद्धि के अन्यान्य आधारों पर जितना ध्यान दिया जाता है उससे कम नहीं, वरन् अधिक ही मानसिक परिष्कार पर दिया जाय । इस क्षेत्र के परिष्कार एवं विकास के बिना भौतिक एवं आत्मिक प्रगति की आशा पूरी नहीं हो सकेगी । उनके अनुसार चेतन मस्तिष्क की सक्रियता अचेतन की शक्ति तरंगों को काटती हैं । इसलिए जब चेतन मन अधिक सक्रिय होगा तो अचेतन स्वतः ही दबा और अविकसित ही पड़ा रहेगा । बौद्धिक संस्थान की सक्रियता को शिथिल करने पर अचेतन केन्द्र जागृत होता है । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जैसी साधनाओं द्वारा चेतन मन-मस्तिष्क को शिथिल, निष्क्रिय एवं शून्य स्थिति में ले जाया जाता है । तब ही दूरदर्शन दूर-दृष्टि, विचार प्रेषण, भविष्य ज्ञान, अदृश्य का, परोक्ष का दर्शन आदि अनेक अतीन्द्रिय क्षमताएँ प्राप्त की जा सकती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सचेतन बौद्धिक मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छाशक्ति, प्राणशक्ति को अचेतन के विकास में प्रयुक्त करने पर शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन सम्भव है । अतिदीर्घजीवी होना, अतिशक्तिशाली होना, अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त करना आदि उसी स्थिति में सम्भव है ।

छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं से लेकर पशु-पक्षी तक बौद्धिक दृष्टि से मनुष्य से पिछड़े होते हैं । उनका चिन्तन और सचेतन क्षेत्र शिथिल रहता है । इसी का लाभ उनके अचेतन को मिलता है । कुत्तों की घ्राण शक्ति अति सूक्ष्म होती है । चमगादड़ के ज्ञानतन्तु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं । ह्वेल मछली का अचेतन मस्तिष्क भी बहुत क्रियाशील होता है और उसके शरीर में पनडुब्बियों की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं । समुद्री झींगे की शरीर प्रणाली जेट-विमान की प्रणाली जैसी होती है । उसका अचेतन मस्तिष्क ही इस तीव्र दौड़ में उसे समर्थ बनाता है । अनेक वन्य पशु एवं जीव-जन्तु मौसम सहित अन्यान्य प्राकृतिक आपदाओं जैसे वर्षा, भूकम्प आदि की जानकारी समय से पूर्व ही अपने अचेतन मस्तिष्क द्वारा प्राप्त कर लेने में समर्थ होते हैं । वर्षा ऋतु आने से पूर्व ही चींटियाँ तथा अन्य कीड़े अपना आहार इकट्ठा कर लेते हैं । ये सभी विशेषताएँ इनके चेतन मस्तिष्क का ही परिणाम हैं । मनुष्य के चेतन मस्तिष्क की अति सक्रियता से उत्पन्न ऊष्मा अचेतन को दबा देती है जिससे उसकी अलौकिक क्षमताएँ प्रसुप्त ही पड़ी रहती हैं ।

इसलिए योग में प्रथम चरण के रूप में मानसिक सन्तुलन पर बल दिया जाता है । अनुकूल, प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त को अनुद्वेलित रखने का अभ्यास इसीलिए किया जाता है कि उसमें मानसिक ऊष्मा में अनावश्यक वृद्धि नहीं होती और अचेतन भी क्षीणता और बिखराव से बच जाता है । इस तरह मानसिक सन्तुलन का प्रथम चरण सध जाने पर अगला चरण उठाया जाता है । चेतन मस्तिष्क की गतिविधियों को कुछ समय के लिए रोककर उस संस्थान में क्रियाशील विद्युत शक्ति को अचेतन क्षेत्र में नियोजित करने पर अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित होती है ।

सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी ड्रमण्ड एवं मैलोन के अनुसार मनुष्य का अचेतन मन एक तिजोरी है—समुद्र है जिसमें सभी तरह के रत्न भण्डार रस एवं विष भरे हैं, हम जिसे उभार लें, वे ही सचेतन पर अधिकार जमाये दीखेंगे । वस्तुतः अचेतन में सब कुछ दिव्य और भला ही नहीं है । पाशविक कुसंस्कार वहाँ भी विराजमान हैं जिनका परिष्कार-परिशोधन आवश्यक है । इसके लिए सन्तुलन और एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जागृत दिशा में ही लय कर देना पड़ता है जिसे अष्टांग योग की चरमावस्था कहते हैं, जिसके लिए प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं । इन साधनाओं के द्वारा सचेतन मस्तिष्क की चिन्तन शक्ति एवं संकल्प शक्ति को शिथिल करते हुए वहाँ लगे तेजस् को अचेतन में नियोजित किया जाता है, तभी अनुपम दिव्यताएँ प्रकट होना शुरू होती हैं । योग और लय का आश्रय लेकर अचेतन को कुसंस्कारों से मुक्त कराने की दिशा में जो जितनी अधिक प्रगति करता है, वह उतना ही समर्थ सिद्ध पुरुष कहा जाता है । यही योग का उद्देश्य है ।

योगानुभूतियों का एक ही राजमार्ग : आत्म नियन्त्रण

संकल्प शक्ति चमत्कारों में एक यह भी है कि व्यक्ति अपनी काया पर इच्छित नियन्त्रण प्राप्त करले और उनके अवयवों का इच्छित प्रयोग कर सके ।

आमतौर से ऐसा होता नहीं है । सचेतन मस्तिष्क का शरीर पर सीमित आधिपत्य है । यों हाथ-पैर की हलचलें उसी के आदेश से होती हैं । कमाने-खाने से लेकर दिनचर्या से सम्बन्धित कार्य उसी की योजना से चलते हैं । इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि अवयवों की आन्तरिक गतिविधियों पर विचार मस्तिष्क का कोई नियन्त्रण नहीं है । वे अचेतन के निर्धारण का अनुगमन करती हैं । रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष पर विचार मस्तिष्क का कोई नियन्त्रण नहीं । वह उनमें से किसी को भी स्वसंचालित गतिविधियों को न तो रोक सकता है और न बढ़ा सकता है । पाचन तन्त्र, मल-विसर्जन, स्वेद जैसी गतिविधियाँ किसी की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं करतीं, वरन् इनके दबावों के अनुरूप सचेतन को इनकी आवश्यकतानुसार व्यवस्था बनाने को बाधित होना पड़ता है । मल-मूत्र, छींक, हिचकी, खाँसी आदि का वेग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उभरने पर उसे रोक सकना नहीं बन पड़ता, वरन् तद्नुरूप आचरण करने के लिए अवयवों को बाधित होना पड़ता है ।

मनुष्य शरीर का स्वामी है, यह बात जितनी सच है उतनी ही यह भी सही है कि शरीर की आवश्यकताओं और उमंगों को पूरा करने के लिए विचार तन्त्र को बल पूर्वक बाधित होना पड़ता है । पेट में भूख लगी हो, नींद्र की खुमारी चढ़ी हो तो मस्तिष्क को उसकी व्यवस्था जुटाने के लिए विवश होना पड़ता है । ऐसी दशा में उसे शरीर का गुलाम भी तो कहा जा सकता है ।

प्रत्यक्ष कर्म ही सचेतन की इच्छानुसार हो सकते हैं । पर इस समूची मशीन की निजी व्यवस्था पर आन्तरिक हलचलों पर किसी का कोई नियन्त्रण नहीं । पाचक रस उत्पन्न न हों तो अपच का मरीज दवा-दारू खोजने के अतिरिक्त और क्या करे ? रक्तचाप, मधुमेह, अनिद्रा, तनाव आदि को कोई चाहता (बुलाता) थोड़े ही है । वे तो अनचाहे मेहमान की तरह अनायास ही आ धमकते हैं । आश्चर्य यह कि यह कहीं बाहर से नहीं आते भीतर से ही उपजते हैं । अपने ही खेत में अनचाही फसल उगने का यह कौतुक आये दिन देखना पड़ता है । इससे विदित होता है कि खेत अपना होने पर उसमें खर-पतवार उगना या कृषि कीटकों का उपज पड़ना किसी दूसरी ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत चलता है जो मालिकी का दावा करने वाले परवाह किए बिना अपनी मर्जी करता है ।

आत्म नियन्त्रण को योगाभ्यास का मूलभूत उद्देश्य माना गया है । इसके तीन पथ हैं । एक वह जिसे स्वभाव, आदत, अभ्यास कहते हैं । सभ्यता, संस्कृति इसी को कहते हैं । शिष्टाचार, सज्जनता, नियमितता, आदि सद्गुणों की आत्म नियन्त्रण की परिधि में ही गिना जायेगा । इस क्षेत्र का अनुशासन जिसने नहीं सीखा वे आलसी, प्रमादी, गन्दे, असभ्य स्तर के होते हैं और ऐसे आचरण करते हैं जिससे कुरुचि उत्पन्न हो और भर्त्सना प्रताड़ना सहनी पड़े । आत्म नियन्त्रित व्यक्ति इन दुर्गुणों से बचे रहते हैं और प्रतिष्ठित नागरिकों में गिने जाते हैं ।

आत्म नियन्त्रण का दूसरा पथ है । विचारों पर नियन्त्रण । मस्तिष्क का लिव-लिवा पदार्थ यों अपनी ही खोपड़ी की पिटारी में कसा जकड़ा होता है फिर भी उसमें उठने वाली विचार तरंगें हिरनों की तरह किसी भी दिशा में कुलाचें भरती और बन्दरों की तरह कुछ भी उचक-मचक करती रहती हैं । बे-सिर-पैर के विचार उमड़ते रहते हैं । उनमें कितने ही अनर्गल, असम्भव, उपहासास्पद तक होते हैं । उनके कारण मस्तिष्कीय शक्ति का अपव्यय भी बहुत होता है और कई बार तो उद्वेग, उन्माद तक उठ खड़ा होता है । ऐसे बेतुके लोग जब किसी प्रसंग में सही सोचने तक में समर्थ नहीं होते तो फिर कुछ महत्त्वपूर्ण काम आरम्भ या पूरा कर सकेंगे, इसकी आशा ही कैसे की जाय ?

विचारों पर नियन्त्रण को मनोनिग्रह कहते हैं । मन को वश में करने के लाभों का अध्यात्म शास्त्र में सुविस्तृत महात्म्य बताया गया है । मनोविज्ञान की दृष्टि से भी इस नियमन के लिए प्रशिक्षण एवं वातावरण बनाने के लिए प्रयत्न किया जाय । 'ब्रेन वाशिंग' के नाम से इस क्षेत्र की धुलाई के वैज्ञानिक प्रयास भी चल रहे हैं । साहित्य और कला के प्रशिक्षण और प्रचार के अनेकानेक उपचार उसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होते रहते हैं । सभ्यता के विकास में शिक्षा का कितना बड़ा योगदान है इसे सभी जानते हैं । शिक्षा और कुछ नहीं विचार क्षेत्र को विस्तृत करने की विधि व्यवस्था मात्र है ।

आत्म नियन्त्रण का तीसरा क्षेत्र है अचेतन की गहराई तक सचेतन की पहुँच । स्थिति को समझने और आवश्यकतानुरूप उसमें हस्तक्षेप एवं परिवर्तन का कौशल । इसे हठयोग कहा जाता है । हठयोग अर्थात् शरीर के आन्तरिक क्रिया-कलापों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन परिवर्धन ।

सामान्यतया शरीर संचालन का क्रम प्रकृति प्रेरणा के अनुसार ठीक ही चलता रहता है पर उनमें कई बार विकृतियाँ ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती हैं जिनको सुधारना चिकित्सा या शल्य क्रिया द्वारा भी नहीं बन पड़ता उसमें परिवर्तन करने के लिए अचेतन के साथ जुड़े हुए तारों को हिलाना-डुलाना पड़ता है । चूँकि यह क्षेत्र विचार बुद्धि की प्रभाव परिधि से बाहर है उसमें हेर-फेर करने के लिए अचेतन क्षेत्र का आश्रय लेना पड़ता है । यह हर किसी के बस की बात नहीं । इसे कर सकना उन्हीं के लिए सम्भव है जो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगाभ्यास के माध्यम से इस स्तर की क्षमता अर्जित कर लेते हैं ।

दीर्घ जीवन के लिए—जीवकोशों को विश्राम देने की आवश्यकता पड़ती है । यह कार्य हृदय और मस्तिष्क की गतिविधियों को कुछ समय के लिए रोक देने से ही सम्पन्न हो सकता है । यह विराम सामान्यतया मनुष्य के बलबूते से बाहर है फिर समाधि के अभ्यास से उस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है जिसे अर्द्ध मृत्यु के समतुल्य ठहराया जा सके । समाधि से योगीजन पुराने शरीर में रहते हुए भी उसे समय-समय पर बार-बार नवीन कर लेते हैं । एक ही जन्म में कई जन्मों की जीवन यात्रा का लाभ लेते हैं ।

समाधि स्थिति में बाह्य मस्तिष्क का दबाव अचेतन पर से हट जाता है ऐसी दशा में उन्हें महाचेतन के साथ सम्बन्ध जोड़ने में सरलता मिल जाती है । इस स्थिति में उसे वह जानने, देखने, सुनने, समझने का अवसर मिलता है, जो इन्द्रिय शक्ति के सहारे सम्भव नहीं । इस स्थिति को दिव्य दर्शन या अवरोधानुभूति कहते हैं ।

अतीन्द्रिय क्षमताओं का क्षेत्र अचेतन है । उसे यदि अवसर मिले तो उन्हें जगाने, उभारने में अपनी सामर्थ्य को केन्द्रित करे पर कठिनाई यह है कि अवयवों की आन्तरिक व्यवस्था सँभालने में निरन्तर व्यस्त रहते उसकी अधिक शक्ति चूक जाती है । इस व्यस्तता से समय-समय पर छुटकारा दिलाना और निर्वाह संकट खींचने से आगे बढ़कर कुछ ऊँचा पराक्रम करना जिस स्थिति में होता है उस विश्रान्ति को समाधि कहते हैं । आत्म नियन्त्रण की यह सर्वोच्च स्थिति है ।

अचेतन पर प्रभुत्व जमा सकने के लिए जैसी प्रचण्ड संकल्प शक्ति की आवश्यकता है उसे अर्जित करने के लिए कई प्रकार की तितिक्षाएँ करनी होती हैं । तपश्चर्या विधान में ऐसे कितने ही कृत्यों का समावेश है जिनमें दैनिक अभ्यासों में गतिरोध उत्पन्न करने जैसी लड़ाइयाँ अपने आपे से लड़नी पड़ती हैं । हठयोगी तपस्वी यही करते रहते हैं और अन्ततः समाधि स्थिति तक पहुँचते हैं ।

समाधि की चरम स्थिति वह है जिसमें हृदय और मस्तिष्क अपना शरीरगत क्रिया-कलाप घटाकर न्यूनतम कर लेते हैं । पर यह आवश्यक नहीं कि हर किसी को इसी स्थिति तक पहुँचना पड़े । भाव परक ध्यान जैसे उपायों के सामान्य जन भी अन्तःक्षेत्र को एक सीमा तक शिथिल कर सकते हैं और उतने से भी समाधि का आंशिक लाभ ले सकते हैं ।

एक कदम भर रख दें आप पहुँच तो जायेंगे ही

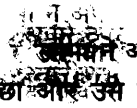
मिस्र के योगी सुग्र-अल-जहीर ने अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए कई देशों की यात्राएँ कीं, अनेक सिद्ध योगियों से मिले और एक से एक चमत्कारी अनुभव प्राप्त किए । इन अनुभवों को उन्होंने लिपिबद्ध भी किया है । जिस स्थान पर पहुँच कर उन्हें लगा कि यहाँ मेरी यात्रा का उद्देश्य पूरा हो गया है, वह स्थान मंगोलिया के सघन वनों में स्थित एक सिद्ध पीठ है, जहाँ हर किसी के लिए पहुँचना सम्भव नहीं है । योगी जहीर ने उस स्थान को सहस्र सिद्धों का मठ, नाम दिया है और वहाँ पहुँचने का यात्रा वृत्तान्त इसी शीर्षक की पुस्तक में सविस्तार लिखा है ।

एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"सघन वन और घटाटोप झाड़ियों में से गुजरते हुए हम लामा के साथ एक ऐसे स्थान पर पहुँच गए जहाँ एक-एक फुट की घास और छोटे-छोटे कंटीले पौधे उगे हुए थे जिनमें लाल, पीले और बैंगनी रंग के फूल लग रहे थे । इस वृक्षहीन स्थान पर आकर लामा ने अपना दीर्घ कालीन मौन तोड़ा और हमारी ओर अभिमुख होकर वे बोले—"यहाँ से हमें नीचे नदी के किनारे की तरफ उतरना है । रास्ता बड़ा खराब है । सीढ़ियों की तरह तुम लोगों को उतरना-चढ़ना होगा । इसलिए थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर लेना उचित रहेगा ।"

"शामियाने सी छायी एक चट्टान के नीचे पहुँच कर वे रुके और जमीन पर से एक पत्थर उठाकर बोले इस प्रकार के पत्थर तुम लोगों ने नहीं देखे होंगे । संगमरमर का पत्थर भी इससे कम सफेद होता है । तुम इसमें अपना चेहरा भी देख सकते हो और चेहरा ही क्यों उससे भी अधिक देखने को मिल सकता है । जिस दुनिया को हम पीछे छोड़ आये हैं, उसे भी इस पत्थर में देखा जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.११२ साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान



उसने अपने दुपट्टे से उस पत्थर को भली-भाँति पोंछा और उसे बारी-बारी से हमारे हाथों में रख दिया मैंने बगुले के पंख की तरह सफेद उस पत्थर को जैसे ही अपने हाथ में लिया मुझे अनुभव हुआ कि मैं अपनी स्थिति गँवा बैठा हूँ उस पत्थर में देखा कि मैं वापस अपने उस मकान में हूँ जो नील के छोर पर बसा हुआ है और अपने इबादती कमरे में बैठी मेरी माँ शाम के रोजे खैरात के लिए रोटियों के पैकेट बना रही है ।

"मैंने उस पत्थर के भीतर उस अतीत को देखा जो मुझसे पीछे छूट गया था और लौकिक तर्क के अनुसार जो न कभी मुझ तक वापस आ सकता है और न मैं ही वहाँ तक पहुँच सकता हूँ । हर क्षण हर पल, सो सके । हर आवागमन द्वारा मैं अपने अतीत से दूर भागता जा रहा हूँ और शैशव तक की सारी घटनाएँ मेरी आँखों के सामने चलचित्र की तरह घूम गयी हैं ।

सामान्यतः ठीक से यह भी याद नहीं रहता कि कल क्या हुआ था बीते कल की सुबह से शाम तक घटी घटनाओं को भी सिलसिले बार याद करने का प्रयत्न किया जाय तो आधी से अधिक बातें याद नहीं रहतीं । कल-परसों के क्रम से ज्यों-ज्यों अतीत की घटनाओं का स्मरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि स्मरण शक्ति जबाव देती जा रही है । वर्षों बीत चुके किसी दिन के बारे में याद किया जाय तो कुछ भी याद नहीं आता कि अमुक तिथि को सुबह से शाम तक क्या-क्या घटा था ? मनुष्य की स्मरण शक्ति कमजोर है और बीती हुई घटनाओं पर विस्मृति आवरण दिनों-दिन प्रगाढ़ होता जाता है । प्रकृति ने यह व्यवस्था मनुष्य के हित में ही की है । अन्यथा दुःखद स्मृतियों के भार से दबा मनुष्य कभी का टूट जाय ।

लेकिन वे घटनाएँ पूर्णतः विस्मृत नहीं होतीं । किसी फिल्म की भाँति उनका अंकन अवचेतन मन में हो जाता है और जब चाहे तब उन सब बातों को पूरी तरह याद किया जा सकता है । उस समय, जब वे घटनाएँ घट रही थीं, तब जो बातें हमारे ध्यान में नहीं आयी थीं वे भी अचेतन में अंकित हो जाती हैं । ठीक उसी प्रकार जैसे कि कैमरा सामने प्रस्तुत सभी वस्तुओं के चित्र ले लेता है, भले ही फोटोग्राफर ने उन दृश्यों को देखा हो या न देखा हो ।

यह स्थिति आत्मिक शक्तियों को जगाकर ही प्राप्त की जा सकती है । काल की गति निःसन्देह प्रबल है । ध्रुव स्फूर्ति से वह सतत् सम्वेदनशील है और वह पीछे फिर कर नहीं देखता कि यह भी ठीक है । परन्तु आत्म-तत्व एक ऐसी सत्ता है जो काल से भी परे है । उस सत्ता को काल जथी जा सकता है अर्थात् उस पर पीछे जाने, आगे पहुँचने का कोई नियन्त्रण प्रतिबन्ध नहीं है । यदि उस सत्ता को पहचान लिया जाय तो संकल्प मात्र से सुदूर अतीत और अनागत भविष्य के गर्भ में झाँका जा सकता है ।

सुग्र-अल-जहीर के हाथ में लामा ने जो पत्थर थमाया वह जहीर की आत्म चेतना को उसी स्तर का क्षणिक उद्दीपन कर गया । कारण कि उस पत्थर के साथ लामा का योगबल संयुक्त था । जहीर ने पूछा—इस प्रकार कितने दूरस्थ अतीत में जाया जा सकता है ।

लामा ने कहा—जितना चाहो । इस अधो काल के किसी भी खण्ड को व्यक्ति संकल्प सिद्धि द्वारा देख सकता है । यहाँ तक कि तुम अपने किसी भी जन्म की कोई भी घटना इस पत्थर में वापस घटित देख सकते हो । किन्तु तुम्हें वह तुम्हारी अपनी नहीं पराई ही लगेगी क्योंकि पूर्व जन्म की स्मृतियाँ तुम्हारे लिए अपरिचित हो चुकी हैं ।

कहा जा चुका है कि मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत दुर्बल है और वह दुर्बलता प्रकृति ने उसके हित के लिए ही कायम की है । कल्पना करें कि कदाचित इसी जन्म की शुरू से अब तक की घटनाएँ चित्रशः याद हों तो आज का जीवन व्यतीत करना भी दूभर हो जायेगा । इसलिए व्यक्ति अपने अतीत को भूलता जाता है । विस्मृति के अज्ञात लोक में वह व्यर्थ और अनुपयोगी बातों को व्यर्थ वस्तुओं की तरह ही फेंकता जाता है । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति उन स्मृतियों को पूर्णतः गँवा ही देता है । भूल भर जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करते हुए व्यक्ति अपने दुःखद वर्तमान से कुछ समय के लिए मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

लामा ने सुग्र-अल-जहीर से कहा—तुम नहीं जानते कि तुम यहाँ क्यों आये हो ? मेरे साथ चलो, तुम्हें उसका रहस्य समझ में आ जायेगा । मेरे गुरु की आज्ञा मुझे अभी ही मिली है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तब्ध भाव से पूछा जहीर ने गुरु की आज्ञा कब मिली ? कैसे मिली ? मुस्कान मधु उँडेलते हुए लामा ने कहा—अभी-अभी इसी क्षण । सामने दीख रही पर्वत चोटी के आगे की सात चोटियों के पार पंचनन्द के संगम पर वह मृगचर्म पर बैठे हैं और हमारे प्रत्येक पद परिचालन को न केवल देख रहें, बल्कि हमारे विचारों की गूँज अनुगूँज भी सुन रहे हैं ।

गुरु से साक्षात् होने पर लामा गुरु ने योगी जहीर से कहा—"पूर्व जन्म के योग भ्रष्ट चर्म आवरण को उतार फेंको और तुमने कई जन्मों तक जो सिद्धि सँजोयी है उसे फिर से आरम्भ करो ।"

लामा ने पत्थर हाथ में ले लिया और जहार को सम्बोधित करते हुए कहा—यह है तुम्हारे पिछले जन्म के बासठवें वर्ष की घटना । इसमें जो काली आँखों वाला साधु देख रहे हो वह तुम हो । मंगोलिया के इसी भू-भाग में तुम्हारा मठ था·····लामा कहे जा रहा था और जहीर सम्मोहित सा सब सुन रहा था । वे सारे दृश्य लामा के हाथ में पकड़े हुए पत्थर पर चित्रपट की तरह प्रतिच्छायित होते जा रहे थे । इन दृश्यों को सहस्र सिद्धों के मठ में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

"एक साधुवेशी लामा अपने आसन पर बैठा है । कई लामा आते हैं । श्रद्धा प्रणाम करते हैं, दीक्षा लेते हैं और चले जाते हैं । कभी-कभी यात्री नागरिक भी भेटें ले लेकर आते हैं और मन्त्रोपदेश सुनकर तृप्ति का अनुभव करते हैं । एक दिन एक पालकी आश्रम में आती है । पालकी के भीतर एक अत्यन्त रूपवती नारी अपनी परिचारिकाओं के साथ नीचे उतरती है । वह मोतियों का थाल अर्पण करके लामा की अभ्यर्थना करती है·····यह है उस राज्य की रानी ।"

"दृश्य बदलता है एक दिन राजमहल में पालकी पहुँचती है और उसमें से उतरता है वही लामा साधु जिसके पास रानी जाया करती है । लामा रात भर राज महल में ठहरता है । राज महल में मदिरा है, मोहिनियाँ हैं और कदम-कदम पर मुग्ध प्रेमिका के रूप में रानी खड़ी मिलती है ।"

"सुबह लामा रानी के शयनकक्ष से बाहर निकलता है और संध्या को फिर रानी पालकी में बैठकर मठ जाती है तथा लामा को अपने राज महल में ले आती है इक्कीस दिन तक यही क्रम चलता है । इक्कीसवीं रात को जब लामा और रानी कोमल शय्या पर पड़े होते हैं तो एक भव्य मानव आकृति कमरे में प्रविष्ट होती है तथा लामा का हाथ पकड़ कर उसे बलात् बाहर ले जाने लगती है ।

"रानी उस आकृति को ऐसा करने से रोकती और वह आकृति लामा को बाँह पकड़ कर अपनी ओर खींचती । इस खींचतान में लामा उदासीन है वह न स्वयं जाने का प्रयास करता है और न रुकने का अन्ततः रानी लामा को आगन्तुक से छुड़ा कर शय्या पर बिठा देती है । आगन्तुक गुरु गम्भीर वाणी में कहता है—वापस लौटो·····अनर्थ कर रहे हो । मैं तुम्हारा गुरु तुम्हें इस गर्त से वापस लौटाने के लिए आया हूँ किन्तु लामा निःशब्द बैठा रहता है । आगन्तुक फिर आगे बढ़कर लामा को अपनी तरफ खींचने का प्रयास करता है, किन्तु इस बार स्वयं उसका शिष्य जाने से इन्कार कर देता है·····भोगासक्त लामा फिर अपने आश्रम वापस नहीं लौटता है । आश्रम उजड़ जाता है और वह लामा भी कई घातक रोगों से पीड़ित होकर अपना शरीर छोड़ देता है ।

"इसके बाद लामा ने पत्थर मेरी आँखों के सामने से हटा लिया और कहा—यह भोगासक्त लामा तुम्हीं थे । मेरी आँखों ने अभी जो कुछ देखा था वह सुषुप्ति के सन्निपात की छाया थी किन्तु मुझे ऐसा लगा मानो मेरा सारा तन-मन हल्का हो गया हो और मेरे न जाने कितने छिद्रों से प्रकाश रेखाएँ प्रविष्ट हो रही हैं । एक अजीब तरह की स्फूर्ति मेरे भीतर प्रविष्ट होती है ।"

सुग्र-अल-जहीर ने इस अनुभूति के बाद अपने गुरु से भेंट की और कई गुह्य विद्याएँ सीख कर अज्ञात लोक की अनुभूतियाँ तथा आत्मा की सिद्ध प्राप्त की । मिस्र में नील नदी के तट पर जन्मे सुग्र-अल-जहीर बाल्यकाल से ही सामान्य बालकों की अपेक्षा विशेष प्रतिभाशाली लगते थे । बड़े होने पर उन्होंने कितने ही प्रदेशों की यात्राएँ कीं और योगी सिद्धों सन्तों के सान्निध्य में रहे । लेकिन यह यात्रा उन्हें अपने पूर्व जन्म के पथ प्रदर्शक तक पहुँचाने के बाद अन्तिम यात्रा रही ।

इसके विषय में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं—उस पुरुष का न तो इस लोक में और न ही पर लोक में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नाश होता है क्योंकि कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता किन्तु वह योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त होकर शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोगों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है । जहाँ उस पहले शरीर में साधन किए हुए बुद्धि के संयोग को प्राप्त हो जाता है तथा उसके प्रभाव से फिर अच्छी प्रकार यत्न (योग) करता है विषयों के वश में होने पर भी वह पूर्व जन्म के संस्कारों से श्रेय साधन की ओर आकर्षित होता है तथा सफलता प्राप्त करता है ।

योगी जहीर के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त एक दम सटीक बैठता है । उनका जन्म ऐसे ही एक सम्पन्न और संस्कारवान् परिवार में हुआ था । अन्यान्य योगी महापुरुषों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं कि वे अपनी योगसिद्धि के आधार पर पूर्व जन्म में योग पथ पर आरूढ़ रहे जातकों को पहचान लेते हैं तथा उन्हें श्रेय पथ पर आरूढ़ होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं ।

श्रेय पथ पर चलने का साहस भर जुटाना आवश्यक है फिर तो सहयोग करने वाली शक्तियाँ अपने आप सहयोग करने के लिए आगे आती हैं और अपनी चेतना में दबे हुए संस्कार तथा उन शक्तियों का प्रभाव फिर चाहे अनचाहे गन्तव्य लक्ष्य तक पहुँचाकर ही छेड़ते हैं । जरूरी है तो केवल श्रेय पथ पर एक कदम भर रखने की ।

योग साधना के त्रिविध चरण

मस्तिष्कीय चेतना की समुचित मात्रा हर किसी के भीतर प्रचुर परिमाण में विद्यमान है । जन्म जात मानसिक अपंगता या दुर्बलता भी किन्हीं अविकसित संरचना के रोगियों में पायी जाती है, पर यह अपवाद है । सामान्य नियम नहीं । औसत मनुष्य की मानसिक संरचना ऐसी होती है जिसके आधार पर उसे बुद्धिमान घोषित किया जा सके । यह बुद्धिमत्ता विकसित होती है अथवा अविकसित स्थिति में ही पड़ी रहती है यह मनुष्य के प्रयत्नों पर निर्भर है । यदि एकाग्रता की क्षमता बढ़ा ली जाय और अपने चिन्तन या कर्म में तन्मयता पूर्वक संलग्न हुआ जाय तो निश्चय ही गहरी जानकारी और कुशलता प्रवीणता हस्तगत होती चली जायेगी । प्रगति और सफलता का यही आधार है और यही अवलम्बन ।

वैसे उथली जानकारियाँ तो आँखों से देखकर या अन्य इन्द्रियों के सहारे प्राप्त की जा सकती हैं किन्तु किसी विषय का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है । इसके बिना गहराई में गोता लगा सकना और कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं होता । रसायन शास्त्री, पदार्थ विज्ञानी, खगोलवेत्ता साहित्यकार, दार्शनिक किन्हीं महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर अपनी एकाग्रता शक्ति के सहारे ही पहुँच सकते हैं । सामान्य जीवन में भी इसका बड़ा उपयोग है । विद्यार्थी यदि ध्यानपूर्वक न पढ़ें, श्रोता यदि मन लगाकर न सुनें, दर्शक ऐसे ही अन्यमनस्क होकर देखें तो जो कुछ सामने प्रस्तुत हुआ उसका छोटा अंश भी पल्ले न पड़ेगा । अपने-अपने काम्रों में प्रवीण पारंगत कहलाने वाले व्यक्तियों ने वे विशेषताएँ कहीं से उपकार-अनुदान में प्राप्त नहीं की होतीं । वे उन्होंने एकाग्रता द्वारा उपार्जित मनोयोग के सहारे ही उपलब्ध की होती हैं । इसका अभाव रहने पर जो भी काम किया जायेगा उसमें अस्त-व्यस्तता, अपूर्णता और कुरूपता ही दृष्टिगोचर होती रहेगी । विभिन्न क्रिया-कलापों में मिलने वाली असफलता-सफलता के पीछे अन्य कारण उसके उतने प्रमुख नहीं होते जितनी कि एकाग्रता की कमी-वेशी काम करती है ।

हर स्तर पर सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है एकाग्रता अभ्यास साध्य । जिस प्रकार अभ्यास से खेल-कूद में अथवा शिल्प संगीत में मनोयोगपूर्वक लगने से उनमें प्रवीणता प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार अन्य विषयों में भी तन्मय हो सकना सम्भव हो सकता है । दिलचस्पी का इस सन्दर्भ में बड़ा योगदान रहता है । किसी विषय में रुचि हो तो मन का आकर्षण सहज ही उस पर केन्द्रित रहेगा । उदासीनता अथवा उपेक्षा बुद्धि रहने से महत्त्वपूर्ण कार्य भी निरर्थक लगते हैं और उन्हें करने के लिए जी नहीं होता ।

संसार में वैज्ञानिक आविष्कारों से लेकर अनेकानेक आश्चर्यजनक अनुसंधानों, आविष्कारों एवं निर्माणों की सफलता के मूल में यह एकाग्रता की शक्ति ही विद्यमान रहती है । मूर्तिकार, चित्रकार, कलाकार आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी-अपनी इसी एकाग्रता की शक्ति द्वारा अपना कौशल प्रकट कर पाते हैं अन्यथा मन के बिखराव की स्थिति में समस्त साधन होते हुए भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सम्भव न हो सकेगी ।

भौतिक सफलता की तरह आत्मिक प्रगति के लिए भी एकाग्रता की शक्ति अनिवार्य रूप से आवश्यक है । ध्यान को अध्यात्म साधना में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । ध्यान की उपयोगिता, महत्ता एवं आवश्यकता को साधना विज्ञान के अन्तर्गत बहुत ही महत्त्वपूर्ण बताया गया है । साधना के प्रत्येक उपचार में मन को एकाग्र रखने पर जोर दिया जाता है । अपने अन्तर की प्रसुप्त शक्तियों को जगाने और उसे उपयोगी प्रयोजनों के लिए प्रशिक्षित करने के लिए उस एकाग्रता की शक्ति का ही उपयोग करना पड़ता है । नोंकदार सुई को ही ठीक तरह चुभाया जा सकता है । नोंक पैनी न होने पर छेद करने वाला कोई भी उपकरण अपना काम ठीक तरह न कर सकेगा । चिन्तन को नोंकदार बनाने के लिए उसे एकाग्रता के पत्थर पर घिसना पड़ता है । मानसिक बिखराव को फैली हुई सूर्यकिरणों के समतुल्य समझा जा सकता है । आतिशी शीशे के सहारे उनका केन्द्रीकरण किया जाता है । यह प्रखर एकाग्रता मनःसंस्थान के जिस भी केन्द्र पर अपना प्रभाव डालती है उसमें गर्मी उत्पन्न होती है । गर्मी से हर चीज फैलती और उठती है । अन्तःक्षेत्र की संकीर्णता और प्रसुप्त स्थिति को सक्रिय बनाने में ध्यान जन्य एकाग्रता बहुत काम करती है । मुख्यतया इसी के सहारे आन्तरिक जागरण के—आत्मोत्कर्ष के अनेक आधार खड़े होते हैं और उच्चस्तरीय सफलताओं का प्राप्त कर सकना सम्भव होता है ।

एकाग्रता का प्रमुख आधार है दिलचस्पी । मन वहीं केन्द्रित होता है जहाँ दिलचस्पी होती है । किसी वस्तु के प्राप्त होने पर क्या-क्या लाभ मिल सकता है, इस पर विचार करने से उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है । इसी आकर्षण के चुम्बकत्व से मन उसमें संलग्न रहने के लिए सहमत होता है । ईश्वर भक्ति इसी प्रयोजन की पूर्ति करती है । परमात्मा कितना महान है उसका सान्निध्य अनुग्रह कितना श्रेयस्कर है । यह तथ्य जितनी अच्छी तरह हृदयंगम किया जा सकेगा उतना ही आकर्षण बढ़ता चला जायेगा । यह आकर्षण ही प्रेम है । प्रेम का ही दूसरा नाम भक्ति है । भक्ति भावना द्वारा ही ईश्वर के प्रति आत्मीयता बढ़ती है और आकर्षण उत्पन्न होता है । नाम महात्म, भजन प्रभाव, भगवान की भक्तवत्सलता जैसी भक्ति भावनाओं के प्रति प्रगाढ़ता उत्पन्न करने वाले स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन से ईश्वरीय प्राप्ति के लिए उत्सुकता बढ़ती है । यह उत्सुकता जितनी ही प्रगाढ़ होगी उतना ही मन उसमें सरलता अनुभव करने लगेगा और उसी के इर्द-गिर्द छाया रहेगा ।

मनोनिग्रह एवं मनोलय योगाभ्यास का केन्द्र बिन्दु है । उसका उद्देश्य एकाग्रता का उत्पादन है । यह बहुत बड़ी उपलब्धि है । इसके सहारे ही भौतिक सिद्धियाँ और आत्मिक ऋद्धियाँ हस्तगत होती हैं । मनोलय का प्रथम चरण भक्तियोग है । द्वितीय चरण ज्ञानयोग और तृतीय कर्मयोग है । ज्ञानयोग में ध्यान करना पड़ता है । ध्यान का तात्पर्य है चिन्तन को एक ही प्रवाह में बहने देना । उसे अस्तव्यस्त उड़ानों में भटकने से रोकना । किसी एक ही लक्ष्य पर कुछ समय तक विचार तरंगों को केन्द्रीभूत किए रहना । वैज्ञानिक अपनी शोध परिधि में, साहित्यकार अपने सृजन क्षेत्र में, उपासक अपने इष्ट देव में सारी विचार शक्ति को नियोजित करते हैं । एक बिन्दु पर केन्द्रीयकरण आरम्भ में ही सम्भव नहीं । इसलिए उपासना में कोई साकार दृश्य निर्धारित करना होता है । भक्तियोग द्वारा गहन दिलचस्पी, प्रेम भावना, सघन आकर्षण उत्पन्न कर लेने के बाद चिन्तन प्रवाह को एक दिशा धारा में प्रवाहित करने वाली ध्यान धारणा कुछ कठिन नहीं रह जाती ।

योगाभ्यास का तीसरा चरण है—कर्मयोग । अन्तःकरण की, कारण शरीर की, आकांक्षाएँ भाव सम्वेदनाएँ मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं और प्रस्तुत अभिरुचि को पूरा करने के लिए ताना-बाना बुनने का निर्देश करती हैं । वह उत्साही वकील की तरह तर्क-कुशल, आर्चीटेक्ट की तरह नक्शे बनाना और चतुर व्यवस्थापक की तरह साधन जुटाने के लिए आवश्यक दौड़-धूप प्रारम्भ कर देता है । जिस प्रकार भावनाओं, ज्ञान संस्थान के सहारे अपनी आकांक्षा पूरी करने का अवसर मिलता है उसी प्रकार चिन्तन को मूर्तरूप दे सकना क्रिया-कलापों के द्वारा ही बन पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यरूप में परिणत किए बिना तो मस्तिष्कीय भागदौड़ मात्र कल्पना या योजना बनकर रह जायेगी ।

आत्मिक प्रगति के प्रयोजनों में क्रिया योग का विस्तार धर्मानुष्ठान एवं कर्मकाण्डों के रूप में हुआ है । जप, पूजन, अभिषेक, आसन, प्राणायाम, परिक्रमा, हवन, स्नान, तीर्थयात्रा, दान-पुण्य, व्रत-उपवास आदि शरीर तथा वस्तुओं की सहायता से बन पड़ने वाले सभी क्रियाकृत्य इसी श्रेणी में आते हैं । इनमें विचार और कार्य का समन्वय होने से अन्तः क्षेत्र में तद्नुरूप संस्कारों की स्थापना होती है । वे ही परिपक्व होकर आत्मिक प्रगति के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं ।

योग प्रविधि के पाँच प्रधान आधार

योग एक अति श्रेष्ठ चेतना प्रविधि है । वह साक्षात्कार पद्धति पर आधारित दर्शन-विज्ञान या विज्ञान दर्शन है । इस साक्षात्कार पद्धति में दिव्य-शक्ति का भी साक्षात्कार सम्मिलित है और आत्म-शक्ति का भी ।

इस योग प्रविधि के पाँच प्रधान आधार हैं— (१) ऊर्जा-भौतिकी या द्रव्य-विज्ञान । (२) दैहिकी या शरीर-विज्ञान । (३) ऊर्जा आध्यात्मिकी या प्राण-विद्या अर्थात् प्राण विज्ञान । (४) मनोविज्ञान । (५) आत्म विद्या या ब्रह्मविद्या अर्थात् दर्शन या जीवन-दर्शन ।

आधुनिक विज्ञान में मुख्यतः ऊर्जा-भौतिकी, द्रव्य विज्ञान एवं शरीर विज्ञान की ही प्रधानता रही है । मनोविज्ञान के क्षेत्र में अधिक विकास तो पिछले कुछ ही वर्षों में हुआ है, जिनसे परामनोविज्ञान आदि की शाखाएँ विकसित हो रही हैं । स्पष्ट है कि प्राचीन योग प्रविधि का दार्शनिक आधार आधुनिक विज्ञान से अधिक व्यापक था । अतः उसका प्राविधिक पक्ष आधुनिक विज्ञान से कुछ भिन्न होना स्वाभाविक है । यही कारण है कि प्राचीन तत्वदर्शन के अनेक प्रतिपादन आज के एकांगी विज्ञान से भिन्न हैं तो भी वैदिक विज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त-पक्ष में आश्चर्य जनक समानता है ।

प्राचीन वांङ्मय में स्थल-मार्ग, जल-मार्ग एवं नभ-मार्ग से आवागमन के उन्नत यान्त्रिक साधनों, प्रभावशाली अस्त्र-शस्त्रों तथा अति विकसित अत्युत्कृष्ट कला-कौशल के प्रचुर विवरण इस तथ्य के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में एक अत्यन्त उन्नत विज्ञान था, 'फिलॉसफी' या काव्य ही उन्नत नहीं था ।

आधुनिक प्रविधि द्वारा भी एक से एक विशाल एवं महत् कार्य सम्पादित किए जाते हैं । उस हेतु जटिल संयन्त्र आवश्यक होते हैं । इन जटिल संयन्त्रों के मूल में ऊर्जा-भौतिकी के नियमोपनियम एवं शक्ति-समीकरण हैं । इस यान्त्रिक ऊर्जा के अतिरिक्त प्राण-ऊर्जा का चेतनात्मक रूप भी है । मनुष्य सहित पृथ्वी का सम्पूर्ण प्राणि-समुदाय जिन शक्तियों के नियम-निर्देशों पर चलता है, वे सब जड़ शक्तियाँ ही नहीं, चेतन शक्तियाँ भी हैं । इन्हीं चेतन शक्तियों का वर्गीकरण देव-समूह के रूप में किया गया है । उनसे चेतन सम्पर्क स्थापित कर अनेक कार्य सम्पादित करा सकने की सम्भावना को निरस्त करना पूर्वाग्रह मात्र है । प्राणि-विज्ञान, ऊर्जा-भौतिकी, शरीर-विज्ञान एवं यौगिक मनोविज्ञान के समन्वित स्वरूप से विकसित लौकिक एवं आलौकिक प्रविधियाँ ही प्राचीन योग-विज्ञान का रूप थीं और उनका दार्शनिक प्रतिपादन ही ब्रह्म-विद्या कही जाती रही है ।

पाश्चात्य विज्ञान-दर्शन आत्मिक प्रयत्नों के भौतिक आधार नहीं खोज पाया । इसीलिए प्रारम्भ में इन आत्मिक प्रत्ययों को निरर्थक ही कह दिया गया । किन्तु विज्ञान की नवीनतम प्रगति उस दिशा में है, जहाँ भौतिक प्रत्ययों के भी मूल आधार आत्मिक या चेतन ही सिद्ध हो रहे हैं । सृष्टि की मूलभूत ऊर्जा-तरंगें मात्र जड़ ही नहीं चेतन भी हैं, यह आधुनिक वैज्ञानिक मान रहे हैं । भौतिक उपकरण एक सीमा के बाद किसी भी शोध में आगे सहायता नहीं कर सकते, यह भी अनुभव हो गया है । उदाहरणार्थ परमाणु में सक्रिय इलेक्ट्रॉन-कण की स्थिति तथा वेग का निश्चय करने के लिए प्रकाश-रश्मि का उपयोग ही आधुनिक भौतिकी में किया जा सकता है । किन्तु इस प्रकाश-रश्मि में स्वयं ही फोटॉन नामक प्रकाश-कणिकाएँ विद्यमान होती हैं । वे प्रयोग-निरीक्षण के ही दौरान इलेक्ट्रॉन से टकराकर उसके संवेग तथा दिशा में अन्तर उत्पन्न कर देती हैं और सही निर्णय सम्भव नहीं हो पाता । इसीलिए परमाणु-नाभिक के चतुर्दिक गतिशील ऊर्जा-स्तरों की गति, दिशा एवं आपेक्ष वेग का निर्णय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधुनिक भौतिकी असम्भव मानती है । किन्तु उधर छान्दोग्य उपनिषद् के तीसरे अध्याय में मधु विद्या का जो वर्णन है, उसे परमाणु भौतिकी की दृष्टि से परमाणु रूपी सविता-घटक का ही विवरण माना जा सकता है । उस विवरण में इन ऊर्जा-स्तरों को भिन्न-भिन्न अमृतों का मधु कहा गया है और उनके आवर्तन की दिशा तथा आपेक्षिक आवर्त-काल का भी निर्णय दिया गया है । ऐसे निर्णय दैनिक एवं आत्मिक तत्वों के ही आधार पर सम्भव होते हैं । भौतिक अन्वेषणों के द्वारा नहीं ।

चेतन देव-शक्तियाँ निश्चेष्ट नहीं हैं । उनके चेष्टा नियमों की जानकारी एवं उपयोग प्राण-विद्या या प्राण-विज्ञान का क्षेत्र है । क्योंकि सभी देव-शक्तियाँ प्राण-रश्मियाँ हैं । सूर्य-विज्ञान, यज्ञ-विज्ञान एवं धर्म विज्ञान आदि के मूल में देव-विद्या या प्राण-विद्या ही है । वेदों में पग-पग पर ऐसे स्पष्ट कथन हैं कि देवता वस्तुतः प्राण विशेष या शक्ति विशेष हैं, वे 'मेटेरियल' नहीं 'अनमेटेरियल' सत्ताएँ हैं । उदाहरणार्थ शतपथ ब्राह्मण में इन्द्र स्वयं के विषय में कहते हैं "प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा ।"

अर्थात् 'मैं ऐसा प्राण हूँ, जो प्रज्ञा के साथ एकात्म है । इसी प्रकार ऋषि ने शतपथ ब्राह्मण (६।१।१।१) में कहा है—

"सम्योऽयं मध्ये प्राण एव देवन्द्रः ।"

अर्थात् इस व्यापक समष्टिगत प्राण-विस्तार की मध्यवर्ती प्राण-ऊर्जा ही इन्द्र या देवेन्द्र है ।

देव-विद्या के सम्बन्ध में यहाँ इतना जानना ही पर्याप्त है कि देव मूलतः प्राण-रूप ही हैं । पृथ्वी से अधिक विकसित लोक-मण्डलों में जो अति विकसित जीव रहते हैं, उनमें प्राण-ऊर्जा ही प्रधान होती है, उन प्राणियों को भी इसी कारण देव कहा जाता है । इन देव-प्राणियों को अष्टसिद्धि प्राप्त हैं, अतः वे इच्छित आकार धारण कर पृथ्वी-लोक में भी आ-जा सकते हैं और आते-जाते रहते हैं । अपनी विशेषताओं के अनुसार ही वे विभिन्न वर्गों में रखे गए हैं । तद्नुसार वे सूक्ष्म-लोक भी जहाँ ये देव रहते हैं, देव कह दिये जाते हैं । भू-लोक में इस प्राण-विद्या के पूर्ण ज्ञाता विद्वान भी देव या भूदेव कहे जाते हैं । परवर्ती युग में उसी के अनुकरण पर यहाँ के निवासियों ने अपने साम्राज्य को ही स्वर्ग तथा वहाँ के निवासियों को देव कहना आरम्भ कर दिया और विभिन्न देव वर्गों के अनुसार नागरिक-वर्गों के नामकरण कर दिये तथा अपने विरोधियों को असुर या राक्षस कहने लगे । यह अन्तिम कृत्य वैदिक विज्ञान परम्परा के विलुप्त हो जाने तथा उस परम्परा के यत्र-तत्र ध्वंशावशेष ही बचे रहने के समय हुआ । उस विज्ञान की जानकारी आज भी किन्हीं अति दुर्लभ सिद्ध पुरुषों को है तो, किन्तु वे सर्वथा बीतराग होने से तथा युग-प्रवाह के कारण अधिकारी शिष्य न मिलने से उसका मर्म प्रकट करना आवश्यक नहीं समझते, क्योंकि प्रबल पुरुषार्थ, गम्भीर अध्यवसाय, उच्चकोटि की निष्ठा, निरन्तर साधना अन्वेषण एवं गहन श्रद्धा के बिना उस विज्ञान को समझा नहीं जायेगा, उसका प्रकटीकरण व्यर्थ ही जायेगा । परिवर्तित वातावरण में सच्ची श्रद्धा एवं अनर्थक पुरुषार्थपूर्ण प्रयासों को देखकर ऐसे सिद्ध पुरुष उस विज्ञान को पुनः प्रकट कर सकते हैं, यह असंदिग्ध तथ्य है ।

किन्तु आज अन्ध श्रद्धा से भरे, पुरुषार्थ-विमुख प्रमादी जनों द्वारा जिन अवैज्ञानिक चमत्कारों के रूप में उन प्राचीन प्रविधियों को कहा-सुना और सोचा-समझा जाता है उसका यथार्थ से नहीं, मात्र कल्पना से ही सम्बन्ध है । उसमें यथार्थ मात्र इतना ही है, जितना कल्पना में होता है । देव-ऊर्जाएँ वास्तविकता हैं, देव-शक्तियों से सम्पर्क कर निश्चित ही लाभान्वित हुआ जा सकता है, किन्तु उस सम्पर्क के सुनिश्चित नियम हैं और वे नियम तप साध्य, पुरुषार्थ साध्य हैं । बिना समुचित मूल्य दिये इस विश्व में कुछ भी प्राप्त होने की व्यवस्था नहीं है । देव सत्ताओं से अनुदान प्राप्त करने के लिए क्या मूल्य चुकाना होता है, इसका संकेत योगशास्त्र के विभूति-करण में स्पष्ट दिया हुआ है ।

आवश्यकता इस महान योग-प्रविधि के महिमागान की नहीं, प्रतिभा एवं पुरुषार्थ, तप एवं अध्यवसाय प्रयोग एवं प्रत्यक्षीकरण द्वारा उसे नव-जीवित करने की है ।

योग प्रविधि का दर्शन पक्ष ही ब्रह्म-विद्या है । प्रत्येक दर्शन अपने विज्ञान पर ही अधिष्ठित होता है । अतः ब्रह्म-विद्या के विद्यार्थियों और महान वैदिक परम्परा के उत्तराधिकारियों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वे उस महान दर्शन के सिद्धान्तों की वैज्ञानिक व्याख्या करें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तथा साक्षात्कार-पद्धति को योग प्रविधि सहित ज्ञान-विज्ञानमय भारतीय तत्व-ज्ञान को पुनः प्रतिष्ठित करें । मात्र कथन से यह प्रतिष्ठा असम्भव है । प्रत्यक्ष निष्कर्ष एवं प्रमाण प्रस्तुत किए जाने चाहिए ।

योगो भवति दुःखहा

"सोलेदाद लेइबा" दक्षिणी अमेरिका के सुप्रसिद्ध धनकुबेर लेइबा की धर्मपत्नी को लगभग ३० वर्ष की आयु में अचानक रीढ़ की हड्डी में दर्द प्रारम्भ हुआ । डॉक्टरों ने बताया "आर्थ्राइटिस" बीमारी है । कुशलतम् डॉक्टरों और कीमती औषधियों का प्रयोग करने पर भी उनकी तकलीफ में रत्ती भर भी सुधार न हुआ । लेइबा परिवार एक तरह से निराश हो गया था और कष्ट मुक्ति की आशाएँ प्रायः छोड़ दी गयी थीं तभी उन्हें योग चिकित्सा पद्धति की जानकारी मिली । उन्होंने कुछ सामान्य आसन, प्राणायाम और शाकाहार का उपयोग किया तो जो रोग कीमती औषधियों से ठीक नहीं हुआ, योग साधना ने उसे कुछ ही समय में ठीक करके दिखा दिया ।

फ्रान्स के सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक डॉ. बेर्थेलेयर की सहयोगिनी एलगिन का जीवन वृत्तान्त भी ऐसा ही है । पेरिस के निकट 'इस्सी-ले-मूलीनो' में वे अपना कार्य करते हैं । उनके मार्ग-निर्देशन में योग का अभ्यास करने वाले व्यक्तियों की नेता कु. ए. एलगिन हैं । वह साढ़े तीन वर्ष की अवस्था में टायफाइड और हृदय रोग से ग्रस्त हो गयी थीं । दस वर्ष की उम्र में गुर्दों की बीमारी से पीड़ित हो गईं, ५० वर्ष की अवस्था तक उनकी रीढ़ की हड्डी बेकार-सी हो चुकी थी । अकस्मात् उन्हें 'योग' के बारे में मालूम हुआ और योग की कक्षा में जाकर योग की सरल विधियों का अभ्यास करने लगीं । तीन वर्ष में रीढ़ की हड्डी सीधी हो गयी । लिवर, गुर्दे आदि भी ठीक पाये गए तथा हृदय एवं दमा के रोगों से मुक्ति मिल गयी । अब वे 'इस्सी-ले-मूलीनो' में योग की कक्षाओं में रोग-मुक्ति के लिए सरल अभ्यासों को सिखाती हैं । उन योगाभ्यासियों में अधिकांश वृद्ध हैं ।

स्विट्जरलैण्ड के अन्तर्राष्ट्रीय योग अधिवेशन में कुमारी ए. एलगिन ने योग-कक्षाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन किया । सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक ने उनके प्रशिक्षण क्रम का निरीक्षण कर पाया कि योगाभ्यास से लोगों की मानसिक शक्ति का विकास हुआ है । वे आशावादी दृष्टिकोण से सम्पन्न होते जा रहे हैं, श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में बहुत सुधार हो गया । जोड़ों के दर्द में भी लाभ पहुँचा । यह निरीक्षण मनोचिकित्सकों की ५१वीं काँग्रेस में हुआ था । शारीरिक रोगों के साथ-साथ लोगों को मानसिक रोगों से छुटकारा पाने में भी योगाभ्यास बहुत सहायक सिद्ध हुआ है । लोगों की अनेकों चिन्ताओं, तनावों, अनिद्रा आदि मनोशारीरिक व्याधियों को दूर करने में भी लाभ पहुँचा । शिथिलीकरण, योगनिद्रा, ध्यानादि से वृद्धों में नवीन शक्ति, स्फूर्ति, आशा और उत्साह परिलक्षित होने लगा । उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा । वृद्धावस्था के निराशा जनित तनाव के स्थान पर उनमें आशा, प्रसन्नता और उत्साह सन्तोष बढ़ने लगा । योगाभ्यास को नियमितता पूर्वक अपना कर वृद्धावस्था में शारीरिक स्वास्थ्य लाभ के साथ-साथ मानसिक आरोग्य भी प्राप्त होता है ।

योग साधनाओं में ध्यान की विभिन्न साधनाएँ, आसन, प्राणायाम आदि विभिन्न प्रकार के अभ्यास इस दृष्टि से बनाये गए हैं जिससे शरीर के उन अवयवों तक की मालिश हो जाती है, जिन पर साधारण व्यायाम प्रभाव नहीं डाल पाते । इन मर्म स्थलों में छिपी शक्तियों का लाभ लेना इन क्रियाओं का उद्देश्य है । योगनिद्रा भी ऐसा अभ्यास है जिसके द्वारा बुरी आदतों एवं कुसंस्कारों को बदल कर उनके स्थान पर स्वस्थ आदतों एवं सुसंस्कारों की स्थापना की जा सकती है । इसके अभ्यास से स्वयं में एवं दूसरों में शुभ संस्कारों को भर सकते हैं । पूर्ण स्वस्थ होने के लिए शरीर के साथ-साथ मन का स्वच्छ होना उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । लोग शरीर की सफाई के लिए तो बहुत सरंजाम इकट्ठा करते हैं परन्तु मन की अन्तर की सफाई की ओर ध्यान ही नहीं जाता । 'योगनिद्रा' मन के विश्राम की प्रक्रिया है, इससे मन की कमजोरियाँ दूर होती हैं, अन्दर की प्रसुप्त शक्तियाँ शनैः-शनैः विकसित होने लगती हैं । शारीरिक एवं मानसिक तनावों से मुक्त होने के लिए योगनिद्रा एक बहुत हीं अच्छा उपाय है । तीन वर्ष पूर्व बम्बई के अस्पताल में रक्त-चाप से पीड़ित व्यक्तियों पर 'योगनिद्रा' के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभ्यास के प्रयोग का परिणाम यह निकला कि 'योगनिद्रा' के नियमित अभ्यास द्वारा उच्च रक्त-चाप और हाइपरटेन्शन के रोग को पूर्णतया ठीक किया जा सकता है ।

'हार्वर्ड मेडीकल स्कूल' के 'राबर्ट कीथ वैलेस' एवं उनके सहयोगी 'सर हरवर्ट बेनसन' ने ध्यान का शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभावों पर शोध कार्य किया है । उन्होंने शोध कार्य को साइंटिफिक अमेरिकन, 'फरवरी १९७२ के अंक में "ध्यान में शारीरिक अंगों की कार्य विधि" नामक शीर्षक से प्रकाशित भी किया । उसका निष्कर्ष यह था कि मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए एवं तनावों से मुक्ति पाने के लिए दवाओं की अपेक्षा ध्यान अधिक उपयोगी एवं प्रभावी है ।

पटना मेडीकल कालेज में हृदय रोग सम्बन्धी हुए अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि योगासनों के अभ्यास के माध्यम से हृदय रोगों पर नियन्त्रण ही नहीं वरन् विजय भी प्राप्त की जा सकती है । विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों में अधिकांश का उपचार छोटे-मोटे योगाभ्यास से सम्भव है । तनावों से ग्रस्त आज का मानव अकारण चिन्ता, भय, अनिद्रा रोग को आमन्त्रित कर लेता है । नींद लाने के लिए नशीली दवाओं जैसे एल. एस. डी., मॉर्फिन, बारब्यूटरेट्स का प्रयोग पश्चिमी देशों में बहुत होता है । भारत में भी बड़े-बड़े शहरों, औद्योगिक क्षेत्रों के अन्तर्गत कालोनियों में रहने वाले लोग नींद की गोलियाँ इस्तेमाल करने लगे हैं । पिछले ही वर्ष अमेरिका में नींद की दवा 'बारब्यूटरेट्स' के बारे में निकला था कि इस दवा से प्रति वर्ष ५००० से अधिक मौतें होती हैं । 'यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका' के "नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ड्रग एब्यूज" ने इस दवा की शीशी या पैकट पर यह सूचना लिखी जाने के लिए कहा "इस दवा से स्थायी लाभ नहीं होता ।"

वेदना नाशक दवाइयों से क्षणिक आराम मिलता है । बाद में शारीरिक, मानसिक दर्द एवं वेदना और अधिक बढ़े हुए प्रतीत होते हैं । तनाव दूर तो होता नहीं शरीर एवं मन को विश्राम भी नहीं मिल पाता उल्टे विषैली, नशीली दवाओं के दुष्प्रभाव परिलक्षित होने लगते हैं । तीव्र औषधियों की प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक अन्यान्य छोटे-मोटे रोगों का जन्म हो जाता है । फलतः व्यक्ति का वेदना से मुक्ति पाने के लिए इन दवाइयों की शरण में जाना मृगतृष्णा ही सिद्ध होती है ।

वास्तविकता यह है कि वेदना का स्वरूप उतना हानिकारक एवं दुःखद नहीं होता जितनी कि उसकी कल्पना कर ली जाती है । वेदना के अभाव में सुख की अनुभूतियाँ भी फीकी पड़ जाती हैं । दुःख-दर्द आदि से मुक्त होने, वेदना से त्राण पाने के लिए उसकी मिथ्या काल्पनिक भयंकरता भरी मनोभूमि न बनाई जाय । उसको सहज भाव से स्वीकार किया जाय । शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर जीवन में दुःख, द्वन्द्व, वेदना को सहजता से स्वीकार करते चले जाने से उनसे मुक्ति ही नहीं मिलती वरन् मानवी चेतना भी विकसित होती है ।

गीता में योग को दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला कहा गया है—"योगो भवति दुःखहा"—

अर्जुन की स्थिति महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में वेदना से परिपूर्ण थी उसका वह अन्तर्विषाद ही योग का प्रथम चरण बना था । वर्तमान में तनाव जनित दर्द-पीड़ा आदि को दूर करने के लिए शिथिलीकरण, बायो फीड बैक, एक्यूपंक्चर एवं सम्मोहन जैसी प्रविधियों का उपयोग किया जाने लगा है । इनके प्रभाव से कम नहीं बल्कि अधिक ही स्थायी प्रभावी योग के अभ्यास सिद्ध हो. रहे हैं, योग की क्रियाओं जैसा ही प्रभाव बायोफीड बैक आदि का होता है । अगर कुछ यौगिक क्रियाओं को यन्त्रों द्वारा सीखना कहा जाय तो अनुचित न होगा । इनके विकास से योग द्वारा वेदना से मुक्ति पाना असंदिग्ध हो गया है ।

न्यूयार्क के 'मांटेफोय और हॉस्पिटल' के एन. जे. मारकस एवं उनके सहयोगियों का कहना है कि बायोफीड बैक पद्धति के साथ-साथ शिथिलीकरण अभ्यास बहुत शीघ्र लाभप्रद होता है । शिकागो की 'द डायमण्ड हेडैक क्लीनिक' ने लगभग ५०० रोगियों पर बायोफीड बैक का उपयोग करके उनके स्नायुविक सिर दर्द को दूर करने में काफी सफलता प्राप्त की है । बायोफीड बैक पद्धति में चेतना को किसी अंग विशेष या क्रम से शरीर के विभिन्न अंगों पर केन्द्रित करते चले जाते हैं । यह अपने प्रति सजग होने का अभ्यास सिखाना है । भौतिक उपकरणों की सहायता से लोगों को ऐसा करने में सुविधा होती है । १९७८ में स्नायुविक दर्द, वेदना आदि विषयों पर ही माण्ट्रियल में चिकित्सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विशेषज्ञों एवं मनोवैज्ञानिकों की कॉन्फ्रेन्स हुई । उसमें यही निष्कर्ष विचार मंथन के उपरान्त निकला कि अपने प्रति अधिकाधिक सजग हो जाने से पीड़ा बहुत कम हो जाती है । योग बायोफीड बैक, सम्मोहन आदि पर प्रकाश डालते हुए इन्हें वेदनाएँ दूर करने में उपयोगी बताया गया ।

योग के माध्यम से चिकित्सा कराने वाले विशेषज्ञों के अनुसार विभिन्न शारीरिक, मनोशारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक पीड़ा पर काफी हद तक नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है । शारीरिक, मानसिक तनावों को साधारण योगाभ्यास से दूर किया जा सकता है । आसनों के नियमित अभ्यास से शारीरिक तनाव दूर होते हैं । आन्तरिक वेदनाओं को कम करने में प्राणायाम, शिथिलीकरण, ध्यान आदि की प्रक्रियाएँ बहुत कारगर सिद्ध होती हैं । योगाभ्यास इन सामान्य-सी प्रक्रियाओं द्वारा मस्तिष्कीय स्नायुतन्तु इस प्रकार व्यवस्थित हो जाते हैं, कि पीड़ाएँ दूर हो जाती हैं । मास्को के इन्स्टीट्यूट ऑफ जनरल साइकोलॉजी के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी. एन. क्राइजेन्पेन्स्को का कहना है कि मस्तिष्क की कतिपय शिराओं एवं तन्तुओं को अव्यवस्थित करके लेबोरेटरी में पीड़ा उत्पन्न की जा सकती है एवं उन्हें विशेष प्रकार से सुव्यवस्थित करके पीड़ा दूर होने की अनुभूति प्रयोगशाला के अन्दर कराई जा सकती है । योग की प्रक्रिया करने में नर्वस सिस्टम पर नियन्त्रण पाने में मस्तिष्क की शिराओं एवं तन्तुओं को सुव्यवस्थित करने का ही रहस्य सन्निहित है । योग की ध्यान प्रक्रिया आन्तरिक ऊर्जा की अभिवृद्धि करने एवं चेतना के विकास के लिए बहुत उपयोगी है । वेदना का मुख्य कारण निराशा एवं आत्म विश्वास की कमी होती है । अपनी आन्तरिक क्षमता पर कम विश्वास होने के परिणामस्वरूप ही आन्तरिक वेदनाओं की उत्पत्ति होती है । कोलम्बिया विश्वविद्यालय के जे. एस. लिफ्टन एवं जे. जे. मारकैन ने लगभग १०० रोगियों का अध्ययन करके पता लगाया कि वे किसी न किसी निराशा से पीड़ित थे । योग के अभ्यास से ज्यादा विश्वास उत्पन्न होकर जीवनी शक्ति का विकास होता जाता है जिसके फलस्वरूप निराशा, दुःख एवं अन्तर्वेदना पर नियन्त्रण पा सकना शक्य हो जाता है ।

मानसिक रोगों में मानसिक खिन्नता एक प्रकार का रोग है जो व्यक्तियों में दो तरह से देखने में मिलता है । पहले प्रकार का रोगी कभी बैठा रहता है, कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी चिल्लाता है । उसकी मनःस्थिति में असामान्य रूप से परिवर्तन होने से उसकी मनःस्थिति उसके नियन्त्रण के बाहर हो जाती है । इस प्रकार के रोगियों का उपचार योगासनों द्वारा सरलता से किया जा सकता है ।

दूसरे प्रकार के कुछ ऐसे रोगी जिन्हें अपनी खिन्नता के बारे में खुद पता नहीं रहता वे ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ करते हैं वे प्रायः विभ्रम में पड़ जाते हैं । दूसरे लोगों को ऐसे रोगियों को लेकर डॉक्टर के पास जाना पड़ता है । इस प्रकार की खिन्नता भी योग द्वारा दूर की जा सकती है ।

आज इस प्रकार के रोगों के लिए जो उपचार काम में लाये जाते हैं उनमें बिजली के शॉक और ट्रेक्यूलाइजस प्रमुख हैं । लेकिन इस प्रकार किए गए उपचारों के परिणाम अच्छे नहीं निकले हैं कुछ रोगियों की तो स्मरण शक्ति तक समाप्त हो जाती है । शरीर के अन्दर पाये जाने वाले रासायनिक-असन्तुलन, जो खिन्नता का प्रमुख कारण है इस असन्तुलन की जानकारी एवं इसका उपचार अभी मनोचिकित्सकों की समझ में नहीं आ पाया है कि यह असन्तुलन दैनिक जीवन के तनावों के कारण है या यह तनाव असन्तुलन के कारण है इसकी भी जानकारी नहीं कर पाये हैं ।

खिन्नता से लोगों में निम्न बातें देखने में आयीं कि रोगी अपने को हर घटना से सम्बन्धित समझता है उसे हमेशा कमी महसूस होती है । निद्रा का अभाव रहता है, उसे भूख भी नहीं लगती, किसी बड़ी घटना का भय—मोटापे का भय जिससे भोजन नहीं करता ।

मानसिक खिन्नता का प्रमुख कारण उसकी मनःस्थिति का परिवर्तित होना है । तबियत खराब, दुःख तथा निराशा की स्थिति में अधिकतर रोगी का दृष्टिकोण निराशावादी हो जाता है और अपना जीवन भी उसे निरर्थक लगने लगता है । रोगी का मन एकाग्र नहीं हो पाता, दूसरों से अपनी बातें नहीं कह पाता, उसकी स्मरण शक्ति कमजोर पड़ जाती है, चिन्ताएँ बढ़ जाती हैं । चिन्ताओं के अतिरिक्त एकाएक गर्मी या ठण्डक महसूस होने के कारण हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है स्ट्रोइण्टेस्टाइन सम्बन्धी बीमारियाँ होती हैं । रोगी को भीड़ से भय लगता है, आँत, पेट, पीठ और सिर में दर्द होता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार के रोगी अपने जीवन को निरुपयोगी एवं निरर्थक समझने लगते हैं और इस प्रकार का भ्रम रहता है कि वे इसके लिए खुद उत्तरदायी हैं ।

यह सब मस्तिष्क के दो हार्मोन्स, 'नार एड्रिनेलीन' तथा 'सेराटानिन' के बीच असन्तुलन का कारण है । जब सेराटानिन की अधिकता होती है तो निराशावादी मनःस्थिति हो जाती है । जब नार एड्रिनेलीन अधिक हो जाती है तो आवश्यकता से ज्यादा सक्रियता बढ़ जाती है । कभी-कभी रोगी को निराशा की जगह सुख की अनुभूति होती है यह उन्माद की स्थिति है । यह मानसिक असन्तुलन नार एड्रिनेलीन एवं सेराटानिक के परिवर्तन का ही प्रतिफल है ।

योगासनों से इण्डोक्राइन तन्तुओं नार एड्रिनेलीन एवं सेराटानिन हार्मोन्स के बीच का असन्तुलन दूर हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मानसिक खिन्नता आसानी से दूर की जा सकती है । योगासनों का नियमित रूप से अभ्यास करते रहने से मानसिक रोगों से मुक्ति मिल सकती है ।

मानसिक रोगों में सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, योगमुद्रा, भुजंगासन, सर्वांगासन, शलभासन, विपरीतकरणी मुद्रा, कूर्मासन, पाशिनी मुद्रा, शशांकासन, हलासन, आनन्द मदिरासन, शवासन, गर्भासन आदि के अभ्यास बहुत लाभदायक पाये गए हैं । इन योगासनों का नियमित अभ्यास करने से अनेक बार तो ऐसे लाभ प्राप्त हुए हैं जिन्हें चमत्कारी कहा जा सकता है "ब्रह्मवर्चस की पंचाग्नि विद्या" के अन्तर्गत इन आसनों से संगति वाले बन्ध, मुद्रा और प्राणायामों का भी अभ्यास देव परिवार के सदस्यों को कराने का प्राविधान है जिससे उनके न केवल शारीरिक विकार, अपितु जिन्हें "न्यूरोटिक" या प्रारब्धक अन्य बीमारियाँ कहा गया है, उनमें भी असाधारण लाभ होता है ।

योग साधना के चमत्कारी परिणाम

योग साधना का अपना विज्ञान, रसायनशास्त्र या विद्युत-विज्ञान की तरह ही है । रासायनिक कणों के सम्मिश्रण से नये गुण धर्म वाले पदार्थों के विनिर्मित होने की बात रसायनशास्त्री कहते ही रहते हैं और ऋण तथा धन प्रवाहों का मिलन किस प्रकार विद्युत धारा का सृजन संचार करता है यह विद्युत विज्ञानी बताते ही रहते हैं । योग विज्ञान का प्रतिपादन यह है कि आत्मा की ससीमता जब परमात्मा की असीमता के साथ घुल-मिल जाती है तो सामान्य समझा जाने वाला मनुष्य अनेक दृष्टियों से असामान्य बन जाता है । योगी, तपस्वी, ऋषि, सिद्ध पुरुष, महामानव, देवदूत प्रायः इसी स्तर के होते हैं । सिंह की खाल ओढ़कर कोई गधा वनराज बनने का उपहासास्पद उपक्रम करे यह दूसरी बात है पर यदि वस्तुतः आत्मा को परमात्मा स्तर के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया गया हो तो प्रगति के अनुरूप वैसी क्षमताएँ असंदिग्ध रूप से प्राप्त होती चली जायेंगी जो सामान्य स्तर के लोगों में प्रायः नहीं ही पायी जातीं ।

चरित्रवान, सन्मार्ग पर दुस्साहसपूर्वक चलने वाले, लोक-मंगल के लिए आत्म-समर्पणकर्त्ता, तत्वदर्शी, युगान्तरकारी एवं उपयुक्त नेतृत्व कर सकने में समर्थ व्यक्ति प्रायः इसी स्तर के होते हैं, जबकि सामान्य नर कीटकों को पेट और प्रजनन से ही फुरसत नहीं—कृपणता किसी सत्कर्म में कोई कहने लायक अनुदान नहीं देने देती तब धारा चीरकर उल्टी दिशा में चल पड़ने का साहस दिखा सकना, निश्चय ही बड़ा कठिन काम है । इस कठिनाई पर विजय आत्म-बल के आधार पर ही पायी जा सकती है । ऐसी देव स्तर की आत्म-शक्ति को प्राप्त कर सकना एक उच्चस्तरीय चमत्कार ही समझना चाहिए । ऐसे सिद्ध पुरुष अपने व्यक्तित्व से जन-मानस को उलट देने और युग के प्रवाह को पलट देने का जो कार्य कर दिखाते हैं उसका अणिमा, महिमा, लघिमा आदि के नाम से जानी जाने वाली ऋद्धि-सिद्धियों से कम नहीं वरन् अधिक ही मूल्यांकन किया जा सकता है ।

अनिवार्य तो नहीं, पर योग की कोई-कोई शाखा ऐसी भी है जिसका आश्रय लेकर कोई विशेष व्यक्ति अपने शरीर या मन में असाधारण दीखने वाली क्षमताएँ विकसित कर लेते हैं । इनसे भले ही उस साधक को अथवा दर्शक को कोई विशेष लाभ न हो पर यह प्रमाणित तो हो ही जाता है कि योग साधना के आधार पर सामान्य स्तर से ऊँचा उठकर असामान्य बना जा सकता है । समय-समय पर ऐसे कौतुक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौतूहल देखने को भी मिलते रहते हैं, जिनसे योग साधना के द्वारा प्रत्यक्ष देखे जा सकने वाली असामान्य उपलब्धियों का आभास मिलता है ।

पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के समय एक योग चमत्कार सम्बन्धी घटना का उल्लेख एक अंग्रेज सर क्लावडे वोडे ने किया है । घटना सन् १८३७ की है । एक साधु ने भूमिगत समाधि लेने की अपनी विशेषता का परीक्षण कराया जो महाराजा की देखरेख में सम्पन्न हुआ । साधु के निर्देशानुसार उसे जीवित अवस्था में एक सन्दूक में बन्द किया गया और सन्दूक समेत जमीन में गहरा गाढ़ दिया गया । गड्ढे के ऊपर से चूने का पलस्तर कर दिया गया । छः सप्ताह तक एक-एक घण्टे की ड्यूटी लगाकर दिन-रात के पहरेदार नियुक्त किए गए और उनके ऊपर एक निरीक्षक अफसर रखा गया ताकि किसी प्रकार की चालाकी या सन्देह की गुंजाइश न रहे ।

छः सप्ताह की नियत अवधि पूरी होने पर गड्ढा खोला गया । साधु निर्जीव था । फिर भी उसके पूर्व निर्देशों के अनुसार जीवन वापस लाने के प्रयत्न किए गए । हाथ पैरों के जकड़े हुए जोड़ों पर गरम पानी की धारा छोड़ी गयी । पीठ की मालिश की गयी, माथे को आटे की गरम पुल्टिस से सेंका गया । नाक और कान में भरी रुई निकाली गयी, आँखों में घी आँजा गया तथा पीठ और सीने पर हल्की मालिश की गयी । फलतः शरीर में हरकत आरम्भ हुई । साँस चली, नाड़ी धड़की और धीरे-धीरे वह साधारण स्थिति में आ गया । साधु ने राज मण्डली से पूछा—आपको योग की शक्ति पर विश्वास हुआ या नहीं ? दरबारी क्या कह सकते थे, उन्होंने स्वीकृति सूचक सिर ही हिलाया ।

सर क्लावडे वोडे उन दिनों भारत सरकार के एक उच्च अधिकारी थे । उन्होंने अपनी जानकारी में घटी इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि भारत में ऐसे ज्ञात और अविज्ञात योगियों की कमी नहीं जो ऐसे आश्चर्यजनक कर्तृत्व प्रस्तुत कर सकते हैं जिनका सामान्य, शरीर विज्ञान की दृष्टि से कोई समाधान नहीं सूझता ।

स्वामी विशुद्धानन्द जी की चमत्कारी सिद्धियों के बारे में 'कल्याण' पत्रिका में जो विवरण प्रकाशित हुआ है उससे उनकी विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है । कहा गया है कि वे हाथ रगड़ कर मन चाहे पुष्पों की सुगन्ध उत्पन्न कर देते थे । अनेक शिष्यों द्वारा अनेक प्रकार की सुगन्धियों की फरमाइश करना और तत्काल वैसी ही उत्पन्न हो जाना कम आश्चर्यजनक नहीं था । एक वस्तु को दूसरे रूप में परिवर्तित करने की विद्या को वे सूर्य विद्या बताते थे । उन्होंने उसे प्रमाणित भी किया था । उन्होंने एक फूल उठाया और उसकी प्रत्येक पंखुड़ी से एक-एक अलग फूल उत्पन्न कर दिया । रुई के टुकड़े को सफेद से लाल रंग का और फिर पत्थर जैसा कठोर बना दिया । खजूर के हरे-भरे पत्ते को उन्होंने पत्थर जैसा बना दिया । स्वामीजी का कहना था कि यह कोई जादू नहीं विशुद्ध विज्ञान है । सूर्य की सूक्ष्म शक्ति के साथ यदि साधना द्वारा सम्पर्क बना लिया जाय तो उसके सहारे प्रकृति के पदार्थों में हेर-फेर करने की विद्या करतलगत हो सकती है ।

भारत में तथा अन्य देशों में ऐसे योगाभ्यासी रहे हैं जो अपनी इच्छा शक्ति के प्रयोग से शरीर की गतिविधि में असामान्यता ला सकते हैं । इस स्तर के लोगों में पिछले दिनों यहूदी मनुदीन फ्रेंच महिला हुगुनेर, फिनिश, ओवेसेडर आदि के नाम प्रख्यात रहे हैं । वे योग से शारीरिक स्थिति में क्या विचित्रता लायी जा सकती है उसका खुला प्रदर्शन करते थे ।

अभी भी ऐसे योग साधकों की कमी नहीं जो आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाते हैं । कुछ समय पूर्व अमेरिकी टेलीविजन पर मैसूर के हठयोगी श्रीराव को नाइट्रिक ऐसिड पीते हुए दिखाया गया था ।

डॉ. ब्रोरो, डॉ. बेगनर, डॉ. बेकची, डॉ. चेना प्रभृति शरीर शास्त्रियों ने इस सम्बन्ध में कितने ही योगाभ्यासियों से भेंट की और पाया कि उनमें सामान्य मनुष्यों की तुलना में शरीर पर असाधारण नियन्त्रण कर सकने की अतिरिक्त क्षमता विद्यमान है । हृदय की धड़कन को घटा देना, नाड़ी की गति अतिमन्द कर देना, शरीर के किसी भी भाग से पसीना निकाल देना, माँसपेशियों को कड़ी कर देना, एक निश्चित समय के लिए प्रगाढ़ मूर्छा की स्थिति में चले जाना, किसी अवयव को सुन्न कर लेना, अखाद्य खाना और उन्हें पचा जाना, तापमान एवं रक्तचाप बढ़ा लेना, वजन घटा या बढ़ा देना ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लन्दन में एक भारतीय योगी ने सन् १९२८ में एक सार्वजनिक प्रदर्शन किया था उसने नाड़ी की गति को न्यूनतम २० और अधिकतम १२० करके डॉक्टरों को आश्चर्यचकित कर दिया था । वह अपनी माँसपेशियों और त्वचा को इतनी कड़ी कर लेता था कि सामान्य हथियार के प्रभाव का भी उन पर कुछ प्रभाव न पड़े ।

योग आत्मा और परमात्मा के मिलन को कहते हैं । मिलन का नाम ही योग-संयोग है । जीव प्राय: पेट और प्रजनन के गोरख धन्धे में उलझा हुआ वासना तृष्णा की कीचड़ चाटता रहता है । आदर्शवादिता और उत्कृष्टता उसकी आँख से ओझल ही बनी रहती है । उसी भ्रम-जंजाल को काटने का नाम योग साधना है । शारीरिक बल-वर्धन के लिए आसन प्राणायाम को—नेति, धोति, वस्ति आदि की प्रक्रिया अपनाई जाती है । मानसिक क्षमता विकास के लिए ध्यान-धारणा और प्रत्याहार की एकाग्रता मूलक साधना प्रयोगों को काम में लाया जाता है । आत्मा और परमात्मा का मिलन इससे ऊँचा है । अपनी आकांक्षा की भावना को संकीर्ण स्वार्थपरता की परिधि से ऊँची उठाकर जब उत्कृष्ट दैवी प्रेरणाओं में नियोजित किया जाता है तो वह भाव योग की साधना नर को नारायण ही बना देती है । तब उसके चमत्कार बाजीगरी, कौतुक, कौतूहल जैसे न रहकर इस स्तर के होते हैं जिनसे विश्व में सुख-शान्ति का सम्वर्धन सम्भव हो सके ।

गुह्य योग साधनाओं का पात्रता सम्बन्धी अनुशासन

योग विद्या को गुह्य रखने की परम्परा है । सामान्य बुद्धि से विचार करने पर यह अनुचित लगता है कि किसी अच्छी बात को सर्वसाधारण से छिपाकर रखा जाय । अच्छी बात को जितने अधिक लोग जानें उतना ही अच्छा । सामान्य बुद्धि इसी बात का प्रतिपादन करके ही छिपाने वाले निर्देशन की भर्त्सना करेगी ।

तथ्य तक पहुँचने के लिए महत्त्वपूर्ण बातों को जानने के लिए तद्नुरूप पात्रता होने की बात समझनी चाहिए । अस्त्र-शस्त्र छोटे बच्चे के हाथ में नहीं दिये जाते क्योंकि भय रहता है कि वे बुद्धि विकास के अभाव में उसका अनुचित उपयोग कर सकते हैं और अपने लिए तथा दूसरों के लिए संकट खड़ा कर सकते हैं । तिजोरी में क्या है इसे बच्चों को नहीं बताया जाता । जमीन में धन गाढ़ना हो तो भी बच्चों को हटा देते हैं । वे कौतूहल वश दूसरों को बता सकते हैं और घर का भेद अनुपयुक्त लोगों तक पहुँच जाने पर चोरी-डकैती का संकट खड़ा हो सकता है । चूहे या खटमल मारने की दवाएँ बच्चों की पहुँच से बाहर रखी जाती हैं । खेल-खेल में ही वे उसे खा जायें तो लेने के देने पड़ सकते हैं । इस प्रकार के छिपाव में अनुचित कुछ नहीं है । मात्र सावधानी का—पात्रता का ध्यान रखने भर का भाव है ।

योग का आरम्भिक शिक्षण चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता सिखाने से होता है । राजयोग का पूर्वार्द्ध यम, नियम और आसन प्राणायाम हैं, अर्थात् शारीरिक, मानसिक पवित्रता—परिपक्वता । वह स्थिति पूरी होने पर अगले चार चरणों को सीखने की बारी आती है । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास इसके बाद करना पड़ता है । छोटी कक्षाओं के बालक, वर्णमाला, मात्रा—स्वर व्यंजन, गिनती, पहाड़े आदि याद करते हैं । इसके बाद उन्हें सरल स्तर का पढ़ना-लिखना तथा जोड़-बाकी, गुणा-भाग स्तर का गणित पढ़ाया जाता है । प्रगति का एक निर्धारित क्रम है । अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित आदि की जानकारियाँ कई कक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेने के उपरान्त कराई जाती हैं । आरम्भिक कक्षा का विद्यार्थी उन्हें सीखने का आग्रह करे तो अध्यापक हँस भर देते हैं । समय आने पर बताने की बात कहकर टाल देते हैं । बच्चा रूठे तो भी उसकी परवाह नहीं करते जो बात जिस स्थिति में उपयुक्त नहीं उसमें वह कर गुजरने की हठ करे तो उसे पूरा नहीं किया जाता । पाँच वर्ष का बालक पड़ौस में ब्याह शादी होते देखकर अपने विवाह की हठ करे तो माता-पिता उसकी बात पर कहाँ ध्यान देते हैं । योग की उच्चस्तरीय अतीन्द्रिय क्षमताओं से सम्बन्धित योग पक्ष के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

आध्यात्मिक प्रगति चरित्र निर्माण से आरम्भ होती है । यह आरम्भिक बाल कक्षाएँ सबके लिए खुली हुई हैं । उससे ऊँची कक्षाओं में प्रवेश करने की पात्रता बढ़ती है । मेडीकल या इन्जीनियरिंग कालेज में प्रवेश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करने की परीक्षा से पूर्व पात्रता नापने की टैस्ट परीक्षाएँ होती हैं । यदि उसे उत्तीर्ण न कर पाये तो दाखिला नहीं मिलता । इस प्रतिबन्ध के पीछे कोई दुर्भाव छिपा हुआ नहीं है । एक कक्षा के बाद दूसरी, तीसरी, चौथी आदि कक्षाओं में प्रवेश पाने की सुनियोजित व्यवस्था का समावेश भर है । इसे कोई दुराव ठहराये या विद्यार्थियों के साथ अनीति, पक्षपात करने जैसा दोष लगाये तो वह आक्षेप मान्य नहीं हो सकता ।

चरित्र निष्ठा अपने आप में एक योगाभ्यास है । उसके आधार पर मनुष्य अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करता है और उतने भर से भी अपना व्यक्तित्व विकसित करके संसार क्षेत्र में भी बड़े उत्तरदायित्वों को वहन करता है, बड़ी सफलताएँ प्राप्त करता है । संसार में जितनें भी महामानव हुए हैं—उन सभी को अपने से छोटे, बराबर वालों और बड़ों के बीच अपनी चरित्रनिष्ठा को प्रमाणित करना पड़ा है और इस आधार पर उनका विश्वास अर्जित करना पड़ा है । इसके पश्चात उन्हें बड़े उत्तरदायित्व सँभालने के लिए कहा गया है । ऐसा कहीं नहीं हुआ कि अनजानों को ऐसे ही शासनाध्यक्ष या कोषाध्यक्ष या सेनापति बना दिया गया हो । ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रामाणिकता का सबूत प्रस्तुत करना पड़ता है । अतीन्द्रिय क्षमताएँ कमाने में उतनी कठिनाई नहीं है जितनी कि सँभालने में । इस क्रम का व्यतिक्रम करने में हानि ही हानि है, लाभ नहीं ।

योग की दो दिशा धाराएँ हैं । एक में विचार परिष्कार, चरित्र शोधन, संयम साधन, पुण्य परमार्थ जैसी ज्ञान वैराग्य की साधना करनी पड़ती है । यह भक्त सन्तों का, सन्त सज्जनों का मार्ग है । इस आधार पर जो शक्ति प्राप्त होती है । वह आत्म-कल्याण तथा जन-कल्याण दोनों ही प्रयोजनों के काम आती है । गाँधी, तिलक, सुभाष, नेहरू, पटेल, विनोबा आदि की साधनाएँ ऐसी ही थीं । उन्हें भी एक प्रकार के योग साधक ही कह सकते हैं । यह मार्ग सबके लिए खुला है । इसकी शिक्षा किसी भी श्रेष्ठ सज्जन के परामर्श से किसी को भी उपलब्ध हो सकती है । स्वाध्याय, सत्संग और चिन्तन मनन से भी यह शालीनता का मार्ग किसी को भी सहज सुलभ हो सकता है । उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों के क्रिया-कलाप में सम्मिलित रहने से भी उस प्रकार की उत्कृष्टता, आदर्शवादिता हस्तगत हो सकती है । ऐसे लोग जब चमत्कार तो नहीं दिखाते और न वरदान आशीर्वाद देते हैं पर ऐसे योगियों की तुलना में अपना और अन्यान्यों का, समाज और समय का जो हित साधन करते हैं, वह किसी भी प्रकार कम महत्त्व का नहीं होता ।

अतीन्द्रिय क्षमताएँ जागृत करके असामान्य स्तर के चमत्कार दिखाना सम्भव होता है । इसके लिए हठयोग की—तन्त्रयोग की साधनाएँ करनी पड़ती हैं । उनके लिए मनोबल को साधारण स्थिति तक पहुँचाने के लिए असाधारण स्तर की ऐसी साधनाएँ करनी पड़ती हैं, जिनमें निर्धारित विधि-विधान में तनिक भी भूल नहीं होनी चाहिए । भूल करने पर साधक को क्षति उठानी पड़ सकती है । कई बार तो वह क्षति इतनी बड़ी होती है कि प्राण संकट जैसा व्यवधान सामने आ खड़ा होता है उनको साधने के लिए कठोर अनुशासन के निर्वाह की साहसिकता चाहिए । विधि-विधान पर अटूट श्रद्धा और तन्मयता चाहिए । बीच में मन उचट जाने, श्रद्धा डगमगा जाने में साधना खण्डित हो जाने का डर रहता है । खण्डित साधना साधक के लिए विपत्ति खड़ी करती है । उस हानि को न केवल व्यक्ति विशेष सहन करता है वरन् परिवार का सन्तुलन भी बिगड़ जाता है । दूसरों के बीच निन्दा होती है । अपनी, साधना की, गुरु आदि सभी की निन्दा होती है ।

चमत्कारी सिद्धियाँ दिखाने की मैस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म, प्राण प्रहार, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण जैसी करामातें हाथ आ जाने पर घटिया स्तर के लोग उनका कौतुक कौतूहल प्रदर्शित किए बिना रुक नहीं सकते । इससे अनेक पात्र-कुपात्र लाभ उठाने के लिए पीछे लगते हैं । किसी की मनोकामना पूरी न की जा सके तो वे ही फिर शत्रु बन जाते हैं और जैसे बन पड़े वैसे क्षति पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । काम कर दिया जाय तो अनेकों से चर्चा करते हैं । इस आधार पर फिर पात्र-कुपात्रों की भीड़ लगने लगती है और निन्दकों-प्रशंसकों का एक निरर्थक हज्जूम पीछे लग जाता है । इनका काम कर देने में भी अनर्थ और न करने में भी अनर्थ । कौतुक दिखाने वाले सिद्ध पुरुष अपनी कष्ट उपार्जित साधना का एकाकी बाजीगर स्तर के खेल-तमाशे में नष्ट करके स्वयं छूँछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन जाते हैं । संचित भण्डार समाप्त हो जाने पर करामात दिखाने की क्षमता भी समाप्त हो जाती है ।

ऐसे लोग कई बार अपने स्वार्थ साधन के लिए उन करामातों का उपयोग करने लगते हैं और नीति-अनीति का अन्तर भूल जाते हैं । कर्मफल से कोई नहीं बच सकता । सिद्ध करामाती भी नहीं । लाभवश ऐसे कुकृत्य करने लगने पर चरित्र की सम्पदा शेष नहीं रहती और वे गए बीते लोगों के स्तर पर जा पहुँचते और अधोगामी बनते हैं । इन खबरों को देखते हुए सत्पात्र की परीक्षा किए बिना चमत्कारी सिद्ध साधनाओं के सम्बन्ध में उन्हें गुह्य रखने का ही अनुशासन है । सत्पात्र साधक मिले तो ही उन्हें सिखाये जाने का निर्देशन है ।

योग बाजीगरी नहीं वरन् उच्चस्तरीय पुरुषार्थ है

आज-कल योग का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है । स्थान-स्थान पर नित्य नये योग केन्द्र खुलते तथा सभी को योग की उच्चतम स्थिति तक पहुँचा देने का दावा करते हैं । देश की तरह विदेशों में भी अनेकानेक तथाकथित योगीगण अपने इन केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य से निरन्तर जाते रहते हैं । सामान्य मानव मन में सहज ही जिज्ञासा उमगती है कि यह योग है क्या ? जिस योग को आज बाजीगरी के रूप में प्रदर्शित कर उसे अर्थकारी विद्या के रूप में अपनाया जा रहा है, क्या पूर्व काल में ऋषियों ने भी इसी का प्रतिपादन किया था ?

मानव मन को उद्वेलित करने वाली ये जिज्ञासाएँ स्वाभाविक हैं । इनके समाधान हेतु चिन्तन-मनन करने तथा पातंजलि प्रणीत योग दर्शन के पृष्ठ उलटने पर स्पष्ट हो जाता है कि योग अर्थकारी नहीं अपितु आत्मोन्नति की दिशा में ले जाने वाली विद्या है । योग शब्द "युज" धातु से निःसृत हुआ है—जिसका तात्पर्य है 'जोड़ना' । अध्यात्म साधना के क्षेत्र में यह शब्द आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाली पुण्य प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त होता है । इसे सद्ज्ञान और सत्कर्म का समन्वय भी कह सकते हैं । संसार में सबसे बड़ा दुःख वियोग है । प्रिय परिजनों से बिछुड़ जाने पर जितना कष्ट होता है उतना अन्यत्र कहीं भी कभी नहीं होता । आत्मा के अपनी परम प्रिय परब्रह्म-परम सत्ता से विलग होने पर अहर्निशि पग-पग पर कुकर्म घेरते हैं और शोक सन्ताप दुःख देते हैं ।

साधन और सत्प्रयोजन का समन्वय हो सके तो उसे व्यावहारिक जीवन का योग कहा जायेगा । इस सुयोग को जिन्होंने भी बनाया, वे स्वल्प साधनों से भी आशातीत प्रगति कर सकने में समर्थ हुए । जिन्हें यह सन्मार्ग नहीं मिला, जो साधनों को बाल क्रीड़ा के मनोविनोदों में गँवाते रहे, उन्हें दुष्कर्मों में नष्ट करते रहे ऐसे मनुष्यों की जीवन सम्पदा सुर दुर्लभ होते हुए भी अभिशाप-दुर्भाग्य ही सिद्ध होती रहेगी ।

मानव जीवन ही अमूल्य साधन है तथा परमात्मा की प्राप्ति है—महत् सत्प्रयोजन । इसका समन्वय न हो पाने के कारण ही हेय गतिविधियाँ गले बँधती तथा सर्वनाश का पथ प्रशस्त होता है । जन्म-जन्मान्तरों से संग्रहीत पशु प्रवृत्तियाँ अपने-अपने उन्हीं हेय संस्कारों के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाने के लिए आकर्षित करती रहती हैं । यह वृत्तियाँ किसी भी तरह मानवी गरिमा के अनुकूल नहीं । इनके बहक़ने पर ही नर के कलेवर में दिखता मानव वस्तुतः न होकर नर पशु होकर रह जाता है ।

आवश्यकता वृत्तियों के नियमन की है । इसी कारण योग दर्शन के सूत्रकार ने योग का यथार्थ अभिप्राय बताते हुए "योगाश्चितवृत्ति निरोधः" का सूत्र प्रतिपादित किया है । योगाभ्यास का प्रारम्भ चित्तवृत्तियों के निरोध से ही होता है । आमतौर से इसका अर्थ एकाग्रता का अभ्यास समझा जाता है, पर यह अभ्यास योग का एक छोटा-सा अंश है इसे इसका भौतिक भाग भी कहा जा सकता है । एकाग्रता में अध्यात्म साधक की नहीं अपितु ऐसे अनेक संसारी व्यक्ति भी उसमें पारंगत होते हैं जिनका आध्यात्मिकता से दूर-दूर का रिश्ता नहीं होता । सरकस में तामाश दिखाने वाले नटों के सारे खेल इसी एकाग्रता के ही बलबूते टिके होते हैं । यदि उनका ध्यान बँटने लगे तो तार पर चलने, झूलों पर उछलने जैसे करतब दिखा सकना किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा, वैज्ञानिक, कलाकार, मूर्तिकार आदि अपने-अपने विषयों में तन्मय हो सकने की विशेषता उत्पन्न करते तथा सफल होते हैं । पर इसे एक मस्तिष्कीय कौशल भर कहा जा सकता है । अध्यात्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजनों में भी इस विशेषता की आवश्यकता है । इतना होते हुए भी मात्र इसी विशिष्टता के आधार पर किसी को योगी नहीं कहा जा सकता ।

चित्त निरोध का अर्थ है—मन की अस्त-व्यस्त भाग-दौड़ को नियन्त्रित करके किसी विशेष प्रयोजन में लगाये रखने का अभ्यास । यह आवश्यक भी है और सराहनीय भी, पर इससे योग साधना का प्रयोजन पूरा नहीं होता है । आत्मिक प्रगति के लिए मात्र चित्त की नहीं गहराई में उतर कर चित्तवृत्तियों के निरोध की बात सोची जानी चाहिए । चित्त निरोध और चित्तवृत्तियों के निरोध का अन्तर प्रत्येक विचारशील के मनमस्तिष्क में स्पष्ट रहना चाहिए ।

किन-किन चित्तवृत्तियों का अवरोध करना होगा इसका संकेत योगदर्शन के साधन पाद के सूत्र ६ में दिया गया है । समस्त वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं तथा उन पाँचों वृत्तियों में से प्रत्येक वृत्ति क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट रूप में होती है । प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति प्रायः यही पाँच प्रकार की चंचलताएँ इन पर छाई रहती हैं और उसे उच्च उद्देश्यों से विरत करके पशु प्रवृत्तियों में उलझाती हैं । प्रमाण वृत्ति उसे कहते हैं जो इन्द्रिय विषयों के पूर्वाभ्यास से सम्बन्धित विषयों के प्रसंग आने पर उभरती है । विपर्यय कहते हैं—प्रतिकूल ज्ञान को, वस्तु स्थिति की जानकारी न होने से चित्त कस्तूरी के हिरन के सदृश उद्विग्न फिरता है । विकल्प का अर्थ है—भय, आशंका, सन्देह, अशुभ सम्भावना आदि कुकल्पनाओं से उत्पन्न कातरता । निद्रा का अर्थ है—आलस्य प्रमाद-उपेक्षा अवसाद-अनुत्साह । स्मृति वे संस्मरण हैं जो निकृष्ट योनियों में रहते समय अभ्यास में आते रहे स्वभाव के अंग बने रहे । उनकी छाया मनुष्य योनि में भी छाई रहती है और उसके फलस्वरूप कई बार इतने जोर से उभरती है कि विवेक मर्यादाओं के बाँध तोड़ कर वैसा करा लेती है, जिसके सम्बन्धों में पीछे प्रायश्चित्त करना ही शेष रह जाता है ।

जिस युग में, जिस समाज के, जिस वातावरण में हम रह रहे हैं उसमें अवांछनीय प्रचलनों की कमी नहीं । उनका आकर्षण मन को अपनी ओर खींचता-लुभाता है । पानी स्वभावतः नीचे गिरता है । अधिकांश लोग अवांछनीय गतिविधियाँ अपनाकर अनुपयुक्त जीवन जीते हैं । इससे वे तात्कालिक लाभ भी पाते हैं पीछे भले ही उन्हें दुष्परिणाम भुगतने पड़ें । इस तत्काल लाभ की बात सहज ही मन को आकर्षित करती है और दबी हुई दुष्प्रवृत्तियाँ उभर कर उस मार्ग पर घसीट ले जाती हैं जो मनुष्य जैसे विवेकी प्राणी के लिए अशोभनीय है ।

योग साधना का मूल उद्देश्य इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के साथ प्रचण्ड संघर्ष खड़ा कर देना है । जिस महाभारत में कृष्ण और अर्जुन ने सम्मिलित भूमिका निभाई थी, वह आत्म परिष्कार में योग साधना के साथ पूरी तरह से सम्बन्धित है । कुसंस्कार कौरव दल से किसी भी कीमत में कम नहीं । ये निकृष्ट योनियों के साथ चले आ रहे तथा वातावरण में घुसी आवांछनीयता से उद्दीपित हो भड़कते हैं । जिस तरह से कौरवों ने पाण्डवों की सारी सम्पदा हथिया ली थी उसे वापस लेने के लिए युद्ध करना पड़ा, ठीक उसी तरह से आत्मिक गरिमा पर असुरता आच्छादित हो रही है । उसको इस चंगुल से छुड़ाने के लिए विरोध प्रतिरोध का महाभारत खड़ा करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग शेष नहीं रह गया है । योगाभ्यास में इसी "निरोध" संघर्ष का उल्लेख है । इसमें आत्मा परमात्मा का सत्कर्म सद्ज्ञान का समन्वयन करने पर विजय सर्वथा निश्चित हो जाती है ।

इस अभ्यास के आठ सोपान हैं, जिनको अपनाना व्यूह रचना के सदृश है । इस तरह क्रम-क्रम से अभ्यास करते हुए दुष्प्रवृत्तियों को निरस्त कर अन्तः प्रकृति की परतों का भेदन कर लक्ष्य को पाया जा सकता है । शास्त्रकारों ने योग साधना का महात्म्य तथा तत्वदर्शन समझाते हुए बताया है कि जिस प्रकार क ख ग घं से अक्षरारम्भ का अभ्यास करते हुए शास्त्रज्ञ विद्वान बन जाते हैं, वैसे ही योग का अभ्यास करते हुए तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

यह न तो कठिन है और न ही अशक्य । इसकी सुलभता सर्वसाधारण के लिए है । इस मार्ग पर न्यूनाधिक जितना भी चला जा सके उतना ही लाभ है । इस तथ्य को समझने तथा अपनाने से ही तथाकथित "योगा" बनाम बाजीगरी के मोहजाल से भी उबरा जा सकेगा ।

जड़ पदार्थों में एक+एक का जोड़ दो बनता है । प्राणियों की चेतना का सहयोग समन्वयन होने से यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्य भिन्न प्रकार से होता है । एक और एक को बराबर रख देने से वे ग्यारह बन जाते हैं । दो सच्चे मित्र सहयोगी मिलकर असाधारण काम करते हैं । इसी प्रकार यदि आत्मा और परमात्मा के समन्वयन होने की स्थिति को सूत्रकार इस प्रकार समझाते हैं—

"पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्ररुप: कैवल्यं स्वरूपं प्रतिष्ठा का चितशक्तिरिति ॥४।३४॥"

गुण कारणों में लय होते तथा चैतन्य शक्ति अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा पाती है । इस तरह चिर वियोग का दु:ख दूर होता तथा योग की वह दुर्लभ स्थिति आती है, जिसमें आनन्द शक्ति, सिद्धि सभी कुछ है । यही है योग का सही स्वरूप, जिसे समझा व हृदयंगम किया जाना चाहिए ।

हठयोग : लाभदायक भी हानिकारक भी

हठ ऐसे आग्रह को कहते हैं जिसमें अपनी बात मनवाने के लिए जिद ठानी गयी हो। समझौते या परिवर्तन की गुंजाइश न रहने दी गयी हो । हठयोग शब्द से तात्पर्य ऐसे ही साधनों से है जिसमें प्रवाह, प्रचलन, अभ्यास की परवाह न करते हुए, जो चाहा है वही कर गुजरने का निश्चय किया गया है । यह दबाव अपने ही शरीर तथा मन पर डालने का हठयोगी प्रयत्न करते हैं ।

सामान्यतया यही प्रतीत होता है कि प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करने से विग्रह एवं संकट खड़ा होगा ऐसा होता भी है । पर जब इसे वैज्ञानिक विधि के साथ-साथ सम्पन्न किया जाता है तो हानि से बचते हुए अतिरिक्त लाभ उठाने का अवसर भी मिलता है ।

कई हठयोगी दिन-रात खड़े रहकर लम्बी आयु गुजार देते हैं । वे एक झूले के सहारे अपनी छाती टिका कर झपकियाँ लेते और नींद की आवश्यकता पूरी करते रहते हैं । बाबा मौजी साईं का स्वर्गवास ८५ वर्ष की आयु में हुआ । कहा जाता है कि उन्होंने १८ वर्ष की आयु में खड़े रहने का व्रत लिया था और उसे आजीवन निभाया ।

एक हाथ ऊँचा उठाकर रहने वाले हठयोगी पिछले दिनों तक बहुत जगह पाये जाते थे । उनका जो हाथ ऊँचा उठा रहता था वह एक प्रकार से सूख ही जाता था । यों उसमें रक्त संचार किसी प्रकार थोड़ी मात्रा में चलता रहता था । इस विधा में उन्हें क्या आध्यात्मिक लाभ मिलता था, यह तो विवादास्पद है लेकिन अकारण की गयी ऐसी तितिक्षा के पीछे यदि वास्तव में उद्देश्य छिपा हो तो उसके सिद्धि रूपी परिणाम देखे जा सकते हैं ।

सर्दी और गर्मी के महीने के सम्बन्ध में यही बात है । ठण्ड के दिनों में ठण्डे पानी से नहाने की कई लोग साधना करते हैं । मार्ग शीर्ष स्नान, मात्र स्नान के वृतधारी गंगा में प्रभातकाल की तेज हवा और ठण्डक में महीने भर तक स्नान करते हैं । इसी प्रकार गर्मी के दिनों में चारों ओर आग जलाकर धूनी तापने वाले लोगों के सम्बन्ध में भी यही बात है । तेज गर्मी और कड़ाके की सर्दी में भी बिना वस्त्र गुजारा करने वाले साधु-सन्त अभी भी देखे जाते हैं । कुछ दिन पहले तक गंगोत्री क्षेत्र में कई महात्मा बर्फ जमने की सर्दी के दिनों में वहाँ निर्वस्त्र निवास करते थे । उत्तरकाशी के विष्णु स्वामी का कुछ दिन पूर्व ही देहावसान हुआ है जो गंगा के ठण्डे जल में प्रात:काल से लेकर तीसरे प्रहर तक खड़े-खड़े जप ध्यान करते थे ।

ब्रह्मचर्य को भी हठयोग का एक अंग माना गया है यौवन का उभार आने पर हर नर मादा में प्रजनन की उमंग उठती है और यौनाचार के लिए मन चलता है । उस उभार को हठपूर्वक रोक देना, शरीर को उससे वंचित रखना और मन को वैसा न सोचने के लिए बाधित करना, मनोनिग्रह की ही एक प्रक्रिया है ।

व्रत उपवासों के सम्बन्ध में भी यही बात है । जब पेट में भूख लगती है और खाने की इच्छा बेचैन करती है तो भी संकल्पपूर्वक उसका दमन करना, निराहार रहना ऐसा कृत्य है जिसे प्रकृति प्रेरणा का प्रतिरोध कहा जा सकता है ।

इन उभारों को रोक सकना प्रबल मनोबल के सहारे ही सम्पन्न हो सकता है । अन्यथा अभावग्रस्त स्थिति में भी कुछ न कुछ उपाय खोजा और साधन जुटाने का प्रयास किया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकल्प बल का शरीर पर कितना अधिक आधिपत्य हो सकता है, इसके कितने ही विलक्षण उदाहरण कई अभ्यासियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते रहते हैं । माँसपेशियों को अकड़ाकर इतनी कड़ी कर दिया जाता है कि उन्हें धातु पात्र की तरह बजाया जा सके । नाक, कान जैसे कोमल अवयवों को इतना कठोर कर देना, जिससे उन्हें किसी प्रकार भी झुकाया न जा सके, ऐसा ही अभ्यास है जिसे आश्चर्यजनक कहा जा सकता है । सीने से सटाकर लोहे की छड़ मोड़ देने का करतब प्रोफेसर राममूर्ति दिखाया करते थे । ताराबाई अपने बालों के जूड़े से अपने शरीर जितने वजन का पत्थर उठा लिया करती थीं । मैसूर के हठयोगी रामानन्द अपनी अँगुलियों से कैंची का काम लेते थे । कपड़े और टीन की चद्दरें इस प्रकार काट देते थे मानो उनकी अँगुलियाँ इसी प्रयोजन के लिए बनी हों ।

शरीर के किसी अंग का तापमान असाधारण रूप से गिरा देना, हृदय की धड़कन बन्द या न्यूनतम कर देना ऐसे ही चमत्कार हैं जिनके प्रदर्शनों की चर्चा आये दिन होती रहती है । उनमें कोई जादू भी नहीं होता । प्रयोक्ता इसमें विशुद्ध रूप से बढ़े हुए मनोबल का प्रयोग परिचय देते रहते हैं । जमीन में गड्ढा खोदकर उसमें हफ्तों तक बन्द बैठे रहने वाले, समाधि लगाने वाले इसे अपनी इच्छा शक्ति का चमत्कार कहते हैं, जिसके आधार पर अवयवों को उनकी स्वाभाविक एवं सामान्य क्षमता से भिन्न स्थिति तक जा पहुँचने के लिए सधाया जाता है ।

नेति, धोति, वस्ति, वज्रौली, कपाल, भाति आदि क्रियाओं में अवयवों से उनके सामान्य क्रिया-कलाप से भिन्न प्रकार के कार्य किये जाते हैं । उनके प्रथम प्रयासों में अड़चन प्रतीत होना, कष्ट अनुभव होना स्वाभाविक है, पर जब मनोबल पूर्वक उन्हें अभ्यास के लिए धीरे-धीरे सधाया जाता है तो वे भी सरकस के जानवरों की तरह ऐसे कृत्य करने लगते हैं जो उनकी प्रकृति या परम्परा में सम्मिलित नहीं है ।

मानवी काया का ढर्रा एक क्रम के अनुसार घूमता है । अवयवों की सामर्थ्य भी एक सीमा तक है । पर यह सब अभ्यास क्रम पर निर्भर है । इसे पत्थर की लकीर नहीं समझा जाना चाहिए । बदलने का निश्चय कर लिया जाय और उसके लिए क्रम व्यवस्था का सुनियोजित मार्ग अपनाया जाय तो वैसा परिवर्तन कठिन होते हुए भी असम्भव नहीं है ।

उत्तरी ध्रुव क्षेत्र की कड़ाके की ठण्ड में हिरन, कुत्ते, भालू रहते हैं । ऐस्किमो जाति के मनुष्यों ने भी उसी वातावरण में रहने के लिए अपने को अभ्यस्त कर लिया है । कितने ही वनवासी कबीले सघन क्षेत्रों में इस प्रकार निर्वाह करते हैं मानो अभी भी आदिम युग बना हुआ हो ।

स्वभाव को नाजुक बना लेने पर वह छुई-मुई जैसा भी बन सकता है कि ठण्डा पानी पीते ही छींके आने लगे । इसके विपरीत गड़रिया लुहारों की तरह एक गाड़ी में समूची गृहस्थी लेकर खानबदोशों की तरह भी जिन्दगी बिताई जा सकती है । सभी मौसमों में खुले में रहकर ऋतु प्रभावों को सहन करते रहने योग्य शरीर एवं स्वभाव ढल सकता है ।

भूमिगत समाधि प्रदर्शन में धड़कन बन्द कर लेना, शरीर का निःचेष्ट होना या गहन तन्द्राग्रस्त होना आवश्यक नहीं । यह कार्य अमुक वातावरण में रहने का अभ्यास कर लेने पर भी हो सकता है । जिस गड्ढे में समाधि लगाई जाती है । उसमें इतनी खाली जगह रह जाती है जिसमें साँस लेते रहने पर निर्धारित अवधि तक जिया जा सके । फिर जमीन भी सर्वथा ठोस नहीं होती उसमें हवा रहती है और पोल में ऑक्सीजन लेते रहने का क्रम किसी न किसी रूप में बना रहता है । यदि ऐसा न होता तो छोटे बिलों में दर्जनों चूहे किस प्रकार घुस रहते हैं । साँप कैसे जीवित रहते हैं ?

छोड़ी हुई साँस में भी इतनी ऑक्सीजन बनी रहती है जिसमें फिर भी अनेक बार साँस ली जाती रहे । ऐसा न होता तो मोटे रुई के लिहाफ ओढ़कर चारों ओर से लपेटकर उसी के भीतर रात भर साँस लेते हुए लोग कैसे सोया करते । प्रश्न या आश्चर्य हवा का रहता है । बिना पानी पिये तो ठण्डे वातावरण में बहुत समय तक रहा जा सकता है । शीत ऋतु में अजगर, भालू आदि गहरी नींद में सो जाते हैं और जब मौसम अनुकूल होता है तब बाहर निकलते हैं । इस बीच में वे खाते-पीते कुछ भी नहीं संचित चर्बी के सहारे मजे में अवधि कट जाती है । ऊँट एकबार ही इतना चारा पानी पेट में जमाकर लेता है जिसके सहारे हफ्तों चलकर लम्बे रेगिस्तान पार किए जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकें । प्रयत्न करने पर मनुष्य आसानी से अपनी प्रकृति को वैसा ढाल सकता है ।

भूमिगत समाधि में सबसे बड़ी बात है मानसिक सन्तुलन बनाये रहने की, घबरा जाने वाला व्यक्ति मर सकता है, किन्तु चारों ओर बन्द रहने पर भी जो घबराते नहीं ऐसे भी लोग हो सकते हैं । राकेटों में अन्तरिक्षीय यात्रा पर निकलने वालों को ऐसे ही वातावरण में रहने का अभ्यास करना होता है । वे जिस कैप्सूल में बन्द रहते हैं । उससे सिर निकालने की गुंजाइश नहीं रहती । यात्री पूरी तरह मशीनों से और खास किस्म के कपड़ों से जकड़ा होता है । मलमूत्र विसर्जन भी उसी में करना होता है और सो लेने का काम भी बैठे-बैठे ही करना होता है । हर किसी के लिए यह कठिन है पर जो अभ्यास करले उनके लिए यह सरल प्रतीत होता है । पनडुब्बियों में लोग महीनों गुजार लेते हैं । युद्ध टेंकों में चालक को भीतर ही बैठना होता है और वह शत्रु की गोलियों या बमों से प्रभावित न हों ऐसे अभेद्य बक्से में बन्द रहता है । भूमिगत समाधि का प्रदर्शन करने वालों को इससे अधिक कठिन परिस्थितियों में नहीं रहना पड़ता । अन्तरिक्ष रॉकेट की ऊपरी परत गरम हो जाती है । पर गड्ढे में तो वातावरण पूरी तरह ठण्डा रहता है ।

गाँधी मेडीकल कॉलेज हैदराबाद के प्राध्यापक डॉ. शंकर राव का एक लेख 'साइन्स टुडे' पत्रिका में छपा है, उसमें बम्बई के आर. जे. वकील द्वारा इस सन्दर्भ में की गयी खोजों का उल्लेख है । श्री वकील ने किसी रामदास नामक प्रदर्शन कर्त्ता की स्थिति के सम्बन्ध में परीक्षणात्मक विवरण छापा हुआ है । उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि उतने समय के लिए जितनी हवा आवश्यक है उतनी उस गड्ढे के घेरे में मौजूद थी ।

उपरोक्त लेख में यह दर्शाया गया है कि कोई व्यक्ति बन्द जगह में रहने का अभ्यास कर ले तो समाधि जैसे गड्ढों में रह सकता है । बम्बई के निकट लोनावला स्थित योगाश्रम में डॉ. पी. करमवेलकर ने यह सिद्ध कर दिया कि समाधि प्रदर्शन एक सामान्य-सा कौतुक है । उन्होंने इसके लिए दो ऐसे व्यक्ति तैयार किए जिनका योगाभ्यास से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था । वे गड्ढे में बैठने की कला में अभ्यस्त हो गए । १८ घण्टे गढ़े रहे और नियत अवधि के उपरान्त हँसते हुए बाहर निकल आये । इस प्रक्रिया का प्रदर्शन करने वालों को अभ्यास कौशल भर होता है । उनमें दैवी शक्ति जैसी कोई बात नहीं होती ।

राजयोग विचार प्रधान है । उसमें ध्यान धारणा की प्रधानता है । मनन, चिन्तन पर जोर दिया गया है । ज्ञान और भक्ति उसी क्षेत्र में आते हैं । कर्मयोग के लिए जिस बलिष्ठता और सहन क्षमता की आवश्यकता है उसे उपार्जित करने के लिए तप तितीक्षा का अविलम्बन लेना पड़ता है यह हठयोग है । इसे अनुभवी विशेषज्ञों के संरक्षण में अपनी सहन शक्ति के साथ तालमेल बिठाते हुए ही किया जाना चाहिए । मनमर्जी से कुछ भी हठयोग ठान लेना लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध हो सकता है ।

योग साधना से पहले

बहुते से लोग योग की आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा दिव्य शक्तियाँ प्राप्त करना चाहते हैं, पर उनमें से अधिकांश को सफलता नहीं मिलती । कारण यह है कि वे सूक्ष्म कारण और लिंग शरीरों द्वारा उतना काम लेना चाहते हैं, जितना कि वे करने में असमर्थ होते हैं । जिस प्रकार भारी बोझ उठाने के लिए मजबूत शरीर चाहिए उसी प्रकार गहन आत्मिक क्रियाओं को करने के लिए स्वस्थ शक्ति की आवश्यकता है ।

यह बात धर्म शास्त्रों द्वारा ही नहीं विज्ञान द्वारा भी सिद्ध हो चुकी है कि स्थूल शरीर की भाँति मनुष्य के सूक्ष्म शरीर भी होते हैं और वे उसी तरह निर्बल बलवान्, स्वस्थ, रोगी, पूर्ण, अपूर्ण भी होते हैं, जैसे कि हमारा प्रत्यक्ष शरीर होता है । कई बार कोई बीमारी इन सूक्ष्म शरीरों तक पहुँच जाती है, तब उसका इलाज बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि दवा-दारू बाह्य शरीर तक ही प्रभाव पहुँचाती है ।

जिनका स्थूल शरीर निर्बल या रोगी है, उनके सूक्ष्म शरीर भी वैसे ही अपूर्ण बन जाते हैं । यदि मानसिक दुर्गुणों की भरमार हो तो देह के स्वस्थ होते हुए भी अन्तः शरीर विकार ग्रस्त हो जाते हैं । आध्यात्मिक साधनाओं में स्थूल शरीर को उतना परिश्रम नहीं करना पड़ता, जितना कि भीतर शरीरों को । जब वे निर्बल-दुर्बल या जीर्ण-शीर्ण होते हैं, तो अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दैनिक कर्तव्यों को भी ठीक तरह पालन नहीं कर पाते, फिर योग साधन जैसे कठिन व्यायामों का करना तो उनके लिए दुरूह होता है । अभ्यासी प्रयत्न करता है, पर छोटा बालक जैसे भारी पत्थर को नहीं उठा पाता, उसी प्रकार वह भी उन साधनों को पूरा नहीं कर पाता और अपना मन समझाने एवं निर्दोष बनने के लिए अभ्यास प्रणाली अथवा उस महा विज्ञान में दोष लगाता है ।

इस प्रकार अधूरे विधान से काम न चलेगा । योग साधन जैसे महत्त्वपूर्ण विधान में पारंगत होने से पहले हमें उसके मूल आधार को सुदृढ़ करना होगा । महर्षि पातंजलि ने आरम्भ में यम नियमों का विधान किया है, जिसका तात्पर्य है, सबसे पहले शरीर और मन को स्वस्थ बनाना चाहिए, तदुपरान्त आसान प्राणायाम आदि के लिए आगे बढ़ना चाहिए ।

देखने में आता है कि निर्बल और रोगग्रस्त लोग भी चुटकी बजाने जितनी देर में अपने को योगी बना लेना चाहते हैं, जब कृतकार्य नहीं होते तो अविश्वास करने लगते हैं, या दम्भ पर उतारू हो जाते हैं । इन दोनों का ही परिणाम घातक होता है । इसलिए आवश्यक है कि हम सबसे पहले प्राकृतिक नियमों का पालन करके शरीर को स्वस्थ बनावें, आहार-विहार ठीक रखें, स्वस्थ वायु में भ्रमण करें और नियम पूर्वक व्यायाम करें । व्यायाम करने से न केवल हमारी माँसपेशियाँ मजबूत होती हैं, वरन् सूक्ष्म शरीरों में भी बल आता है । जब बाह्य शरीर बलवान् होता है, तो आन्तरिक सत्ताएँ भी निर्बल नहीं रहतीं । उसी दशा में योग साधन का सफल होना भी सम्भव है ।

जो आत्मा की उन्नति चाहते हैं वे पहले शरीर को उन्नत बनावें । जो स्वर्ग में धर्म की सम्पत्ति जमा करना चाहते हैं वे शरीर में ब्रह्मचर्य की पूँजी जमा करें जिन्हें सुख और शान्ति प्राप्त करने की इच्छा है वे मन में कुविचारों के पिशाचों को निकाल बाहर करें । इस प्रकार जब शरीर और मन स्वस्थ और बलवान् बनने लगेगा, तो सूक्ष्म शरीरों की शक्ति प्रस्फुटित होगी और तब योग साधन में सफल होना कठिन न रहेगा ।

हमें छलांग मार कर नहीं, सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर चढ़ना चाहिए । योग की आध्यात्मिक साधना से पहले आवश्यक है कि अपने शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनावें ।

योग : पूर्व परिचय व प्रारम्भिक तैयारी

गणितीय भाषा में योग का अर्थ 'जोड़ना या मिलाना' होता है । एक और एक बराबर दो, यह योग हुआ । किन्तु मनुष्य-जीवन के दार्शनिक पक्ष में योग का अर्थ घुलाना होता है । यह भी मिलने के सदृश ही है, पर यहाँ एक और एक मिलकर दो नहीं, एक ही बनता है । अपूर्ण एक परिपूर्ण इकाई में परिवर्तित होता है ।

जीवात्मा पानी की एक बूँद की तरह आविभूर्त हुई । वह अपूर्ण है । शक्ति, ज्ञान और समृद्धि की दृष्टि से नितान्त अपूर्ण और अभावग्रस्त आत्मा की सम्पूर्ण अशान्ति का अर्थ यह अभाव या अपूणताएँ ही हैं । उन्हें दूर करने के लिए मनुष्य आदिकाल से प्रयत्न करता रहा है । उसे एक ऐसे अगाध सिन्धु की आवश्यकता हुई, जिसमें घुलकर वह अपनी लघुता को मिटा डालती—किन्तु भौतिक अर्थों में बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट् भी पूर्ण न हो सके । दिग्विजयी सिकन्दर ने तमाम दुनिया से सम्पत्ति एकत्रित की, किन्तु जब उसका मृत्यु-क्षण समीप आया और जब उसे पता चला कि उसका जोड़ा हुआ यह धन साथ नहीं जा सकता, तो उसने अपने मन्त्रियों से कहा कि मेरी अर्थी निकाली जाय, तब मेरे दोनों हाथ बाहर निकाल दिये जायें ताकि संसार समझे कि जीवन भर धन-सम्पत्ति और लोकाचार में पूर्णता की प्राप्ति में लगा रहने वाला सिकन्दर अन्ततः खाली हाथ ही मर गया ।

मनुष्य का पार्थिव जीवन ही सब कुछ नहीं, उसकी नैसर्गिक जीवन प्रणाली भी है और जब तक वह शान्त और सन्तुष्ट नहीं होती, उसकी तमाम चेष्टाएँ निरर्थक ही रहती हैं ।

जीवन का विस्तृत अध्ययन करने के उपरान्त ऋषियों ने जिस तत्व-दर्शन की खोज की, वह यह है कि मनुष्य जब तक अपनी वैयक्तिक चेतना (व्यष्टि) को विराट् विश्व में एकरस फैली हुई चेतना (समष्टि या परमात्मा) में नहीं मिला देता, तब तक उसकी अशान्ति दूर हो भी नहीं सकती । इसी के साथ-साथ जो मार्ग, जो पद्धति, जो साधनाएँ उन्होंने आत्मा के विकास के लिए निकाली, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब योग कहलायीं । योग का अर्थ है, अपने आपको परमात्मा में घुलाना, लघु से विभु, अणु से महत् और जीव से परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा बनना ।

किन्तु इन पंक्तियों का लिखना या उपदेश करना जितना सरल है, योग उतना ही कठिन भी है । वाजिश्रवा के पुत्र नचिकेता ने यमाचार्य से भगवान को जानने की इच्छा प्रकट की, तब यमाचार्य ने यही कहा था—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा,
न हि सुविज्ञेय मणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व,
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥

—कठोपनिषद् १।२१

हे नचिकेता ! इस सम्बन्ध में तो देवता भी सन्देह ग्रस्त हैं, योग-विज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म होने से शीघ्र समझ में नहीं आता । इस कठिनाई में न पड़कर तुम अन्य कोई वरदान माँग लो, मुझे दबाओ मत ।

किन्तु जब नचिकेता ने भोग और सांसारिक सुखों को भी तृणवत्, तुच्छ और क्षण-भंगुर मानने का साहस अभिव्यक्त किया, तो यमाचार्य सन्तुष्ट हुए, उन्होंने कहा—दृढ़ निश्चय और कठिनाइयों से लड़ सकने का जिसमें साहस है, वही योगी हो सकता है ।

यह कठिनाइयाँ इसलिए और भयंकर हैं, क्योंकि भगवान को प्राप्त करने में जो समर करना पड़ता है, वह अपने आपसे ही करना पड़ता है, अपनी इच्छाओं को ही मारना पड़ता है । इसलिए उसमें प्रवेश से पूर्व ही उसका तत्वज्ञान समझना आवश्यक है । समझ-बूझ के साथ उठाया गया कदम लाभदायक होता है । औंधे-सीधे चल पड़ने और थोड़ी ही दूर चलकर वह मार्ग छोड़ देने से तो योग-विद्या का उपहास ही होता है । इसलिए अस्थिर व बालक-बुद्धि लोगों को नहीं, निष्ठावान, साधकों को ही योग-मार्ग पर आरूढ़ होने की आज्ञा दी जाती है ।

पातंजलि योग-दर्शन का कथन है—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।

—योग-दर्शन पाद १ । सूत्र २

अर्थात् "चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है ।" यदि मनुष्य अपने मन में उठने वाली अनेक प्रकार की कामनाओं और वासनाओं को रोक लेता है और उनका प्रयोग इन्द्रियों की इच्छा से नहीं, अपनी इच्छा से उस तरह कर सकता है, जिस प्रकार सारथी रथ में जुते हुए घोड़ों को, तो वह निश्चय ही अपनी शक्तियों का ऊर्ध्वगामी विकास करके परमात्मा की उपलब्धि कर सकता है ।

साधारणतया चित्तवृत्तियों का समझ पाना भी सरल कार्य नहीं है । कौन-सी कामना, कौन-सी इच्छा उचित है, कौन-सी अनुचित—इसका निर्णय कर सकना अनजानकार के लिए उतना ही कठिन है, जितना मोटर न चलाना जानने वाले के लिए मोटर चलाना । आत्मिक आवश्यकताओं और इन्द्रियजन्य वासनाओं में घोर विरोध है । आत्मा शरीर से स्थूल पदार्थों में इस तरह घुली हुई है कि उन दोनों को अलग-अलग करना बहुत कठिन हो जाता है । इसलिए योग-दर्शनकार अपने आप ही प्रश्न करता है कि वह चित्तवृत्तियाँ कौन-सी हैं, जिनका विरोध किया जाय । योग-दर्शन के पाद १ सूत्र ६ में उसी का उत्तर देते हुए लिखा है—

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ॥

अर्थात् "प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति यह पाँच चित्तवृत्तियाँ हैं, जिनको वशवर्ती करना योगी के लिए परमावश्यक है ।"

प्रमाण वृत्तियाँ वह कहलाती हैं, जो किन्हीं इन्द्रियों से सम्बन्ध में रखने वाली विषय-वस्तुओं को देखकर जागृत होती हैं । इनके सूक्ष्म भेदोपभेदों की क्लिष्टता में जाकर विभ्रमित होने की अपेक्षा यह जाने लें, तो पर्याप्त है कि श्रोत अर्थात् कान मधुर ध्वनि सुनने को इच्छुक रहते हैं । जहाँ कहीं भी मुधर शब्द सुनाई देते हैं, संगीत या सुन्दर वाद्य हो रहा होता है, उधर ही चल पड़ने को मन करता है । त्वचा में स्पर्श से सुख अनुभव करने का गुण होता है, आँखें रूप पसन्द करती हैं और वहीं रमे रहना चाहती हैं, जहाँ सौन्दर्य दिखाई देता है । चाहे वह वस्तुओं का सौन्दर्य हो, स्थान अथवा स्त्री-पुरुषों के शरीर का । जिह्वा रस की प्यासी रहती है—सदैव अच्छा-अच्छा खाने की ही उसकी तलाश रहती है और उसी तरह घ्राण या नासिका का गन्ध से सम्बन्ध है । उसका प्रिय विषय सुगन्ध है, चाहे वह फूलों में मिले अथवा इत्र-गुलाब में । यह इन्द्रियाँ अपने-अपने सुख आवरण रहित प्राप्त करना चाहती हैं, जितना इन सुखों में व्यक्ति रमण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता है, उतना ही शरीर दुर्बल और निस्तेज होता है । शरीर के साथ ही मन और आत्मा भी दुर्बल होती जाती है । इसलिए यह प्रत्यक्ष सुख की सी अनुभूति कराने वाली चित्तवृत्तियाँ सबसे प्रमुख हैं, उनको नियन्त्रण में रखना चाहिए ।

इन आकर्षणों को छोड़ने और मन को उनसे विमुख करने का अर्थ यह नहीं है कि इससे इन्द्रियाँ सन्तुष्ट हो जायेंगी । हम फ्रायड के इस सिद्धान्त को मानते हैं कि दमित वासनाएँ और भी वेग से उठती हैं, किन्तु एडलर और जंगु के स्थानपति (सब्लीमेसन) सिद्धान्त के अनुसार इन कामनाओं को हम अन्तर्वर्ती बना लें, तो जो सुख प्रत्यक्ष पदार्थों में दिखाई देता है, वही क्रमशः कल्पना, मन और आत्मा में उतरता चला जा सकता है अर्थात् आज का दिखाई देने वाला घाटा इस अर्थ में इस पूर्णता की ही तैयारी है । अभी हम थोड़े-से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और श्रोम में अपनी शक्ति गँवाकर बेचैन हो सकते हैं, पर अपना अन्तर्वर्ती जगत् इतना परिपूर्ण है कि उसमें किसी भी इन्द्रिय की वासना को पूर्ण करने की उतनी सामग्री अपने ही आप में इतनी मात्रा में उपलब्ध है, जो करोड़ों वर्षों तक उपभोग करने से भी चुक नहीं सकती । इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भ की इन सम्पूर्ण और क्षणिक वासनाओं को, जो प्रत्यक्ष सुख प्रतीत होता है, आवश्यक हो जाता है ।

दूसरी वृत्ति है अज्ञानता या विपर्यय । मरुभूमि में दूर से चमकते सिकत कण देखकर जिस प्रकार जल होने का मिथ्या-बोध होता है, उसी प्रकार पदार्थों के प्रति हमारा अज्ञान ही विपर्यय है । रुपये-पैसे, सोने-चाँदी, स्त्री-पुत्रों के प्रति हमारे अन्दर कोई तात्विक व्याख्या न होकर आसक्ति मात्र होती है । जो वस्तु बहुत प्रिय लगती है, भले ही उसका आत्म-हित से कोई सम्बन्ध न हो, उसी के पीछे लगे रहते हैं । विपर्यय वृत्ति को रोकना भी योगी के लिए आवश्यक है । उसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के वैज्ञानिक स्वरूप को समझना चाहिए ताकि उसमें से कितना और क्या ग्रहणीय है, इस पर स्थिर चित्त से विचार किया जा सके । केवल अपनी मनो-मान्यता के आधार पर ही किसी वस्तु को अपने लिए उपयोगी मानने की वित्तेषणा को छोड़कर ही व्यक्ति योगी बन सकता है ।

विकल्प वृत्ति का सीधा सम्बन्ध भय से है, जैसे बड़े दाँतों और मुँह से आग उगलते हुए भूत का चिन्तन, सींगों वाले आदमी, आधा आदमी आधा भैंसा इस तरह की भ्रांत कल्पनाएँ, जिनका अर्थ तो कुछ भी नहीं होता, पर अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण वैसे विचार मस्तिष्क में आते और डराते रहते हैं । साधना-काल में यह स्थिति बड़ी ही कष्टदायक प्रतीत होती है । इसीलिए दुर्बल मनोभूमि के व्यक्तियों को योग की दीक्षा नहीं दी जाती । यदि मस्तिष्क की इन विकल्पनाओं पर विजय न प्राप्त की जा सके, तो उच्च भूमिका में पहुँचे हुए साधक भी स्त्री और बालकों के समान भयग्रस्त होकर साधनाएँ छोड़ सकते हैं ।

चौथी निद्रावृत्ति का सीधा सम्बन्ध तामसिक आहार-विहार से ही मनुष्य का शरीर शुद्ध नहीं रहता । आहार घृणित, बासा, बुसा होता है, तब वह बहुत सोता है या जागते हुए भी उसे आलस्य घेरे रहता है । योगाभ्यासी के लिए अपनी तामसिक वृत्तियों का नियन्त्रण कर निद्रा में कमी करनी चाहिए, अपने आलस्य को दूर करना चाहिए ।

पाँचवीं वृत्ति स्मृति कहलाती है । ऊपर कहे हुए सभी सुखों को बार-बार याद करना भी सुखों की ओर आकर्षित करता है । यह मानसिक चिन्तन भी कम शक्ति-क्षय नहीं करता । फ्रायड का कथन है कि मनुष्य जो इच्छाएँ प्रत्यक्ष संसार में पूर्ण नहीं कर पाता, अवचेतन मन उसकी सृष्टि स्वप्नावस्था में करता है । साधक को कुछ ही दिन के अभ्यास से रात में मधुर-मधुर स्वप्न दिखाई देने लगते हैं । जागने पर उनका बार-बार स्मरण होता है और मन अपने आपको उसी तरह का सुख प्राप्त करने की चेष्टा कराता है । साधक स्वयं वैसा ही चाहता, पर वह स्मृति उसे बार-बार उस सुख की याद दिलाती है । कई सुख और भोग, जो पिछले जन्मों में भोगे गए हैं और अब जिनके केवल मात्र संस्कार अवचेतन मस्तिष्क में पड़े हैं, वह भी स्वप्न में विलक्षण स्मृतियों के रूप में प्रकट होते हैं ।

यह सब मिलकर आत्मा को परमात्मा में मिलने से रोकते हैं और बार-बार पार्थिव सुखों की प्रेरणा देते हैं । इसलिए इन्हें बार-बार रोकने और अपने लक्ष्य में आरूढ़ रहने को कहा जाता है । जो इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्तवृत्तियों के चंगुल में नहीं आता, वही योगी अन्त में अपने उद्देश्य में सफल होता है ।

योग की तुलना परमाणु शक्ति से की जा सकती है । परमाणु क्या है ? वस्तु के कण अणु होते हैं जो मानव चक्षुओं द्वारा दिखलायी नहीं पड़ते । उसके भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग को परमाणु कहते हैं इसकी सूक्ष्मता का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि एक सुई के छेद में करोड़ों अणु के कण निहित हैं ।

अणु की विशेषताएँ भी बड़ी विचित्र हैं । अणु ठोस नहीं होता । यह सौरमण्डल से मिलता है । जिस तरह सूर्य के चारों ओर ग्रह नक्षत्र चक्कर काटा करते हैं ठीक उसी तरह अणु के केन्द्र में एक पिण्ड होता है । इस केन्द्रीय पिण्ड में दो मुख्य बातें पायी जाती हैं—(१) प्रोटॉन (विद्युत सहित) (२) इलेक्ट्रॉन (विद्युत रहित) । केन्द्र पिण्ड के चारों ओर ग्रह नक्षत्र की तरह एक दूसरे प्रकार के कण जिसे 'न्यूट्रॉन' कहते हैं निरन्तर घूमा करते हैं । इस तरह यह अणु सौरमण्डल से बिल्कुल मिलता है ।

अणुबम का जब विस्फोट होता है तो अणु बम में निहित केन्द्र पिण्ड को दूसरे प्रकार के कण 'न्यूट्रॉन' द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है, जिससे असाधारण ऊष्णता और चमक पैदा हो जाती है और विनाश लीला होने लगती है ।

प्रश्न होता है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु के कण में इस कदर शक्ति कहाँ से आयी ? इसका उत्तर संसार प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता आइन्सटाइन साहब ने दिया है । जो हाल ही में अखबारों में प्रकाशित हुआ था । इनकी गवेषणा ने वैज्ञानिक जगत् के सिद्धान्त का रूप ही बदल डाला है ।

आज तक तो यह माना जाता था कि संसार में पाये जाने वाले तत्वों का नाश कभी नहीं होता पर अब यह निश्चित हो गया है कि मूल तत्वों को वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा बदला भी जा सकता है । तत्व के लुप्त हो जाने पर वह शक्ति में परिणत हो जाता है । आइन्सटाइन साहब ने अपनी नई खोजों द्वारा यह भली-भाँति सिद्ध किया है कि मूल तत्वों को वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा बदला जाता है । इसी सिद्धान्त पर उद्रजन बम बनाया गया है ।

वैज्ञानिकों के अवलोकन के फलस्वरूप यह पता चला है कि सूर्यलोक में उद्रजन गैसें बराबर एक दूसरी गैस में परिणत होती रहती हैं जिसे 'हीलियम' कहते हैं । इस परिवर्तन का मूल कारण सूर्यलोक में पाया जाने वाला तापमान है ।

अणुबम में अणु का विस्फोट होता चला जाता है परन्तु उद्रजन बम में इसके विपरीत अणु के कण उच्च तापमान से मिलते जाते हैं । अणु से उच्च तापमान पैदा कर उद्रजन बम बनाने में आसानी होती है ।

योग में हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर क्रमशः बढ़ते जाते हैं । स्थूल शरीर से प्राण, प्राण से मन और मन से आत्मा में पहुँचते हैं । इस तरह स्थूल शरीर के लोप होने पर प्राण में, प्राण के लोप होने पर मन में और मन के लोप होने पर आत्मा में पहुँच जाते हैं ।

अतः ज्यों-ज्यों हम योग प्रणाली की ओर बढ़ते जाते हैं एक-एक तत्व का लोप होता जाता है और तत्व के लोप होने पर वह अधिकतर शक्ति में परिणत होता जाता है और अन्त में शक्ति के केन्द्र आत्मा में पहुँचकर पूर्ण शक्तिशाली होकर लौट जाता है । अतः योग द्वारा भी यह सिद्ध है कि तत्व के लोप होने पर वह शक्ति में परिणत होता जाता है । यही लोप का रहस्य है ।

योग साधन में बहिर्मुखी जीवन को अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास इसलिए किया जाता है कि सूक्ष्म शक्ति को बाह्याडम्बरों में खर्च होने से बचाकर तत्वों को सूक्ष्म बनाने की प्रक्रिया में लगाया जा सके । तीव्र इच्छा, चित्त की एकाग्रता, लक्ष्य की तन्यता के आधार पर हमारे शारीरिक और मानसिक तत्व क्रमशः सूक्ष्म होते चलते हैं और उस सूक्ष्मता के आधार पर हमारे उपकरण, पदार्थ से शक्ति में परिणत होते चलते हैं । यह शक्ति ही यदा-कदा आश्चर्यजनक योगिक सिद्धियों के रूप में दृष्टिगोचर होती है । योगी आध्यात्म विज्ञान पर अवलम्बित साधना अपने तत्वों को शक्ति में परिणत कर लेता है और शक्ति पुँज बनकर प्रत्यक्ष या परोक्ष में ऐसे कार्य करता है जो सर्वसाधारण के लिए सम्भव नहीं होते ।

योग एक सुव्यवस्थित विज्ञान है । अणु का शक्ति में परिवर्तन होना वैज्ञानिकों ने कुछ रासायनिक पदार्थों, यन्त्रों और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्भव किया है । इस कार्य को भारतीय आध्यात्म वेत्ता योग विज्ञान द्वारा चिरकाल से करते आ रहे हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अणु बम या उद्रजन बम से केवल भयंकर विनाश की ही कल्पना की जा सकती है पर योग द्वारा अपने बाह्य उपकरण को स्थूल से सूक्ष्म में, अणु से शक्ति में परिणत करके योगी प्रबल शक्ति और ऐश्वर्य का स्वामी बनकर विश्वव्यापी महाशक्ति हो जाता है । एक ही वैज्ञानिक सिद्धान्त "अणु का शक्ति में परिणत होना" योगियों और वैज्ञानिकों द्वारा दो भिन्न प्रकार से होता है और उसके परिणाम भी अलग-अलग प्रकार से हो रहे हैं ।

वह दिन दूर नहीं जब विश्व के सार्वभौम विवेक को यह निर्णय करना पड़ेगा कि अणु को शक्ति में बदल कर प्रलयंकर बम तैयार किए जायें या क्षुद्र जीव को आत्मा-महान आत्मा—परम आत्मा बनाया जाय । इस अन्तिम निर्णय पर ही संसार का भविष्य निर्भर है ।

योग सम्बन्धी भ्रान्तियों से उबरें : वस्तुस्थिति को समझें

'योग साधना' शब्द योग एवं साधना दो शब्दों से मिलकर बना है । योग का अर्थ होता है जुड़ना एवं साधना अर्थात् नियन्त्रण में क़र लेना—मजबूती से अपनी पकड़ में ले लेना । किसे जोड़ना, किसे जुड़ना व किसे नियन्त्रण में लेना—इनके ठीक तरह न समझ पाने के अज्ञान के कारण ही इस क्षेत्र में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली हैं । इसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक समस्या मानकर चला जाय तो चमत्कार—सिद्धियों सम्बन्धी मान्यताओं का जो अनाधिकार प्रवेश इस क्षेत्र में गलत रूप में हो गया है—उससे स्वयं बचा व अन्यों को बचाया जा सकता है ।

योग न तो आसन है, न प्राणायाम, न ही एकाग्रता । यह तो एक भाव परक भूमिका है जिसमें व्यक्ति को अपनी सत्ता का समर्पण, समष्टि में करना होता है । आदर्शों से भरी ब्रह्म चेतना ही 'उपास्य ब्रह्म' है जो जीव से मिलने को आतुर है । व्यक्तिवादी संकीर्णता से उबरकर आना विश्वमानस की परिधि में मानव का भावोत्कर्ष होना योग साधना कहा जा सकता है । इसके लिए दृष्टिकोण का—भावनात्मक मनोभूमि का परिष्कार करना होता है । पाशविक चिन्तन को हेय स्थिति से उलटकर सद्भावना व सत्प्रवृत्तियों में रत होना पड़ता है । समस्त अध्यात्म योग साधनाओं का लक्ष्य यही है । यही वह लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिए योग साधक तत्पर हो स्वयं आगे बढ़ता है व अन्यों को आगे बढ़ाता है ।

साधना का अर्थ है—"अपने को सुसंस्कृत सभ्य बना लेना ।" अपने जीवन देव की सुव्यवस्था के लिए की गयी चेष्टाएँ ही साधना कहलाती हैं ।

व्यक्तित्व पर चढ़ी दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण, सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बनाना प्रत्यक्षतः एक पुरुषार्थ है । इस कीमत पर ही साधारण जन व्यक्तित्व सम्पन्न—महामानव बने हैं । साधना आत्मिक क्षेत्र में भी होती है तथा भौतिक में भी । जैसे प्रयास किए जाते हैं, वैसी ही सफलता मिलती है ।

माली अपनी क्यारी की निराई-गुड़ाई करके खरपतवार अलग करता है व वांछित पौधे को खाद, पानी देने से लेकर उसे सहारा देने तक की आवश्यकता को भली-भाँति समझता है । किसी के दबाव से नहीं—स्वप्रेरणा से ही खेत की, बैलों की, हल आदि सम्बद्ध उपकरणों की व्यवस्था जुटाकर चलता है । आज का श्रम कल ही लाभप्रद हो, ऐसा दुराग्रह उसका नहीं होता फसल समय के अंनुसार पकती है, तब तक वह धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता है, मौसम से लेकर कीड़ों से सुरक्षा तक के सभी अवरोधों से निपटता रहता है व समय आने पर जितना मिला, उसे ईश्वरीय उपहार समझ घर ले आता है । इस साधना को वह सतत् जीवन भर चलाता है । साधना कैसे की जाती है—इसकी विधि का मर्म किसान की गतिविधियों तथा मनोभूमि का पर्यवेक्षण कर भली-भाँति समझा जा सकता है ।

अध्यात्म साधना का क्षेत्र अन्तःजगत है । अपने भीतर दबे खजाने को व्यक्ति स्वयं नहीं जानता, पर खोजने-उभारने का प्रयास करने पर उसे यही काया—यही जीवन प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष दृष्टिगोचर होता है । लगता है, बाहर किसी से माँगने की दीनता दिखाने की बजाय पहले अपने भीतर ही हल चला लिया होता तो कितना ठीक रहा होता । भीतरी प्रसुप्त क्षमताओं को ही विभिन्न तत्वदर्शियों ने देव माना है और बाह्योपचारों के माध्यम से अन्तःसंस्थान के भाण्डागार को करतलगत करने का विधि-विधान मात्र बताया है । वे साधक की निष्ठा को पकाते हैं, उसे अभ्यस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाते हैं । साधक की मूर्च्छना जागृत होती है । आत्म विस्मृति को भूल वह आगे बढ़ चलता है ।

आत्म चेतना की जागृति, उसे साधकर लक्ष्य विशेष पर केन्द्रीभूत कर देना एवं उस लक्ष्य से जुड़ने के लिए प्रारम्भिक पुरुषार्थ—आत्मशोधन के साथ उच्चस्तरीय आदर्शवादी दृष्टिकोण का विकास—यही यह नींव है जिस पर योग साधना का भवन खड़ा होता है । इसके फलित होने पर जो चमत्कार बहिरंग व अन्तरंग क्षेत्र में दिखाई पड़ते हैं—वे मनोबल—आत्मबल की फलश्रुतियाँ नहीं वरन् प्रसुप्त की जागृति की चमत्कृति ही होते हैं । उन्हें पाकर मनुष्य सही अर्थों में मनुष्य बन जाता है ।

विडम्बना यह है कि ऊपर वर्णित इस दर्शन को भूलकर आसन, प्राणायाम, एकाग्रता की तीन टाँग की, सवारी पर सवार होकर योग साधना के क्षेत्र में दौड़ लगाने की प्रतियोगिता ही चारों ओर नजर आती है । कहीं-कहीं तो मुद्रा, बन्ध, नेति, धोति, वस्ति आदि बहिरंग योगपरक क्रियाओं को भी योग शिक्षा में सम्मिलित कर लिया गया है । चौथे अनिवार्य चरण पर किसी का ध्यान गया ही नहीं जिसके बिना ये तीनों अधूरे हैं, मात्र शरीर का शोधन—अभिवर्धन व एकाग्रताजन्य स्थूल परिणतियों तक ही सीमित रह जाने वाले हैं । स्वार्थवादी संकीर्णता में उलझे कुसंस्कारी मन को उच्च आदर्शों को अपनाने की तपश्चर्या में लगा देना ही योग साधना का प्राण है । चूँकि यह सबसे दुष्कर कार्य है—सबसे बड़ा आत्मिक पुरुषार्थ इसी में करना होता है—इसी कारण सबसे अधिक अवहेलना भी इसीकी की जाती है । कहा जाता है कि योग विज्ञान प्रथम तीन व अन्य हठयोग की क्रियाओं तक सीमित है । चिन्तन व आहार, कर्तव्य व व्यवहार में पूरी छूट है ।

दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि अध्यात्म क्षेत्र के प्रवक्ता कहे जाने वालों ने यह भ्रम जंजाल सबसे अधिक फैलाया है । योग की दुकान खूब तेजी से फैली है । मानसिक शान्ति, शरीर स्वास्थ्य की किसे जरूरत नहीं है ? आज विश्व में समृद्धि की सहचरी इन दो कुल्टाओं—मानसिक तनाव व शारीरिक कुस्वास्थ्य ने प्रत्यक्ष रूप से विकसित समाज को अपने शिकंजे में जकड़ रखा है । औषधि उपचार व्यर्थ नजर आते हैं, ऐसे में वे सहज ही उस ओर भगाते हैं, जहाँ उन्हें कुछ आसानी से मिलने की आशा हो । यह सब योग साधना के नाम पर ही हुआ है कि आत्मिक पुरुषार्थ—आत्मोत्थान की इस पद्धति—क्रिया विधान को सरल—सुगम बनाने के नाम पर आत्म प्रवंचकों ने जमकर तथ्यों की अवहेलना की है व अध्यात्म विज्ञान को हानि भी पहुँचाई है । आस्था संकट का एक कारण यह भी है कि व्यक्ति उपचारों को गलत ढंग से अपनाने पर परिणाम न मिलने की शिकायत करे एवं प्रकारान्तर से इन उपचारों में अपनी अनास्था व्यक्त करे ।

आज सबसे बड़ा परिष्कार इसी क्षेत्र में किए जाने की आवश्यकता है । यहाँ तक तो उचित भी है कि शरीर सक्रिय, सबल-स्वस्थ हो एवं मन सन्तुलित । योग साधना की ओर प्रवृत्त साधक का शरीर दूसरे अन्य लोगों की तरह ही स्वस्थ बनाये रखने के लिए आसन, प्राणायाम जैसे व्यायामों का प्रयोग जरूरी है । आहार-विहार ठीक हो—संयमित दिनचर्या हो । योगी हो अथवा साधारण लोक-जंजाल में फँसा व्यक्ति दोनों ही के लिए यह जरूरी है कि आसन आदि तथा बलवर्धक शरीर परक क्रियाएँ करके शरीर को सुगठित क्रियाशील रखा जाय । यह स्वास्थ्य रक्षा हर स्थिति में उपयोगी है, अनिवार्य है, पर गलती तब होती है जब शारीरिक अवयवों को तोड़-मरोड़—अंगों को ऐसे-वैसे घुमाना—इन्हीं को योग साधना कह दिया जाता है ।

इसी प्रकार प्राणायाम स्थूलतः 'डीप ब्रीदिंग' गहन श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया भर है—यदि उसके साथ भावना नहीं जुड़ी है । महत्ता तो तब है जब अन्तःचेतना को प्राणाकर्षण—प्राण धारणा प्रक्रियाओं द्वारा प्रदीप्त किया जाता है एवं इसे उच्चस्तरीय स्थिति में पहुँचाने की बात सोची जाती है । शरीर के अवयवों को साफ रक्त मिले—उनके अन्दर जमा विकारों का शोधन हो—यह जरूरी है व डीप ब्रीदिंग की प्रक्रिया यह करती भी है । पर यदि इसे ही योग—कुण्डलिनी आदि का स्वरूप दे दिया जाय तो यह हास्यास्पद कदम ही होगा । किसी भी वस्तु को उतना ही महत्त्व मिले जितनी कि वह है । नकली जेबर नाटकों में खूब पहने जाते हैं—गोल्ड पालिश किए शृंगार के सभी साधन सस्ती कीमत में बाजार में मिलते हैं । पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि ये सोने का स्थान ले लेंगे । आज बाजारों में जिस प्रकार हर वस्तु का चाहे वह लिखने वाली कलम हो अथवा विदेशी आयातित उपकरण—एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डुप्लीकेट नकल बिकती है । जानकार उसे पहचानते हैं व इस धोखाधड़ी से बचते हैं । मात्र प्राणायाम को ही योग साधना कह देना इसी प्रकार की एक धोखाधड़ी षड्यन्त्र है । अध्यात्म में सरलीकरण की यह प्रक्रिया किसी भी प्रकार उचित नहीं ठहराई जा सकती । एक मजदूर जो दिन में ३-३ क्विंटल वजन उठाकर इधर-उधर करता है—अथवा जो खेत में हल जोतता है, एक सैनिक जो अपनी कवायद करता है—उतना शरीर शोधन कर लेता है जितना इन क्रियाओं से सम्भव है । पर यह योग तो नहीं हुआ । ऐसी दशा में मात्र आसन, प्राणायाम को तिल को ताड़ बनाकर खड़ा कर देना अध्यात्म विद्या के साथ मजाक है ।

एकाग्रता—मेडीटेशन तीसरा पक्ष है, जिस पर खूब लिखा जाता है व कहा जाता है । ध्यान केन्द्र इतने खुल गए हैं—लगता है सारा विश्व अध्यात्मवादी हो गया । पर बाद में देखने पर लगता है कि इन व्यक्तियों के चिन्तन व कार्य तो बदले ही नहीं । वैसे के वैसे ही घटिया रहे । एकाग्रता मन के विधि-व्यवस्था पूर्वक सोचने की—बिखरी शक्तियों को एक ओर केन्द्रित, सुनियोजित करने की विद्या मात्र है । यह तो एक कला है । घड़ी साज जब अपने ग्राहक की घड़ी का सूक्ष्म पुर्जा अपनी जगह लगाता है व त्रुटि को ठीक करता है तो वह एकाग्रता के माध्यम से ही यह सब कर पाता है । इसी प्रकार एक सफल विद्यार्थी, साहित्यकार, कलाकार, मूर्तिकार, वैज्ञानिक मनोयोग के सम्पादन से ही वह सब कुछ अर्जित कर पाता है । पर यह है एकाग्रता की—एक स्थूल भौतिक शक्ति की सुनियोजन द्वारा अर्जित सिद्धि । मनोयोग—तन्मयता जहाँ होगी वहाँ सफलता मिलती चली जायेगी । अस्त-व्यस्त चिन्तन रोककर एक जगह केन्द्रित किया जाय तो उसके सत्परिणाम मिलेंगे ही । मस्तिष्क की घुड़दौड़ जब रुक जाती है—विचार प्रवाह सुनियोजित हो जाता है तो भौतिक क्षेत्र में अपार सफलताएँ मिलती हैं, यह सत्य है । मात्र यहाँ तक ही एकाग्रता या 'मेडीटेशन' की भूमिका है । यह मस्तिष्कीय व्यायाम मात्र हुआ, पर यह योग साधन नहीं है । इसे यदि इतनी हलकी परिधि में सीमाबद्ध कर देंगे तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा । विचारों में उच्चस्तरीय—उद्देश्य परक—भावपरिष्कार युक्त चिन्तन का समावेश हुए बिना योग कहाँ हुआ ? चूँकि चरित्र-निर्माण, भावनात्मक उत्थान एवं जीवन लक्ष्य का उच्चस्तरीय निर्धारण कठिन एवं सबके लिए सुलभ नहीं है इसलिए मात्र भीड़ एकत्र करने के लिए योग के नाम पर बाजीगरी उपयुक्त नहीं ।

आदर्शवादी चिन्तन—महत्त्वाकांक्षाओं को भौतिक से आत्मिक में बदल देना, संकीर्ण स्वार्थपरता के भव-बन्धनों—लोभ-मोह अहंकार से मुक्त होकर आत्मविस्तार करना—यह योग का वह पक्ष है जिसके बिना ऊपर वर्णित तीनों साधन-मात्र स्थूल क्रियाएँ भर हैं । आदर्शवादी भाव-चेतना को ही 'उपास्य ब्रह्म' कहते हैं । अपनी लघु-स्व-चेतना को ऊँचा उठाकर उसे परम सत्ता के साथ जोड़ देना अथवा उसका अपने अन्दर अवतरण होने की अनुभूति करना—दोनों एक ही हैं । लक्ष्य एक ही है—दृष्टिकोण का परिष्कार—पाशविक स्तर—हेय चिन्तन एवं कर्तव्य को उलटकर उसे कुमार्गगामिता के पथ से रोककर सद्भावना व सत्प्रवृत्तियों में परिणत करना । इसी तथ्य की ओर योग साधना के उत्सुकों का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए । यह ध्यान साधना क्रियाओं से सद्कर्म, चिन्तन में सद्ज्ञान व अन्तः में सद्भाव के रूप में परिलक्षित होने लगती है । यही वह चरम उपलब्धि है जिस पर मानव का उत्थान एवं समाज का उत्कर्ष निर्भर हैं । जितनी जल्दी इन तथ्यों को हृदयंगम कर लिया जाय, श्रेयस्कर है । बाल-क्रियाओं में समय भी नष्ट किया और पाया कुछ नहीं—यह पश्चात्ताप मन में बना रहे—इससे उचित तो यही है कि योग साधना, अध्यात्म उपचारों के मर्म, स्वरूप एवं लक्ष्य को पहले अच्छी तरह समझ लिया जाय । उतना होने पर आगे बढ़ चलना, बिना किसी कठिनाई के ही सम्भव है । लक्ष्य यही रहे कि इस पंचतत्वों की काया मात्र को नहीं वरन् अपने प्रसुप्त आत्म तत्व को जगाना, उठाना, उभारना है । पर आज योग के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्तियाँ फैल गयी हैं । योग शब्द के अर्थ को न समझकर उसके अनर्थ निकाले और किए जा रहे हैं । अब आदमी जैसा घटिया होता चला जा रहा है उसी अनुपात से उसने योग की निचली सीढ़ियों को ही न जाने कितने ऊँचे महत्त्व की मानना आरम्भ कर दिया है । छोटे बच्चों को खड़े होने और चलना सिखाने में छोटी तीन पहियों की गाड़ी काम आती है । उन दिनों बच्चा भी उसका सहारा लेता है और अभिभावक भी उसे प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । इतना सब होते हुए भी यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धान्त सदा के लिए नहीं बन सकता कि चलना या खड़ा होना हो तो तीन पहिये की स्टेण्ड गाड़ी का सहारा लेना ही चाहिए ।

योग साधना के लिए यह उचित है कि शरीर को सक्रिय और मन को सन्तुलित रखा जाय । कैंची, उस्तरे पर धार ठीक रहे तो नाई हजामत ठीक तरह बना सकता है । लुहार छेनी, हथौड़े के सही होने पर अपनी ढलाई-गढ़ाई ठीक से करता है । यह मानने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है । योग साधक का भी शरीर दूसरे अन्य लोगों की तरह ही स्वस्थ रखने के लिए आसन, प्राणायाम जैसे व्यायामों का उपयोग किया जाना चाहिए । आहार-विहार ठीक रहना चाहिए । क्या योगी, क्या भोगी सभी के लिए यह सामान्य बात है कि आसन वाले अथवा दूसरी तरह के व्यायाम करके शरीर को श्रमशील, सुगठित बनाया जाय । निरोग रखा जाय । स्वास्थ्य संरक्षण में व्यायाम की प्रक्रिया का भी एक स्थान है और व्यायामों के अनेक प्रकारों में एक गणना आसनों की भी होती है । स्वास्थ्य रक्षा जब हर स्थिति में उपयोगी है तो योग साधक के लिए उसकी उपयोगिता क्यों न होगी । यहाँ तक बात सही है । पर गलती तब आरम्भ होती है जब शारीरिक अवयवों की तोड़-मरोड़ को योग साधना मानकर बैठ जाते हैं ।

आजकल हिन्दुस्तान में और उससे बाहर योग शिक्षा की चर्चा बहुत है, पर सर्वसाधारण को उसका जो परिचय प्रशिक्षण कराया जाता है उसमें आसन जैसे शारीरिक व्यायामों की ही आकाश-पाताल जैसी प्रशंसा के पुल बाँध दिये जाते हैं । यही बात प्राणायाम के सम्बन्ध में है । उसकी महत्ता तो है पर तब है जब अन्तःचेतना को उच्चभूमिका में अवस्थित करने वाली प्रचण्ड संकल्प शक्ति का उपयोग भी श्वास-प्रश्वास क्रिया के साथ किया जाय, अन्यथा गहरी साँस लेना फेफड़े का व्यायाम भर ठहराया जा सकता है । शरीर के अन्यान्य अवयवों की परिपुष्टि के काम में आने वाले व्यायामों की तरह फेफड़े मजबूत करने में प्राणायाम भी उपयोगी हो सकता है । सामान्य स्थिति में किसी बात को उतना ही महत्त्व मिलना चाहिए जितनी कि वह वस्तुतः है । प्राणायाम को योग मान बैठें और आसनों को योग का अनिवार्य अंग मानें तो यह एक थोथी भ्रान्ति ही होगी । यदि कोई व्यक्ति दूसरे प्रकार की श्रम साधना अपनाकर अपना शरीर सक्रिय और समर्थ रख सकता हो तो वह बिना आसन, प्राणायाम का सहारा लिए भी योग साधना का पूर्णतया अधिकारी माना जा सकता है । ऐसी दशा में आसन, प्राणायाम का उतना महत्त्व नहीं होता जैसा कि आजकल योग कि शिक्षा देने वालों ने तिल को ताड़ बनाकर खड़ा कर दिया है ।

यही बात एकाग्रता के सम्बन्ध में लागू होती है । 'मेडीटेशन' की लम्बी चौड़ी चर्चाएँ आज सुनी जाती हैं और उनका इनता महात्म्य बताया जाता है मानो इसे कर लेने पर योग साधना का लक्ष्य पूरा हो जायेगा । 'एकाग्रता मन-मस्तिष्क को सोचने का एक व्यवस्थित विधि मात्र है जिसके आधार पर हर कोई चिन्तनशील व्यक्ति किसी भी भली-बुरी समस्या पर गैहराई से विचार कर सकता है ।' विचारणीय तथ्य पर मनोयोग पूर्वक यदि विचार किया जायेगा तो हर चिन्तनशील व्यक्तिशील व्यक्ति को उपयोगी सफलता मिलेगी । विद्यार्थी, वकील, लेखक, कवि, शिल्पी, कलाकार, सर्जन आदि बुद्धिजीवी वर्ग के लोग जब अपना काम मनोयोग पूर्वक करते हैं, प्रस्तुत विषय में तन्मय हो जाते हैं तो वे गहराई में घुसकर कीमती मोती बीन लाते हैं । शोधकर्त्ता वैज्ञानिकों को यह अवलम्बन अनिवार्य रूप से लेना पड़ता है । जिस विषय पर वे शोध करते हैं, उसी में उनका मस्तिष्क उलझा रहता है । सोते, जागते वे उसी क्षेत्र की समस्याओं को सुलझाने में लगे रहते हैं । कलाकारों और कारीगरों के बारे में भी यही बात लागू होती है, यदि वे अपना कार्य पूरी दिलचस्पी से करें, हाथ के कार्य को मनोयोग पूर्वक सम्पन्न करें तो उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सफलता प्राप्त करते हैं जो अस्त-व्यस्त मन से बेगार भुगतने की तरह काम का बोझा सिर पर से उतारते हैं ।

एकाग्रता, मस्तिष्क के बिखराव की अस्त-व्यस्तता पर नियन्त्रण पाने की एक कला है । दूसरे शब्दों में उसे सोचने की व्यवस्थित शैली कह सकते हैं । जो अच्छी सफलताएँ पाने के किसी भी इच्छुक को सीखनी ही चाहिए । शरीर को सधा कर ही कुशल कारीगर उपयोगी सफलताएँ प्राप्त करते हैं । चित्रकला, मूर्तिकला,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायन-बादन, सर्जरी, शिल्प आदि में हाथ सधाने का अभ्यास करना पड़ता है, उसी प्रकार मस्तिष्क को ऊबड़-खाबड़, अस्त-व्यस्त घुड़दौड़ लगाने का बेढंगापन छोड़कर अभीष्ट प्रयोजन की परिधि में अपनी चिन्तन प्रक्रिया को नियोजित करना अधिक उपयोगी रहता है । जिनका मस्तिष्क सधा हुआ होता है वे मन्दबुद्धि होते हुए भी बहुमूल्य समाधान ढूँढ़ निकालते हैं । यही है एकाग्रता का—मेडीटेशन का सर्वविदित महत्त्व । बात जितनी बड़ी है उतनी ही उसे बताया जाना चाहिए । बात का बतंगड़ बनाने की आदत बुरी है । एकाग्रता के मस्तिष्कीय व्यायाम को यदि योग जैसी आध्यात्मिक साधना बता कर उसे उतनी छोटी परिधि में सीमाबद्ध कर दिया जायेगा तो उसे अर्थ का अनर्थ ही कहेंगे । आज योग के व्याख्याता कुछ ऐसा ही करने पर तुल गए हैं । चूँकि हल्की वस्तुएँ लोग आसानी से पकड़ लेते हैं, उनके माहात्म्य यदि बढ़ा-चढ़ा कर बता दिये जायें तो लोग आकर्षित भी आसानी से हो जाते हैं और योग शिक्षा की प्रतिष्ठा बढ़ जाती और उनकी योग पाठशाला चलने लगती है । चरित्र-निर्माण, भाव-परिष्कार और जीवन-लक्ष्य के निर्धारण की बात कठिन पड़ती है तो उसे सस्ते योगाभ्यासी क्यों सुनने लगे, योग शिक्षक भी कठिन आधार प्रस्तुत करके अपनी बाजीगरी को अनाकर्षक नहीं बनाना चाहते । सरल सुविधा का रास्ता अपनाया जाय सो ठीक है पर बात का बतंगड़ न बनाया जाय ।

योग का लक्ष्य है आत्मा को परमात्मा से जोड़ना । योग शब्द का मोटा अर्थ जोड़ना सर्वविदित है । किसे किससे जोड़ना, इस प्रश्न का उत्तर नर को नारायण से, पुरुष को पुरुषोत्तम से, अणु को विभु से, तुच्छ को महान से, जीव को ब्रह्म के साथ संयुक्त होने के रूप में ही दिया जा सकता है । यह भाव भूमिका है, जिसमें व्यक्ति को अपनी सत्ता का समर्पण समष्टि में करना पड़ता है । आदर्शवादी भाव चेतना को ही 'उपास्य ब्रह्म' कहा गया है । व्यक्तिवादी स्वार्थ भरी संकीर्णता की परिधि से आगे बढ़ कर विश्व-मानव में आत्मसात् होने के भावोत्कर्ष की योग साधना कहा जा सकता है । यह विश्व, ब्रह्म की साकार प्रतिमा है । उस चेतना के आदर्शवादी पक्ष के प्रति श्रद्धा और तत्परता का अभिवर्धन यही योग साधना का लक्ष्य हो सकता है । इसके लिए दृष्टिकोण का भाव भूमिका का परिष्कार करना होता है और पशु स्तर को हेय चिन्तन एवं कर्तृत्व को उलट कर उसे सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों में परिणत करना पड़ता है । अध्यात्म साधनाओं का लक्ष्य यही है । इसकी पूर्ति के लिए प्रत्याहार धारण, ध्यान और समाधि की मनःविज्ञान समर्थित योगाभ्यास क्रियाओं को अपनाना पड़ता है । यही है वह लक्ष्य जिसकी ओर योग शिक्षकों की तत्परता और शिक्षार्थियों की दिलचस्पी को आगे बढ़ाना बढ़ाया जाना चाहिए ।

दुर्भाग्य की बात तब सामने आती है जब निरुद्देश्य आधार लेकर मस्तिष्क को सधाने की कला की नगण्य सी पद्धति एकाग्रता को आकाश जैसी बड़ी बता कर योग के मूल लक्ष्य को ही झुठला दिया जाता है । ध्यानयोगी तरह-तरह की आकर्षक प्रतिमाएँ सामने रख कर अथवा उन्हें कल्पना क्षेत्र में बिठा कर उनके साथ एकाग्रता जोड़ने का प्रयत्न करते हैं । यदि उसमें पूर्ण सफलता मिल जाये, पूरी तरह उन प्रतिमाओं पर मन एकाग्र रहने लगे तो उससे आध्यात्मिक प्रगति में, योग प्रयोजन में, प्रयोजन के मूल लक्ष्य की प्राप्ति में कोई विशेष सहायता न मिलेगी । मस्तिष्क को सधाने का अभ्यास हो भी जाय तो उससे भाव-परिष्कार और व्यक्तित्व की व्यापकता का लक्ष्य कैसे पूरा होगा ? ध्यानयोगी अपनी चेतना को विश्व चेतना का घटक मानकर स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त करेगा । ध्यानयोग इसके लिए सहायक हो सकता है पर उन नगण्य से साधन को साध्य मान बैठने से तो किसी भी प्रकार कुछ भी प्रयोजन पूरा नहीं होता ।

इन दिनों आसन, प्राणायाम और एकाग्रता इसी तीन टाँगों की घोड़ी पर सवार होकर लोग योग साधना का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए दौड़ लगाते देखे जाते हैं । कहीं-कहीं मुद्रा, बंध, नेति, धोति, वस्ति आदि हठयोग परक अंग संचालनों को योग शिक्षा में सम्मिलित कर लिया गया है । चौथे उस चरण की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है जिसकी पूर्ति के लिए योग विज्ञान का सारा ढाँचा ही गढ़ा गया और खड़ा किया गया है । व्यक्तिवादी संकीर्णता और स्वार्थवादी महत्त्वाकांक्षाओं में उलझे हुए मन को उच्च आदर्शों को अपनाने की तपश्चर्या में लगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देना ही जीव और ब्रह्म की एकता का आधार हो सकता है उसके लिए परिष्कृत दृष्टिकोण का—आदर्शवादी मनोभूमि का विकास अनिवार्य है । इसी विकास के आधार पर यह परखा जा सकता है कि किसकी योगसाधना किस हद तक सही दिशा में चल रही है और कितनी सफल हो रही है ।

इन दिनों योग शब्द का उपयोग जिस अर्थ में हो रहा है और योगाभ्यास के नाम पर जिन बाल-क्रीड़ाओं को, आसमान पर उठाने जितना महत्त्व दिया जा रहा है वह दुर्भाग्यपूर्ण है । शारीरिक व्यायाम, मस्तिष्कीय सन्तुलन के अभ्यास अच्छे हैं ।

उन्हें सीखने से स्वास्थ्य और सन्तुलन का लाभ मिल सकता है । योग इतना छोटा नहीं है, उसमें उत्कृष्टतावादी भाव-परिष्कार और आदर्शवादी कर्तृत्व के लिए प्रचण्ड प्रोत्साहन की शर्त अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है । यदि उसका मूल लक्ष्य विस्तृत कर दिया जाय तो फिर शब्द के उपयोग का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता, तब उसे शारीरिक मानसिक व्यायामों की शिक्षा कहना पर्याप्त न होगा । आज की लक्ष्य विहीन योगसाधना की जो धूम देश-विदेश में मची हुई है उसे इसी हल्के स्तर की बाल-क्रीड़ा ही कहा जाना चाहिए ।

योग मनुष्य में देवत्व के उदय की पुण्य प्रक्रिया है । जीव और ब्रह्म का मिलन नर-पशु को चिन्तन और कर्तृत्व में, देव स्तर को बनाये बिना रह नहीं सकता । यह महा-मानव देव-मानव बनने का कल्प विधान है जिसे अपना कर लघु को महान बनने का अवसर मिलता है । योग का उपयोग इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए किए गए प्रयास अभ्यासों के साथ जोड़ा जाय तो ही इस महान भाव विज्ञान की आत्मा को यथार्थ रूप में समझाया जा सकेगा ।

योग की साधना की जाय विडम्बना नहीं

सेवा ही साधना है । उस माध्यम को अपनाकर अपना और दूसरों का कल्याण किया जा सकता है । सेवा बिना उदारता और त्याग के नहीं बन पड़ती । इनका अभ्यास ही आत्मा को उच्च स्थिति तक पहुँचाता है । तालाब में घुसे बिना तैरना नहीं आता, परमार्थ प्रयोजनों में संलग्न हुए बिना यह सम्भव नहीं कि जिन सत्प्रवृत्तियों का गुणानुवाद, स्वाध्याय एवं सत्संग में पढ़ा गया है उनको व्यवहार में भी उतारा जा सके । अध्यात्म सिद्धान्तों का क्रियान्वयन लोक-मंगल प्रयासों में संलग्न होने पर ही होता है । इसलिए साधु, ब्राह्मण सदा व्यक्ति और समाज के कल्याण में निरत रहने के कार्यक्रम बनाते और उनमें जीवन खपाते रहे हैं । सर्वसाधारण के लिए यही मध्यवर्ती मार्ग उपयोगी है ।

योग क्षेत्र का एक विशेष वर्ग है जिन्हें वैज्ञानिक स्तर का कह सकते हैं । उन्हें अन्तर्मुखी होना पड़ता है साथ ही चिन्तन की दिशा विशेष में नियोजित रखने के लिए एकान्त की आवश्यकता होती है । भौतिक विज्ञानी भी अपने अन्वेषण, पर्यवेक्षणों में अपनी प्रयोगशाला ऐसे स्थान पर बनाते हैं जहाँ ध्यान बँटाने वाला शोरगुल न हो । मन को अपने विशेष लक्ष्य में तादात्म्य होने की सुविधा रहे । गहन विषयों के आविष्कारक अपने लिए ऐसी ही परिस्थितियाँ तलाश करते रहते हैं ।

आध्यात्मिक क्षेत्र का शोध पर्यवेक्षण कार्य भी ऐसा ही है जिसमें कोलाहल रहित वातावरण में एकान्त ढूँढ़ना पड़ता है और लोगों की पूछताछ—वार्तालाप प्रसंग से बचने के लिए मौन भी रहना पड़ता है । इतना ही नहीं उन्हें शीत प्रधान वातावरण चाहिए । गरम प्रदेश में शरीर का बाह्य कलेवर भी उत्तेजित नहीं रहता वरन् अन्तःक्षेत्र भी अशान्त, उत्तेजित होने लगता है । ऐसी परिस्थितियों में शोध, अन्वेषण, चित्त का एकाकीकरण ठीक तरह नहीं हो पाता । अनेक साथियों का सान्निध्य ऐसी स्थिति में विक्षेप ही उत्पन्न करता है । ऐसी स्थिति में भौतिक विज्ञानी तथा आत्म विज्ञानी जिन्हें अपने निजी चिन्तन पर ही निर्भर रहना पड़ता है वे एकान्त ही नहीं ढूँढ़ते वरन् एकाकी निवास का भी प्रबन्ध करते हैं । मौन भी धारण करते हैं, पर यह सदा के लिए नहीं हो सकता । कुछ सीमित काल के लिए ही होता है । क्योंकि अन्न, वस्त्र, आग जैसी दैनिक आवश्यकताएँ लम्बे समय के लिए संग्रह करके नहीं रखी जा सकतीं और न कोई ऐसा क्षेत्र अब रहता है जहाँ भोज पत्र के वस्त्र और कन्द मूल, फल, बहुलता से मिलते हों । न कोई वन ही ऐसा है जहाँ सरीसृप एवं हिंसक जीवों का अभाव हो । ऐसी दशा में सुरक्षा की भी एक समस्या सामने रहती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीनकाल में अध्यात्म क्षेत्र के शोध विज्ञानी प्रायः ऐसी परिस्थितियाँ अपने महान कार्य के लिए ढूँढ़ते थे और हिमालय की कन्दराओं में रहकर अपने आत्मबल से जुड़ी हुई सिद्धियों के सहारे शरीर रक्षा का प्रबन्ध कर लेते थे, पर यह भूमिका अत्यन्त उच्चस्तरीय है । सामान्य स्तर के साधक न तो ऐसी परिस्थितियाँ ढूँढ़ सकते हैं और न वहाँ भय और आशंका का परित्याग करके बिना साधनों के भी शरीर रक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं । इसलिए बदली परिस्थितियों में उन्हें भी मध्यवर्ती मार्ग तलाश करना पड़ता है और जीवनकाल की सुविधाएँ जुटाते हुए यदि किसी गम्भीर शोध में लगना हो तो लगते हैं ।

किन्तु यह समय ऐसा है नहीं । व्यापक परिस्थितियाँ आपत्ति काल जैसी हैं । आपत्ति काल में सामान्य निर्धारण छोड़कर आपत्ति धर्म का पालन करता है ।

भगवान का भजन कहीं भी किसी भी परिस्थिति में हो सकता है । वह मनुहार या उपहार की अपेक्षा व्यक्ति का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार भी देखता नहीं परखता है । इसलिए इसकी कसौटी तो एक ही रहती है कि कौन उसकी इच्छाओं की पूर्ति और आज्ञाओं का पालन करने में किस सीमा तक लगा हुआ है । यह कार्य जनसम्पर्क में संलग्न रहने विशेषतया पिछड़ों को ऊँचा उठाने में ही सम्भव हो सकता है । इसी रीति-नीति को अपनाने पर ईश्वर की प्रसन्नता निर्भर है ।

वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया में प्रवेश करना ही हर किसी का काम नहीं है और न ऐसी जोखिम भरी जगह तलाश करने की आवश्यकता है जिसमें एकान्त की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए निर्वाह सामग्री का अभाव एवं अनेक प्रकार के भय विक्षोभों का सामना करना पड़े । यह शोध कार्य ऐसे वातावरण में भी हो सकता है जहाँ सहज सुविधाएँ उपलब्ध हों और समान स्तर के दूसरे लोगों के साथ विचारों तथा साधनों का आदान-प्रदान करने की सुविधा हो ।

वह समय दूसरा था जिसमें अपने अन्तराल में से ही अन्तर्मुखी होकर हर स्तर के यन्त्र उपकरणों का उत्पादन करना पड़ता था । उन दिनों गहन एकान्त की आवश्यकता पड़ती थी और चित्त को अन्तःचेतना की अत्यन्त गहराई में उतारना पड़ता था । आज विज्ञान की प्रगति ने ऐसे उपकरण उपलब्ध करा दिये हैं जो न केवल प्रकृति का, शरीर का शोध करने में भी सहायक हो सकते हैं वरन् मन और अन्तःकरण का पर्यवेक्षण करने में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं । उनकी उपस्थिति में भी अपने आपको उन यन्त्रों का स्थानापन्न बनाने के लिए क्यों प्रयत्न किया जाय ।

ऐसे लोग देश में मुश्किल से दो-पाँच ही हो सकते हैं । अरविन्द घोष, महर्षि रमण जैसे सूक्ष्मदर्शी पिछली शताब्दी में भी अँगुलियों पर गिनने लायक ही हुए हैं । जिनकी आन्तरिक स्थिति वैसी है वे भूतकाल के सूक्ष्म शरीरधारी निष्णातों में अभी भी सम्पर्क बना सकते हैं और उनकी उपलब्धियों से अवगत हो सकते हैं । आवश्यक नहीं कि मध्यम श्रेणी के लोग भी हिमालय में निवास करने के भावावेश में घर छोड़ें और अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करें जिसमें यह सारा परिवार ही बदनाम होता हो ।

अभी योग में पारंगत होने और सिद्धि चमत्कार दिखाने की प्रवंचना में उन लोगों को नहीं फँसना चाहिए जिन्होंने सच्चे अर्थों में अभी साधु ब्राह्मण की भूमिका भी सम्पन्न नहीं की है । ऐसे लोगों के अधूरे प्रयास और कुछ ही दिनों में निराश होकर पाखण्ड रचने के करतब लोगों के देखने में आते हैं तब उन लोगों का भी साहस टूटता है जो अध्यात्म विज्ञान की गहराई में उतरकर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने की बात सचमुच ही सोचते हैं ।

अधूरे योगी बने और उपहासास्पद विडम्बनाएँ रचने की अपेक्षा अध्यात्म विज्ञान में वास्तविक रुचि रखने वालों के लिए निष्णातों का यही परामर्श उचित है कि वे युग धर्म को समझें । व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित असंख्य समस्याओं के समाधान में—आस्था संकट के निराकरण में अपना समय लगायें ।

बड़ों का अनुकरण करने का कार्य रंगमंच के नटों के लिए छोड़ देना चाहिए । वे क्षण में योगी, क्षण में राजा, क्षण में विदूषक बन सकते हैं । वही कार्य यदि अध्यात्मवाद में रुचि रखने वाले भी करने लगे तो अपना और साथ ही इस समूचे क्षेत्र का गौरव गिरा देंगे ।

यह समय हिमालय में जाकर योग साधना करने और किन्हीं सिद्ध पुरुषों को ढूँढ़ निकालने का नहीं है । उस स्तर का अपने को बनाये बिना किसी सच्चे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्ध पुरुष को ढूँढ़ पाना भी कठिन है, उनका अनुग्रह और सहयोग पाना तो बहुत आगे की बात है ।

इन दिनों धर्म और अध्यात्म का सर्वसाधारण के योग्य रास्ता एक ही है कि वे ब्राह्मण, साधु और वानप्रस्थ परम्परा को पुनर्जीवित करें और भारत की महान संस्कृति देव संस्कृति में नये सिरे से प्राण भरें ।

योग विद्या बनाम बाजीगरी योग का गलत रूप

अब की भाँति पुरातन काल में भी बाजीगरी, जादूगरों की एक बिरादरी थी, जो लोगों को भ्रम में डालकर जहाँ उनकी विलक्षणता का भान कराती थी, वहाँ यह भी करती थी कि अपने को सिद्ध पुरुष, तान्त्रिक योगी प्रसिद्ध कर भावुकजनों की श्रद्धा का दोहन करें और उन्हें अपनी जादू की क्षमता से भयभीत करके आतंकित भी करें । यह आकर्षण और आतंक उनके लिए गहरी कमाई का आधार बनता था । इतना ही नहीं इस प्रपंच को देखकर लोग उनसे कुछ पाने के लोभ से, सताये जाने के भय से चापलूसी भी करते थे । उनके साथ उलझने में डरते थे और कुछ ले देकर अपने सम्बन्ध बिगड़ने देने जैसी स्थिति नहीं आने देते थे ।

ख्याति इन जादूगरों की ही सच्चे योगियों की तुलना में कहीं अधिक होती है । खाँचा तब और भी अधिक फिट बैठ जाता था जब वे अपने को योगी तान्त्रिक बताकर देवताओं और दैत्यों का प्रतिनिधि घोषित करते थे । अपनी कठिनाइयों के समाधान में उनके द्वारा समाधान किए जाने की आशा से भी लोग उनके पास पहुँचते थे और गृह शान्ति, पिशाच निवृत्ति के लिए किए जाने वाले क्रिया कृत्यों से भारी रकमें ऐंठते थे ।

अध्यात्म वेत्ताओं, तत्वज्ञानियों तथा योगी तपस्वियों की इस देश में कमी नहीं रही । उन्होंने उसे एक आदर्श के लिए अपनाया । सद्ज्ञान वृद्धि के लिए प्रयुक्त किया और संसार में नीतिमत्ता आदर्शवादिता विकसित करने के लिए अपनी शक्ति लगाई । स्वयं अनुकरणीय मार्ग अपनाया और सन्मार्ग पर चलने की सर्वसाधारण को प्रेरणा दी ।

आत्म विद्या में प्रपंच प्रदर्शन का निषेध है, क्योंकि उसका मूल आधार छल और भ्रम होता है । प्रकृति के हर कार्य अपने नियत नियमों के अनुसार चलते हैं । उनमें व्यतिरेक उत्पन्न हो जाय तो सर्वत्र अन्धेरगर्दी का ही साम्राज्य फैले और विश्वव्यापी सुव्यवस्था की शृंखला टूट-फूटकर बिखर जाय । कौतूहलों का प्रदर्शन अकारण नहीं होता । उसके प्रदर्शनकर्त्ता लोभ, लालच, अहमन्यता से लोगों को किसी प्रकार चंगुल में फँसाने की फिकर में रहते हैं । अपना व्यक्तिगत लाभ साधने के लिए सम्पर्क में आने वालों पर भी यही प्रभाव छोड़ते हैं कि वे दैवी शक्तियों के ऐजेण्ट होने के नाते दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं या हानि करते हैं । भय और प्रलोभन ही उनके द्वारा अस्त्र के रूप में प्रयोग किए जाते हैं, जिसके जाल-जंजाल में फँसे हुए कितने ही अविचारी उनके पीछे सस्ते लाभ के निमित्त लग लेते हैं और अन्त में प्रवंचना, विडम्बना, निराशा एवं पश्चात्ताप का असमंजस सहते हुए सिर धुनकर अपने घर बैठते हैं, क्योंकि जो आशा दिलायी गयी थी जो कौतुक लीला दिखाई गयी थी, वह समयानुसार मिथ्या सिद्ध होती है । तब दो ही रास्ते शेष रह जाते हैं कि ढोल की पोल को निकालें अथवा वैसी ही धूर्त्तता अपना कर दूसरों का शोषण करें ।

मध्यकाल में वाममार्ग का अत्यधिक प्रचलन रहा है । योगियों का स्थान तान्त्रिकों ने ले लिया था । दैत्यों और दानवों के मायाचार पूर्व काल में भी प्रसिद्ध थे । वे देवताओं से इन प्रपंची कुचक्रों के आधार पर ही भारी पड़ते और जीतते थे । इससे घटिया वह प्रक्रिया है जिसके बलबूते पर सामान्य मानव स्तर की प्रतिभा रहते हुए छल कपट के आधार पर दृष्टि बन्ध जैसे उपचार किए और चमत्कार दिखाये जाते थे । इसके लिए न योग स्तर की दैवी साधना करनी पड़ती थी और न दैत्य दानवों वाली कठोर अघोरी तन्त्र साधना । इसका ढाँचा प्रपंचों, अफवाहों, किम्बदन्तियों तथा षड्यन्त्र के रूप में बनाकर अघटित को घटित दिखाने का उपक्रम किया जाता था । कोई विशेष अनुभूति न होने पर भी किसी को षड्यन्त्र में सम्मिलित करके उसके मुख से अद्भुत घटित होने का बयान करवाना, अन्यों को उस पर विश्वास होना यह अपने ढंग का प्रपंच है ।

आधुनिक मैस्मेरिज्म हिप्नोटिज्म प्रणाली को दृष्टि बन्ध भी कहते हैं । उनमें प्रयोक्ता की प्रबल इच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शक्ति किसी अधिकृत व्यक्ति पर आच्छादित हो जाती है और फिर वह अपने मनोबल को दूसरे के मनोबल में इस प्रकार ठूँस देता है कि वह प्रयोक्ता के इशारे पर ही नाचता है । वह जैसा रहता है वैसा ही सोचता, करता, देखता या अनुभव करता है । इन दिनों इस उपचार का रहस्य पुस्तकों में आने लगा है और बताया जाने लगा है कि यह योगाभ्यास नहीं है वरन् मनोबल के आधार पर उत्पन्न किया गया चित्त विभ्रम है । इस स्थिति में फँसा हुआ व्यक्ति दिवास्वप्न देखता है और जिसका अस्तित्व नहीं है उसका भी अनुभव करता है ।

इस स्तर के प्रयोक्ता मध्यकाल में यज्ञ (मख) करवाते थे । वे योगियों की तरह सम्मानित नहीं होते थे और न दैत्यों जैसा उनका आतंक होता था । फिर भी किन्हीं उपकरणों रसायनों के आधार पर वे ऐसे कृत्य करते थे जिन्हें देखकर दर्शक आश्चर्यचकित रह जाते थे और हतप्रभ होकर उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगते थे । इससे भी छोटी एक और श्रेणी थी जिसे विद्याधर कहते हैं । बाजीगर, जादूगर, कीमियागर उसी से मिलता-जुलता शब्द है । आज के बाजीगर तो अपनी-अपनी कला प्रदर्शन के साथ-साथ इस तथ्य को प्रकट भी कर देते हैं कि उनका करतब हाथ की सफाई चालाकी मात्र है । इसमें योग सिद्धि जैसी कोई बात नहीं है, पर मध्यकाल में इस हथफेरी के अभ्यासी अपने को विद्याधर घोषित करने में लगे थे और गाँव गोठ के ओझा सयाने दिवाने स्तर के भूत, जिन्न, डाकिनी, शाकिनी आदि सिद्ध होने का दावा करते थे । इस छद्म के सहारे उन्हें अपनी अलौकिकता सिद्ध करने का अवसर मिलता था । योगी तपस्वियों की श्रेणी में तो वे सम्मिलित नहीं हो पाते थे पर जन-साधारण को मूर्ख बनाने और लूटने में उन्हें बढ़-चढ़कर सफलता मिल जाती थी ।

हिन्दू इतिहास पुराणों में तो दानवी मायाचार का ही वर्णन है । पर जैन, बौद्ध कथानकों में विद्याधरों के कुकृत्यों का मनोरंजक वर्णन है । इस वर्ग के लिए अपने कुचक्रों को प्रत्यजन्य सिद्ध करने के लिए और उन्हें अपनी इच्छित मनौती पूर्ण कराने के लिए सहमत करने हेतु पशु बलि या नर बलि का भी आडम्बर खड़ा करते थे । वे स्वयं ऐसा अनाचार करते या लोलुपों को सब्जबाग दिखाकर उनसे कुकृत्य कराते थे ।

अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा ऐसे कौतुहल प्रदर्शन की निन्दा की गयी है और उस अनाचार में संलग्न लोगों को अपने समुदाय में सम्मिलित न करने का प्रतिबन्ध रखा है । बौद्ध काल में एक नट साधु वेष बनाकर किसी राजा द्वारा ऊपर लटकाया हुआ स्वर्ण कमण्डलु उतार लाया था । राजा प्रजा सभी को अपना शिष्य बना आया था । जब यह कमण्डलु वाला प्रसंग बुद्ध तक पहुँचा तो उन्होंने उस पात्र को चूर्ण-विचूर्ण बनाकर नदी में प्रवाहित करा दिया और इन प्रपंचों से सभी को सावधान कर दिया ।

जैन साहित्य में इन उपचारों को कुहेट्ट विज्जा नाम से जादूगरी वर्ग में रखा है । कहीं-कहीं उसका नाम तालोह घटिनी विज्जा भी कहा गया । इनका स्वरूप है लोगों में कौतुक प्रदर्शन करना । साधारण जनों को आश्चर्यचकित कर देना । कैक्रिय विज्जा, जंघाचरण विज्जा नाम से भी इन मलिन विद्याओं के स्वरूपों का तिरस्कारपूर्ण वर्णन किया गया है ।

जैन गाथाओं में अंजनचोर और रोहिणक तस्कर की शताधिक गाथाएँ पायी जाती हैं जिसमें वे दिन-दहाड़े लोगों को भ्रम में डालते, श्रद्धा सँजोते और उनके धन का अपहरण कर लेते थे । अनेकों को ठगने के बाद वे साधु वेषधारी राज पुरुषों द्वारा पकड़े गए और पकड़कर बन्दीगृह में प्रताड़ित किए गए । जैन साहित्य में कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न को एक विद्याधर द्वारा फुसला कर अपहरण कर लिए जाने का प्रसंग है । आकाश में हाथ मारकर खाद्य वस्तुएँ उत्पन्न करना और इन्हें इच्छुकों को खिला देना हिप्नोटिज्म स्तर का प्रयोग है । कलाबाजी के सहारे या हाथ की सफाई से बालों में से रंगीन धूलि निकाली जा सकती है या किसी वस्तु में चतुरतापूर्वक इत्र लगाकर उसे सुगन्धित होने का भ्रम कराया जा सकता है ।

गाँव गोठ में फिरने वाले बाजीगर भी बालकों या बालबुद्धि वालों को भली प्रकार मन्त्रमुग्ध कर लेते हैं । वे डिब्बे में आकाश से छीन-छीन कर रुपये या सिगरेटों का ढेर लगा देते हैं । हथेली पर सरसों जमा देते हैं । बड़े श्रेणी के जादूगर अधर में लटकते किसी का अंग-भंग करके उसे जोड़ देने जैसे काम करते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काँच, ब्लेड या जहरीले साँप निगल जाते हैं । कई साँप पेट में उतार कर फिर उन्हें बाहर निकाल लेते हैं । उन बड़े तमाशों में भी वास्तविकता नहीं होती, मात्र ऐसा प्रपंच रचा जाता है जिसे सामान्य बुद्धि सहज विश्वास के कारण उसे घटित मान ले और जो चालाकी की गयी है उसकी पकड़ को पहचान न सके ।

इस प्रकार के करतबों को ऋद्धि-सिद्धियाँ मानना भूल है । सिद्धियाँ प्रदर्शन के लिए नहीं होतीं । उनका विज्ञापन नहीं किया जाता समाधि लगानी हो तो मोक्ष प्राप्ति के लिए उसे किसी एकान्त गुफा में लगाना चाहिए । चौराहे पर गड्ढा खोदकर उसमें काम चलाऊ साँस का प्रबन्ध रखना । पीछे उसके खुलने पर जय-जयकार कराना भेंट पूजा में ढेरों रुपया एकत्रित कर लेना । नई जगह जाकर वही नया तमाशा फिर दुहराना, यह सब एक प्रकार का व्यवसाय है । इसमें योग की चरम स्थिति समाधि का उपहास होता है । समाधिस्थ व्यक्ति जीवन मुक्त स्तर के होते हैं । उन्हें प्रदर्शन करने, वाह-वाही लूटने और पुजापा बटोरकर घर भरने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

सन्त पुरुषों और बीजीगरों का अन्तर स्पष्ट है । सन्त व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने के लिए कषाय कल्मषों का हनन करने वाली आत्मशोधन साधना करते हैं । जीवन को सरलतम, अपरिग्रही, तपस्वी स्तर का बनाते हैं । वे लोकेषणा को आत्म मार्ग का सबसे बड़ा व्यवधान मान कर ऐसे प्रपंच नहीं रचते जिसमें उनकी जय-जयकार बुले । यह सब तो सेवा मार्ग पर चलने वाले परमार्थ परायण महापुरुषों के जन-मंगल वाले कृत्य सामने आने पर अनायास ही होता रहता है । मजमा लगाने या विज्ञापन बाजी करने की आवश्यकता तो उन्हें पड़ती है जिनके पास उत्कृष्टता तो है नहीं, मात्र पोले ढोल को बजाते और नगाड़े जैसी धूम मचाते हैं । अन्त में भर्त्सना और प्रताड़ना ही उनके हाथ लगती है । इन प्रपंचियों के कुचक्र में फँस कर भोले भावुकों को अपनी श्रद्धा का व्यतिरेक न करना पड़े, श्रद्धा का दोहन न होने पाये, इसलिए उन्हें समय रहते अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा योग का तत्वज्ञान समझाया जाना चाहिए और कहा जाना चाहिए कि यह आत्मशोधन की उच्चस्तरीय विद्या है जिसे यह सुयोग हस्तगत होता है वह उसका उपयोग जनमानस के परिष्कार, समाज के संगठन एवं परमार्थ प्रयोजनों के अतिरिक्त और किसी काम में नहीं करता । प्रदर्शन करने पर तो आदिकाल से ही नियन्ता का प्रतिबन्ध लगा हुआ है ।

"योगा" और "मेडीटेशन" का कौतुक

योग का वास्तविक अर्थ और स्वरूप है आत्मा और परमात्मा का एकीकरण । इससे आत्मा की ही अपनी क्षमता, पवित्रता और पात्रता बढ़ानी पड़ती है ताकि वह परमात्मा में घुल सकने योग्य बन सके ।

योग अर्थात् मिलन । मिलन में सहधर्मी होना आवश्यक है । अन्यथा स्तर में असाधारण अन्तर रहने पर यह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता । पानी में नमक, चीनी, दूध जैसे पदार्थ ही घुल सकते हैं क्योंकि उनके परमाणुओं का भार जल के अणुओं जितना ही होता है । लोहे का, पत्थर का चूरा यदि पानी में मिलाया जाय तो वह तलहटी में बैठं जायेगा और कभी भी आत्मसात न होगा । योग में परमात्मा से मिलने की प्रक्रिया पूरी करने के लिए जीव को ही अपना स्तर ईश्वर के समतुल्य विकसित करना होता है । ईश्वर को जीव की मनमर्जी पर चलने के लिए प्रयत्न करना उपहासास्पद है । इस अवैज्ञानिक विद्या से कभी किसी को सफलता नहीं मिली और न मिल सकती है ।

गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने, प्रशंसा भरी मनुहार करने, भेंट पूजा का लालच दिखाने, कर्मकाण्डों में रिझाने या किसी स्थान विशेष पर विराजमान समझकर उसके दर्शन करने के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़ने जैसे क्रिया-कृत्य उसे लुभाने, फुसलाने और बरगलाने में सफल नहीं हो सकते । इतनी चालाकी को सामान्य बुद्धि वाले भी समझ लेते हैं कि अनधिकारी रहते हुए भी बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त करने की आशाएँ लगाये बैठे रहने की बात सर्वथा सिद्धान्त हीन और बेतुकी है ।

इसमें भक्त या साधक को अपना समूचा व्यक्तित्व विकसित और परिष्कृत करना होता है । शरीर मन और अन्तःकरण को तद्नुरूप ढाँचे में ढालना पड़ता है । इसी निमित्त विभिन्न कर्मकाण्डों की—योग साधनाओं की संरचना हुई है । क्रिया के सहारे व्यक्तित्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को समुन्नत करने की पद्धति ही दिव्य मिलन का—योग का प्रयोजन पूरा करती है ।

योग के कितने ही मार्ग हैं । साधन विधान अनेकानेक हैं । यह भिन्न निर्धारण व्यक्ति की सामयिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए करने होते हैं । उनमें अन्तर हो सकता है । यह रुचि और परम्परा का विषय है । किन्तु इस तथ्य में कभी कहीं अन्तर नहीं आ सकता कि योग मार्ग पर चलने वाले को अपने समग्र व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना पड़ता है । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उन आदर्शों का समावेश करना होता है जो मानवी गरिमा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । तथ्य एक ही है । उसके निमित्त अपनाये गए उपचारों में प्रकृति भिन्नता के कारण अन्तर हो सकता है । पर जिसमें क्रिया-काण्ड ही सब कुछ समझा गया हो और व्यक्तित्व को सामान्य जनों की अपेक्षा अधिकाधिक उत्कृष्ट बनाने की उपेक्षा की जा रही हो, समझना चाहिए कि बाल कौतूहल जैसी विडम्बना मात्र है । भले ही उसका नाम साधना रख लिया जाय । इन कौतूहलों में नवधा भक्ति के नाम पर प्रतिमा पूजन भी हो सकता है और कथा कीर्त्तन भी ।

कर्म-काण्डों से कुछ आशा तभी रखी जा सकती है जब वह मानवी चरित्र की ऊँचाई की ओर उछालने का प्रयोजन पूरा कर सकें । हेय जीवन जीते हुए नाम जाप, देव दर्शन, जलाशयों का स्नान मात्र मार्गदर्शन में सहायक हो सकता है लक्ष्य पूर्ति में सहायता नहीं कर सकता ।

योग एक चेतना परक विज्ञान है । उसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को जागृत, सशक्त और प्रखर बनाने के लिए उसी प्रकार सोपान निर्धारित हैं जैसे छत्त पर चढ़ने के लिए जीने की सीढ़ियों में सन्निहित होता है ।

राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राणयोग, कुण्डलिनीयोग, चक्रवेधन, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग आदि अनेकानेक राजमार्ग निर्धारित हैं । उनमें से प्रत्येक में आरम्भ से चलकर अन्त तक क्रमबद्ध रूप से निर्धारण अपनाने पड़ते हैं यथा—राजयोग में, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की एक क्रमबद्ध योजना है । हठयोग में नाड़ी शोधन, नेति, धोति, वस्ति, वज्राली, कपाल आदि का प्रयोग होता है । यही बात अन्यान्य योगों के सम्बन्ध में भी है । उस समूचे विज्ञान को स्कूली कक्षाओं की तरह एक के बाद एक को अपनाया जाना चाहिए । कृषि कर्म जुताई, बुवाई, खाद, पानी, रखवाली आदि की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया पर आधारित है ।

मेले में जिसे जो अच्छा लगे वह उसे खरीद सकता है । किन्तु स्कूल में वर्णमाला, गणित आदि की उपेक्षा करके सीधे एम. ए. में दाखिला लेने का मनोरथ पूरा नहीं हो सकता । विद्यार्थी को एक-एक कक्षा उत्तीर्ण करनी होती है । स्कूल और मेले में यही अन्तर है । योग में स्कूली विधान लागू होने की बात हृदयंगम करनी होती है । इस क्षेत्र में मेले की तरह चाहे जहाँ से आरम्भ करने और चाहे जो खरीदने की सुविधा नहीं है । कोई साधक समाधि या ईश्वर दर्शन को प्रथण चरण मान बैठे तो यह उसकी ऐसी भूल है जिसमें निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगने वाली नहीं है ।

इन दिनों आसन व्यायामों को ही 'योग' कहा जाने लगा है । शरीर शुद्धि के लिए वे भी एक अंग हो सकते हैं, पर उन्हें योग शब्द से सम्बोधित नहीं किया जा सकता । अधिक से अधिक उन्हें 'योगासन' कह सकते हैं । व्यायाम का अंग संचालन का प्रयोजन दूसरे तरीकों से भी हो सकता है । उसके लिए निर्धारित आसनों के लिए हठ करना व्यर्थ है । हो सकता है कि कभी आसन पद्धति को ही सर्वोत्तम व्यायाम पद्धति माना गया हो पर अब तो हम उससे भी सरल तथा लाभप्रद दूसरे प्रकार के व्यायाम भी अपना सकते हैं ।

रुपये का एक अंश पैसा भी है । सौ पैसे मिलकर एक रुपया बनता है । यह सब ठीक है । पर यह भी गलत नहीं कि पैसे का नाम रुपया नहीं दिया जाना चाहिए । इसमें अकारण भ्रम पैदा होता है । विदेशों में प्रचलित "योगा" मात्र आसन व्यायामों तक सीमित होता दीखता है ।

यही बात 'मेडीटेशन' के सम्बन्ध में भी है । ध्यान की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं उनसे एकाग्रता सधती है जो हर काम में सफलता की बात जोड़ती है । बन्दूक का सही निशाना साधने वाले शिकारियों की सफलता का श्रेय उनकी एकाग्रता है । सर्कस में दिखाये जाने वाले अधिकांश खेल 'एकाग्रता' के आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही चमत्कार दिखाते हैं । बहीखाते का सही हिसाब रखने वाले एवं परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास होने वाले छात्रों की सफलता भी उनकी मानसिक बुद्धि पर निर्भर करती है । पर इन सबको योगी तो नहीं कह सकते । एकाग्रता एक सामान्य कौशल है जो मनुष्य को इच्छित दिशा में सफलता प्रदान करने में अच्छी भूमिका निभाता है । मस्तिष्क से काम लेने वाले हर व्यक्ति को ध्यानपूर्वक काम करना चाहिए और उस विशिष्टता का सम्पादन करने के लिए किसी न किसी मानसिक व्यायाम का अवलम्बन करना चाहिए । इन सभी माध्यमों को ध्यान या 'मेडीटेशन' कहा जा सकता है । इन्हें करने वालों को उसकी उतनी ही प्रतिक्रिया का अनुमान लगाना चाहिए जितनी कि वह है । उसे योग सिद्धि की आशा से नहीं करना चाहिए ।

योग की ध्यान धारणा में अन्तर्मुखी होकर अनेकानेक रहस्यमय केन्द्रों पर चित्त एकाग्र करना होता है । चित्त अर्थात् अचेतन मन । यौगिक ध्यान को विचार नियन्त्रण तक सीमित रहकर अचेतन मन की क्रिया प्रक्रिया पर अधिकार प्राप्त करना होता है । निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा को प्रदीप्त करना, यह उस 'मेडीटेशन' से बहुत आगे का चरण है जिसे कौतुकी लोग ध्यान शिक्षा के माध्यम से कराते हैं । किन्तु आत्मा और परमात्मा के मिलन में इस क्षमता का प्रयोग किए जाने की ओर संकेत भी नहीं करते और उसके लिए चरित्र निर्माण तथा भावनात्मक परिष्कार की आवश्यकता नहीं समझते ।

प्रचलित 'योगा' और मेडीटेशन योग विज्ञान का एक कौतूहल परक पक्ष है । वैसा ही जैसा कि सिद्ध पुरुषों की नकल पर मदारी लोग अनोखे करतब दिखाते हुए बच्चों का मन बहलाते रहते हैं ।

योग साधना का मजाक न बने !

मनुष्य शरीर और चेतना का सम्मिश्रण है । दोनों की सत्ता और महत्ता पृथक्-पृथक् हैं । यों दोनों मिलजुल कर ही जीवन की गाड़ी दो पहियों की तरह चलाते हैं, फिर भी उनकी संरचना और क्रिया-पद्धति में अन्तर है । शरीर पंचतत्वों के सम्मिश्रण से बना है । उसकी पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन मस्तिष्क, यह क्रिया पक्ष है । कार्य सत्ता जो उसके संचालन के निमित्त मशीन का काम करती है वह धड़ एवं सिर के आवरण में छिपी है । धड़ में फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, आँत, यकृत, वृक्क, प्लीहा आदि अवयव हैं और खोपड़ी के भीतर मस्तिष्क, ये प्रधान हैं ।

यह सभी अवयव अपने-अपने काम करते रहते हैं और पालन-पोषण एवं सफाई का तन्त्र किसी प्रकार चलता रहता है । शरीर की संचालिका शक्ति को 'प्राण' कहते हैं । यह वह सचेतन विद्युत शक्ति है, जो नाड़ी तन्तुओं के माध्यम से समस्त शरीर में फैली हुई है । इसका प्रमुख केन्द्र मस्तिष्क का मध्य भाग माना जाता है, जिसे ब्रह्मरन्ध्र या सहस्त्रार कहते हैं । चेतना और शरीर का जब तक सम्बन्ध रहता है तब तक जीवन है और जब दोनों का वियोग हो जाता है, तो मृत्यु हो जाती है । यही है, संक्षेप में शरीर और प्राण चेतना का अति संक्षिप्त परिचय ।

सुखी और बलिष्ठ जीवन के लिए शरीर को स्वस्थ रखा जाना चाहिए । इसके लिए आहार-विहार के नियमों का पालन किया जाना चाहिए । शारीरिक अवयवों में से किन्हीं को अतिरिक्त रूप में बलिष्ठ बनाना हो, तो उसके लिए विशेष व्यायाम करने पड़ते हैं । भारतीय विधि से उन्हें सम्पन्न करने की प्रक्रिया शारीरिक योग कहलाती है इसमें आहार की सात्विकता और ब्रह्मचर्य की संयमशीलता तो प्रथम है ही, इसके उपरान्त अंग विशेष के व्यायामों के लिए आसन—फेफड़ों की मजबूती और अधिक ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए प्राणायाम के अभ्यास करने पड़ते हैं । तीसरा उपचार ध्यान का है । इसके अन्तर्गत मन की एकाग्रता और स्वसंकेत—"ऑटोसजेशन" का प्रयोजन पूरा करना पड़ता है । आशा की जाती है कि इतना करते रहने वाला शारीरिक योगाभ्यासी दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु से बचा रहेगा उसे बलिष्ठ रहने का अवसर मिलेगा ।

किन्तु इन्हीं क्रिया-प्रतिक्रियाओं को "योग" मान बैठना भूल होगी । यह शरीर पक्षीय "योग" है, जबकि ऋषियों की योग-परिभाषा में आत्मा और परमात्मा के मिलन को 'योग' कहते हैं । इस ब्रह्माण्ड में एक सचेतन शक्ति काम करती है । उसमें प्रकृति के समस्त क्रिया-कलाप सुसंचालित ढंग से चलते रहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं । उस शक्ति को 'परमेश्वर' कहते हैं । इस परब्रह्म शक्ति का एक पक्ष वह भी है जो सचेतन आत्माओं के साथ सम्बद्ध है । इसे 'परब्रह्म' या 'परमात्मा' कहते हैं । इस निखिल ब्रह्माण्ड में परमात्म सत्ता प्रचुर परिमाण में भरी पड़ी है । कोई व्यक्ति यदि चाहे तो अंतरंग के सचेतन योग द्वारा अपनी आत्मा में परमात्म तत्व का अधिकाधिक भाग आकर्षित कर सकता है, साधारण प्राणवान से महाप्राण बन सकता है । अध्यात्म योग का यही स्वरूप है ।

अध्यात्म योग के तीन भाग हैं—

(१) समग्र संयम—(अ) जिसे 'तप' कहा जाता है । तप के चार भाग हैं—(अ) इन्द्रिय संयम, (ब) अर्थ संयम, (स) समय संयम, (द) विचार संयम । हमारी शक्तियाँ बेतरतीब उछल-कूद में अस्त-व्यस्त होती रहती हैं । इन चारों संयमों द्वारा उन्हें मात्र निर्धारित प्रयोजन में ही लगने की शिक्षा दी जाती है । (२) योग साधन की दूसरी धारा है—ध्यान । यों मन किसी न किसी शुभ-अशुभ प्रसंग का ध्यान करता ही रहता है, पर उसे आत्मसत्ता के विवेचन पर एकाग्र करने को 'ध्यान' कहते हैं । (३) तीसरा पक्ष है उत्कृष्टता के साथ तन्मयता, जिसे "भक्तियोग" भी कहते हैं । ऊँची स्थिति में यही समाधि बन जाती है । यह प्राण चेतना को अधिकाधिक समर्थ बनाने की कार्य-पद्धति है ।

जिस प्रकार शारीरिक योग से कोई व्यक्ति पहलवान, योद्धा, कलाकार, नट आदि बन सकता है, उसी प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धियाँ भी हैं, जिन्हें श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा, प्रतिभा आदि कहते हैं । इसका समग्र स्वरूप 'ब्रह्म तेजस्' या 'आत्मबल' कहलाता है । इस क्षेत्र में विकसित हुए प्राण में अतीन्द्रिय क्षमताएँ जग पड़ती हैं । दूर श्रवण, विचार संचालन, प्राण प्रहार, प्रत्यावर्तन, भविष्य कथन आदि अतीन्द्रिय क्षेत्र की चमत्कारी सिद्धियाँ ऐसी हैं, जिन्हें दूसरे लोग देखकर आश्चर्यचकित हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त उच्चस्तरीय सिद्धियाँ भी हैं, जो स्वयं अनुभव की जाती हैं, पर दूसरों को उनकी प्रतीति नगण्य ही हो पाती है ।

वरदान देने, शाप देने, अपनी क्षमताएँ दूसरे में हस्तान्तरण करने, पिता और देवता स्तर की आत्माओं से सम्पर्क, वातावरण का परिशोधन एवं परिष्कार आदि-आदि, यह सब परमात्म सत्ता के साथ घनिष्ठता के चिह्न हैं । इस स्थिति में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की विश्व बन्धुत्व की भावनाएँ विकसित होती हैं और स्वार्थ परमार्थ स्तर तक अपना फैलाव कर लेता है । यह जानकारियाँ तो सभी को होती हैं, पर अनुभूतियाँ किसी-किसी को । जिसे अनुभूति होने लगे, उसे 'तत्वज्ञानी' कहते हैं । तत्वज्ञानी को अपनी अन्तरात्मा में विराजमान परमात्मा के सतत् दर्शन होते हैं । इसी को 'ईश्वर दर्शन' कहते हैं । इस स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते सम्पदा की लिप्सा, संचय की तृष्णा और बड़प्पन के प्रदर्शन की अहंता के त्रिविध बन्धन टूट जाते हैं और मनुष्य "जीवन मुक्त" बन जाता है । यह मुक्ति जीवित स्थिति में भी हो सकती है । मरण की इसमें कोई शर्त नहीं । इस स्तर पर पहुँचने वाली आत्माएँ नर पशु, नर पिशाच के नारकीय दलदल को पार कर लेती हैं और महामानव, ऋषि, देवात्मा स्तरों तक जा पहुँचती हैं । इन्हीं को अध्यात्म भाषा में 'लोक' कहा गया है । यहाँ लोक का तात्पर्य स्तर है, किसी ग्रह-नक्षत्र आदि में जा पहुँचना नहीं । इस स्तर के व्यक्तित्वों को प्रकृति के अदृश्य अन्तराल की झाँकी होती है । वे भूत के घटनाक्रम, वर्तमान के प्रयास और भविष्य की सम्भावनाओं का स्वरूप जान सकते हैं । अपनी प्राण चेतना की टक्कर मारकर उन्हें उलट-पलट भी सकते हैं । ऐसी आत्मा को कर्मफल में बाधित होकर जन्म-मरण के चक्र में घूमना, उनके लिए बाधित नहीं होना पड़ता । रिजर्व सेना की तरह परमात्म क्षेत्र में वे सुरक्षित प्रतिभाओं की तरह निवास करते हैं । जब भी सृष्टि संतुलन में जहाँ कहीं उनकी आवश्यकता होती है तब उन्हें सन्त, सुधारक, शहीद या अवतारी के रूप में भेज दिया जाता है, ताकि वे लोक मानस में असाधारण उत्तेजना पैदा कर सकें । सृष्टा स्वयं निराकार होने के कारण ऐसी ही दिव्य आत्माओं के अन्तराल में अपना विशिष्ट प्रकाश देकर कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करा लेते हैं ।

जिन्हें योग की ऋषि प्रणीत परिभाषा समझनी और अपनानी हो, उन्हें अपने पुरुषार्थ से अपने अन्तराल में अवस्थित दैवी संरचना और शक्ति भण्डारों का पर्यवेक्षण एवं उत्कर्ष-जागरण करना होता है । पंचकोशों का अनावरण, षट्चक्रों का वेधन, कुण्डलिनी जागरण, सहस्त्रार उद्घाटन, त्रिविध ग्रन्थि भेदन आदि क्रियाएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करनी पड़ती हैं । राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राणयोग यह चार अभ्यास हैं और ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग—ये तीन जीवन-यापन के क्रिया-कलाप । इनमें से कौन, किसे, किस क्रम में करे इसके लिए अनुभवी मार्गदर्शक का अवलम्बन अपनाना पड़ता है । अखाड़े में उस्ताद-शागिर्द का, पर्यवेक्षण और दिशा निर्धारण क्रम चलता है । ठीक उसी तरह साधक की स्थिति का गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करने के उपरान्त यह निश्चय करना होता है कि किस साधक के लिए किस स्थिति में, किस प्रयोजन के लिए, क्या साधना विधान अपनाना आवश्यक होगा ?

यह अध्यात्म योग साधना का प्रकरण हुआ । शारीरिक योगाभ्यास के बालबोध-आरम्भिक अभ्यास पर पहले ही कुछ प्रकाश डाला जा चुका है और उनका लाभ भी उतना ही सीमित है । जीवनचर्या और मनोभूमि को करने की भी उनमें उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती । स्कूली बच्चों की तरह उनकी पढ़ाई कोई भी कर सकता है । वे कसरतें सर्वसुलभ हैं ।

इन दिनों शरीरगत कुछ हल्की-फुल्की कसरतों को 'योग' का नाम दिया गया है । हिन्दी के योग शब्द को अंग्रेजी में "योगा" कहा जाता है । पाश्चात्य देशों के निवासी दल "योगा" को कोई जादू-चमत्कार समझते हैं और उसे सस्ते मूल्य पर खरीदना चाहते हैं । न संयम बरतना पड़े, न कष्ट कठिनाई भरी साधनाओं का झंझट उठाना पड़े और आशा के अनुरूप फल भी मिले । ताड़ने वाले इस बाल-बुद्धि को समझ लेते हैं और उसी के अनुरूप एक सुगम-सा पाठ्यक्रम बना देते हैं । उनमें 'आसन' और 'मेडिटेशन' यही दो मुख्य हैं । आसन हल्के-फुल्के अंग संचालन जैसे एवं मेडिटेशन आँखें बन्द करके कोई कल्पना करते रहना । इससे भी आगे कदम बढ़ाना हुआ तो लम्बी साँसें खींचने का प्राणायाम और जोड़ लिया गया । आजकल भारत के चतुर सन्त वेशधारियों ने इसी प्रकार का योग यूरोप, अमेरिका के देशों में चलाया है । भारत में भी जहाँ-तहाँ उसी की नकल हो रही है । यह मनोरंजन का अच्छा रास्ता है । विशेषतया उसका नाम बड़ा और स्वरूप छोटा है । कोई भी अपने बेटे का नाम राजा रख सकता है, पर जो विशेषता और विभूतियाँ राजा के पास होनी चाहिए वे उसके पास न हों तो यह एक मजाक ही बनकर रहेगा । 'योगी' किसी समय बहुत ऊँची स्थिति तक पहुँचते हुए सिद्ध पुरुष होते थे । आज छोटी कक्षाओं के बच्चे भी कुछ कसरतें सीख कर अपने को योगी कहते हैं । इससे वे बच्चे तो योगी नहीं होते, 'योग' शब्द को ही बचकाना कहलाने का अवसर मिलता है । ऐसी दशा में योग विज्ञान के साधकों का भी मन छोटा होता है कि उन्हें इतनी तितीक्षा करने पर भी बाल बिरादरी में सम्मिलित होने से क्या लाभ ? 'योगी' एक श्रेयसूचक शब्द है, उसकी परिधि बाल विनोद, क्रीड़ा कौतुक तक सीमित कर दी जाय तो इससे अपनी संस्कृति की मान्यताओं को आघात ही लगेगा ।

यदि तथाकथित योगियों का विचार उसे बहुसंख्यक लोगों तक पहुँचाने का हो तो शुरूआत आसन और ध्यान की बी.ए., एम.ए. जैसी कक्षाओं से न करके यम-नियम की आरम्भिक श्रेणी से करनी चाहिए । राजयोग के यह प्रारम्भिक चरण हैं—यम-नियम अर्थात् शारीरिक-मानसिक सदाचार—यह सिद्धान्त परक भी है । इस आधार पर देश में नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति का वातावरण तैयार किया जा सकता है । व्यायामों में श्रमदान को लिया जाय और उसे सामूहिक रूप से प्रयत्न करके स्वच्छता तक आगे बढ़ाया जाये, जलाशयों को सुधारा जाय और घरेलू शाक-वाटिका से लेकर वृक्षारोपण जैसे कार्यों में सामूहिक श्रमदान को व्यायाम के रूप में प्रचलित किया जाय । स्काउटिंग स्तर की परेडें और खेलकूदों को भी प्रश्रय दिया जा सकता है । यह सभी कार्य ऐसे हैं, जिनमें शारीरिक व्यायाम आसनों की तुलना में कम नहीं अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है । देहाती खेल-कूद अब समाप्त जैसे हो गए हैं, उनका पुनरुद्धार फिर से किया जा सकता है । आसनों की दिशा यदि इस ओर मोड़ी जा सके तो बताये जाने वाले लाभों की तुलना में अभ्यासी ही नहीं, सारा समाज भी लाभ उठा सकता है ।

'मेडिटेशन' का अर्थ यदि ध्यान की एकाग्रता ही है, तो उसके लिए इच्छाशक्ति भी साथ में बढ़ाने के लिए "स्वसंकेत" ऑटोसजेशन क्या बुरा है ? ध्यान में देवताओं और उनके वाहनों के चित्रों को माध्यम बनाने की तुलना में संसार के महामानवों, ऋषियों, उद्धारकों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की जीवनगाथाओं में सन्निहित रहस्यों को खोज निकालने का काम सौंपा जा सकता है । प्रवास यात्राओं में भी वहाँ की पुरातन और अर्वाचीन परिस्थिति की तुलना करना तथा भावी प्रगति की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए प्रश्नोत्तर करने और उनमें अधिक गहराई का परिचय देने वालों को पुरस्कृत करना प्रत्यक्षतः अधिक लाभदायक है ।

यदि एक बिन्दु पर ध्यान करना आवश्यक हो तो आँखें बन्द करके उदीयमान सूर्य का ध्यान और उसकी किरणों का रोम-रोम में प्रवेश करके बल, ज्ञान और भावनाओं की अभिवृद्धि का ध्यान करना हर किसी के लिए उपयोगी हो सकता है । संगीत शिक्षा में एकाग्रता तथा भाव सम्वेदनाओं को उभारने का गुण है । उसकी शिक्षा भी एकाग्रता के लिए बुरी नहीं है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि योग को व्यायाम और एकाग्रता की शिक्षा के लिए ही प्रयोग करना है, तो उसके साथ अन्य सामयिक आवश्यकताओं को भी क्यों न सम्मिलित कर लिया जाय । निशानेबाजी अपने आप में एक एकाग्रता की कला है और स्कूलों में दी जाने वाली सैनिक ड्रिल में वे सभी गुण समाविष्ट हैं, जो व्यायाम की आवश्यकता पूरी करने के साथ-साथ अनुशासन भी सिखाते हैं और साहस, उत्साह भी बढ़ाते हैं । यह आन्दोलन तथाकथित "योगा" से किसी भी प्रकार कम महत्त्व का नहीं है । योग के ऊपर यह लांछन लगते रहते हैं, कि उसमें स्वार्थपरक सीमित दृष्टिकोण रहता है । यह बात ऊँची श्रेणी के योग के सम्बन्ध में तो नहीं कही जा सकती, पर मात्र अंग संचालन सिखाने की अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा है, कि ऐसे शारीरिक, मानसिक व्यायामों को लोकप्रिय बनाया जाये, जो नागरिक कर्तव्य एवं समाज निष्ठा की सत्प्रवृत्तियों को भी अग्रगामी बनाते हों एवं अध्यात्म की गूढ़ साधना के प्रति दिमाग भी साफ करें ।

ध्यान और योगाभ्यास, यों दोनों ही ऊँचे दर्जे की आत्म-शोधन तथा आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया हैं । उन्हें अपनाने पर आत्मा को परमात्मा स्तर का, क्षुद्र से महान बनने का अवसर मिलता है । पर यदि उसके साथ जुड़े हुए अन्य कर्तव्यों का निर्वाह कठिन पड़े और उसे स्कूलों में ही चलाना हो, तो इन व्यायामों को 'योग' न कहा जाये, साथ ही उनके साथ ऐसी चारित्रिक नियम-निष्ठा तथा कार्य-पद्धति जोड़ी जाये, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही लाभदायक सिद्ध हो सके । इसी में योग की ओर उसे अपनाने वालों की सार्थकता है ।

विदेशों में योग प्रचार बचकाना खिलवाड़ न बनाया जाय

योग-विज्ञान के प्रति संसार के प्रायः सभी प्रगतिशील देशों में इन दिनों भारी उत्साह है और उसे दिशा में उत्सुकतापूर्वक खोज और प्रयोग के लिए प्रयास चल रहे हैं । भौतिक जगत के बाहर कोई अध्यात्म शक्ति या चेतना नहीं है—कोई अध्यात्म नहीं है, जब तक यह निराशा छाई रही, तब तक का समय योग की उपेक्षा का समय था, पर अब जबकि शक्तियों की तरह ही अध्यात्म शक्तियों की सत्ता सामने स्पष्ट हो रही है तो स्वभावतः खोज का वह नया क्षेत्र होना ही चाहिए । व्यक्ति की कायिक और मानसिक चेतना के अन्तर्गत एक अत्यन्त सुविस्तृत रहस्यमय क्षेत्र का अस्तित्व स्वीकार किया जा चुका है और यह स्वीकार किया जा चुका है कि यदि मानवी सत्ता की इन रहस्यमय परतों का उद्घाटन किया जा सके तो मनुष्य में ऐसी असाधारण विशेषताएँ प्रकट हो सकेंगी जैसी कि योगी और सिद्ध पुरुषों में बताई (पायी) जाती हैं । योग इन्हीं रहस्यमय शक्तियों को उभारने और उनका अभीष्ट उपयोग करने की महत्त्वपूर्ण विद्या ही तो है ।

योग-दर्शन का एक और पक्ष है—मानसिक असन्तुलन को सन्तुलन में बदलना—अशान्त, उद्विग्नता को शान्त समस्वरता में परिणत करना । आज जीवन की समस्याएँ इतनी उलझी हुई हैं कि मनुष्य को पग-पग पर क्षुब्ध, चिन्तित और उद्विग्न होना पड़ता है । पारस्परिक स्नेह, सद्भाव प्रायः घटते-मिटते चले जा रहे हैं । समाज की व्यवस्था मर्यादा टूट रही है । झुण्ड और भीड़ मात्र में हम रह रहे हैं, समाज में जो सुरक्षा और प्रगति का वातावरण होना चाहिए वह तिरोहित होता चला जा रहा है । अपराध, असहयोग,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शोषण और छल की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों ने 'किसी को किसी का' होने की स्थिति में नहीं छोड़ा है । एक-दूसरे पर घात लगाये हुए और अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित रहकर ही प्रायः जन-जीवन व्यतीत होता है । ऐसी दशा में मनुष्य निरन्तर क्षुब्ध, संत्रस्त और आशांकित आतंकित ही रह सकता है ।

यदा-कदा मानसिक उद्विग्नता के क्षण आते हैं तो स्वाभाविक जीवन-क्रम को तोड़-मरोड़कर रख देते हैं । यदि वैसी विक्षुब्ध स्थिति निरन्तर बनी रहे तो फिर क्या दशा होगी, क्या बीतेगी, इसका विवरण भुक्तभोगी ही दे सकते हैं । वैज्ञानिक, आर्थिक और बौद्धिक प्रगति ने सुख-साधन कितने ही अधिक क्यों न जुटाये हों, निश्चित रूप से उसने मनुष्य की मानसिक स्थिति को मरघट जैसे वीभत्स वातावरण में रहने के लिए बाध्य कर दिया है । उन्नतिशील देश अनुभव करते हैं कि एकांगी भौतिक प्रगति उन्हें बहुत महँगी पड़ी है । अध्यात्मिक आस्थाओं को गँवाकर उन्होंने जो खोया है वह प्रगति के नाम पर मिली चमक-दमक से कहीं अधिक मूल्यवान था ।

विक्षोभ और असन्तोष के जाल-जंजाल में से निकलने के लिए निराशा का एक छोर है—हिप्पीवाद । जो अपने ढंग से पनप रहा है किन्तु चूल्हे में से निकलकर भाड़ में घुसने की तरह—नाश का इलाज महानाश से करने की तरह—उससे भी कुछ काम नहीं चलता । उसमें विक्षोभ और विद्रोह का प्रकटीकरण तो है, पर समाधान नहीं । खीज का प्रकटीकरण ही तो समाधान नहीं है । मनुष्य अपनी जलन का—गुत्थी का हल चाहता है । इस दिशा में गहरा चिन्तन करने पर अध्यात्म की शरण में जाने का ही एकमात्र उपाय सूझता है । भूतकाल के ऋषि युग की सुख-शान्ति का उज्वल इतिहास उन्हें समाधान के लिए अपनी ओर आने के लिए आकर्षित आमन्त्रित करता है । अस्तु भारतीय अध्यात्म की ओर उनकी प्रवृत्ति छाई हुई विपत्ति के अनुपात से तीव्रगति से उभर रही हो तो आश्चर्य की बात नहीं ।

योग के सम्बन्ध में इन दिनों समस्त पाश्चात्य जगत में भारी दिलचस्पी है । इस सम्बन्ध में वे पुस्तकों की बहुत खोजबीन करते हैं । भारत को वे योग का उद्गम केन्द्र मानते हैं । कोई विचारशील जैसा भारतीय उन्हें दिखाई पड़ता है तो योग की बात बड़ी दिलचस्पी के साथ पूछते हैं । उनकी भारत की लम्बी यात्रा करने का मुख्य प्रयोजन प्रायः योग सम्बन्धी जानकारी एवं शिक्षा प्राप्त करना ही होता है, इस स्थिति को चतुर लोगों ने भाँपा है । अस्तु, भारत से पिछले दिनों तथाकथित योगियों का निर्यात बहुत ही उत्साहपूर्वक हुआ है । उन्होंने जहाँ-तहाँ योग शिक्षा सेण्टर खोले हैं और तनिक से प्रयास से आकाश-पाताल जैसी सफलताएँ प्राप्त की हैं । इन दिनों विदेश में जाकर टूटी-फूटी योग-शिक्षा देने लगना और योगाचार्य बन जाना बहुत ही सरल है । जिसने दस-पाँच योग की पुस्तकें उलट-पुलट ली हों और अंग्रेजी में बोलने का ठीक से अभ्यास कर लिया हो; इन दिनों यूरोप और अमेरिका में ऐसे भारतीय योगियों द्वारा चलाये गए योग सेण्टरों की भरमार है । शिष्य लोगों की कौतूहलग्रस्त भीड़ उनमें धकापेल बनी रहती है ।

यह अत्यन्त ही उपयुक्त अवसर था, जबकि प्राचीन काल की तरह अध्यात्म का सही और सुसन्तुलित रूप विश्व को समझाया जा सकता था । लोगों को मरण के भँवर से उबार कर जीवन के तट पर पहुँचाया जा सकता था । अध्यात्म की गरिमा का वर्चस्व समझाकर भारत को जगद्गुरु का श्रद्धा सम्मान पुनः उपलब्ध कराया जा सकता था । यह मानवता की—ब्रह्मविद्या की महती सेवा साधना होती । इस युग की इसे एक महानतम देन कहा जा सकता था, पर यह सब हो तभी सकता था जब हमारा दृष्टिकोण लोकरंजन नहीं लोकमंगल रहा होता । सस्ती और नकली चीजें अबोध बालकों के हाथों बेचकर अधिक पैसे कमाने वाले गली-कूँचे में फिरने वाले फेरी वाले से अधिक ऊँची स्थिति हमारी होती । आज का बालक-मस्तिष्क सस्ती, जल्दी निपटने वाली और चमत्कारी चीजें चाहता है । योग के बारे में भी उसकी शिशु मान्यताएँ इसी स्तर की हैं । जैसी माँग वैसा माल तैयार करने के लिए सिनेमा वाले, पुस्तक विक्रेता, चित्र प्रकाशक जुटे हुए हैं और दोनों हाथों माल कमा रहे हैं । यदि यही मनोवृत्ति योग-शिक्षा में भी रहेगी तो आज का उत्साह कल ठण्डा ही पड़ेगा । ऊँची आशा दिलाकर आरम्भिक उत्साह जगाया जा सकता है यह ठीक है, पर यह उससे भी ज्यादा ठीक है कि कुछ ही समय में जो असफलता जन्य निराशा सामने आती है उससे उबरना फिर कभी भी सम्भव नहीं होता । योग को सस्ता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उथला बनाकर हम ब्रह्मविद्या की सेवा नहीं कुसेवा ही कर रहे हैं ।

विदेशों में योग प्रचार का जो क्रम इन दिनों चल रहा है उसमें छोटी-मोटी शारीरिक और मानसिक कसरतें ही सीमाबद्ध होकर रह जाती हैं । आमतौर से अंगों को तोड़ने-मरोड़ने की क्रिया—आसन-पद्धति को मार्डन योग का प्रमुख आधार माना गया है । योग सेण्टरों में वैसा ही कुछ शिक्षण चलता है । गहरी साँस लेने के कई तरीके उलट-पुलट कर प्राणायाम बता दिये जाते हैं । इससे आगे की दो मानसिक साधनाएँ हैं एक ध्यान की एकाग्रता 'मेडीटेशन'—दूसरी स्वसंकेतन हिप्नोटिज्म । बस सारा योग इतने में ही समाप्त हुआ समझा जाना चाहिए । विदेशों में भारतीयों द्वारा चलाये जाने वाले योग सेण्टर इसी परिधि में चक्कर काटते हैं । क्रिया-कलाप और शिक्षा विधि में—कहने, समझाने के ढंग से थोड़ा अन्तर रहता है, पर तथ्य इसी सीमा में भ्रमण करता रहता है ।

इस शिक्षा से यत्किंचित लाभ भी होते हैं । आसनों के व्यायाम पाचन सम्बन्धी तथा दूसरी छोटी-मोटी शारीरिक कठिनाइयाँ हल करते हैं । प्राणायाम से फेफड़े खुलते हैं और स्फूर्ति का अनुभव होता है । मस्तिष्क की घुड़दौड़ घटाने वाला मेडीटेशन भी मानसिक विश्राम की आवश्यकता कुछ दूर तक तो हल करता ही है हिप्नोटिज्म (स्वसंकेत) से अनियन्त्रित मानसिक प्रवाह को अभीष्ट दिशा में मोड़ने की थोड़ी-सी सहायता मिल सकती है । बस इतना ही लाभ इस बचकानी योग-शिक्षा का है । बात को बढ़ाकर कुछ भी कहा जा सकता है और कहा भी जाता है ।

योग और अध्यात्म को छुट-पुट शारीरिक, मानसिक व्यायामों तक सीमाबद्ध कर देना वस्तुतः उसकी गरिमा को नष्ट करना है और विश्व जिस आशा से मानवी समस्याओं के समाधान का हल अध्यात्म क्षेत्र से निकालने के लिए टकटकी लगा रहा है उसे हताश और निराश बना देना है । भारत के अध्यात्म क्षेत्र को इस दिशा में समय रहते सचेत होना चाहिए अन्यथा समय की माँग पूरा न कर सकने पर यह अवसर फिर सदा के लिए हाथ से चला जायेगा ।

योग में शारीरिक और मानसिक व्यायामों के लिए—साधनात्मक कर्मकाण्ड के लिए भी स्थान है, पर उसकी मूल प्रवृत्ति चिन्तन के स्वरूप को—ऊँचा उठाना है । अपनी सत्ता और दिशा परिष्कृत करना है । पदार्थों और व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण का परिमार्जन करना है । वस्तुतः योग एक दर्शन है । सर्वत्र आत्म-सत्ता की अनुभूति से विश्व मानव की, विश्व परिवार की भावना विकसित होती है और स्नेह-सौजन्य का उभार आता है । इसी पृष्ठभूमि में समता और आत्मीयता घनिष्ठ होती है । चरित्र निखरता है । संयम और सेवा के लिए उत्साह उमगता है । दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों की जड़ कटती है । मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का आधार वे आत्मवादी आस्थाएँ ही हो सकती हैं जिनकी प्रतिष्ठापना के लिए योग एवं अध्यात्म का सुविस्तृत कलेवर खड़ा किया है । अध्यात्म-ज्ञान और योग-शिक्षा की पृष्ठभूमि में इसी परिष्कृत दार्शनिकता का प्रसार होना चाहिए । भौतिकता से विक्षुब्ध लोक-मानस को राहत, उन्हीं आस्थाओं को लोक-मानस में पुनः स्थापना से मिलेगी ।

योग का बहिरंग रूप शारीरिक और मानसिक व्यायामों के रूप में सामने आये तो हर्ज नहीं । कर्म-काण्डों और साधना-विधानों को भी उसमें स्थान रहने की गुंजाइश है । पर यह भूल नहीं जाना चाहिए कि यह योग कलेवर है—उसका प्राण नहीं । प्राण तो उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तव्य की प्रेरणा देने वाले उपनिषद् प्रतिपादित उस अध्यात्म दर्शन में है जिसे प्राचीन काल में ब्रह्मविद्या कहा जाता था, जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी सत्ता का समष्टि में समर्पण करता था । आत्मा को परमात्मा स्तर तक पहुँचाना, नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम, अणु को विभु, लघु को महान बनाना जिसका लक्ष्य था । चिन्तन स्तर की अन्तरंग उमंग ही बहिरंग जीवन पर आच्छादित होती है । उन्हीं से परिस्थितियाँ बनती हैं, घटनाएँ घटती हैं और दिशाएँ मुड़ती हैं । अध्यात्म शिक्षा का उद्देश्य इसी भावनात्मक मानवी मर्मस्थल को परिष्कृत और सन्तुलित करना होना चाहिए । योग की सार्थकता इसी प्रयास की सफलता के साथ जोड़ी आँकी जानी चाहिए ।

खेद है कि विदेशों में भारतीयों द्वारा चलाये जाने वाले वर्तमान योग प्रचार में इन तथ्यों का अभाव है । उनमें बाल सुलभ चपलता और कौतूहल प्रियता की उथली तृप्ति मात्र है । सस्ते प्रयास से अधिकतम लाभ लेने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुआ प्रवृत्ति के आधार पर जो खेल खड़े किए जा रहे हैं वे आरम्भ में बचकानी भीड़ इकट्ठी कर सकते हैं और हाथों-हाथ सफलता का चमत्कार दिखा सकते हैं, पर यदि उनमें उच्चस्तरीय दार्शनिकता का अभाव रहा तो वह प्रयोजन पूरा हो ही नहीं सकेगा जिसके लिए भौतिकता से विक्षुब्ध प्रगतिशील जन-मानस ने योग एवं अध्यात्म की ओर आशा लगाना आरम्भ किया है । अच्छा हो प्रगतिशील देशों में अध्यात्म प्रसार के स्वर्ण अवसर को हम गम्भीरता पूर्वक देखें और विश्व मानव की युग माँग को पूरा करने के लिए ऐसे कदम बढ़ाएँ जिससे अध्यात्म की गरिमा को पुनः प्राचीन काल जैसी सर्वोच्च श्रद्धा को विश्व व्यापी बनाना सम्भव हो सके । इस अवसर को यदि हमने खिलवाड़ में गँवा दिया तो यह भारत के लिए, अध्यात्म के लिए और लोक-मानस के लिए दुःखद दुर्भाग्य की ही बात होगी ।

योग के प्रति विश्व आकर्षण और हमारा उत्तरदायित्व

भौतिकवाद के विकास, विस्तार की एकांगी प्रगति ने मानवी सुख-शान्ति की जड़ें हिलाकर रख दी हैं । सर्वत्र यह गम्भीरता पूर्वक सोचा जा रहा है कि प्रगति को एकांगी रहने देने में खतरा ही खतरा है इसलिए उपेक्षित अध्यात्म को भी जीवन दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मानकर चला जाय । चिन्तन के इस नये मोड़ ने संसार का ध्यान अध्यात्म की ओर आकर्षित किया है । चूँकि भारत योग एवं अध्यात्म के उत्पादन, उत्थान एवं परीक्षण प्रयोग का क्षेत्र रहा है इसलिए जब योग अध्यात्म की बात सोची जाती है तो उसे समझने के लिए भारत की ओर सहज ही सबका ध्यान चला जाता है । विदेशों में तब और भी अधिक प्रसन्नता होती है जब कोई भारतीय योग प्रचारक 'योगी' के रूप में वहाँ पहुँचता है । वे घर आये देवता से बहुत कुछ जानने, सीखने और पाने की आशा करते हैं । अस्तु योग विद्या के छात्रों और शिष्यों की सहज ही भीड़ लग जाती है । कम से कम उसे पास से देखने और समझने के लिए तो विचारशील वर्ग भी बड़े उत्साह के साथ आता है ।

पिछले दिनों योग प्रचार के लिए गए हुए भारतीयों को विदेशों में इतनी सफलता मिली है जिसकी उन्होंने स्वयं भी आशा नहीं की थी । इन दिनों भारतीयों द्वारा चलाये जाने वाले योग शिक्षा केन्द्रों की संख्या सैकड़ों से बढ़कर हजारों तक पहुँच गयी है । वे विभिन्न देशों में अपने-अपने ढंग से अपना काम कर रहे हैं । इन सब के विवरण तो उपलब्ध नहीं हैं, पर जिनकी चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती है, उनके विवरणों पर थोड़ा-सा दृष्टिपात करने से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि उन्हें उत्साहवर्धक सफलता मिली है ।

अमेरिका में स्वामी योगानन्द का 'सैल्फ रियलाइजेशन फैलोशिप' बहुत समय से काम कर रहा है । लॉस ऐंजिल्स के समीप माउण्ट वाशिंगटन पर इसका मुख्य केन्द्र है और शाखाएँ अमेरिका के बड़े शहरों और छोटे नगरों में फैली हुई हैं । हालीबुड के अभिनेताओं ने जब से योग साधना में दिलचस्पी लेनी शुरू की है तब से इस मिशन के प्रति जनता में उत्साह और भी अधिक बढ़ा है । स्वामी जी की 'साइन्स ऑफ रिलीजन', सोंग्स ऑफ सोल, मैटाफिजिकल मेडीटेशन, कायस्कि चार्टस, ह्विस्पर्श फ्राम इटर्निटी पुस्तकें अमेरिका में बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ी जाती हैं ।

इस योग मिशन के सदस्यों की संख्या अब हजारों से बढ़कर लाखों तक जा पहुँची है । अमेरिकी नर-नारी योगाभ्यास को अपने दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित कर रहे हैं । कैलीफोर्निया के डियागो और पैसिफिक, पौलिसेड्स स्थानों में बने केन्द्र इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं । इण्डिया सेण्टर का केफिटेरिया निरामिम भोजनगृह अमेरिकावासियों को शाकाहारी भोजन करने का आनन्द देता है और उसमें सदा भीड़ लगी रहती है । मिशन की अध्यक्षा कुमारी फ्रेराइट अमेरिका में दया माता के नाम से प्रख्यात हैं । योग शिक्षा का प्रधान उत्तरदायित्त्व प्रायः वे ही सम्भालती हैं ।

महर्षि महेश योगी का ट्रांसेडेण्टल मेडीटेशन यूरोप, अमेरिका में खूब चला । यह साधना 'टी. एम.' के नाम से बहुविख्यात है । अमेरिका के कई कॉलेजों ने उसे अपनाया है । शिक्षा मन्त्रालय ने स्कूलों में इसके प्रचार के लिए विशेष अनुदान स्वीकृत किया है । नशेबाजी की अपनी बुरी आदत से छुटकारा पाने में इस योग के सहारे बहुत सफलता मिल रही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महेश योगी के 'इण्टर नेशनल मेडीटेशन सोसाइटी' की भी शाखा प्रशाखाएँ बढ़ती ही जा रही हैं ।

आरम्भ में 'बीटल' महेश योगी की ध्यान साधना से बहुत प्रभाक्ति हुए थे । इससे उस ओर जनता का ध्यान भी तेजी से बढ़ा । 'लान्स सेट' पत्रिका के द्वारा भी उनका प्रचार बहुत हुआ । फिल्म कलाकार भी उस शिक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित हुए हैं । अब तक तीन हजार से ऊपर अमेरिकी उनकी दीक्षा ले चुके हैं । योग शिक्षा का पाठ्यक्रम तीन सप्ताह का है । सीखने वालों को इसकी फीस ६०० डॉलर देनी पड़ती है ।

दक्षिण भारत के एक स्वामी सच्चिदानन्द ने न्यूयार्क में योग-शिक्षा सेण्टर खोला है । प्रति सप्ताह १३ कक्षाओं को योग-शिक्षा देते हैं प्रत्येक कक्षा में १५ से ४० छात्र होते हैं ।

न्यूयार्क में ६४वीं स्टीट पर स्वामी निखिलानन्द ने भारतीय योग शिक्षा का एक केन्द्र स्थापित किया है । उसी नगर में इसकी ६ शाखाएँ हैं । अन्य कई देशों में उनके केन्द्र हैं ।

महेश योगी की ध्यान साधना से अमेरिका के फिल्म कलाकार सिनात्रे और शर्ले मेक्लेन बहुत प्रभावित हुए हैं और वे योग की अगली सीढ़ियाँ सीख रहे हैं ।

सन्त प्रभुपाद जी ने न्यूयार्क में 'इण्टर नेशनल सोसाइटी फार कृष्ण कांससनेस' नामक संस्था सन् १९६६ में स्थापित की । इससे पाँच वर्ष पूर्व ही वे अमेरिका साधन हीन स्थिति में पहुँचे थे । कृष्ण कीर्तिन का उन्होंने वहाँ प्रसार किया, अमेरिकी जनता उससे बहुत प्रभावित हुई और हजारों लोग उनके अनुयायी बनकर कीर्तन करने लगे । अमेरिका में इनके २८ केन्द्र हैं । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कोलम्बिया, क्यूवेक, ओटेरिया, लन्दन आदि में भी उनके केन्द्र हैं । वर्जीनिया के लॉस-एन्जिल्स में उनका बड़ा कार्यालय है । 'बैक टुगाड हैड' नाम से उनकी अंग्रेजी पत्रिका निकलती है । ४०० बीघा जमीन में न्यू वृन्दावन बसाया गया है जिसमें ५० गायें और १०० कृष्णभक्त रहते हैं । वीटलो के अग्रणी जार्ज हैरिसन इस आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भी अपनी मण्डली समेत कीर्तन में भाग लिया है ।

कुछ समय पूर्व लन्दन में एक भारतीय तान्त्रिक कला प्रदर्शिनी लगाई गयी थी । इसमें तन्त्रयोग से सम्बन्धित साहित्य, चित्र तथा उपकरण सुसज्जित रूप में रखे गए थे । यों सर्वसाधारण ने उसे बहुत उत्साहपूर्वक देखा, पर विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग की दिलचस्पी अधिक रही । रखी हुई सामग्री का विवरण बताने वाला छाटा-सा सूची पत्र पाँच शिलिंग मूल्य का था, उसे न केवल दर्शकों ने वरन् इस सम्बन्ध में रुचि रखने वालों ने बड़ी संख्या में खरीदा । उसकी माँग प्रदर्शिनी समाप्त हो जाने के बाद भी आती रही ।

जापान के विश्व मेले 'एक्सपो ७०' में भारत की ओर से योग प्रदर्शिनी लगाई गयी । इसका संचालन विश्रयतन योगाश्रम की ओर से किया गया । दर्शकों ने योगासनों को देखने और समझने में बहुत उत्साह दिखाया ।

ब्रह्म कुमारी ईश्वरीय विद्यालय की ओर से यूरोप, अमेरिका के १४ देशों में तथा आस्ट्रेलिया में योग चित्रों की प्रदर्शनी लगाने की व्यवस्था की थी, जिसमें न केवल साधारण नागरिकों ने दिलचस्पी दिखाई वरन् उच्च कोटि के राजनेता, पत्रकार तथा बुद्धिजीवी भी आयोजकों से बहुत बातें जानने पूछने आये ।

पिछले दिनों दिल्ली में निरंकारी महात्मा सन्त कृपालु सिंह के विदेशी शिष्यों की धूम थी उनका एक बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुआ था । बालयोगेश्वर की गतिविधियाँ भारत में बहुचर्चित हैं । विदेशों में भी उनकी धूम है । मुँगेर के स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के शिष्यों की संख्या पाश्चात्य देशों में बढ़ ही रही है । ऋषीकेश, लक्ष्मण झूला के इर्द-गिर्द लगभग एक दर्जन बहुमूल्य आश्रम ऐसे ही हैं जिनका निर्माण विदेशों से आये धन द्वारा हुआ है । उनके संचालक योग प्रचार के लिए विदेशों में जाते हैं और आवश्यक अर्थव्यवस्था जुटाते हैं । निःसन्देह इस प्रकार के योग प्रचारकों की संख्या अब सैकड़ों की गिनती को पार करके हजारों की सीमा तक पहुँच चुकी है । संसार के किसी भी देश में भारतीय योग शिक्षक पाये जा सकते हैं ।

यह सफलता वस्तुतः प्रस्तुत योग शिक्षा की विशेषता नहीं वरन् संसार में भौतिकवाद की अवांछनीय अभिवृद्धि के कारण हुई समस्याओं की विभिन्न प्रतिक्रिया है । हमें यह ध्यान रखना होगा कि समय की माँग और युग की पुकार ने वह आकर्षण उत्पन्न किया है जो विदेशों में भारतीयों द्वारा योग प्रचार की सफलता के रूप में परिलक्षित हो रहा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिकता का आध्यात्मिकता के साथ ताल-मेल बिठाने वाली दार्शनिक और व्यावहारिक चिन्तन प्रक्रिया को प्रस्तुत करना । यही है वह उत्तरदायित्व जो विचारशील अध्यात्मवेत्ताओं को निबाहना चाहिए । कारण जितना गहरा है समाधान भी उसी स्तर का होना चाहिए । यदि योग को उथले क्रिया-काण्डों तक सीमित कर दिया गया तो निकट भविष्य में इस दिशा में उत्पन्न हुआ आकर्षण समाप्त हो जायेगा और वह निराशा नास्तिकता से भी महँगी पड़ेगी । नास्तिकता में यह गुंजाइश थी कि आस्तिकता आदि यदि सच निकली तो उसमें आशा की किरणें विद्यमान हैं पर यदि आस्तिकता को भी खोखली मान लिया गया तो फिर उससे उत्पन्न हुई अनावस्था को मिटा सकना कठिन हो जायेगा । योग प्रचारकों को इस खतरे का भी ध्यान रखना चाहिए और अपनी योग-शिक्षा जो उद्विग्न लोक मानस को समुचित समाधान दे सके ।

महर्षि अरविन्द का पूर्ण योग

भारतीय साधन प्रणाली के कितने ही अंग हैं, जिनमें योग-मार्ग बहुत ऊँचा माना गया है । भक्ति, पूजा, उपासना, भजन, जप आदि विधियों का तो साधारण श्रेणी के मनुष्य भी पालन कर सकते हैं, पर योग की आरम्भिक साधना भी काफी कठिन मानी जाती है । उसे वे ही लोग कर सकते हैं जिनमें आध्यात्मिकता का कुछ अंश है और त्याग और तपस्या में जिनको अनुराग है ।

योग का वास्तविक आशय है जीव का भगवान के साथ एकत्व प्राप्त करने की चेष्टा करना । अथवा यों कह सकते हैं कि आत्मा और परमात्मा का योग ही योग साधना का सर्वोच्च लक्ष्य है । इसके लिए विभिन्न महात्माओं ने अनेक प्रकार की योग प्रणालियों का आविष्कार किया है, जो आजकल हमारे देश में प्रचलित है । इनमें हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग का नाम अधिक प्रसिद्ध है । जपयोग और लययोग को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है । पर इन समस्त योगों की साधना में मनुष्य को अपने साधारण रहन-सहन में विशेष परिवर्तन करना पड़ता है और जीवन के कुछ अंगों का दमन और कुछ का अधिकाधिक विकास करना पड़ता है । उदाहरण के लिए हठयोग की साधना में षटकर्म जैसे प्रकृति के साधारण नियमों से भिन्न और कठिन विधियों से काम लेना पड़ता है और आसन-प्राणायाम आदि का विशेष रूप से अभ्यास करना पड़ता है । राजयोग में भी लगातार घण्टों तक ध्यान करते रहना और सांसारिक व्यवहारों से अपने को बहुत कुछ हटा लेना आवश्यक होता है । इन सब बातों का सारांश यही है कि अब तक योग के जो स्वरूप लोगों में प्रचलित हैं उसे साधारण जीवन-यापन से बहुत भिन्न समझा जाते हैं और जो लोग उस मार्ग को ग्रहण करते हैं वे प्रायः गृहस्थ जीवन का त्याग कर देते हैं । इससे अब कुछ नवीन संत पुरुषों ने योग की ऐसी विधियों का प्रचार आरम्भ किया है जिनकी साधना सांसारिक-जीवन का पालन करते हुए ही भली प्रकार से की जा सके और जिससे काफी ऊँचे आध्यात्मिक दर्जे पर भी पहुँचा जा सके । ऐसे योग-प्रचारकों में श्री अरविन्द घोष का नाम बहुत अधिक प्रसिद्ध है, उन्होंने वर्षों के अभ्यास और अध्ययन से अपने शिष्यों को जिस "पूर्ण योग" का उपदेश दिया उससे उपर्युक्त उद्देश्य भली प्रकार पूरा हो जाता है । इस सम्बन्ध में इस योग का अभ्यास करने वाले एक लेखक का कथन है—"पूर्ण योग वह सर्वांग साधन प्रणाली है जिससे सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के बीच सर्व विजयी सामंजस्य स्थापित हो सके, अर्थात् जीवन को बिना खोये भगवान को प्राप्त, मानव-जीवन के भीतर भगवान और प्रकृति का पुनर्मिलन साधित करना । इसमें "पूर्ण" शब्द ही यह सूचित करता है कि यह योग मनुष्य को पूर्णत्व प्राप्त कराता है । अर्थात् यह आत्मा के भीतर जीवन को पूर्णता प्रदान करता है, सार्थक बनाता है । यह जीवन के किसी भी भाग को, चाहे वह शरीर, प्राण या मन किसी से सम्बन्ध रखने वाला क्यों न हो, त्याग नहीं करता । इसका उद्देश्य यह है कि मनुष्य के अन्दर निहित भगवत् सत्ता के दृढ़ आधार के ऊपर समाज का एक महान भवन निर्मित किया जाय । वेदान्त सिद्धान्त पर आधार रखने वाले योगों का उद्देश्य होता है आत्मा के अन्दर जीवन को लय कर देना, पर "पूर्ण" की विशेषता यह है कि यह आत्मा के भीतर से जीवन को प्राप्त कराता है । पुराने ढंग के सभी योग प्रायः "आत्म केन्द्रित" थे, सांसारिक जीवन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, वे केवल परलोक से ही सम्बन्ध रखते थे । वे इस गतिशील जगत को स्वप्न, माया और मृगमरीचिका समझ कर इससे दूर ही रहे और निराकार ब्रह्म में अपनी आत्मा की मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा में ही लगे रहे । उन्होंने समाधि को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया और मन को एक दम स्थिर बनाकर अथवा यों कहें कि मारकर ही शारीरिक चेतना को शान्त (निस्तब्ध) बनाने की चेष्टा की ।

"पूर्ण योग" भी आत्मा और परमात्मा में भेद की भावना को तो मिटाना चाहता है, परन्तु वह केवल अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए ही प्रयास नहीं करता, वरन् विश्वात्मा भगवान के अन्दर समस्त मानव-समाज को पूर्णत्व प्रदान कराना चाहता है । वह अपनी स्वार्थ मुक्ति के लिए नहीं, वरन् मानवता के भीतर भगवान की अभिव्यक्ति के लिए चेष्टा करता है । यह जीवन के अन्दर आदर्श और वास्तविकता को एक बना देना चाहता है । संक्षेप में यह कह सकते हैं कि यह जीवन को भगवानमय दिव्य बनाता है और पृथ्वी को स्वर्ग (दिव्य धाम) में रूपान्तरित करता है ।

जब हम पूर्ण योग की साधन प्रणाली पर विचार करते हैं तो हमको निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक जान पड़ता है—(१) शुद्ध मन से आत्मोत्सर्ग की भावना, (२) अपनी सत्ता के प्रत्येक अंश का सच्चाई के साथ पूर्ण समर्पण, (३) भगवान के साथ सचेतन एकता, (४) उनके रूपान्तरकारी स्पर्श को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करना, (५) भगवान ने जो कर्म हमारे लिए निर्दिष्ट किया है उसे दृढ़ विश्वास रखकर अंगीकार करना, (६) भगवान की इच्छा के सामने अपने सब कर्मों और सर्वस्व के उत्सर्ग कर देना, (७) अहंकार, अभिमान, द्वेष, कामना, वासना आदि प्रकृति के समस्त दोषों को त्याग कर भगवान द्वारा किए जाने वाले रुपान्तर के लिए तैयार होना, (८) प्राणों की शुद्धि, (९) हृदय का प्रेम और भक्ति भाव, (१०) मन की प्रकाशमयी एकाग्रता, (११) प्राणों का सौन्दर्य और सामंजस्य (१२) जिन परिस्थिति में भगवत् इच्छा ने रखा है उसके साथ प्रत्येक कार्य में सामंजस्य । योग का अर्थ यही है कि आत्मा को पहचाना जाये, परिपूर्ण बनाया जाय, आत्मा का विस्तार किया जाय और विश्वास भगवान की भीतर आत्मा को विकसित बनाया जाय । अपने आपको भगवान की इच्छा के सम्मुख सदा प्रस्तुत और नमनशील रखो । तुम यह समझ लो कि भगवान है, भक्ति ही तुमसे काम करा रही है, तुम उसके एक यन्त्र हो उसकी इच्छानुसार कार्य करना तुम्हारा कर्तव्य है । कर्म फल की कामना का त्याग करो । यह विश्वास करके कि भगवान समस्त भूतों (पदार्थों) में आत्मा के रूप में व्याप्त है तुम ज्ञानपूर्वक सबसे प्रेम करो । ऐसा करने से भगवान की शक्ति "अति मानस स्तर" (मनुष्य की वर्तमान अवस्था से ऊँचा आत्म शक्तियुक्त दर्जा) पर पहुँचा देगी । वहाँ पहुँचकर ही तुम आत्मा और जड़ तत्व को विश्वात्मिक सत्ता के अन्दर एक साथ मिला सकते हो ।

परन्तु एक विषय में तुमको सदा सावधान रहना होगा कि योग का उद्देश्य तुम्हारी व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, वरन् इसका उद्देश्य मनुष्य मात्र के अन्दर भगवान की अभिव्यक्ति करना है । तुम तो केवल उसके एक केन्द्र—एक यन्त्र हो । इस तरह योगीराज अरविन्द के पूर्णयोग के चार प्रमुख अंग हैं—शुद्ध, मुक्ति, सिद्धि और मुक्ति । सर्वप्रथम साधना मार्ग में आत्म-शुद्धि की आवश्यकता पड़ती है । प्रत्येक साधना प्रणाली में परिशुद्धि का विधान है । शुद्धि का क्षेत्र व्यापक है । बाहर और भीतर दोनों ही क्षेत्र का परिशोधन आवश्यक है । हठयोग की साधना शारीरिक परिशोधन के लिए की जाती है । पूर्णयोग की साधना में शरीर ही नहीं मन, वाणी, प्राण और अन्तःकरण अर्थात् समूची मानवी प्रकृति का परिष्कार आवश्यक है ।

शुद्धि के प्रारम्भ होने का चिन्ह है समता का दिग्दर्शन । साधक प्रकृति की सब क्रियाओं को, द्वन्द्वों और अविद्या के आक्रमण को, अपने अज्ञान को समता की दृष्टि से देखता है तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । शुद्धि के अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्राण की सभी परतें समाहित हैं । इन सबका परिकार आवश्यक है ।

पूर्णयोग और आत्मसिद्धि का दूसरा अंग महर्षि अरविन्द के अनुसार है—मुक्ति । मुक्ति का अर्थ है आत्मा का जीव शरीर के बन्धकों एवं आकर्षणों से परे हो जाना तथा आत्मा की असीम अमरता में उन्मुक्त हो जाना । महर्षि का कहना है कि—"समस्त स्थूल क्रिया-कलापों अथवा प्रकृतिगत चेष्टाओं का परित्याग कर निष्क्रिय निर्वाण स्थिति में पहुँचने का नाम मुक्ति नहीं है जैसा कि कितने चिंतक कहते हैं । यह ऐसा आन्तरिक परिवर्तन है जो साधन को दिव्य बनाता है । मुक्ति के दो चरण हैं—परित्याग और ग्रहण जिसमें एक निषेधात्मक पक्ष है दूसरा भावनात्मक । मुक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की निषेधात्मक गति का अर्थ है—अपनी सत्ता की निम्न प्रकृति के प्रधान बन्धनों एवं मुख्य ग्रन्थियों से छुटकारा पाना । उसके भावनात्मक पक्ष का अर्थ है—उच्चतर आध्यात्मिक सत्ता में समाहित हो जाना—उसकी दिव्य अनुभूतियों में रमण करना । वैचारिक दृष्टि से मुक्ति का अर्थ है निष्काम और निरहंकार होना, मन और अन्तरात्मा में त्रिगुण से रहित, निस्त्रैगुण्य होना । मुक्ति के सभी मौलिक तत्व दार्शनिक दृष्टि से इस लक्ष्य में समाहित है । भावनात्मक अभिप्राय मुक्ति का है—अपनी आत्मा को विश्वात्मा के साथ एक करना उच्चतम दिव्य प्रकृति को धारण करना । दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि भगवान के समान बनना । यही मुक्ति का सम्पूर्ण और समग्र आशय है ।

शुद्धि और मुक्ति सिद्धि की पूर्वावस्थाएँ हैं । आध्यात्मिक सिद्धि का अर्थ योगीराज अरविन्द की दृष्टि में है—भागवत सत्ता की प्रकृति के साथ एकत्व प्राप्त करना पर विभिन्न दर्शनों में सिद्धि की मान्यता के सन्दर्भ में मतभेद मायावादी के लिए सत्ता का सर्वोच्च तथा एकमात्र वास्तविक सत्य निर्विकार निर्गुण एवं आत्म सचेतन ब्रह्म है । इसलिए आत्मा की निर्वाकार शान्ति तथा शुद्ध आत्म चेतना का विकसित होना ही उसका सिद्धि विषयक विचार है तथा व्यक्तिगत अहंता का परित्याग करके शान्त आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित होना ही उसका मार्ग है । बौद्ध-मतावलम्बियों के लिए उच्चतम सत्य सत्ता का अस्वीकार है । अतः उनके लिए सत्ता की क्षणिकता, कामना की विनाशकारी निस्सारता का बोध, अहंकार का तथा उसे धारण करने वाले विचार संस्कारों का एवं कर्म शृंखलाओं का विलय ही सर्वांगपूर्ण मार्ग है । प्रत्येक दर्शन अपने-अपने विचार के अनुसार भगवान के साथ कुछ सादृश्य प्राप्त करता है और प्रत्येक तद्नुरूप अपना मार्ग ढूँढ़ निकालता है ।

पर सर्वांगीण योग के लिए सिद्ध का अर्थ है—एक ऐसी दिव्य आत्मा और कर्म को प्राप्त करना होगा जो जगत में दिव्य सम्बन्ध और दिव्य कर्म का खुला क्षेत्र प्रदान करेंगे । अपने समग्र स्वरूप में उसका अर्थ है—सम्पूर्ण प्रकृति को दिव्य बनाना तथा उसके अस्तित्व और कर्म की समस्त असत्य ग्रन्थियों का परित्याग करना ।

सिद्ध या पूर्णता प्राप्त पुरुष उस ब्राह्मी चेतना में पुरुषोत्तम के साथ एक होकर जीवन धारण करता है । वह 'सर्व' मय ब्रह्म, सर्व ब्रह्म में, अनन्त सत्ता और अनन्त गुणों वाले ब्रह्म, अन्त ब्रह्म में स्वयंभू—चैतन्य स्वरूप में विश्व ज्ञानमय ब्रह्म, ज्ञान ब्रह्म में, स्वयंभू आनन्द स्वरूप और विराट् अस्तित्व—आनन्दमय ब्रह्म, आनन्द ब्रह्म में सचेतन होकर निवास करेगा । वह सम्पूर्ण विश्व को एक असीम विराट् सत्ता की अभिव्यक्ति अनुभव करेगा तथा समस्त गुणों एवं कर्मों को उसकी विराट् और असीम शक्ति की क्रीड़ा । उच्चतर अनुभूति की आनन्दमय स्थिति में वह उस तत् के साथ एक होगा । जो समस्त सत्ता का उद्गम और आधार है—सबको अन्तर्वासी, मूल आत्म तत्व और उपादान शक्ति है । यही है—आत्मसिद्धि की पराकाष्ठा ।

भुक्ति का अर्थ अरविन्द की दृष्टि में है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' । अर्थात्—अनासक्त भाव से उसको (भोगों को) भोगो । कामना प्रेरित जीवन में रहकर भोग को भोगने का प्रयत्न करना निश्चय ही लक्ष्य प्राप्ति में बाधक है । जीवन में दिव्य पूर्णता का अविर्भाव सम्पूर्ण जीवन को आध्यात्मिक शक्ति का क्षेत्र मानकर दिव्य भोग करना ही भुक्ति का रहस्य है । इस तरह पूर्ण योग में जीवन के दिव्य भोग के आदर्श को अरविन्द ने स्वीकार किया है । पूर्णयोग के साधक को इस विश्व उपवन में उत्पन्न हुए दिव्य आनन्द का उपभोग करना चाहिए ।

महर्षि अरविन्द के अनुसार समर्पण का अर्थ है—अपनी सम्पूर्ण प्रकृति को—अपने आपको भगवान के हाथों में सौंप देना । हमें अपनी प्रत्येक चीज को—बाह्याभ्यन्तरिक विभूतियों का उन विश्वमय विश्वातीत परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए । अपने संकल्प, अपने भाव और अपने विचार को उस एक और बहुरूप भगवान पर पूर्णरूपेण एकाग्र करना और अपनी सम्पूर्ण सत्ता को भगवान पर ही न्यौछावर करा देना समर्पण योग की एक निर्णायक गति है । यह अहं का उस 'तत्' की ओर मुड़ना है जो उससे अनन्त गुना महान है । इसी में आत्म-समर्पण की पूर्णता है ।

मानसिक विकास की आवश्यकता को आज इसलिए भी जरूरी समझा जा रहा है कि जब से मनुष्य का जन्म हुआ है, तब से अब तक लम्बे काल में यह बुद्धिवाद के धरातल तक में ही विकास कर पाया है । पिछले दो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदियों से वह उसी रूप में पड़ा हुआ है और मनुष्य उसे ही सब कुछ मान बैठा है, जिससे अनेकानेक समस्याएँ आ खड़ी हुई हैं, वह उन्हीं के जाल में बुरी तरह उलझा अपंग-असहायों की तरह छटपटा रहा है ।

मनुष्य मन और बुद्धि के वर्तमान धरातल से जब तक ऊपर नहीं उठ जाता समस्याएँ और परेशानियाँ उसका पीछा करती रहेंगी । 'सावित्री' महाकाव्य में योगी अरविन्द ने कहा है—मानव के अन्दर अनेकानेक सम्भावनाएँ उसी प्रकार प्रतीक्षा में हैं, जिस प्रकार एक बीच में छिपा विशाल वट वृक्ष विकसित होने के लिए उपयुक्त समय का इन्तजार करता रहता है ।

वे समझाते हुए कहते हैं—"आरोह" अर्थात् विकास, "अवरोह" अर्थात् अवतरण प्रगति के ये दो चरण हैं । दूसरें शब्दों में आरोह मानवी प्रयास पुरुषार्थ से सम्बद्ध है एवं अवरोह भगवद् करुणा से अर्थात् जब हम प्रयत्नपूर्वक मनसा—वाचा—कर्मणा से पवित्र बन जायेंगे, अपने सुपात्र को विकसित कर लेंगे तभी भगवद् करुणा स्वयं को निर्मल मानवी अन्तःकरण में उड़ेलेगी और फिर उस पवित्र अन्तराल में अतिमानवी (अतिमानस) का प्रादुर्भाव होगा ।

अरविन्द द्वारा—जड़ तथा चेतन मन—इन्हें चेतना के निम्नस्तरीय एवं आरम्भिक सोपान बताया गया है, जबकि उच्चतर मन, प्रकाशित मन, सम्बुद्ध मन ओवर माइण्ड तथा अतिमन को उच्चस्तरीय चेतना सोपान में रखा गया है और इन्हें विकास की अन्तिम स्थिति बताई गयी है ।

दर्शन के अनुसार बुद्धि ने निश्चय ही मनुष्य को काफी प्रगतिशील बनाया है और प्रतिगामी आदिम स्थिति से उबार कर विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुँचाया है । यही इसका चरमोत्कर्ष है । आगे की प्रगति उसके बस की बात नहीं, वह इसके सीमा-क्षेत्र से बाहर है । इसके बाद का विकास अब सम्बुद्धि (इण्ट्यूशन) द्वारा ही सम्भव है, तत्पश्चात ओवर माइण्ड और फिर अतिमन । अतिमानसी धरातल पर पहुँच कर मानव प्रगति के शिखर पर पहुँच जाता है । यह विकास का अन्तिम पड़ाव इस स्तर पर आकर मनुष्य-सर्वज्ञ बन जाता है ।

अरविन्द दर्शन के अनुसार अतिमानसी विकास कोई कपोल-कल्पना नहीं, वरन् एक सुनिश्चित तथ्य है और समष्टि को इस स्तर तक पहुँचना ही है किन्तु श्री अरविन्द ऐसा तभी सम्भव बताते हैं जब मानव स्वयं को वर्तमान तुच्छ स्तर से ऊपर उठायेगा, अन्यथा उसकी बुद्धि उसे सर्वनाश के कगार तक पहुँचा देगी । पर दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि विनाश आने से पूरा ही वह सँभल जायेगा और अपने अस्तित्व को बचा लेगा । फिर मनुष्य की जो स्थिति होगी, वह उसकी सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च स्थिति होगी ।

योगीराज ने यहाँ तक कहा है, कि रूपान्तरण अपनी स्वाभाविक गति से होगा, न तो इसमें कोई दैवी चमत्कार जैसी बात दीखेगी, न ही यह आकस्मिक रूप में आयेगा, उसकी प्रगति धीरे-धीरे होगी ।

जब आध्यात्मिकी संसार की स्थापना हो जायेगी तो महर्षि के अनुसार व्यष्टिगत चेतना समष्टिगत चेतना से मिलकर एकाकार हो जायेगी । तब मनुष्यों को न तो आज जैसी त्रासदी झेलनी पड़ेगी, न ही उसमें राग-द्वेष का, कामना-वासना, तृष्णा—अहंता का लेश मात्र भी रहेगा । सब स्वल्प-सन्तोषी बनेंगे और आनन्द की जिन्दगी जियेंगे ।

यह सब यूटोपिया जैसा लगते हुए भी वास्तविक प्रतीत होता है । अनेक बार अनेक मनीशियों ने इस प्रकार की कल्पना की है, पर महर्षि अरविन्द की कल्पना से इसलिए आशा बँधती है, कि वे एक मनीषी के साथ-साथ योगी भी थे, भविष्य-दर्शन की अपनी अर्जित क्षमता के आधार पर ही उन्होंने सब कुछ लिखा होगा ।

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

|| पातंजलि योग का तत्व-दर्शन ||

पातंजलि योग को राजयोग कहा जाता है । उसके आठ अंग (भाग) हैं । इन आठ अंगों की गणना इस प्रकार होती है—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि । आवश्यक नहीं कि इन्हें एक के बाद ही दूसरे इस क्रम में प्रयोग किया जाय । साधना विधि ऐसी बननी चाहिए कि इन सभी का मिलाजुला प्रयोग चलता रहे । जिस प्रकार अध्ययन, व्यायाम, व्यापार, कृषि आदि को एक ही व्यक्ति एक ही समय में योजनाबद्ध रूप से कार्यान्वित करता रह सकता है, उसी प्रकार राजयोग के अंगों को भी दिनचर्या में उनका स्थान एवं स्वरूप निर्धारित करते हुए सुसंचालित रखा जा सकता है ।

यम पाँच हैं—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह । इसी प्रकार नियम भी पाँच हैं—(१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्राणिधान । आसन चौरासी बताए गए हैं । प्राणायामों की संख्या भी बढ़ी-चढ़ी है । यम-नियम तो अनिवार्य हैं पर शेष क्रिया योगों में से अपनी सुविधानुसार चयन किया जा सकता है ।

आमतौर से इस साधना का क्रिया पक्ष ही पढ़ा-समझा जाता है । उसके पीछे जुड़ा हुआ भाव पक्ष उपेक्षित कर दिया जाता है । यह ऐसा ही है जैसे प्राण रहित शरीर का निरर्थक होना । यहाँ पर पातंजलि राजयोग के सभी पक्षों पर तात्विक प्रकाश डाला गया है, ताकि उसके सर्वांगपूर्ण स्वरूप से अवगत हुआ जा सके ।

अहिंसा और उसकी परिधि

अहिंसा को धर्म धारणा में प्रमुख स्थान दिया गया है । किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना साधारणतया अहिंसा का प्रकट अर्थ समझा जाता है, पर बात इतने भर से नहीं बनती । अहिंसा निषेधात्मक है । उसका विधेयात्मक पक्ष दया, करुणा, सेवा, सहायता के रूप में उदित होता है । इस हेतु कुछ करना पड़ता है । करने से ही पुण्य बन पड़ता है । न करने पर भावना मात्र से एक कल्पना ही मन पर छाई रह जाती है । उसे यदि चरितार्थ होने का अवसर न मिले तो मात्र सम्वेदना में औचित्य का समावेश रहते हुए भी उसका कोई प्रत्यक्ष प्रतिफल प्रस्तुत न हो सकेगा ।

स्थूल अहिंसा का पालन तो पेड़, पर्वत भी करते हैं वे किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते । यह उनकी जड़ता जन्य विवशता है । ऐसी दशा में उन्हें अहिंसक होने का श्रेय नहीं मिल सकता । प्रकृति के सभी पदार्थ ऐसे हैं जो अपनी जगह पर स्थिर रहते अपने निर्धारित चक्र पर भ्रमण भर करते रहते हैं । उनमें वह भावना नहीं रहती जो सचेतन में पायी जाती है । ऐसी दशा में जानबूझ कर हिंसा नहीं करते । उनसे टकराकर कोई अपना पैर तोड़ ले तो उनकी मर्जी ।

कृमि कीटकों पर भी अहिंसा का आदेश लागू नहीं होता । उनमें से अधिकांश माँसाहारी प्रकृति के होते हैं । अपने से छोटों को मारते खाते रहते हैं । उनकी प्रकृति को नहीं बदला जा सकता है कि अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि न पहुँचायें । लाभ-हानि तक का उन्हें विचार नहीं होता और न उन्हें यह सूझ पड़ता है कि उनकी किस क्रिया से किसी को क्या कष्ट होगा ? छिपकली, मकड़ी आदि घरेलू कीड़े अपने से छोटों को मारते खाते रहते हैं । बड़ी मछली भी छोटी को खाती देखी गई है । बिल्ली, व्याघ्र, मगरमच्छ, सर्प, बाज जैसे प्राणी भी माँसाहारी होते हैं । भूख लगने पर वे अपना शिकार पकड़ते और उदरस्थ करते रहते हैं । उन तक अहिंसा का संदेश पहुँचना या पहुँचाया जाना कठिन है ।

मनुष्य भावनाशील है, विवेकवान भी । उसे उचित-अनुचित का बोध आरम्भ से ही मिला है । सहकारी प्राणी होने के नाते उसके लिए नीति-नियम भी यही हैं कि दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जैसा दूसरों से अपने लिए चाहता है । क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । सज्जनता बरतने वाले बदले में वैसा सद्व्यवहार अनेकों द्वारा अपने साथ होते देखते हैं । दुष्टता की प्रतिक्रिया भी आक्रोश-प्रतिशोध में होती है । इसलिए अपने को त्रास न सहना पड़े इसका एक ही सही तरीका है कि दूसरों के साथ दुर्व्यवहार न किया जाय । अन्यथा प्रतिक्रिया एक नहीं तो दूसरे तरीके से होगी और अपना क्रिया कृत्य शब्द-बेधी बाण की तरह उसी तरकश में लौट आयेगा जहाँ से निकालकर उसे फेंका गया था । रबड़ की गेंद जितने जोर से जिस ऐंगल से फेंककर मारी जाती है, वह टकराने के बाद वापस उसी स्थान को उसी वेग में उसी ऐंगल पर वापस लौटती है । यही नियम सर्वत्र चलता है । सज्जनों को सहयोग और सम्मान मिलता है, जबकि दुष्ट-दुर्जन बदले में प्रतिरोध और तिरस्कार पाते हैं, इसलिए दूरदर्शी विवेकशील का भी यही तकाजा है कि दूसरों के साथ सद्व्यवहार करने में ही अपना भला समझा जाय और वैसा ही आचरण करने के लिए मानस बनाया जाय । अहिंसा इस दृष्टि में आत्मरक्षा की ढाल सिद्ध होती है । दूसरों के प्रति उदार रहकर प्रकारान्तर से अन्यों को अपने साथ सद्व्यवहार करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है । हिंसा पर उतारू होकर उसकी प्रतिक्रिया से बचा नहीं जा सकता । जिसे सताया गया है, वह दुर्बल एवं प्रतिशोध में असमर्थ हो सकता है, किन्तु दूसरी शक्तियाँ भी तो संसार में मौजूद हैं । वे अन्याय का बदला लिए बिना न छोड़ेंगी । इसीलिए जिन्हें चैन से रहना अभीष्ट है, उन्हें दूसरों को भी चैन से रहने देना चाहिए ।

अहिंसा का सृजनात्मक पक्ष है आत्मीयता । अपनों के साथ दया-करुणा का सद्भाव और ममता का व्यवहार ही बन पड़ता है । माता-पिता अपने बच्चों के प्रति अनवरत स्नेह लुटाते हैं और वे उनके साथ सेवा सहायता का व्यवहार सहज स्वाभाविक करते रहते हैं । यह सब उनसे सहज स्वभाव बन पड़ता है । अहसान जताने, पुण्य करने जैसा कोई भाव उनके मन में नहीं उठता । यही भावना संकीर्णता की परिधि से आगे निकल कर जब विराट के साथ सम्बन्ध जोड़ती है तो सभी अपने बन जाते हैं । जो अपना है, वह स्नेह सद्भाव, सहायता का पात्र बन ही जाता है । आत्मीयता का ही एक पक्ष दया और करुणा है । यह भी विकसित मानस में सहज स्वभावतः चल पड़ता है । सहायता का बदला सहायता के रूप में मिलते देखकर प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम में पाकर प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता । इस प्रकार का अहिंसा का प्रतिफल हाथों हाथ मिलता है । यह नगद धर्म है जिसके आधार पर जियो और जीने दो, "बढ़ो और बढ़ने दो" का सिद्धान्त सहज ही चारितार्थ होता चला जाता है ।

अहिंसा में विक्षेप उचित कष्ट से नहीं होता । अहिंसा में कष्ट नहीं औचित्य मुख्य है । डॉक्टर अस्पताल में ढेरों रोगियों की शल्य क्रिया करता रहता है । कितनों को वह सुई चुभाता है । मोटी दृष्टि में यह हिंसा हुई, पर वस्तुतः ऐसा है नहीं । उद्देश्य रोगी के प्रति दया भाव होने के कारण ऊँचा ही रहा, ऐसी दशा में तात्कालिक पीड़ा का कोई महत्त्व नहीं रहा । देखा यही गया कि रोगी को राहत किसमें है । हित कामना को देखते हुए कष्ट पहुँचाने की भी गुंजाइश न्यायाधीश अभियुक्तों को फाँसी की सजा देता है । इससे समाज-व्यवस्था का संरक्षण होता है । यदि उस अपराधी को क्षमा कर दिया गया होता तो खुला रहकर न जाने कितनों की हत्या करता, कितनी अव्यवस्था फैलता । इस तथ्य को ध्यान में रखकर यदि न्यायाधीश ने मृत्यु दण्ड दिया और अपराधी को कष्ट हुआ तो इसके लिए क्या किया जा सकता है । अहिंसा को रूढ़ि मानकर न्याय और विवेक को झुठलाया तो नहीं जा सकता ।

अहिंसा में विवेक को भी जुड़ा रखना पड़ता है, आत्मरक्षा में हिंसा भी अपनाई जा सकती है । घर पर डाकू आक्रमण करें तो उनका सामना करना ही पड़ेगा, भले उनमें से कोई आक्रान्ता मारा ही क्यों न जाय । घर में पलने वाले साँप-बिच्छुओं पर कब तक दया करते रहा जायेगा । चूल्हे में आग जलाते समय, यात्रा में चलते समय, धूप में कपड़े सुखाते समय यहाँ तक कि साँस लेते समय भी कुछ जीव मर सकते हैं । इसकी रक्षा किया जाना असम्भव है । ऐसे तो वनस्पति भी जीव माना जाने लगा है, आहार के लिए शाकाहार-जलाहार तो ग्रहण करना ही पड़ेगा । इसके बिना जीवन सम्भव नहीं । ऐसी अनिवार्य हिंसाओं पर विचार नहीं किया जा सकता ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिंसा वहाँ से आरम्भ होती है, जहाँ दूसरों को पराया समझकर अपने संकीर्ण स्वार्थ की सिद्धि के लिए अनीतिपूर्वक दूसरों को कष्ट पहँचाया जाय, जिनसे निर्दोषों को उत्पीड़न सहना पड़े । जिसके साथ अनीति का आधार जुड़ा हुआ हो ।

हिंसा शारीरिक आघात तक ही सीमित नहीं है । उसका मानसिक आघात भी एक पक्ष है । अपमान तिरस्कार, दुर्व्यवहार भी हिंसा का ही एक रूप है । जिससे मन को सम्मान को आघात लगे उसे भी हिंसा ही कहा जायेगा । किसी को गलत परामर्श देकर कुमार्ग पर चलने के लिए सहमत कर लेने पर तत्काल न सही परिणाम सामने आने पर तो कष्ट उठाना ही पड़ता है । इस प्रकार का जिसने कुचक्र रचा, उसे भी हिंसक ही कहा जायेगा ।

हिंसा से तात्पर्य है अन्यायपूर्वक उत्पीड़न । मात्र शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है । कुकर्मियों और कुमार्ग गामियों को जब समझाने-बुझाने से सही राह पर लाना सम्भव नहीं रहता । जब दुरात्माओं का अहंकार दुराग्रह और आतंक चरमसीमा तक पहुँच जाता है तो वे दया क्षमा को कर्ता की दुर्बलता-कायरता मानते हैं और इस प्रकार के सौम्य व्यवहार को अपनी जीत मानकर अनीति पर और भी अधिक वेग के साथ उतरते हैं । ऐसी दशा में प्रताड़ना के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता । विनम्रता और उदारता मात्र सज्जनों के साथ बरती जाने पर सफल होती है । हृदयहीनों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । जिनका कुकर्म करते-करते मानस परिपक्व हो गया है । जिनकी प्रवृत्ति कसाई जैसी बन गई है, उनके सम्मुख सज्जनता का, क्षमा दया का कोई मूल्य नहीं । शठता को शठता की भाषा ही समझ में आती है । उन्हें सुधारने के लिए जो विवेकपूर्ण हिंसा प्रयुक्त की जाती है उसे भी अहिंसा ही कहना चाहिए ।

सत्य की समग्र साधना

सत्य को धर्म शास्त्रों में प्रथम स्थान मिला है । उसकी महिमा में बहुत कुछ कहा गया है । बताया गया है कि इस एक व्रत के पालन करते रहने पर अन्य सब व्रत भी सध जाते हैं, इसलिए धर्म का मूल सत्य को माना गया है । असत्य और अधर्म पर्यायवाची कहे गए हैं ।

सत्य-पालन का मोटा अर्थ सच बोलना समझा जाता है, पर वस्तुतः सत्य का तात्पर्य तथ्य से है । जो तथ्य है, वही सत्य है । यह कृत्य मात्र वाणी से सम्पन्न नहीं हो जाता वरन् वचन के द्वारा उसका एक छोटा उपचार ही बन पड़ता है । सत्य शोध का विषय है । उसका उद्देश्य है, अपनी मान्यताओं और प्रवृत्तियों को सत्य की यथार्थता के अनुरूप बनाया जाय । यह एक दार्शनिक प्रक्रिया है । इसमें प्रचलनों एवं परम्पराओं से ऊँचे उठकर यथार्थता की गहराई तक पहुँचना पड़ता है । यह कार्य कठिन है, क्योंकि हम वातावरण के अनुरूप भ्रान्तियों में असाधारण रूप से जकड़े होते हैं । जैसा देखा सुना है, उसी के अनुरूप मन बना लेते हैं । वैसा ही आचरण करने लगते हैं । इस अन्वेषण की आवश्यकता नहीं समझते कि जो अपनाया जा रहा है, वह वास्तविक है भी या नहीं । उसका परिणाम वैसा ही हो सकता है । या नहीं, जैसा कि चाहा गया था ।

पूर्ण सत्य को जानने और अपनाने के लिए आत्म-शोधन की नये सिरे से साधना करनी पड़ेगी । कारण कि हमारे जीवन-गुण, स्वभाव-चिन्तन, चरित्र-व्यवहार के सभी पक्ष भ्रान्तियों और अवास्तविकताओं के आधार पर अवलम्बित हो गए हैं । उनमें तथ्यों का कम और अन्ध-परम्पराओं का भाग अधिक है । कारण यह है कि अनादि काल से मनुष्य को सीमित बुद्धि बल से काम चलाना पड़ा । उसमें मन तो काम करता था, पर वास्तविक अवास्तविक का वर्गीकरण विश्लेषण कर सकने वाली बुद्धि का विकास एक छोटे परिणाम में ही विकसित हो पाया था । इसलिए संसार में जो कुछ दीख पड़ा उसके सम्बन्ध में उसी रूप में कल्पना कर ली । मान्यता बना ली । हलचलों के साथ जुड़ी हुई सभी घटनाओं को किन्हीं देव-दानवों से प्रेरित माना जाने लगा । अग्नि वरुण, बादल, सूर्य, चन्द्र, तारे, आँधी-तूफान जब वेगवान गति से कार्य करते दिखाई पड़ें तो उन्हें शक्तिशाली व्यक्तित्व की मान्यता दी गई । जन्म और मरण की असाधारण घटनाओं को भी दैवी वरदान या अभिशाप की तरह आँका गया । उन दिनों मनुष्यों के मन पर देव-दानवों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ही साम्राज्य छाया हुआ था । उन्हें उनका कोप शान्ति करके दुर्घटनाएँ रोकने—उन्हें प्रसन्न करके सुविधाएँ बढ़ाने की कला का आविष्कार हुआ । पूजा-अनुष्ठानों के अनेकानेक विधि-विधान इसी आधार पर चल पड़े । अब विज्ञान और बुद्धिवाद के विकास ने नई मान्यताएँ दी हैं । यह सब प्रकृतिगत हलचलें, ज्वालामुखी फूटना, भूकम्प आना किसी देवता की आक्रोश सूचक क्रियाएँ नहीं हैं, वरन् प्रकृति क्रम का एक साधारण-सा उपक्रम है । ऐसी दशा में दैववाद और उनके पूजा-विधान का आधार हिल गया और कुछ परम्परावादियों को छोड़कर अधिकांश लोग उन विषय में उपेक्षा बरतने लगे । यह सत्य के ऊपर पड़े हुए एक पर्दे का उठ जाना हुआ ।

ऐसी-ऐसी अनेकानेक भ्रान्त धारणाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भर गईं हैं । उनका प्रवेश इतनी गहराई तक हो चुका है, उनको अपनाये रहने की अवधि इतनी लम्बी हो गई है कि जो कुछ माना, अपनाया गया है, वह सभी सत्य प्रतीत होता है । इस परिपालन को हम यथार्थ भी मानते हैं और धर्म भी कहते हैं । परम्पराएँ पत्थर की लकीर बन गई हैं । उनमें जो-जो उपयोगिता की दृष्टि से अवांछनीय प्रतीत होती हैं, उनको छोड़ना भी इसलिए नहीं बन पड़ता कि चिर अभ्यास से वे स्वभाव का अंग बन गई हैं । व्यवहार में सरल मालूम पड़ती हैं, जबकि नये सिरे से सोचने में पूर्वाग्रह अवरोध उत्पन्न करने और छोड़ने का प्रश्न सामने आने पर तो न केवल अपना वरन् समीपवर्ती लोगों का विरोध भी सामने आ खड़ा होता है । ऐसी दशा में सत्य का आभास मिलने पर भी मान्यताओं में, आचरणों में असत्य ही अधिकतर छाया रहा है । इस अँधेरे आच्छादन से साहसपूर्वक निकल सकना सम्भव हो सके तो हम न केवल चिन्तनात्मक वरन् व्यवहार में सामाजिक मान्यताओं में क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए विवश होंगे ।

जीवन का महत्त्व, स्वरूप, उद्देश्य और उपयोग भी हम कहाँ समझ पाते हैं ? शरीर को ही सब कुछ मानते हैं और उसी की लिप्सा, लालसाओं के लिए मरते-खपते रहते हैं । यह भ्रान्ति इतनी बड़ी है, कि आप्तजनों द्वारा इसे माया ठहराये जाने और बन्धन में बाँधने वाली बताकर छोड़ने के लिए सजग किए जाने पर भी वह मान्यता अपने स्थान पर यथावत् बनी रहती है । जीवन उसी जाल-जंजाल में उलझते रहने में मोद मानता और व्यतीत हो जाता है । समय निकलने पर, आँखें खुलने पर, नशा उतरने पर प्रतीत होता है कि कितने बड़े भ्रम में रहा गया । असत्य के कोल्हू में पिलते रहा गया और वह अवसर निकल गया जिसका सदुपयोग कर सकने पर आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के दोनों ही प्रयोजन सध सकते थे ।

स्वभाव में लोभ-मोह की, अहंता के प्रदर्शन की ऐसी लत घुस पड़ी है कि उनकी अनावश्यक पूर्ति के लिए मरते-खपते सारा समय बीत जाता है । आलस्य प्रमाद की, अपव्यय की, आवेश की ऐसी बुरी आदतें आचरण का अंग बन गई हैं, जिनके कारण पग-पग पर ठोकरें लगती रहती हैं । इतने पर भी यह सूझ नहीं पड़ता कि अपने आपे को जिस ढाँचे में ढाल लिया गया है, यात्रा का जो लक्ष्य बना लिया गया है, उसमें वास्तविकता उपयोगिता नहीं के बराबर है । व्यक्तित्व का समूचा ढाँचा अवास्तविकताओं से घिर गया है ।

भ्रान्तियों का जंजाल छोटा नहीं है । उससे व्यक्ति और समाज को बुरी तरह आछन्न देखा जा सकता है । नर और नारी के बीच बरता जाने वाला भेद-भाव, जाँति-पाँति के आधार पर चल रही ऊँच-नीच, माँसाहार, नशेबाजी, खर्चीली शादियाँ, भिक्षा व्यवसाय जैसी कुरीतियों पर दृष्टि डालते हैं, तो विवेक की कसौटी पर इनका खोटापन सहज ही सिद्ध हो जाता है । उनके कारण होने वाली हानियाँ भी सहज समझ में आ जाती हैं । फिर भी वह सब उसी रूप में चलता रहता है । मौखिक विरोध होता है, पर आचरण में अन्तर नहीं आता । यह असत्य का वह चिर संचित अभ्यास है जो हमारे रोम-रोम में बस गया है । आहार-विहार में समाविष्ट अवांछनीयताएँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, कि हम वास्तविकता और उपयोगिता की ओर से कितने उदासीन असत्य से अपने आप घिरे हुए हैं और उसी में रहने के आदी बन गए हैं, जैसे पतंगे की आग में कूद मरने की आदत मरण तुल्य त्रास देती रहती है ।

सत्य बोलना अच्छी बात है । तथ्य को जिस रूप में समझा गया है, उसी रूप में प्रकट कर देने से मन हल्का रहता है । अन्तर्द्वन्द्व नहीं उठता । प्रामाणिकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी बढ़ती है । सम्मान होता है और सहयोग मिलता है । इसलिए सत्य भाषण की महत्ता स्वीकार करते हुए भी मात्र उतने तक सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए वरन् यह भी देखना चाहिए कि अपने स्वभाव में, समाज के प्रचलन में कितना असत्य संव्याप्त है । उसे भी छोड़ने छुड़ाने का प्रयत्न चलना चाहिए । सत्य की समग्र साधना इसी प्रकार सम्भव है । उसे मात्र वचन तक सीमित नहीं रहने देना चाहिए ।

अस्तेय का दर्शन एवं रहस्य

धर्म धारणा के प्रमुख नियमों में एक निर्धारण "अस्तेय" का भी है ।. अस्तेय का मोटा अर्थ है "चोरी न करना ।" पर देखने में यह आता है कि प्रत्यक्ष चोरी कर सकने का अवसर तो किन्हीं विरलों को कभी-कभी ही मिलता है । फिर ऐसे गौण क्रिया को प्रमुखता किस आधार पर मिली ?

जेबकटी, उठाईगीरी, सेंध लगाना जैसे कुकृत्य तो कोई अति साहसी, क्रिया-कुशल अभ्यस्त प्रशिक्षित ही कर पाते हैं । वैसी घटनाएँ कम ही होती हैं । असावधान लोग ही उचक्कों की चपेट में आते हैं । जागरूकता और सतर्कता का आश्रय लिए रहने पर उन प्रपंचियों की दाल सहज नहीं गल पाती । ढीठता जो यदि प्रयत्नपूर्वक पकड़ा और प्रताड़ित किया जा सके तो दूसरे देखने वालों को भी नसीहत मिलती है और उन आशंकाओं की सम्भावना बहुत घट जाती है । पहरेदारी का प्रबन्ध करके चोरी रोकी भी जा सकती है । मनुष्य जीवन में चोरी के खतरे का भय कम ही रहता है । वह भी ऐसा नहीं है, जिसे प्रयत्नपूर्वक रोका न जा सकता हो आमतौर से प्रमादी और असावधान लोग ही चोरी होने जैसी क्षति उठाते हैं ।

किन्तु धर्म आचरणों में जिस अस्तेय को प्रमुखता दी गई है, वह एक दुष्प्रवृत्ति है, जो मनुष्य के स्वभाव की गहराई में घुसी पायी जाती है । बाहर से चोरी की घटना न होने पर भी इस प्रवृत्ति में संलग्न और उससे आक्रान्त अनेक लोग पाये जाते हैं ।

चोरी को प्रधानतया आर्थिक अपराध माना जाता है । यदि उसे इसी सीमा तक रखना हो, तो उसमें कुछ अन्य तथ्य भी जोड़ने पड़ेंगे । बिना परिश्रम की कमाई को अथवा थोड़े श्रम के बदले बहुत लाभ उठाने को भी चोरी माना जाना चाहिए । व्यवसाय में आमतौर से इस प्रवृत्ति का गहरा पुट रहता देखा गया है । मुनाफाखोरी के नाम से यह बदनाम तो है तब भी उसे आचरण में लाते उस क्षेत्र में अधिकांश लोग देखे गए हैं ।

मुनाफे की एक सीमित मर्यादा होनी चाहिए । लाभांश उतना लिया जाना चाहिए, जिससे उत्पादक और उपभोक्ता की मध्यवर्ती दलाली के रूप में उचित माना जाय । वस्तु को उसके गुण-अवगुण बताए हुए बेचा जाना चाहिए, ताकि क्रयकर्ता को पीछे पछताना न पड़े । दूसरी जगह भाव तलाश करने पर यह न सोचना पड़े कि हमें ठगा गया । यदि व्यापार, व्यवसाय में खरा माल, एक दाम की परिपाटी चल पड़े, तो समझा जाना चाहिए कि खुलेआम चल रही चोरी का बड़ा द्वार बन्द हो गया । खाद्य पदार्थों में, सोना-चाँदी में मिलावट एक बहु प्रचलन के रूप में सामने है । यदि इसे जनआक्रोश उभार कर रोका जा सके, ऐसे चोरों को तिरस्कृत-बहिष्कृत करने का आन्दोलन उठ खड़ा हो, तो आर्थिक क्षेत्र की चोरी में से व्यवसाय क्षेत्र को निकाला जा सकता है । ऐसा ही प्रचलन सरकारी क्षेत्र में अफसरों द्वारा की जाने वाली रिश्वत की माँग के सम्बन्ध में भी है । वे अनुचित काम कराने वालों से भी उस काली कमाई में साझीदार बनते ही हैं, उचित काम करने वालों के कार्य में भी अड़ंगे लगाकर उन्हें अनुचित हैरानी से बचने की कीमत भी माँगते हैं । यह भ्रष्टाचार देने और लेनें वालों के सहयोग से निरन्तर चलता रहता है और साझेदारी के आधार पर किए जाने वाली व्यभिचार की तरह पकड़ में नहीं आता । इस प्रकार मुनाफाखोरी, करचोरी, जमाखोरी की तरह रिश्वतखोरी भी चोरी का एक सभ्य तरीका बन गई है । उस काली कमाई से बचे रहने वालों की इस जमाने में प्रशंसा ही नहीं, अभ्यर्थना भी की जा सकती है ।

हराम की कमाई भी चोरी है । जो प्राप्त किया गया है, उसके बदले आवश्यक परिश्रम करना, समय देना, मन लगाना आवश्यक है । बिना मूल्य बचपन में अभिभावकों का अनुदान प्राप्त किया जाता है । उसे मुफ्त का न माना जाय, अधिकार न समझा जाय, यह ध्यान रखा जाय कि वह राशि उधार मिले हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कर्ज की भाँति है, जैसे वृद्धावस्था में उनकी सेवा सहायता के रूप में तो चुकाया ही जाना चाहिए । साथ ही यह भी देखा जाना चाहिए कि उनके छोड़े उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सहायता करके उस पितृ ऋण से उऋण हुआ जाय । छोटे बहिन-भाइयों, परिवार के अन्य असमर्थ सदस्यों की सहायता करना, पितृ-ऋण चुकाना ही है । बच्चों को अभिभावक अकेले ही नहीं पाल लेते, वरन् परिवार के सभी सदस्यों का किसी न किसी रूप में योगदान रहता है । इसलिए वयस्क और कमाऊ सदस्यों पर परिवार के सभी लोगों का उनकी स्थिति के अनुरूप सहायता पाने का हक बनता है । इसे न चुकाना, कमाऊ होते ही अपना चूल्हा अलग बनाकर पृथक रहने लगना, यह भी एक प्रकार से चोरी है । उससे समूचे परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने का दोष आता है, संयुक्त परिवार में तो विशेष रूप से ।

पूर्वजों का छोड़ा हुआ धन भी हराम की कमाई है । जो स्वयं कमा सकते हैं, उसे वह धन लूट के माल की तरह हड़प जाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए । छोटे बालकों, अनाश्रित महिलाओं को पूर्वजों का छोड़ा धन उनके स्वावलम्बी बनने तक काम आये, उसका तो औचित्य है, पर जो कमाने लगे, स्वावलम्बन पूर्वक गुजर करने लगे, उनके लिए यही उचित है कि पूर्वजों की छोड़ी हुई राशि को परमार्थ प्रयोजनों में उनकी आत्म-शान्ति के लिए लगा दें । इससे समाज का हित भी होगा । सत्प्रवृत्तियों की पुण्य परम्परा भी बढ़ेगी । अपंग अनाश्रितों को अवलम्बन भी मिलेगा । उत्तरोधिकार में मिले धन का यही सदुपयोग है । कृषि व्यवसाय आदि में लगी पूँजी को उस अर्थतन्त्र के चलाने का माध्यम तो माना जाय, पर उनमें श्रमिकों को भी भागीदार रखा जाय, ताकि स्थापित अर्थतन्त्र का लाभ व्यक्ति विशेष, को न मिलकर उस तन्त्र को चलाने वाले सभी घटकों को मिलता रहे ।

श्रमिकों के लिए उचित है कि जिस काम के लिए पैसा लिया है, उसे पूरी ईमानदारी और मेहनत के साथ सम्पन्न करें । वेतन पूरा लेना और काम अधूरा करना यह भी काम चोरी है, जिसे मुनाफाखोरी के सदृश्य ही अनुचित समझा जाना चाहिए । श्रम और उपलब्धि के बीच तारतम्य बिठाए रखना कर्तव्य और अधिकार को मिला-जुला रखने की तरह आवश्यक है ।

साझेदारी के कामों में कोई भागीदार अधिक लाभ उठाए और दूसरे भागीदारों को, उनके हक को दबा ले, तो यह भी चोरी हुई, निर्धारित राज कर को भी ईमानदारी के साथ चुकाया जाना चाहिए । इस प्रकार आमदनी में कुछ कमी भले ही पड़ जाय; पर सरकारी और गैर सरकारी जन-समुदाय की दृष्टि में अपनी फर्म की जो प्रतिष्ठा बढ़ती है, उसके आधार पर उसकी प्रतिष्ठा-प्रामाणिकता बढ़ती जाती है और अन्ततः कम लाभ लेते हुए भी अधिक मुनाफा मिलने की सूरत बन जाती है । संसार के प्रसिद्ध और प्रमुख व्यापारी उसी नीति को अपना कर उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचे हैं । बेईमानी का धंधा करने वाले जल्दी ही अपने ग्राहकों में बदनाम हो जाते हैं और नफे के स्थान पर नुकसान उठाते हैं ।

कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में कटौती करना, उपेक्षा बरतना, यह नैतिक चोरी है । समाज की प्रगति में सहयोग न देकर मात्र अपने ही संकीर्ण स्वार्थ साधन में लगे रहना, इसे भी चोरी का ही एक तरीका माना जा सकता है । मनुष्य जीवन सामाजिक सहयोग पर ही पूरी तरह अवलम्बित है । उसे उपयोग की सभी आवश्यक वस्तुएँ तभी मिल पाती हैं, जब दूसरों के कौशल एवं श्रम का सहयोग इस निर्माण से जुड़ा हुआ हो । एकाकी मनुष्य तो अन्न, वस्त्र, निवास की सामान्य आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाता । मानवी प्रगति का एक मात्र आधार बहुमुखी सहयोग से लाभान्वित होना है । इसके बदले हर किसी का कर्तव्य बनता है, कि वह सामाजिक प्रगति के कामों में अपनी सामर्थ्य भर उत्साह पूर्वक सहयोग करें । उसकी उपेक्षा करना भी कर्म की चोरी है । चोरी किसी भी स्तर की क्यों न हो, उससे बचा ही जाना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य शारीरिक ही नहीं मानसिक भी

ब्रह्मचर्य का लौकिक अर्थ है, अविवाहित । अविवाहित रहना अच्छा है । इससे जीवनी शक्ति का क्षरण रुकता है । शरीर का समुचित परिपोषण होने में दृढ़ता परिपक्व होती है । रोगों से जूझने और उन्हें परास्त करने की क्षमता का भण्डार भरा रहता है । सुन्दरता सुस्थिर रहती है । स्त्री-बच्चों की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जेम्मेदारी न रहने, अपना समय, श्रम, मनोयोग और साधन दूसरे अधिक उपयोगी कामों में लगा सकने का अवसर मिलता है, गृहस्थ की अनेकानेक समस्याओं का, झंझट बचता है । अधिक अध्ययन करने, पुण्य कमाने, तीर्थयात्रा जैसे परिभ्रमण पर निकलने की गुंजाइश रहती है । ब्रह्मचारी दीर्घजीवी भी होते हैं ।

उपरोक्त सभी लाभों पर विचार करने पर वे शारीरिक एवं लौकिक ही प्रतीत होते हैं । उनकी संगति ब्रह्म परायण होने के साथ कैसे जुटे ? जब ब्रह्मचर्य का शब्दार्थ होता है, ब्रह्म को आचरण में समाविष्ट करना । "ब्रह्म को चर जाना ।" गाय घास चरती है और उसको दूध में बदल देती है । ऐसा कुछ ब्रह्मचर्य में भी होना चाहिए । उस विद्या को अपनाने पर व्यक्ति को ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनी चाहिए, ब्रह्म निर्वाह के, ब्रह्म दर्शन के समीप पहुँचना चाहिए, पर वैसा होते देखा नहीं जाता । ब्रह्मचारी का शारीरिक क्षरण भर रुकता है, उसके पास बलिष्ठता की पूँजी भर जमा होती है । कई बार तो वह लाभ भी पूरी तरह मिलता नहीं देखा जाता ।

विधवाएँ और विधुर प्रत्यक्षतः ब्रह्मचारी ही रहते हैं । कुरूप और दरिद्री को भी विवाह का संयोग नहीं मिलता । तथाकथित साधु-सन्त भी सामाजिक मर्यादा के कारण विवाह नहीं कर सकते । इतने पर भी देखा गया है कि इस प्रकार अविवाहित रहने वालों में कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती है । न वे शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ होते हैं, न मानसिक दृष्टि से प्रखर । आत्मिक प्रगति के कोई लक्षण भी प्रतीत नहीं होते । इन कारणों को देखते हुए सन्देह होता है कि अविवाहित-ब्रह्मचारी रहने का कोई प्रतिफल होता भी है या नहीं । सामान्यतया शारीरिक लाभ तो होना ही चाहिए । शक्तियों का क्षरण रुकने में उसकी पूँजी तो जमा दीखनी ही चाहिए, पर होता उससे भिन्न है । वैज्ञानिक सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि अविवाहितों की तुलना में विवाहित अधिक निरोग रहते और अधिक दीर्घजीवी होते हैं । इस उलटे परिणाम को देखते हुए असमंजस होता है कि शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य का महत्त्व गाया बताया है, वह अलंकारिक ही तो नहीं है । उस प्रतिपादन में यथार्थता समाहित है भी या नहीं ।

तथ्यतः ब्रह्मचर्य की प्रधान भूमिका मानसिक है । अध्यात्म उच्चस्तरीय मनोविज्ञान ही है । जब योग के, तप के, साधना के साथ उसे जोड़ा जा रहा हो, तो उस सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि इसके साथ ही ब्रह्म के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला कोई तत्व दर्शन भी जुड़ा होना चाहिए । वस्तुतः ऐसा है भी ।

पानी का स्वभाव नीचे की दिशा में ढलकने का है । पर यदि उसे ऊपर की ओर ऊँचा चढ़ाना हो तो उसके लिए विशेष स्तर के प्रयत्न होने चाहिए । शरीर के परिपुष्ट होने पर यौवन की दहलीज पर पैर रखते ही कामुक आवेश जागृत होते हैं । एक उन्माद जैसा चढ़ता है । जिसकी आकुलता स्खलित होने का कोई उपाय ढूँढ़ती है । सीधा मार्ग नहीं मिलता तो औंधा-तिरछा तरीका अपनाती है । इस कारण वीर्य रक्षा का लाभ भी नहीं मिल पाता । फिर ब्रह्म परायण होने का लाभ मिलेगा ही कैसे ?

होना यह चाहिए कि ब्रह्मचारी की मनोभूमि उच्चस्तरीय आदर्शों में इस प्रकार संलग्न रहनी चाहिए कि उसे कामुक आचरण तो दूर उस प्रकार के विचारों के लिए भी अवसर न मिले । प्रवाह को रोक देने के लिए मजबूत बाँध बाँधने चाहिए । यह मानसिक बाँध साधनात्मक मनोयोग भी हो सकता है और परमार्थ परायण सेवा साधना के प्रति प्रबल उत्साह और प्रवाह इसी प्रकार मोड़ा जा सकता है । आदर्शवादी तत्परता ऐसी होनी चाहिए कि हर समय उच्चस्तरीय चिन्तन में ही मन रमा रहे । परमार्थ स्तर की योजनाएँ ही बनती रहें । इतना ही नहीं वरन् क्रिया-कलाप भी ऐसे होने चाहिए जिनमें शरीर का श्रम-समय और मन का एकाग्रभाव पूरी तरह नियोजित रहे । इस प्रकार ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरिता बनता है । उसकी कामुक ललक अधोगामी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा आदर्शों में रमण करने लगती है । महानता से सम्बन्धित क्रिया-कलापों को अपना प्रिय विषय बनाता है । इस प्रकार अधोगामी प्रवृत्तियाँ रुकती हैं और वे उच्चस्तरीय विचारणाओं, भावनाओं और योजनाओं में नियोजित रहती हैं । फलतः दिशा बदल जाने पर मानसिक ब्रह्मचर्य भी सध जाता है और शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का पोषण उज्ज्वल योजना के आधार पर मिलने लगता है । ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभ बताया गया है वह इस अनुबन्ध के आधार पर उपलब्ध होने लगता है ।

ब्रह्मचर्य पालन में एक बड़ा अवरोध है—विषम लिंग के प्रति हेय स्तर का अश्लील आकर्षण । नर-नारी के रमणी, कामिनी, भोग्या रूप का चिन्तन करता है अथवा नारी नर के यौवन उभार पर ध्यान केन्द्रित करती है, तो मानसिक उत्तेजना इस स्तर की बढ़ जाती है कि रति कार्य के लिए व्याकुलता सताने लगती है । यह चिन्तन ही प्रकारान्तर से व्यभिचार बन जाता है । शारीरिक क्षरण की तरह मानसिक लोलुपता भी इस व्रत को खोखला बनाती है । शारीरिक पात को किसी प्रकार रोका भी जा सके, तो मानसिक अश्लीलता समूचे मनःक्षेत्र को मथ डालती है और उस आग में ओज की बहुमूल्य सम्पदा जलने लगती है । इसे ब्रह्मचर्य का नाश ही समझा जा सकता है । ऐसे व्यक्तियों को न शारीरिक लाभ मिलता है, न मानसिक । ब्रह्म परायणता तो निभे ही कैसे ?

ब्रह्मचर्य पालन के लिए इन्द्रिय निग्रह से भी अधिक आवश्यक मनोनिग्रह है । मन को अश्लील चिन्तन से रोकने का एक ही उपाय है । विपरीत लिंग पक्ष के प्रति पवित्रता का समावेश किया जाय । नर-नारी को आयु के अनुसार पुत्री, भगिनी एवं माता के समान समझे । कल्पना क्षेत्र में भी प्रत्येक नारी को इसी पवित्र बन्धन में बाँधें और उसे अपनी सगी रिश्ते में पवित्र लगने वाली दृष्टि से मान्यता दें । यही बात नारी के सम्बन्ध में भी है उसे भी पुरुष मात्र को पुत्र, भाई या पिता की तरह मान्यता देनी चाहिए और पवित्रतम सम्बन्ध में सुदृढ़ रखने की व्रतशीलता अपनानी चाहिए ।

एक ही परिवार में सभी आयु के लोग रहते हैं । उसमें से कई तो युवक-युवती भी होते हैं । इतने पर भी उनमें से परस्पर कोई दुर्भाव नहीं उभरते और न अनैतिक आचरण बन पड़ते हैं । यह मानसिक स्थिति का अन्तर है । परायापन आते ही पवित्रता की दीवार ढह जाती है और युवक-युवती आयु का चिन्तन उभरते ही अनाचार के भाव उठने लगते हैं ।

शारीरिक पापों की तरह मानसिक पाप भी होते हैं । किसी पर प्रत्यक्ष आक्रमण भले ही न बन पड़े, पर उसे क्षति पहुँचाने की मानसिक योजना बनती रहे, क्रोध उभरता रहे तो इतने से भी वह मानसिक पाप अपना प्रभाव उत्पन्न करेगा । शारीरिक एवं मानसिक विक्षेप उत्पन्न करेगा । आधि-व्याधियों को जन्म देगा । इसी प्रकार कामुक चिन्तन के बारे में भी समझा जाना चाहिए । वह भी व्यभिचार की तरह अपना कुप्रभाव छोड़ता है । शारीरिक रस को नष्ट होने से भले ही बचा लिया जाय पर मानसिक विनाश तो निश्चित रूप से होगा । मानसिक रूप से व्यभिचारी और शरीर क्षेत्र के ब्रह्मचारी उन समस्त लाभों से वंचित रहते हैं जो ब्रह्मचर्य की महिमा महत्ता के सम्बन्ध में बताए गए हैं ।

पूँजी को रोककर न रखें

प्रकृति का एक सुनिश्चित प्रवाह क्रम है । एक क्षण के लिए भी वह किसी को एक स्थिति में रहने नहीं देती । अणु-परमाणु घटकों से लेकर ग्रह-नक्षत्रों तक सभी को निरन्तर गतिशील रहना पड़ता है । हवा सभी को हिलाती-डुलाती रहती है । रक्त-संचार और श्वास-प्रश्वास का क्रम अंग-प्रत्यंगों को गतिशील रहने के लिए बाधित करते हैं । नदी-नाले का प्रवाह बहता रहता है । अन्न उपजता, आहार बनता और बाद में खाद बनकर नये सिरे से उपजने की तैयारी करता है । शरीर जन्मते, बढ़ते, ढलते और मृत्युमुख में चले जाते हैं । सूर्य-चन्द्र उदित होते, प्रकाश देते और अस्ताचल की गोद में चले जाते हैं । यह भ्रमणक्रम ही चेतना का, शरीर का सुनिश्चित क्रम है । यदि उनमें कहीं गतिरोध खड़ा हो, तो समझना चाहिए कि वह तन्त्र बिखरने जा रहा है ।

धन की भी यही गति रहनी चाहिए । प्रगति इसी का नाम है । उत्पादन कोई कितना ही क्यों न करे, पर उसे किसी स्थान विशेष पर संग्रहीत नहीं होना चाहिए । व्यक्ति के पास भी उसकी जमाखोरी नहीं होनी चाहिए । कर चोरी मुनाफाखोरी को अपराध माना गया है । उन्हीं में एक गणना जमाखोरी की भी होती है ।

शास्त्रकारों ने पंच महापातकों में एक परिग्रह की भी गणना की है; हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार के समतुल्य ही परिग्रह को माना गया है । परिग्रह का अर्थ जमाखोरी है । उसे उपार्जन की रोकथाम नहीं समझनी चाहिए । कमाने में, उगाने में हर्ज नहीं । वस्तुएँ यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक मात्रा में उपलब्ध होंगीं तो ही वे जरूरतमन्दों के काम आ सकेंगी । यदि अभाव की स्थिति बनी रहेगी, तो उसके कारण कठिनाई सभी को भुगतनी पड़ेगी । व्यवसाय थम जायेगा । क्रय-विक्रय का सिलसिला न चलेगा । छीना-झपटी शुरू हो जायेगी । सम्पन्न की सुविधा उठाते और अपने को दरिद्रता में दिन काटते देखकर असमानता जन्य ईर्ष्या का उदय होगा और उस आवेश में बड़ों को गिराने का अभियान चल पड़ेगा । ईर्ष्या के साथ द्वेष भी जुड़ा हुआ है । द्वेष मात्र तभी नहीं होता, जब किसी को हानि पहुँचाई जाय । उसका एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी है कि पड़ौसी का वैभव दीख पड़े और अपनी स्थिति उससे हीन दीख पड़े, तो इसका कारण अपनी असमर्थता, अयोग्यता सोचने के स्थान पर लोग यह अनुमान लगाने लगते हैं कि हमसे कहीं अधिक कमा लेने वाला चोर-बेईमान रहा होगा । जिसके प्रति घृणा उपजी उसके लिए द्वेष भी उपजेगा ही । द्वेष के बीज जहाँ भी उगते हैं, वहाँ कलह उत्पन्न होता है । विग्रह का कोई न कोई कारण स्वरूप बन ही जाता है । विग्रह में दोनों पक्षों को हानि होती है । समय, श्रम, धन की बर्बादी होती है और अन्ततः आक्रमण, प्रतिशोध का ऐसा सिलसिला चल पड़ता है, जिसका अन्त ही नहीं होता । कई बार तो यह पीढ़ी-दर पीढ़ी तक भी चलता देखा गया है । इसमें सब प्रकार तबाही ही तबाही है ।

मनुष्य समुदाय एक परिवार की तरह है । उसका निर्वाह और विवाह परस्पर मिल-जुलकर ही होता है । आदान-प्रदान के कारण ही एक-दूसरे की आवश्यकताएँ पूरी कर पाते हैं । किसान गेहूँ कमाता है और तेली तेल । दोनों अपनी-अपनी कमाई को दाब कर रखें, किसी दूसरे को न दें, तो उसका परिणाम यह होगा कि दोनों इतनी मात्रा का उपयोग तो कर नहीं सकेंगे, संगृहीत वस्तुएँ जगह घेरेंगी और सड़ेंगी । साथ ही जो व्यवसाय क्रम चल सकता (विनिमय के आधार पर अनेकों का काम चल सकता) था, उन सभी को अभाव ग्रस्त स्थिति में रहना पड़ेगा । एक का संग्रह दूसरे अनेकों के लिए असुविधा का दरिद्रता का निमित्त कारण बनता है ।

उचित यह है कि उपार्जित पूँजी को अन्यान्यों के काम आने के लिए आगे बढ़ने दिया जाय । उसे एक स्थान पर रोका न जाय ।

परिग्रह वह है जो जेवर, जायदाद, वाहन आदि के ठाट-बाट रोपने में पूँजी को मृतप्रायः बना देता है । फैशन के नाम पर अन्धाधुन्ध कपड़ों के सेट बनाना, कोठी बंगले खड़े करना, प्रदर्शन के लिए बड़े ठाटबाट थोपना, अंग सज्जा की अनावश्यक वस्तुएँ कला के नाम पर एकत्रित करना आदि कामों में जो पूँजी लग जाती है, वह दिन-दिन घिसती घटती ही जाती है, वापस तो लौटती ही नहीं । यह स्थिति सामाजिक प्रगति की दृष्टि से नितान्त हानिकर है । जेवरों में रुपया फँसाकर उसकी ब्याज से तो वंचित रहना ही पड़ता है । साथ ही उसकी चोर-उचक्कों से सुरक्षा की विशेष व्यवस्था भी करनी पड़ती है । दर्शकों का मन ललचाता है और वे वैसी ही सज्जा बनाने के लिए अपराधी कृत्यों पर उतरते हैं । जेवर की टूट-फूट होती रहती है, वह घिसता रहता है । मरम्मत में ढेरों पैसा जाता है । मिलावट की चोरी भी हर बार बढ़ती जाती है। ऐसी सज्जा जिसमें लाभ एक भी न हो हानिकारक अवसर अनेक बनें, उसे अपनाने से क्या लाभ ? उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक बड़ा मकान बना लेना, जिन वाहनों को किराए पर लेकर काम चल सकता था, उन्हें खरीद लेना ऐसा सफेद हाथी बाँधना है, जो दरवाजे की शोभा तो बढ़ाता है, पर उपार्जन की दृष्टि से व्यर्थ और खर्च के हिसाब से भारी महँगा पड़ता है ।

जमीन में धन गाड़कर रखना भी ऐसा ही है, जिसे किसी को न बता पाने या गाड़कर भूल जाने पर वह एक प्रकार से समाप्त ही हो जाता है । उत्तराधिकारियों के लिए प्रचुर पूँजी छोड़ मरना भी ऐसा ही है, जिससे उनकी हानि ही होती है । बिना परिश्रम के जो धन उपलब्ध होता है, उसका सदुपयोग नहीं बन पाता । दुर्व्यसनों में उसकी समाप्ति होती है । अपनी मेहनत का कमाया हुआ पैसा ही उपयोगी कामों में खर्च हो सकता है, क्योंकि उसके सम्बन्ध में जानकारी रहती है कि इसे कितनी मेहनत से कमाया गया है ? जिसे कमाने में अपनी मेहनत नहीं लगी उसके बेहिसाब खर्च करने में भी झिझक नहीं होती । इस प्रकार हराम की कमाई देने वाले की संकीर्णता का तो विज्ञापन करती ही है, साथ ही ग्रहणकर्ता के भी हित में नहीं बैठती । जेबकट, जुआरी, सट्टेबाज कई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बार ढेरों पैसा कमा लेते हैं, पर उसे उन्हें बर्बाद करने में भी देर नहीं लगती । ऐसे लोगों के साथ में पैसा टिकता ही नहीं । वे कूड़े की तरह मिली दौलत को फुलझड़ी की तरह जलाने में हिचकते नहीं । इस प्रकार इसे धन का दुरुपयोग ही कहना चाहिए ।

संकट ग्रस्तों, अभाव ग्रस्तों की सहायता में अपनी कमाई का एक अंश लगाते रहना आवश्यक है । इससे लोग संकट से उबरते हैं और अभाव ग्रस्तता से त्राण पाते हैं । सत्प्रवृत्ति संवर्धन कर सकने वाले अनेक कार्य ऐसे हैं, जिनका संस्थापन, संचालन बन पड़ने से अनेकों का अनेक प्रकार हित-साधन होता है । जहाँ संकटापन स्थिति हो वहाँ दान भी दिया जा सकता है, पर अधिक प्रयास इस बात का होना चाहिए कि अधिकों को अधिक काम मिले और इसके लिए जहाँ पूँजी कम पड़ती हो उसकी आवश्यकता पूरी हो । यह उधार देने और उस कमाई से अपनी पूँजी किस्तों में वापस लेने की व्यवस्था बना देना भी एक प्रकार से पूँजी निवेश है, जिसके पीछे यदि बड़ी ब्याज कमाने का प्रलोभन हो, तो उसे भी दान या सहायता ही कहा जा सकता है । बचत का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय और उस आधार पर जो संचय बन पड़े, उसे रोक रखने के साथ ऐसे लोगों को ऐसे कामों के लिए उपलब्ध कराया जाय, जिससे वे अपनी आजीविका का चक्र घुमाने के साथ-साथ दी हुई पूँजी को भी धीरे-धीरे वापस लौटाने की सदाशयता का भी परिचय देते रहें।

दान हो या उधार—सहयोग देकर दूसरों को अपने पैरों खड़ा होने की स्थिति तक पहुँचाना निश्चय ही पुण्य-परमार्थ है, पर उसको संचयशील, मितव्ययी एवं उदार चेता ही कर सकते हैं । यह बन तभी पड़ सकता है, जब पूँजी का महत्त्व और उसके सदुपयोग का प्रतिफल सही तरह समझा जाय । इसी को सच्चा अपरिग्रह समझा जाना चाहिए ।

शुचिता और स्वच्छता

छोटे बच्चे को माता असीम प्यार करती है; पर जब वह टट्टी में सना होता है; किन्तु गोदी में चढ़ने के लिए रोता मचलता है, तब भी माता उसकी इच्छा पूरी नहीं करती, दूर ही रखती है । रोने की परवाह नहीं करती । जब नहला-धुला लेती है, गन्दे कपड़े बदल देती है, तब गोदी में उठाती है और पूरा प्यार करती है । भगवान की नीति भी ऐसी है । वे अपने किसी बच्चे को मलीन नहीं देखना चाहते । उसे स्वच्छ सुन्दर स्थिति में ही देखना चाहते हैं । कीचड़ में सने बच्चे को गोदी में उठाने से ही उनके अपने कपड़े खराब होते हैं । उन पर भी लांछन लगता है । ढीठ उजड्ड बच्चों की हरकतों का दाग उनके अभिभावकों पर भी लगता है, साथ ही सुशील बालकों की शिष्टता के लिए उनके माता-पिता भी श्रेयाधिकारी बनते हैं । भगवान सबका माता-पिता है । उसके ज्येष्ठ पुत्र मनुष्य की भली-बुरी हरकतों से उसके सृजेता को भी यश-अपयश का भागीदार बनना पड़ता है अथवा यह कहा जा सकता है, इतने महान् सृजेता की कलाकृति होने पर भी यह अभागा इस गई गुजरी स्थिति में पड़ा हुआ है ।

स्वच्छता, सभ्यता का प्रथम चरण है । मैला-कुचैला शरीर और गन्दे वस्त्र धारण करके कोई व्यक्ति जहाँ कहीं भी जाता है तिरस्कृत उपेक्षित रहता है । ऐसा उसकी असमर्थता के कारण नहीं, उसकी असभ्यता के कारण होता है । सभ्यता के प्रथम चरण में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम मनुष्य को स्वच्छता का पाठ पढ़ना पड़ता है । निरक्षरता सहन हो सकती है; क्योंकि उसका कारण बहुत करके परिस्थितियों का अनुकूल न होना भी हो सकता है; किन्तु अस्वच्छता तो किसी के आलसी-प्रमादी होने का प्रत्यक्ष चिह्न है । जागरूक स्फूर्तिवान एवं अपनी गरिमा का तनिक भी ध्यान रखने वाले सर्वप्रथम यह प्रयास करते हैं कि मलीनता से नाता तोड़ें और स्वच्छता अपनाएँ । यह कार्य दृष्टिकोण परिष्कृत रखने और सफाई के लिए थोड़ा प्रयत्न करने भर से पानी साबुन जैसे थोड़े से साधनों से भी पूरा हो जाता है ।

मलीनता का जमते रहना प्रकृति क्रम है । शरीर से पसीना निकलता है, मुख से गन्दी वायु, आँखों से कीचड़, कान में मोम, दाँतों पर मैल, मलमूत्र छिद्रों से गन्दगी—इन सब को नित्य ही बार-बार स्वच्छ करना पड़ता है । कपड़ों पर खूँटी पर टँगे-टँगे धूल जमा हो जाती है । आंगन में, कमरे में हवा के साथ उड़कर कचरा आ जाता है । बर्तन पीले पड़ जाते हैं घड़े का पानी बेस्वाद हो जाता है । जंगलों में पत्ते, काँटे,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टूट-टूट कर सब ओर बिखर जाते हैं । इन सबको हटाकर पगडंडी बनानी पड़ती है और उसकी भी बार-बार मरम्मत करनी पड़ती है । यदि यह सब न कराया जाय, तो गन्दगी के अवरोध खड़े हो जायें । पशु जहाँ बँधते हैं, वहाँ गोबर के ढेर लग जायें । म्युनिसिपैलटियों के सफाई कर्मचारी इतनी बड़ी संख्या में लगते हैं, तब कहीं दैनिक कचरे का निपटारा हो पाता है । यदि सफाई का काम दो-चार दिन के लिए भी रुक जाय, तो मैल के ढेर लग जायें और बीमारी फैलने लग जाय । इसलिए सफाई उन दैनिक कृत्यों में शामिल की गई है, जिसमें कभी नागा नहीं हो सकती । अवरोध उत्पन्न होने पर उसकी विभीषिका प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगती है । गन्दगी की सहोदर बहिनें बीमारियाँ हैं । भीतर या बाहर जहाँ भी कचरा जमा होता है, तुरन्त बीमारी के लक्षण उभरने लगते हैं ।

अन्य कामों की उपेक्षा कुछ समय के लिए सहन भी की जा सकती है; किन्तु गन्दगी का संगठन भी ध्यान से नहीं उतारा जा सकता है । प्रीतिभोज होने से पहले यह प्रबन्ध किया जाता है कि झूठे बर्तनों की सफाई का क्या प्रबन्ध किया जायेगा । खेत बोने से पहले जमीन को जोत कर कंकड़-पत्थरों से, झाड़-झंखाड़ों से रहित किया जाता है । रंगरेज कपड़े रंगने से पूर्व उनकी धुलाई की व्यवस्था करता है । डॉक्टर इन्जेक्शन लगाने के पूर्व सुई को गरम पानी में खौलता है । रसोई घर में वस्तुओं तथा बर्तनों की सफाई पर पूरा ध्यान रखना होता है ।

अपने चारों ओर ऐसा वातावरण घिरा रहता है, जिसमें दृश्यमान और अदृश्य गन्दगी का बाहुल्य छाया रहता है । असावधानी जहाँ भी जरा भी पनपी कि वहीं गन्दगी का पदार्पण बढ़ने लगेगा । इसे रोका नहीं जा सकता है । किया इतना जा सकता है कि सम्भावना के प्रति सतर्कता बरती और रोकथाम की चेष्टा की जाय । यदि कहीं से गन्दगी का प्रवेश होने लगे, तो उसका निराकरण फिर कभी के लिए न छोड़ा जाय, वरन् तुरन्त ही किया जाय । सुन्दरता सुसज्जा के लिए अन्य साधन न हों, तो भी हर्ज नहीं, स्वच्छता अपने आप में सुरुचि का इजहार करती है और सुन्दर भी सहज ही लगती है ।

यह दृश्यमान गन्दगी के निवारण की बात हुई । इसका दूसरा पथ है—मानसिक मलीनता, जो गुण, कर्म, स्वभाव में निकृष्टता का समावेश होने से बढ़ती है । संकीर्ण स्वार्थपरता दुष्प्रवृत्तियों की जननी है । लालची, मोहग्रस्त और अहंकारी अपने इन हविशों को पूरा करने में सीधे रास्ते चलकर पूरा कर सकने में समर्थ नहीं हो पाते । उनके लिए छल प्रपंच करने पड़ते हैं । नासमझों को फँसाने के लिए जाल बिछाने पड़ते हैं । आक्रमण, अपहरण जैसे कुकर्म करने के लिए कदम बढ़ाने पड़ते हैं । वे कितनी मात्रा में सफल हुए, यह तो चतुरता और अवसर पर निर्भर है, पर प्रवृत्तियों का उद्भव जिस मस्तिष्क से हुआ है, उसमें तो अचिन्त्य चिन्तन का विषैला धुआँ भयंकर घुटन उत्पन्न करने लगता है । इससे वह व्यक्ति स्वयं तो उद्विग्न रहता ही है और अपने समीपवर्ती क्षेत्र में भी कलह कोहराम का वातावरण बनाने लगता है । बुराइयाँ छूत की बीमारी की तरह एक से दूसरे को लगती हैं और फिर वह विषबेल आगे-आगे ही बढ़ती जाती है।

पौधों को बढ़ने और फलने-फूलने की स्थिति तभी उपलब्ध होती है, जब उन्हें खाद पानी समुचित मात्रा में मिलता रहे । व्यक्तित्व के विकास के लिए भी स्वच्छता और शुचिता की आवश्यकता है । बाह्य क्षेत्र की स्वच्छता और अन्तरंग की समुचित शुचिता । शुचिता को पवित्रता भी कहते हैं । दोनों के समन्वय को शौच कहा गया है । आत्मिक प्रगति के आकांक्षियों को इन दोनों को ही समुचित मात्रा में संजोना पड़ता है ।

पूजा-अर्चना के समय शरीर, वस्त्र, आसन, पूजा-उपकरण आदि सभी सम्बद्ध वस्तुओं को साफ-सुथरी स्थिति में प्रयोग करना पड़ता है । इसी प्रकार मन और अन्तःकरण से जिस ज्ञान, कर्म और उपासना के लिए मानस बनाना पड़ता है, उसके लिए मनोभूमि को निर्विकार बनाने की आवश्यकता पड़ती है । यदि कुविचार और दुर्भाव मन में भरे पड़े हैं, तो उस सड़ी गंदगी में न तो भक्ति भावना के पैर जम सकते हैं और न भगवान के अवतरण की किसी कृपा-किरण का आलोक उदय हुआ परिलक्षित हो सकता है । जिस बर्तन में सड़ी कीचड़ भरी है, उसे खाली किए बिना, साफ किए बिना किसी शुद्ध वस्तु को भरा नहीं जा सकता । इसी प्रकार मलीनता भरे अन्तःकरण में देवत्व का प्रवेश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाना और स्थिर रहना सम्भव नहीं हो सकता । बाह्य क्षेत्र की गन्दगी से मन की अप्रसन्नता बढ़ती है और दर्शकों के मन में घृणा उपजती है । इसी प्रकार भीतरी गन्दगी किसी के छिपाये नहीं छिपती और लोगों के मनों की गहराई तक पहुँच कर अपनी वास्तविकता प्रकट करती है और दूर रहकर अपना बचाव करने का संकेत करती है । जिन्हें दूरदर्शिता प्राप्त है, उन्हें वस्तुस्थिति ताड़ने में देर नहीं लगती और वे कषाय-कल्मषों से भरे व्यक्तित्व की दुर्गन्ध पाकर अलग रहने तथा दूर हटने लगते हैं । ऐसा व्यक्ति अविश्वासी बनता है और किसी का स्नेह भाजन नहीं बनता; न उसके सच्चे मित्र होते हैं और न सच्चे सहयोगी । एकाकी रहने वाला सदा नीरसता अनुभव करता रहता है । अकेलापन एक गहरा अन्धकार है, जिसमें अपने आप के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं ।

आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक चरण दो माने गए हैं—बहिरंग स्वच्छता और अन्तरंग शुचिता । इन्हें अपनाये बिना प्रगति की मंजिल रुकी ही रह जाती है ।

असन्तोष की अवांछनीय मनःस्थिति

सन्तोष को आध्यात्मिक सद्गुणों में महत्त्वपूर्ण माना गया है । "सन्तोषी सर्वदा सुखी" की उक्ति में यह रहस्य समाहित है कि असन्तोषी को सदा दुःख दरिद्र में घिरा रहना पड़ता है । जबकि सन्तोषी को किसी बात की कमी अनुभव नहीं होती और न वह दरिद्र अभावग्रस्तों की तरह बेचैन फिरता है ।

सन्तोष से अभिप्राय सन्तुलन से है । मन को असन्तुलित बनाने में यों आवेशों को प्रमुख माना जाता है, पर वे देर तक ठहरते नहीं । दूध सदा उफनता नहीं रहता । उसकी एक तरंग आती है और जितना भी दूध को पतीली से बाहर निकाल सकती है निकाल देती है । प्रेम और द्वेष के दोनों ही आवेश ऐसे हैं जो समय की गति के साथ ढीले पड़ने लगते हैं । उनमें स्थायित्व रहता तो मित्र सम्बन्धियों का बिछोह होने पर उस उद्विग्नता से घिरे रहकर लोग दम तोड़ देते इसी प्रकार मिलन की खुशी भी देर तक नहीं टिकती । विवाह के दिन जिस नये जोड़े में जो उत्साह होता है प्रेम उफन पड़ता है वह कुछ दिन के बाद सामान्य पति-पत्नी के रूप में धरातल पर आ जाता है । इस प्रकार वैर विरोध भी कालान्तर में ढीला पड़ता जाता है । घनिष्ठ मित्रों के दूर चले जाने पर वह मैत्री भी सामान्य जान-पहचान जैसी रह जाती है । उद्विग्नता प्रिय या अप्रिय किसी भी स्तर की हो, समय के झोंके लगने से ठण्डी हो जाती है । ज्वार-भाटे की तरह, रात-दिन की तरह प्रिय, अप्रिय प्रसंगों से उत्पन्न होने वाले भले-बुरे उभार समयानुसार उबलते और शान्त होते रहते हैं, पर असन्तोष एक ऐसा रोग है जो हर घड़ी, हर स्थिति में एक-सा बना रहता है और मनुष्य को चैन से नहीं बैठने देता ।

असन्तोष का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि वह अवास्तविकता से जुड़ी हुई एक कल्पित भ्रान्ति है । जिसका आदी बन जाने पर मस्तिष्क एक खास ढंग से सोचते रहने का आदी बन जाता है । वह बहुत चाहता है । बहुत बड़ा बनना चाहता है । बहुतों पर स्वामित्व जमाना चाहता है । प्रशंसा के पुल बाँधने और उस पर दौड़ लगाते रहने की ललक निरन्तर उस पर सवार रहती है । यह तृष्णा ही परिपक्व होकर ऐसे असन्तोष का रूप धारण कर लेती है जिसे सहज छुड़ाया जाना कठिन पड़ता है ।

मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ बहुत सीमित हैं । पेट भरने को रोटी, तन ढकने को कपड़ा और रहने को छाया का प्रबन्ध कर लेना इतना कठिन नहीं है, जिसके लिए दिन-रात लगा रहना पड़े और फिर भी पूर्ति न हो पाये । वस्तुतः यह सारा प्रबन्ध कुछ ही घण्टे परिश्रम कर लेने पर, बदले में इतना उपार्जन हो सकता है जिससे निर्वाह का ढर्रा सहज की घूमता रह सके । सम्बन्धित परिवार को भी यदि स्वावलम्बी सुसंस्कारी बनने की आरम्भ से ही प्रेरणा दी जाती रहे तो वे भी कुछ ही समय में अपने पैरों पर खड़े रहकर जीवन की नाव को अपने बलबूते खींच सकने में समर्थ हो जाते हैं । सन्तानोत्पादन के कुचक्र में जानबूझकर पैर न फँसाये जायें तो पति-पत्नी का जीवन एक-दूसरे की सेवा सहायता करते हुए बड़ी प्रसन्नता और सुविधा के साथ बीत सकता है । आफत तब आती है, जब बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिए आवश्यक धन, समय और वातावरण न होने पर भी आँखें बन्द करके प्रजनन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में प्रवृत्त रहा जाता है और इतना भार सिर पर चढ़ा लिया जाता है जिसे बेढंगे तरीके से ढोते रहने में ही सारी जिन्दगी बीत जाती है । फिर भी अपने को बच्चों से और बच्चों को अपने से असन्तोष ही बना रहता है । कर्तव्य की उपेक्षा और अधिकार की प्रबलता होने पर सर्वत्र कलह मचता है । फिर परिवार क्षेत्र ही उससे अछूता कैसे रह सकता है । विशेषतया वे परिवार जो दुर्गुण से घिरे हैं, जिनमें दृष्टिकोण को उच्चस्तरीय रखने की व्यावहारिक शिक्षा नहीं मिली है। अधिकांश परिवारों की स्थिति ऐसी होती है जिनमें मनोमालिन्य छाया रहता है । शिकायतों का सिलसिला आता रहता है । कलह, विग्रह और मनोमालिन्य बना रहता है । इस नरक को जानबूझ कर अपने चारों ओर लपेट लेने में मनुष्य की मूर्खता ही निमित्त कारण है । अन्यथा परिवार को ईश्वरीय उद्योग समझकर माली की तरह उसे कर्तव्य भाव से सींचा जाय, छोटे परिवार को अपना मानने की अपेक्षा विश्व भर, को परिवार मानकर चला जाय तो सेवा साधना तो बन ही पड़ती है साथ ही प्रसन्नता भी कम नहीं रहती ।

ठाठ-बाट बनाने में, लोगों की आँखों में धूल झोंककर अपना बड़प्पन जताने में कितने खर्चीले आडम्बर खड़े करने पड़ते हैं । उनके सरंजाम जुटाने में ही मनुष्य की कमर टूटने लगती है । साथ ही यह भय भी बना रहता है कि योग्यता से अधिक जितना श्रेय समेटा गया है उसकी पोल न खुल जाय और बड़प्पन पाने के बदले अपमान, तिरस्कार, उपहास न सहना पड़े । फिर उस बड़प्पन से क्या लाभ जो बिजली की तरह क्षण भर कौंध कर दूसरे ही क्षण विस्मृति के गर्त में चला जाय । यदि "सादा जीवन उच्च विचार" की नीति बनाई जाय, औसत नागरिक स्तर का रहन-सहन अपनाया जाय तो उस स्वाभाविकता की स्थिति में सदा सन्तोष बना रह सकता है । निर्वाह भी ठीक प्रकार हो सकता है और आजीविका उपार्जन के उपरान्त बचे हुए समय में सद्ज्ञान, संकलन एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन में लगकर विपुल प्रसन्नता अर्जित करते रहा जा सकता है । भौतिक दृष्टि से सीमित और आत्मिक दृष्टि से असीम बनने की आकांक्षा ऐसी है जिसे सहज पूरा किया जा सकता है और सन्तोषपूर्वक अपना समय बिताया जा सकता है ।

सन्तोषी बनने का अर्थ अनुत्पादक या आलसी बन बैठना नहीं है । पुरुषार्थ तो हर क्षेत्र में किया जाना चाहिए । अर्थ उपार्जन के लिए भी किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि सादगी से खर्च चलाने के उपरान्त जो बचत हो उसका उपयोग समाज से पिछड़ापन दूर करने एवं सत्प्रवृत्तियों को सुविस्तृत करने के निमित्त ही लगाया जाय । ऐसी दशा में वह अर्थ उपार्जन भी पुण्य परमार्थ का प्रतीत ही बन जाता है । उस स्थिति में जितनी कमाई बन पड़े उतने से ही सन्तोष बना रह सकता है ।

असन्तोष अधिकाधिक परमार्थ करने, व्यक्तित्व को अधिकाधिक सद्गुणों से सम्पन्न करने के लिए बना रहे तो हर्ज नहीं । वैसी आकांक्षा तो आत्मिक प्रगति की निशानी है । यह आत्मिक भूख जब विकृत होती है तो वासना, तृष्णा, अहंता, ममता के रूप में फूटती है और जल्दी से बहुत कुछ समेट लेने की आतुरता में कुकर्म करने के लिए प्रेरणा भरती है । उसी व्याकुलता में कस्तूरी के हिरन जैसी मृगतृष्णा में प्राणी भटकता है और समुद्र जैसी खाई पाटने में असमर्थ रहने पर सदा ऐसी बेचैनी में फँसा रहता है, जो जलती आग की तरह होती है उसमें जितना ईंधन डाला जाय उतनी ही ज्वलन्त होती है ।

वैभव बटोरने की ललक आमतौर से मनुष्य को अधिक असन्तुष्ट रखती है । उसी की पूर्ति कठिन पड़ती है । सामान्यतया निर्वाह में कमी पड़ने पर दरिद्रता-जन्य असन्तोष पाया जाता है । इसे पुरुषार्थ जगाकर सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है । सृष्टि के सभी प्राणी प्रकृति प्रेरणा के अनुरूप सबेरे से शाम तक शरीर रक्षा के लिए पुरुषार्थ करते रहते हैं । वे भूखे उठते तो हैं, पर भूखे सोते नहीं । उनकी अपेक्षा मनुष्य कहीं अधिक साधन सम्पन्न, शरीर बुद्धिबल का स्वामी है । वह अपनी उचित आवश्यकताओं को पूरा न कर सके ऐसा कोई कारण नहीं, जिसके कारण मनुष्य को अभावग्रस्त रहना पड़े । इस मार्ग में आलस्य और प्रमाद भी दो बड़ी बाधाएँ हैं, जिन्हें चाहे मनुष्य स्वयं सरलतापूर्वक दूर कर सकता है ।

रोगी, अपंग, बालक, वृद्ध आदि को अवश्य अधिक असुविधा का सामना करना पड़ता है, पर ऐसे लोग कम ही होते हैं और वे चाहें तो सहनशीलता अपनाकर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने से अधिक दुःखियों के साथ अपनी तुलना करने, उदार चेताओं का सहयोग अपनी विनम्रता एवं मिठास के द्वारा आकर्षित करके उस स्थिति में भी लगभग वैसी मनःस्थिति में रह सकते हैं जिसे सन्तोष से प्रभावित कहा जा सके ।

तप साधना का परम पुरुषार्थ

कच्ची मिट्टी के बने घड़े में पानी भर देने पर वह कुछ ही घंटों में गीला होकर बिखर जाता है, पर यदि उसे आँवे में पका लिया जाय, तो मजबूत होकर मुद्दतों काम देता है । यह तपाने का चमत्कार है । धातुओं का शोधन भी इसी प्रकार होता है । वे जमीन से मिट्टी मिली हुई स्थिति में निकलती हैं । उस स्थिति में वे किसी काम में लाये जाने योग्य नहीं होतीं । उन्हें भट्टी में डालकर पिघलाया जाता है, तब शुद्ध धातु सामने आ जाती है । कचरा जलकर अलग हो जाता है । यदि इस प्रक्रिया से डरा या बचा जाय, तो धातुओं का विशालकाय परिकर निकम्मा ही पड़ा रहेगा और उनसे कोई उपयोगी उपकरण बन न सकेगा ।

कच्ची मिट्टी से बने मकान बरसात आने पर घुल या ढह जाते हैं, पर यदि उन ईंटों को पकाकर इमारत बनाई जाय तो वह मुद्दतों यथावत् खड़ी रहती है । व्यंजन, मिष्ठान्न चूल्हे की अग्नि पर चढ़ने के बाद ही बनते हैं । आयुर्वेदीय औषधियों में रस, भस्में अग्नि संस्कार से ही बनते हैं । शोधन, जारण, मारण, अर्क, अवलेह आदि का निर्माण भी अग्नि सान्निध्य में ही होता है ।

सूर्य ग्रीष्म में तपता है, तो समुद्र से बादल बनते हैं और घनघोर घटा बनकर भूमि को मखमली हरीतिमा से भरते हैं । तपस्वी योग साधते हैं और उस तितीक्षा के आधार पर प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों को जागृत करते हैं । गुरुकुलों में छात्रों को कठोर जीवन की संयम साधना कराई जाती है । इसी के बलबूते वे प्रचंड पराक्रम करने में समर्थ नर-रत्न बनते हैं ।

तप की महिमा अपार है । कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास जब महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है, तो तपस्या कहते हैं । यह भौतिक प्रयोजनों के लिए भी की जा सकती है और अध्यात्म प्रयोजनों के लिए भी । जो वृक्ष कठोर परिस्थितियों में उगते और बढ़ते हैं, वे पर्वत शिखरों पर भी हरियाते हैं । आँधी-तूफानों से टकराते हैं, किन्तु बगीचों की शोभा बढ़ाने वाले फूल तनिक-सी सर्दी-गर्मी की प्रतिकूलता आते ही छुई-मुई की तरह कुम्हलाते हैं । अमीरों की सुविधाएँ उन्हें निष्क्रिय दुर्व्यसनी बनाती हैं, पर जो खदानें खोदते हैं, उन श्रमिकों की कलाइयाँ मजबूत और छातियाँ तनी रहती हैं । कठिनाइयों में पलने वाले बड़े पराक्रम करते देखे जाते हैं, पर जिनका पालन फूलों के पालने में हुआ है, उन्हें जमीन पर पैर रखते चुभन होती है । कठिनाइयों का सामना करने का तो उनमें दम ही नहीं होता, हर मौसम उनके प्रतिकूल पड़ता है । मौसमी बीमारियाँ एक प्रकार से उन्हें अपना स्थायी यजमान बना लेती हैं । श्रम से दूर रहने वाली महिलाओं को प्रसव के समय प्राण लेवा कष्ट सहना पड़ता है । कई बार तो वे इस प्रसंग में अपने प्राण तक गँवा बैठती हैं, जब कि गाड़िया लुहारों की लोह पीटने वाली महिलाएँ इस प्रकार जननी बन जाती हैं, मानों कुछ असाधारण जैसा हुआ ही न हो । दो चार दिन भी इस बड़े काम से छुट्टी तक नहीं लेतीं । तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि निरोगता और दीर्घ-जीवन की कुँजी श्रमशीलता के साथ जुड़ी हुई है । वनवासी कोल-भील तीर से चीते को गिरा देते हैं, जब कि उन्हें न तो पौष्टिक भोजन मिलता है और न सुविधा भरे साधनों को वे उपलब्ध कर पाते हैं ।

प्रगति पथ पर अग्रसर होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने ढंग का कठोर श्रम करना पड़ता है । पहलवान, विद्वान, वैज्ञानिक, नायक, कलाकार अनायास ही अपने विषयों में प्रवीण नहीं हो जाते, उन्हें कृषक-मजदूरों की तरह व्यस्त रहना और कठोर श्रम करना पड़ता है ।

प्रतिकूलताएँ अनायास ही नहीं हट जातीं, उनसे संघर्ष करना पड़ता है । सैनिकों को मोर्चा जीतने में कठिनाई के साथ जूझने और प्रचण्ड साहस का परिचय देना पड़ता है । आत्मशोधन के लिए अभ्यस्त अनुपयुक्त आदतों को उखाड़ फेंकने में निरत होना पड़ता है । यह प्रसंग धोबी के द्वारा कपड़े धोये जाने के सदृश्य है । मैला कपड़ा जब गरम भट्टी में उबलता है और डंडे की पिटाई सहता है, तभी उसे भकाभक चमकने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अवसर मिलता है । मात्र पानी में निचोड़ देने पर सफाई कहाँ आती है । बर्तनों पर पत्थरों की घिसाई से ही चमक आती है ।

अनीति से जूझने वालों को उनके प्रहार सहने पड़ते हैं, जिनके स्वार्थों को चोट पहुँचती है । सुधारकों में से अनेकों को शहीद होना पड़ा । देव-दानव युद्ध में प्रथम आक्रमण करने वाले दैत्य जीतते और देव हारते रहे हैं, क्षति देवताओं को ही अधिक उठानी पड़ती रही है, भले ही अन्त में सत्य की विजय होने वाली उक्ति सार्थक हुई हो और देवत्व को जीतने का श्रेय मिला हो ।

आक्रमण से भयभीत होकर यदि देवताओं ने पीठ दिखाई होती तो फिर उनका कोई ठिकाना न रहता । सदा सर्वदा के लिए पराजित होकर रहना पड़ता ।

भ्रूण को उदरदरी से बाहर निकलने के समय प्रचण्ड पुरुषार्थ करना पड़ता है । उस समय का दृश्य खून-खच्चर से भरा होता है । इसके बिना स्वच्छ हवा और उन्मुक्त आकाश के नीचे विकसित होने का सुयोग न मिलता भ्रूण की स्थिति में पड़ा-पड़ा ही सड़ जाता । मुर्गी के अण्डों में बन्द-चूजे थोड़ी सामर्थ्य अर्जित करते हैं तो बाहर निकलने के लिए हलचल मचाना आरम्भ करते हैं । ऊपर के कठोर कलेवर में इसी आधार पर दरार पड़ती है और चूजा निकल कर बाहर आता है, अन्य जीवधारियों की तरह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय देता है । यह संघर्ष अध्यात्म की भाषा में तप कहा जाता है । तप का अर्थ है, तपना । तपने पर हर वस्तु निखरती है । सोने को तपाये जाने पर ही उसके खरे-खोटे होने की परख होती है । चाकू को पत्थर की चरखी पर घिसते हैं, तभी उसकी तेज धार निखरती है ।

कीर्तिमान स्थापित करने वाले पर्वतारोही, घुड़सवार जान की बाजी लगाते हुए कदम बढ़ाते हैं । प्रतियोगिता जीतने वाले खिलाड़ी भी अपने पौरुष का चरम परिचय देते हैं । विजयश्री का वरण कर सकना उन्हीं के लिए सम्भव हुआ है, जिन्होंने अपनी वरिष्ठता का परिचय दिया है । डरते रहने वाले, कायरता अपनाने वाले भयभीत लोग अपेक्षाकृत अधिक हानि उठाते हैं । आक्रमणकारी उनकी मनःस्थिति ताड़कर अधिक निश्चिन्ततापूर्वक अधिक गहरा आक्रमण करते हैं । तनकर खड़े हो जाने वाले रीछ-वानरों ने लंका के दुर्दान्त दैत्यों को परास्त करके रख दिया था ।

यमराज ने एक बार मौत को एक क्षेत्र से पाँच हजार आदमी मार लाने के लिए भेजा । वह जब झोली भरकर लायी तो गिनने पर वे पन्द्रह हजार निकले । जवाब-तलब हुआ कि इतने अधिक क्यों ? मौत ने सबूत समेत सिद्ध किया कि बीमारी से तो पाँच हजार ही मरे हैं । शेष तो डर के मारे बिना मौत मर गए और परलोक आने वाली भीड़ के साथ जुड़ गए । कहा जाता है कि साहसी जीवन में एक बार मरता है, पर कायर तो भयभीत रहकर पग-पग पर, पल-पल पर मरता रहता है ।

हीरा एक प्रकार से कोयला ही है । खदान में जिसे अधिक तापमान सहना पड़ता है, वही कोयला हीरा बन जाता है । सच्चाई और बहादुरी की यथार्थता जाँचने की एक ही कसौटी है कि प्रलोभन और दबाव के आगे झुका गया या नहीं । जो तनकर खड़ा हो जाता है, उसकी हिम्मत देखकर मुसीबत भी डर कर वापस लौट जाती है ।

योगीजन तपश्चर्या के बल पर ही ऋद्धि-सिद्धियों का वरण करते हैं । सप्त ऋषि इतने ऊँचे पद पर इसी आधार पर पहुँचे । भगीरथ ने गंगा को भूमि पर लाने में और पार्वती ने शिव से विवाह करने में सफलता पायी । देवताओं को तपस्वी दधीचि की हड्डियाँ माँगकर इन्द्रवज्र बनाना पड़ा । तपस्वी देवताओं से बड़े होते हैं, वरदान के लिए उन्हें ही स्वर्ग से धरती पर आना पड़ता है ।

विशेष प्रयोजन के लिए विशिष्ट व्यक्ति, विशेष प्रकार की तप-साधना करते हैं, पर सर्वसाधारण के लिए उसका सरल उपाय एक ही है कि उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संयम साधना एवं परमार्थ प्रयोजनों के लिए कष्ट सहने, पुरुषार्थ करने के लिए समग्र साहसिकता के साथ प्रयत्नशील रहें, अनीति के साथ संघर्ष में आपत्ति सहने के लिए भी ।

स्वाध्याय में प्रमाद न करें

शास्त्र की तीन प्रमुख अनुज्ञाएँ हैं—(१) सत्यं वद, (२) धर्मम् चर, (३) स्वाध्यायानमा प्रमदः । अर्थात् सत्य बोलें, धर्म को धारण करें और स्वाध्याय में प्रमाद न करें । इस निर्धारण के अनुसार सत्य और धर्म के ही समकक्ष स्वाध्याय को भी प्रमुखता दी गई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक दूसरी गणना पवित्रता क्रम की है । मन, वचन और कर्म तीनों को अधिकाधिक पवित्र रखा जाना चाहिए । इस निर्धारण में मन की पवित्रता को प्रमुख माना गया है । इसके बाद वचन और कर्म है । मन की पवित्रता के लिए स्वाध्याय, वचन की पवित्रता सत्य से और कर्म का वर्चस्व धर्म निखरता है ।

सत्य और धर्म की महत्ता के सम्बन्ध में सभी जानते हैं । भले ही उनका परिपालन न करते हों । किन्तु स्वाध्याय के सम्बन्ध में कम लोग ही यह निर्णय करते हैं कि उसकी महत्ता भी सत्य और धर्म के परिपालन से किसी प्रकार कम नहीं है । उसकी उपेक्षा करने पर इतनी ही बड़ी हानि होती है, जितनी कि सत्य और धर्म के सम्बन्ध में उदासीन रहने पर ।

जिन दिनों इस धरती पर देव मानवों का बाहुल्य था, उन दिनों सत्य और धर्म का तो ध्यान रखा ही जाता था, पर स्वाध्याय को भी कम महत्त्व का नहीं माना जाता था । उनके लिए प्रत्येक विचारशील अपनी तत्परता बनाये रहता था ।

स्वाध्याय का शब्दार्थ है अपने आप का अध्ययन । यह कार्य शिक्षितों के लिए शास्त्रों के नियमित अध्ययन द्वारा सम्पन्न होता था । शास्त्र उन ग्रन्थों को कहते हैं जो आत्म-सत्ता और उसकी महत्ता का बोध कराये । कर्तव्य पथ की जानकारी एवं प्रेरणा प्रदान करें । शास्त्रों के नाम पर आजकल उन कथा-पुराणों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनमें किसी काल की घटनाओं का विवरण है अथवा मिथकों का समुच्चय भरा पड़ा है । यों प्रकारान्तर से किसी प्रकार उनकी व्याख्या विवेचना करते हुए ही आत्म-विकास के सन्दर्भ में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, पर वह टेढ़ा मार्ग है । हर किसी के समझने-समझाने का नहीं । कोई विलक्षण बुद्धि वाले ही उस विशाल समुद्र को मथकर रत्नों को निकाल सकते हैं और जिज्ञासुओं को ग्रहण करने योग्य सामग्री प्रदान कर सकते हैं ।

शास्त्र के अर्थ में श्रुति-स्मृति, उपनिषद्, आरण्यक जैसे तत्वज्ञान की विवेचना करने वाले ग्रन्थ ही मूल प्रयोजन की पूर्ति कर सकते हैं । उन्हीं के आधार पर स्वाध्याय से उस विस्मृति को स्मृति के रूप में परिणत किया जा सकता है जो आमतौर से उपेक्षित बनी रहती है । शरीर प्रत्यक्ष है । वही हमारे विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति करता है । इन्द्रिय सम्वेदनाओं के आधार पर रसास्वादन भी वही करता है । मानापमान, हानि-लाभ भी उसी के अनुभव में आते हैं । रूप-सौन्दर्य और शृंगार सज्जा भी उसी की होती रहती है । नाम रूप भी उसी का देखने-सुनने को मिलता रहता है । इसलिए सामान्य स्तर की चेतना यही स्वीकार कर लेती है कि वह शरीर मात्र है । उसी की प्रसन्नता के लिए मर्यादाओं को तोड़ा भी जाता है और वर्जनाओं की अवहेलना भी होती रहती है । ऐसे अवसरों पर यह स्मरण ही नहीं रहता कि शरीर के पीछे कोई चेतन आत्मा भी है और उसकी भी कुछ आवश्यकताएँ हैं । उसे भी सन्तोष एवं उल्लास चाहिए । इस विस्मृति का परिणाम यह होता है कि आत्म-सत्ता शरीर तक ही सीमित परिलक्षित होने लगी है । उसी के निमित्त स्वार्थ साधन के छोटे-बड़े प्रयत्न चलते रहते हैं । समूची जीवनी शक्ति प्रायः उसी के लिए उत्सर्ग हो जाती है । यह एकांगी दृष्टिकोण आत्म-कल्याण के लिए, चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए भी कुछ करने के लिए है उसका स्मरण ही नहीं आने देता । यह एक बहुत बड़ा व्यवधान है जिसके कारण मनुष्य भटकाव में उलझा रहता है और अनर्थ करता, दुःख भोगता और भविष्य को अन्धकारमय बनाता रहता है । इस विडम्बना से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि स्वाध्याय के सहारे आत्मचेतना की सत्ता-महत्ता और उसके लिए प्रगति क्रम की समग्र जानकारी प्रतिदिन स्मृति पटल पर अंकित की जाती रहे । शरीर तो अपनी हलचलों और प्रत्यक्ष गतिविधियों के सहारे अपनी आवश्यकताएँ पूरी कराता रहता है पर आत्मा के लिए कोई ऐसा क्रियात्मक व्यवहार सामने नहीं रहता जिसके आधार पर आत्म-विस्मृति को सजीव स्मृति में बदला जा सके । यह कार्य स्वाध्याय द्वारा ही सम्पन्न होता है । इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं । मनुष्य की स्मृति क्षणिक है, वह घटनाक्रम बदलते ही विस्मृति में बदल जाती है । ऐसा आत्म-क्षेत्र में न होने पाये, इसलिए स्वाध्याय से हर दिन उसे सींचना और हरा रखना पड़ता है ।

आमतौर से शास्त्रों का पठन-पाठन ही स्वाध्याय में गिना जाता है, पर अब वह स्थिति नहीं रही जिसमें जीवन का सीमित और छोटा स्वरूप था और उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्याओं का समाधान श्रद्धालुजन शास्त्र वचनों के आधार पर पूरा कर लिया करते थे । अब चिन्तन का क्षेत्र पहले की अपेक्षा कहीं बड़ा हो गया है । विश्व के अनेकानेक दर्शनों को आपस में गुंथने और आदान-प्रदान करने का अवसर मिला है । तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण हर सन्दर्भ में माँगे जा रहे हैं । बढ़ते हुए भौतिकवाद की प्रतिक्रिया भी प्रत्यक्षवाद को सामने लायी है । ऐसी दशा में शास्त्र-वचन श्रद्धालुओं के ही काम के रह गये हैं । बुद्धिवादी उतने भर से सन्तुष्ट नहीं होते उनके लिए विशद् और सशक्त समाधान चाहिए । यह कार्य अपने युग के आत्म-चेतना पर गहरा प्रकाश डालने वाले मनीषियों ने किसी सीमा तक पूरा किया है । इसका आश्रय लिए बिना जिज्ञासा को तृप्ति मिलती नहीं । इसलिए आज के शास्त्र शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए उसमें वह सारा बौद्धिक प्रतिपादन सम्मिलित करना पड़ेगा, जो चेतना के लिए समाधान और मार्ग दर्शन प्रस्तुत करे । आत्म-क्षेत्र को तथ्यों के आधार पर विनिर्मित तत्व-ज्ञान का सहारा मिल सके । अब ऐसे ही साहित्य को स्वाध्याय प्रयोजनों के लिए चयन करना समीचीन होगा ।

एक और बड़ा प्रश्न है आकांक्षा का । संसार भर में प्रायः एक-चौथाई से भी कम संख्या में पढ़े-लिखे हैं, तीन चौथाई संख्या तो निरक्षरों की है । जो साक्षर नहीं हैं वे शास्त्र या साहित्य कैसे पढ़ें । यदि सुनने, सुनाने की बात सोची जाय तो ऐसा सत्संग भी कहाँ उपलब्ध है । जो सुनने वालों की मनोभूमि को देखते हुए आत्म-कल्याण के लिए आवश्यक दूरदर्शी, विवेकशीलता का पक्ष प्रस्तुत कर सके । सत्संग के नाम पर तो आजकल जहाँ-तहाँ मनोविनोद ही चलता रहता है । उसका श्रवण भ्रान्तियों को घटाना नहीं उल्टा बढ़ाना है । सो भी इस व्यस्तता के समय में दुर्लभ ही है । ऐसे ज्ञानी जन कहाँ हैं जो परमार्थ भावना से उच्चस्तरीय तत्व ज्ञान को सर्व-साधारण के लिए सुलभ बनाने मे नियमित रूप से अपना समय लगाते रहें ।

ऐसी दशा में स्वाध्याय की एकाकी आवश्यकता भावना और चिन्तन से पूरी हो सकती है । सुविधानुसार एकान्त में बैठकर एक चित्त से आत्म-स्थिति की समीक्षा की जा सकती है । आदर्शवाद की निर्धारणाओं में अपना जीवन क्रम कितना पीछे है । इन त्रुटियों को निष्पक्ष भाव से, पैनी दृष्टि से स्वयं खोज निकालना 'मनन' है । इस आत्म-समीक्षा के लिए हर कोई दिन भर में कोई न कोई समय निकाल ही सकता है । उन कमियों को खोज सकता है जो उसे उत्कृष्टता की दृष्टि से पिछड़ा हुआ बनाये हैं । त्रुटियाँ ध्यान में आती रहें और उन्हें सुधारने का अनवरत प्रयत्न चलता रहे तो मनन को सार्थक स्तर का समझा जा सकता है ।

मनन का दूसरा पक्ष है, चिन्तन । चिन्तन अर्थात् दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन के लिए उपाय, उपचारों का निर्धारण । योजना इस प्रकार की बनती रहनी चाहिए कि दिनचर्या में दोषों की कटौती और सद्गुणों की बढ़ोत्तरी का क्रम व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित होता रहे । नित्य राई-राई भर दोष घटाने और नित्य तिल-तिल भर सद्गुण बढ़ाने से भी एक समय ऐसा आ सकता है जिसमें शरीर की तरह आत्म-साधना भी भली प्रकार बन सके और स्वाध्याय का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सके ।

ईश्वर का विश्वास और आराधना

सृष्टिक्रम नियम व्यवस्था के साथ चल रहा है । ग्रह-तारक अपनी-अपनी धुरी और कक्षा पर बिना क्षण का भी आगा-पीछा किए जन्मजात रूप से चलते हैं । पानी और बीज अपने अनुरूप ही संतति उत्पन्न करते हैं । दिन-रात और ऋतु-परिवर्तन के क्रम में एक सुव्यवस्था बनी हुई है । इसी प्रकार कर्मफल भी एक दैवी व्यवस्था है । दूध को दही बनने में, बीज को पल्लवित होने में कुछ समय तो लग जाता है; किन्तु कृत्यों के अनुरूप भले-बुरे फलितार्थ निश्चित रूप से उपलब्ध होते रहते हैं । यदि ऐसा न होता, तो यहाँ जंगल का कानून चलता, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली नीति का बोलवाला रहता, पर ऐसा है नहीं । प्रयत्न करने वाले पहलवान, विद्वान, धनवान, कलाकार आदि बनते हैं । जो बोया जाता है, वही काटा भी जाता है । नशा पीने वाले उन्मत्त बनते हैं और विष खाने वाले प्राण गँवा बैठते हैं—यह कर्मफल की व्यवस्था सुनिश्चित का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किन्तु मनुष्य आमतौर से इसी प्रसंग में भारी भूल करता है । तत्काल फल मिलता रहा होता, तो झूठ बोलने वाले के मुँह में छाले पड़ जाते, चोरी करने वाले के हाथ को लकवा मार जाता, व्यभिचारी नपुंसक हो जाते तो न धर्म-मर्यादा की आवश्यकता पड़ती और न ईश्वर को साक्षी बनाने की । यह छूट मनुष्य को इसलिए मिली है, कि वह अपनी विवेक-बुद्धि से काम ले, अपनी गौरव-गरिमा को ध्यान में रखते हुए सदाशयता का परिचय दे और कुकर्मों से बचे, पर प्रमाद तो प्रमाद ठहरा । भुलक्कड़पन की आदत भी मनुष्य को कम हैरानी में नहीं डालती । दूसरों को नशेबाजी के दुष्परिणाम भुगतते देखते हुए भी मनुष्य उस खतरे पर ध्यान नहीं देता और देखा-देखी उसी कुटेव को अपनाने लगता है ।

आत्मिक विकास इस स्तर का न होने से एक भारी कमी रह जाती है कि उचित-अनुचित का भेदभाव भी न बन पड़े और जो मन आये, सो बिना आगा-पीछा सोचे करने लगे । स्वेच्छाचार ही उद्धत अहंकार की प्रतिकृति है । अनगढ़ व्यक्ति मर्यादाओं और वर्जनाओं की उपेक्षा करके स्वच्छन्दतापूर्ण संकीर्ण स्वार्थपरता से प्रेरित होकर वह करता रहता है, जो उसे नहीं करना चाहिए । यही कारण है कि प्रगति की समस्त सुविधाएँ और सम्भावनाएँ रहते हुए भी लोग उलझनों में उलझे और संकटों के दलदल में फँसे दिखाई पड़ते हैं । अन्य जीव चैन की जिन्दगी जी लेते हैं; पर मनुष्य को तो हर घड़ी विपन्न, उद्विग्न स्थिति में रहना पड़ता है ।

यह स्वेच्छानुसार कैसे रुके ? व्यक्ति शालीनता से अनुबन्धित कैसे रहे ? समाज में परस्पर सहयोग और सद्भाव का प्रचलन कैसे रहे ? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर मिलता है कि किसी नियामक सत्ता का अस्तित्व सच्चे मन से अनुभव करे । उसे व्यापक और सर्वदर्शी माने तथा उसकी न्याय-निष्ठा पर निश्चित विश्वास करे । इस भावना के साथ ईश्वर को मान्यता देना ही सच्ची आस्तिकता है ।

ईश्वर को मानते और पूजते तो असंख्यों हैं, पर उनकी मान्यता भ्रान्तियों से भरी होती है । फलतः उसका जो प्रतिफल सज्जनता और उदारता के रूप में प्रकट होना चाहिए, वह नहीं होता । लोग ईश्वर को सभी मानवी दुर्बलताओं से घिरा हुआ एक ऐसा व्यक्ति मानते हैं, जिसे अपने पक्ष में थोड़े से प्रलोभन या वाक्-छल द्वारा सहज ही बहकाया-फुसलाया जा सकता है । उससे मनमानी मुरादें पूरी कर लेने का षड्यन्त्र रचते हैं । इसके लिए गिड़गिड़ाते हुए स्तोत्र पाठ भी करते हैं और यत्किंचित पूजा-पत्री के नाम पर उपहार भी प्रस्तुत करते हैं । उद्देश्य चापलूसी रिश्वत जैसा ही होता है । भगवान प्रत्यक्ष दीखते तो शायद कुछ अधिक करने की हिम्मत भी की जाती, पर एक ओर पूजन, दूसरी ओर अविश्वास का मन बना रहने से इतनी ही कुछ चिन्ह पूजा की जाती है, जिसके निरर्थक चले जाने पर भी कोई बड़ा जोखिम न उठाना पड़े । यही विडम्बना है, जो तथाकथित ईश्वर भक्ति के नाम पर लकीर पीटने जैसी चिन्ह पूजा होती है । उसका प्रतिफल भी घुणाक्षर न्याय से कुछ उल्टा-सीधा हो तो उसे अनायास ही मिला समझना चाहिए; क्योंकि ईश्वर के यहाँ अन्धेरगर्दी नहीं है । उसकी न्याय-तुला ही सबका यथोचित निर्णय करती है ।

ईश्वर को न किसी से प्रेम है, न द्वेष, न वह किसी पर वरदान बिखेरता है, न किसी को शाप देता है । उसकी विधि व्यवस्था में जो अनुशासन पालते हैं, वे सुखी रहते हैं; उन पर ईश्वर को प्रसन्न समझा जा सकता है । जो मर्यादाएँ तोड़ते हैं, कुमार्ग पर चलते हैं, वे अपने कृत्यों का दुष्परिणाम भुगतते हैं । इसे ईश्वर की अप्रसन्नता समझ सकते हैं । वस्तुतः ईश्वर एक नियम-अनुशासन में बँधा है और अन्य सभी प्राणी तथा पदार्थ इसी अनुबन्ध को पालन करने के लिए बाधित हैं । उनमें न किसी के साथ कड़ाई बरती जाती है और न नरमी दिखाई जाती है । मनुहार या उपहार देकर उसे पक्षपात के लिए सहमत भी नहीं किया जा सकता । इसलिए प्रत्येक आस्तिक का कर्तव्य है कि ईश्वर को सर्वव्यापी न्यायकारी मानकर अपने चिन्तन और चरित्र को सही, खरा बनाये रखें । उसमें न स्वेच्छाचार स्वयं बरतें और न उच्छृंखलता किसी को बरतने दें ।

नियन्ता की क्षमताएँ तो असंख्य हैं । वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न प्रकार से प्रयत्न करते हैं । इसमें मानवी अन्तराल को प्रभावित करने वाली धारा सज्जनता और सदाशयता की है । उसे सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय भी कह सकते हैं । सूर्य की धूप निकलते

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही कमल के फूल खिलने लगते हैं । इसी प्रकार परब्रह्म का सान्निध्य होते ही मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव उत्कृष्टता की महक से महकने लगते हैं । भक्ति कोई भावुक आवेश नहीं है, जिसमें ईश्वर के दर्शन जैसा कोई आग्रह रोपा जा सके । जो सर्वव्यापी है, जो कण-कण में समाया हुआ है, वह स्वभावतः अपने पास भी है । बाहर के वातावरण में भरा हुआ है और अन्तरंग में, अन्तःकरण में भी उसकी महत्ता ओत-प्रोत है । अज्ञान के कारण ही वह दूर प्रतीत होता है । विवेक उभरने पर वह अति समीप दृष्टिगोचर होने लगता है ।

विराट ब्रह्म भी ईश्वर का दृश्यमान स्वरूप है । शक्ति-स्वरूप सर्वव्यापी सत्ता का वास्तविक स्वरूप तो निराकार ही हो सकता है । ध्यान धारणा का आध्यात्मिक साधनापरक उद्देश्य पूरा करने के लिए कोई प्रतिमा बनानी पड़ती है । मनुष्य की कल्पना मनुष्य देहधारी भगवान ही रच सकता है । इसलिए अपनी मान्यता एवं श्रद्धा के अनुरूप अवतारों के रूप में देवताओं की छवि जैसी आकृतियाँ कल्पित कर ली जाती हैं । अनेक सम्प्रदायों के भगवान अनुयायियों की मान्यता के अनुरूप ही सृजे गए हैं । इसीलिए "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुरूप एक को ही बहुत रूप में दृष्टिगोचर होने वाला कहा गया है ।

ईश्वर का विराट् दृश्यमान स्वरूप यह विराट् विश्व ही है । अर्जुन को, यशोदा को, कौशिल्या-काकभुशुण्डि को इसी रूप में भगवत् दर्शन हुए थे । चर्म चक्षुओं से यह रूप कोई भी कभी भी देख सकता है । विराट् विश्व की पूजा उसकी स्वच्छता प्रगति एवं सुसज्जा के रूप में ही की जा सकती है । अब की अपेक्षा अगला समय अधिक समृद्ध, समुन्नत, प्रगतिशील सुसंस्कृत हो इसके लिए प्राणपण से प्रयत्न करना—यह विराट् की उपासना है । ऐसे भावनाशील संसार को भगवान का उद्यान मानकर स्वयं कर्तव्य परायण माली की तरह उसके उत्कर्ष-अभ्युदय में अपना समय, श्रम, मनोयोग, एवं साधन भी लगाते रहते हैं । यह कर्मयोग भी है । गीता में इसी का प्रधान प्रतिपादन है ।

आस्तिकता की भावना मनुष्य की उच्छृंखलता पर अंकुश लगाती है । ऊँट को नकेल, बैल को नथ, घोड़े को लगाम, हाथी को अंकुश के सहारे वश में किया जाता है । सरकस के जानवरों को उनका शिक्षक चाबुक से डरा कर इच्छित कृत्य सिखाता और कराता है । ईश्वर विश्वास भी यही करता है । उस मान्यता के मार्ग पर लोग कुमार्ग पर चलना छोड़कर सन्मार्ग अपनाते हैं । इसी प्रकार समाज की सुव्यवस्था स्थिर रहती है ।

सरल और सर्वोपयोगी आसन व्यायाम

आसन बैठने चलने के तरीके को कहते हैं या फिर बैठने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले बिछावन को । किन्तु योग-साधना में अंगों को तोड़-मरोड़कर शारीरिक व्यायाम की विधा को आसन कहते हैं । ध्यान के लिए कमर सीधी रखते हुए पालथी मार कर बैठने को सुलभासन कहते हैं । पैरों को एक दूसरे के ऊपर रखकर एड़ी ऊपर की ओर रखने की अपेक्षाकृत कुछ कठिन विधा को पद्मासन कहा जाता है । इन विधियों से बैठने पर श्वास-प्रश्वास क्रिया ठीक से बन पड़ती है और ध्यान की एकाग्रता सरल हो जाती है ।

थकान दूर करने के लिए शवासन का प्रचलन है । शरीर को ढीला छोड़कर निर्जीव जैसी स्थिति में चित्त पड़ा रहने की इस क्रिया द्वारा जागृत रहते हुए सोने जैसा विश्राम मिलता है । थकान जल्दी ही दूर हो जाती है । इसे योग निद्रा या योग तन्द्रा भी कहते हैं । मानसिक एकाग्रता की पूर्व तैयारी के रूप में इस आसन का प्रयोग किया जाता है । कड़ा श्रम करने या मानसिक श्रम से थकान आने पर भी इस प्रयोग के अपनाने से शरीर का तनाव भारीपन दूर हो जाता है । जिन्हें गहरी निद्रा न आने की शिकायत हो वे भी इसे प्रयोग कर सकते हैं । उन्हें इसका लाभ मिलने लगेगा ।

अन्य आसनों का प्रयोग एक ही जगह परस्पर सरल व्यायामों के रूप में किया जाता है । डण्ड-बैठक जैसे कई व्यायाम दुर्बल काया वालों के लिए उपयुक्त नहीं पड़ते । इसलिए उनके लिए आसनों को ही सुविधाजनक माना गया है ।

आहार से रस बनता है, इसे सभी जानते हैं । पर सब में यह शर्त भी जुड़ी हुई है कि जो खाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गया है उसका पाचन ठीक प्रकार हो । रक्त-संचार एवं श्वास-प्रश्वास की क्रिया शिथिल न हो । इन आशंकाओं को दूर करने के लिए हल्के स्तर के व्यायामों की सीमित, मात्रा में करते रहने से काम चल जाता है । उस आवश्यकता की पूर्ति आसनों के द्वारा सरलता पूर्वक हो जाती है ।

दुर्बल शरीर वालों के लिए तेज चलते रहने-टहलने अथवा खुली हवा में दौड़ने का व्यायाम सर्वोत्तम है । ड्रिल के समय की जाने वाली क्विक मार्च के अनुरूप दोनों हाथ हिलाते हुए, मुँह बन्द रखते हुए थोड़ी तेज चाल से चलने की विधि अपनाई जा सकती है । समय की सुविधा और शरीर की स्थिति को देखते हुए इसकी अवधि निर्धारित की जा सकती है । समय तो उषाकाल का ही सर्वोत्तम रहता है । जिन्हें सुविधा हो वे शाम को भी वही क्रम दुहरा सकते हैं । ध्यान इतना ही रखना है कि जिस सड़क पर चला जाय वह गर्द गुहार वाली न हो । उस क्षेत्र में दुर्गन्ध न उठती रहती हो, धुआँ न छाया रहता हो । अप्रिय दृश्यों वाले-कसाई खाने जैसे में गुजरना भी मन की प्रसन्नता को घटा देता है । इसलिए टहलने के लिए वह दिशा चुननी चाहिए जिसमें कोलाहल कम से कम हो । वृक्षों की हरीतिमा दृष्टिगोचर होती रहे ।

व्यायाम की उपयोगिता आहार के समतुल्य ही मानी गई है । बैठे रहने वालों का भोजन ठीक तरह नहीं पचता । ऐसी दशा में उनकी दुर्बलता बढ़ती ही जाती है और मन्द रुग्णता का रूप धारण करती है फिर उन्हें कितना ही बहुमूल्य भोजन न दिया जाय । यह कठिनाई विशेष रूप से उन लोगों के सामने आती है जिन्हें एक जगह बैठकर काम करना पड़ता है । मुनीम, क्लर्क, अफसर, लेखक आदि के कार्य प्रायः ऐसे ही होते हैं, जिनमें भाग दौड़ के लिए नहीं के बराबर ही गुंजाइश रहती है । योगीजनों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है । उन्हें जप, तप,ध्यान-धारणा स्वाध्याय, चिन्तन, मनन जैसे कार्यों में लगा ही रहना पड़ता है । भोजन करने में नींद के घण्टे भी घट जाते हैं । ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि उनके लिए किसी सरल श्रम का, हल्के व्यायाम का निर्धारण रहे । अन्यथा सर्वदा बैठे रहने पर तो निष्क्रिय चाकू को जंग खा जाने जैसी स्थिति में से शरीर को गुजरना पड़ेगा । अचल पड़ा रहने वाला तालाबों का पानी सड़ जाता है । जबकि झरने की पतली धार भी बहती रहने के कारण ताजगी लिए रहती है । दिनचर्या में शारीरिक श्रम का भाग-दौड़ का समावेश आवश्यक है, ताकि सभी अवयवों को गतिशील रहने का अवसर मिलता रहे ।

आसनों की विधा विशेषतया बुद्धिजीवियों को-योगीजनों की न्यून श्रमशीलता को ध्यान में रखकर बताई गई है । शक्ति का मानसिक स्तर पर अधिक व्यय होना और शरीर का अचार के घड़े की तरह जहाँ का तहाँ रखा रहना ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें रहकर शरीर गड़बड़ाने लगे, साथ ही उस क्षति का प्रभाव मन पर भी पड़े । शारीरिक अस्वस्थता जैसे-जैसे बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे मानसिक श्रम भी कम होने लगता है, उसका स्तर गिर जाता है । अतएव संतुलित स्थिति को बनाये रहने के लिए मानसिक श्रम की तरह शारीरिक श्रम को भी दिनचर्या में समुचित स्थान देना चाहिए ।

व्यायामों के अनेक प्रकार हैं । अखाड़ा सम्भालने वाले पहलवानों के लिए दूसरे व्यायाम हैं । खेल-कूदों की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने वाले उस आवश्यकता की पूर्ति खेल के मैदानों में पूरी करते हैं । जिन्हें अवकाश है, वे वृद्ध जन सुबह शाम कई मील टहलने का क्रम बनाये रह सकते हैं । किसानों, श्रमिकों पोस्टमैनों का परिश्रम तो उनकी आजीविका वाले कार्यों के साथ ही चलता रहता है । लुहार, बढ़ाई जैसे कड़ी मेहनत करने वाले अपने दैनिक कार्यों को ही व्यायाम समझ सकते हैं । उनके लिए इस संदर्भ में अतिरिक्त कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता नहीं है । प्रश्न उन्हीं का है जिन्हें अधिक समय बैठे-बैठे गुजारना पड़ता है । दफ्तर में भी उनका आसन कुर्सियों पर जमा रहता है । घर लौटने पर टी. वी. देखने, रेडियो सुनने, अखबार-पुस्तक पढ़ने जैसे शरीर को श्रम न देने वाले कार्यों में लग जाते हैं । इनके लिए हल्के व्यायामों की विधा अपनाना एक प्रकार से अनिवार्य स्तर की है । इसकी उपेक्षा की जाय तो शरीर न केवल आलसी बन जायेगा वरन् उनकी मानसिक क्षमताओं में भी निरन्तर कमी होती चली जायेगी ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महिलाओं में से अधिकांश का कार्य-क्षेत्र घर की चहारदीवारी के भीतर ही होता है । उन्हें बुहारी लगाने, बर्तन माँजने, रसोई बनाने, बच्चे सम्भालने वाले काम करने पड़ते हैं । उनमें समय कितना ही क्यों न लग जाय ? व्यस्तता कितनी ही क्यों न बनी रहे ? पर किसी को वैसा श्रम करने को नहीं मिलता जो दिन में कम से कम एक दो बार परिश्रमजन्य पसीना निकाल कर अवयवों में नई फुर्ती का संचार कर सके । इस वर्ग के लिए भी आसनों वाला व्यायाम सुविधा जनक पड़ता है । औसत व्यक्ति आधा घण्टा रोज आसन व्यायाम कर लिया करे तो गाड़ी ढुलकती रह सकती है ।

आसन व्यायामों के अनेकानेक प्रकार हैं । उनकी संख्या ८४ तक गिनाई गई है, पर यह प्राचीनकाल के निर्धारण हैं । उन्हें जादू, चमत्कार या पत्थर की लकीर जैसी नहीं मान लेनी चाहिए । किसी आसन विधा से परिचित व्यक्ति की सहायता से अपने शरीर की स्थिति के अनुरूप आसन चुन लेने चाहिए । प्रयोग करने पर वे ठीक पड़ें तो अपनाते रहना चाहिए यदि अनावश्यक दबाव पड़ता प्रतीत हो तो उन्हें बदल लेना चाहिए ।

आसनों का सामान्य सिद्धान्त यह है कि हाथ, पैर, कमर, गर्दन, कंधे, पीठ आदि सभी जोड़ों वाले अंगों को बराबर फैलाया जाय और फिर उन्हें सिकोड़कर आरम्भिक स्थिति में लाया जाय । फैलाना भी धीरे-धीरे किया जाय और सिकोड़ना भी धीरे-धीरे । अंगों को आगे पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे छःहों स्थिति में गतिशील होने का अवसर दिया जाय । कोई अवयव ऐसा न बचे जिसकी माँसपेशियों और जोड़ों को परिश्रम न करना पड़े । इस मौलिक सिद्धान्त के आधार पर अपने अनुकूल आसन स्वयं भी बनाये जा सकते हैं । दुर्बल और रोगी बिस्तर पर पड़े-पड़े भी यह अंग संचालन की क्रिया करते और इसका समुचित लाभ उठाते रह सकते हैं ।

तीन सरल प्राणायाम

हृदय द्वारा रक्त संचार होता है । रक्त दीखता है, इसलिए उसकी उपयोगिता आवश्यकता सर्वसाधारण की दृष्टि में रहती है और हृदय प्रयासों को बहुमूल्य माना जाता है और उसे महत्त्व भी अधिक मिलता है । इसके अतिरिक्त एक दूसरा तन्त्र है जिसकी गरिमा लगभग इसी स्तर की है । वह है—श्वसन प्रक्रिया । श्वास-प्रश्वास नाक से ली जाती है । फेफड़े में पहुँचती है, इसके बाद उसका प्रवाह शरीर की सभी कोशिकाओं तक पहुँचता है । इस पहुँच के कारण ही तापमान संतुलित रहता है । जीवनी-शक्ति के रूप में ऑक्सीजन मिलती है । साथ ही हर क्षण शरीर के हर क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली गंदगी का भी एक बड़ा भाग यही बुहारी बुहारकर लौटते समय अपनी टोकरी में समेट ले जाती है । यह क्रिया अदृश्य रूप में होती है । उसका प्रत्यक्ष दर्शन न होने से अनुभव भी नहीं होता । इसलिए महत्त्व भी नहीं समझा जाता । इतने पर भी उसका महत्त्व उतना ही है, जितना हृदय द्वारा किए जाने वाले रक्त संचार का ।

अन्न, जल और वायु को जीवन का प्रमुख आधार माना जाता है । बिना भोजन किए मनुष्य प्रायः महीनों जीवित रह सकता है । बिना पानी के भी एक सप्ताह जिया जा सकता है किन्तु बिना साँस लिए तो पाँच मिनट जीवित रहना भी कठिन है । फाँसी लगने पर प्रथम आघात श्वास प्रणाली का बन्द हो जाना ही होता है । गरदन की हड्डी टूटने पर भी कुछ समय जीवित रहा जा सकता है; पर दम घुटने पर तो प्राणान्त ही समझा जाना चाहिए; क्योंकि समस्त अवयवों को प्राणवायु की उपलब्धि रुक जाती है । जो गन्दगी पैदा होती है, उसे बाहर निकलने की व्यवस्था न रहने से विषाक्तता फैलती है और जीवन का अन्त हो जाता है । इससे प्रकट है कि शरीर में जो भी तत्व काम करते हैं, उनका रक्त के अतिरिक्त दूसरा आधार श्वसन प्रक्रिया ही है । शरीर के समस्त छोटे-बड़े अवयवों का परिपोषण प्रायः उसी एक पर निर्भर है ।

साँस लेने का सही तरीका बिरलों को ही मालूम होता है । आमतौर से लोग उथली साँस लेने के आदी होते हैं । बिना परिश्रम के समय बिताने पर झुक कर बैठने पर तो यह प्रवाह और अधिक मंद हो जाता है । उथली साँस में हवा की मात्रा प्रायः आधी ही शरीर में पहुँचती है । वह फेफड़े के मध्य भाग को ही प्रभावित करती है । शेष भाग निष्क्रिय पड़ा रहने के कारण दुर्बल बन जाता है । उसमें खाँसी, क्षय, प्लूरिसी, दमा आदि के रोग कीटाणु अपने लिए आसानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से जगह बना लेते हैं और घर बनाकर मजबूती के साथ अपनी वंश वृद्धि करते रहते हैं । इसके अतिरिक्त दूसरी हानि यह होती है कि शरीर के अंग-प्रत्यंगों को पोषण ऑक्सीजन की मात्रा कम पहुँचती है । उस कमी के कारण उनकी समर्थता घटती जाती है । सफाई भी पूरी तरह नहीं हो पाती, इसलिए सभी जीवाणु अशक्त होते जाते हैं । क्रिया-शक्ति घटती जाती है और गंदगी, बढ़ने से रुग्णता मंद-गति से बढ़ते-बढ़ते अदृश्य से दृश्य बन जाती है । बीमारियाँ भीतर से जन्म लेकर बढ़ते-बढ़ते बाहरी क्षेत्र में फूट पड़ती दीखने लगती हैं । कारण साधारण होते हुए भी उसकी क्षति-विकृति असाधारण रूप से दृष्टिगोचर होने लगती है । अधूरी साँस लेना ऐसा ही है, जैसा आधे पेट भोजन करना या पानी की प्यास को मारकर गला तर करने जितना पानी पीकर काम चलाना । उनके कारण जो क्षति हो सकती है, उसका अनुमान लगाया जा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए ।

इस भूल का आरम्भ छोटी-सी गलती से होता है और उसका निराकरण थोड़ी-सी सावधानी से पूरा हो सकता है । सीने को आगे की ओर झुका कर बैठना, काम चलाऊ आधी अधूरी साँस लेकर काम चलाते रहना इस प्रकार की अधूरी साँस असावधान रहने के कारण चलती रहती है । इसे असावधानी का ही अभिशाप कहना चाहिए, जिसके कारण आधी स्वास्थ्य-सम्पदा एवं एक तिहाई आयु इसी नासमझी के कारण नष्ट हो जाती है । आहारों से पोषण मिलता है—इस तथ्य को सभी जानते हैं । इसी प्रकार यह भी जान जाना चाहिए कि साँस भी जीवन प्रदान करती है पर वह करती तभी है, जब वह पूरी और गहरी ली जाय । फेफड़ों को पूरी तरह भर दे । शरीर की सभी कोशिकाओं का पोषण करे । रक्त को स्वच्छ एवं सशक्त बनाये रहने की क्षमता साँस के द्वारा मिलने वाली प्राण वायु, द्वारा ही पूरी होती है ।

योग-शास्त्र की तरह विज्ञानी भी प्राणायाम की महत्ता स्वीकार करता है, उसकी आवश्यकता, उपयोगिता का प्रतिपादन करता है । प्राणायाम के अनेक तरीके हैं । उनके अपने-अपने विषय और लाभ हैं । योग सिद्धि से लेकर ध्यान-धारणा एवं प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों के जागरण में उनका अपना-अपना प्रभाव है । प्राण विधा एक स्वतन्त्र विद्या है, जिसके आधार पर सर्वतोन्मुखी सशक्तता का सम्पादन किया जाता है । उनके चमत्कारी लाभ भी पाये जा सकते हैं । कहा जाता है कि प्राण के वश में होने पर मन वश में हो जाता है और जिसका मन निगृहीत होता है, उसे योग पारंगत एवं सिद्ध पुरुष कहा जाता है ।

इन पंक्तियों में विशेष प्राणायाओं की चर्चा न करके केवल उन सर्वसुलभ विधियों पर प्रकाश डाला जा रहा है, जिसे हर स्थिति का व्यक्ति हर परिस्थिति में कार्यान्वित करता रह सकता है ।

सरलता और निरन्तर होते रहने वाला प्राणायाम यह है कि गहरी साँस लेने की आदत डाली जाय । पूरी साँस खींची जाय, ताकि हवा से पूरे फेफड़े भर जायें । साँस को रोकना आवश्यक नहीं है । पुरानी प्राणायाम पद्धति में साँस को रोके रहने की कुम्भक पद्धति को भी आवश्यक बताया गया है; पर आधुनिक शरीर विज्ञान उसका समर्थन नहीं करता हैं । ऐसी दशा में यही उचित है कि कुम्भक पर विशेष जोर न दिया जाय । साँस को भरपूर मात्रा में खींचने की प्रक्रिया को भली प्रकार सम्पन्न किया जाय । इसके बाद साँस छोड़ने का क्रम भी धीमी गति से सम्पन्न किया जाय, किन्तु फेफड़ों में भरी हुई साँस को पूरी तरह बाहर निकाल दिया जाय । यह एक प्राणायाम हुआ । इसे स्वाभाविक एवं उपयोगी श्वास-प्रश्वास पद्धति भी कह सकते हैं । इससे पर्याप्त मात्रा में प्रायः दूनी ऑक्सीजन मिलने लगेगी और प्रायः दूना ही पोषण प्राप्त होगा । चेहरे पर लालिमा बढ़ती और शरीर में स्फूर्ति पैदा करती दिखाई पड़ेगी ।

गहरी साँस लेने का अभ्यास भी एक साधना है । इसमें पुरानी आदत सबसे अधिक बाधा उत्पन्न करती है । उथली साँस लेने का ढर्रा स्वभाव का अंग हो जाता है । गहरी साँस जितने समय तक प्रयत्नपूर्वक ली जाती रहे, उतनी देर तो सब कुछ ठीक रहता है; पर जैसे ही ध्यान दूसरी ओर गया कि फिर पुरानी आदत पुराने ढर्रे पर आ जाती है और किया हुआ प्रयत्न स्वभाव का अंग बनाने के लिए वैसा प्रयत्न निरन्तर जारी रखना पड़ता है । पुरानी आदत उभरते ही नये अभ्यास पर आरूढ़ होना पड़ता है । यह लड़ाई लम्बे समय तक लड़नी पड़ती है तब कहीं पूरी सफलता मिलने की बात बनती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरा अभ्यास इससे भी अधिक शक्तिशाली यह है कि संसार भर में संव्याप्त प्राण चेतना को एक सचेतन विद्युत शक्ति मानते हुए संकल्प शक्ति के सहारे उसे साँस द्वारा खींच कर समूची सत्ता में धारण करना चाहिए । साँस लेते समय भावना की जाय कि विश्वव्यापी प्राण-शक्ति, साँस के साथ ही खिंचती चली आ रही है । उसे काया के कण-कण द्वारा अवशोषित किया जा रहा है । शरीर और मन ओजस्-तेजस् से भर रहा है । इसकी अनुभूति फुर्ती और मस्ती के रूप में हो रही है । साहस उभर रहा है और पुरुषार्थ गतिशील हो रहा है । यह प्राणाकर्षण प्राणायाम है । जब भी समय खाली हो, तभी मेरुदण्ड सीधा रखकर इसे करने लगना चाहिए । दस-दस मिनट के चार-से छः खण्ड हर दिन प्रयुक्त किए जा सकें, तो इससे शक्ति संवर्धन की अनुभूति हाथों-हाथ होने लगेगी । कुछ दिन के अभ्यास से प्रयत्नकर्ता अपने में सचमुच असाधारण पुरुषार्थ प्रकट होते देखता है ।

सरल प्राणायामों में तीसरा है—सोऽहम् साधना । साँस लेते समय "सो" बाहर निकालते समय 'हम' की ध्वनि प्रकट होने की कल्पना करनी चाहिए । 'सो' अर्थात् वह परमेश्वर साँस के साथ अन्तराल में प्रवेश करता है और अन्तःचेतना के कण-कण में अपनी विशिष्टता भर देता है । साँस छोड़ते समय जो "हम" की ध्वनि होती है, उस समय सोचना चाहिए कि अपना अहंकार तिरष्कृत-बहिष्कृत होकर चिन्तन और भाव क्षेत्र को छोड़कर बहिर्गत हो रहा है । अहंकार मिट जाने पर आत्मसत्ता का स्वरूप "तत्वमसि" "अयमात्मा ब्रह्म" जैसा बन जाता है और आत्मा में परमात्मा ओत-प्रोत दृष्टिगोचर होने लगता है । उपरोक्त तीन प्राणायाम सर्वसुलभ हैं । उनके लाभ भी हाथों हाथ दीख पड़ते हैं ।

अवांछनीयताओं का प्रतिकार-प्रत्याहार

आक्रमण का प्रतिकार-प्रत्याहार आवश्यक माना गया है अन्यथा अवांछनीय तत्व चढ़ाई करके अपने स्वत्व अधिकार का ही अपहरण कर लेंगे । देवता शान्तिप्रिय और नीतिवान थे । वे परमार्थ, परोपकार में ही लगे रहते थे । व्यक्तित्व उत्कृष्ट एवं देवत्वमय था, तो भी दानवों ने उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया । कोई दोष या कारण न होने पर भी वे अवसर पाते ही आक्रमण करते रहे । क्षमा और सहनशीलता के सहारे बात टालते रहने पर भी काम नहीं चला । तब उन्हें प्रत्याक्रमण की योजना बनानी पड़ती रही । बार-बार देवासुर संग्राम होते रहे और वे विभिन्न क्षेत्रों में अभी जारी हैं ।

आततायी, आतंकवादी हर क्षेत्र में भरे पड़े हैं । घात लगाने से चूकते नहीं । आवश्यक नहीं कि वे खून-खच्चर वाली लड़ाई ही लड़ें । दूसरा और भी तरीका है जिसमें व्यवहार में आघात के चिन्ह दिखाई नहीं पड़ते पर भीतर ही रक्त चूस लिया जाता है । रोगों के विषाणु यही करते हैं । वे क्षय जैसे रोग के रूप में प्रवेश करते हैं और कुछ ही समय में समूचे शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, तब मरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता है । मजबूत शहतीर में घुन लग जाता है, तो वह भीतर ही भीतर उसे खोखला करता रहता है । एक दिन ऐसा आ जाता है कि जरा सा धक्का लगने पर वह खोखला शहतीर जमीन पर गिर जाता है ।

इसी प्रकार कुविचारों का भी एक वर्ग है, जो मनःक्षेत्र में निवास करता है । देर तक मानस पर छाया रहने के कारण वह ललक लालसा बनता है । अभिलाषा-आकांक्षा का रूप धारण करता है और विचारों को कार्य के रूप में परिणत होने के लिए विवश करता है । वासनाएँ, कामनाएँ, तृष्णाएँ, लिप्साएँ बीज रूप में विचार क्षेत्र में अंकुर उगाती हैं । उन्हें पोषण मिलते रहने पर तेजी से बढ़ती हैं और अमरबेल की तरह समूचे जीवन को अपनी पकड़ में कस लेती हैं । कोई कृत्य अनायास ही नहीं बन पड़ता । उसकी भूमिका लम्बे समय से मनः क्षेत्र में अपना ताना-बाना बुनती रहती है । जड़ पकड़ लेने पर पौधा मजबूत हो जाता है, तब वह उखाड़ने में नहीं आता है । अंकुर उगते समय उसे सरलतापूर्वक नोंचकर हटाया जा सकता है, पर परिपुष्ट होते रहकर गहराई तक जड़ें प्रवेश कर लेने पर उसे उखाड़ना सरल नहीं रहता । कुविचारों के सम्बन्ध में तो वस्तुतः यही होता है । सद्विचार तो प्रयत्नपूर्वक उगाने-बढ़ाने पड़ते हैं, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुष्प्रवृत्तियाँ कटीले बबूल की तरह कहीं भी जम जाती हैं और खाद पानी की परवाह किए बिना अपने आप बढ़ने लगती हैं । पीपल को परिपक्व होने में वर्षों का समय चाहिए, पर बबूल तो कुछ ही महीनों में चुभने वाले काँटों से लद जाता है । कुविचार भी ऐसे ही होते हैं ।

जीवन को उज्ज्वल, उत्कृष्ट बनाना हो तो उसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन आदि का आश्रय लेना पड़ता है । अच्छे वातावरण और सम्पर्क से जुड़ा होता है पर दुष्प्रवृत्तियाँ तो खर-पतवार की तरह हर खेत में उगी रहती हैं । बिना पानी के भी हरियाती हैं । जलकुम्भी की तरह उन्हें किसी जलाशय पर छा जाने में देर नहीं लगती । व्यक्तियों का समुदाय अवांछनीय प्रवृत्तियों से भरा पड़ा रहता है । कुकृत्य का सर्वत्र प्रचलन है । उनकी छूत रास्ता चलते को लगती है ।

प्रतिकार न किया जाय तो अवांछनीयताएँ टिड्डी दल की तरह बढ़ती हैं । मक्खी-मच्छरों की तरह पनपती हैं और अपनी चपेट में उन्हें भी ले लेती हैं, जो चैन से रहने के इच्छुक हैं, जो कि किसी को नहीं सताते । इतने पर भी वे मात्र इसलिए बचे नहीं रह सकते कि वे सज्जनता निबाहते हैं, किसी को त्रास नहीं पहुँचाते । खटमल, पिस्सू, जुएँ, चूहे इस तेजी के साथ बढ़ते हैं कि यदि उनकी रोकथाम के बारे में न सोचा जाय तो उनका मन्द गति आक्रमण भी अपने अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर देगा । चोर उचक्कों से बेखबर रहा जाय तो कहीं भी जेब कट सकती है । कहीं भी पोटली उठ सकती है । घर के पिछबाड़े कहीं भी सेंध लग सकती है । स्वयं चोर न होना अच्छी बात है, पर इतने भर से चोरों के हथकण्डे रुक नहीं सकते । सतर्कता से लेकर चौकीदारी तक का प्रबन्ध करने पर ही अपने सामान को बचाया जा सकता है ।

कुविचार कुकरमुत्तों की तरह बिना बोये ही उगते हैं । जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार तनिक-सी कमी पाते ही उद्भिजों की तरह उपज पड़ते हैं । सूखी घास की जड़ें पहली वर्षा होते ही धरती पर फैल जाती हैं । कूड़ा-करकट हवा के साथ उड़कर कहीं से भी आँगन में घुस पड़ता है । इस आधार पर उत्पन्न होते रहने वाली गन्दगी को बुहारी से बुहारने, पानी से धोने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । अध्यात्म क्षेत्र में इसी प्रकार के प्रयत्नों को प्रत्याहार या परिहार कहते हैं ।

कुविचारों से जूझने के लिए सद्विचारों की ऐसी पुलिस फौज की व्यवस्था करनी चाहिए जो आक्रामकों को देखते ही उनसे भिड़ पड़ें । ऐसी बहादुरी से लड़ें कि दुश्मन के पैर उखड़कर ही दम लें । लाठी का जवाब लाठी से, घूँसे से घूँसे का जवाब दिया जाता है । विष की औषधि विष ही बनाई गई है । कुविचारों को कुकर्म के रूप में परिणत होने से पहले ही उनके छत्ते में पलने वाली विषैले डंक वाली बर्रों की बढ़त बन्द करनी चाहिए । सड़े गोबर में बिच्छू पनपें उससे पहले ही उस सड़ांध को हटाकर दूर पहुँचा देना चाहिए ।

मन में जमी जन्म-जन्मान्तरों की कुसंस्कारिता और वातावरण में भरी-पूरी अवांछनीयता किसी भी क्षण छूत की बीमारी की तरह आक्रमण कर सकती हैं । इसलिए अच्छा हो समय से पहले ही रोकथाम का प्रबन्ध कर लिया जाय । लक्षण उभरने ही लगें, तब तो उपेक्षा बरतनी ही नहीं चाहिए । प्रतिरोध के लिए जो आवश्यक है उसे अविलम्ब करना चाहिए और दमन में पूरी कठोरता बरतनी चाहिए ।

कुविचार तब पनपते हैं, जब उन्हें विरोध का सामना नहीं करना पड़ता । जहाँ सुरक्षा की दीवार कमजोर दीखती है, कच्चे मोर्चे पर दुश्मन हमला करता है । यदि सुरक्षा पंक्ति समय रहते मजबूत बना ली जाय । सद्विचारों का भण्डार इतना भर लिया जाय कि उस भरी तिजोरी में कुविचारों को कहीं से प्रवेश ही नहीं मिल सके । यदि किसी प्रकार किसी सीमा तक वे घुस ही पड़ें तो उपेक्षा बरतने, जो हो रहा है, उसे होने देने की ढील तो देनी ही चाहिए । खूनी साँड़ सामने से दौड़ा आ रहा हो तो प्रतिकार में एक तो लाठी लेकर उसे खदेड़ा जाय या फिर भाग कर किसी ऐसी आड़ में छिपा जाय कि पैने सींगों से बचाव हो सके । कुकर्म का अवसर चुका देना भाग खड़े होने जैसी बुद्धिमत्ता है, पर यदि समय हो तो कुविचारों को सद्विचारों के पक्षधर तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों, उदाहरणों से इस प्रकार चुनौती देनी चाहिए कि उन्हें हार ही माननी पड़े । भविष्य के लिए निर्लिप्तता अर्जित होने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का यही चिरस्थायी तरीका है । कुविचारों को परास्त करने उन्हें दुष्कर्मों के रूप में परिणत होने देने से पहले ही यदि कमर कस ली जाय तो समझना चाहिए कि भविष्य को अन्धकार के गर्त में गिराने वाले कुयोग से पीछा छूटा ।

कोई अचानक कुकर्मी नहीं होता । उस पर पहले ही कुविचारों का आक्रमण होता है । इन उगते लक्षणों को देखकर ही सतर्क हो जाना चाहिए, समर्थन जैसा कुछ मिलने लगने पर तो उसे तिल से ताड़ बनते देर नहीं लगती जिसके मन में अचिन्त्य चिन्तन आश्रय पाता है, उसे समय स्थिति तक पहुँचते देर नहीं लगती, जिसमें दुर्व्यसनों का दुष्प्रवृत्तियों का घेरा घिरता चला जाय और फिर उस शिकंजे से छुटकारा पा सकना कठिन हो जाय ।

गीता का महाभारत मात्र द्वापर में कुरुक्षेत्र के मैदान में ही नहीं लड़ा गया । उसे हर व्यक्ति को अपने चिन्तन और चरित्र की आत्मरक्षा के लिए हर किसी को निरन्तर लड़ना पड़ता है । अर्जुन को शिथिल पड़ते देखकर कृष्ण ने उसे युद्धरत होने के लिए प्रोत्साहित किया । उस प्रोत्साहन का तत्वदर्शन ही गीता का ज्ञान है । यह जीवन में विजयश्री वरण करने का एक पहला चरण है । इस प्रत्याहार-परिष्कार में संघर्षरत होने का साहस दिखाये बिना कोई उस स्थिति तक पहुँच नहीं सकता जिसमें अन्तराल को परमात्मा तक पहुँचाने का लक्ष्य प्राप्त होता है । जिसमें लौकिक प्रगति और प्रामाणिकता का श्रेय सम्मान एवं सन्तोष भी सम्मिलित है ।

उत्कर्ष के लिए आवश्यक धर्म धारणाएँ

धारणा अर्थात् अन्तःकरण की गहराई में धर्म धारणाओं को स्थापित करना । देखा जाता है कि मनुष्य कटी पतंग की तरह हवा के झोंकों के साथ दिशा बदलता रहता है । शरीरगत वासनाएँ और मनोनीत तृष्णाएँ ही हर घड़ी सवार रहती हैं, उन्हीं की पूर्ति के लिए निरन्तर ताना-बना बुनने में लगा रहता है । उन्हीं के लिए खटता पिसता रहता है । कुछ सफलता विशेषताएँ उपलब्ध हुई तो अहमन्यता का भूत सवार होता है दूसरों पर दर्प जमाने के लिए ठाठ-बाट रोपता और अपव्यय तथा आतंक की नीति अपनाकर अपने को बड़ा सिद्ध करने के प्रयासों में लगा रहता है । इन्हीं विडम्बनाओं में उलझते-सुलझते जीवन का अन्त हो जाता है ।

जिनकी अपनी निजी धारणाओं में विवेकशीलता जुड़ी हुई है ऐसे कम ही लोग दीख पड़ते हैं । अधिकांश तो लकीर के फकीर होते हैं । प्रचलनों का अनुकरण करते रहते हैं । कुरीतियाँ चाहें कितनी ही अहितकर अनुपयुक्त क्यों न हों संगी साथियों के द्वारा अपनाये जाने पर अपने लिए भी अनुकरण का विषय बन जाती हैं । अनुकरणप्रियता मनुष्य का स्वभाव है, पर इस क्षेत्र में भी यह सोचा जाना चाहिए कि क्या दृढ़तापूर्वक अपनाया जाय यह भी पूर्व निर्धारण के अभाव में ठीक तरह नहीं बन पड़ता । परिस्थितियों के अनुरूप विचार ही नहीं आचरण भी बदलते रहते हैं । अवसरवादिया ही नहीं नीति बनकर रह जाती है । बेपेंदी के लोटे की तरह जहाँ भी जिस प्रकार भी स्वार्थ सिद्ध होता दीखता है उधर ही अपने को बदल लेते हैं । वातावरण को अपने ढाँचे में ढाल सकने की मनःस्थिति तो किन्हीं बिरलों में ही होती है । अधिकांश परिस्थितियों के अनुरूप अपना मन बदलते रहते हैं । तितली की तरह आकर्षण के प्रलोभन में इस फूल से उस फूल पर उड़ते-फिरते हैं । उनका अपना कोई लक्ष्य, निर्धारण या गन्तव्य नहीं होता है । इस प्रकार के व्यक्तियों की न कोई दिशा धारा होती है और न सुनिश्चित क्रिया-पद्धति । परिस्थितियाँ ही उन्हें हवा के झोके की तरह जहाँ तहाँ लिए फिरती हैं । ऐसी दशा में न कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नियमित रूप से करते बन पड़ता है और न किसी सराहनीय सफलता का श्रेय उन्हें मिल पाता है ।

प्रेरणाएँ अन्तःकरण से उभरती हैं उन्हीं के आधार पर विचारणा काम करती है । योजना बन पड़ती है और इच्छा की पूर्ति करने के उद्देश्य से क्रिया चल पड़ती है, इसलिए इच्छाओं की पूर्ति ही जीवन का स्वरूप बनकर रह जाती है । परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर व्यक्ति स्वार्थ साधना के प्रयत्नों में लगे रहकर अपना आयुष्य बिता देता है । जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता, उनसे कुछ क्रमबद्ध रूप से करते-धरते भी नहीं बन पड़ता । इस स्थिति को एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकार से निष्फल जीवन ही कह सकते हैं । जितनी महत्त्वपूर्ण क्षमताएँ उसे उपलब्ध हुई हैं, उसकी तुलना में शतांश भी वैसा कुछ नहीं होता जिस पर कि सन्तोष किया जा सके ।

इस उथले स्तर के जीवन-यापन के पीछे एक ही कमी काम करती है, वह है अन्तःकरण में आदर्शवादी आस्थाओं का अभाव । यदि उपलब्ध सुर दुर्लभ अवसर का महत्त्व समझा जा सके और उसे महत्त्वपूर्ण कामों में लगाने का निर्धारण किया जा सके तो फिर आदर्शों की उत्कृष्टता से अन्तराल को सराबोर करने की बात ही प्रमुख होती है । इसके लिए उसी स्तर का स्वाध्याय, सत्संग, वातावरण एवं सहयोग तलाशना पड़ता है । इस घेराबन्दी में ही किसी उच्चस्तरीय दिशा धारा को दृढ़तापूर्वक अपनाना पड़ता है । संकल्प उभरता है, मार्ग बनता है और उस पर दृढ़तापूर्वक चल पड़ना सम्भव होता है । अन्यथा मन की चंचलता ही प्रधान बनकर रह जाती है । उस बन्दरवृत्ति से कौतुक कौतूहल ही होते रहते हैं । कुछ ऐसा नहीं बन पड़ता जिसे अनुकरणीय कहा जा सके, सराहा जा सके और उसका अनुकरण करने की किसी के मन में उमंग उठ सके ।

मनुष्य जीवन महान सृजेता की महान कलाकृति है । उसे पेट प्रजनन जैसे पशु प्रयोजनों में ज्यों-त्यों करके पूरा कर लेना ही वह कार्य नहीं है जिसे कर्मयोग कहा गया है और जिसके द्वारा कर्मरत होते हुए भी चरम लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो सकता है ।

शारीरिक कृत्यों का स्वरूप दृष्टिगोचर तो होता है, प्रस्तुत की गई घटनाओं का वर्णन होता है पर पर्दा उठाकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि घड़ी के अनेक पुर्जे जो एक दूसरे के सहयोग से कार्यरत हो रहे हैं उसके पीछे फिनर वाली चाबी ही काम करती है । चाबी भरी होती है तो घड़ी के पुर्जे चलते रहते हैं अन्यथा वे भावनात्मक प्रेरणा के अभाव में शिथिल पड़ते-पड़ते सो जाते हैं । आगे धकेलने का जो काम फिनर वाली चाबी करती है, उसी प्रयोजन की पूर्ति मानव जीवन में धारणाओं के द्वारा बन पड़ती है ।

आदर्शवादी उन मान्यताओं को धर्मधारणा कहते हैं, जिनमें निश्चय से पूर्व तो उसकी गहराई पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लिया जाय । सभी शंका-कुशंकाओं पर विचार हो ले । किन्तु जब निष्कर्ष निकाल ही लिया जाय तो उसे सुदृढ़ विश्वास के रूप में हृदयंगम किया जाना चाहिए । उसकी पूर्ति के लिए जितना भी बन पड़े नित्य कुछ न कुछ करना चाहिए । विश्वासों में क्रिया से बल मिलता है, अन्यथा प्रयोजन में न आने वाले विचार कल्पना मात्र बनकर रह जाते हैं और प्रवाह के साथ जिधर से विधर चले जाते हैं । स्थायित्व लाना हो, मन्तव्य सुनिश्चित और सुदृढ़ करना हो तो आवश्यक है कि संकल्पों को ध्यान में रखा जाय और उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का जो भी अवसर सामने आये उसे हाथ से न जाने दिया जाय । कर्तृत्व स्वभाव का अंग बन जाता है तो आदतें उस प्रकार के क्रिया-कलाप के लिए अवकाश भी प्राप्त कर लेती हैं और अवसर भी निकाल लेती हैं ।

व्यक्तित्व को विश्वास बनाता है । या अधिकांश लोग अनास्थावान होते हैं । वे तार्किक दृष्टि से भी किसी भी विषय का धुआँधार प्रतिपादन कर सकते हैं पर जब उन्हीं सिद्धान्तों को निजी जीवन में कार्यान्वित करने का अवसर आता है तो अपने ही प्रतिपादनों को भूल जाते हैं और वह करने लगते हैं जिनका वे भावना के उभार में स्वयं ही खंडन करते रहे हैं ।

मान्यताएँ, भावना क्षेत्र की गहराई में उगती हैं । पर वे चिरस्थायी रहती हैं । वस्तुतः जीवन में जो कुछ महत्त्वपूर्ण है वह सब आस्थाओं के ऊपर निर्भर है । अपने को उत्कृष्ट, निकृष्ट, दुर्बल मान बैठना अपने विश्वासों के ऊपर ही अवलम्बित है । यात्रा पर जीवन जीने वाले घुमन्तू गाड़ी वाले अपने उस ढर्रे को अपनाये रहकर दूसरों की तुलना में कहीं अधिक कठिनाइयाँ स्वीकार करते हैं, पर वे सुविधा साधन मिलने पर भी उस रीति-नीति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं । उनका कहना है कि वे मेवाड़ के राणा की सन्तानें हैं । जब तक दिल्ली पर राणाओं का झण्डा न फहरेगा तब तक इसी स्थिति में भ्रमण करते रहेंगे । यद्यपि अब उनके उस कथन का कोई तात्पर्य नहीं रहा । फिर भी विश्वास तो विश्वास ठहरा । वह मनुष्य का सबसे समर्थ तत्व है । मान्यताओं के आधार पर मनुष्य कष्ट साध्य जीवन जी सकता है। सामने प्रस्तुत अन्य सुविधाओं को सहज ही ठुकरा सकता है । कुमारियाँ अपना कौमार्य व्रत और विधवाएँ अपना वैधव्य इसी आधार पर भली प्रकार निबाह लेती हैं । न्यायनिष्ठा,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परोपकारी, ईमानदार स्तर के व्यक्ति अनेक आकर्षणों और दबावों के आगे न झुककर अपनी प्रतिज्ञाओं पर आरूढ़ बने रहते हैं । प्रतिकूलताएँ उन्हें इस व्रत से डिगा नहीं पातीं ।

धारणाएँ, आस्थाएँ तभी सराहनीय बनती हैं, जब वे आदर्शवाद के साथ जुड़ी हुई हों । अन्यथा दुर्व्यसनी भी हेय स्तर की मान्यताएँ बनाये रहते हैं । दुराग्रही भी यही करते रहते हैं । दीन, हीनों में से अनेक लोग अपना भाग्य मान लेते हैं और उसमें सुधार लाने के प्रयत्न छोड़ बैठते हैं । धारणाएँ, अन्ध-विश्वास भरी हो सकती हैं, पर जिन्हें अध्यात्म मार्ग में सहायक माना गया है वे आस्तिकतावादी, अध्यात्मवादी और धर्मावलम्बी मान्यताएँ ही हैं । इन्हीं के सहारे ऊँचा उठा और बढ़ा जा सकता है ।

सर्वोपयोगी ध्यान धारणा

मनुष्य अनेक कल्पनाएँ करता है । कई आदर्शों को अपनाने की बात सोचता है, कई निर्माणों को आवश्यक मानकर उसके निमित्त पुरुषार्थ का प्रयास भी करता है पर देखा गया है उच्चस्तरीय प्रयोजनों का उत्साह थोड़े से ही समय में ठण्डा पड़ जाता है । जो उमगें उठी थीं वो उठने—वाले बबूलों की तरह समाप्त हो जाती हैं । उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए उठने वाला उत्साह प्रायः शिथिल होते-होते समाप्त हो जाता है, पर अवांछनीय दिशा में उठाये गए कदम सहज विस्मृत नहीं होते वे अपनी जगह दृढ़तापूर्वक जगे रहते हैं । नशेबाजी की लत एक-बार लग जाने पर फिर उससे पीछा नहीं छूटता । तलब उठती है तो बेचैन कर देती है । मस्तिष्क भी उसी प्रिय पदार्थ को पाने के लिए ताने-बाने बुनता है । चैन तब लेता है, जब अभीष्ट को हस्तगत कर लिया जाता है ।

किन्तु उत्कृष्ट स्तर के निर्धारणों में यह प्रक्रिया कम ही चलती है । पानी ढलान की ओर सहज ही बहता है । वस्तुएँ ऊपर से नीचे की ओर गिरती हैं । यह कार्य तो धरती की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही कर लेती है, पर किसी वस्तु को ऊँचा उछालना हो तो उसके लिए अतिरिक्त शक्ति लगानी पड़ती है । आदर्शों का परिपालन ऐसा ही उच्चस्तरीय प्रयास है जिसके लिए विशेष रूप में प्रेरणाप्रद करने पड़ते हैं ।

ऐसे प्रयत्नों में 'ध्यान' का बहुत महत्त्व होता है । वह विस्मरणजन्य कठिनाइयों की रोकथाम करता है । विस्मृतियाँ उपयोगी भी हैं उसके कारण शोक बिछोह जैसे आघात क्रमशः हल्के होते जाते हैं । लोग पिछली बातों को भूलकर नई जानकारियों को स्मृति पटल पर अंकित करते जाते हैं । यदि ऐसा न होता तो सिलेट पर एक ही हिसाब सदा लिखा रहता । पुराने को मिटाकर ही उस पर नया अंकित किया जाता है । यह लोकाचार है ।

आदर्शों के क्षेत्र में प्रवेश करने पर महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मन संसार के मेले में भ्रमित होकर मूल अवलम्बन को विस्मृत कर देता है । नये-नये आकर्षक जाल-जंजालों में फँस जाता है । ऐसी दशा में यही उपयुक्त है कि आदर्शों के परिपालन को, कर्तव्यों के निर्वाह की बात को प्रमुखता दी जाय और उसका बार-बार स्मरण करते रहकर विस्मृति जैसा कुयोग न बनने दिया जाय ।

द्वेष-दुर्भावों को भुला दिया जाय तो इसकी तो कुछ तुक है, किन्तु जिन आधारों पर जीवन का उत्कर्ष—अभ्युदय अवलम्बित है उन्हें तो प्रयत्नपूर्वक स्मृति पटल पर अंकित किया जाता रहना चाहिए । इसका सरल उपाय यह है कि उसे दिनचर्या का अविच्छिन्न अंग बना लिया जाय । जो काम नित्य किए जाते हैं उनकी आदत पड़ जाती है और नियम समय उन्हें पूरा करने की एक बेचैनी उठती है । शौच, स्नान, भोजन, शयन, आदि की स्मृति नियत समय पर अनायास ही उठती है और जब तक वह कार्य पूरा न हो जाय तब तक शान्ति नहीं मिलती । ठीक इसी आधार पर आत्म-चिन्तन को भी दिनचर्या का अविच्छिन्न अंग बनाया जाना चाहिए । इसी को ईश्वर स्मरण, पूजा-पाठ, दैनिक उपासना, संध्या वन्दन आदि नामों से जाना जाता है ।

वस्तुतः ईश्वर को किसी की खुशामद या रिश्वत की रत्ती भर भी आवश्यकता नहीं है । उस पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अनुशासन में चलना, मर्यादाओं को अपनाना वर्जनाओं से बचना यही ईश्वर साधना है । सादगी, सुचिता, संयम, सेवा प्रयासों को जीवन व्यवहार के साथ जोड़कर ईश्वर उपासना का प्रयोजन भली प्रकार पूरा हो जाता है । सृष्टि के इतने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवधारी हैं कोई पूजा-पाठ नहीं करता । इन दिनों आधी आबादी नास्तिक वर्ग की है । उन्हें ईश्वर की मान्यता के प्रति विश्वास है और न पूजा-पाठ से सम्बन्ध । फिर भी ईश्वर उन सबका भरण-पोषण और अनुदान सहयोग निरन्तर करता रहता है । इससे स्पष्ट होता है कि ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए नहीं वरन् अपने आत्म-शोधन की प्रक्रिया पूरी करने के लिए उपासना करनी होती है । उसकी यथार्थता इसी में है कि आदर्शों के परिपालन तथा कर्तव्यों के निर्वाह में कहीं चूक न होने पाये । इसका ध्यान उपयुक्त समय पर किया जाय । उसमें चूक न होने दी जाय । जब हर दिन बुहारी लगती है । नहाने, कपड़े धोने रसोई बनाने आदि का क्रम बिना नागा चलता है तो ईश्वराधन की प्रक्रिया भी नियमित रूप से बिना नागा की जाती रहे ।

ईश्वर को हमारी पूजा की आवश्यकता भले ही नहीं पर हमें उसका प्रयास नित्य नियमित रूप से करना चाहिए । यह हमारी व्यक्तिगत आवश्यकता है, जिसके बिना आत्मोत्कर्ष के मार्ग में भारी व्यवधान खड़ा होता है ।

उपासनात्मक अनेकों क्रिया-कलापों में ध्यान धारणा ऐसी है जिसे उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए । ध्यान भी कई प्रकार के हैं उनमें से अधिकांश में ईश्वर की छवि की कल्पना की जाती है साथ ही उसके सान्निध्य की अपेक्षा भी । इस सही प्रक्रिया के साथ इतना और जोड़ना चाहिए कि परमात्मा और आत्मा के अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्मरण रखा जाय उसे सर्वव्यापी न्यायकारी माना जाय । मानव-जीवन प्रदान करने की अनुकम्पा और उसके साथ जुड़ी हुई जिम्मेदारी को एक क्षण के लिए भी भुलाया न जाय । स्मरण के लिए यह तारतम्य भी जुड़ा रखा जाय कि जो आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है उसका निर्वाह बिना प्रयास के किया जाता रहे । यह सब ठीक तरह हो रहा है या नहीं इसके लिए चिन्तन मनन किया जाता है । वस्तुतः आत्म सुधार और आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया जिस आधार पर पूरी होती है वही सच्चा भजन एवं ध्यान है ।

जीवन के स्वरूप उद्देश्य एवं सदुपयोग का तालमेल अपनी विचारणाओं एवं गतिविधियों के साथ ठीक प्रकार बैठ रहा है या नहीं ? इसका ध्यान हर घड़ी रहना चाहिए । जहाँ चूक चल रही हो उसे सम्भालने सुधारने की चेष्टा सतर्कतापूर्वक की जानी चाहिए । ऐसा न हो कि इस संदर्भ में उपेक्षा चल रही हो और चिन्तन में भ्रष्टता का, चरित्र में दुष्टता का अनुपात बढ़ता जा रहा हो । जो सब करते हैं उसी का अनुकरण किया जा रहा हो । अधिकांश व्यक्ति प्रमाद में समय गुजारते और अकरणीय कृत्य के अभ्यस्त होते हैं । उनसे अपनी पहचान अलग रहनी चाहिए । नर पशुओं के झुण्ड में उन्हीं का एक सदस्य बनकर रहा गया तो यह मानवी गरिमा का संरक्षण कहाँ हुआ ? अपना स्तर घटिया तो नहीं बनता जा रहा है इसकी जाँच पड़ताल हर घड़ी ध्यानपूर्वक होती रहनी चाहिए ।

ध्यान की एक प्रक्रिया एकाग्रता साधना के लिए की जाने वाली कसरत की तरह भी है । चंचल मन को बाहर जैसी उछल-कूद करते रहने अपनी शक्ति गँवाने की छूट नहीं मिलनी चाहिए । असंयम को जीवन के किसी पक्ष पर हठी नहीं होने देना चाहिए । इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का घेरा बनाकर रहने से शक्तियों का अपव्यय रुकता है । एकाग्रता सधती है और मन को ज्ञान-साधना एवं भाव-साधनाओं की उच्चस्तरीय क्रिया पद्धति में नियोजित किया जा सकता है । किसी देव-प्रतिमा या महामानव के चित्र पर चित्त जमाकर उसके साथ तन्मय होने की भाव-साधना भी ध्यान कहलाती है । ऐसा आये दिन कई-कई बार करते रहने से मनोनिग्रह की सिद्धि मिलती है । निग्रहीत मन वाला लक्ष्य के साथ तन्मयता अपनाकर बड़ी-बड़ी सफलताएँ प्राप्त करता है ।

एक ध्यान संचय का है । इसके लिए उदीयमान स्वर्णिम सूर्य को ध्यान का माध्यम बनाया जाना चाहिए । आँख बन्द करके भावना करनी चाहिए कि प्रभात कालीन उदीयमान सूर्य की किरणें अपने शरीर पर पड़ रही हैं, जो शरीर को बल, मस्तिष्क को ज्ञान और हृदय को भाव-सम्वेदनाओं से भर रही हैं, नाभिचक्र को स्थूल शरीर का, हृदय को सूक्ष्म शरीर का, मस्तिष्क मध्य ब्रह्मरंध्र को कारण शरीर का केन्द्र बिन्दु माना गया है । इन तीनों में सूक्ष्म स्तर की तीन ग्रन्थियाँ हैं जिन्हें कमल भी कहते हैं । सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं और सुगन्ध तथा सोम से समूचे क्षेत्र को भर देते हैं । यह ध्यान प्रातःकाल किया जाना चाहिए । तीनों कमल चक्रों को त्रिविध शरीरों के केन्द्र बिन्दुओं को विकसित होने की भावना करनी चाहिए । यह साधना प्रक्रिया तीनों शरीरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को विकसित करती हैं । उन्हें ओजस्, तेजस्, एवं वर्चस् से सराबोर करती है ।

ध्यान की अनेकों विधियाँ हैं और उनके विभिन्न स्तर के प्रयोजन भी हैं । उनमें से उपरोक्त तीन ऐसे हैं जिन्हें सर्वसुलभ और सर्वोपयोगी कहा जा सकता है ।

समाधि मात्र कौतूहल नहीं है

अष्टांग राजयोग का अन्तिम चरण है—"समाधि" । यह बुद्धि की चंचलता एवं विडम्बना को श्रेष्ठ सम्यक् बनाने से प्राप्त हुई सफलता है । 'धी' बुद्धि को कहते हैं । सम अथवा सम्यक् कहते हैं, स्थिर एवं सन्मार्गगामी को । यह बन पड़े तो समझना चाहिए कि देव जीवन में प्रवेश पाने की भूमिका बन गई ।

मन कल्पनाएँ करता रहता है । उसकी तरंगें ललक-लिप्साओं पर आधारित होती हैं । उनमें से अधिक बेतुकी और असंगत होती हैं । बुद्धि की सत्ता निरीक्षण-परीक्षण का काम करती है । जो सम्भव है, जो व्यावहारिक है उसे रोक लेती है और शेष अनगढ़ उड़ानों को अपने रास्ते चले जाने देती है । कल्पनाएँ तो विक्षिप्त उन्मत्त भी करते रहते हैं, पर बुद्धिमान उन्हें सुव्यवस्थित करते हैं । जो बेसिर पैर की हैं, कार्यान्वित होने वाली नहीं हैं, वे कुछ देर मन रूपी बालक को रंगीले खिलौनों से खिलाकर अपनी राह चली जाती हैं । इनमें से कुछ कुकल्पनाएँ होती हैं । उनके साथ भय, आशंका, आक्रोश, आवेश जैसे अवांछनीय तत्व जुड़े होते हैं । वे डराती भी रहती हैं और कई बार कुमार्ग पर चलने की प्रेरणाएँ भी देती हैं । मनःक्षेत्र में यही धमाचौकड़ी चलती रहती है । मन में बेतुकी तरंगें उठती हैं उनमें से जो सारगर्भित दीखती हैं उन्हें बुद्धि पकड़ती है और सम्भावनाओं पर विचार करती रहती है । जिन्हें वह लाभदायक सम्भव मानती है, पर विचार करना आरम्भ कर देती हैं । अधिक काट-छाँट करने के बाद उसे जो व्यावहारिक प्रतीत होता है उसका ताना-बाना गढ़ती हैं । साधन सरंजाम जुटाने वाले ताने-बाने बुनती हैं । आये दिन यही क्रम चलता रहता है । अनेक गढ़ने पर उनमें से कुछ ही ऐसी हैं जो कार्य रूप में परिणत हो पाती हैं और सफलता के स्तर तक पहुँचती हैं । यह प्रक्रिया नैतिक ही हो यह आवश्यक नहीं । उनमें से कितनी ही ऐसी भी होती हैं जो अनैतिक अव्यवहारिक एवं दुष्परिणाम करने वाली होती हैं । बुद्धि की तीक्ष्णता एक बात है और जो श्रेयस्कर है, उसी में हाथ डालना दूसरी । तथाकथित बुद्धिमान छल-प्रपंच भी रचते हैं और ऐसे कृत्य भी करते रहते हैं जिनके कारण अपयश पाना और संकटों में उलझना पड़े । जेल में बन्द कैदी प्रायः इसी स्तर के होते हैं ।

किन्हीं विरलों की बुद्धि मानसरोवर के राजहंसों जैसी होती है । उसे नीर-क्षीर विवेक में प्रवीणता प्राप्त होती है । उसकी चोंच दूध पीती और पानी छोड़ देती है । मोती बीनती और कीड़े छोड़ देती है । इस संसार में सब कुछ घुला-मिला है । हर क्षेत्र में बुराइयों और भलाइयों का सम्मिश्रण पाया जाता है । यह अपनी समझ पर निर्भर है कि दोनों में से किसका चयन किया जाय । भौंरे पुष्पों पर मँडराते हैं, जबकि गोबर में पलने वाले कीड़े कहीं न कहीं गन्दगी तलाश लेते हैं और उसी में धँसकर मौज मनाते हैं ।

राजहंस का अनुसरण करने वाली बुद्धि को मेधा या प्रज्ञा कहते हैं । जो मात्र ब्रह्म भाव में रमण करती है, उसे भूमा कहते हैं । इन्हें दृष्टिकोण की भिन्नता भी कहा जा सकता है, दूरदर्शी, विवेकशीलता की सूझबूझ भी । यही ब्रह्म परायण भी है और धर्म चेतना भी । योग विज्ञान की दृष्टि से इसे 'समाधि' की संज्ञा दी जाती है । बुद्धि की उत्कृष्टता का यही चिन्ह है कि वह उत्कृष्ट को ही चिन्तन क्षेत्र में स्थान दे । आदर्शयुक्त कार्यों को ही आचरण में उतरने दे । किसी के साथ ऐसा भी व्यवहार न होने दे जो मानवी गरिमा की दृष्टि से हेय पड़ता हो ।

व्यावहारिक समाधि यही है । सर्वसुलभ भी और सर्वोपयोगी भी । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए बुद्धि की गतिविधियों पर निरन्तर निरीक्षण-परीक्षण करते रहने वाला तन्त्र बिठाना पड़ता है । खरा-खोटा परखने वाली कसौटी सोने को छूते ही उसका स्वर प्रकट कर देती है । बुद्धि तो संकीर्ण स्वार्थपरता से, आदतों से प्रभावित रहती है । उसका काम अपने यजमान मन की हाँ में हाँ मिलाना, उसकी इच्छाओं को पूरी करते रहना है । आम आदमी की बुद्धि ऐसी ही होती है, किन्तु विवेक का परीक्षण यह जाँच सकता है कि किस निर्धारण का औचित्य है किसका नहीं । इतना ही नहीं लिप्सा-लालसाओं को अस्वीकृत कर देने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भी समर्थ होता है । बुद्धि की सिफारिशों को रद्द भी कर सकता है ।

मन की चंचलता के साथ जो अपनी चेष्टाओं को जोड़ते हैं, उन्हें बाल-बुद्धि या बचकाने कहते हैं । समझदारी तब आरम्भ होती है, जब बुद्धि अपना काम जिम्मेदारी से सँभालती है । कल्पनाओं में काट-छाँट करते रहते हैं । उन्हीं को हाथ में लेती है जिन्हें उपयोगी एवं व्यावहारिक मानते हैं । बुद्धिमानों के क्रिया-कलाप ऐसे होते हैं, जिसके सत्परिणाम निकलें और अगणित लोग सराहें ।

उससे ऊँची कक्षा प्रज्ञा की है, जिसे समाधि भी कहते हैं । जिस मानस पर प्रज्ञा का आधिपत्य होता है वह मात्र आदर्शों को ही अपनाती है । उत्कृष्टता की कसौटी पर हर विचारणा, निर्धारणा एवं योजना को कसते हैं । महामानवों जैसे पुण्य परमार्थ से भरे-पूरे निश्चय करती है और मार्ग चुनती है । उच्चस्तरीय चिन्तन और चरित्र उन्हें नर-नारायण का स्तर प्रदान करता है । ऐसे लोग देवात्मा, पुण्यात्मा एवं पुरुष-पुरुषोत्तम जैसी विभूतियों से अलंकृत किए जाते हैं । उनकी परा दृष्टि को समाधि नाम से भी सम्बोधित करते हैं । सामान्य परिस्थितियों में भी उनकी मनःस्थिति उच्चकोटि की बनी रहती है । मनुष्य कलेवर में वे देवों की तरह रहते और लोकोपयोगी कार्यों में निरत रहते हैं ।

समाधि का एक क्रिया पक्ष भी है, जिसमें संकल्प बल को इस सीमा तक विकसित करना पड़ता है कि मन क्षेत्र पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त किया जा सके । यहाँ तक कि उसकी हलचलों को भी बन्द किया जा सके । ऐसे लोग उस शून्यावस्था में चले जाते हैं, जिसमें रक्त संचार तो जारी रहता है, पर मस्तिष्क चेतना विहीन हो जाता है । यह प्रयोग इच्छित समय के लिए संकल्प लेकर किया जाता है । अवधि पूरी होने पर जागृति स्वयमेव वापस लौट आती है । यह एक चमत्कारी कृत्य है जिसे हठयोग के साथ जुड़ा हुआ समझा जाता है । विचार प्रणाली को अवरुद्ध करना, हृदय की धड़कन को घटा देना, श्वास-प्रश्वास को सीमित कर देना और जागृत अवस्था में ही निद्रा की स्थिति में पहुँच जाना यह संकल्प बल के चमत्कार हैं । इच्छा शक्ति में न केवल विचारों को अपने साथ ले चलने की, उन्हें ऊँचा उठाने नीचे गिराने की सामर्थ्य है, वरन् उसमें प्रचण्डता आने पर यह स्थिति भी आ जाती है कि शरीर के किसी अंग की क्षमता को घटा या बढ़ा सकें । हठयौग की समाधि इसी अभ्यास के बढ़े-चढ़े रूप से प्रभावी है । इतने पर भी यह नहीं सोचना चाहिए कि समाधि वाला व्यक्ति मनोजय कर चुका, मेधा प्रज्ञा को जगा सकने में समर्थ हो चुका । ऐसी स्थिति जब तक प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक आत्मिक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा नहीं होता, आत्मवृत्त बढ़े बिना मनुष्य का देवत्व जगता नहीं । इस अभाव के रहते शाप वरदान दे सकने जैसी ऋद्धि-सिद्धियों का दर्शन भी नहीं होता । वह भाव-सम्वेदना का विषय है । जबकि शरीर को शिथिल तन्द्रित या निश्चेष्ट कर देना मात्र संकल्प शक्ति बढ़ा लेने का चमत्कार । यह सरकस में दिखाये जाने वाले अजूबों के समतुल्य है, जिनमें अभ्यास करने वाले जानवर भी कितने ही ऐसे कौतुक दिखाने लगते हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है ।

हाट-बाजारों में समाधि लगाने का प्रदर्शन करने वाले, गड्ढे में बैठने-उठने पर पुजापा बटोरने जैसी प्रदर्शन परक विडम्बनाएँ कोई सच्चे अर्थों में सिद्धि क्षेत्र तक पहुँचा हुआ व्यक्ति नहीं दिखा सकता । आत्म-साधनाएँ और उनकी सिद्धियाँ तो प्रायः गोपनीय रखी जाती हैं । उन्हें प्रदर्शन से बचाया जाता है । कौतुक-कौतूहल का रूप देकर भीड़ इकट्ठी नहीं की जाती । इस आधार पर भावुक लोगों की जेबें खाली नहीं कराई जातीं । इन कौतूहलों को देखकर सामान्यजन भ्रम में पड़ते हैं और उद्देश्यों को भूलकर इन तथाकथित सिद्ध पुरुषों के आगे-पीछे मनोकामनाएँ पूरी कराने के निमित्त फिरने लगते हैं । यह साधनारत योगीजनों के लिए और सर्वसाधारण के लिए अहितकर ही है ।

योग के तत्व-दर्शन की खोज करने वाले को, पातंजलि अष्टांग योग के जिज्ञासुओं को इतना ही समझना पर्याप्त है कि सिद्धावस्था तक पहुँचते ही विचारणाओं और भावनाओं पर पूरी तरह नियन्त्रण हो जाता है । न मन निरर्थक कल्पनाएँ करता है और न भावनाओं में हीनता आती है । सुदृढ़ सुनिश्चित मान्यताओं का परिपक्व होना और आत्मजय प्राप्त कर लेना ही समाधि का व्यावहारिक रूप है, जिसकी ओर क्रमशः बढ़ा जा सकता है ।

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

|| योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ||

चित्तवृत्ति निरोध का तत्व दर्शन

योग शब्द बहुचर्चित है । इसका सामान्य अर्थ कौतुक कौतूहलों के साथ जोड़ा जाता है । योगी से आशा की जाती है कि वह कोई ऐसा अजूबा पेश करे, जिससे उसकी विलक्षणता सिद्ध होती हो । शरीर से कोई ऐसी हरकत कर दिखाये जिसे सामान्य जन न कर सकते हों । वस्तुओं की कुछ ऐसी उलट-पुलट करे जैसा कि लोक-प्रचलन में संगति न होती हो । मदारी-बाजीगर प्रायः ऐसे ही अजूबे दिखाते रहते हैं । कोई-कोई तो उन्हीं को योगी मान बैठते हैं । पर जब उनके फटे हाल होने और सड़क पर बैठकर कैसा प्रदर्शन करते—पैसा माँगते दीखते हैं तो विश्वास नहीं होता और समझा जाता है कि असल की नकल हो रही है । सिद्धियों के बारे में जो लोक-कल्पना प्रचलित है उस कौतूहल के कारण ही लोग उस ओर आकर्षित होते हैं ।

महर्षि पातंजलि के अनुसार योग "चित्तवृत्तियों का निरोध" है । मन का स्वभाव चंचल है । यह उसकी संरचना भी है और विशेषता भी । इसी आधार पर अगणित कल्पनाएँ करना और उनमें से ज्ञान अनुभव के आधार पर काट-छाँट करके जो उपयुक्त हैं, उन्हें रोक कर शेष को भगा देना, इसी आधार पर बन पड़ता है । मन में चंचलता न हो तो फिर वह कल्पना करने, निष्कर्ष निकालने तक में समर्थ न हो । तब उसे घटिया जीव-जन्तुओं की तरह प्रकृति प्रेरणा से शरीर यात्रा भर की हलचलें अपना सकना ही बन पड़े । चंचलता दोष नहीं गुण हैं । जिसकी कल्पना शक्ति जितनी प्रखर होती है, जिसका मन जितना अधिक दौड़ता है वह उतना ही अधिक बुद्धिमान सिद्ध होता है ।

चित्तवृत्तियों के निरोध के दो अर्थ हैं—एक यह कि अनावश्यक, निरुद्देश्य कल्पनाएँ न करने के लिए मन को सधाया जाय । उस पर ऐसा अनुशासन लगाया जाय कि वह किसी भी विषय की कैसी ही अनगढ़ कल्पना न करने लगे । उसकी गतिशीलता एक निर्धारित मार्ग पर ही चले । वर्जनाओं का व्यतिक्रम न करे । परिस्थितियों को देखते हुए जो सम्भव नहीं उसके लिए ख्वाबी पुलाव न पकाये । बिना पंख की रंगीली उड़ानें न उड़े । दिवा स्वप्न न देखे । शेखचिल्ली का उपहासास्पद उदाहरण प्रस्तुत न करे । जो सोचना हो दिशाबद्ध सोचे । सामर्थ्य, परिस्थिति और सम्भावना का तालमेल बिठाते हुए चिन्तन का ऐसा मार्ग निर्धारित करे जिस पर चलने का प्रयास करते हुए किन्तु उपयोगी उपलब्धियों को हस्तगत करने की सम्भावना बने, आशा बँधे ।

वस्तुतः चिन्तन को सीमाबद्ध, दिशाबद्ध रखने वाले ही साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, अन्वेषक स्तर के होते हैं । शोध प्रबन्ध लिखने वालों को इसी मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है । आर्किटेक्ट स्तर के लोग विशाल भवनों में प्रयुक्त होने वाली छोटी से छोटी वस्तुओं का भी विवरण बना देते हैं । महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनाने वाले ऐसे ही सधे हुए मस्तिष्क वाले होते हैं । उस विशेषता का अभाव रहने पर सुविकसित स्तर के मनुष्य भी बेसिलसिले की कल्पनाएँ करते रहते हैं । किसी प्रसंग के पूरा होने से पूर्व ही अन्य प्रकार के विचारों में लौट पड़ते हैं । ऐसे लोग कोई काम पूरा करना तो दूर, विवेचन या निर्धारण तक ठीक प्रकार नहीं कर पाते । उन्हें सदा असफलताओं का ही मुँह देखना पड़ता है । अपूर्णता रहने की स्थिति में कोई काम नहीं बन पड़ता । इस कठिनाई से उबरने और सफलता की दिशा में सुनियोजित गति से बढ़ने का लाभ जिस एकाग्रता के सहारे बन पड़ता है, उसी को अर्जित करने के लिए योग दर्शन के प्रवक्ता पातंजलि ने 'चित्तवृत्ति का निरोध' कहा है ।

दूसरा अर्थ चित्तवृत्ति का—पशु-प्रवृत्तियों के रूप में लिया जाता है । अन्य जीवधारियों की तरह मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी पशु वर्ग का एक प्राणी है । उसकी कायिक संरचना बन्दर से मिलती-जुलती है । डार्विन जैसे विकासवादियों ने उसे बन्दर की औलाद ठहराया है । प्राणि समुदाय में कुछ मौलिक प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं उसी के सहारे वे निर्वाह साधन जुटाते और कठिनाइयों से यथासम्भव बचने का प्रयत्न करते रहते हैं । आहार उपलब्ध करने के लिए दौड़-धूप करने और वंशवृद्धि का अवसर मिलने पर उसके लिए बेचैन हो उठने की प्रवृत्ति इन सभी में समान रूप से पायी जाती है । इसके अतिरिक्त सुविधा, साधनों पर लपक पड़ने, साथियों को धकेल कर अपना काम बना लेने की आदत भी उनमें होती है । जिससे अपने क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की आशंका हो, उससे लड़ पड़ने का स्वभाव भी उनका होता है । घाटा या खतरा दीखने पर पलायन करते भी वे देखे जाते हैं । संक्षेप में यही प्राणि प्रवृत्तियाँ हैं ।

मनुष्य का स्तर अन्य जीवधारियों से ऊँचा है । वह उन्हीं प्रवृत्तियों को अपनाये तो फिर सामाजिक प्राणी न बन सकेगा । स्वार्थों की लड़ाई हर घड़ी बनी रहेगी । समर्थता और बुद्धिमत्ता के रूप में जितना कुछ विशेष मिला है, उसका उपयोग इसी प्रयोजन के लिए होता रहेगा जिसके लिए कि अन्य प्राणी किया करते हैं । ऐसी दशा में स्नेह-सौजन्य के विकसित होने की आशा नहीं की जा सकती । इस अभाव में सहकार भी चले, आदान-प्रदान एवं अनुदान-प्रतिदान का क्रम भी बने यह सम्भव नहीं हो सकता ।

पशु-प्रवृत्तियों को एक शब्द में संकीर्ण स्वार्थपरता कहा जा सकता है । उसमें निर्बलों पर आक्रमण करने की, सुविधाओं को लूट लेने की पूरी छूट है । व्यक्तिगत संयम अथवा अनुशासन के लिए जितने प्रतिबन्ध प्रकृति ने लागू रखे हैं उतना ही वे पालन करते हैं । सामाजिक विग्रह एवं उत्कर्ष का विचार करके वे कोई नियम निर्धारित नहीं करते और न ऐसे अनुशासन बनाते या अपनाते हैं जिससे समुन्नत स्तर का व्यक्तित्व उगाया या समाज व्यवस्था के माध्यम से बन पड़ने वाला प्रगति क्रम चलाया जा सके । मानवी उत्कर्ष इन्हीं सीढ़ियों पर क्रमिक पदार्पण करते हुए सम्भव हुआ है । यदि पशु-प्रवृत्तियों पर नियमन न हो सके तो फिर समझना चाहिए कि आदिम युग के वनमानुषों की स्थिति में वापस लौटने के लिए विवश होना पड़ेगा ।

चित्तवृत्तियों के निरोध का दूसरा तात्पर्य यही है कि वैयक्तिक कर्त्तव्यों एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों के लिए उन प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया जाय जो वनमानुष काल से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में अचेतन क्षेत्र में दबी पड़ी हैं । नीति-धर्म और अनुशासन के अनुयायियों को तोड़कर जो दाँव लगते ही उसी पुराने अभ्यास को कार्यान्वित करने लगती हैं जिसे मानवी स्तर से विकास को देखते हुए हेय ठहराया और दण्डनीय अपराधों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है । इस रोकथाम के लिए आवश्यक है कि ऐसा चिन्तन-क्रम अपनाया जाय । ऐसी मान्यता, भावना एवं आकांक्षा का घेरा बनाया जाय जिससे पशु-प्रवृत्तियों को उच्छृंखलता प्रकट करने से पूर्व ही जकड़ा और मर्यादा में रहने के लिए बाधित किया जा सके ।

यही है चित्तवृत्तियों के निरोध का योगानुशासन जिसे अपनाने पर मानसिक बिखराव रुकता और अनौचित्य अपनाने पर अंकुश लगता है । यह प्रयास देखने में निषेधात्मक लगता है, पर वह उतना सीमित है नहीं । बिखराव और अपव्यय की रोकथाम करने पर सहज ही सामर्थ्य का संचय होता है । इस संचय को उपयोगी दिशा में नियोजित करना योग का दूसरा प्रयोजन है । अपव्ययी, आलसी, दरिद्र के लिए तो उन्नति के सभी द्वारा बन्द हैं जबकि जमा पूँजी होने पर उसके सहारे सुविधा एवं प्रगति के अनेकों सरंजाम जुटाये जा सकते हैं । आत्मिक प्रगति का यही एकमात्र सुनिश्चित मार्ग है ।

अन्तःकरण चतुष्टय का परिचय

मानव शरीर के दो भाग हैं—एक जड़, दूसरा चेतन । जड़ भाग में हाड़, माँस, रस, रक्त आदि से बना हुआ स्थूल शरीर है । इसके भीतर जो चेतना शक्ति काम करती है उसी के कारण जीवन स्थिर रहता है । उस चेतना का अन्त होते ही मृत्यु हो जाती है और शरीर तत्काल सड़ने लगता है ।

चेतना शक्ति को चार भागों में बाँटा गया है । इस विभाजन का तात्पर्य यह है कि उसकी कार्य प्रणाली चार दिशाओं में काम करती है—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों की सम्मिलित शक्ति को अन्तः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करण चतुष्टय कहते हैं । आइये, इनका कुछ परिचय प्राप्त करें ।

(१) मन का कार्य इच्छा करना, चाहना, कल्पना करना है । तरह-तरह की वस्तुओं की इच्छाएँ मन के द्वारा होती हैं, कल्पना करना इसका प्रधान गुण है, इसलिए क्षण भर में पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाता है । इसकी उड़ान बड़ी तेज है । मन के बराबर तीव्र-गति से और कोई नहीं दौड़ सकता । यह एक स्थान पर देर तक स्थिर नहीं रहता । भोग भोगने का साधन तो इन्द्रियाँ हैं पर कारण, मन है । मन की इच्छा और प्रेरणा से ही इन्द्रियाँ विविध प्रकार के भोगों के लिए संलग्न होती हैं । मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहा जाता है, यद्यपि वह अन्य इन्द्रियों की भाँति दिखाई नहीं देती तो भी रसानुभूति में सबसे आगे है, सबका नेता है । यदि मन उदास हो, खिन्न हो तो आकर्षक भोग भी नहीं सुहाते और यदि मन की प्रेरणा प्रबल हो तो निर्बल इन्द्रियाँ भी उत्तेजित होकर उधर लग जाती हैं । मन की इच्छाएँ और कल्पनाएँ यदि सन्मार्ग गामी हों, तो मनुष्य को आत्म कल्याण का मार्ग प्राप्त करने में देर नहीं लगती और यदि वह कुमार्ग गामी हों तो पतन का गहरा गर्त सम्मुख ही उपस्थित है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए गीताकार ने कहा है कि—"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है । वश में किया हुआ मन, सबसे बड़ा मित्र है और असंस्कृत मन से बढ़कर मानव प्राणी का दूसरा शत्रु नहीं । यही कारण है कि आत्म-कल्याण की इच्छा करने वाले को मन के वश में करने की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है ।

(२) बुद्धि का कार्य है—निर्णय करना । मन अनेक प्रकार की ऊबड़-खाबड़ कल्पनाएँ करता रहता है । बुद्धि उसमें से उपयोगी कल्पनाओं को स्वीकृत करती है और अनुपयोगियों को त्याग देती है । तर्क करना बुद्धि का प्रधान हथियार है । कारण, परिस्थिति, अनुभव, उदाहरण, अवसर, प्रमाण, साधन, पात्र, सामर्थ्य, आदि का ध्यान रखते हुए, इन कसौटियों पर कसते हुए, बुद्धि यह निर्णय करती है कि—क्या करना चाहिए क्या न करना चाहिए ? यह तो हुई बुद्धि की सामान्य कार्य पद्धति । विशुद्ध बुद्धि, ऋतम्भरा बुद्धि प्रायः उच्च कोटि की आत्माओं की ही होती है ।

साधारण मनुष्यों की बुद्धि श्रेय या प्रेय में से एक पक्ष की ओर झुकी होती है । 'श्रेय' का अर्थ है—आत्मा का स्वार्थ, परमार्थ । 'प्रेय' का अर्थ है सांसारिक सुख, भौतिक लाभ । जैसे—मुकदमे में वादी और प्रतिवादी के वकील एक ही बात पर परस्पर विरोधी तर्क करते हैं और अपने पक्ष को निर्दोष तथा दूसरे पक्ष को दोषी सिद्ध करने के लिए बड़ी प्रभावपूर्ण बहस करते हैं । उसी प्रकार श्रेयानुगामिनी बुद्धि उन तर्कों को प्रधानता और मान्यता देती है जो आत्मा के स्वार्थ को पूरा करते हों, चाहे उनके लिए कुछ सांसारिक लाभों को छोड़ना भी पड़ता हो । इसी प्रकार प्रेयानुगामनी बुद्धि को वे तर्क, प्रमाण और उदाहरण पसन्द आते हैं जो सांसारिक सुख साधना को बढ़ावें फिर चाहे धर्म कर्त्तव्य को उसके लिए छोड़ना भी क्यों न पड़ता हो ।

विवेकशील मनुष्य वे हैं—जो दोनों का समन्वय करते हैं । वे ऐसी नीति, एवं कार्य पद्धति को अपनाते हैं जो दोनों लाभों को साथ-साथ ले चले । वे जानते हैं कि 'अति' करना यह मध्यम स्थिति में उचित नहीं । सामान्य जीवन में अति लोभ की भाँति अति त्याग भी कष्टदायक है । अति भोग की भाँति अति तितीक्षा भी स्वास्थ्य के लिए अहितकर है । धर्मपूर्वक जीविका कमाना असम्भव नहीं है, संयमपूर्वक ऐश्वर्य का उपयोग न हो सके ऐसी बात नहीं है, ग्रहस्थ में रहकर राजा जनक की भाँति विरक्त रहना असाध्य नहीं, स्वार्थ और परमार्थ का एकीकरण हो सकता है । यही मध्यम मार्ग बुद्धिमान मनुष्यों को प्रिय होता है । इस साधना के उपरान्त धीरे-धीरे बुद्धि की स्थिति ऊँची हो जाती है तब वह ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है । उस दशा में वह स्वार्थ और परमार्थ दोनों पक्षों को छोड़ देती है । केवल दैवी प्रेरणा एवं ईश्वरीय आज्ञा ही उसका आधार रह जाता है । परमहंस और जीवन-मुक्त आत्माएँ उसी दिव्य प्रेरणा के आधार पर काम करती हैं ।

(३) चित्त का तात्पर्य है—स्वभाव, आदत, टेव, अभ्यास, संस्कार । दीर्घकाल तक जो विचार पद्धति एवं कार्य प्रणाली अभ्यास में, उपयोग में आती रहती हैं, मनुष्य उसका आदी हो जाता है । उसे छोड़ने में बड़ी हिचकिचाहट होती है । जैसे—दो मित्र दीर्घकाल से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साथ-साथ रहते चले आयें तो स्थायी वियोग के अवसर पर उनकी भावना उमड़ आती हैं और वे अलग नहीं होना चाहते । इसी प्रकार जो स्वभाव, विचार, आचार, बहुत दिनों से अभ्यास में आये हैं, वे चित्त में संस्कार रूप से जम जाते हैं और जीवन का क्रम उसी आधार पर चलने लगता है । भिखारी, चोर, नशेबाज दुराचारी, आलसी स्वभाव के मनुष्य जानते हैं कि हमारी गतिविधि हमारे लिए दुःखदायी हैं पर उनके मस्तिष्क और शरीर को ऐसा अभ्यास पड़ा होता है कि अनिच्छा होते हुए भी आदत से लाचार होकर उसी कर्म में बार-बार प्रवृत्त हो जाते हैं । कई व्यक्ति रूढ़ियों, दृढ़ विश्वासों, अन्ध परम्पराओं और पुरातन पंथी से ऐसे बेतरह चिपके होते हैं कि विवेक बुद्धि, उपयोगिता, सामयिक आवश्यकता आदि का कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ता और जो कुछ भला बुरा अब तक होता चला आया है उसमें तनिक भी परिवर्तन स्वीकार नहीं करते । यह चित्त की स्थिति का ही खेल है ।

धन को सुरक्षित रखने के लिए तिजोरी का घर में रहना आवश्यक है, पर यदि दुर्गन्ध युक्त गंदगी तिजोरी में भर कर रखी जाय तो तिजोरी का भी दुरुपयोग होता है और गन्दगी की बदबू से होने वाली हानि भी चिरस्थायी हो जाती है । चित्त के सम्बन्ध में भी यही बात है । प्रभु ने मनोमय कोष में चित्त का बहुमूल्य भाग इसलिए दिया है कि उसके द्वारा उत्तम स्वभाव को सुरक्षित और चिरस्थायी रखा जा सके । आजकल हमारे चित्त बड़ी दुर्दशा में हैं । उसमें बुरी आदतें, नीच विचार धाराएँ, सड़ी-गली परम्पराएँ, तुच्छ कामनाएँ भरी पड़ी होती हैं । जिनका संशोधन और परिमार्जन आवश्यक है ।

जैसे कच्ची मिट्टी पानी को सोख लेती है और पानी रंग तथा गंध को देर तक अपने में धारण किए रहता है उसी प्रकार मन के द्वारा जो विचार किए जाते हैं और शरीर द्वारा जो कार्य होते हैं उनका औचित्य—अनौचित्य, पाप—पुण्य, चित्त में संस्कार रूप से जम जाता है । यह संस्कार ही समयानुसार परिपाक होकर दुःख-सुख के कर्म भोगों का निर्णय करता है । चित्त का संशोधन और परिमार्जन हो जाय तो उसमें जमे हुए जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार भी विनष्ट हो जाते हैं और चालू प्रारब्ध भोगों के अतिरिक्त भविष्य में बनने वाले दुःखदायी कर्म भोगों की अनायास ही जड़ कट जाती है ।

चित्त में जमे हुए कुसंस्कारों का मूलोच्छेदन करना और नये सुसंस्कारों को मजबूती से गहराई तक जमाना, आध्यात्मिक साधकों के लिए आवश्यक होता है । इसलिए संस्कार भूमि का, चित्त चेतना का परिमार्जन करना मनोमय क्षेत्र की साधना में एक महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाता है ।

(४) अहंकार का अर्थ है—अपने आपके सम्बन्ध में मान्यता । मैं कौन हूँ इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न व्यक्तियों के मन में विभिन्न प्रकार का होता है । कोई अपने को व्यवसाय के आधार पर, कोई सम्पत्ति के आधार पर, कोई जाति के आधार पर, कोई सम्प्रदाय के आधार पर अपने को प्रधानता देता है । ऐसी ही विविध मान्यताओं से लोग अपने आपके सम्बन्ध में मान्यता बनाते हैं । जन समुदाय से पूछा जाय कि आप लोग अपने-अपने को क्या समझते हैं, तो ऐसे उत्तर मिलेंगे जिससे पता चलेगा कि यह लोग अपने को ब्राह्मण, वैश्य, लखपती, गरीब, जमींदार, किसान, भिखारी, हिन्दू, ईसाई, विधुर, विवाहित, शिक्षित, अशिक्षित, अभागा, भाग्यवान, कैदी, शासक, रोगी, रूपवान, चोर, दानी, आदि परिस्थितियों का अपने आपको प्रतीक मानते हैं । यह मान्यता ही वह साँचा है जिसमें ढलकर वस्तुतः वह वैसा ही बन जाता है ।

अपने सम्बन्ध में स्थिर की गई भावना को, मान्यता को अहंकार कहते हैं । अभिमान और अहंकार को कई व्यक्ति एक बात समझते हैं । यह शब्द समानार्थी भले ही समझे जाते हों पर अध्यात्म शास्त्र में अहंकार का प्रयोग 'आत्म मान्यता' के सम्बन्ध में ही होता है । अहंकार मन का वह भाव है जो मोटी दृष्टि से कुछ विशेष उपयोगी नहीं ज़ान पड़ता पर वस्तुतः इसका भारी महत्त्व है । ईश्वर और जीव की पृथकता का प्रधान आवरण यह 'अहम्' ही है । यह अहंता जब तक रहती है तब तक सायुज्य मुक्ति नहीं हो सकती । ईश्वरीय प्रचण्ड तेज की एक छोटी चिंगारी जब अपने अस्तित्व की प्रथम मान्यता कर लेती है और 'मैं' का एक छोटे दायरे में अनुभव करती है तभी वह जीव संज्ञा को प्राप्त कर लेती है । ईश्वर से पृथकता में मैं की मान्यता ही जीवन का मूल कारण है । इस मान्यता को हटाकर, द्वैत को मिटाकर जब मैं और तू को एक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर दिया जाता है तो वह अद्वैत भाव ही ब्रह्म सायुज्य में परिवर्तित हो जाता है । कहा गया है कि—"अपनी खुदी मिटादे, तुझको खुदा मिलेगा ।"

अहंकार जिस प्रकार का होगा, उसी के अनुसार हमारे विचार, विश्वास आदर्श होंगे । इच्छा और आकांक्षाएँ उसी क्षेत्र में उन्नति एवं सफलता प्राप्त करना चाहेंगी । जिसके मन में अपने सम्बन्ध में यह निश्चित विश्वास है कि मैं अमुक नाम के भिखारी के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ, उसकी विचारधारा भिक्षा में और कार्य प्रणाली याचना में अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए ही अग्रसर हो सकती है । आध्यात्मिक व्यक्तियों का अहंकार सज्जन, सत्पुरुष, महात्मा, आदर्शवादी, लोकसेवी, महापुरुष, ईश्वर भक्त के रूप में होता है । इसलिए वह इसी क्षेत्र में अग्रसर होता है । वह सम्पदाओं की अपेक्षा सद्गुणों में सुख एवं सफलता अनुभव करता है । तदनुसार उसके जीवन की गतिविधि उस ढाँचे में ढल जाती है जो आत्मा की महानता, प्रतिष्ठा और सुख शान्ति के अनुरूप होती है ।

अन्तःकरण चतुष्टय के चारों भागों को—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को, जब सात्विकता के शान्ति मय पथ पर अग्रसर किया जाता है तो हमारी चेतना शक्ति का दिन-दिन विकास होता है । यह मानसिक विकास अनेक सफलताओं और सम्पत्तियों का पिता है । मनोबल से बड़ी और कोई सम्पत्ति इस संसार में नहीं है । मानसिक दृष्टि से जो जितना बड़ा है उसी अनुपात से संसार में उसका गौरव होता है । अन्यथा शरीर की दृष्टि से तो प्रायः सभी मनुष्य लगभग समान होते हैं । उन्नति के इच्छुकों को अपने अन्तःकरण चतुष्टय का विकास करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए । क्योंकि इस विकास में ही सांसारिक और आत्मिक कल्याण सन्निहित है ।

मन, बुद्धि, चित्त अहंकार का स्वरूप

हमारे मन के चमत्कार

मन मानव जीवन की सूक्ष्मतम शक्तियों का स्थल स्वरूप, अन्तर्प्रकाश का ज्योर्तिमय पिण्ड, मस्तिष्क का जज्वल्यमान नक्षत्र है । यदि शरीर रथ है, नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक-ये पाँच अश्व जुड़े हैं, बुद्धि सारथी है, तो हमारा मन सामर्थ्यवान सारथी है । इस बुद्धिरथ पर आरूढ़ हो आत्मा अज्ञान रूपी घोर शत्रु को पराजित कर अपने यथार्थ पर आसीन होती है । उपर्युक्त रथ के अश्व अत्यन्त द्रुतगामी हैं । उन्हें व्यवस्थित रखने के लिए बुद्धि को दृढ़ रखना आवश्यक है । इस बुद्धि का व्यवस्थापक मन है । मन एक महाप्रचण्ड शक्ति वाला डाइनमो (Dynamo) समझिये । यह विपुल सामर्थ्यों का वृहत् भण्डार है और नियमों को उत्पन्न करने वाला यन्त्र है । सुख, दुःख की प्रतीति, चिन्ता, हास्य का संचार, संकल्पों एवं आत्मबल का उदय अस्त इसी यन्त्र से सम्पन्न होता है । इसी के प्रताप से बुद्धि, ज्ञान संचय करती है, एवं प्रेरणा (Inspiration) की ज्योति उद्भूत होती है । धारणा, बुद्धि एवं चित्त इन तीनों की समष्टि का प्रतीक मन है । अज्ञान रूपी शत्रु-साम्राज्य के विघटन के लिए इसका नियमन प्रधान सम्मान है । यह अजर-अमर ज्योतिःस्वरूप सतत व्यापारशील तथा नवीन अनुभवों का प्रेमी है । इसकी सामर्थ्य महोदधि सी अगाध एवं व्योम सी निःसीम है ।

पाश्चात्य मनोविज्ञान वेत्ताओं ने मन के तीन भाग किए हैं—भावना (Feeling), बुद्धि (Thinking) और चित्त (Willing) । हमारे आर्य शास्त्रकारों ने अन्तःकरण को चार भागों में विभक्त किया है—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार । मनस्तत्व इन्द्रियों द्वारा उद्भूत रूप-रस, गन्ध-स्पर्श तथा शब्दमयी ज्ञान सामग्रियों की गतिविधि तथा हेयत्व और उपादेयत्व की विवेचना करना है । संसार का कोई पदार्थ ऐसा वेगवान् नहीं है ।

तुम मन की क्रियाओं का निरीक्षण कर सकते हो । वह कैसा उछल कूद मचाता है, कहाँ-कहाँ भागता है ? मालूम कर सकते हो । जो मन की नाना प्रकार की क्रियाओं का निरीक्षण करने वाला है, वह मन से कोई पृथक् सत्ता है । यह ही हमारी चेतना (Consciousness) है । चेतना ही मन की दृष्टा है । चेतना ही शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि की इष्टा है । चेतना तो केवल निरीक्षण करती है । वह मन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर पाती । मन स्वयं जड़ है, इसका विकास क्रमिक और वातावरण सापेक्ष है । भोजन, वस्त्र, स्थान तथा साहचर्य का इस पर अमिट प्रभाव पड़ता है । दृश्य, स्पृश्य, भोज्यपेय, श्राव्य तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सूँघने योग्य वस्तुओं में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों को यदि अधिकार योग्यता और स्थिति के विपरीत लक्ष्यों में प्रवृत्त न होने दिया जाय । जो वस्तु, व्यक्ति, अथवा तत्व जैसा है, उसके विपरीत उसमें कल्पना के लिए इन्द्रिय परवश मन को अवसर यदि न दिया जाय तो मन मनुष्य को ईश्वर बना सकता है ।

मन की प्रवर्तक सत्ता उसके गर्भ भाग में स्थित है । वह उसी प्रवर्तक सत्ता की प्रेरणा एवं आधार पर विविध व्यापार करता है । यह अगम्य सत्ता अमृतकुंड नामक स्थल में निवास करती है । यह महासत्ता हमारी आत्मा है । आत्मा ही मन की चालक सत्ता है । वह इसे गति (Motion) प्रदान करती है । मन का प्राण आत्मतत्व ही है । यह आत्मा ही देखने, सुनने वाला, छूने वाला, विचार करने वाला, जानने वाला, क्रिया करने वाला विज्ञान युक्त है ।

किसी भी अनुभूत विषय की मन में आवृत्ति होने लगती है । आवृत्ति के कारण बुद्धि पर उसका संस्कार संचित हो जाता है । संस्कार के दृढ़ हो जाने पर वह वस्तु अथवा अनुभूत व्यापार उद्भावक सामग्री प्रस्तुत होने पर स्मृति पट पर व्यक्त होने लगती है और क्रमशः मनुष्य के बाह्य जीवन में उसका अवतरण होने लगता है । मन मानस से भी अधिक निर्मल, सूर्य सा दीप्त और वायु से भी अधिक गतिशील है । यह मन ही मनुष्य के मोक्ष और बन्धन दोनों का साधन है । बाह्य अवयवों की समता होने पर भी मनुष्य असाधारण मन के कारण ही असामान्य बन जाता है । प्रायः मन की अवस्था तीन प्रकार की होती हैं । पहली अन्धकारमय अवस्था जिसमें मन की स्थिति जड़, निष्क्रिय जैसी बन जाती है, यह अन्धकारमय स्थिति है । तमोगुण के कारण हम इस अवस्था को प्राप्त होते हैं । ऐसे व्यक्ति उत्तम विचार करना नहीं जानते । मन की दूसरी अवस्था राजसिक अवस्था है । ऐसा व्यक्ति दौड़ धूप करता है और अपना प्रभुत्व दूसरों पर जमाता है । बलवान बनने की महत्त्वाकांक्षा उसके मन में आरूढ़ रहती है । मन की तीसरी अवस्था अत्यन्त उज्ज्वल एवं पवित्र है । यह सर्वोच्च भूमिका शनैः-शनैः अभ्यास से प्राप्त होती है । इसे तुरीयावस्था कहते हैं । धीरे-धीरे मन के दृष्टा बनने से तुरीयवस्था में प्रवेश होता है । इसी अभ्यास से हम राजयोग की सर्वोच्च समाधि प्राप्त करते हैं ।

मन की तीन भूमियाँ

पूर्ववर्तीय शास्त्रकारों के अनुसार मन की तीन भूमियाँ होती हैं—स्मृति, जागृति तथा धृति । स्मृति भूमि में मानव लोक के ज्ञान तथा अनुभव की खोज की वह दुर्लभ मन्जूषा रहती है, जिसे जागृत मन ने अतीत काल में प्राप्त किया था । "जागृति" में मन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा केवल हृदय जगत् से सम्बद्ध रहता है । धृति में पाँच ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग के बिना ही सहानुभूति पद्धति से मन में विचार जानने की शक्ति के इतने अधिक उदाहरण उपस्थित हुए हैं कि संसार को मन के इस प्राकृतिक वेग का पूर्ण विश्वास हो गया है । यह निःसन्देह सिद्ध हो चुका है कि मन में पंच ज्ञानेन्द्रियों को साधन सामग्री के बिना स्वतन्त्र रूप से अपने चहुँ ओर जो नाना प्रकार की क्रियाएँ सम्पन्न करता है । उसे जान लेने की शक्ति है ।

धृतिवस्था मन अथवा ध्यानस्थ आत्मा मनुष्याकार के तुल्य सत्य है, तो भी उसका कोई वज़न या तोल नहीं है तथा न वह दृश्य, स्पृश्य अथवा विभाज्य पदार्थ के समान ही है । सूक्ष्म दर्शक यन्त्र में वह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता । गम्भीर विचार तथा विशुद्ध विवेक भी उसके मूल को, स्वभाव को तथा उसके अन्त को ढूँढ़ने में असमर्थ है, तथापि वह मानव के मन में स्थित है एवं अत्यन्त प्रकाशवान है ।

शरीर में नाना विकारों का प्रवेश होता है, विचार के तूफान, भ्रान्ति के बवंडर भीमाकार होकर प्रविष्ट होते हैं । आशा-निराशा, संकल्प-इच्छा के झंझावात हृदय में आन्दोलित होकर ठहरते, चाहते, उद्वेग उत्पन्न करते तथा अन्ततः चिर शान्ति में विलीन होते हैं किन्तु इस दृश्यमान् जगत के नित नये-नये परिवर्तित होते हुए दृश्यों में श्रेष्ठ हमारे भीतर एक अवर्णनीय सत्ता है—जो शाश्वत है, सत्य है एवं मन के चमत्कृत प्रदेशों में निज रहस्यमय प्रकाश विकीर्ण करता है । धृतिस्थ मन के माध्यम द्वारा मनुष्य का अनन्त शक्ति से जागृत सम्बन्ध हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथेष्ट बल खींचा जा सकता है । केवल मन में बुराई से इन्कार करना यथेष्ट नहीं है । इसी प्रकार केवल मन में भलाई को स्वीकार करना ही यथेष्ट नहीं है, निरन्तर उसको समझते और प्रवृति में लाने का उद्योग करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनः क्षेत्र में चित्त की भूमिका

शरीर काम करता है और मन आदेश देता है । दोनों के बीच स्वामी सेवक का सम्बन्ध है । मन का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क शरीर का एक अंग है । उसके सम्बन्ध में व्यावहारिक जानकारियाँ भी हैं । वैज्ञानिक अन्वेषण भी हुए हैं और इसलिए उस सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना और कहा जा सकता है ।

मस्तिष्क की तीन क्रियाएँ प्रसिद्ध हैं—एक कल्पना, दूसरी धारणा, तीसरी निर्धारण है । कल्पना को मनस् कहते हैं । धारण को चित्त और विवेचन एवं निर्धारण शक्ति को बुद्धि कहते हैं । इन तीनों के सहारे से मन इस स्थिति में होता है कि कोई निर्णय कर सके ।

कल्पनाओं को आकाश में उन्मुक्त पक्षी की तरह किसी भी दशा में उड़ने की छूट है । वह कुछ भी सोच सकता है । उसे दो दिशाएँ सरल दीखती हैं । एक वह जिसमें लाभ दीखते हैं । जिह्वा और जननेन्द्रिय के स्वाद मुख्य हैं । इसके बाद मनोरम दृश्य देखने का नम्बर आता है । धन, लाभ, पारिवारिक समृद्धि, यश, पद, सम्मान आदि की कल्पना लाभ पक्ष में गिनी जाती है । हानि पक्ष में शत्रु भय, अनिष्ट की आकांक्षा, घाटा, चोरी, अभावों की खिन्नता, मरण आदि के कितने ही प्रसंगों की ओर जब कल्पनाएँ चलती हैं तो उसी ओर दौड़ती चली जाती हैं ।

अनुकूल और प्रतिकूल कल्पनाएँ मनुष्य चाहे जब चाहे जैसी कर सकता है । सम्भावना सभी की रहती है । असम्भव कुछ भी नहीं । विशेषतया कल्पना में तो कोई अड़चन है ही नहीं । मनुष्य उन्हें किसी भी खाली समय में, किसी भी स्तर की, कितनी ही देर करता रह सकता है ।

मन की दूसरी परत है "धारणा" जिसका आधार पूर्व संचित अनुभव होता है । किसी व्यक्ति या परिस्थिति के सम्बन्ध में इससे पूर्व जो जाना, सुना है उसके आधार पर धारणा बन जाती है । यह अनुभव कल्पनाओं का समर्थन या विरोध कर सकते हैं । इसके लिए मनमर्जी की बात है कि वह अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी प्रकार के उदाहरण संचय करले । उदाहरणों की कमी नहीं । वे अनुकूल पक्ष के भी मिल सकते हैं और प्रतिकूल पक्ष के भी । अपने रुझान या अभ्यास के ऊपर निर्भर रहता है कि वह किस प्रकार की धारणाओं को महत्त्व दें और उन्हें विशेष मनोयोग पूर्वक स्मरण रखें ।

इससे ऊपर की—आगे की परत "बुद्धि" है । वह पक्ष और विपक्ष की बातें सुनती है । उचित-अनुचित का, सम्भव-असम्भव का, साधन-अभावों का विचार करती है और उस आधार पर यह निर्णय करती है कि अन्तिम निर्णय क्या हो ? किया क्या जाय ? किस दिशा में कदम उठें । इन तीनों चरणों में होकर गुजरने के उपरान्त व्यक्ति का कोई कार्यक्रम बनता है । योजना निर्धारण में मन के इन तीनों विभागों का योगदान रहता है, तभी यह बन पड़ता है कि किस क्रम में, किन साधनों में कहाँ, किस प्रकार कार्यारम्भ किया जाय ।

मनःसंस्थान की इन समस्त गतिविधियों में जितनी यथार्थता रहती है, परिस्थितियों के साथ जितना तालमेल रहता है, उतना ही उचित निर्णय ठहरता है । कार्य आरम्भ कर देने के उपरान्त भी मार्ग में कितनी ही अनुकूलताएँ-प्रतिकूलताएँ आती हैं, इनका समाधान भी उसी मस्तिष्कगत तीक्ष्णता एवं व्यवहार कुशलता पर निर्भर रहता है जिसके आधार पर कि निर्धारण से पूर्व सोच-विचार किया गया था । साधारणतया इन्हीं परिस्थितियों में होकर चिन्तन तन्त्र को गुजरना पड़ता है । जो अपनी क्षमता और परिस्थितियों के साथ प्रयोजन का जितना तालमेल बिठा सकता है, उसकी बुद्धिमता उतने ही ऊँचे स्तर की मानी जाती है । जो कल्पना तो करता है पर उसके साथ परिस्थितियों का तालमेल नहीं बिठाता, वह उतना ही मन्द मति या मूर्ख कहा जाता है ।

यहाँ एक तथ्य को और भी अधिक गम्भीरतापूर्वक समझने की आवश्यकता है कि स्वच्छन्द कल्पना और बुद्धि युक्त निर्धारण के मध्य जो धारणा पक्ष है, उसकी अदृश्य भूमिका सबसे अधिक होती है । इसे चित्त कहते हैं । यह मध्यवर्ती नाभिक है जो एक शक्तिशाली सत्ता की तरह काम करता है । कल्पनाओं को भी अपने साथ उड़ा ले जाता है और उसी के अनुरूप मन पर चिन्तन सवार रहता है । इसी प्रकार चित्त ही बुद्धि को भी अपने प्रभाव में समेट लेता है । यदि अवसर ही नहीं और कार्यान्वयन भी असम्भव दीखता हो, किसी बड़े जोखिम की आशंका हो तो ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि अपनी दिशाधारा में परिवर्तन करती है अन्यथा वह भी अन्धी दौड़ में दुस्साहसपूर्वक लग जाती है । यहाँ चित्त का प्रभाव स्पष्ट है । इसी को परिष्कृत बनाने के लिए मनुष्य को अनेक साधनाएँ करनी पड़ती हैं । यह पक्ष, अनुभव, अभ्यास और दबाव से ही किसी ढाँचे में ढलता है और इस योग्य बनता है कि श्रेष्ठता से प्रभावित हो और अपनी दिशाधारा, रीति-नीति इस प्रकार बदले जिससे मानवी गरिमा के अनुरूप ऐसे काम बन पड़े जिसमें आत्म-सम्मान और लोक-सम्मान की उपयुक्त मात्रा उपलब्ध हो सके । चित्त की उत्कृष्टता का पक्षधर बनना ही वस्तुतः मनोयोग की साधना है ।

इस प्रकार चित्त की प्रमुखता अध्यात्मवादी और भौतिक, मनोविज्ञानी समान रूप से स्वीकार करते हैं । अध्यात्मवादी चित्त को आदतों का भाण्डागार कहते हैं । उसी में से वैसा कर गुजरने की प्रेरणाएँ उठती रहती हैं जैसी कि चित्त की लालसाएँ उभरती हैं । आदतें इतनी प्रबल होती हैं कि वे समूचे व्यक्तित्व पर छाई रहती हैं और नशेबाजी की तरह छुड़ाये नहीं छूटतीं । इसलिए साधना विज्ञान में हठ पूर्वक चित्त का परिशोधन करने के लिए कहा गया है । अनेक प्रकार के साधनात्मक प्रयोग इसी निमित्त किए जाते हैं । तपश्चर्या की आग को चित्त भाग में ही परिमार्जित करना पड़ता है ।

मनोविज्ञानियों की मान्यताएँ भी प्रत्यक्षतया भिन्न होते हुए वस्तुतः बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं । उनका कथन है कि शरीर की स्वसंचालित क्रियाएँ भी अचेतन मन (चित्त) के आधार पर चलती हैं । सामान्य चेतन तो विचार करने में ही लगा रहता है । पर मनुष्य का स्वभाव और व्यक्तित्व मध्यवर्ती अचेतन के अनुरूप ही ढलता है ।

मनोवैज्ञानिक परिभाषाओं के अनुरूप चेतन (कल्पना और बुद्धि), अचेतन (आदतें और शरीर की स्वसंचालित क्रियाओं का तारतम्य), सुपर चेतन (भावनाओं और सूझ-बूझ का केन्द्र) अपने-अपने काम करते रहते हैं और इन तीनों की सामर्थ्य से मानवी गतिविधियों का सूत्र संचालन होता है । मनोविज्ञान में अचेतन का कार्य रक्त संचार, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, शयन-जागरण, पाचन-विसर्जन, आदि कार्यों की अनवरत प्रक्रिया को चलाते रहना है । इसी केन्द्र पर निरोगता और रुग्णता का बहुत कुछ आधार रहता है । शरीर की स्वाभाविक गतिविधियाँ इसी की स्थिति के अनुरूप ढलती और चलती हैं ।

मन की चंचलता प्रसिद्ध है । वह क्षण-क्षण में अस्त-व्यस्त बना इधर-उधर उड़ता रहता है । एक स्थान पर न टिक पाने से किसी महत्त्वपूर्ण दिशा में गम्भीरतापूर्वक सोच सकना और तन्मयतापूर्वक प्रस्तुत कार्य कर सकना सम्भव नहीं हो पाता । एकाग्रता और तत्परता के बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती । जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य दत्तचित्त होकर करने से ही सम्पन्न होते हैं । चंचलता प्रगति पथ की सबसे बड़ी बाधा है । इसके रहते हुए सुयोग्य व्यक्ति भी पग-पग पर ठोकरें खाते और असफल रहते देखे जाते हैं । भौतिक क्षेत्र की भाँति आत्मिक क्षेत्र की सफलताएँ भी चंचलता के चित्तवृत्तियों के निरोध-परिष्कार पर निर्भर हैं । योग की परिभाषा करते हुए महर्षि पातंजलि ने उसे चित्तवृत्तियों का निरोध बताया है । इस चित्तवृत्ति को दो रूपों में देखा जाता है—एक तो अस्थिर चंचलता, दूसरे पाशविक कुसंस्कारों की ओर रुझान । इन दोनों ही अवांछनीयताओं पर नियन्त्रण स्थापित करने से चित्तवृत्ति निरोध की योग साधना सम्भव होती है । दीर्घकाल से संग्रहीत कुसंस्कारों पशुप्रवृत्तियों को परिवर्तित कर उच्चस्तरीय दिव्य आस्थाओं का स्वरूप दे देने की प्रक्रिया योग है । इसके लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ अपेक्षित है ।

शरीर को सक्रिय और मन को संतुलित एवं एकाग्र रखने पर ही इतना प्रबल पुरुषार्थ सम्भव है । एकाग्रता मन-मस्तिष्क की एक व्यवस्थित चिन्तन विधि है जिसके लिए आसन, प्राणायाम आदि की शारीरिक, मानसिक प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं । ध्यान-धारणा से मस्तिष्कीय अस्तव्यस्तता और बिखराव पर नियन्त्रण पाया जाता है, साथ ही साथ अचेतन मन की गहन परतों में दबी पड़ी विभूतियों को उभारा जाता है । इस अभ्यास में तरह-तरह की आकर्षक प्रतिमाएँ सामने रखकर अथवा उन्हें भावना क्षेत्र में बिठाकर उनके साथ एकाग्रता जोड़ने का अभ्यास किया जाता है । अध्यात्म साधना की यह एकाग्रता सम्पादन प्रक्रिया मस्तिष्क को साधने की दिशा में एक अत्यन्त छोटा सा प्रयास मात्र है । समग्र आध्यात्मिक प्रगति तभी सम्भव है जब अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना को विश्व चेतना का घटक मानकर स्वार्थ को परमार्थ में विकसित किया जाय ।

योग का लक्ष्य है—आत्मा को परमात्मा से जोड़ना । व्यष्टि सत्ता का समष्टि सत्ता में समर्पण ही योग है । यह भावोत्कर्ष की साधना द्वारा ही सम्भव है । व्यक्तिवादी अहंता और स्वार्थवादी महत्त्वाकांक्षा में परिधिबद्ध मन को सार्वभौम चेतना से जोड़कर अपने चिन्तन और कर्तृत्व को उत्कृष्ट बनाना ही आध्यात्मिक प्रगति है । इससे कम कुछ भी नहीं । सही दिशा में चलने पर मनुष्य में देवत्व के उदय की प्रक्रिया का प्रारम्भ अनिवार्य है । योग वस्तुतः एक भाव विज्ञान है, जो जीव को ब्रह्म से चिरमिलन की भावभूमिका की ओर ले जाता हैं । लघु को महान बनाने की यह विद्या है । यह मूल लक्ष्य यदि विस्मृत उपेक्षित रहा, तो फिर आसन, प्राणायाम, ध्यान, बन्ध मुद्रा आदि का अभ्यास विस्तार एक सामान्य व संकीर्ण मनःक्रीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

योग की अनेकानेक शाखाएँ हैं । उनमें से किसी एक का आश्रय लेकर अतीन्द्रिय क्षमताएँ विकसित की जा सकती हैं, परन्तु वे चमत्कारी नहीं कही जा सकतीं । वस्तुतः वह आत्म विधा का ही एक अंग है । योग का उद्देश्य वस्तुतः अचेतन मन का परिष्कार एवं विकास है । व्यक्तित्व का निर्माण अचेतन मन की गहरी परतें ही सम्पन्न करती हैं । मनोविकार बुद्धि क्षेत्र में नहीं, वरन् स्वभाव के अन्तर्गत आदतें बनकर घुस बैठते हैं । मनुष्य उनकी बुराइयाँ समझता है और छोड़ना भी चाहता है, किन्तु संचित अभ्यासों का दबाव इतना अधिक होता है कि अपने ही निर्णय के विरुद्ध रास्ते पर चलने के लिए बाध्य होना पड़ता है । इन आदतों के पीछे अचेतन मन ही काम करता है ।

शरीर की अनवरत गतिविधियों में सचेतन मन या जागृत मस्तिष्क का नगण्य जितना अधिकार होता है । संचालन अचेतन की अभ्यस्त प्रवृत्तियाँ ही करती हैं । माँसपेशियों का आंकुचन-प्रकुंचन, पलकों का निमेष-उन्मेष, भूख-प्यास, फेफड़ों का श्वास-प्रश्वास, निद्रा-जागृति आदि असंख्य शारीरिक क्रिया-प्रक्रियाएँ अचेतन मन के नियन्त्रण में ही चलती हैं । हारमोन ग्रन्थियों से लेकर प्राणों के अवधारण तक पर अचेतन का ही प्रभाव है । मनोविकारों के कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाना और सद्भावनाओं के आधार पर व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समुन्नत होते चलना, इसी संस्थान की संरचना के कारण सम्भव होता रहता है । उत्थान और पतन के बीज इसी क्षेत्र में उगते हैं । व्यक्तित्व की सुविस्तृत जड़ें इसी भूमि में घुसी होती हैं ।

अचेतन को ही 'चित्त' कहते हैं । योग द्वारा इसी का निरोध और परिष्कार-परिशोधन किया जाता है । मस्तिष्क का प्रेरक केन्द्र यही है । वह गई-गुजरी स्थिति में पड़ा रहे तो सचेतन की बुद्धिमत्ता का उपयोग धूर्तता-दुष्टता जैसे निकृष्ट प्रयोजनों के अतिरिक्त किसी रचनात्मक कार्य में सम्भव न हो सकेगा और बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य भी उज्ज्वल भविष्य का सृजन न कर सकेगा । यों तो सचेतन मन और बुद्धि को विकसित करने के लिए शिक्षा, साहित्यिक, सम्पर्क जन्य, अनुभव-सम्पादन करने जैसी अनेक विधि-व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं, किन्तु अचेतन मन की, चित्त की चिकित्सा करने में योगिक उपाय-उपचारों को ही काम में लाया जाता है जिसे अध्यात्म की भाषा में मनोमय कोष की साधना भी कहते हैं । यद्यपि आज परामनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान के अन्तर्गत भी अचेतन की क्षमता को समझने और उसमें अभीष्ट परिवर्तन करने के उपाय खोजे तथा सोचे जा रहे हैं किन्तु तत्वदर्शियों की अनुभूत पद्धति योग साधना के अतिरिक्त और कोई कारगर मार्ग अभी तक करतलगत हुआ नहीं है ।

प्रख्यात मनःशास्त्री सर अलेक्जेण्डर कैनन का कहना है कि मनुष्य इस विश्व की सबसे विलक्षण संरचना है । उसका सारतत्व मन-मस्तिष्क है और उसका नवनीत अचेतन संस्थान है । दुर्भाग्य से इसी केन्द्र की न्यूनतम जानकारी हमें उपलब्ध है । वैज्ञानिक अभी तक यह नहीं जान सके कि इस संस्थान को प्रभावित, परिवर्तित और परिष्कृत करने के लिए क्या किया जा सकता है । शरीर चिकित्सा में काम आने वाले उपचारों की पहुँच वहाँ तक है नहीं । लगता है, स्वसम्वेदन, स्वसम्मोहन और स्वनिर्देशन जैसे उन्हीं उपायों को काम में लाना पड़ेगा जिन्हें पुरातन योगीजन अपने ढंग से काम में लाते रहे हैं । जो हो संसार की सुख-शान्ति और मानवी प्रगति के मर्म केन्द्र तक हमें पहुँचना ही होगा । किसी उपाय से अचेतन को नियन्त्रित करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की विधि-व्यवस्था हस्तगत करनी ही होगी । इसके बिना समुन्नत व्यक्ति और समृद्ध विश्व की सम्भावना बन न सकेगी ।

इस तथ्य को दूरदर्शी अध्यात्मवेत्ता ऋषि-मनीषियों ने चिरकाल पूर्व ही जान लिया था । उन्होंने मानवी व्यक्तित्व का आधार केन्द्र मन के अचेतन भाग चित्त को माना है और इस बात पर बहुत जोर दिया है कि समृद्धि के अन्यान्य आधारों पर जितना ध्यान दिया जाता है उससे कम नहीं, वरन् अधिक-ही मानसिक परिष्कार पर दिया जाय । इस क्षेत्र के परिष्कार एवं विकास के बिना भौतिक एवं आत्मिक प्रगति की आशा पूरी नहीं हो सकेगी । उनके अनुसार चेतन मस्तिष्क की सक्रियता अचेतन की शक्ति तरंगों को काटती हैं । इसलिए जब चेतन मन अधिक सक्रिय होगा तो अचेतन स्वतः ही दबा और अविकसित ही पड़ा रहेगा । बौद्धिक संस्थान की सक्रियता को शिथिल करने पर अचेतन केन्द्र जागृत होता है । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जैसी साधनाओं द्वारा चेतन मन-मस्तिष्क को शिथिल, निष्क्रिय एवं शून्य स्थिति में ले जाया जाता है । तब ही दूरदर्शन, दूर-दृष्टि, विचार प्रेषण, भविष्य ज्ञान, अदृश्य का, परोक्ष का दर्शन, आदि अनेक अतीन्द्रिय क्षमताएँ प्राप्त की जा सकती हैं । सचेतन बौद्धिक मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छाशक्ति, प्राणशक्ति को अचेतन के विकास में प्रयुक्त करने पर शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन सम्भव है । अतिदीर्घजीवी होना, अतिशक्तिशाली होना, अदृश्य जगत् का ज्ञान प्राप्त करना आदि उसी स्थिति में सम्भव है ।

छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं से लेकर पशु-पक्षी तक बौद्धिक दृष्टि से मनुष्य से पिछड़े होते हैं । उनका चिन्तन और सचेतन क्षेत्र शिथिल रहता है । इसी का लाभ उनके अचेतन को मिलता है । कुत्तों की घ्राण शक्ति अति सूक्ष्म होती है । चमगादड़ के ज्ञानतन्तु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं । ह्वेल मछली का अचेतन मस्तिष्क भी बहुत क्रियाशील होता है और उसके शरीर में पनडुब्बियों की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं । समुद्री झींगे की शरीर प्रणाली, जेटविमान की प्रणाली जैसी होती है । उसका अचेतन मस्तिष्क ही इस तीव्र दौड़ में उसे समर्थ बनाता है । अनेक वन्य पशु एवं जीव-जन्तु मौसम सहित अन्यान्य प्राकृतिक आपदाओं जैसे वर्षा, भूकम्प आदि की जानकारी समय पूर्व ही अपने अचेतन मस्तिष्क द्वारा प्राप्त कर लेने में समर्थ होते हैं । वर्षा ऋतु आने से पूर्व ही चीटियाँ तथा अन्य कीड़े अपना आहार इकट्ठा कर लेते हैं । ये सभी विशेषताएँ इनके अचेतन मस्तिष्क का ही परिणाम हैं । मनुष्य के चेतन मस्तिष्क की अति सक्रियता से उत्पन्न ऊष्मा अचेतन को दबा देती है जिससे उसकी अलौकिक क्षमताएँ प्रसुप्त ही पड़ी रहती हैं ।

इसलिए योग में प्रथम चरण के रूप में मानसिक संतुलन पर बल दिया जाता है । अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त को अनुद्वेलित रखने का अभ्यास इसीलिए किया जाता है कि उसमें मानसिक ऊष्मा में अनावश्यक वृद्धि नहीं होती और अचेतन भी क्षीणता और बिखराव से बच जाता है । इस तरह मानसिक संतुलन का प्रथम चरण सध-जाने पर अगला चरण उठाया जाता है । चेतन मस्तिष्क की गतिविधियों को कुछ समय के लिए रोककर उस संस्थान में क्रियाशील विद्युत शक्ति को अचेतन क्षेत्र में नियोजित करने पर अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित होती है ।

सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी ड्रमण्ड एवं मैलोन के अनुसार मनुष्य का अचेतन मन एक तिजोरी है-समुद्र है, जिसमें सभी तरह के रत्न-भण्डार, रस एवं विष, भरे हैं, हम जिसे उभार लें, वे ही सचेतन पर अधिकार जमाये दीखेंगे । वस्तुतः अचेतन में सब कुछ दिव्य और भला ही नहीं है । पाशविक कुसंस्कार वहाँ भी विराजमान हैं जिनका परिष्कार-परिशोधन आवश्यक है । इसके लिए संतुलन और एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जागृत दिशा में ही लय कर देना पड़ता है, जिसे अष्टांग योग की चरमावस्था कहते हैं, जिसके लिए प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं । इन साधनाओं के द्वारा सचेतन मस्तिष्क की चिन्तन शक्ति एवं संकल्प शक्ति को शिथिल करते हुए वहाँ लगे तेजस् को अचेतन में नियोजित किया जाता है, तभी अनुपम दिव्यताएँ प्रकट होना शुरू होती हैं । योग और लय का आश्रय लेकर अचेतन को कुसंस्कारों से मुक्त कराने की दिशा में जो जितनी अधिक प्रगति करता है, वह उतना ही समर्थ सिद्ध पुरुष कहा जाता है । यही योग का उद्देश्य है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्तवृत्ति निरोध का विज्ञान व मनोविज्ञान

'बर्र' यों एक छोटा-सा जीव लगता है, बड़ी सारंग मधुमक्खी (डारसेटा) का भी शरीर पौन इन्च से बड़ा नहीं होता पर कभी छेड़ दिया जाय तो इनकी भयंकरता देखते ही बनती है, इसी प्रकार मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ जिनका सामान्य अवस्था में न तो कोई स्वत्व दिखाई देता है, मूल्य न महत्त्व पर जब इन्हीं को कुचला और नियन्त्रण में रखने का अभ्यास किया जाता है, तब इनकी भयंकरता देखते ही बनती है । राक्षसी सुरसा की तरह अनेक रूप बनाने में पटु यह चित्तवृत्तियाँ मनुष्य को लुभाती ही नहीं, वरन् डराती और धमकाती भी हैं । निर्बल मन और अस्थिर बुद्धि के व्यक्ति उनकी एक ही झपाक में ठण्डे होकर योगाभ्यास छोड़ बैठते हैं और इस तरह स्वात्मानुभूति की इच्छा मन की मन में ही रह जाती है ।

अर्जुन जैसे महारथी को भी यही कहना पड़ा था—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

—गीता ६।३४

हे भगवन् ! यह मन बड़ा चंचल है । मस्तिष्क को मथ डालता है, यह बहुत दृढ़, शक्तिशाली है, इसीलिए इसका वश में करना बहुत कठिन है ।

किन्तु योगाचार्यों का मत है कि यह कठिनाइयाँ कुछ ही दिन की होती हैं, यदि अभ्यास बन्द न किया जाय तो यही मन एक दिन सर्वोत्तम समीपस्थ मित्र की भाँति अनुकूल आचरण करने वाला हो जाता है । भगवान कृष्ण ने अर्जुन की बात स्वीकार करते हुए कहा था—निःसन्देह अर्जुन ! मन बड़ा चंचल है पर निरन्तर अभ्यास से वह भी वश में आ जाता है । योग एक लम्बी अवधि का अभ्यास है, जो देर तक उसमें स्थिर रह सकता है, वही अन्तिम सिद्धि तक पहुँच सकता है, यह पहले ही मन में बिठा लेने की बात है ।

चित्तवृत्तियों के निरोध के दो उपाय हैं—(१) मनोवैज्ञानिक, (२) वैज्ञानिक । प्रथम प्रकार के सभी उपाय मानसिक हैं, उनमें अपने मन को ही इस बात के लिए राजी किया जाता है कि वह अपने आप संसार की क्षण-भंगुरता अनुभव करे और इस बात की जिज्ञासा जागृत करे कि हम वस्तुतः हैं क्या ? मनुष्य शरीर में हम किस तरह फँसे पड़े हैं, किस तरह उससे मुक्ति और पूर्ण-आनन्द, जिसके लिए हमारी चाह अनवरत है, किस तरह प्राप्ति हो सकती है ?

योग-दर्शन पाद १ सूत्र १२ में बताया है—"अभ्यास-वैराग्याभ्यान्तन्निरोधः ।" अर्थात् निरन्तर वैराग्य का अभ्यास करने से मन की पार्थिव वृत्ति बदल जाती है । इसी बात को भगवान कृष्ण ने "अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।" निरन्तर वैराग्य का अभ्यास करने से मन की वृत्तियाँ धीरे-धीरे वश में आने लगती हैं ।

दूसरा उपाय है—"ईश्वर प्रणि धानाद्वा" (योग १।२३) अर्थात् अपने आपको परमात्मा में मिलाने का अभ्यास करने से मन की प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वगामी होने लगती हैं ।

नीचे दी हुई साधना विधि का प्रतिदिन थोड़ी देर तक अभ्यास करने से अपना वैराग्य और ईश्वर प्राप्ति का भाव दृढ़ होता है, यह अभ्यास कोई भी अपनी सुविधानुसार कर सकता है । जानकारी के लिए दो अभ्यास नीचे दे रहे हैं—

(१) किसी समतल और एकान्त स्थान में कोई वस्त्र बिछाकर सीधे चित्त लेट जाइये, दोनों पाँव सीधे और मिलाकर रखना चाहिए, दोनों हाथ छाती के ऊपर रखिये अब शरीर को पूर्ण निश्चेष्ट करके बिल्कुल शिथिल छोड़ दीजिए । ऐसा जान पड़े जैसे प्राण, शरीर से निकलकर प्रकाश के एक गोले की तरह हवा में स्थिर हो गया है और शरीर मृत अवस्था में बेकार पड़ा है, अब एक-एक अंग की ओर ध्यान दीजिए—कल तक यही आँखें अच्छी-अच्छी वस्तुएँ देखने का हठ करती थीं, अब आज क्यों नहीं देखतीं और यह मुख जो बढ़िया-बढ़िया खाने को माँगता था कैसा बेकार पड़ा है ।

नाक, आँख, मुख, कण्ठ, छाती, हाथ-पैर उन सब घृणित अंगों को बार-बार देखिये जिनमें कफ, थूक, मलमूत्र के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं रह गया है । यथार्थ वस्तु जो कि आत्म-चेतना थी, वह तो अभी भी मेरे ही साथ है, क्या मैंने इस शरीर के लिए ही अपने इस प्रकाश शरीर को, आत्मा को भुला दिया था ? क्या अब तक इसी शरीर के लिए जो पाप कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहा था, वह उचित था ? आदि ऐसे-ऐसे प्रश्न उठाना चाहिए, जिससे सांसारिक भाव नष्ट हों और मन यह मानने को विवश हो कि हम अब तक भूल में थे—"मनुष्य का यथार्थ जीवन शरीर नहीं आत्मा है ।"

(२) किसी शान्त, एकान्त स्थान में कुश आदि कोई पवित्र आसन बिछाकर बैठिये । आसन समतल स्थान पर होना चाहिए । ऊँचा-नीचा होने पर शरीर को कष्ट होंगा और ध्यान नहीं जमेगा, शरीर, सिर एवं ग्रीवा को सीधा रखकर अध-खुले नेत्रों से नासिका के अगले भाग को देखें । दृष्टि और मन को दूसरी ओर नहीं जाने देना चाहिए । यदि जाता है तो उसे बार-बार अपने मूल अभ्यास की याद दिलाकर एकाग्र करना चाहिए ।"

जब मन शान्त हो तब ऐसा ध्यान करें कि मैं प्रकाश के एक कण, तारा या जुगनू की तरह हूँ और नीले आकाश में घूम रहा हूँ । सूर्य की तरह का उससे भी हजारों गुना बड़ा और तेज चमक वाला एक प्रकाश पिण्ड आकाश में दिखाई दे रहा है, उसी की किरणें फूटकर निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रही हैं । हजारों सूर्य उसके आस-पास चक्कर काट रहे हैं । मैं जो अभी तक एक लघु प्रकाश कण के रूप में अशक्त अज्ञान ग्रस्त और सीमा-बद्ध पड़ा था, अब धीरे-धीरे उस परम प्रकाश पुंज में हवन हो रहा हूँ, अब मैं रह ही नहीं गया यह तो करोड़ों कोस के विस्तार वाला गहरा नीला आकाश है या फिर वही दिव्य प्रकाश जिसमें घुलकर मैं अपने आपको सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ अनुभव कर रहा हूँ ।

ये दो अभ्यास वैराग्य और ईश्वर प्राप्ति की कामना को बढ़ाने में बहुत सहायक हो सकते हैं, अपनी सुविधानुसार कोई भी स्त्री-पुरुष इन साधनाओं का अभ्यास कर सकता है ।

उपरोक्त दो अभ्यास महत्त्वपूर्ण हैं, उनसे मनोनिग्रह में सहायता मिल सकती है पर मन उतने से ही वश में आ जाय यह कोई आवश्यक नहीं । हम आज जिस स्थिति में हैं, वह कई जन्मों का विकसित रूप है, मनुष्य के पूर्वजन्मों के पाप और वासनाओं के संस्कार जो मन में कई परतों में जमे होते हैं, वह बार-बार उन्हीं वासनाओं की ओर घसीटते हैं, इसलिए साधक की वृत्तियाँ कभी भी उद्दीप्त हो उठती हैं । उसके लिए वैज्ञानिक विधियाँ काम में लायी जाती हैं । शरीर और मन की अन्तरंग सफाई योगिक क्रियाओं से की जाती है, तब निर्मलता आती है, इसलिए आत्म-साक्षात्कार की इच्छा रखने वाले किसी भी साधक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अष्टाँग योग का अभ्यास करता हुआ, आत्मा का विकास परमात्मा की ओर करे । ये आठ अंग हैं—

यम नियमासन् प्राणायाम प्रत्याहार—
धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि ।

—योग २।२९

अर्थात्—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि । इनका अभ्यास करने से कठिन मलिनताएँ भी नष्ट हो जाती हैं और निर्मल ज्ञान-प्रकाश एवं विवेकबुद्धि की वृद्धि होती है । योगियों के पास दिखाई देने वाली कई सिद्धियाँ और चमत्कार जैसी दीखने वाली अनुभूतियाँ भी इन्हीं आठ अंगों में उत्तरोत्तर अभ्यास और विकास द्वारा उपलब्ध होती हैं पर इनका कुल लाभ आत्मा या ईश्वर की प्राप्ति ही है, इसलिए किसी को भी चमत्कार और सिद्धियों की ओर मन न लगाकर केवल आत्म-कल्याण का ही विचार करना चाहिए ।

इन आठ अंगों की संक्षिप्त जानकारी योग-साधक के लिए आवश्यक है—

(१) यम कहते हैं असत्य को मारना । हमारे जीवन में झूठ-फरेब, अन्याय आदि का समावेश सत्य के प्रति अनास्था का फल है । असत्यशील व्यक्ति ही परमार्थ से गिरते हैं, इसलिए ऐसे क्षणों में अपने आपको दबाकर, बचाकर रखना यम कहलाता है । उसके लिए प्रारम्भिक अभ्यास किसी एक 'व्रत' से करना चाहिए, उदाहरण के लिए—अधिक न बोलना, झूठ न बोलना, किए हुए उपकार को न भूलना, किसी से ईर्ष्या न करना आदि ऐसा कोई एक संकल्प लें, जब उसका अच्छी प्रकार अभ्यास हो जाय, तब दूसरा । इस तरह करते हुए, सभी असत्य आचरण छोड़ने से यम सिद्धि होती है ।

(२) 'नियम' उसका पूरक अंग है, अर्थात् बुराई के परित्याग के साथ अच्छाई या किसी सत्य का अनुशीलन नियम कहलाता है । उससे बुरे संस्कारों के स्थान पर श्रेष्ठ सद्गुणों की प्रतिष्ठा होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) 'आसन' देर तक निश्चल होकर बैठने को आसन कहते हैं पर ऐसा तभी हो सकता है, जब शरीर का प्रत्येक अंग स्वस्थ हो । स्वास्थ्य के लिए जितने भी उपाय डॉक्टरों, वैद्यों और वैज्ञानिकों ने खोजे हैं, वह सब बाह्य हैं और अपूर्ण जानकारी वाले हैं । योगाचार्यों ने देखा कि शरीर में ही भगवान ने वह सब शक्तियाँ और सामग्रियाँ पहले से ही रखी हैं, जिनका यथोचित उपयोग करके कोई भी व्यक्ति पूर्णतया स्वस्थ व नीरोग रह सकता है । आसन उन-उन स्थानों को जो शरीर के मर्म और विशेष महत्त्व के हैं, खोलने और लाभ लेने की वैज्ञानिक विद्या है । ८४ प्रकार के आसन शरीर को सुगठित और शक्तिशाली ही नहीं, शुद्ध और रोग-मुक्त भी करते हैं । अगले अंकों में एक-एक आसनों का वर्णन देते रहेंगे, जिनके अभ्यास से रोगी व्यक्ति भी औषधोपचार की भाँति स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं ।

(४) प्राणायाम का सम्बन्ध केवल श्वास खींचने, रोकने और श्वास छोड़ने भर से नहीं है वरन् शरीर की सम्पूर्ण चेष्टाओं का नियन्त्रण भी प्राणायाम से ही होता है, छींक, जम्हाई, अँगड़ाई, आँखों का मिचकाना, थूक का बार-बार निगलना, लघु-शंका ऐसी क्रियाएँ शरीर में स्वतः उत्पन्न होती हैं, यह न तो मनुष्य की इच्छा से ही होती हैं और न ही सामान्य मनुष्य इन पर नियन्त्रण रख सकता है । यह शरीर के विभिन्न प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान आदि वायुओं के गुण-धर्म हैं, उनकी जानकारी होने और नियन्त्रण करने का सारा विज्ञान 'प्राणायाम' कहलाता है । जीवित अवस्था में ही सूक्ष्म शरीर से बाहर निकल आना दूर गमन, दूरानुभूति, परकाया प्रवेश आदि सब प्राणायाम के ही चमत्कार हैं पर यह सब पीछे की बातें हैं, प्रारम्भ में इसका उपयोग मनोनिग्रह के लिए है, उससे मन की निर्मलता बढ़ती है, जिससे मन अपने आप शांत और प्रफुल्ल बनने लगता है ।

(५) मन को बाह्य विषयों से रोकने के लिए प्रत्याहार करना पड़ता है । मन वस्तुतः और कुछ नहीं अन्न का ही सूक्ष्म संस्कार है । अन्न ही रस, रक्त, माँस-मज्जा, अस्थि-वीर्य आदि बनता हुआ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सूक्ष्म शक्तियों, अन्तःकरण चतुष्टय के रूप में परिलक्षित होता है । यदि हम अपना आहार शुद्ध कर लें तो यह स्वाभाविक है कि अपना अन्तःकरण चतुष्टय भी शुद्ध हो जाय । खारी गन्ने का गुड़ खारी बनता है, उसी प्रकार दूषित अन्न का मन भी दूषित ही होगा । मन को शुद्ध और पवित्र रखने के लिए शुद्ध आहार आवश्यक है, यह सारी जानकारी प्रत्याहार के अन्तर्गत आती है ।

(६) धारणा कहते हैं, मन को किसी एक स्थान या देश में स्थिर करने को । प्रकाश के बारे में कहा जाता है कि उसका एक कण एक सेकण्ड में १८६००० मील (१ मील = १.६१ किलोमीटर) चलता है, किन्तु मन की गति के बारे में वैज्ञानिक आज तक हजार कोशिशों के बावजूद भी नहीं जान पाये । मन के चलने की कक्षा का भी पता नहीं चल पाया पर वह एक अतिसमर्थ शक्ति है, यह सभी जान गए हैं । उससे कोई लाभ इसीलिए नहीं ले पाते, क्योंकि वह बहुत अधिक चंचल है, स्थिर रहना उसका स्वभाव नहीं । धारणा शक्ति के द्वारा मन को किसी स्थान पर रोककर विश्लेषण कराना उसी तरह सिखाते हैं, जैसे—मदारी बन्दर को, सरकस वाला शेर को । धारणा से मन को एक स्थान पर रोकने का अभ्यास करते हैं ।

(७) ध्यान भी धारणा की ही स्थिति है पर उसमें इन्द्रियों की चेष्टाएँ चाहे वह सूक्ष्म ही क्यों न हों, समाप्त हो जाती हैं, इसलिए मन औरों के मन की, पदार्थों की, दूसरे किसी की भी हो रही बात-चीत आदि की जानकारी हजारों मील दूर बैठा होने पर भी ले लेने में समर्थ होने लगता है । दूर श्रवण, दूरदर्शन, भविष्य ज्ञान आदि ध्यान की ही सिद्धियाँ हैं ।

(८) इस तरह जब ध्यान पूर्णतया निश्चेष्ट होकर केवल मात्र अतीन्द्रिय सुख में ही स्थिर हो जाय वह अवस्था समाधि कहलाती है । इसके लिए कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता उपरोक्त सातों अवस्थाओं से पकी हुई स्थिति ही समाधि है । इस अवस्था में पहुँचा हुआ योगी अपने शरीर में ही विराट् ब्रह्म के दर्शन करता है । 'सदासार स्तोत्र' में जगद्गुरु शंकराचार्य ने उसी का वर्णन करते हुए लिखा है—

देहो देवालयो प्रोक्तो देही देवो निरञ्जन ।
अर्चितं सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्—उचित प्रकार से योगाभ्यास और परमार्थ करने से इसी शरीर में ही निरंजन परमात्मा के दर्शन होते हैं ।

यह योग संसार में हर किसी के लिए सुलभ है ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, जाति-पाँति का कोई भेद नहीं—

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां स्त्री शूद्राणां च पावनम् शांतये कर्मणामन्य-द्योगान्नास्ति विभुक्तये युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधिष्ठो दुर्बलोऽपिवा अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वं योगेष्वतंद्रितः ।

—हठयोग प्रदीपिका १-२

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व स्त्री योग का अधिकार सबको है । युवक हो या वृद्ध और जिनका शरीर बहुत ही जीर्ण हो गया हो, जो बीमार, रोगी तथा इन्द्रियों की दुर्बलता से ग्रस्त हैं, वे भी योग का अभ्यास कर सकते हैं । यह सभी को सिद्धि, शांति और मुक्ति देने वाला मार्ग है । इससे बड़ा अन्य कोई साधन आत्मिक प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए संसार में है नहीं ।

इन पंक्तियों में योग सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं के निवारण के साथ दो मानसिक और आठ प्रकार की उन साधनाओं की व्याख्या कर दी गई है, जिनके अभ्यास से जीवात्मा अपनी क्षमताओं का विकास करते हुए, परमात्मा को प्राप्त कर सकती है । यही योग का उद्देश्य भी है ।

योग साधना का प्रथम चरण एकाग्रता सम्पादन

अध्यात्म साधना में एकाग्रता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । साधनाओं में से अधिकांश का एक ही उद्देश्य—एकाग्रता-सम्पादन । नादानुसंधान, चक्रवेधन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि जितनी भी योग की शाखा-प्रशाखाएँ हैं—उन सब में एक ही प्रक्रिया है—उच्चस्तरीय चिन्तन सहित एकाग्रता की साधना । राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, लययोग की समस्त दिशाधाराएँ जिस एक स्थान पर आकर केन्द्रित होती हैं, उसे एकाग्रता कहा जा सकता है । एकाग्रता में वृद्धि के अनुपात में ही साधक अपनी प्रगति और सफलता का अनुमान लगाते हैं । इसीलिए उपनिषदकार ने नारद-सनत्कुमार जिज्ञासा समाधान के माध्यम से कहा है—"संकल्पो वाव मनसी भूयान । चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो । ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ।" अर्थात् मन से बढ़कर संकल्प, संकल्प से भी बढ़कर चित्त तथा चित्त से भी बढ़कर ध्यान है । इस प्रतिपादन में वस्तुतः ध्यान-साधना अर्थात् एकाग्रता मिश्रित ध्यान धारणा को ही प्राथमिकता दी गई है ।

एकाग्रता की शक्ति से सभी भली-भाँति परिचित हैं । छोटा-सा आतिशी शीशा सूर्य की किरणों को केन्द्रित कर देखते-देखते अग्नि उत्पन्न कर देता है । यह अग्नि दावानल का रूप तक ले लेती है । वही सूर्य अपना प्रकाश चारों ओर बिखेरे है जिसकी गर्मी उस शीशे में कैद ऊर्जा से कहीं करोड़ों गुना अधिक है । मीलों परिधि में बिखरी होने के कारण वह मात्र देखने योग्य प्रकाश, चकाचौंध तथा सामान्य सी गर्मी दे पाती है । नदियों, तालाबों, समुद्र से ढेरों भाप उठती व बिखरती रहती है, पर थोड़ी-सी भाप का केन्द्रीकरण प्रेशर कुकर से मिनटों में भोजन बनाने, स्टीम इन्जन से भारी भरकम रेलगाड़ी चलाने तथा थर्मल पावर स्टेशन से विद्युत का भारी मात्रा में उत्पादन—कर सकने में समर्थ होता है । बिखरे धागों की तुलना में बुनी हुई मोटी रस्सी, सींकों की तुलना में बुहारी, बिखरी बारूद की तुलना में बन्दूक की नली में उसका उपयोग, मोटी छड़ की अपेक्षा नुकीले बर्मे या सुई से अधिक काम ले लेना इस एक ही तथ्य के प्रत्यक्ष स्थूल उदाहरण हैं कि बिखरी शक्ति की तुलना में समेटी हुई केन्द्रीभूत हुई शक्ति अधिक समर्थ होती है । इस प्रकार आत्मिक क्षेत्र में एकाग्रता की शक्ति का महत्त्व उससे भी कहीं अधिक है, जितना कि सामान्यतया इन उदाहरणों से समझा जाता है । इस शक्ति की प्रतिक्रिया ही सारी ऋद्धि-सिद्धियों एवं सफलता—यश-सम्मान के रूप में बहिरंग में दृष्टिगोचर होती हैं ।

साधना मार्ग पर चलने वाला पथिक यही पुरुषार्थ करता है । मस्तिष्कीय ऊर्जा को केन्द्र विशेष पर एकत्र कर वह उसे दिशा विशेष में नियोजित करता है । ध्यान का यही प्रमुख उद्देश्य है । ईश्वर प्राप्ति और आत्म-कल्याण जैसे महत् प्रयोजनों के लिए भी तन्मयता-तत्परता की आवश्यकता पड़ती है । वह एकाग्रता जिसमें तन्मयता का समावेश हो, जड़ता का नहीं, किस माध्यम से अर्जित की जाती है; उसमें इष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रति किन भावनाओं को चिंतन क्षेत्र में उतारना होता है; इष्ट का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है, इस पर ऋषि-मनीषियों ने विशद अनुसंधान किया है एवं आप्त वचनों के रूप में अपने निष्कर्ष जन-मानस के सम्मुख रखे हैं ।

मुण्डकोपनिषद के द्वितीय मण्डूक के द्वितीय खण्ड में ऋषि कहते हैं—

"आविः संनिहितं गुहचरं नाम महत् पदमत्रैतत् समर्पितम् । एजत् प्राणान्निमिषच्च त्रदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः । तदेतत् सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ।" ॥ २॥

अर्थात्—"उस परमेश्वर को जानना चाहिए जो सत् असत् रूप में सबके द्वारा वरणीय, वरिष्ठ और जीवात्माओं की वृद्धि के परे है । ज्योति स्वरूप निकटस्थ, गुहचर नामधारी, महान पद वाले, श्वास लेने वाले, नेत्रों का खुलना—बन्द करने वाले जो प्राणी हैं वे सब इसी परम सत्ता को समर्पित हैं । हे सौम्य ! तू उस बेधने के योग्य लक्ष्य को बेध डाल । जो तेजस्वी सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं और लोकों में निवास करने वाले प्राणियों के आश्रय स्थान हैं, वही अविनाशी ब्रह्म है । वही मन, वाणी, प्राण, सत्य और अमरत्व से युक्त हैं ।"

उपनिषदकार ने इस व्याख्या में आगे प्रणव को धनुष, आत्मा को प्राण तथा ब्रह्म को उसका लक्ष्य बताया है और कहा है कि सच्चा योगी लक्ष्य को बेधकर उसी में तन्मय हो जाता है । "शरवत् तन्मयः भवेत्" से तात्पर्य यही है कि जीव को बाण के समान तद्रूप हो जाना चाहिए । लक्ष्य बेध में प्रमाद न हो, वैसी ही एकाग्रता हो, जैसी धनुर्धारी की होती है । यही उपासना का तत्वदर्शन है । जागृत अवस्था में कार्य करने वाला मन विभिन्नता की कल्पना करता है । जब वही मन एकाग्र हो स्थिर होने लगता है तो विविधता की कल्पनाएँ मिट जाती हैं और एकता का—जीव-ब्रह्म की पारस्परिक निकटता का अनुभव होने लगता है । जागृति की दूसरी अवस्थाएँ हैं—स्वप्न एवं सुषुप्ति । भूमा अवस्था तो वहाँ भी होती है, पर वह मन की स्थिरता नहीं है । इसीलिए लक्ष्य बेध वाली तन्मयता को एकाग्रता के साथ जोड़कर साधना के तत्वज्ञान का विवेचन किया जाता है ।

धनुर्धारी की इस उपमा को अर्जुन ने समझा, बिखरी मनःस्थिति को एकाग्र चित्त कर लक्ष्य बेध किया और वे सर्वगुण सम्पन्न द्रौपदी का वरण कर सके । इस द्रौपदी रूपी चरम लक्ष्य की प्राप्ति हर आत्मा रूपी अर्जुन द्वारा सम्भव है ।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में तो इस तथ्य को बड़ी ही प्रांजल भाषा में समझाया गया है—ऋषि कहते हैं—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायर्रात्राधिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥

—२/६

अर्थात्—"जहाँ अग्नि का मंथन होता है, जहाँ प्राण का विधिवत् निरोध किया जाता है, जहाँ सोमरस का प्राकट्य होता है । उस स्थान पर मन नितान्त पवित्र होता है ।"

यही पवित्र-निरोध किया मन इष्ट प्राप्ति में सहायक होता है, पर इसके लिए बड़ा पुरुषार्थ करना होता है ।

"दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं, विद्वान मनो धारयेता प्रमत्तः ।"

अर्थात्—"जैसे चतुर सारथी दुष्ट अश्वों वाले रथ को भी निर्दिष्ट मार्ग में ले जाता है, वैसे ही मन को भी सावधानी पूर्वक वशीभूत रखे ।" ध्यान प्रक्रिया के लिए धनुर्धारी और चतुर सारथी बने बिना गाड़ी आगे चलेगी नहीं ।

पातंजलि योग दर्शन का मुख्य उपदेश यही है कि मनुष्य चित्तवृत्तियों के निरोध से, स्थूल भाव से प्रगति करके सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता जाय अथवा भौतिकता को कम करके आत्मबल तत्व को ग्रहण करता चले । मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ ही भौतिक अथवा स्थूल जगत की वस्तुओं को ग्रहण कर उनमें लिप्त होने वाली होती हैं । जैसे-जैसे उनका निरोध किया जाता है, उन्हें बहिर्मुख अवस्था से अन्तर्मुख बनाया जाता है, वैसे-वैसे मनुष्य आत्म-जगत में प्रवेश होता चला जाता है । मुख्य साधन है किसी विशेष विधि के द्वारा चित्तवृत्तियों को एक लक्ष्य पर केन्द्रित करना । इस अभ्यास से अन्ततः समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है जोकि योग मार्ग का चरम उद्देश्य है । इसीलिए दृष्टा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुनि ने आरम्भ में ही योग सिद्धि के मूल मन्त्र 'चित्तवृत्ति निरोध' का उपदेश देकर उसकी पूर्ति के लिए अष्टांग योग का साधन बतलाया है । इसी योगमार्ग की विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ विकसित हुई हैं, जिनका सहारा लेकर साधक आत्म-कल्याण का पथ-प्रशस्त करता है । चंचलता का निरोध परन्तु इन सबमें एक प्राथमिक शर्त है जो ऐसा कर सकेगा, वही अपनी बहुमूल्य क्षमताओं को योजनाबद्ध रूप से अभीष्ट दिशा में लगाने में समर्थ हो सकेगा । प्रगति हमेशा बिखराव को समेटने और दिशाबद्ध चरण बढ़ाते चलने पर ही सम्भव होती है ।

अपने भीतर क्या है ? पिण्ड की पिटारी में कैसे-कैसे बहुमूल्य रत्नों के भण्डार छिपे पड़े हैं, यह तब तक नहीं ज्ञात हो पाता जब तक व्यक्ति अन्तर्मुखी नहीं बनता । समुद्र तल पर मणि-माणिक्य मोती तो हैं पर उन्हें समेटने के लिए गोताखोर स्तर की प्रवीणता विकसित करनी होती है । इन्द्रियों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि वे बहिरंग को देख पाती हैं व बिखरी सम्पदा के सान्निध्य से होने वाली रसानुभूति का आनन्द लेने को लालायित रहती हैं । अन्त में भरे पड़े अपार वर्चस्व को जानने, खोजने के लिए इन्द्रिय शक्ति व बौद्धिक शक्ति का नहीं—आत्मिक शक्ति को खटखटाने वाली एकाग्रता सम्पादन की योग शक्ति का ही आश्रय लेना होता है । परमपिता ने न केवल विशाल ब्रह्माण्ड बनाकर रख दिया है वरन् उसकी लघु इकाई, 'पिण्ड' के रूप में गोरख-धन्धे से जकड़ दी है । पहेलियाँ उलझाने हेतु एक लीला जगत विनिर्मित कर दिया है ताकि हम अविज्ञात को जान सकें, प्रसुप्त को जगा सकें, अनुपलब्ध को हस्तगत कर सकें ।

आत्मिक प्रगति की दिशा में चरण बढ़ाते समय जब साधक अन्तर्मुखी बनता है तो उसे एकाग्रता सम्पादन की ध्यान प्रक्रिया का सहारा लेना होता है । इसका एक ही प्रयोजन है—भीतरी सत्ता को, उसके वैभव को समझा जाय । यह परखा जाय कि इस क्षेत्र में भरी विकृतियों के दल-दल में प्रगति का रथ क्यों फंसा-रुका पड़ा है । ध्यान तभी सार्थक है जब एकाग्रता से अर्जित-संग्रहीत शक्ति को अभीष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त कर लिया जाय । 'मेडीटेशन' की चर्चा तो बहुत होती रहती है, पर इसे एकाग्र हो सकने की कुशलता भर मानना चाहिए । इस प्रवीणता को प्राप्त कर मनुष्य अपनी बिखरी चेतना को एकत्रित करके किसी एक कार्य में लगा देने पर जादू जैसी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है ।

बाँधों में पानी रोक लिया जाता है, पर यदि इसका प्रयोग न किया जाय—इसे ऐसे ही संग्रहीत रखा जाय तो उसका क्या उपयोग ? जब उसे छोटे छेदों से निकाला जाता है तो वही शक्तिशाली धारा ताकतवर 'टर्बाइन्स' को घुमाती है व विद्युत उत्पादन होने लगता है । यह संग्रहीत जल का सदुपयोग ही है जो इस शक्तिशाली रूप में निकलता है । छोटे-छोटे जल-प्रपातों से पनचक्की जैसी उपयोगी मशीनें चल पड़ती हैं । यह एकाग्रता की—अर्जित प्रखरता की शक्ति है । एकाग्रता को दूसरे शब्दों में शक्ति का एकीकरण कह सकते हैं । इससे सामान्य-सा जीवन असाधारण विशेषताओं और सफलताओं से भरा-पूरा दृष्टिगोचर होने लगता है ।

असफलताओं में अन्यमनस्कता, अरुचि, उपेक्षा एवं बिखराव ही प्रधान कारण होते हैं । महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रुचि का केन्द्रीकरण एवं मानसिक क्षमता के एकीकरण का ही चमत्कार होती हैं । यह तत्वदर्शन समझ लिया जाय तो योग साधना का पहला चरण पूरा हो जाता है । ध्यानयोग का उद्देश्य एक ही है—मस्तिष्कीय बिखराव को रोककर एक चिन्तन बिन्दु पर केन्द्रित कर सकने की प्रवीणता प्राप्त कर लेना । जिसे इस प्रयोग में सफलता मिलने लगती है, वह उसी अनुपात में अन्तःचेतना को बेधक प्रचण्डता से अभिपूरित करता चला जाता है । शब्दबेधी बाण की तरह लक्ष्य बेध कर सकना उसके लिए सरल हो जाता है ।

इस प्रकार सारे मंथन का निष्कर्ष निकल कर यही आता है—

तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं क्षयम् ।
एतज् ज्ञानञ्च ध्याञ्च शेषेऽन्यो ग्रन्थ विस्तरः ॥

अर्थात्—"तब तक मन का निरोध करे जब तक कि सब वासनाएँ नष्ट न हो जायें । यही ज्ञान है, यही ध्यान है, बाकी सब ग्रन्थों का विस्तार है ।"

रागों का निराकरण एवं आत्म-विकास की सुनियोजित रीति-नीति का निर्धारण ही ध्यान है । उस परमपिता के पवित्र और उत्कृष्ट स्वरूप के अनुरूप बनने के प्रबल प्रयास हेतु प्रचण्ड संकल्प उभारना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यानयोग की अगली सीढ़ी है । पहले निरोध, फिर सुनियोजन । धीरे-धीरे इस प्रगति क्रम पर चलते हुए इष्ट की तादात्म्यता जीव को ब्रह्म-स्तर तक ही पहुँचा देती है । जब अपनी सघन आत्मीयता का आरोपण इष्ट में किया जाता है, भले ही वह साकारोपासना का भगवान के 'रूप' का ध्यान हो अथवा उच्चस्तरीय सिद्धान्तों से, आदर्शों से प्यार, जीव-ब्रह्म की सत्ता का एकीकरण होने लगता है ।

ध्यानयोग का—एकाग्रता सम्पादन का सच्चा परिपक्व स्वरूप यही है कि अवांछनीय बिखराव पर नियन्त्रण स्थापित कर मन को विधेयात्मक प्रयोजन में नियोजित करने की प्रवीणता अर्जित की जाय । तन्मयता और तत्परता जब एकाग्रता से मिल जाते हैं तो सफलता सुनिश्चित हो जाती है । ईश्वर, गुरु या आप्त मानवों के प्रति गहन श्रद्धा उत्पन्न करके, उनसे सघन आत्मीयता स्थापित करने की मनोविज्ञान समर्पित अध्यात्म साधना से तन्मयता जन्म लेती है और एकाग्रता उत्पन्न होने का साधन बन जाती है । वैचारिक नियोजन और भावभरी ललक का समावेश हुए बिना चिन्तन उखड़ा-उखड़ा ही रहेगा । प्रगति पथ पर आगे बढ़ने के लिए इसी कारण दोनों का समन्वय आवश्यक है ।

दैनदिन जीवन की समस्त गतिविधियों को सुनियोजित करने, आलस्य-प्रमांद की अस्त-व्यस्तता पर अंकुश स्थापित कर लेने से प्रारम्भ हुई एकाग्रता, सम्पादन की 'यह साधना कालान्तर में भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों के रूप में साधक पर बरसती हैं—उसे कृतकृत्य बनाती हैं । अपनी साधना का ककहरा यहीं से आरम्भ किया जाय और पल-पल, पग-पग पर 'चित्तवृत्ति निरोध' के दर्शन को जीवन में उतारने का प्रयास किया जाय ।

चित्तवृत्तियों का निरोध ही योगाभ्यास है

एकाग्रता की साधना ही योग साधना है । पातंजलि के योग दर्शन का प्रथम सूत्र है—'योगः चित्तवृत्ति निरोधः'' अर्थात्—चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है । चित्तवृत्ति से तात्पर्य यहाँ चंचलता से है । संक्षेप में चंचलता के अवरोध को रोककर उसकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाकर अभीष्ट प्रयोजन में निरत करने के अभ्यास को योगाभ्यास कहा जा सकता है ।

इस निमित्त क्या किया जाय ? इस सन्दर्भ में अब तक धार्मिक क्षेत्रों में जो प्रयत्न हुए हैं उनमें प्रतिमा विशेष पर भावनात्मक ध्यान करने की ही एक विधि बताई जाती रही है । इसी को प्रकारान्तर से मेस्मेरिज्म जैसे मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के रूप में भी क्रियान्वित किया गया है । अन्तर केवल इतना ही है कि धार्मिक क्षेत्र में इसके लिए देव प्रतिमाओं को निमित्त कारण बनाया जाता रहा है और मनःशास्त्रियों ने प्रकाश बिन्दु, काला-गोला या अन्य कोई ध्यानाकर्षण में सहायक माध्यम एकाग्रता के लिए प्रयुक्त होता रहा है । इसके अतिरिक्त नट विद्या के कलाकारों को भी एकाग्रता की आवश्यकता पड़ती है । वे इसके लिए जो अभ्यास करते हैं उनमें उन प्रदर्शनों को ही छोटे रूप से आरम्भ करके बड़े रूप में ले जाने तक का क्रम अभ्यास कराया जाता है । लोभ और भय दिखाकर जानवर अमुक प्रयोजन के लिए प्रशिक्षित किए जाते हैं और उनको स्वाभाविक चंचलता से विरत कराया जाता है । इस प्रकार के प्रयत्नों को एकाग्रता अभ्यास के लिए विविध प्रयत्न कहा जा सकता है ।

सूर्य की किरणें आतिशी शीशे के माध्यम से एक केन्द्र पर केन्द्रित करने के फलस्वरूप आग जलने लगती है इसे सभी जानते हैं । सुई की नोंक ही बारीक छेद कर पाती है, यह कार्य मोटी लकड़ी से नहीं किया जा सकता । सुई का सिरा छोटी नोंक पर सिकोड़ने से उसकी क्रियाशीलता बढ़ती है । इंजन की भाप इस छोटे-छेदों द्वारा पिस्टन तक पहुँचाने पर उसका दबाव बढ़ता है और रेल दौड़ने लगती है । फायर ब्रिगेड के पाइप का मुँह छोटा और पानी का दबाव अधिक होने पर धारा दूर तक पहुँचती है और उसमें तीव्रता भी रहती है । बन्दूक की नली में सिकोड़ी गई एक दिशा विशेष में चलने के लिए बाधित की गई तनिक-सी बारूद किस तेजी से चलती और लक्ष्य बेधती है । इस आधार पर भी एकाग्रता का चमत्कार समझा जा सकता है । बिखरी हुई सूर्य किरणें, भाप, बारूद आदि से कम नहीं हो सकतीं जो उन्हें एकाग्र करने पर होती हैं । मस्तिष्कीय क्षमताएँ अनेक प्रयोजनों में उड़ती रहती हैं इन्हें यदि नियन्त्रित करने और दिशा विशेष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में लगाने का कौशल हस्तगत हो सके तो सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी विलक्षणों के कान काट सकता है । कछुये ने खरगोश से इसी आधार पर बाजी जीती थी । वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, शिल्पी, मुनीम, नट आदि को इसी आधार पर अपने-अपने कार्यों में प्रवीणता और सफलता मिलती है ।

मानसिक क्षमता को अभीष्ट प्रयोजन में एकाग्रता पूर्वक नियोजित करने की दक्षता में सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों की योजना और कार्य-पद्धति सर्वांगपूर्ण बनती है । सफलता के लक्ष्य तक पहुँचने का अवसर इसी आधार पर उपलब्ध होता है । अर्जुन का मत्स्यबेध इसी आधार पर सम्भव हुआ । जबकि दूसरे प्रतिद्वन्द्वी एकाग्रता साधने में उतने प्रवीण न होने पर हारते चले गए ।

एक बार अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द ने एक व्यक्ति को बन्दूक से निशाना साधने का प्रयत्न करते देखा, वह हर बार असफल रह रहा था । स्वामी जी रुके और मुस्कराये । बोले, मित्र ! लक्ष्य पर ध्यान एकाग्र करो, तभी बात बनेगी । उस व्यक्ति ने इसे अनाधिकारी परामर्श समझा और उलटकर पूछा—क्या आप निशाना साधना जानते हैं जो ऐसी शिक्षा देते हैं । स्वामी जी ने कहा—मैंने कभी बन्दूक छुई तक नहीं, फिर भी आप कहें तो मैं ध्यान का अभ्यस्त होने के कारण निशाना साधकर दिखा सकता हूँ । उस व्यक्ति ने कौतूहलवश छः गोली का रिवाल्वर हाथ में थमा दिया । स्वामीजी ने इतना अपनी ओर से किया कि लक्ष्य बेध के छः अलग-अलग निशान अपनी ओर से बना दिये । इसके बाद निशाने साधे गए और एक-एक करके छः बार घोड़ा दबाने पर छः ही लक्ष्य बेध दिये गए । उस अभ्यासी व्यक्ति को स्वामी जी ने चलते समय फिर कहा—न केवल निशाना लगाने के लिए वरन् हर छोटे-बड़े काम को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए एकाग्रता का अभ्यास निश्चित रूप से सहायक होता है ।

देखा भी यही गया है कि जो भी अपना काम मनोयोगपूर्ण करते हैं उनका क्रिया-कलाप अधिक उच्च स्तरीय परिणाम उत्पन्न करता है । काम साफ सुथरे और कलात्मक होते हैं । साथ ही कम समय अधिक सफलता प्राप्त करने का सुयोग भी बनता है । जबकि उदास मन से बेगार भुगतने की तरह भार ढोने वालों के काम न केवल फूहड़ होते हैं । वरन् उनकी मात्रा स्थिति एवं सफलता भी उपहासास्पद रहती है । तन्मय प्रकृति का बया पक्षी का घोंसला कितना सुनियोजित होता है कि वह देखते ही बनता है जबकि अन्यमनस्क कबूतर ओंधे-तिरछे तिनके जमाकर अल्प जीवी और अनगढ़ घोंसले ही बनाता रहता है ।

मन की चंचलता, जीवनचर्या, की अनेकानेक आवश्यकताओं का समाधान खोजने की दृष्टि से प्रकृति ने एकाग्रता प्रदान की है । इसके लिए प्रवृत्ति स्वमान्य स्वभाव का एक अंग भी कही जा सकती है । प्राणी अनेकानेक योनियों में परिभ्रमण करते हुए इसी आधार पर अपना निर्वाह चलाता आया है। उन पिछड़ी परिस्थितियों में एकाग्रता की आवश्यकता भी नहीं पड़ती, जिस प्रयोजन के लिए उसकी जितनी मात्रा अभीष्ट होती है उतनी वंश परम्परा के आधार पर अनायास ही उपलब्ध होती रहती है । मनुष्य की प्रगतिशील स्थिति ही जब उसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को कौशल नियोजित करने के लिए बाधित करती है तो यह नई आवश्यकता सामने और आती है कि मन को नियोजित करने के उपरान्त दिशा विशेष के लिए प्रशिक्षित कैसे किया जाय ? एकाग्रता की उपयोगिता और आवश्यकता उसी निमित्त समझनी पड़ती है ।

इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए जब तब—जिस तिस प्रकार के सामयिक अभ्यास करते रहने में हर्ज नहीं । व्यायामशाला में कसरत कुछ समय ही की जाती है किन्तु बात उतने से ही नहीं बन जाती । उस अभ्यास के उपरान्त भी संयम और परिपोषण के प्रयत्न जारी रखने पड़ते हैं । मात्र व्यायामशाला में कुछ घण्टे लगाने और शेष समय अस्त-व्यस्त रीति से असंयमपूर्वक गुजारने पर तो वह अभ्यास का श्रम भी निरर्थक चला जायेगा और पहलवान बनने का स्वप्न साकार न हो सकेगा । स्वास्थ्य रक्षा के लिए अथवा विद्वान् कलाकार बनने के लिए अपनी प्रवृत्ति ही ऐसी बनानी पड़ती है कि ललक अभीष्ट उद्देश्य पर छाई रहे और उस हेतु कुछ न कुछ प्रयास निरन्तर चलता रहे ।

यही बात एकाग्रता साधने के सम्बन्ध में भी है । इसके लिए भी अनवरत प्रयत्न करने पर ही चिर अभ्यस्त चंचल स्वभाव में भी कुछ टिकाऊ परिवर्तन हो सकता है । थोड़ी देर, कुछ समय तथाकथित ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारणा की लकीर पीटने और उस आवेश को बबूले की तरह समापन कर देने से हाथ कुछ लगता नहीं । एकाग्रता की उपलब्धि इतनी सरल नहीं कि उसे कौतुक-कौतूहल जैसे तनिक से सबल अभ्यास से ही हस्तगत किया जा सके । इसके लिए ऐसी विधि-व्यवस्था अपनानी होती है जिसके आधार पर चिर अभ्यस्त चंचलता पर अंकुश लग सके । इसके लिए लम्बे समय तक सतत् प्रयास क्रम अपनाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । जो लोग इसके लिए जादुई तरकीबें ढूँढ़ते हैं—हथेली पर सरसों जमाने जैसी बाल-क्रीड़ा करते और शेखचिल्ली जैसे दिवास्वप्न देखते हैं, वे भूल करते हैं । प्रवीणता प्राप्त करने के लिए सामान्य उपक्रमों में भी दीर्घकालीन साधना करनी पड़ती है फिर अनगढ़ मन को सुगढ़, सुसंस्कृत बनाने के लिए साधने का काम चुटकी बजाते ही हो सकने की आशा कैसे की जाय ? कुछ दिन की 'मेडीटेशन'—बाल क्रीड़ा से, इस सन्दर्भ में किसी चिरस्थायी सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए । जिन्हें और अभीष्ट हो उन्हें दीर्घकालीन एवं सतत प्रयत्न के लिए कटिबद्ध होना चाहिए ।

एकाग्रता की साधना के लिए सबसे सरल और सुनिश्चित अभ्यास ही है कि जो भी काम हाथ में लिया जाय उसे योगाभ्यास मानकर किया जाय । उसकी योजना एवं व्यवस्था बनाने के लिए जिन साधन सामग्री की, जिस सहयोग की, जिस क्रम को अपनाने की आवश्यकता है उसके लिए कार्यारम्भ से पूर्व ही सांगोपांग चिन्तन कर लिया जाय । कठिनाइयों को समझ लिया जाय और उन्हें कितने समय तक श्रम करना पड़ेगा । इसकी सुविस्तृत कल्पना करते हुए परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाते हुए योजनाबद्ध निर्धारण स्थिर कर लिया जाय । इसके बिना ऐसे ही आवेशग्रस्त होकर किसी कार्य में लग पड़ना भूल है । जो सही और व्यावहारिक योजना बनाने तक में एकाग्रता नियोजित न कर सके वे काम को सही ढंग से करने में समग्र मनोयोग किस प्रकार लगा सकेंगे ?

कार्य को आवेशपूर्ण नहीं, व्यावहारिक योजना बनाने में लगाया गया मनोयोग यथार्थवादी चित्र सामने प्रस्तुत करता है । उस आधार पर ही और समझा जा सकता है कि किस प्रकार कितनी अवधि तक, किन साधनों के सहारे प्रयत्नरत रहने की आवश्यकता पड़ेगी ? इतना कर चुकने के उपरान्त ही वे कदम उठते हैं जिनसे हाथ में लिया हुआ काम शारीरिक तत्परता और मानसिक तन्मयता के सहारे आगे बढ़ाया जाता है । तत्परता का अर्थ है स्फूर्ति और समग्र श्रमशीलता का नियोजन । आलस्य, प्रमाद बरतने पर तो सब कुछ चौपट ही चौपट होता चला जाता है । तन्मयता का अर्थ है—आशा, उमंग, लगन और परिपूर्ण दिलचस्पी के साथ लगाया गया मनोयोग । इसके बिना कोई काम समग्र रूप से सधता ही नहीं । अन्यमनस्कता रहने पर तो मात्र लकीर पिटती रहती है, चिन्ह पूजा होती रहती है । समय ढेरों लग जाता है, और काम का परिमाण देखने पर वह मुट्ठी भर हाथ में आता है । जो होता है वह भी काना, कुबड़ा, कुरूप, फूहड़ स्तर का होता है । सही और उत्साहवर्धक कर्त्तव्य मात्र उन्हीं का होता है, जो श्रमशील तत्परता और उमंग भरी तन्मयता का अभ्यास एवं उपयोग भली प्रकार कर पाते हैं । जहाँ इस सन्दर्भ में जितनी ढील-पोल अपनाई जा रही होगी समझना चाहिए कि उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त कर सकने का दिन अभी बहुत दूर है । यों गुड़ गोबर तो कोई भी कुछ न कुछ तो कर ही लेता है । 'घुणाक्षर न्याय' से भी हाथ-पाँव चलाने पर कुछ न कुछ तो ओंधा-सीधा बनता रहता है पर ऐसा कर्त्तव्य किसी स्वाभिमानी को शोभा नहीं देता । काम वे ही सराहना के योग्य बन पड़ते हैं जिन्हें प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर पूरे मन और पूरे परिश्रम के साथ सम्पन्न किया जाता है ।

ध्यानयोग का चिरस्थायी सहज स्वाभाविक अभ्यास यही है कि सामने जो भी काम हो उन्हें सर्वप्रथम आदर्शों को अनुरूप होने की कसौटी पर कसकर खरा पाया जाय । इसके बाद कुछ देर उसे आरम्भ करने से लेकर समापन तक की स्पष्ट एवं व्यावहारिक रूपरेखा बनाई जाय । आवश्यक साधन जुटाये जायें और परिस्थिति से तालमेल बिठाते हुए धैर्य, साहस और संकल्पपूर्वक निश्चित कर्म को आरम्भ कर दिया जाय । उतावली में बिना सोचे समझे कुछ भी कर बैठने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि विपक्ष के सभी पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त योजनाबद्ध कदम बढ़ायें जायें । बीच-बीच में आने वाले अवरोधों का ध्यान रखा जाय और उनसे निपटने के लिए आवश्यक कौशल, साहस एवं धैर्य का संचय करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्तवृत्ति निरोध का साधन, अभ्यास

यात्रा दोनों पैरों के सहारे की जाती है और गाड़ी दो पहियों के आधार पर लुढ़कती है । सामान्य प्रगति के लिए श्रम और मनोयोग के संयुक्त समन्वय की आवश्यकता पड़ती है । ठीक इसी प्रकार आत्मिक प्रगति के लिए योग और तप यह दो माध्यम अपनाने पड़ते हैं । इनसे बच निकलने और सरल पगडंडियाँ ढूँढ़ने से आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता । सस्ते मोल में भगवत प्राप्ति करा देने से लेकर समाधि लगा देने और कुण्डलिनी जगा देने जैसे प्रलोभन देने वालों की कमी नहीं, किन्तु स्पष्ट है कि उस प्रवंचना में भ्रम जंजाल के अतिरिक्त तथ्य कहीं रंचमात्र भी नहीं है । हमें अपनी रोटी आप खानी और आप पचानी पड़ती है । आत्मिक प्रगति के लक्ष्य तक पहुँचा देने वाली साधना भी अपने ही पाँवों के सहारे चलकर पूरी करनी पड़ती है और इसके लिए योग और तप जैसे दोनों ही आधार पूरी निष्ठा के साथ अपनाने पड़ते हैं ।

योग का सामान्य अर्थ होता है—जोड़ना । आत्मा को परमामा के साथ जोड़ देने की प्रक्रिया अध्यात्म भाषा में 'योग' कहलाती है । इसे आरम्भ करने के लिए जिन क्रिया-कलापों को अपनाना पड़ता है उन्हें 'साधन' कहते हैं । साधना अपने आप में एक छोटा उपकरण मात्र है । उसका महत्त्व इसलिए है कि वह 'साध्य' को प्राप्त कराने में सहायता करती है । कई लोग साधन को ही 'साध्य' समझ बैठते हैं और उन उपचारों को ही योग कहने लगते हैं जो साधना प्रयोजन में प्रयुक्त होते हैं ।

योग-साधना में कई प्रकार के शारीरिक, मानसिक क्रिया कृत्य अपनाने पड़ते हैं । इनका उद्देश्य आत्म-चेतना को परमात्म चेतना से जोड़ने वाली मनःस्थिति उत्पन्न करना है । यह तथ्य ध्यान में रखकर चला जाय तो ही लक्ष्य की पूर्ति होनी सम्भव है । यदि चेतनात्मक परिष्कार के लिए प्रयत्न न किया जाय तो मात्र उन क्रिया-कृत्यों को ही योगाभ्यास मान लिया जाय तो उस भ्रान्ति के कारण घोर परिश्रम करते रहने पर भी कोल्हू के बैल की तरह जहाँ के तहाँ बने रहना पड़ेगा ।

शारीरिक श्रम में आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा, व्रत, मौन, नेति, धेति, वस्ति, न्यौलि, वज्रोली, कपाल भाति, भूमिशयन, सर्दी-गर्मी सहना, कीर्तन आदि कितने ही उपचार काम में लाये जाते हैं । इनका उद्देश्य स्वस्थता, समर्थता एवं पवित्रता उत्पन्न करना है, ताकि मल भारों से लदे व्यक्ति को आत्मिक प्रगति की लम्बी मंजिल पार करने में सुविधा हो । इसी प्रकार मानसिक उपासनाओं में—जप, ध्यान, नाद, एकाग्रता, तन्मयता, स्वाध्याय, सत्संग आदि साधनों का आश्रय लिया जाता है ताकि चेतना को दिशा एवं प्रेरणा दी जा सके और उसे अपनी जीव ससीमता को ब्रह्म असीमता में घुला देने के लिए आवश्यक प्रकाश एवं प्रशिक्षण मिल सके ।

लक्ष्य विहीन साधना मनोरंजक भटकाव ही कहा जा सकता है । शारीरिक और मानसिक क्रियाकृत्यों को योगाभ्यास के आधार पर साधन मानना ही पर्याप्त है । उन कृत्यों को ही जादुई मान बैठना और उनकी प्रवीणता मिल जाने मात्र से लक्ष्य पूरा हो जाना मान लिया जायगा तो यह विशुद्ध भ्रान्ति ही सिद्ध होगी । एक व्यक्ति दूसरे तक अपने मनोभाव पहुँचाने के लिए कागज कलम का प्रयोग करता है । यह उपकरण निश्चय ही बड़े महत्त्वपूर्ण हैं । इनके बिना विचारों का आदान-प्रदान करने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी । फिर भी यह मात्र कागज कलम से पत्राचार का उद्देश्य पूरा नहीं होता है । उसमें भावों की अभिव्यक्ति का तथ्य जुड़ा ही रहना चाहिए । यदि ऐसे ही कागज पर कलम घिसते रहा जाय और कुछ भी टेड़ी-सीधी लकीरें बनाई जाती रहें तो उससे पत्र-व्यवहार द्वारा विचारों के आदान-प्रदान का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । लेखन क्रिया के साथ-साथ भावों की अभिव्यक्ति नितान्त आवश्यक है । योगाभ्यास में प्रयुक्त होने वाले उपचारों में मात्र शारीरिक, मानसिक हलचलों को ही सब कुछ मानकर सन्तुष्ट नहीं हो बैठना चाहिए । उत्कट प्रयत्न यह होना चाहिए कि आत्मा को परमात्मा से जोड़ देने पर उपयुक्त भाव चेतना उत्पन्न की जा सके । महत्त्व तो इस 'भाव उभार' का ही है । वह उभरेगा तो गाड़ी आगे चलेगी अन्यथा तथाकथित योगाभ्यासों की हलचलें कुछ समय तक श्रम-साधना में जितनी कुछ जैसी कुछ अनुभूति दे सकती हैं, उसे देकर समाप्त हो जायेंगी । भाव-विहीन साधना में शरीर की स्वस्थता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मन की एकाग्रता भले की कुछ सीमा तक बढ़ सके; आत्मिक प्रगति का लक्ष्य पूरा न हो सकेगा । इसके लिए भावनाएँ तरंगित करनी पड़ेगी । 'भक्ति भावना' शब्द का प्रयोग इसीलिए किया जाता है कि उसमें भावनाओं को तरंगित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इसके बिना सारे अभ्यास निष्प्राण ही बने रहेंगे । यही कारण है कि क्रियाकृत्यों को सब कुछ मानकर उन्हीं की प्रवीणता के लिए माथापच्ची करते रहने वाले व्यक्ति प्रायः निराश रहते और असफलता की शिकायत करते ही पाये जाते हैं ।

योग को चित्तवृत्तियों का निरोध कहा गया है । चित्त की वृत्तियाँ 'प्रेम' को—वासना, तृष्णा, मोह, अहंता आदि भौतिक लिप्सा-लालसाओं की पूर्ति को ही सुखद मानती हैं, उन्हीं की इच्छा करती हैं और उन्हीं में निरत रहती हैं । पानी का स्वभाव नीचे की ओर गिरना है इस पतनोन्मुख प्रवृत्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए वैसा ही प्रयत्न करना पड़ता है जैसा कुएँ से पानी खींचने अथवा तालाब का पानी टंकी में चढ़ाने के लिए । मन को ढीला छोड़ देने से वह जन्म-जन्मान्तरों के संग्रहीत एवं अभ्यस्त पशु-प्रवृत्तियों के अस्तबल में अपने आप घुस जायगा । घड़े से गिरते ही पानी नीचे की ओर बहने लगता है । चित्त का भी यही स्वभाव है । उसे उलटने का जो पुरुषार्थ करना पड़ता है उसी को 'चित्तवृत्ति निरोध' कहा जायेगा । महर्षि पातंजलि ने इसी प्रयास को योग कहा है ।

कई व्यक्ति चितवृत्तियों के निरोध की बात को नहीं समझते और मात्र 'चित्त निरोध' को ही योग मान लेते हैं । उनका तात्पर्य 'एकाग्रता' से होता है। एकाग्रता होना ही उनकी दृष्टि में योगाभ्यास की सफलता है और उसका न होना असफलता । यह भ्रम है । एकाग्रता एक चीज है और एक धारा दूसरी । एकाग्रता का अपना महत्त्व और अपना लाभ है—उसका औचित्य और उपयोग समझा जा सकता है, पर एकाग्रता को ही योग का—उपासना का आधार मान बैठना गलत है । एकाग्रता के भी स्तर हैं, मेस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म में भी एकाग्रता प्रयुक्त होती है और देव प्रतिमा के समक्ष होकर उसकी पूजा, आरती, स्तुति आदि से भी एकाग्रता का पाठ पढ़ा जाता है । पीछे यह बढ़ते-बढ़ते उस स्थिति तक भी पहुँच सकती है जिसे तन्मयता, भाव समाधि, विचार शून्यता आदि का नाम दिया जा सके । यह अन्तिम और समय साध्य स्थिति है । लोग इसी को पहले दिन प्राप्त करना चाहते हैं । 'मन लगे तो भजन करें' की उनकी माँग रहती है । वस्तु स्थिति इससे बिल्कुल उल्टी है । अल्हड़ बछड़े और घोड़े पहले दिन से ही हल या ताँगा नहीं चलाने लगते । बहुत समय तक उनके साथ माथापच्ची करके काम का बनाया जाता है । ठीक यही बात मन के सम्बन्ध में भी है । उपासना कृत्यों में बिना मन लगे ही चिरकाल तक लगा रहना पड़ता है । पीछे वह अभ्यास, स्वभाव में बदल जाता है और उसकी भी शौच, स्नान, भोजन, शयन जैसी दैनिक आवश्यकता अनुभव होने लगती है ।

'काम में मन लगाना' एक गुण है । यह प्रयोग दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में करते रहना चाहिए । श्रम और मनोयोग के सम्मिश्रण से होने वाले लाभों को जानना चाहिए और आलस्य प्रमाद से उत्पन्न होने वाली हानियाँ समझनी चाहिए, अपने काम को पूरी तत्परता, दिलचस्पी के साथ करने का अभ्यास डालें । यही स्वभाव 'भजन' में मन लगाने का भी आधार हो सकता है । जो लोग लापरवाही, उदासी एवं उपेक्षा पूर्वक अपने काम करते हैं उनका भजन भी उसी प्रकार का होगा । भजन भी एक काम है और उसमें मन लगाना इस बात पर निर्भर है कि काम में मन लगाने की आदत है या नहीं । भजन में मन लगाने की पृष्ठभूमि विस्तृत है इसके लिए पूरी कार्य-पद्धति को ही नये ढाँचे में ढालना होगा और दिलचस्पी तथा तत्परतापूर्वक काम करने की आदत विकसित करनी पड़ेगी । इस दिशा में जितनी चेष्टा होगी उसी अनुपात से प्रत्येक कार्य में मन लगेगा—साथ ही भजन में भी । हर काम को उपेक्षा और उदासी से करने वाले लोग मात्र भजन में ही मन लगाने की अपेक्षा रखेंगे तो उन्हें निराश ही होना पड़ेगा ।

एकाग्रता की स्थिति समय साध्य है, उसके लिए धैर्य और प्रयत्नपूर्वक बहुत समय तक अभ्यास करते रहने की आवश्यकता होगी । वह स्थिति न आये तो भी उतना हर्ज नहीं, जितना समझा जाता है । आत्मिक प्रगति के लिए मन की दिशा और धारा बदल देने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता है, उतने भर से 'चित्तवृत्ति निरोध' की योग आवश्यकता पूरी होने लगती है ।

'प्रेय' की लिप्सा 'श्रेय' की आकांक्षा में बदली जानी चाहिए । पेट प्रजनन भर के लिए जीने में संलग्न पशु स्तरीय प्रवृत्ति को बदल कर आत्मा को परमात्मा स्तर तक विकसित करने की देव स्तरीय प्रवृत्ति में प्रवेश करना चाहिए । आकांक्षाएँ बदल जाने से मन की विचारणा और शरीर की कार्य-पद्धति में काया-कल्प प्रस्तुत हो जायेगा । प्रेय की निरर्थकता और श्रेय की सार्थकता में विश्वास बढ़ चले तो उसका प्रभाव कल्पना क्षेत्र तक सीमित न रहकर व्यावहारिक जीवन के हर क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगेगा ।

जीवन का लक्ष्य समझा जाना चाहिए और प्रगति की दिशा अपनाई जानी चाहिए । निरुद्देश्य जीने से हवा के साथ-साथ उड़ते फिरने वाले पत्तों जैसी दुर्गति होती है । वे यत्र-तत्र-सर्वत्र भटकते भर हैं, पहुँचते कहीं नहीं—पाते कुछ नहीं । जीवन का सुनिश्चित लक्ष्य अपूर्णता को पूर्णता में विकसित करना—आत्मा को परमात्मा स्तर तक पहुँचाना ही है । उसे जितनी जल्दी समझा और अपनाया जा सके उतना ही उत्तम है । शरीर रक्षा और परिवार पोषण के लिए उपार्जन तथा व्यवस्था सम्बन्धी कार्य भी किए जाने चाहिए किन्तु उतने भर में सीमित न हो बैठा जाय । यह ध्यान पूरी गम्भीरतापूर्वक रखा जाना चाहिए कि सुरदुर्लभ मनुष्य शरीर किसी विशेष उद्देश्य के लिए मिला है और उसे पूरा करने में ही दूरदर्शी बुद्धिमत्ता है । अन्तःकरण में यह तथ्य निरन्तर जागृत बना रहे तो समझना चाहिए कि उपयुक्त जीवन दिशा मिल गई और उसके प्रकाश में सद्भावनाएँ अपनाये रहने तथा सत्प्रवृत्तियों में संलग्न रहने की धारा बह चलेगी । एक दिशा, एक लक्ष्य, एक आकांक्षा, प्रेरणा यदि निश्चित हो जाय तो फिर शरीर और मन को उसी ओर चल पड़ने की बात बन जाती है और धीरे-धीरे चलते रहने पर भी देर सबेर में मनुष्य वहाँ जा पहुँचता है जहाँ पहुँचा देखकर उसका साथी चमत्कार हुआ या देवता का वरदान मिला मानने लगता है ।

आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली यही सड़क है । श्रेय की प्राप्ति को लक्ष्य मान कर चलने से चित्तवृत्तियों में पूर्व की अपेक्षा असाधारण परिवर्तन हो जाता है । निकृष्टता-उत्कृष्टता की दिशा में उलट पड़ती है इसी उर्ध्व गमन को चित्तवृत्ति निरोध कहा जाता है । पतनोन्मुख पशु-प्रवृत्तियाँ जब उत्थान की दिशा में देव प्रवृत्तियों का रूप बना लेती हैं तो उस स्थिति को योग स्थिति कह सकते हैं । गीता में योगी की गतिविधियों का स्वरूप बताते हुए कहा है कि—"जब लोग सोते रहते हैं तब योगी जागता है ।" "जब लोग जागते हैं तब योगी सोता है ।" इस रहस्यवाद के पीछे यही तथ्य छिपा है कि लोक प्रवाह में पशु-प्रवृत्तियों की ही प्रधानता है । संसार में भोगी लोगों का ही बाहुल्य है । उन्हीं की रीति-नीति, सलाह एवं परम्परा अपनाने से योगी का काम नहीं चल सकता । उसे अपने चिन्तन और कर्तृत्व का ढाँचा विवेक के सहारे खड़ा करना पड़ता हैं । यह लगभग लोक प्रचलन में बहुत करके विपरीत ही बैठता है । लोग उसे मूर्ख कहते हैं और वह लोगों को मूर्ख समझता है । स्वतन्त्र चिन्तन और लोक प्रवाह में भारी अन्तर रहता है । यह रस्साकशी कुसंस्कारी चित्तवृत्तियाँ योगवाद का ही समर्थन करती हैं । इस प्रवाह को आत्मिक साहस के बल पर उलटने का नाम 'चित्तवृत्ति निरोध' है । यही योगी का प्रबल पुरुषार्थ माना जाता है ।

एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः होता है और वह समय साध्य है । इसलिए उसमें उतावली बरतने की—आतुरता प्रदर्शित करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । निरन्तर जीवन लक्ष्य का ध्यान रखा जाय तो उस धारा प्रवाह को 'एक दिशा' कहा जा सकता है और उससे एकाग्रता का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

ध्यान धारणा में एक बिन्दु पर मन एकाग्र करने की बात बहुत आगे की है । पहले तो साकार ध्यान में साकार की ध्यान प्रतिमाएँ बनानी पड़ती हैं । निराकारवादी भी सूर्य आदि का कोई न कोई रूप बनाते हैं अथवा नादयोग में विभिन्न शब्दों को सुनते हैं रूप या शब्द का ध्यान करने के माध्यम से एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है । पर विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होगा कि उस ध्यान प्रक्रिया में भी बिखराव ही बिखराव भरा पड़ा है । इष्टदेव की प्रतीक छवि में उनके अंग-प्रत्यंग, वस्त्र-आभूषण, आयुध, वाहन आदि का बड़ा आवरण रहता है और उस विस्तृत क्षेत्र में यहाँ से वहाँ उड़ते फिरने की मन को पूरी छूट रहती है । इष्टदेव यदि शिव हैं तो ध्यान करते समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधक को छूट है कि वह उनके सिर पर टँगे चन्द्रमा का, गंगा के उद्भव का, लिपटे हुए सर्पों का, कटिप्रदेश में पहने व्याघ्र चर्म का, गले की मुण्डमाला का, नन्दी वाहन की छवि देखे और उस सीमित ध्यान क्षेत्र में कहीं भी दौड़ लगाता रहे । फिर यह एकाग्रता कहाँ हुई ?

निराकारवादी प्रायः सूर्य किरणों का शरीर के रोम-रोम में प्रवेश करने का अथवा चित्र-विचित्र ध्वनियाँ सुनने का अभ्यास करते हैं । इसमें भी चिन्तन विस्तार का उतना ही क्षेत्र विद्यमान है जितना साकारवादी मान्यताओं में । जब मन को इतनी दौड़-धूप करने और इतने भिन्न प्रकार के अनुभव करने की छूट रही तो वह एकाग्रता कैसे बनी ?

वस्तुतः जिसे हम एकाग्रता कहते हैं वह सब चित्त की भाग दौड़ को असीम से रोक कर एक सीमित क्षेत्र में प्रतिबन्धित करना है । मन बार-बार भागता है और उसे पकड़-पकड़ कर बार-बार निश्चित ध्यान परिधि में लाया जाता है । यही प्रयोग चलता रहता है । पूर्ण एकाग्रता समाधि अवस्था है और वह पूर्णता तक जा पहुँचने पर ही मिलती है । उसके लिए किसी को भी अधीर नहीं होना चाहिए ।

हजार बार इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि पूर्ण एकाग्रता साधना काल की आरम्भिक प्रक्रिया या आवश्यकता किसी भी दृष्टि से नहीं है । उसके लिए न तो लालायित होना चाहिए न खिन्न । प्रयत्न करते रहना भर पर्याप्त है । मीरा, सूर, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस आदि भक्तजनों की भावस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे एकाग्रता नहीं तन्मयता प्राप्त कर सके और उसी में उनका लक्ष्य मिल गया । भक्त सम्प्रदाय, में प्रणय, वियोग, अश्रुपात, समर्पण, आलिंगन जैसे भावोन्मादों की घटाएँ ही उमड़ती रहती हैं । उस मनःस्थिति में एकाग्रता किसी भी प्रकार सम्भव नहीं । यदि एकाग्रता ही सर्वोपरि रही होती तो भक्तजनों पर हर घड़ी छाया रहने वाला भावोन्माद तथा उसके उभार में उठने वाले हास्य, रोदन, नृत्य, अवसाद आदि की उद्विग्नता लक्ष्य प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा बन गई होती, पर ऐसा हुआ नहीं है ।

यहाँ एकाग्रता का महत्त्व घटाया नहीं जा रहा है और न उसे त्याज्य या उपेक्षणीय कहा जा रहा है । एकाग्रता की उपयोगिता में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए इतने पर भी सर्वसाधारण के मन में जमी हुई इस भ्रान्ति का निराकरण होना ही चाहिए कि—"भजन में मन लगाना अर्थात् चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है, वह है, तो भजन की सफलता—नहीं है तो असफलता" इस चिन्तन को हटाकर यों सोचना चाहिए कि 'चित्तनिरोध' नहीं 'चित्तवृत्तियों का निरोध' आवश्यक है । एकाग्रता नहीं 'एक दिशा' अभीष्ट है । यदि ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि योग साधना की सही पृष्ठभूमि बन चली ।

समूची ब्रह्म सत्ता को समझा जा सकना मनुष्य की छोटी बुद्धि के लिए असम्भव है । ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है; उनका विस्तार हमारी कल्पना शक्ति से बाहर है । अपनी पृथ्वी पर प्रकृति की जो कार्य पद्धति है, अन्य लोकों में उससे भिन्न है । पृथ्वी के प्राणधारियों की आकृति चिन्तन एवं जीवन-यापन पद्धति में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है । फिर अन्य लोकवासी चैतन्य प्राणियों की रीति-नीति के बारे में तो कहा ही क्या जा सकता है ? समूचा ब्रह्म न तो हमारी समझ में भी आ सकता है और न उसे समझने की आवश्यकता है । मानवी चेतना के साथ ब्रह्म चेतना का जितना अंश सम्बन्धित है उस भाग को ईश्वर या परमेश्वर कहते हैं । हमारे आनन्द एवं उत्थान में उसी की भूमिका रहती है । अस्तु साधना के लिए उसी छोटी ब्रह्म परिधि के साथ हमारा सम्पर्क मिला लेना पर्याप्त माना गया है । उपासना का केन्द्र बिन्दु यह ईश्वर ही रहता है ।

ब्रह्म एक है । अनेक रूपों में देवी-देवताओं की मान्यता से इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि वे एक दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र हैं । परमेश्वर असंख्य शक्तियों का भण्डार है । उसकी जिस क्षमता के साथ हमारा विशेष आकर्षण या लगाव होता है; उसी को प्रधान मानकर चलने से अभीष्ट शक्ति तत्व की अधिक मात्रा अपनी ओर आकर्षित करने का अवसर मिलता है । सूर्य की धूप में अल्ट्रावायलेट—आदि अनेकों विशेष गुणों वाली क्षमताएँ सन्निहित रहती हैं । वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से शेष किरणों के समूह में से छाँटकर अपने लिए आवश्यक किरणों को ही पकड़ा और प्रयोग में लाया जा सकता है । ब्रह्म को सूर्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसकी असंख्य किरणों को असंख्य देवता माना जा सकता है । जो अभीष्ट हो उसी पर उपासना केन्द्रित की जा सकती है । सरस्वती विद्या की—लक्ष्मी समृद्धि की, दुर्गा बलिष्ठता की देवी हैं । गणेश बुद्धि के, हनुमान बल के, सूर्य तेज के, शिव कल्याण के, विष्णु वैभव के, ब्रह्म सद्ज्ञान के देवता हैं । अन्यान्य देवी-देवताओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । यह सब एक ही विराट् ब्रह्म के अवयव मात्र हैं । उसी में वे घुले-मिले हैं । अपनी श्रद्धा, संकल्प शक्ति और उपासना प्रक्रिया को एकत्रित करके साधना रत होने से उनका स्वतन्त्र अस्तित्व भासने लगता है । ध्यान की सुविधा के लिए इन शक्ति तत्वों का मनुष्याकृति वाला शरीर भी कल्पित किया गया है । पूर्व मान्यताएँ और साधनात्मक निष्ठाएँ मिलकर उस प्रकार की प्रतिमा का स्वरूप वस्तुतः सामने ले आती हैं और वह 'इष्टदेव' साधक की सहायता के लिए प्रस्तुत दीखने लगता है । साधक का व्यक्तित्व और संकल्प इस भाव निर्मित इष्टदेव में प्राण फूँकता है । उस उपास्य में साधक के स्तर के अनुरूप ही शक्ति होती है । दुर्बल मनःस्थिति वाले साधक के इष्टदेव मात्र छाया जैसा आभास देकर तिरोहित हो जाते हैं । जबकि प्राणवान साधक का वही इष्टदेव प्रचण्ड सामर्थ्य का परिचय देता है ।

आवश्यकतानुसार विशेष सूक्ष्म शक्ति उपार्जन करने के लिए अमुक देवी-देवताओं की उपासना की खण्ड साधना भी की जा सकती है, पर अपना अनुभव और परामर्श यह है कि समग्र ब्रह्म की साधना ही सर्वोत्तम है । आहार वही आदर्श माना जाता है जिसमें पोषण के सभी तत्व मौजूद हों । प्रोटीन कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अकेले उसी को खाना लाभदायक न रहेगा । अमुक देवता की उपासना अकेली प्रोटीन, अकेली कैल्सियम खाने की तरह है । आवश्यकता पड़ जाने पर चिकित्सा उपचार की तरह कोई विशेष तत्व अमुक मात्रा में लिया जाता है, इसी प्रकार विशेष प्रयोजन के लिए कोई देव-साधना उपयोगी हो सकती है, पर सर्वतोन्मुखी प्रगति के लिए—सर्वकालिक साधना समग्र ब्रह्म की ही होनी चाहिए ।

कई तरह के देवी-देवताओं की—कई प्रकार की आकृतियों का संग्रह करने में ध्यान बँटता है और निष्ठा विकेन्द्रित होती है । पूजा-स्थली एवं ध्यान प्रक्रिया में चित्र-विचित्र, साज-सज्जा इकट्ठी इसलिए की जाती है कि कई देवता कई तरह के वरदान देंगे और सभी से थोड़ा-थोड़ा सम्बन्ध बना रहने से पंचमेल स्वाद मिलेगा और कई तरह के लाभ होंगे, पर यह मान्यता उपासना क्षेत्र में उल्टी बैठती है । ध्यान और निष्ठा को केन्द्रित रखना उपासना का महत्त्वपूर्ण आधार है । उसे बिखेरना नहीं चाहिए । बहुत देवताओं के जंजाल में "सात मामाओं का भान्जा भूखा रहता है" वाली कहावत चरितार्थ होती है । गायत्री उपासना की प्राचीन परिपाटी में प्रातःकाल हंसारूढ़ा ब्राह्मी-मध्याह्न को गरुड़ा रूढ़ा वैष्णवी-सायं वृषभारूढ़ा शांभवी की भिन्न आकृतियों का ध्यान बताया गया है । हमने एक ही रूप को पर्याप्त माना है और अपनी भाँति परामर्श मानने वालों को एक ही ध्यान के लिए अनुरोध किया है । सविता देवता के रूप में परब्रह्म की उपासना सर्वोत्तम है । 'प्रकाश' की साधना साकार और निराकारवादी दोनों ही पक्षों के लिए समाधान कारक है । सभी धर्म सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में प्रकाश ध्यान की महत्ता स्वीकार की है । इसलिए उसे भार्वभौम भी कह सकते हैं । गायत्री मन्त्र का देवता सविता है । छवि स्थूल, विचारणा सूक्ष्म, भावना कारण, इन तीनों का समन्वय करते हुए अपना उपास्य सद्ज्ञान रूपी सूर्य हो, उसकी किरणों में गायत्री मन्त्र की सदाशयता और अन्तराल में अनन्य प्रेम से ओत-प्रोत मातृसत्ता की झाँकी की जा सकती है । इस ध्यान में तीनों शरीरों की आवश्यकता पूरी कर सकने जैसे सभी तथ्य विद्यमान हैं । साकार, निराकार का भी इसमें समन्वय है । उच्चस्तरीय उपासना के लिए यही ध्यान प्रतिभा सर्वोत्तम समझी गई है । इस अंक में इसी दृष्टि से वह चित्र दिया गया है और उपेक्षा की गई है कि ध्यान तथा पूजन के लिए उच्च कक्षा के छात्रों को यही अपनाना चाहिए । सामान्य कक्षाओं के लिए हंसारूढ़ गायत्री माता की पुरानी छवि का उपयोग करते रहना ही ठीक है । गायत्री को विराट् ब्रह्म की प्रतीक प्रतिमा मानकर ही चलना चाहिए उसमें उन सभी देव शक्तियों का सन्तुलित समन्वय मौजूद है जो साधक की भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है ।

यहाँ यह बात पूरी तरह ध्यान में रखने की है कि आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ा जाना ही योग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का एकमात्र लक्ष्य है । इसके लिए चित्तवृत्तियों का निरोध, दिशा परिवर्तन अनिवार्य रूप से आवश्यक है । आखिर आत्मा और परमात्मा को मिलाने की भूमिका तो चित्त को ही सम्पादित करनी है वह अन्य दिशा में उलझा रहेगा तो लक्ष्य प्राप्ति मार्ग पर बढ़ चलना किसके सहारे सम्भव होगा ? यदि चित्त की अस्त-व्यस्तता सुव्यवस्था में बदली जा सके तो समझना चाहिए कि वह प्रयोजन पूरा होने ही वाला है जिसके लिए विविध-विधि साधनात्मक कर्मकाण्ड करने की आवश्यकता पड़ती है ।

अन्तःप्रकाश का दर्शन आन्तरिक शुद्धि से

बुद्धिवादियों ने कुछ दिनों पूर्व तक यह घोषित किया था कि—'विचार अपने साम्राज्य का स्वयं शासक है, उसे किसी भी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं ।' इस तथ्य को वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया तथा उसमें एक कड़ी और जोड़ते हुए कहा कि—'प्रकृति ही हमारी सच्ची अध्यापिका है ।' परिणाम यह निकला कि प्रकृतिगत प्रेरणाओं को ही मार्गदर्शक माना गया, विचार शक्ति भी उसी के इर्द-गिर्द घूमती रही । प्रकृति को ही शिक्षक मान लिया गया तथा विचारों का ताना-बाना उस शिक्षक के आदेशों के पालन करने में नियोजित हो गया । परिणाम यह हुआ कि मन को खुली छूट मिली । बुद्धि शरीर की आवश्यकता एवं स्वार्थों को ही सिद्ध करने में लग गई । अन्तःकरण में उठने वाली प्रेरणाओं, भावनाओं को बुद्धि दबाती हुई निरंकुश होती चली गई ।

उस समय से लेकर अब तक संसार के ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई है । मनोविज्ञान के नये-नये क्षेत्र ढूँढ़ निकाले गए, चेतना की रहस्यमय परतों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या हुई । अब नवीन युग के विज्ञान वेत्ता बुद्धिबल की अपेक्षा उन तत्वों को ढूँढ़ने में अधिक प्रयत्नशील हैं जो मनुष्य के मानवोचित गुणों को उभारते, बढ़ाते हों । एक मनुष्य को दूसरे के नजदीक लाने तथा परस्पर मिलाने का प्रयत्न करते हों । बुद्धिवाद अब अपने सीमित दायरे से निकलकर उन क्षेत्रों में बढ़ रहा है जो मनुष्य की चेतना का विकास करते हैं ।

अब यह बात स्वीकार की जाने लगी है कि शरीर एक चलता-फिरता यन्त्र नहीं वरन् एक ऐसी चेतना का अंश है जिसका सम्बन्ध विश्व चेतना के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ है ।

महर्षि पातंजलि कहते हैं कि मनोवृत्तियों का निरोध न होने से ही मनुष्य शरीर का गुलाम बन जाता है और कुसंस्कारों के वशीभूत हुआ इधर-उधर मारा-फिरता है किन्तु यदि वृत्तियों का परिमार्जन किया जाय तो उसे अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जाता है । अलग-अलग दीखते हुए भी आत्मा, मन, इन्द्रियों का आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । यदि मन इन्द्रियों की आवश्यकता की पूर्ति में लिप्त है तो आत्मा इन्द्रियों का दास बन जाता है किन्तु यदि मन को आत्मा की ओर मोड़ दिया जाय तो इन्द्रियाँ बाह्य जगत से छूटकर चेतन शक्ति की सहायता करने लगती हैं । मनःशक्ति पर ही शरीर का सारा कारोबार अवलम्बित है । न केवल शरीर संचालन वरन् जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी इसके योगदान पर निर्भर है ।

मन की शक्ति असीम है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता । प्रश्न यह है कि मन को निकृष्ट कार्यों से हटाने तथा सद्मार्ग पर लाने के लिए क्या कोई शरीर में ऐसा साधन है जो अन्तःज्योति को देखने में सहयोग कर सके ? उत्तर में कहा जा सकता है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ ही मनुष्य शरीर में एक छठी इन्द्रिय भी कार्य करती है जो अच्छे, बुरे का परिचय परिष्कृत अन्तःप्रेरणा के रूप में सदा देती रहती है । उसकी प्रेरणाओं का अनुमान प्रत्येक श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट कार्य करते समय लगाया जा सकता है । जिसका आभास अच्छे कार्यों में प्रसन्नता संन्तोष आदि के रूप में, तथा बुरे कार्यों में घृणा, आत्म प्रताड़ना, क्षोभ के रूप में, अनुभव होता है । आध्यात्मिक भाषा में विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में उस छठी इन्द्रिय को आत्मा, सोल, जमीर, आदि नामों से पुकारते हैं । कुछ लोग उसे ईश्वरीय आवाज तथा कुछ अन्तःज्ञान कहते हैं । प्रत्येक कार्य में हमें—इस अन्दर बैठे परमात्मा द्वारा सामयिक चेतावनी मिलती रहती है ।

जैसे-जैसे अन्तर से उठने वाली प्रेरणाओं को ग्रहण करके भौतिक इन्द्रियों एवं मनोवृत्तियों को परिष्कृत करते हैं तथा जीवन को पवित्र बनाते जाते हैं, वैसे-वैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्तरात्मा की आवाज स्पष्ट होने लगती है और जब उस आवाज को प्रेरणाओं के अनुरूप आचरण करने लगते हैं तो उसकी ध्वनि और भी प्रखर हो जाती है । तब यह ध्वनि इस प्रकार सुनाई देने लगती है जैसे कोई शिक्षक सामने बैठे विद्यार्थी को स्पष्ट निर्देश दे रहा हो । एक समय ऐसी स्थिति भी आती है जब उसकी आवाज बिल्कुल निर्दोष सुनाई पड़ती है ।

कहते हैं कि भगवान बुद्ध का 'भद्रक' नाम का शिष्य उनके पास आत्म-ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से पहुँचा । भगवान बुद्ध ने उसे समझाते हुए कहा कि प्रकाश का पुंज उसके अन्दर है । बाह्य मलीनताओं के कारण उसका प्रकाश बदली के सूर्य के समान दृष्टिगोचर नहीं होता है । उनका अभिप्राय इसी अन्तरात्मा से ही था जो पग-पग पर अन्तःप्रेरणाओं के प्रकाश में अच्छे-बुरे का आभास कराती रहती है । 'भद्रक' इस रहस्य को जानकर आत्म-परिष्कार की साधना में निरत हो गया ।

घर की खिड़की के शीशे गन्दे तथा धुँधले हों तो बाहर की वस्तुएँ साफ नहीं दिखाई पड़तीं । इस तथ्य से हर कोई अवगत है । उसी प्रकार आन्तरिक पवित्रता के अभाव में अन्तःप्रकाश को देख पाना सम्भव नहीं है । सत्यज्ञान की प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को आभ्यन्तर की पवित्रता अति आवश्यक है । धर्म-शास्त्र, आप्त वचन मार्ग-दर्शन कर तो सकते हैं किन्तु ज्ञान के स्रोत अपने अन्दर हैं जो जीवन को पवित्र बनाये बिना मिल सकना असम्भव है ।

शक्तियों को बिखेरें नहीं, एकत्रित करें

बिखराव से शक्ति का अपव्यय होने की बात सभी को विदित है । फैला देने से बढ़ी-चढ़ी सामर्थ्य भी अस्त-व्यस्त होती देखी गई है और यदि उसे एक स्थान पर समेट दिया जाय तो असाधारण क्षमता उत्पन्न होती है ।

बारूद बिखेर दी जाय और उसमें आग लगाई जाय तो वह भक् से जलकर समाप्त हो जायेगी किन्तु यदि उसे बन्दूक की नली में केन्द्रित करके एक निशाने पर लगाया जाय तो शीशे की भरी गोली को भी साथ ले उड़ती है और कठोर ठिकाने को भी बेधकर आर-पार छेद कर देती है । दो इंच परिधि की सूर्य किरणें यदि आतिशी शीशे पर केन्द्रित की जायें तो उतने भर से देखते-देखते आग जलने लगती है । उस चिंगारी को यदि अवसर मिले तो दावानल बनकर सुविस्तृत क्षेत्र को भस्मसात कर सकती है । भाप खेत तालाबों से अनायास ही उठती और इधर-उधर उड़ती रहती है किन्तु यदि छोटे से वॉयलर में उसे केन्द्रित कर लिया जाय तो उससे भारी बोझा लादकर लम्बी रेलगाड़ी हजारों मील का सफर कर सकती है ।

मनुष्य शरीर के संचालन में जो विद्युत शक्ति काम करती है उसे यदि एकत्रित किया जा सके और एक प्रयोजन के लिए लगाया जा सके तो वे चमत्कारी कार्य सम्पन्न हो सकते हैं जो तन्त्र या कुण्डलिनी शक्ति के नाम से जाने जाते हैं । इसी प्रकार मस्तिष्क क्षेत्र है । देखने में तो वह शरीर का छोटा अवयव मात्र है, पर उतनी सी परिधि में कितनी विद्युत शक्ति काम करती है इसका लेखा-जोखा लिया जाय, तो प्रतीत होगा कि एक बड़ी मिल को चलने में जितनी बिजली खपती है उससे कम नहीं, कुछ अधिक ही इस कम्प्यूटर के अगणित, अत्यन्त पेचीदा अवयवों का सूत्र संचालन करने में खप जाता है । सामान्य तर्क इसका उपयोग निर्वाह की दैनिक समस्याओं का ताना-बाना बुनने, उलझनों को सुलझाने भर से होता रहता हैं । निरर्थक कल्पनाएँ और भी अधिक शक्ति खाती हैं । इस बिखराव को समेटकर यदि किसी लक्ष्य विशेष पर केन्द्रित किया जा सके तो उसके भी चमत्कारी परिणाम सामने आ सकते हैं ।

योग में 'चित्त की वृत्तियों का निरोध' वह कृत्य है जिसमें जो जितने स्तर की सफलता प्राप्त कर लेता है वह उसी स्तर का योगी माना जाने लगता है । योग की आध्यात्मिक परिभाषा आत्मा को परमात्मा के साथ सटा देना, उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना होता है किन्तु भौतिक जीवन में भी उसका कम उपयोग नहीं है । चिन्तन का बिखराव रोककर यदि उसे किसी एक प्रयोजन में लगाया जा सके तो उसकी सफलता असंदिग्ध हो जाती है । वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार बुद्धिजीवी इसी विशेषता को अर्जित करके अपने कार्यों में प्रगति करते और सफल होते हैं । अर्जुन के मत्स्य

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बेध की कथा प्रसिद्ध है । यह सफलता उसने एकाग्रता की सिद्धि प्राप्त करके ही पायी थी ।

मन की शक्ति असीम है । उसका उपयोग जीवन में सम्बन्धित कृत्यों और चिन्तनों में होता है । फलतः बिखराव की स्थिति बनी रहना स्वाभाविक है । अनेकानेक पक्षों की मस्तिष्कीय क्षमता का थोड़ा-थोड़ा अंश मिलता है और उन सभी का ढर्रा किसी न किसी प्रकार लुढ़कता रहता है । इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सृष्टा ने मनःशक्ति की संरचना इस प्रकार की है जिससे वह जीवन के हर क्षेत्र का परिपोषण करती रहे और कहीं भी अभावग्रस्तता की स्थिति उत्पन्न न होने पाये । इसी व्यवस्था को चंचलता कहते हैं । मन की वानर वृत्ति प्रसिद्ध है वह हर घड़ी उचकता-मचकता रहता है । इस डाली से उस डाली पर फुदकते रहने की उसकी चंचल प्रवृत्ति का परिचय प्रायः सभी को है ।

इस स्वाभाविकता पर सन्तोष तभी किया जा सकता है जब जीवन की गतिशीलता मात्र निर्वाह व्यवस्था तक ही सीमित रही होती । पक्षी इसी प्रकार के विनोद कौतुक में निरत रहते हैं । उनकी फुदकन देखते ही बनती है । इस प्रवृत्ति का सूत्र संचालन निश्चय ही उनकी मानसिक चंचलता करती होगी । यदि उसमें कमी रही होती तो मगरमच्छ और बाराह भैंस की तरह वे भी आलसी जीवन जी रहे होते और पेट भरने के उपरान्त चादर तान कर सोया करते ।

मानवी प्रगति में उसकी कल्पना शक्ति का बड़ा योगदान है । बुद्धिमत्ता तो बाद की चीज है । मस्तिष्क अनगढ़ कल्पना चित्र बनाता रहता है । बुद्धि उनमें से उचित-अनुचित, शक्य-अशक्य का विश्लेषण करती है और जो उपयोगी प्रतीत होते हैं उन्हें विचारपूर्वक किसी निष्कर्ष पर पहुँचने तक के लिए मान्यता देकर शेष को उपहासपूर्वक उपेक्षित एवं बहिष्कृत करती रहती है ।

मनःक्षेत्र का यह सामान्य उपक्रम तब असमंजस उत्पन्न करता है जब किन्हीं महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के लिए अधिक गम्भीरता से विचार करके उसे सुनिश्चित योजना का रूप देना अभीष्ट होता है । इसके लिए अधिक मानसिक अनुदान चाहिए । यह कैसे मिले ? उसका उत्तर एक ही है कि मनःशक्ति उस प्रयोजन में अधिक गहराई तक उतरे, अधिक ध्यान दे, अधिक समय तक रुके । इस आवश्यकता की पूर्ति में एक ही बाधा रहती है, मन की बनावट या आदत । वह अपने स्थान पर उचित और आवश्यक भी है, पर तर्क क्या किया जाय ? जब कोई महत्त्वपूर्ण प्रसंग सामने हो और उसके लिए अधिक मनोयोग उपलब्ध किए बिना काम न चलता हो ।

साधारणतः नदी प्रवाह बहता रहता है और वर्षा हो या हिम देश से प्राप्त हुई जल-सम्पदा बहते-बहते समुद्र तक पहुँचती रहती है । इस सामान्य में गतिरोध उत्पन्न करने की आवश्यकता तब पड़ती है जब बाँध बनाकर संचित जलराशि को नहरों में मोड़ना और आवश्यकता वाले खेतों को सींचना अभीष्ट होता है । यह बाँध बनाये बिना सम्भव नहीं । सिंचाई से लेकर बिजलीघर बनाने जैसी योजनाएँ इस अवरोध को आवश्यक बताती हैं जिनके आधार पर नदी प्रवाह को रोककर बाँध से जलराशि का संचय किया जाता है । ठीक यही बात महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के लिए लागू होती है । एकाग्रता के आधार पर मनःशक्ति को उच्चस्तरीय उद्देश्यों के लिए नियोजित करना पड़ता है अन्यथा अभ्यस्त चंचलता के रहते कोई बात बनेगी ही नहीं । विनोद कौतुक चलता रहेगा । इच्छा उठना एक बात है और उसके प्रगति पथ को प्रशस्त करने वाली अवरोधों से निपटने वाली—साधन जुटाने वाली योजना बनाने के लिए कार्यान्वित करने वाली पद्धति निश्चित कर सकना दूसरी । यह दूसरी बात ही वह उपलब्धि है जिसके आधार पर विशिष्ट व्यक्ति—विशिष्ट योजनाएँ बनाते और उन्हें पूरा कर सकने की स्थिति तक पहुँचते देखे गए हैं ।

एकाग्रता का अवलम्बन उस दशा में नितान्त आवश्यक हो जाता है जब सामान्य क्रिया-कलापों को बिना रोके भी ऐसा कुछ करना होता है जिनके आधार पर विशेष योजना या आवश्यकता की पूर्ति के लिए अतिरिक्त मानसिक ऊर्जा उपलब्ध हो सके । इसके लिए प्रवाह का नियम आवश्यक है । यह अनायास ही नहीं हो जाता क्योंकि मन के स्वाभाविक क्रम में चंचलता प्रधान रहने के कारण उसे देर तक कहीं ठहरने के लिए सहमत नहीं किया जा सकता है । इसके लिए उसे विशेष रूप से साधना पड़ता है । जानवरों की अनगढ़ प्रकृति को अनुकूल बनाने के लिए किसान, बैलगाड़ी वाले, घुड़सवार, मदारी आदि को ऐसी ही सिरफोड़ी करनी पड़ती है अन्यथा उन्हें सहज सहमत कर सकना किसी प्रकार बन ही नहीं पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्तशुद्धि योगाभ्यास का प्रथम आधार

चित्त में अनेकानेक प्रकार की वृत्तियों-संस्कारों की तरंगें समुद्री लहरों की तरह हिलोरें मारती और उसे चंचल बनाये रखती हैं । योग का प्रमुख कार्य चित्त की उन तमाम वृत्तियों को रोकना और उसे उसके वास्तविक स्वरूप में लाना है । चित्त का वास्तविक स्वरूप सर्वव्यापक, असीमित एवं विभु है । कार्य चित्त भिन्न-भिन्न जीवों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है । यही जीवों के दुःख-सुख का मूल कारण है । मनुष्य शरीर का चित्त मृत्योपरान्त यदि निम्न योनि वाले पशु शरीर में प्रवेश करता है, तब शास्त्रों के अनुसार वह सिमट कर अपेक्षाकृत छोटे रूप में हो जाता है । सिकुड़ने-फैलने वाला चित्त ही कार्यचित्त कहलाता है । कारण चित्त पुरुष जीव से सम्बन्धित होता है तथा भले-बुरे कर्मों के अनुसार अभिव्यक्त होता है ।

प्रार्थना, दान, सेवा, त्याग, बलिदान से चित्त की सीमा बढ़ती है और पाप, अनुदारता से सीमा घटती है । मन की एकाग्रता, आस्था-विश्वास से भी चित्त चेतना का विस्तार होता है । योगाभ्यास से सीमा विस्तरण के साथ ही शक्तियों, दिव्य क्षमताओं का जागरण एवं अभिवर्धन होता है ।

चित्त की प्रमुखता को आध्यात्मवादी और भौतिक मनोविज्ञानी समान रूप से स्वीकार करते हैं । आध्यात्मवादी चित्त को आदतों का, संस्कारों का भाण्डागार मानते हैं । उसी में वैसा कर गुजरने की प्रेरणाएँ उठती रहती हैं जैसी कि चित्त की लालसाएँ उभरती हैं । आदतें इतनी प्रबल होती हैं कि वे समूचे व्यक्तित्व पर छाई रहती हैं और नशेबाजी की तरह छुड़ाये नहीं छूटतीं । इसीलिए साधना विज्ञान में हठपूर्वक चित्त का परिशोधन करने के लिए कहा गया है । अनेक प्रकार के साधनात्मक प्रयोग इसी निमित्त किए जाते हैं । तपश्चर्या की आग चित्त को परिमार्जित करने के लिए ही प्रज्ज्वलित करनी पड़ती है ।

मनोविज्ञानियों की मान्यताएँ भी प्रत्यक्षतया भिन्न होते हुए भी वस्तुतः कुछ मिलती जुलती हैं । उनके अनुसार शरीर की स्वचालित क्रियाएँ चेतन चित्त के आधार पर ही चलती हैं । चित्त का चेतन भाग-कल्पना और बुद्धि, अचेतन भाग-आदतें और शरीर की स्वसंचालित क्रियाएँ तथा सुपरचेतन-भावनाएँ एवं सूझ-बूझ का केन्द्र-अपने-अपने काम करते रहते हैं । इन्हें ही सँभालने, सुधारने और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पड़ती है, तभी मनुष्य की समग्र प्रगति सम्भव हो पाती है ।

अचेतन चित्त की पूर्ण जानकारी भारतीय योग दार्शनिकों को आरम्भ से ही थी । फ्रायड, जुंग प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने बाद में उसके आधे-अधूरे भाग का ही पता लगाया है । तत्ववेत्ताओं के अनुसार अचेतन मन में पूर्वजन्म के ज्ञान, भावनाएँ, वासनाएँ, क्रियाएँ तथा उनके अन्तर्गत सम्वेदना, प्रत्यक्षीकरण, अनुमान, शब्द, स्मृति, भ्रम, अनुभूति, विकल्प, तर्क, उद्वेग और संकल्प आदि आते हैं । दोषों से मुक्त चित्त में ये समस्त क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं ।

कठोपनिषद् (अ. २/३/१५) के अनुसार चित्त में अनेकानेक भाव ग्रन्थियाँ अज्ञानवश उत्पन्न होती हैं और स्थायित्व प्राप्त कर लेती हैं जिससे सांसारिक सुख-दुःख के चक्र का अनुभव होता रहता है किन्तु ज्ञान से यह चक्र समाप्त हो जाता है । तब जीव को भव-बन्धनों से छुटकारा मिलता है । चित्त में अनेकों जन्मों के अनुभव और संस्कार विद्यमान रहते हैं । मृत्योपरान्त चित्त इन्हें लेकर नवीन शरीर में चला जाता है । जिस योनि में जीव उत्पन्न होता है उसी में उपयुक्त पूर्व जन्मों के संस्कार तथा प्रवृत्तियाँ इस योनि में भी उदय हो जाती हैं । यदि मनुष्य अवांछनीय प्रवृत्तियों को उदय न होने देना चाहे तो उसके लिए उसको संस्कार रूपी जड़ पर प्रहार कर उसे नष्ट करना होगा ।

इस दिशा में सफलता प्राप्त करने का एक ही उपाय है—योगाभ्यास । शास्त्रों में इसका बहुत बड़ा महत्त्व बताया गया है । इसका कारण उस प्रक्रिया के साथ जुड़ी हुई चित्त शुद्धि की अनिवार्य प्रक्रिया ही है । इस संदर्भ में पातंजलि योग दर्शन का कथन है—"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।" अर्थात् चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है । यदि मनुष्य अपने मन में उठने वाली अनेक प्रकार की कामनाओं और वासनाओं को रोक लेता है और उनका प्रयोग इन्द्रियों की इच्छा से नहीं, अपनी इच्छा से उस तरह कर सकता है, जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार सारथी रथ में जुते हुए घोड़ों को, तो वह निश्चय ही अपनी शक्तियों का ऊर्ध्वगामी विकास करके परमात्मा की उपलब्धि कर सकता है ।

साधारणतया चित्तवृत्तियों को समझ पाना भी सरल कार्य नहीं है । कारण सामान्य अवस्था में इनका न तो कोई स्वत्व दिखाई देता है और न मूल्य व महत्त्व, पर जब इन्हीं को कुचला और नियन्त्रण में रखने का अभ्यास किया जाता है, तब इनकी भयंकरता देखते ही बनती है । राक्षसी सुरसा की तरह अनेक रूप बनाने में पटु यह चित्तवृत्तियाँ मनुष्य को लुभाती ही नहीं, वरन् डराती और धमकाती भी हैं । निर्बल मन और अस्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति उनकी एक ही झपाक में ठण्डे होकर लम्बे समय से की जा रही तप साधना एवं योगाभ्यास तक छोड़ बैठते हैं और इस तरह आत्मिक प्रगति की यात्रा उनकी अधूरी ही रह जाती है ।

अर्जुन जैसे महारथी को भी यही कहना पड़ा था—

"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥"

—गीता ६।३४

अर्थात्—हे भगवन् ! यह मन बड़ा चंचल है । मस्तिष्क को मथ डालता है, यह बहुत दृढ़ और शक्तिशाली है । इसलिए इसको वश में करना वायु की तरह बहुत कठिन है ।

किन्तु योग विद्या विशारदों का कहना है कि यह कठिनाइयाँ कुछ ही दिन की होती हैं । यदि अभ्यास बन्द न किया जाय तो यही मन एक दिन सर्वोत्तम समीपस्थ मित्र की भाँति अनुकूल आचरण करने वाला हो जाता है । भगवान कृष्ण ने अर्जुन की बात स्वीकार करते हुए कहा था—"निःसन्देह अर्जुन ! मन बड़ा चचंल है, पर निरन्तर अभ्यास से वह भी वश में आ जाता है ।" योग एक लम्बी अवधि का अभ्यास है, जो देर तक उसमें स्थिर रह सकता है, वही अन्तिम सिद्धि तक पहुँच सकता है, यह पहले ही मन में बिठा लेने की बात है ।

मनीषी योगाचार्यों ने चित्तवृत्तियों के निरोध के दो उपाय बताये हैं—(१) मनोवैज्ञानिक, (२) वैज्ञानिक । प्रथम प्रकार के सभी उपाय मानसिक हैं । उनमें अपने मन को ही इस बात के लिए राजी किया जाता है कि वह अपने आप संसार की क्षणभंगुरता अनुभव करे और इस बात की जिज्ञासा जागृत करे कि हम वस्तुतः हैं क्या ? इस काय पिंजर में हम किस तरह फँसे पड़े हैं ? किस तरह उससे मुक्ति और पूर्ण आनन्द, जिसके लिए हमारी चाह अनवरत है, किस तरह प्राप्त हो सकती है ?

योग—दर्शन पाद १ सूत्र १२ में बताया गया है—"अभ्यास वैराग्याभ्यान्तन्निरोधः ।" अर्थात् निरन्तर वैराग्य का अभ्यास करने से मन की पार्थिव वृत्ति बदल जाती है । इसी बात को गीताकार ने—"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।" कहकर समझाया है । अर्थात् "निरन्तर वैराग्य का अभ्यास करने से मन की वृत्तियाँ धीरे-धीरे वश में आने लगती हैं ।"

योगदर्शन १।२३ के अनुसार दूसरा उपाय—"ईश्वर प्रणिधानद्वा" अर्थात् अपने आपको परमात्मा में मिलाने का—समर्पण का अभ्यास करने से मन की प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वगामी होने लगती हैं ।

योग शास्त्रों में अनेकानेक अभ्यास बताये गए हैं जिनसे मनोनिग्रह में सहायता मिल सकती है, पर मन उतने से ही वश में आ जाय यह कोई आवश्यक नहीं । हम आज जिस स्थिति में हैं, वह कई जन्मों का विकसित रूप है । मनुष्य के पूर्व जन्मों के पाप और वासनाओं के संस्कार जो मन में कई परतों के रूप में जमे होते हैं, बार-बार उन्हीं वासनाओं की ओर घसीटते हैं, इसलिए साधक की वृत्तियाँ कभी भी उद्दीप्त हो उठती हैं । उसके लिए वैज्ञानिक विधियाँ काम में लायी जाती हैं । शरीर और मन की अन्तरंग सफाई—चित्त का परिशोधन—परिष्कार यौगिक क्रियाओं से किया जाता है, तब निर्मलता आती है । इसलिए आत्म-साक्षात्कार की इच्छा रखने वाले किसी भी साधक के लिए वह आवश्यक हो जाता है कि वह अष्टांग योग का अभ्यास करता हुआ—आत्मा का विकास परमात्मा की ओर करे । योग के यह आठ अंग हैं—

"यम नियमासन् प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि ।"

—योग दर्शन २।२९

अर्थात्—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि । इनका अभ्यास करने से मन और अन्तःकरण की कठिन मलिनताएँ भी नष्ट हो जाती हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और निर्मल ज्ञान-प्रकाश एवं विवेक-बुद्धि की अभिवृद्धि होती है । योगियों के पास दिखाई देने वाली अनुभूतियाँ भी इन्हीं आठ अंगों में उत्तरोत्तर अभ्यास और विकास द्वारा उपलब्ध होती हैं, परन्तु इनका वास्तविक लाभ आत्मा या ईश्वर की प्राप्ति ही है, इसलिए किसी को भी चमत्कार और सिद्धियों की ओर मन न लगाकर केवल आत्म-कल्याण का ही विचार करना चाहिए ।

प्रायः अष्टांग योग की पूर्ण जानकारी हर किसी को नहीं और जिन्हें रहती भी है वे लम्बी अवधि तक उन कठोर से लगने वाले नियमोपनियमों का पालन नहीं कर पाते जिनसे चित्त की एकाग्रता सधती और कषाय—कल्मषों से—कुसंस्कारों से छुटकारा मिलता है । फलतः योगाभ्यास का वह लाभ नहीं मिल पाता जिसकी महिमा-महत्ता का वर्णन ऋषि-मनीषियों एवं योगशास्त्रों ने पग-पग पर किया है । ऐसी स्थिति में मन को साधने के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोग सर्वाधिक सुविधाजनक जान पड़ते हैं । इस विधि से प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़ी देर तक अभ्यास करने से कोई भी व्यक्ति अपना वैराग्य और ईश्वर प्राप्ति का अभ्यास दृढ़ कर सकता है । हानि रहित यह अभ्यास हर कोई कर सकता है । मनोवैज्ञानिक अभ्यास की सर्वोपयोगी दो विधियाँ हैं—पहला अभ्यास-सर्वप्रथम किसी समतल और कोलाहल रहित शान्त स्थान में कोई वस्त्र बिछाकर सीधे चित्त लेट जाना चाहिए । ध्यान रहे दोनों पैर सीधे मिलाकर रखे जायें, साथ ही दोनों हाथ सीने के ऊपर हों । इसके पश्चात शरीर को निश्चेष्ट एवं बिल्कुल शिथिल छोड़ दिया जाय और प्रगाढ़ भावना की जाय कि-मानो प्राण शरीर में से निकलकर प्रकाश के एक गोले की तरह हवा में स्थिर हो गया है और शरीर मृत अवस्था में बेकार पड़ा है । अब यही बात प्रत्येक अंग अवयव के बारे में ध्यानपूर्वक सोची जाय कि कल तक यही आँखें अच्छी-अच्छी वस्तुएँ देखने का हठ करती थीं, अब आज क्यों नहीं देखतीं और यह मुख जो बढ़िया-बढ़िया स्वादिष्ट वस्तुएँ खाने को माँगता था, कैसा बेकार पड़ा है ।

नाक, आँख, मुँह, कंठ, छाती, हाथ-पैर, सहित उन सभी अंगों को बार-बार ध्यानपूर्वक देखा जाय जिनमें कफ, थूक, माँस-मज्जा, मल-मूत्र के अतिरिक्त और कुछ भी तो नहीं रह गया है । यथार्थ वस्तु जो कि आत्म चेतना थी, वह तो अभी मेरे ही साथ है, क्या मैंने इस शरीर के लिए ही अपने इस प्रकाश शरीर को, आत्मा को भुला दिया था ? क्या अब तक इसी शरीर के लिए जो पाप कर रहा था, वह उचित था ? आदि ऐसे नेक प्रश्न मन में उठाये जा सकते हैं जिससे सांसारिक भाव नष्ट हों और मन यह मानने को विवश हो जाय कि हम अब तक भूल में थे । वस्तुतः "मनुष्य का यथार्थ जीवन शरीर नहीं आत्मा है ।"

दूसरा अभ्यास-इसमें किसी शान्त-एकान्त स्थान में कुश आदि का कोई पवित्र आसन बिछाकर ध्यान मुद्रा में बैठना पड़ता है । आसन सदैव समतल स्थान पर बिछाया जाता है । ऊँचा-नीचा होने पर शरीर को कष्ट होगा और ध्यान नहीं जमेगा । ध्यान मुद्रा का आरम्भ शरीर, सिर एवं ग्रीवा को सीधा रखकर अध खुले नेत्रों से नासिका के अगले भाग को देखने से होता है । दृष्टि और मन कहीं दूसरी ओर न जायें, इस ओर विशेष ध्यान रखना पड़ता है । यदि जाता है तो उसे बार-बार अपने अभ्यास की याद दिलाकर एकाग्र किया जाता है ।

जब मन शान्त हो जाय तब भावनापूर्वक ध्यान किया जाय कि मैं प्रकाश के एक कण, तारा या जुगनू की तरह हूँ और नीले आकाश में घूम रहा हूँ । सूर्य की तरह का उससे भी हजारों गुना बड़ा और तेज चमक वाला एक प्रकाश पिण्ड आकाश में दिखाई दे रहा है । उसी की प्रकाश किरणें फूटकर निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रही हैं । हजारों सूर्य उसके आस-पास चक्कर काट रहे हैं । मैं जो अभी तक एक लघु प्रकाश कण के रूप में अशक्त, अज्ञानग्रस्त और सीमाबद्ध पड़ा था, अब धीरे-धीरे उस परम-प्रकाश पुंज में हवन हो रहा हूँ । अब मैं रह ही नहीं गया या तो करोड़ों-अरबों किलोमीटर के विस्तार वाला गहरा नीला आकाश है या फिर वही दिव्य प्रकाश जिसमें घुलकर मैं अपने आपको सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ और सर्व-समर्थ अनुभव कर रहा हूँ ।

यह दोनों ही अभ्यास चित्तवृत्तियों को रोकने और वैराग्य तथा ईश्वर प्राप्ति की कामना को बढ़ाने में बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं । भावप्रवणता की गहराई में प्रवेश करने पर थोड़े दिनों के अभ्यास से ही उसके प्रतिफल सामने आने लगते हैं । अपनी सुविधानुसार कोई भी व्यक्ति इन साधनाओं का अभ्यास कर सकता है और अध्यात्म साधना की दिशा में वांछित प्रगति कर सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्त की वृत्तियों को रोकिए

मच्छर, हिरन, बन्दर, मोर, कबूतर, मछली, मेढ़क जैसे प्राणी निरन्तर बेसिलसिले की दौड़-धूप करते रहते हैं । इनके पीछे भोजन तलाशने का उद्देश्य ही दीख पड़ता है अन्यथा अनियोजित इस भाग-दौड़ से उन्हें थकान ही आती होगी । इस बिरादरी में एक और भी है जो सशक्त विचार सत्ता के नाम से जानी जाती है, पर उसका कार्य रहता है—अस्तव्यस्त, अव्यवस्थित । उस सत्ता का नाम है—मन । रात्रि के समय बेसिर-पैर के सपने देखता है । दिन में उसे दिवास्वप्न देखने की सूझती है ।

मन की कल्पनाओं का उद्देश्य मोटे अर्थों में स्वार्थ सिद्धि या इच्छाओं में काल्पनिक रमण करना हो सकता है, पर इतने भर से बनता क्या है ? संकल्पों की सिद्धि तो हो सकती है, क्योंकि उनके साथ प्रचण्ड पुरुषार्थ जो जुड़ा होता है । पर कोरी कल्पनाएँ तो मन की जल्पना मात्र हैं । सपने सार्थक नहीं होते । दिवास्वप्नों के सार्थक होने का भी कोई आधार नहीं । शेखचिल्ली की कथा प्रसिद्ध है, जो परिस्थिति, समय, सम्भावना आदि का अनुमान लगाये बिना ही मजूरी करते-करते मिनटों में भरे-पूरे परिवार का धनी मानी स्वामी बनना चाहता था । उस कल्पना से उसे पिटाई भर सहनी पड़ी, कपड़े गन्दे हो गए और बदनाम हुआ । कल्पना की अनगढ़ उड़ानें उड़ते रहने वालों को भी शेख-चिल्ली की उपमा दी जा सकती है । इतने पर भी एक कमी रह जाती है, वह यह कि शेख-चिल्ली के सामने एक उद्देश्य एवं कार्यक्रम था । भले ही उसमें व्यावहारिकता का पुट न रहा हो, पर ढाँचा तो उसने किसी आधार को अपनाकर खड़ा किया था, पर अपने मन के सामने ऐसा भी कुछ नहीं होता । भूतकाल की घटनाएँ, बचपन की स्मृतियाँ, भविष्य में आकाँक्षित मनोकामनाओं का ऐसा जमघट मस्तिष्क पर छाया रहता है जिसका विश्लेषण करने पर हँसी आती है और यह कहने में संकोच होता है कि जिस मस्तिष्क में से यह फुलझड़ियाँ छूटती हैं वह वास्तविकता नाम की किसी वस्तु से परिचित भी है या नहीं ।

पक्षी उड़ते हैं—हिरन दौड़ते हैं तो उस क्रिया में उन्हें शक्ति खर्च करनी पड़ती है । विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है, वे काम के हों या बेकाम के । उनके उठने और दौड़ने में मस्तिष्क की बहुमूल्य शक्ति खर्च होती है । उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध न हो तो आकाँक्षाओं के अपूर्ण रहने पर उल्टे खीज ही आती है । मनःक्षेत्र का संचित भण्डार चुकता है और आदत पड़ जाने पर मनुष्य अचिन्त्य चिंतन के जाल में फँस जाता है । वैसी ही आदत बन जाती है । कल्पना लोक में उड़ते रहने की स्थिति नशेबाजी जैसी हो जाती है, जिन्हें वास्तविकता एवं हानि-लाभ का निष्कर्ष निकाल सकने तक की क्षमता से वंचित रह जाना पड़ता है ।

विचार शक्ति का महत्त्व समझने वाले विज्ञजन अनुभव करते हैं कि कल्पना शक्ति को बेसिर-पैर की उड़ानों में उड़ते रहने की छूट नहीं मिलनी चाहिए । इससे उस शक्ति का अपव्यय होता है, जिसे एकाग्र करके किसी सुनियोजित काम में लगाया जाय तो उसका उत्साहवर्धक, आशाजनक सत्परिणाम निकल सकता है ।

एकाग्रता की उपयोगिता और क्षमता से सभी परिचित हैं । साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, अभिनेता, शिल्पी, व्यापारी अपनी कल्पना शक्ति को एकाग्र करके उसे अभीष्ट प्रयोजनों में लगाते हैं । योजनाबद्ध रूप से सम्भावनाओं का विवेचन, विश्लेषण करते हैं और आवश्यक काट-छाँट के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, किसी निर्धारण को अपनाते हैं । प्रायः सभी बुद्धिजीवियों को यही करना पड़ता है । आर्चीटेक्ट इमारतों के नक्शे बनाते हैं । वकील मुकदमे के चढ़ाव-उतारों को समझते हैं । व्यापारी कारखाना लगाने से पूर्व उसके संचालन में पड़ने वाली सभी आवश्यकताओं का लेखा-जोखा लेते हैं । वैज्ञानिकों, आविष्कारकों को तो अपने विषय में खाने-सोने की सुध-बुध तक छोड़कर तन्मय हो जाना पड़ता है । साहित्यकार अपनी रचनाओं का पूर्व ढाँचा खड़ा करते हैं । यहाँ तक कि नट और सरकस दिखाने वाले तक एकाग्रता के आधार पर ही सफल प्रदर्शन करते पाये जाते हैं ।

एकाग्रता की शक्ति आसाधारण है । भाप चूल्हों से तेजी से बड़ी मात्रा में उड़ती रहती है, पर उसका थोड़ा अंश यदि किसी इंजन में सुनियोजित ढंग से भर दिया जाय तो उसके उपयोग से रेलगाड़ी दौड़ने लगती है । प्रेशर कुकर खाना पकाने लगते हैं । सूर्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किरणें सर्वत्र बिखरी रहती हैं । उनसे गर्मी, रोशनी भर मिलती है, पर यदि थोड़े क्षेत्र की धूप को भी एकत्रित किया जा सके तो आतिशी शीशे के केन्द्र बिन्दु पर चिंगारियाँ उड़ने लगती हैं और उसके सहारे भयंकर अग्निकाण्ड तक हो सकते हैं । सौर चूल्हे, सौर हीटरों आदि का प्रचलन बढ़ता जाता है । इन लाभदायक प्रयोगों में इतना भर ही होता है कि बिखराव को एकत्रीकरण के बंधन में बाँधा जाता है । तिनके मिलकर मजबूत रस्सा बनाते हैं । धागे मिलकर कपड़ा बुनते हैं । यह एकीकरण का ही चमत्कार है । विचारों का बिखराव रोका जा सके और उन्हें दिशा विशेष में लगाया जाय तो वही लाभ मिलता है, जो वर्षा के फसल गलाने वाले पानी को नालियों द्वारा निकाल कर एक बड़े तालाब में जमा कर उसे समय-समय पर काम में लिया जाता है ।

द्रौपदी स्वयंवर की कथा प्रसिद्ध है । मत्स्य बेध करने वाले को विजेता घोषित किया जाना था । अनेकों युवक आये और असफल होते गए । अर्जुन था जिसे एकाग्रता सिद्ध थी । गुरु के पूछने पर उसने बताया कि उसे मछली की आँख देखने के अतिरिक्त उसके शरीर का और कोई अंश दृष्टिगोचर नहीं होता । इसी अभ्यास के आधार पर उसने लक्ष्य बेधा और द्रौपदी की विजय माला पहनने का सौभाग्य प्राप्त किया ।

बैंकों के कैशियर, फर्मों के मुनीम लम्बा हिसाब जमाते हैं और काम तब बन्द करते हैं जब मिलान ठीक बैठ जाता है । यदि एकाग्रता न हो तो हिसाब में बार-बार भूल पड़े, ढेरों समय खराब हो और अयोग्यता साबित हो । यही बात प्रत्येक काम की सफलता का आधार बनती है । बया पक्षी इतना सुन्दर घोंसला अपनी दत्तचित्त होकर काम करने की प्रकृति के कारण ही बना पाता है ।

योग विद्या के महत्त्व और माहात्म्य के बारे में बहुत लोग बहुत कुछ जानते हैं । उसके आश्चर्यजनक प्रभावों पर विश्वास करते हैं । प्रत्यक्ष देखते भी हैं । इस साधना का मूलभूत सिद्धान्त चित्त की एकाग्रता ही है । पातंजलि के योगदर्शन का प्रथम सूत्र है— "योगश्चित्तवृत्ति निरोध" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक लेना ही योग है । इस कथन का प्रथम अभिप्राय एकाग्रता साधने के लिए साधक को साधना करना है । दूसरा प्रयोजन यह है कि मन बहिर्मुखी आकर्षण में लुभाता रहता है, उसे रोक कर अन्तर्मुखी किया जाय । गुण, कर्म, स्वभाव में समाविष्ट दुष्प्रवृत्तियों का कड़ाई के साथ अवरोध किया जाय । यही है मानसिक परिष्कार, जिसके आधार पर बिखराव केन्द्रीभूत होता है और अपनी तीक्ष्ण धार से कठोर दीखने वाली वस्तुओं में भी लेसर किरण की तरह छेद कर देता है । एकाग्रतापूर्वक छोड़ी गई गोली निशाने पर अचूक रूप से बैठती है अन्यथा वह इधर-उधर लहराती हुई कहीं से कहीं जा पहुँचती है ।

मन को रोकना एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ माना गया है । गीता में इसे वायु रोकने के समान कठिन माना गया है, तो भी वह प्रयत्न साध्य है, असम्भव नहीं । भौतिक जीवन की प्रगति और आस्तिक जीवन की सद्गति दोनों ही इस बात पर निर्भर हैं कि व्यक्ति कितनी एकाग्रता साध सका । तत्परता और तन्मयता का अपने कामों में कितना नियोजन कर सका ।

मनोनिग्रह--सबसे बड़ा पुरुषार्थ

मन व्यक्तित्व की केन्द्रीय धुरी है । शुद्ध, निर्मल, फूलों जैसे कोमल मन में कोमल सम्वेदनाएँ, सात्विक विचार, उत्कृष्ट प्रेरणाएँ हिलोरें लेती रहती हैं । इस फूल से सुन्दर, शुद्ध-पवित्र मन का असर मनुष्य के व्यवहार और व्यक्तित्व पर पड़ता है । प्रसन्न मन आस-पास के वातावरण में उसी प्रकार प्रसन्नता भर देता है जैसे ताजा फूल चारों ओर सुगन्धि भर देता है । दूसरी ओर जब मन में घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, जलन-कुढ़न, क्रोध-वैमनस्य आदि के भाव उबलते रहते हैं, तो वे दूसरे के मन में भी इसी प्रकार तीक्ष्ण काटों के चुभन जैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं । मन के ये भाव छिपाये नहीं छिपते, अपितु उनका असली रूप प्रकट होकर ही रहता है । "उघरहिं अन्त न होइ निबाहू" वाली बात मन द्वारा छिपाये जाने वाली भाव चेष्टाओं के ऊपर बिल्कुल खरी उतरती है । अपने मन से कोई भी चोरी, छल और झूठ नहीं चल सकता । वह अपनी प्रत्येक गतिविधि को नोट करता रहता है । उनके औचित्य-अनौचित्य पर निर्णय भी देता रहता है । इसीलिए मन से बचना सम्भव नहीं । मन सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात किसी न किसी रूप में जाहिर कर ही देगा । व्यक्ति अपने पवित्र भाव का दावा करते हैं, लेकिन मौका पाते ही उनके मनोभाव चेहरे पर, आँखों में, माँसपेशियों में उभर आते हैं । कभी वाणी से फूट पड़ते हैं, तो कभी व्यवहार से । उस समय कृत्रिम व्यक्तित्व की सारी दीवारें ढह जाती हैं । परिष्कृत मन के बिना ऊपर से प्रदर्शित किया जाने वाला व्यक्तित्व बालू का महल है, मन के प्रचण्ड चक्रवात के एक ही थपेड़े से वह जाने कहाँ उड़-बिखर जाता है ।

मात्र अभिव्यक्ति के इन विविध रूपों में ही नहीं, मौन की स्थिति में मनःस्तर अपना प्रभाव दिखलाता है । मन के विचारों का वातावरण पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है । शुद्ध मन वाला व्यक्ति जहाँ रहता है, वहाँ का पर्यावरण भी उस शुद्धता से प्रभावित रहता है । जिस कमरे में सात्विक पुरुष रहते हैं । वहाँ कोई अन्य व्यक्ति विरोधी विचार लेकर भी जाय, तो उसके विचार जहाँ दब जाते हैं । इसके विपरीत, अनुचित क्रिया-कलापों के केन्द्रों, जुआघरों, शराबखानों आदि का प्रभाव भी इतना तीव्र होता है कि इन अड्डों को समाप्त कर दिये जाने के बाद भी वहाँ का वातावरण तब तक दूषित रहता है, जब तक कि वहाँ कुछ समय तक श्रेष्ठ गतिविधियाँ न चलती रहें ।

उत्कृष्ट विचारों वाले व्यक्ति के सान्निध्य में लोग अपना दुःख-दर्द भूल जाते हैं जबकि हीन विचारों वाले व्यक्ति का सान्निध्य घुटन उत्पन्न करता है ।

जिस घर परिवार में किसी की मृत्यु हो जाती है, वहाँ जाते ही लोगों के मन को एक तरह के अवसाद की आघातकारी तरंगें घेर लेती हैं । यज्ञायोजनों, समारोहों, उत्सवों, पर्वों, विवाह के मण्डप आदि स्थलों में प्रवेश करतें ही उल्लास की तरंगें मन में उभर आती हैं । ये सब मानसिक स्थितियों के सूक्ष्म प्रभाव हैं । ऐसा ही सूक्ष्म प्रभाव सत्संग का पड़ता है । इसलिए शास्त्रों में सत्संग की महिमा का गान है । सत्पुरुषों का सान्निध्य दिव्यविचारों की तरंगों से मन को भर देता है ।

मन ही इन्द्रियों का शासक इन्द्र है । जब वह लापरवाह और अपव्ययी होता है, तो इन्द्रियाँ उसके खजाने को खुला पाकर, उस धन को यों ही लुटाती रहती हैं । इन्द्रियाँ द्वार हैं, जो मन के जागरूक रहने पर, आवश्यकतानुसार ही खुलते हैं । शेष समय बन्द रहते हैं । दुर्बल, असंयमी मन का इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रहता और इस प्रकार के द्वार हमेशा ही खुले पड़े रहते हैं । व्यक्तित्व की आधारभूत शक्तियाँ इन द्वारों से व्यर्थ ही बहती रहती हैं । जो आन्तरिक ऊर्जा महान प्रयोजनों में खर्च होनी थी, वह उद्विग्न मन यों ही मथ-मथकर, अकारण बहाता रहता है । ऐसा व्यक्तित्व एकीकृत नहीं रह जाता । यही स्थिति मेण्टल ब्रेकडाउन या डिप्रेशन या मधुमेह को जन्म देती है ।

मन का साम्राज्य बहुत बड़ा है । यह साम्राज्य सुव्यवस्थित रहे, विचारों, इच्छाओं और क्रियाओं में सन्तुलन सामंजस्य रहे, तो व्यक्तित्व एकीकृत, परिष्कृत सुघड़ कहा जाता है । मन के साम्राज्य में अराजकता फैली हो, तो वह कुरूप, अनगढ़ व्यक्तित्व को जन्म देता है । मन का स्वरूप ही व्यक्तित्व का स्वरूप है । मानवी शरीर परम्परावलम्बी है, पर नियन्त्रणकर्ता मन ही है । कोई व्यक्ति बहुत सुन्दर नाक-नक्श वाला हो, पर उसके विचार और व्यवहार भद्दे हों, तो उसे कोई भी श्रेष्ठ व्यक्तित्व-सम्पन्न नहीं कहेगा । दूसरी ओर संसार में ऐसे लाखों लोग हुए हैं, जिनके शरीर में कुछ भी आकर्षण न था, पर जो महान व्यक्तित्व के स्वामी कहे जाते रहे हैं । स्पष्टतः व्यक्तित्व का सम्बन्ध मुख्यतः मनःस्थिति से है, तन की स्थिति से नहीं ।

इसीलिए व्यक्तित्व की साधना का अर्थ है मन की साधना । जिसने मन को साध लिया, उसका व्यक्तित्व सध गया किन्तु मात्र जागृति की स्थिति में अनुभव में आने वाले भाव ही मन की पहचान नहीं । जागृति, निद्रा, स्वप्न सभी स्थितियों में मन सक्रिय रहता है और चेतन मन में अचेतन-सुषुप्त-मन की परिधि अधिक व्यापक है । अतः मन की साधना का भी प्रधान क्षेत्र अचेतन मन ही है । आध्यात्मिक साधनाओं की विशेषता का रहस्य यही है कि वे अचेतन मन को शुद्ध करती है, वहीं पर उत्कृष्टता के अंकुर उगा देती है । तन, चेतन में उनका विकास स्पष्ट देखा जा सकता है । उपनिषद् का ऋषि कहता है—

"चित्तमेव हि संसारो रागादिक्लेश दूषिताम् ।
तदेवतर्विनिमुक्तं भावान्त इति कथ्यते ।"

—महोपनिषद् ४/६६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् यह चित्त ही संसार है । इस संसार में रागादि दोषों की वृद्धि क्लेशों का कारण बनती है । इन दूषणों से छुटकारा ही मुक्त कही जाती है ।

स्वयं मन को ही ऊँचा उठाना—सर्वश्रेष्ठ मानसिक संकल्प है । मनःस्तर ही व्यक्तित्व है । मुक्त मनःस्थिति मुक्त व्यक्तित्व की परिचायक है और रुग्ण मनःस्थिति व्यक्तित्व को रुग्ण बनाती है । मानसिक विकास को ही व्यक्ति-विकास का पर्याय मनीषियों ने माना है ।

मन को रोकें नहीं : दिशा दें

मनोविज्ञानी फ्राइड अपनी पत्नी और बच्चे समेत एक उद्यान में सैर करने गए । बैठे गप-शप कर रहे थे । इतने में एक छोटा चार वर्ष का बच्चा गायब हो गया, निगाह दौड़ाई तो कहीं भी दिखाई नहीं दिया । पत्नी बहुत घबराने लगी और ढूँढ़ने के लिए आतुरता प्रकट करने लगी ।

फ्राइड ने सान्त्वना देते हुए कहा—घबराने की कोई बात नहीं । पास के उद्यान में वह झूले पर झूल रहा होगा, अभी चलते हैं उसे पा लेना ।

सब लोग चले और देखा कि सचमुच बच्चा पास वाले उद्यान में झूले पर झूल रहा है ।

फ्राइड की पत्नी को बहुत आश्चर्य हुआ । उसने पूछा—आपको कैसे मालूम हो गया था कि बच्चा यहाँ इस झूले पर झूल रहा है ?

उन्होंने उत्तर दिया—मैं सुनता चला आ रहा था । रास्ते में जब वह पार्क पड़ा तब बच्चे ने उस पर झूलने का आग्रह किया था । तुमने मना कर दिया था । बच्चे को उत्सुकता बढ़ी होगी । उसने ज्ञान और अनुभव बढ़ाने की अन्तःप्रेरणा से वहाँ जाना और वस्तु स्थिति को देखना आवश्यक समझा होगा । मना करने से उसके रहस्य जानने की उत्सुक इच्छा ने और अधिक इसके लिए उत्साहित किया होगा और वह आँख बचा कर यहाँ चला आया होगा । इस वस्तु स्थिति को मैं समझता था । सो ही मैंने निश्चित रूप से यह कह दिया कि वह पड़ौस के बगीचे में झूले पर होगा ।

फ्राइड ने पत्नी से इस सन्दर्भ में इतना और कहा कि मन का बिल्कुल यही हाल है । जिसे न करने के लिए कहा जाता है—जिधर से रोका जाता है उधर ही उसकी प्रवृत्ति और अधिक होती है । रहस्य जानने, ज्ञान बढ़ाने और अनुभव अच्छा करने के लिए वह ऐसे प्रसंगों के सम्पर्क में अधिक आतुरतापूर्वक आने का प्रयत्न करता है, जहाँ से उसे रोका जाय ।

मन को रोकना काफी नहीं । उसे ऐसी दिशा देनी चाहिए जिसमें अधिकाधिक रस मिले और रुचि जुड़े । जहाँ अधिक आकर्षण होगा मन वहीं जायेगा । कुमार्ग पर से मन को रोकने का बार-बार निषेध करना एकांगी है । उसकी दिशा परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि मन के लिए कोई अधिक आकर्षक क्षेत्र काम करने और विचरण करने के लिए उपलब्ध हो ।

एक साधक साधना कर रहे थे । मन काबू में न आता था, वह निर्धारित लक्ष्य पर न रुक कर अन्न माँगता था । इस कठिनाई का समाधान करने के लिए वे अपने गुरु के पास पहुँचे ।

गुरु ने उस समय तो कुछ उत्तर न दिया पर अगले दिन एक नई साधना बताने के लिए उसे बुलाया ।

साधक पहुँचा तो उन्होंने कहा—आज बहुत ही शुभ मुहूर्त है । ऐसा मन्त्र बताता हूँ जो आज ही सिद्ध हो जायेगा और मनवांछित फल देगा । साधक को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने वह छोटा मन्त्र भली प्रकार याद कर लिया तथा सरल-सा विधि विधान भली प्रकार समझ लिया ।

चलने लगा तो गुरु ने उसे रोका और कहा—एक छोटा सा प्रतिबन्ध और है जिसे इस साधना के समय पालन करना आवश्यक है ।

साधक ने उत्सुकतापूर्वक उसे भी पूछा—उसने कहा—जप के समय बन्दर का ध्यान नहीं आना चाहिए । प्रतिबन्ध जरा सा था उसे पालन करने में क्या कठिनाई हो सकती थी । साधक प्रसन्न होता हुआ चला गया ।

जब वह जप करने बैठा तो प्रतिबन्धित बन्दर का ध्यान ही मस्तिष्क पर हावी होने लगा उसने जितना ही मन को रोका उतनी ही अधिक तीव्रता के साथ बन्दर का ध्यान आया । पूरा दिन इसी खींचतान में चला गया । साधन न हो सका । पूरे समय बन्दर ही मन पर सवार रहा ।

सन्ध्या होने पर साधक दुःखी होता हुआ गुरु के पास आया और अपनी असफलता बताई ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरु मुस्कराये और उन्होंने कहा—पिछले दिन की तुम्हारी शंका का यही उत्तर है । मन के निरोध में यही कठिनाई है कि जिस काम से उसे रोका जाता है उसी के लिए वह आतुर होता है । ज्ञान और अनुभव बढ़ाने की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति इसके लिए उसे विवश करती है । इसलिए मन को साधने में प्रतिबन्ध कड़े करने की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त रहता है कि सम्मुख प्रस्तुत कार्य में अधिक आकर्षण उत्पन्न किया जाय । बन्धन ढीले रखे जायें और यदि बहुत अनुचित न हो तो तथाकथित बन्धनों को कभी कुछ ढीला करके मन को यह देख समझ लेने दिया जाय कि जिसके लिए वह आतुर था वह कितना निस्सार और निरर्थक क्षेत्र है । अनुभव के बाद निकाला हुआ निष्कर्ष अधिक स्वस्थ और परिपक्व होता है ।

वस्तु प्राप्त न होने पर अभाव की स्थिति में किया हुआ त्याग कच्चा है । उपयोग और उपभोग के बाद जो वस्तु छोड़ी जाती है उसकी निरर्थकता के बारे में मन निश्चिन्त रहता है । जहर खाने, आग छूने जैसे अनुभव करना तो बहुत मँहगा पड़ता है पर जहाँ तक इन्द्रियों की अनुभूति का सम्बन्ध है उन्हें उचित सीमा में छूट देकर यह अनुभव कर लेने देना चाहिए कि वह रस लिप्सा निरर्थक भी है और हानिकारक भी ।

एक साधु ने एक दिन एक विचित्र आचरण किया उनके इस कौतुक को देखने के लिए बहुत-से लोग इकट्ठे हो गए ।

उन्होंने एक बड़ा बर्तन भर के कढ़ी पकाई । खाने पर ऐसे जुटे कि हटे ही नहीं । अधिक मात्रा में खा जाने पर उल्टी हुई । कुल्ला किया और फिर खाने पर जुट गए । इस प्रकार वे सारे दिन कढ़ी खाने और उल्टी करने में लगे रहे । अन्त में उन्होंने बची हुई कढ़ी को कुत्तों के आगे फेंक दिया ।

इस अद्‌भुत प्रसंग का कारण उपस्थित लोगों ने पूछा तो उन्होंने यही कहा कि—बहुत दिन से मन कढ़ी के लिए मचल रहा था । उसे कितनी ही बार समझाया कि मेरी वात प्रकृति शारीरिक स्थिति में हानिकारक है और मानसिक स्थिति में इस प्रकार की लिप्सा अशोभनीय, पर यह ज्ञान चर्चा उसके गले उतरती ही न थी । जब भी कढ़ी देखता मचलने लगता । एकान्त में भी उसी की इच्छा और कल्पना करता । समझाने बुझाने के प्रयत्न सफल न हुए तो फिर यह निश्चय किया कि मन को वस्तु स्थिति समझ लेने और उसका अनुभव कर लेने का अवसर दिया जाय । आज मैंने वही किया । मन मर्जी जितनी कढ़ी खाने की ही छूट नहीं दी वरन् इस बात के लिए विवश किया कि वह कढ़ी खाने की अति करे । उल्टी होने पर भी कढ़ी खाते रहने की प्रक्रिया इसीलिए अपनाई । शाम तक मन को कढ़ी से घोर अरुचि हो गई । उसे बार-बार कहा—अभी और खा-अभी और खा, जब उसने बिल्कुल इन्कार कर दिया तो फिर बची-खुची कुत्ते को डाल दी । अब मन ने वस्तु स्थिति समझ ली । तृप्ति कर ली और घृणा की स्थिति तक कदम बढ़ा लिए । अब उसके ललचाने और मचलने का अवसर न आयेगा ।

जहाँ तक इन्द्रिय संयम का प्रश्न है वहाँ तक तो मन को थोड़ी छूट देकर रसानुभूति का अनुभव प्राप्त कर लेने देना चाहिए । अपने यहाँ गृहस्थ उपयोग के बाद शम, दम, तितीक्षा का विधान बताया गया है । युवावस्था में उपभोग का अवसर मिल जाता है और उस ओर का आकर्षण समाप्त हो जाता है । इसके बाद वानप्रस्थ और संन्यास में संयम साधना ठीक स्वाभाविक और बिना व्यवधान के चलने लगती है । किन्तु यदि बिना उपभोग के बालकपन से ही इन्द्रिय भोग का निषेध रहे तो मन की स्वाभाविक प्रकृति-दूसरे को उस मार्ग पर चलते हुए देखकर तीव्र हो उठती है और उस संयम साधना के कभी भी भाव प्रवाह के दबाव से खण्डित होने की आशंका बनी रहती है ।

जहाँ तक इन्द्रिय संयम का प्रश्न है मन में उपभोग की हानियों को समझना चाहिए और ऐसे अवसरों से बचना चाहिए जिनमें उस प्रकार के उभार उत्पन्न होते हों । पर कड़े प्रतिबन्ध नहीं लगाने चाहिए । युवावस्था में तो विशेष रूप से ढील रखनी चाहिए और मर्यादित एवं वैध इन्द्रिय तृप्ति पर कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगाने चाहिए । न बहुत आकर्षण न अति का निषेध, इस बीच की मनोभूमि में संयम साधना बहुत ही सरलता के साथ सधती हुई चली जाती है ।

निर्धारित लक्ष्य के महत्त्व और महात्म्य पर पूरा चिन्तन करना चाहिए । उसके मधुर कल्पना चित्र बनाने चाहिए और इस मार्ग पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचने पर जो उपलब्धियाँ मिल सकती हैं उनका लाभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पना क्षेत्र में भली प्रकार जमाना चाहिए । सामान्य जीवन-क्रम और उस असामान्य आदर्शवादी लक्ष्य की पूर्ति के परिणामों को अलग-अलग देखना, समझना और फिर उनकी तुलनात्मक समीक्षा करना यह सिद्ध कर देता है कि नर पशु जैसे लोभ मोह ग्रस्त जीवन और आदर्शवादी मार्ग पर चलने पर प्राप्त स्थिति में कितना अधिक अन्तर है । यह कल्पना क्षेत्र जितने प्रखर होंगे, यह तुलनात्मक निष्कर्ष जितना प्रखर होगा, उतना ही महानता का लक्ष्य अपनाने की गरिमा स्पष्ट होती जायेगी । तब मन पूरी उत्सुकता और उत्कण्ठा के साथ उस दिशा में लगेगा यह निर्णायात्मक निष्कर्ष जिस आकर्षण को उत्पन्न करता है वही स्थायी होता है और फिर उस दिशा में चलता हुआ मन भागने या भटकने के लिए रस्सी नहीं तुड़ाता । मन को साधने का सीधा और सरल मार्ग यही है ।

चंचल मन का नियन्त्रण

अंग्रेजी में "ग्रास हौपर माइण्ड" एक विशेष अर्थ रखता है । टिड्डी कभी एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं बैठती, क्षण-क्षण में इधर से उधर कूदती फाँदती रहती है । एक पत्ती से दूसरी पत्ती पर जाती है । यही हाल कुछ लोगों के मन का होता है । अति चंचल मन ढुलमुल स्वभाव के व्यक्तियों को टिड्डी प्रकृति वाले व्यक्ति कह सकते हैं ।

इच्छाशक्ति की निर्बलता से जिस मानसिक कमजोरी की सृष्टि होती है उसकी मूल वृत्ति चंचलता है । मन, इच्छा जनित शुभ वस्तु, उत्तम उद्देश्य पर स्थिर नहीं होती, पुनः-पुनः नये प्रदेशों की ओर आकर्षित होती है ।

मन की चंचलता से बड़ी कठिनाई यह होती है कि विकास नहीं हो पाता । विकास का नियम है—निरन्तर मन में एक ही दशा में काम लेना, पुनः-पुनः अभ्यास करना । चंचल व्यक्ति दस-पन्द्रह मिनट भी चित्त को एक स्थान पर एकाग्र नहीं कर पाता । विद्यार्थी, सिनेमा प्रिय, शौकीन, कवि, व्यापारी, यात्री, क्लर्क इत्यादि चंचलता के कारण सदैव यही शिकायत करते हैं कि अमुक पुस्तक या विषय समझ में नहीं आता, आध्यात्म कठिन विषय है इत्यादि । बालक सर्वदा अति चंचल रहते हैं । उनका मनोबल तथा एकाग्रता की शक्तियाँ अति अविकसित रहती हैं ।

टिड्डी वृत्ति वाला व्यक्ति कभी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि वह एक सुनिश्चित, सुकल्पित उद्देश्य पर तीव्रता से नहीं चल पाता । मध्य में आने वाले प्रलोभन, आलस्य, प्रमाद, अशान्ति इत्यादि उसे एकनिष्ठ नहीं रहने देते । उसकी इच्छाएँ, वासनाएँ और स्मृतियाँ निरन्तर कमजोर होती जाती हैं । मनुष्य के चित्त को विचलित करने वाले दुर्व्यसनों में फँसने वाले अनगिनत मानसिक विकार और भाव हैं । बड़े-बड़े विद्वान मनोवेग और निकृष्ट विकारों से उत्तेजित हो कर बड़े-बड़े अनर्थ कर डालते हैं, वर्षों का किया कराया क्षण में नष्ट कर देते हैं । तनिक से आलस्य या प्रमाद से इतनी भारी गलती हो जाती है कि आयु पर्यन्त वह ठीक नहीं हो पाती ।

विकारमय स्वार्थी विचारों से मुक्ति

आपका मन दो प्रकार के विचारों में भटकता है । प्रथम तो बाह्य विषयों में दिलचस्पी लेता है । विषय नाना प्रकार के हैं । इनका सम्बन्ध हमारी पाँच इन्द्रियों से है । कामेच्छा, क्षुधा, पिपासा, सुन्दर वस्त्र, गृह, सामाजिक प्रतिष्ठा, मान, सौन्दर्य शृंगार, यौवन इत्यादि में मन भटकता है । वह इनका गुलाम बनता है और उद्वेगों का शिकार बनता है ।

दूसरे पदार्थ आन्तरिक हैं । आप शान्ति चाहते हैं । मन के अन्दर ईर्ष्या, द्वेष, भय, स्वार्थ, क्रोध, लोभ इत्यादि वृत्तियाँ सदैव संघर्ष मचाती हैं । वृत्तियाँ चंचल रहती हैं । आप दिन प्रतिदिन तुच्छ प्रसंग, पुरानी कटु स्मृतियों के कूड़े करकट में फँसे रहते हैं ।

उपर्युक्त वृत्तियों से मुक्ति के लिए निम्न उपाय कीजिए—

(१) ऐच्छिक ध्यान—हम अपनी इच्छा को एक विशेष दिशा में साग्रह पूर्वक लगाएँ । निकम्मे खाली न बैठें वरन् मन को पुनः-पुनः उसी कार्य में लगाये रहें । जब कोई अनिष्ट विचार मन में आये तो उसे अपनी इच्छा शक्ति से उत्तम विचार में परिवर्तित कर देना चाहिए । मस्तिष्क की धारणा में इस प्रकार के आग्रह से निम्न मन स्तर बदल कर उच्च स्थिति प्राप्त हो सकती है । ऐच्छिक ध्यान मन की चंचलता से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) एकाग्रता की सिद्धि—जब आप मन को ढीला छोड़ते हैं तो बुरे विचार, प्रलोभन, बलपूर्वक मनः प्रदेश में घुस आते हैं । इसका कारण मनुष्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति होना है । ऐसे मन के लिए एकाग्रता का अभ्यास अमृतोपम उपाय है । चंचल मन को अपने उद्देश्य पर जमाइये । ऐसी वृत्ति कीजिए कि नेत्र चाहे खुले हुए हों, अन्दर से आपका मन एक निश्चित स्थान, उद्देश्य, पात्र, परिस्थिति में एकाग्र रहे ।

गीता में निर्देश है—"जिस प्रकार अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल विशाल समुद्र को अपनी हलचल से विचलित नहीं कर सकते वैसे ही स्थिर चित्त वाले महान आत्मा को संसार की हलचल उद्वेलित नहीं कर सकती मनोनियम के परिपूर्ण ज्ञान से मुक्त होकर यह पूर्ण शान्ति में निवास करता है ।"

(३) प्राणायाम—प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धि विकसित होती है और मन शान्त स्थिर होता है । आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है । प्राणायाम करने वाला सुखी रहता है । प्राणायाम से मन को अपने आधीन कर लीजिए । अनैच्छिक ध्यान ही हमारे लक्ष्य चिन्तन में, ध्येय की प्राप्ति में बाधा डालता है । अतः प्राणायाम द्वारा इस विक्षेप को दूर करना चाहिए ।

(४) निरन्तर अभ्यास—हमारा मन अभ्यास का क्रत दास है । अतः आप नीरस विषय जिनसे मन भागता है अपने मानसिक नेत्रों के सन्मुख रखिये । आँखें बन्द कर उन्हीं को अपनी कल्पना द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश कीजिए । भावना को बार-बार दुहराने से मन में उत्तेजना इच्छा शक्ति के रूप में बदल जायेगी । एक समय में एक ही बात, स्थान, वस्तु, तत्व के ऊपर विचार करने का अभ्यास कीजिए । प्रारम्भ में शुष्क तथा नीरस वस्तु के ऊपर चित्त को एकाग्र करना कठिन प्रतीत होता है । कालान्तर में मन स्वयं एक तत्व पर लगने लगता है ।

(५) मौन का महत्त्व—चंचलता दूर करने के लिए चुप रहना, वाणी का उपवास बड़े महत्त्व का है । इसके द्वारा हम अपनी आत्मा और विश्व के वास्तविक स्वत्व को पहचानने में सफल हो सकते हैं । वास्तविक एकाग्रता कोलाहलपूर्ण वातावरण में नहीं, शान्त और मौन वातावरण में ही हो सकती है ।

मनोनिग्रह के लिए विचार, विवेक और वैराग्य

जिस प्रकार ज्ञान का कोई स्वरूप नहीं है वह मन की ही एक शक्ति है उसी प्रकार मन का भी कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । इच्छा और विचार करने की शक्ति का ही नाम मन है । इसलिए मनोनिग्रह के लिए, मन को वश में रखने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उसे निरन्तर विचार निमग्न रखा जाय । एक विचार की दूसरे विचार से काँट-छाँट और स्थानापत्ति की जाती रहे ।

मन में अधिकांश वही इच्छाएँ उठती हैं जो तात्कालिक या अल्पकाल में ही सुख दे सकती हैं । इन्द्रियों के सुख उनमें प्रधान हैं । मनुष्य का मन जब तक इन नन्हीं-नन्हीं इच्छाओं में फँसा रहता है तब तक न उसकी शक्ति प्रकट होती है न मनुष्य जीवन की उपयोगिता, इसलिए यह आवश्यक है कि हम आध्यात्मिक जीवन का भी चिन्तन किया करें । वैराग्य ऐसे ही चिन्तन का नाम है जिसमें हम लोकोत्तर जीवन की कल्पना और सत्य जानने का प्रयास करते हैं । मन, बुद्धि, चित्त आदि शक्तियाँ मिली भी मनुष्य को इसलिए हैं कि मनुष्य अपना पारमार्थिक उद्देश्य हल कर सके ।

भगवान कृष्ण ने भी गीता में वैराग्य को मनोनिग्रह का उपाय बताया है । महर्षि पातंजलि ने योगशास्त्र में "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः" "वैराग्याभ्यास से मन का निरोध होता है" यह सूत्र लिखा है । अभ्यास से उद्धत मन वश में होता है वैराग्य से उसे निर्मल, कोमल और शान्त बनाया जा सकता है ।

हुआ यह कि हमने अपने जीवन को बहिर्मुखी बना लिया है । उतनी ही सोचते हैं जितना व्यक्त है, दिखाई देता है, पर बहुत कुछ ऐसा भी है जो दिखाई नहीं देता पर उसका स्वरूप है । वह शाश्वत सत्य भी है । अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं जिनसे इस जीवन में वैभव और इन्द्रिय भोग का सुख दिखाई देता है । पर जन्म-मरण का भय, प्रियजनों का विछोह, खाँसी, बुखार, बीमारी, कटुता, कलह, अत्याचार, भय, विद्वेष, प्राकृतिक प्रकोप यह सब मनुष्य के बहिर्मुखी जीवन का गतिरोध करते हैं, आवश्यक है कि इनसे मनुष्य क्षुब्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो और दुःख अनुभव करे । इन सम्पूर्ण अभावों से परे जो सनातन आनन्द की स्थिति है वह कैसे प्राप्त हो ? जन्म-मृत्यु का बन्धन और भय कैसे मिटें ? शरीर से परे यह जो आत्मा है जो चलता, हिलता, डुलता, बोलता है उसकी उपलब्धि कैसे हो ? यह ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करके मनुष्य अपने मन को अन्तर्मुखी बना सकता है । वैराग्य का यही स्वरूप भी है कि मनुष्य जितना लौकिक सुख साधनों का चिंतन करता है उससे अधिक अमरत्व का, शाश्वत सुख और सनातन स्वरूप का भी चिन्तन करे ।

आध्यात्मिक चिन्तन आत्म-कल्याण के लिए उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है किन्तु लौकिक वासनाएँ और इच्छाएँ भी तो इतनी जल्दी नहीं मिटतीं । ईश्वर का भजन करने बैठिये, हाथ चलेगा, माला घूमेगी, मन्त्र जाप भी होगा किन्तु मन जिसे ईश्वर के प्रकाश की ओर गमन करना चाहिए था वह तो बार-बार अपनी प्रिय वस्तुओं, ऐच्छिक इन्द्रियों के विषय भोगों की ओर लपटें लेगा । कठोर संयम और तितिक्षाओं से मन को दण्डित कर इस तरह भटकने से रोकने का भी विधान है किन्तु जिस प्रकार दण्ड से जानवर और भी क्रुद्ध और हिंसक बनते हैं, उसी प्रकार मन भी चोट खाकर विद्रोह करता है । मंन वस्तुतः हमारा शत्रु नहीं है उसे यदि पुचकार कर मित्रतापूर्वक सलाह दी जाय अर्थात् प्रेमपूर्वक यह बताया जाय कि "भाई ! यह ऐन्द्रिक सुख तुम कब तक भोग सकोगे ? कब तक क्रोध, मोह, लोक संग्रह, व्यभिचार और अनाचार में पड़े रहकर अपने लिए दुःख की फसल बोते रहोगे ? भाई ! कुछ ऐसा काम करो जिससे पद-पद पर होने वाली ईर्ष्या, अपमान, शोक, बीमारी, कलह की कुण्ठाओं से छुटकारा मिले । आखिर यह जीवन भी कितने दिन चलेगा ? यह युवावस्था कब तक रहेगी ? शरीर ढलेगा ही, मृत्यु होगी ही । क्यों न अमरत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें, क्यों न अपने को परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करें ।"

यह विचार मन के समर्थन में न आये ऐसा सम्भव नहीं । मन जैसा मित्र नहीं । आखिर वह भोग भी तो आत्मतृप्ति के लिए ही करता है । जितना ज्ञान, विवेक और विचारशक्ति होती है उतने क्षेत्र में वह आत्म-सुख ही तो ढूँढ़ता है । यदि अपना ज्ञान बढ़ाकर उसे बड़े सुख, उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य का ज्ञान कराया जा सके तो वह उधर भी हँसी-खुशी से चल देगा । स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, शंकराचार्य, दयानन्द आदि को भी उत्कृष्ट जीवन की ओर प्रेरित करने वाले उनके मन ही थे । मनोबल जगाया जा सके, उसे मित्र बनाया जा सके तो जो काम कठिन तपश्चर्या से सम्भव नहीं हो पाता वह क्षण भर में मन के सहयोग से सफल हो सकता है ।

अवगुणी मन को सद्गुणी बनाने के लिए विवेकशील होना आवश्यक है । विचार, विवेक और वैराग्य वस्तुतः एक ही क्रम की अनेक शृंखलाएँ हैं । विचार का अर्थ है मन को स्थिर न रहने देना, आलसी न होने देना । जब वह स्थिर होता है तभी भोग की, काम की इच्छा जागती है । इसलिए एक पर एक विचार उठाना चाहिए । यह सम्भव नहीं कि अधिक अभ्यास से पूर्व ही मन में अच्छे विचार आने प्रारम्भ हो जायें । अब तक जैसा जीवन क्रम रहा है और पूर्व जन्मों में जो प्रवृत्तियाँ रही हैं वह भी दबाये नहीं दबतीं पर उन्हें काटा आसानी से जा सकता है । अच्छे विचारों का ग्रहण और बुरों का त्याग यही विवेक है । मुझे यहाँ से चलकर अमुक स्थान पर अमुक भोग भोगना चाहिए, यह एक विचार हुआ । यदि उसे स्वतन्त्र रखा जाता तो वह उसी दिशा में कल्पना करता—उस स्थान तक इतने समय में पहुँचना है, यह वस्तु वहाँ मिलेगी, यह आवश्यक होगी तब यह भोग उपलब्ध होगा आदि । पर यदि मूल विचार के साथ ही रुख बदल दिया जाय तो मन का बुराई से बचना सम्भव हो जाय । वहाँ सोचना चाहिए—"उससे यह बीमारी सम्भव हो सकती है । स्वास्थ्य गिरेगा, धन व्यय होगा, तो दूसरे आवश्यक कार्यों में परेशानी आयेगी, उसकी अपेक्षा यह थोड़ा-सा समय है इसे क्यों न किसी उत्पादक कार्य में लगाएँ ? घर की, कपड़ों की सिलाई कर डालें, बागवानी करें, कोई उद्योग करें आदि । रचनात्मक दिशा में जब मन काम करने लगता है तो ऐसी अनोखी बातें सूझती हैं कि आश्चर्य होता है । दरअसल लोग मन की ताकत को पहचानते नहीं अन्यथा यदि उसे रचनात्मक दिशा दी जा सके तो आर्थिक, औद्योगिक, शिक्षा, रोजगार अथवा नेतृत्व की दिशा में वह अनोखी सफलताएँ और चमत्कारी उपलब्धियाँ प्रस्तुत कर सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आपका मन सोया पड़ा है इसे सावधान कर दें, जगा दें । रचनात्मक विचारों की चिल्लाहट से इसे शान्त न होने दो यह आपके लिए वह भौतिक सफलताएँ भी प्रस्तुत करेगा जिनकी आप इस जीवन में कामना करते हैं ।

विचार और विवेक की इसी दिशा को जब आत्मा के रहस्य अनुभव करने की ओर संयोजित कर दिया जाता है तो वैराग्य का अभ्यास होने लगता है । अन्तर्जगत में जो प्रक्रियाएँ चला करती हैं बाह्यजगत में उन्हीं को मन क्रियान्वित किया करता है । मनुष्य यदि यह जान ले कि बाह्य जगत के हमारे समस्त प्रयास मनोजगत की प्रेरणा से हमारे अहंकार को सक्रिय करने का ही परिणाम है, तो यह एक बहुत बड़ी बात होगी । इतना आभास होते ही मन और अहंकार एक तमाशे जैसे दिखाई देने लगते हैं और एक तीसरी सत्ता की अनुभूति होने लगती है । मन का बिचौलियापन सिद्ध हो जाय तो फिर यह समझते देर न लगे कि हम आत्मा हैं और शरीर धारण का हमारा लक्ष्य भिन्न है । यह भिन्नता का भाव ही महत्त्व का है ।

वह तत्व हमारे अन्दर बैठा है जिसके न रहने पर यही शरीर शव कहलाने लगता है । यह तत्व ही आत्मा है, चाहे तो इसे ही परमात्मा कह सकते हैं । विचार और विवेक द्वारा जब उसकी अनुभूति हो जाय तो सांसारिक तृष्णाओं, इच्छाओं और धारणाओं को हटाकर तत्व चिन्तन की दिशा में अग्रसर करने का अभ्यास किया जा सकता है । जितना प्रखर यह अभ्यास होगा वैसा ही वैराग्य पारलौकिक जीवन के प्रति सम्वेदना का भाव भी जागृत होने लगेगा । जब यह सिद्ध हो जायेगा, मन यह स्वीकार कर लेगा कि परलोक ही सत्य है, आत्मा ही अमरत्व है तो फिर मन में झंझट करने की आवश्यकता ही न रहेगी, वह आपका मित्र बन जायेगा ।

मनोनिग्रह ऋद्धि सिद्धियों का भाण्डागार

जिस प्रकार मन का वाहन उपकरण शरीर है । उसी प्रकार चेतना का वाहन मन । मन को जो कुछ कराना होता है अपनी इच्छाएँ शरीर द्वारा पूरी करता है । चेतना की रुझान या आकांक्षा को कार्यान्वित करने का ताना-बाना मन के द्वारा बुना जाता है । जड़ शरीर और चेतन आत्मा का मध्यवर्ती कार्यवाहक मन है ।

मन की शक्ति असाधारण मानी गई है । व्यक्तित्व के उत्थान पतन का वही निमित्त कारण है । गुण, कर्म, स्वभाव उसी के प्रयासों की परिणति है । भव-बन्धनों में उसी की ललक लिप्साएँ बाँधती हैं और हथकड़ी बेड़ियाँ उसी के संकल्प से कटती हैं । वह चाहता है तो जीवन रहते मुक्त होकर रहता है । अपूर्णता को घटाते-घटाते पूर्णता की स्थिति तक पहुँचा देता है । आत्मा का प्रतिनिधि जो ठहरा है । सर्वसाधन सम्पन्न वह है । शरीर राज्य का राजा तो है ही इससे बाहर संसार को प्रभावित करने, उसमें बिखरे साधन बटोर लेने की क्षमता भी उसमें है । उसी का चिन्तन सीधा उल्टा होकर सुख-दुःख की भूमिका बनाता है । उत्थान और पतन का अधिष्ठाता निश्चित रूप से वही है ।

निजी जीवन की लगाम जिस भी दिशा विशेष में मोड़नी पड़े, उसमें मन का पुरुषार्थ ही काम देता है । प्रतीत भर यह होता है कि शरीर को इन्द्रियों या आदतों ने जकड़ रखा है । पर बात वैसी है नहीं, आदतों को मन अपनाता है, उसी की परतों में वे अपना घोंसला बनाती हैं और छिपकर बैठी रहती हैं । कामनाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । मन चाहे तो उन्हें चाहे जब उधेड़कर फेंक सकता है । मकड़ी अपने मुँह में से लार निकालकर जाला बुनती है, फिर जब उसकी मौज आती है तभी उस जाले की गोली बनाना और निगलना शुरू कर देती है । देखते-देखते वह ताना-बाना समाप्त होने और खेल खतम होने की स्थिति बन जाती है । निजी जीवन को जिन गुण, कर्म, स्वभावों को विनिर्मित, सुदृढ़ करना हो अथवा हटाना, मिटाना हो उनके लिए मनकी संकल्पशक्ति पूर्णतया समर्थ रहती है । आरम्भ में ही शरीर पुराने अभ्यासों को छोड़ने में थोड़ा अनख दिखाता है पर सर्वथा अवज्ञा करने की सामर्थ्य उसमें है नहीं । ऐड़ लगाने और चाबुक फटकारने भर से वह सीधा हो जाता है और जिस भी राह पर चलाना हो, चलने लगता है ।

मन बदलने भर की देर है कि निकृष्ट को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ को निकृष्ट बनते देर नहीं लगती । नहुष, ययाति, विश्वामित्र जैसों को कामुकता ने धर दबोचा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और विल्व मंगल अम्बपाली जैसों को उस कीचड़ में छलांग मार कर ऊपर उबरने में देर नहीं लगी । बाल्मीकि, अंगुलिमाल और अजामिल जैसों ने अपना पूर्व इतिहास इस प्रकार बदल दिया मानो वे उस रास्ते पर पहले कभी चले ही नहीं । इन्द्र और चन्द्र इतने उच्च पद पर आसीन होते हुए भी गौतम के शाप से अपनी दुर्गति कराते फिरे और सर्वत्र निन्दा के भाजन बने । यह और कुछ नहीं मन रूपी बाजीगर की कलाबाजी मात्र ही है । वह किसी को भी पशु-पिशाच या देवता की पंक्ति में बिठा सकता है ।

जिन्हें आत्म-साधना अभीष्ट हैं उन्हें मन देवता की मनुहार करनी पड़ती है । वही गुरुओं का गुरु है । बाहर वालों के दिये हुए उपदेश इस कान सुनकर उस कान निकल जाते हैं, पर यदि किसी तथ्य को हृदयंगम कर लें तो वह पत्थर की लकीर बन जाते हैं ।

यह अन्तरंग जीवन की बात हुई । बहिरंग जीवन पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रतीत होता है कि परिस्थितियाँ बदल देने में उसी को श्रेय है । लिंकन और वाशिंगटन जिन परिस्थितियों में—जिस परिवार में उत्पन्न हुए थे, उसी हवा में बहते रहते तो अनगढ़ श्रमिक जैसी जिन्दगी जी रहे होते । गाँधी, बुद्ध जैसे महामानव घर परिवार की जन्मजात परिस्थितियों ने इतने ऊँचे नहीं उठाये थे । हरिश्चन्द्र, अशोक, हर्षवर्धन जैसों का कुछ से कुछ हो जाना और किसी का वरदान या पराक्रम नहीं था । यह चमत्कार उनके बदले हुए मन ने ही कर दिखाया । कालिदास और वरदराज जैसों को मूर्धन्य विद्वान बनाने में उनकी बदली हुई अन्तरंग उमंगों ने ही असाधारण भूमिका निभाई । रक्त माँस की दृष्टि से सभी मनुष्य लगभग एक जैसी स्थिति के हैं, पर एक का आसमान पर चढ़ जाना और दूसरे का खाई के गर्त में गिरना यह सब कुछ मन द्वारा अपनाई गतिविधियों के ऊपर निर्भर है ।

मन की शक्ति अपार है । चेतना को, आत्मा को सर्वशक्तिमान का अविनाशी अंश माना जाता है, पर उसके कौशल का परिचय मन के माध्यम से ही मिलता है । योगीजन मन को साधने की साधना में ही निरत रहते हैं । इसी एक प्रयोजन के लिए वे विभिन्न विधि-विधान अपनाते हैं । जिसे जितनी सफलता मिल जाती है वह उसी स्तर का चमत्कारी सिद्ध पुरुष बन जाता है । ऋद्धि-सिद्धियों का उद्गम और कार्यक्षेत्र मनोलोक में ही सीमित और विस्तृत है । यह उक्ति अक्षरशः सत्य है कि "जिसने मन जीता उसने संसार को जीत लिया ।" जिसके हाथ में अपना मन है उसके हाथ में संसार का समस्त वैभव सिमट कर एकत्रित होता है ।

मन को निग्रहीत करने का असाधारण महत्त्व, महात्म्य बताया है और साथ ही उस प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेकानेक विधि-विधान बताये हैं । इन सबमें सर्वसुलभ इन्द्रिय जप है । मन को वायु वेग जैसा चंचल कहा गया है । उसकी यह घुड़दौड़ वासना, तृष्णा और अहन्ता के क्षेत्र में ही लगती रहती है । उसे रसों की अनुभूति इन्हीं में लगती है । इनमें से सर्वप्रथम वासना की बारी आती है । तृष्णा और अहन्ता इसमें थोड़े ऊँचे स्तर पर आती हैं । यदि इन तीनों से ही मन सिकोड़ लिया जाय तो उस एकाग्रता की सिद्धि में देर न लगेगी जिसके आधार पर आत्म जप का लाभ मिलता है और साथ ही अभीष्ट प्रयोजन के लिए प्रबलतम पुरुषार्थ बन पड़ता है । बिखराव को समेट लेना ही चेतना क्षेत्र का प्रबलतम पुरुषार्थ है । मन उपरोक्त तीन लिप्साओं में ही घुड़दौड़ लगाता रहता है । इन्हीं में उसे रस प्रतीत होता है । यदि इन केन्द्रों से रसानुभूति को समेट लिया जाय तो समझना चाहिए किसी मनोनिग्रह की सिद्धि हस्तगत हो गई और मनुष्य आध्यात्मिक पुरुषार्थों में से किसी को भी कर गुजरने की स्थिति में पहुँच गया ।

साधना क्षेत्र के विद्यार्थियों को सर्वप्रथम इन्द्रिय जप का अभ्यास करना चाहिए । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं और उनके अपने-अपने रस हैं । सामान्य स्तर के व्यक्ति इन्हीं में ललकते रहते हैं । पीछे तृष्णा, अहन्ता की कल्पनाशील अभिलाषा जागृत होती है और मनुष्य को कठपुतली की तरह नचाती है ।

इन्द्रियों में प्रथम है—रसना । जीभ का रस चिन्तन को सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावित करता है । यह जन्मजात सहचर है । दूसरा रस कामुकता का है इसके लिए यौवन के उभार तक की प्रतीक्षा करनी पड़ती है । वयोवृद्ध होने पर वह असमर्थता के कारण अनायास ही समाप्त भी हो जाती है, किन्तु रसना की स्वाद लिप्सा ऐसी है जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त साथ रहती है । अर्थ और अनर्थ उसी के द्वारा सबसे अधिक होते हैं । स्वाद के वशीभूत होकर लोग

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभक्ष्य भक्षण करते हैं और आवश्यकता से अधिक मात्रा में उदरस्थ करते रहते हैं । इसका प्रतिफल पाचन तन्त्र की खराबी के रूप में हाथों-हाथ सामने आता है । अपच से उत्पन्न सड़न ही अनेक स्तर के विष उत्पन्न करती और अनेक नाम रूप के रोगों के उत्पन्न करने का विभिन्न कारण बनती है । यह कुटेब यदि बनी रहे तो चिकित्सा के हेतु किए गए सभी उपचार व्यर्थ होते हैं । औषधियाँ अपने क्षणिक चमत्कार दिखाकर तिरोहित हो जाती हैं । स्वाद के कुचक्र में जकड़ा हुआ मनुष्य पकवान, मिष्ठान जैसे अनेक आहार ढूँढ़ता और निकालता रहता है । स्वाद के कारण अधिक मात्रा में खाया हुआ तथा चिकनाई, मिठाई, नमक, मसाले आदि के कारण दुष्पाच्य बना हुआ आहार धीरे-धीरे पाचन तन्त्र को अशक्त ही नहीं विषाक्त भी बना देता है । फलतः स्थिर आरोग्य का सूत्र ही हाथ से चला जाता है और मनुष्य दुर्बलता, रुग्णता का आये दिन शिकार रहते हुए अकाल मृत्यु का ग्रास बनता है । ऐसे लोग निरोग जीवन का आनन्द ले ही नहीं पाते और रोते-कलपते ज्यों-त्यों करके आधी-अधूरी जिन्दगी में ही दिन काटकर बिस्तर बाँधकर काल के गाल में चले जाते हैं ।

रसना का अन्य इन्द्रियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । वह बिगड़ती है तो शेष चार को भी बिगाड़ लेती है । इनमें से अगला कदम जननेन्द्रिय लिप्सा का आता है । चटोरा व्यक्ति कामुक प्रवृत्तियों का गुलाम हुए बिना रहता नहीं । अध्यात्म साधना में ब्रह्मचर्य का बहुत महत्त्व बताया गया है उसे तेजस् का भण्डार कहा गया है । मनोबल उसी पर निर्भर रहता है । ओजस् तेजस् और वर्चस् जन्य विभूतियों का तादात्म्य ब्रह्मचर्य के साथ रहता है । यदि वह क्षीण होता रहे तो मनुष्य आत्मबल गँवा देगा । सामान्य बुद्धिबल तक घट जाता है फिर प्रज्ञा और मेधा का तो कहना ही क्या है ? जो आत्मोत्कर्ष की आधारशिला मानी गई है । जो स्वाद को नहीं जीत सकता । उसके लिए ब्रह्मचर्य साधन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है ।

शरीर का आधार पाचन तन्त्र है और आत्मा का वर्चस्व ब्रह्मचर्य पर निर्भर है । दोनों को एक-दूसरे से जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए । जो स्वाद नहीं जीत सका उससे ब्रह्मचर्य निभेगा नहीं, ब्रह्मवर्चस् प्राप्त होगा नहीं । शारीरिक और आत्मिक स्वास्थ्य गँवाकर ऐसा व्यक्ति उच्चस्तरीय विभूतियों से वंचित होकर ही रहेगा ।

चित्तवृत्तियों का परिशोधन आहार से सम्भव

आहार और आदत का परस्पर गहरा सम्बन्ध है । आहार को बिगाड़कर आदत को सुधारा नहीं जा सकता; किन्तु भोजन यदि सात्विक हो, तो आदत स्वतः सुधरती चली जाती है—ऐसा विशेषज्ञों का मत है ।

यहाँ आहार का तात्पर्य मात्र हाड़-माँस को पोषण देने वाले खाद्यान्न से नहीं है, वरन् वह सभी तत्व इस श्रेणी में सम्मिलित हैं, जिन्हें हम बाहर से ग्रहण करते हैं । इस दृष्टि से प्राण-परमाणु, चिन्तन-परमाणु, वायु-परमाणु आदि का आकर्षण, यह सभी एक प्रकार के आहार हैं । व्यवहार परिवर्तन को यहाँ इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए, सिर्फ अन्न के सन्दर्भ में नहीं ।

यह सत्य है कि खाद्य-जीवन धारण में सहायक होता है । इस दृष्टिकोण से उसका महत्त्व तो है; पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण वे तत्व हैं जो जीवन को सुविकसित और समुन्नत बनाते हैं । प्राण हमारी काया को जीवित बनाये रखते हैं, यह सच है; पर मिथ्या यह भी नहीं है कि यदि वह विकृत स्तर के अवांछनीय हुए, तो जीवन भी हेय स्तर का हीन बना रहेगा ।

प्राण की ही तरह चिन्तन की भ्रष्टता भी सम्प्रति लोगों को बुरी तरह जकड़े हुए है । भौंडी सोच सजातीय परमाणुओं को ही आकर्षित कर सकती है । यही कारण है कि विश्व स्तर पर इन दिनों विषम और विषाक्त वातावरण बना हुआ है । जिधर दृष्टि जाती है, उदर आगजनी, राहजनी, चोरी, लूटपाट, डकैती, हत्या, अपहरण जैसे दृश्य ही नग्न नृत्य करते दिखाई पड़ते हैं । ऐसा लगता है, मानो सदाचार को ही आज अपराधी के कठघरे में खड़ा होना हो और दुराचार दूध का धुला न्यायनिष्ठ हो, इसलिए निःसंकोच अपने विस्तार में संलग्न हो, जबकि सदाशयता लुकती-छिपती, शर्माती-सकुचाती बनी रहे । यह स्थिति चिन्तन के उन विकृत परमाणुओं को खींचते रहने के कारण ही पैदा होती है, जो नीतिमत्ता को अस्वीकारने और अनैतिकता अपनाने में अभिरुचि रखते हैं । जहाँ दुर्बुद्धि रहेगी, वहाँ दुश्चिन्तन ही पैदा होगा । खराब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन सदा अपने समान गुण धर्म वाले अणुओं को आकर्षित करता है । जहाँ ऐसे विकारयुक्त चिन्तन कणों की भरमार हो वहाँ स्वभाव उदात्त बना रहे, यह कठिन है ऐसे में यदि अन्न की प्रकृति सात्विक भी बनी रही, तो परिणाम कोई बहुत उत्साहवर्धक प्राप्त होगा, इसकी आशा नहीं की जानी चाहिए ।

ऐसे ही श्रोत, चक्षु, वायु के विकारग्रस्त परमाणुओं को ही लगातार ग्रहण किया जाता रहे और कोई यह सोचे कि मात्र खाद्य को नियन्त्रित करके ही स्वभाव को बदल दिया जायेगा, तो यह उसकी भूल है । कान से हम अहर्निश अश्लील शब्द और संगीत सुनते रहें, आँखें हमेशा भड़काऊ दृश्य देखती रहें, नथुनों से गन्दी हवा लेते रहें, तो एक प्रकार से हम चेतना को और अधिक रुग्ण बनाने में ही मदद करते रहेंगे । चेतना यदि अपरिष्कृत स्तर की बनी रही, तो प्रकृति को बदल सकना सम्भव नहीं । उल्लेखनीय है कि स्वभाव परिवर्तन की बात जब कभी कही जाती है, तो इसका एकमात्र अर्थ चेतना की पवित्रता और प्रखरता से ही लगाया जाना चाहिए, किसी अन्य सन्दर्भ में नहीं ।

इतना सब बन पड़ने के उपरान्त ही अन्न की बारी आती है । इसी स्थिति में वह कोई प्रभावी परिणाम उत्पन्न कर सकता है, इससे कम में नहीं । इसके भी अच्छे-बुरे दो प्रभाव हैं । सात्विक-सुपाच्य भोजन की परिणति अच्छी देखी जाती है, जबकि राजसिक और तामसिक प्रकृति के खाद्य का नतीजा क्रोध, उन्माद, उत्तेजना, आवेश के रूप में सामने आता है । यह असामान्य स्थितियाँ हैं । व्यक्ति सामान्य सन्तुलन की अवस्था में न हो, तो उससे अच्छे और सन्तुलित व्यवहार की उम्मीद नहीं की जा सकती । सन्तुलित व्यवहार वह है, जिसमें व्यक्ति नम्र, शिष्ट, शालीन बनकर प्रस्तुत हो । यह सात्विक आहार द्वारा ही शक्य है ..। आहार की तामसिकता उस समय प्रकट और प्रत्यक्ष होने लगती है, जब कोई नशाखोर नशे में धुत्त होता है, तो उसे संसार घूमता प्रतीत होने लगता है । सम्पूर्ण दुनिया और समस्त व्यक्ति बुरे दिखाई पड़ने लगते हैं । जगत का अकेला सज्जन-सत्पुरुष वही है, ऐसा आभास मिलने लगता है, इसीलिए मद्यपी प्रायः दूसरों की उपेक्षा करते, गाली-गलौज और मार-पीट करते दृष्टिगोचर होते हैं । सामान्य रहकर शिष्टों की भाँति आचरण करना उन्हें नहीं आता । यह आहार का असर है । इससे रक्त में ऐसे रसायन पैदा होते हैं, जो मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार की भावना, विचारणा, व्यवहार के केन्द्रों को उत्तेजित और सक्रिय करने लगते हैं । चूँकि प्रत्येक केन्द्र में दो विपरीत प्रकार की प्रवृत्तियाँ निहित होती हैं, अतः उनमें से जो पक्ष जागृत होता है, व्यक्ति का प्रत्यक्ष व्यवहार वैसा ही होने लगता है । मादक द्रव्य एवं अभक्ष्य भक्षण आचरण के मस्तिष्कीय केन्द्रों के उस पहलू को उभारने लगते हैं, जो मानवी गरिमा के प्रतिकूल होते हैं । इसी कारण आदत बदलने के लिए, उसमें अनुकूलता और पवित्रता विकसित करने के लिए विज्ञजन भोजन की सात्विकता पर विशेष बल देते देखे जाते हैं । खाद्य सामग्री के इस प्रभाव को देखते हुए वैज्ञानिक अब मस्तिष्कीय क्षमता को घटाने और बढ़ाने वाले रसायनों की खोज में जुटे हुए हैं । उनका मानना है कि जब आहार के माध्यम से विशेष प्रकार के रसायनों के निर्माण द्वारा मानवी प्रकृति को प्रभावित कर सकना सम्भव है, तो फिर उनके द्वारा बुद्धि को घटा-बढ़ा सकना क्यों कर असम्भव होना चाहिए ? बुद्धि एक विशेष प्रकार के मस्तिष्कीय उभार का नाम है, ऐसा वे मानते हैं और विश्वास करते हैं कि बुद्धि और स्मृति हर एक के लिए जरूरी नहीं । कारण बताते हुए कहते हैं कि मनुष्य की अक्ल जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे ही वैसे वह उन्मादी और अहंकारी बनता जाता है । अहंकार जब सिर चढ़ कर बोलता है, तो दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं, जिसकी अन्तिम परिणति हत्या, अपहरण, प्रतिशोध के भिन्न-भिन्न तरीकों के रूप में सामने आती हैं । यह बढ़ी-चढ़ी बुद्धि की करतूत है, अस्तु ऐसे मामलों में कुशाग्रता को रसायन प्रयोग द्वारा घटा दिया जाना चाहिए, जबकि समाज निर्माण में लगी मानसिक क्षमता को इन उपचारों द्वारा और अधिक समर्थ बनाया जाना चाहिए । यह विज्ञान का तरीका है ।

आयुर्वेद ने कुछ दूसरा ढंग अपनाया है । उसने स्वतन्त्र रसायनों के अनुसंधान की तुलना में जड़ी-बूटियों का अन्वेषण किया और बौद्धिक तीक्ष्णता को बढ़ाने वाला पृथक् उपाय आविष्कृत किया । इस प्रकार ब्राह्मी, शंखपुष्पी, शतावरी, गोरखमुण्डी और जटामांसी आदि ऐसी औषधियाँ उसने खोजीं, जो स्मृति को बढ़ाती हैं, जबकि विज्ञान रसायनों में उलझ कर रह गया । यों दोनों की प्रक्रिया लगभग एक ही है, फिर भी परिणाम में भारी अन्तर देखा जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ चर्चा खाद्य पदार्थों और उसके प्रभावों की हो रही है और कहा मात्र यह जा रहा है कि बुद्धि किस प्रकार उनसे प्रभावित होती और आहार-भेद के हिसाब से शान्त-सात्विक एवं अशान्त-उच्छृंखल बनती रहती है । बुद्धि चिन्तन को संचालित करती है और चिन्तन से क्रिया तथा व्यवहार बन पड़ते हैं । इस तरह भोजन के मूल में समग्र व्यक्तित्व छिपा होता है, उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति छिपी होती है । इसे नियन्त्रित कर लेने से व्यक्तित्व को काफी हद तक नियन्त्रित कर सकना सम्भव है । यहाँ यह जान लेना जरूरी है कि भोजन किस तरह हमारी आदतों का संचालन करता है । इस सम्बन्ध में शरीर शास्त्रियों का कहना है कि मानवी मस्तिष्क में अनेकानेक चैत्य केन्द्र हैं । इन केन्द्रों में से जो जागृत और जितने सक्रिय होते हैं, वैसी ही गतिविधियाँ व्यक्तित्व में दिखाई पड़ती हैं । उनके अनुसार मनुष्य का सोना, हँसना, रोना, कल्पना, चिन्तन, आनन्द, स्मृति, बुद्धि, क्रोध, प्रेम, दुःख, सुख यह सब उन-उन केन्द्रों की सक्रियता या निष्क्रियता पर निर्भर हैं । अनेक माध्यमों के अतिरिक्त इन्हें आहार से भी उद्दीपन मिलता रहता है । उपर्युक्त गुणों में से किसे किस परिमाण में अपने अन्दर पैदा करना है—यह निर्णय करना व्यक्ति का काम है । इस आधार पर आहार निर्धारण भी स्वयं करना पड़ता है । तत्सम्बन्धी आहार के लेते रहने से अभीष्ट मस्तिष्कीय उद्दीप्त होने लगते हैं और धीरे-धीरे उनकी विशिष्टता व्यक्तित्व में परिलक्षित होने लगती है ।

आयुर्वेद में भोजन की तीन श्रेणियाँ हैं—शमन करने वाले, कुपित करने वाले और सन्तुलन रखने वाले । कुछ भोज्य पदार्थ ऐसे हैं, जो वात, पित्त, कफ का शमन करते हैं । कुछ ऐसे होते हैं, जो इन्हें कुपित करते हैं, जबकि कई द्रव्य ऐसे भी हैं, जो इन्हें सन्तुलित बनाये रखते हैं । इन त्रिदोषों का स्वभाव से गहरा सम्बन्ध है । भोजन द्वारा यदि इनमें से किसी एक को कुपित कर दिया जाय, तो उससे सम्बन्धित गुण भी उत्तेजित हो जाता है । उदाहरण के लिए यदि चित्त को उत्तेजित करने वाले भोजन द्वारा उसे कुपित कर दिया जाय, तो उससे जुड़ा क्रोध वाला गुण भी कुपित हो जायेगा और व्यक्ति समय-समय पर बात-बेबात इसका प्रदर्शन करने लगेगा । इसी प्रकार यदि कफ कुपित हो जाय, तो लोभ भी भड़क उठता है और व्यक्ति लालची बन जायेगा । लाखों बार इस सम्बन्ध में कोई उपदेश सुन ले, पर फिर भी उसकी इस मनोवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आता दिखाई पड़ेगा । उसकी यह आदत तभी मिट सकती है, जब उसके कफ को नियन्त्रित कर दिया जाय । ऐसे ही वायु कुपित करने वाले पदार्थों के सेवन से व्यक्ति में डिप्रेशन या अवसाद स्वतः आने लगता है । प्रत्यक्षतः इसका कोई कारण नहीं होने पर भी भोजन के प्रभाव से वह उत्पन्न होगा और व्यक्ति को अपनी चपेट में ले लेगा ।

इसी प्रकार आहार में मात्रा का निर्धारण भी महत्त्वपूर्ण माना गया है । तीन चौथाई पेट भरा और एक चौथाई खाली होना चाहिए । ऐसे ही तत्वों का परिमाण निर्धारण भी अभीष्ट बताया गया है । नमक लाभकारी तभी है, जब उसे आवश्यक अनुपात में ग्रहण किया जाय । अनावश्यक अंश में लेने से वह अहितकर साबित होता है । आयुर्वेद का एक सूत्र है—'पिप्पलक्षास्लवणानि नाधिकानि भोज्यानि' अर्थात् पिप्पल, क्षार और लवण का जरूरत से ज्यादा सेवन नहीं करना चाहिए । ऐसा कहा जाता है कि विगत समय में कभी सौराष्ट्र के लोग नमक बहुत खाते थे । चीनी के स्थान पर भी वे नमक का प्रयोग करते थे । यहाँ तक दूध में भी नमक डाल कर पीते थे, इसलिए वे पुंसत्व खो बैठते और हृदय रोगों के शिकार हो जाते । अध्यात्म के आचार्यों का कहना है कि इस मार्ग पर चलने वाले लोगों को नमक का सेवन कम से कम या नहीं के बराबर करना चाहिए । उनके अनुसार ब्रह्मचर्य को साधने के लिए ऐसा नितान्त आवश्यक है, अन्यथा मन के भटकाव को रोक पाना सम्भव नहीं । रसना के असंयम के कारण मन यदि संयमित नहीं हुआ, तो फिर 'काम' पर अंकुश रख पाना असम्भव हो जाता है । कहने का आशय इतना ही है कि अन्नाहार न सिर्फ हमारे शरीर को, वरन् मानसिक प्रवृत्तियों को भी भड़काने और नियन्त्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । इसलिए व्यवहार और आदत को साधने-सुधारने के लिए इस पर भी आवश्यक अंकुश रखना जरूरी है ।

इतना जान लेने के उपरान्त इस सम्बन्ध में कोई संशय की गुंजायश नहीं रह जाती कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरी जगत से जो कुछ भी उद्दीपन ग्रहण करती हैं, वह सब चेतना के लिए एक प्रकार का भोजन है । अन्न जिस प्रकार हमारे मन को प्रभावित करता है, वैसे ही यह बाह्य उद्दीपन भी उसे प्रभावित करते रहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । अतएव स्वभाव को संशोधित करने के सन्दर्भ में इस सम्पूर्ण और समग्र आहार को ध्यान में रखा जाना चाहिए । बात तभी बन सकेगी । इससे कम में नहीं ।

सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते

योग का उद्देश्य मानसिक परिष्कार है । उसमें संग्रहीत कुसंस्कारों का शमन करना पड़ता है । स्वभाव का अंग बनी हुई दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन में जुटना होता है । भौतिक लिप्साओं की ललक शान्त करनी पड़ती है । चिन्तन की उत्कृष्टता में रस लेने के लिए सहमत किया जाता है । आत्मा और परमात्मा के बीच की खाई पाटनी होती है । यह सारे कार्य अन्तः परिशोधन और आत्म परिष्कार से सम्बन्धित है । इसलिए योग साधना वस्तुतः मन को साधने की ही विद्या है । उसमें अपनी अन्तः भूमिका से ही जूझना पड़ता है । इसे गीता का आन्तरिक महाभारत कह सकते हैं । हर साधक को अर्जुन की तरह अपना मनोबल-गाण्डीव संभालना पड़ता है । जो इस महा-समर में तत्पर होते हैं; भगवान उनका रथ हाँकते हैं और सफलता के लक्ष्य तक पहुँचाते हैं । योग की प्रवृत्ति आत्म परिष्कार की पृष्ठभूमि बनाती है:—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सहः ।
बुद्धिश्च न विचेष्ठति तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणम् ॥

"चित्त को विषयों से हटाकर आत्मा में ही समावेश करना अध्यात्म योग है । चक्षुरादि पंचेन्द्रिय, मन और बुद्धि आत्मा में अविचलित होकर समाविष्ट हो, यही योग है ।"

सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तों योगउच्यते ।

—योग शास्त्र

"जिस समय मनुष्य सब उद्विग्नताओं को त्याग देता है, उस समय उसके मन की लयोवस्था को योग कहते हैं ।"

असंयतात्मना योगों दुष्प्राय इति मे मति ।
वश्यात्मना तुयतता शक्योऽवप्तु मुपायत ॥

—गीता

"जिनका मन वश में नहीं है उनके लिए योग का प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा मत है । परन्तु मन को वश में किए हुए प्रयत्नशील पुरुष साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं ।"

धैर्य यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिर गेहिनी ।
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मन सयमः ।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजन-
येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ।

"धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, नित्य शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है तथा मनः संयम भ्राता है, भूमितल ही जिसकी सुकोमल शय्या है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है, जिसके ये सब कुटुम्बी हैं, कहो मित्र, उस योगी को किससे भय हो सकता है ।"

गृहारण्य समालोके गतव्रीड़ा दिगम्बराः ।
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तारन्ते भवन्तिकिम् ॥

"यदि घर छोड़कर जंगल में रहने और नंगे वदन रहने से योगी बना जा सकता होता तो वैसा ही आचरण करने वाले गधे क्यों विरक्त न कहलाते ।"

आजन्म मरणान्तं गंङ्गादि तटिनीं स्थिताः ।
मराडूकमत्स्य प्रमुखा योगिनस्ते भवन्तिकिम् ॥

"जन्म से लेकर मरण पर्यन्त गंगा के किनारे और उसी के जल में रहने वाले मेढ़क क्यों योगी नहीं कहलाते ? जबकि वैसे निवास मात्र से लोग योगी का अहंकार करते हैं ।"

तस्मान्तित्यादिकं कर्म लोकरञ्जन कारकम् ।
मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्वज्ञानं त्वमेश्वर ॥

"बाह्य आवरण तो लोक व्यवहार एवं सुविधा की दृष्टि से हैं । उनका विशेष महत्त्व नहीं है । हे गरुड़ ! बन्धन मुक्ति का कारण तो तत्व ज्ञान है उसी को उपलब्ध करने से योग का उद्देश्य पूरा होता है ।"

मनोनिग्रह और दिव्य शक्तियों का विकास

मन का संयम करने की आवश्यकता इसलिए समझी गई है कि उसकी चंचल वृत्ति के—भाग दौड़ के कारण किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में तन्मय होने की आवश्यकता में विघ्न न पड़े ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह स्पष्ट है कि कोई शारीरिक या मानसिक कार्य बिना तत्परता और तन्मयता के सम्पन्न नहीं होते । जिस प्रकार पनडुब्बी समुद्र में गहरा गोता लगाती हैं और जिस क्षेत्र में मोतियों वाली सीपें होती हैं उसी में सीधे उतर जाती हैं । तभी उन्हें अभीष्ट लाभ मिलता है । यदि वे जिधर-तिधर छितराती रहें और अभीष्ट लक्ष्य केन्द्र से अपरिचित रहें तो उनका श्रम निरर्थक ही चला जायेगा और उनके हाथ खीज, थकान के अतिरिक्त और कुछ न पड़ेगा । धनुष बाण कितने दाम का है । महत्त्व इस बात का नहीं वरन् इस बात का है कि चलाने वाले को निशाना साधना आता है कि नहीं । यह साधना एकाग्रता के बलबूते ही बन पड़ती है । यह बात किसी आध्यात्मिक व भौतिक कोई भी कार्य क्यों न हो यदि वे सही रीति से सम्पन्न होते हैं यदि उसमें हवाई उड़ानें उड़ने वाला मन विघ्न उत्पन्न करे, तो उसे भी ठीक तरह सम्पन्न कर सकना सम्भव न हो सकेगा । अस्तु वैज्ञानिक, कलाकार, योगाभ्यास स्तर के कार्यों के लिए मन को निर्धारित प्रयोजन में एकाग्र रखना नितान्त आवश्यक है । यदि इतना भी न सध सकेगा तो लुहार-सुनार आदि मिस्त्री कारीगर तक अपना काम ठीक तरह न कर सकेगा । चोट यथास्थान मारने की अपेक्षा अपने हाथ में मार लेगा और घायल हो जायेगा । बौद्धिक प्रयोजनों में तो यह और भी अधिक आवश्यक है । क्योंकि उनमें अधिकांश काम मन को ही करना पड़ता है ।

यह नितान्त आवश्यक है कि मन को कोई काम दिया जाय । यदि उसे छुट्टल रखा जाय तो वह घुड़दौड़ लगाये बिना न रहेगा और हिरन की सी चौकड़ी भरेगा । उसका कोई प्रयोजन पूरा न हो सकेगा चिड़ियों की तरह उछलता-फुदकता फिरेगा । ऐसी दशा में उससे कोई काम ले सकना किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा ।

मन की एकाग्रता के लिए ध्यान की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है । जो लोग मन को स्थिर करने की बात सोचते हैं, और कल्पना करते हैं कि इच्छा करने भर से मन सध जायेगा, ऐसा कभी नहीं हो सकता । इन प्रयत्नों में सफलता कहीं नहीं मिलती । कितने की व्यक्ति मन को पकड़ने, रोकने का प्रयत्न करते रहते हैं । यह हवा को रोकने के समान है ।

जप भी इस सम्बन्ध में कारगर सिद्ध नहीं होगा । शब्दों और अक्षरों को दुहराते रहने का काम ऐसा है जो जिह्वा के सहारे होता रहता है । मन पर उससे कोई बन्धन नहीं बँधता । इसलिए शास्त्रकारों का कथन है कि जप के साथ इष्टदेव की प्रतिमा का प्रकाश केन्द्र सविता देवता का ध्यान उस समय करते रहना चाहिए ।

ध्यान की कितनी ही शाखा प्रशाखाएँ हैं । इनमें श्वास-प्रश्वास पर ध्यान एकाग्र करना और उनके आवागमन के साथ ही सोऽहम् के गुंजन की आवाज सुनना यह मन को एकाग्र करने का एक अच्छा तरीका है । इसे अपनाने से ध्यान की एकाग्रता का उद्देश्य बहुत हद तक पूरा हो जाता है । यह सरल भी है । इसके उपरान्त नादयोग के अभ्यास की बात आती है । कानों के छेदों को शींशी के कार्कों से कड़ा बन्द करके बैठना चाहिए और समूचा ध्यान इस बात पर एकाग्र करना चाहिए कि उसमें से कहीं से कोई ध्वनि सुनाई पड़ती है क्या ? यह ध्वनियाँ कई प्रकार की होती हैं । एक शरीर की धड़कनों से काया के भीतरी अवयव सभी क्रियाशील रहते हैं । उनमें से ध्वनियाँ होती हैं । कानों पर यदि ध्यान एकाग्र किया जाय । बाहर के शब्दों को भीतर प्रवेश न करने दिया जाय तो आन्तरिक ध्वनियाँ, रेलगाड़ी चलने जैसी आवाजें आने लगती हैं । इसके पश्चात अन्तरिक्षव्यापी ब्रह्म चेतना के क्षेत्र में जो हलचलें हो रही हैं उनका आभास मिलना आरम्भ हो जाता है । इसका अनुभव समय साध्य है कि किस ध्वनि में क्या संकेत उठता है और उसका दृश्य जगत के साथ क्या सम्बन्ध रहता है ? नादयोग के आधार पर भी अविज्ञात को विज्ञात स्वरूप में देख सकना सम्भव होता है । अतीन्द्रिय क्षमताओं को जागृत करना भी इस प्रकार के आधार पर सम्भव होता है । मस्तिष्क के विभिन्न कक्षों में विभिन्न शक्तियों का निवास है । उनमें से कौन कितनी मन्द और कौन कितनी तीव्र है इसका अनुमान भी उन क्षेत्रों से उठने वाली तरंगों को कान द्वारा समझा जा सकता है ।

सूक्ष्म शरीर में षट्चक्र और ५४ उपात्यिकाएँ हैं । यह सभी शक्ति केन्द्र हैं । इन्हें अलंकारिक रूप से आध्यात्मिक विभूतियों का, दिव्य मणियों का भण्डार कहा जा सकता है । इन्हें समर्थ रक्षण करने का अभ्यास भी यह है कि नासिका द्वारा खींची गई वायु के साथ घुले हुए प्राण तत्व का मन की कल्पना और भावना शक्ति द्वारा यहाँ थपकी लगाई जाती है । यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थपकी मालिस करने या गुदगुदाने जैसी होती है । इन उपचारों का प्रभाव उन शक्ति केन्द्रों पर पड़ता है और क्रमशः उनमें समर्थता और प्रफुल्लता आती जाती है । इन्हीं उत्पादित क्षमताओं को ऋद्धि-सिद्धि आदि के नाम से जाना जाता है ।

शरीर को उत्पीड़न करने और तपश्चर्या द्वारा उसे शीत, ऊष्मा, उपवास आदि करने के भी प्रयोग हैं, पर उन सबका प्रभाव शरीर के उथले क्षेत्र तक ही सीमित होकर रह जाता है । गहराई में प्रवेश करना उस मन का ही काम है जिन्हें एकाग्रता की साधनाओं से नुकीला सुई जैसा पतला बना लिया गया है । इसे इन्जेक्शन की तरह किसी ग्रन्थि में प्रवेश कराया जा सकता है और उसकी विकृतियों को खींचने और दिव्यताओं को बढ़ाने का काम लिया जा सकता है ।

मन को सांसारिक प्रयोजनों से खींचकर आध्यात्मिक कार्यों में लगाने का यही तरीका है कि मन को उच्छृंखल उछल-कूद से रोक कर अभीष्ट प्रयोजनों में लगाया जाय और उसका प्रयोग ऐसे कार्यों के निमित्त किया जाय जिससे सदाशयता का वातावरण बनता हो और साथ ही अपने और दूसरों के संकटों के निवारण की प्रक्रिया को भी पूरा किया जा सकता है ।

मनोनिग्रह ही आत्म विजय है । आत्मिक क्षेत्र का कोई कल पुर्जा ऐसा नहीं है । जिनके सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि उसका मन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । या मन का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता । ऐसी दशा में यही उचित है कि अपने मन पर शरीर से भी अधिक ध्यान दिया जाय । उसे एकाग्र ही नहीं, पवित्र, परिष्कृत और समर्थ बनाने में भी किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय ।

ऋद्धि-सिद्धियों का अन्तराल में उद्घाटन कैसे हो ?

जो कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है, वही कम विलक्षण नहीं है । प्रत्यक्ष चेतन मस्तिष्क की उपलब्धियाँ ही चमत्कारी होती हैं । विद्वान, लेखक, वैज्ञानिक, कलाकार, दार्शनिक, व्यवसायी, कुशल राजनेता और सफल उद्योगपति अपने कुशल मस्तिष्क के आधार पर ही सफलता प्राप्त करते हैं अपनी मस्तिष्कीय प्रतिभा से वह स्वयं का और दूसरों का कितना हित साधन करते हैं ? यह किसी से छिपा नहीं है । इस प्रत्यक्ष और चेतन मस्तिष्क से भी अधिक रहस्यपूर्ण अचेतन मस्तिष्क है । अभी मनोविज्ञानी इस मस्तिष्क के क्रियाकलापों का केवल सात प्रतिशत भाग ही जान पाये हैं । शेष तो अज्ञात ही पड़ा है और जितना कुछ जाना जा सका है, वही इतना विलक्षण तथा रहस्यपूर्ण है । उसके आधार पर मानव को अतिमानव और उसे विलक्षण शक्तियों से सम्पन्न करने की बात सोची जा रही है ।

मनःशास्त्रियों के अनुसार चेतन की अपेक्षा अचेतन बहुत अधिक बलवान और समर्थ है । शरीर यात्रा की स्वसंचालित गतिविधियों का संचालन, नियन्त्रण तथा परिवर्तन इस अचेतन मस्तिष्क द्वारा ही होता है । मनुष्य की अभिरुचि, प्रवृत्ति और आदत बहुत कुछ इसी अचेतन मस्तिष्क में जड़ें जमाये बैठी रहती हैं । मोटे तौर पर अभी इतना ही कुछ जाना, समझा जा सका है । पर अब इस सम्बन्ध में मैटाफिजिक्स, परामनोविज्ञान, अतीन्द्रिय विज्ञान आदि कितनी ही विज्ञान की धाराएँ आरम्भ हुई हैं और इन धाराओं में अचेतन मस्तिष्क के बारे में जो खोजबीन शुरू की है, उनसे निष्कर्षतः यह पाया गया है कि यह संसार का सबसे अधिक रहस्यमय, अद्भुत और शक्तिशाली यन्त्र है ।

इस दिशा में होती जा रही नई-नई खोजों के आधार पर यह कहा जा रहा है कि चेतन मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छा शक्ति, प्राण-शक्ति को यदि अचेतन का विकास करने में लगाया जा सके, तो व्यक्ति अपने शरीर और व्यक्तित्व में कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर सकता है । वह अति दीर्घजीवी हो सकता है, अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और उसमें चल रही हलचलों को मद, शिथिल एवं परिवर्तित कर सकता है । इन सम्भावनाओं को भारतीय ऋषि, महर्षि न जाने कब से योग साधना द्वारा प्रत्यक्ष करते रहे हैं और उन्हें प्रत्यक्ष तथा प्रमाणित करने की अब भी पूरी गुंजायश है क्योंकि वह एक विज्ञान है जो प्रकृति के रहस्यों को अपने ढंग से सुलझाने में सुनिश्चित निष्कर्ष तक काफी समय पहले पहुँच चुका है । इन नियमों के अनुसार कोई व्यक्ति यदि अभी भी प्रयत्न करे तो उन नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर अभी भी इन सम्भावनाओं को साकार किया जा सकता है ।

योग विज्ञान का मूल सिद्धान्त चित्तवृत्तियों का निरोध है । अर्थात् मस्तिष्क की आत्यन्तिक सक्रियता को नियन्त्रित करके उसकी चेतना शक्ति के अपव्यय को बचा लेना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसे बचे हुए अचेतन प्राण प्रवाह को चेतन के विकास में नियोजित कर देना । निःसन्देह यह एक पूर्ण विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है और इसके लाभ अलौकिक उपलब्धियों के रूप में देखे जा सकते हैं । समाधि की स्थिति में पहुँचा हुआ व्यक्ति जब चित्तवृत्तियों को पूरी तरह चेतना में लय कर देता है, इस स्थिति में त्रिकालदर्शी और विश्व की जड़ चेतन सत्ता को प्रभावित करने में समर्थ बन सकता है । इसमें न तो कोई आश्चर्य जैसी बात है और न ही यह कोई असम्भव कल्पना है ।

मनुष्य ऐसी कई अद्‌भुत क्षमताओं से वंचित है जो विश्व के अगणित जीव-जन्तुओं को प्राप्त हैं, इसका एक ही कारण है कि मनुष्य का वैज्ञानिक संस्थान अतिशय सक्रिय है । इस अतिशय सक्रियता के कारण मानवी चेतन ऊष्मा अचेतन को दबा देती है और उससे शरीर संचालन तथा अन्य मस्तिष्कीय गतिविधियाँ भरी-पूरी हो पाती हैं । वह ऊष्मा जो अचेतन को सक्रिय कर उससे अलौकिक और अद्‌भुत प्रयोजन पूरे करा सकती थी, एक प्रकार से कुण्ठित ही पड़ी रहती है । मनुष्य की अधिकांश शक्तियाँ चेतन मस्तिष्क को ही सार्थक रखने में खप जाती हैं, इसलिए वह उन अलौकिक क्षमताओं से वंचित रह जाता है, जो अन्यान्य जीव-जन्तुओं को प्राप्त रहती हैं । स्पष्ट है कि—जीव-जन्तु बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े रहते हैं, उनका चिन्तन और चेतन शिथिल रहता है । इसका लाभ उनके अचेतन को मिलता है और वे योगियों जैसे कितने ही अद्‌भुत कार्य कर सकते हैं ।

उदाहरण के लिए कुत्तों की घ्राण शक्ति इतनी सूक्ष्म होती है कि वे व्यक्तियों के शरीर की गन्ध पहचान लेते हैं । उसी गन्ध के आधार पर भीड़-भाड़ में भी अपने मालिक को पहचान लेते हैं । दोषियों और अपराधियों को पकड़वाने में प्रशिक्षित कुत्ते अपनी घ्राण शक्ति के कारण ही सफल होते हैं । जिस आधार पर वे चोरी का, चोरों का या अपराधी का पता लगाते हैं, वह उनके अधिक विकसित अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्धित घ्राण शक्ति ही होती है । चमगादड़ के ज्ञान तन्तु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं । इस क्षमता के आधार पर वे विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली रेडियो तरंगों को भली-भाँति पहचान लेते हैं और घोर अंधकार में अपने आस-पास की वस्तुओं का स्वरूप एवं स्थान समझ कर बिना किसी से टकराये उड़ते रह सकते हैं । समुद्री मछली टरास्किन अपने शरीर से एक प्रकार की रेडियो तरंगें निकालती है । पानी के भीतर ही वे दूर तक फैलती हैं और इस क्षेत्र के जीव-जन्तुओं से टकरा कर उसी के पास वापस लौट जाती हैं । उनका अचेतन मस्तिष्क क्षण भर में यह जान लेता है कि कौन जीव किस आकृति-प्रकृति का कितनी दूर है ? उसी आधार पर वह अपने बचाव तथा आक्रमण की योजनाबद्ध तैयारी करती है ।

जीव विज्ञानियों की मान्यता है कि कई जीव जन्तुओं ने अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार अपने शरीर में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न कर ली हैं जो आरम्भ में नहीं थीं । स्पष्ट ही वे क्रियाकलाप इन जीव-जन्तुओं का अचेतन मन ही कराता है । यदि अचेतन मन की सामान्य शक्तियों को चेतन मस्तिष्क की उत्तेजित ऊष्मा द्वारा नष्ट न किया जाय तो अन्य जीवों की तुलना में हजारों गुना अधिक विकसित मानवीय मस्तिष्क इतनी अधिक दिव्य विशेषताएँ अर्जित कर सकता है जितने में कि समस्त जीव जन्तुओं की सम्मिलित अचेतन सत्ता से भी सम्भव नहीं हो सके ।

योगी योग साधना द्वारा चेतन मस्तिष्क की अनावश्यक सक्रियता में नष्ट होने वाली ऊर्जा को रोक कर अचेतन को समर्थ बनाने में प्रयुक्त करते हैं । इस सन्दर्भ में यह नहीं कहा जा सकता है कि योग साधना विद्या विलास या बौद्धिक विकास पर प्रतिबन्ध लगाती है । उसमें मानसिक उत्कर्ष, विद्याध्ययन, कला-कौशल और ज्ञानार्जन की पूरी छूट है । प्रतिबन्ध है तो केवल इस बात पर कि मनःक्षेत्र को उत्तेजित, विक्षुब्ध एवं अशान्त न होने दिया जाय ।

इस चरण में एकाग्रता का अभ्यास करना पड़ता है । मन में उठने वाले विभिन्न संकल्पों को रोककर उसे केन्द्र पर स्थिर रखने का अभ्यास करना पड़ता है । इस एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जागृत अवस्था में ही संकल्पपूर्वक लय कर देने का नाम समाधि है । इसके लिए प्रत्याहार, धारणा, ध्यान की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं । इन साधनाओं के द्वारा सचेतन बुद्धि संस्थान की चिन्तन और संकल्प क्षमता को शिथिल करके वहाँ लगे हुए तेजस् को जब अचेतन के साथ जोड़ दिया जाता है तो उसकी वे दिव्य क्षमताएँ जागृत और सक्षम होना आरम्भ हो जाती हैं, जो अद्‌भुत, अनुपम और चमत्कारी ही कही जा सकती हैं । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशा में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेता है वह उतना ही समर्थ और सिद्ध पुरुष बन जाता है ।

संक्षेप में यही है योग साधना का तत्वदर्शन-बौद्धिक चेतना पर नियन्त्रण स्थापित करके अचेतन को दबाने से रोकना और उसे जागृत करना । इन प्रयोगों को यदि व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके तो निःसन्देह मनुष्य साधारण न रह कर असाधारण बन सकता है और वे विभूतियाँ अर्जित कर सकता है जो उसे अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न बना सकती हैं ।

परिष्कृत चेतना में ही दिव्य शक्तियों का अवतरण सम्भव

चेतना की परिष्कृत स्थिति उसे कहा जाता है जहाँ भौतिक तत्वों का कम और आत्मिक उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश होता है । जब भौतिकता ही मन-मस्तिष्क अन्तःकरण पर छाई रहती है तो जीव एक सीमा में पाशबद्ध होता है जिसे कषाय-कल्मष, भवबन्धन, लोभ-मोह, वासना-अहंकार का आवरण कहते हैं । जब अन्तरात्मा का स्वार्थ विकसित होकर परमार्थ में बदल जाता है तो इसे 'स्व' की 'सुपर ईगो' में, चेतन की 'सुपर चेतन' में परिणति कहते हैं । योगी इसी मनःस्थिति में रमण करते हैं । वैसी स्थिति में आस्थाएँ वातावरण के सम्पर्क से नहीं, आदर्शों से प्रभावित होती हैं व अन्यों को भी अनुकरण के लिए प्रेरित करती हैं ।

साधना का अर्थ है—जन-जन के अन्तःकरण पर संकीर्णता, मोह, ममता की परत-दर-परत चढ़े आवरणों को उघाड़ना, चेतना को परिष्कृत करना । ऐसी स्थिति में व्यक्ति पूर्णरूपेण बदल जाता है । वह जैसा भी कुछ बहिरंग में दृष्टिगोचर होता है, उसमें तो नहीं, पर अन्दर से वह असामान्य स्तर का महामानव बन जाता है ।

जिस दुनिया के सम्पर्क में मानव सामान्यतया विचरण करता है, वह स्थूल है, बुद्धिगम्य है । इसके भीतर प्रकृति की वह सत्ता है जो पदार्थ की तरह प्रत्यक्ष नहीं शक्ति के रूप में विद्यमान है । इन्द्रियाँ—यन्त्र उपकरण इसका परिचय हमें देते रहते हैं । इसमें आगे सूक्ष्म जगत का अस्तित्व आरम्भ होता है जो इन्द्रियगम्य न होने से अतीन्द्रिय या इन्द्रियातीत कहा जाता है । भौतिक उपादानों—स्थूल उपकरणों द्वारा प्रयोगशाला में इसे प्रामाणित नहीं किया जा सकता और न ही बुद्धि उनका कारण समझ पाने में समर्थ हो पाती है । इतने पर भी अतिसूक्ष्म जगत का आधार अपने स्थान पर चट्टान की तरह अडिग है । उसका अस्तित्व स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ।

मानवी बुद्धि ने अतीन्द्रिय कही जाने वाली जिन हलचलों को विचार, संचार पूर्वाभास, दूरदर्शन, दूर-श्रवण, पदार्थ प्रत्यावर्त्तन मानकर स्वीकार किया है, वे अविज्ञान सूक्ष्म जगत् में ही घटती है । जीवन समाप्ति के बाद जीवात्मा का निवास, मरण के समय की अनुभूतियाँ, मरणोत्तर योनियाँ व पुनर्जन्म के विवरणों को स्थूल बुद्धि प्रमाण रूप में देखते हुए सूक्ष्मजगत का अस्तित्व स्वीकार करके ही 'यथार्थता' की मोहर लगाती है । किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों में विशिष्ट स्तर की अति मानवी क्षमताएँ पायी जाती हैं । इन्हें चमत्कारी सिद्धियाँ कहा जाता है । शाप-वरदान से लेकर प्राण-प्रहार आदि आश्चर्यजनक क्रिया-कलापों को प्रत्यक्षीकृत कर देने की विचित्रताएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं, इसका उत्तर सूक्ष्म जगत की सत्ता का अस्तित्व स्वीकार किए बिना दिया नहीं जा सकता ।

दृश्य-स्थूल तथा सूक्ष्म-इन्द्रियातीत जगत से भी परे कोई नियामक नियन्त्रक सत्ता होनी चाहिए—यह विचार सहज ही मन में उठता है । जब कल-उपकरण मानवी बुद्धि प्रयोग के बिना नहीं चल सकते तो इतना विशाल ब्रह्माण्ड बिना किसी नियामक सत्ता के कैसे चल सकता है—यह सहज ही समाधान भी निकलता है । यह पूरा समुच्चय जो इन्द्रियातीत व उससे भी परे है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है—चेतन जगत का संसार है । अदृश्य जगत की इस समग्र चेतन शक्ति को 'ब्रह्म' या 'ब्राह्मीचेतना' कहकर पुकारते हैं । जीव चेतना इस ब्रह्माण्ड-व्यापी महा चेतना का ही एक अंश है । अंश और अंशी, महान और लघु, विभु और अणु के गुण धर्म समान होते हैं । अन्तर विस्तार के अनुरूप क्षमता का होता है । हम सब जीव चेतनाएँ इस ब्रह्माण्ड-व्यापी महासमुद्र में छोटी-बड़ी मछलियों की तरह जीवन-यापन करते हैं ।

जो साधक इस महा चेतना से सघन सम्पर्क स्थापित कर सकने में सफल हो जाते हैं, वे अन्यों से अलग नजर आने लगते हैं । उनके क्रिया-कलाप चिन्तन में वे सभी गुण नजर आने लगते हैं जिनकी अभ्यर्थना ईश, स्तवन में की जाती है । ऐसे व्यक्ति अपने अन्तरंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को—प्रसुप्त को जगाकर देव शक्तियों का अपने अन्दर आह्वान कर सकने में समर्थ हो जाते हैं । किसी-किसी में यह क्षमता जन्मजात पायी जाती है । किन्हीं-किन्हीं बालकों की स्मृति सूझबूझ ऐसी होती है जिसे विलक्षण कहा जा सकता है । सिद्धियाँ-चमत्कार, दैवी अनुग्रह-मृतात्मा, सहयोग-मन्त्र, साधना के प्रतिफल ऐसे प्रकरण हैं, जिन्हें हम यह कह कर नहीं टाल सकते कि ये अन्धविश्वास हैं । योगियों के साथ जुड़ी विभूतियाँ, ईश्वर भक्तों को प्राप्त विशिष्टताएँ मात्र संयोग नहीं हैं । पर यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये सिद्धियाँ ही सब कुछ नहीं हैं । बिना व्यक्ति के अन्तरंग के परिष्कार के—नीतिमत्ता के विकसित हुए—वे आत्मिक विभूतियाँ न रहकर भौतिक सिद्धियाँ भर रह जाती हैं । उनकी चमत्कृति का आकर्षण स्थूल तक की सीमित बना रहता है ।

यदि यह कहा जाय कि ये सभी इसलिए अप्रमाणित हैं कि बुद्धि की पकड़ में नहीं आतीं तो यह भी गलत होगा । किसी तथ्य से इन्कार करने का यह कोई सशक्त कारण नहीं है । सूक्ष्म तो सूक्ष्म है । उसकी बहिर्अभिव्यक्ति ही अपने आप में एक प्रमाण है । ज्ञात या प्रत्यक्ष न होने पर भी जीव और ब्रह्म के मध्यवर्ती चल रहे आदान-प्रदान को झुठलाया नहीं जा सकता । इनमें अवरोध केवल आत्मा पर चढ़े कषाय-कल्मषों के कारण होता है ।

जब भी भौतिक, अंश बढ़ जाता है तो जीव प्रकृति परक हो जाता है । उसकी प्रवृत्ति भौतिक आकांक्षाओं और उपलब्धियों तक ही सीमित रह जाती है । यदि जीव सत्ता निर्मल है तो उसकी सूक्ष्मता ब्रह्मतत्व से, सूक्ष्म जगत से घनिष्ठ तादात्म्य स्थापित कर सकती है । यह आदान-प्रदान जिसके लिए भी सम्भव हुआ है, वह स्वयं को देवोपम स्तर का बना सकने में समर्थ हुआ हैं । ऐसे लोग सूक्ष्म जगत से अत्याधिक मात्रा में महत्त्वपूर्ण अनुदान हस्तगत कर सकने में सफल हो जाते हैं । इस उपलब्धि के सहारे वे अपने सम्पर्क क्षेत्रों के असंख्यों का तथा समूचे संसार का महत्त्वपूर्ण हित साधन कर पाते हैं ।

इस सन्दर्भ में शास्त्राभिमत है—

वपषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम् ।
आरोग्यं च पटुत्वं च सर्वज्ञत्वं च जायते ॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च वेत्ति सर्वंकारणम् ।
अश्रु तान्यपि शास्त्राणिं सरहस्यं वदेद ध्रुवम् ॥
वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ।
मन्त्र सिद्धिर्भवेत्ततस्य जपादेव न संशयः ॥

—शिवसंहिता

"आत्म साधना से शरीर में उत्तम कान्ति उत्पन्न होती है । जठराग्नि बढ़ती है, शरीर निरोग होता है, पटुता और सर्वज्ञता बढ़ती है तथा सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है ।

तब भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सब वस्तुओं के कारण का ज्ञान होता है । जो शास्त्र सुने नहीं है उनके रहस्य जानने तथा व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त होती है ।

उन योग साधक की जिह्वा पर सरस्वती नृत्य करती है और मंत्रादि सरलतापूर्वक सिद्ध होते हैं ।"

यथा वा चित्त सामर्थ्य जायतेयोगिनोध्रुवम् ।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः अणाददूरागमस्तथा ॥
वाकसिद्धि कामरुपत्वमदृश्यकरणी तथा ।

—योग तत्वोपनिषद्

"जैसे-जैसे चित्त की सामर्थ्य बढ़ती है वैसे-वैसे दूर श्रवण, दूरदर्शन, वाक् सिद्धि, कामनापूर्ति आदि अनेकों दिव्य-सिद्धियाँ मिलती चली जाती हैं ।"

योगियों ने बताया है कि आसन से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार ने मनोविकार दूर होते हैं । धारणा से धैर्य, ध्यान से ऐश्वर्य एवं समाधि से कर्म बन्धन कट कर मोक्ष प्राप्ति होती है ।

साधना की ये सब उपलब्धियाँ परिष्कृत अन्तश्चेतना रूपी स्वच्छ दर्पण पर स्पष्ट दिखायी देती हैं । सब प्रकार से कल्याणकारी पथ अध्यात्म साधना को सही रूप से समझा, बताया व अपनाया जा सके तो ये दिव्य अनुदान हर किसी के लिए पा सकना सहज सुलभ है ।

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

|| यम और नियम ||

कहा जा चुका है कि महर्षि पातंजलि के बताये हुए राजयोग के आठ अंग हैं—

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि । इन आठ में प्रारम्भिक दो अंगों का महत्त्व सबसे अधिक है । इसीलिए उन्हें सबसे प्रथम स्थान दिया गया है । यम और नियम का पालन करने का अर्थ मनुष्यत्व का सर्वतोन्मुखी विकास है । योग का आरम्भ मनुष्यत्व की पूर्णता के साथ आरम्भ होता है । बिना इसके साधना का कुछ प्रयोजन नहीं ।

योग में प्रवेश करने वाले साधक के लिए यह आवश्यक है कि आत्म-कल्याण की साधना पर कदम उठाने के साथ-साथ यम-नियमों की जानकारी प्राप्त करें । उनको समझें, विचारे, मनन करें और उनको अमल में, आचरण में लाने का प्रयत्न करें ।

यम-नियम दोनों की सिद्धियाँ असाधारण हैं । महर्षि पातंजलि ने अपने योग दर्शन में बताया है कि इन दसों की साधना से महत्त्वपूर्ण ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । हमारा निज का अनुभव है कि यम-नियमों की साधना से आत्मा का सच्चा विकास होता है और उसके कारण जीवन सब प्रकार की सुख-शान्ति से परिपूर्ण हो जाता है । यम-नियम का परिपालन एक ऐसे राजमार्ग पर चल पड़ने के समान है जो सीधे गन्तव्य स्थल पर ही पहुँचाकर छोड़ता है ।

'राजमार्ग' का अर्थ है 'आम-सड़क'—वह रास्ता जिस पर होकर हर कोई चल सके, जिस पर चलने में सब प्रकार की सरलता, सुविधा हो, कोई विशेष कठिनाई सामने न आवे । राजयोग का भी ऐसा ही तात्पर्य है । जिस योग की साधना हर कोई कर सके, सरलतापूर्वक उसमें प्रगति कर सके और सफल हो सके, यह राजयोग है । हठयोग, कुण्डलिनी योग, लययोग, तंत्रयोग, शक्तियोग आदि उतने सरल नहीं हैं और न उनका अधिकार ही हर मनुष्य को है । उनके लिए विशेष तैयारी करनी पड़ती है, और विशेष प्रकार का रहन-सहन बनाना होता है, पर राजयोग में ऐसी शर्तें नहीं हैं, क्योंकि वह मनुष्य मात्र के लिए, स्त्री-पुरुष, गृही-विरक्त, बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षत सबके लिए समान रूप से उपयोगी और सरल है ।

योग का अर्थ है—मिलना । जिस साधना द्वारा आत्मा का परमात्मा से मिलना हो सकता है, उसे योग कहा जाता है । जीव की सबसे बड़ी सफलता यह है कि वह ईश्वर को प्राप्त कर ले, छोटे से बड़ा बनने के लिए, अपूर्ण से पूर्ण होने के लिए, बन्ध से मुक्त होने के लिए, वह अतीतकाल से प्रयत्न करता आ रहा है, चौरासी लक्ष योनियों को पार करता हुआ इतना आगे बढ़ आया है, वह यात्रा ईश्वर से मिलने के लिए है, बिछुड़ा हुआ बछड़ा अपनी स्नेहमयी माता को ढूँढ़ रहा है, उसकी गोदी में बैठने के लिए छटपटा रहा है । उस स्वर्गीय मिलन की साधना योग है और उधर बढ़ने का सबसे साफ, सीधा, सरल जो रास्ता है, उसी का नाम 'राजयोग' है ।

महर्षि पातंजलि ने इस योग को आठ भागों में विभाजित किया है । योगदर्शन के पाद २ का २९वाँ सूत्र है—

"यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार
धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि ॥"

अर्थात्—'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि योग के यह आठ अंग हैं ।' इस पुस्तक में आठ अंगों में से यम और नियम इन दो अंगों पर विचार किया जायेगा ।

योग-दर्शन के पाद २ सूत्र ३० में 'यम' के सम्बन्ध में बताया गया है—"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ।" अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पाँच यम हैं । पाठकों को यम शब्द से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए, मृत्यु के देवता को भी 'यम' कहते हैं, यहाँ उस यम से कोई तात्पर्य नहीं है यहाँ तो उपरोक्त पाँच व्रतों की एक संज्ञा नियत करके उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम 'यम' रखा गया है । यम शब्द से यहाँ उपरोक्त पाँच व्रतों का ही भाव है । आगे क्रमशः प्रत्येक के बारे में कुछ विवेचना की जाती है ।

अहिंसा

साधारण रीति से "दुःख न देने" को अहिंसा कहते हैं । 'हिंसा' का अर्थ है मारना, सताना, दुःख देना । 'अ' का अर्थ है 'रहित' । इस प्रकार अहिंसा का अर्थ हुआ, न मारना, न सताना, दुःख न देना । ऐसे कार्य जिनके द्वारा किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचता हो हिंसा कहलाते हैं, इसलिए उनका करना अहिंसा व्रत पालन करने वाले के लिए त्याज्य है । महात्मा गाँधी के मतानुसार—कुविचार मात्र हिंसा है, उतावलापन हिंसा है, मिथ्याभाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है, जिसकी दुनिया को जरूरत है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है, इसके अतिरिक्त किसी को मारना, कटुवचन बोलना, दिल दुःखाना, कष्ट देना तो हिंसा है ही इन सबसे बचना अहिंसा पालन कहा जायेगा ।

सामान्य प्रकार से उपरोक्त पंक्तियों में अहिंसा का विवेचन हो गया पर यह अधूरा और असमाधान कारक है । कोई व्यक्ति लोगों के सम्पर्क से बिल्कुल दूर रहे और बैठे-बैठे भोजन वस्त्र की पूरी सुविधाएँ प्राप्त करता रहे तो शायद किसी हद तक ऐसी अहिंसा का पालन कर सके, पूर्ण रीति से तो तब भी नहीं कर सकता क्योंकि साँस लेने में अनेक जीव मरेंगे, पानी पीने में सूक्ष्म जल-जन्तुओं की हत्या होगी, पैर रखने में, लेटने में कुछ न कुछ जीव कुचलेंगे, शरीर और वस्त्र शुद्ध रखने में जुयें आदि मरेंगे, पेट में कभी-कभी कृमि पड़ जाते हैं, मल त्यागने पर उनकी मृत्यु हो जायेगी । स्थूल हिंसा से कुछ हद तक बच जाने पर भी उस एकान्त सेवी से पूरी अहिंसा का पालन नहीं हो सकता । तब क्या किया जाय ? क्या आत्म हत्या कर लें ? या योग मार्ग की पहली ही सीढ़ी पर चढ़ना असम्भव समझ कर निराश हो बैठें ?

केवल शब्दार्थ से ही अहिंसा का भाव नहीं ढूँढ़ा जा सकता, इसके लिए योगिराज कृष्ण द्वारा अर्जुन को दी हुई व्यवहारिक शिक्षा का आश्रय लेना पड़ेगा । अर्जुन देखता है कि युद्ध में इतनी अपार सेना की हत्या होगी; इतने मनुष्य मारे जायेंगे, यह हिंसा है इससे मुझे भारी पातक लगेगा, वह धनुष बाण रख कर रथ के पिछले भाग में जा बैठता है और कहता है कि, हे अच्युत ! मैं थोड़े से राज्य लोभ के लिए इतना बड़ा पाप न करूँगा, इस युद्ध में मैं प्रवृत न होऊँगा । भगवान कृष्ण ने अर्जुन की इस शंका का समाधान करते हुए गीता के अठारह अध्यायों में योग का उपदेश दिया, उन्होंने अनेक तर्क, प्रमाण, सिद्धान्त और दृष्टिकोणों से उसे यह भी भलीं प्रकार समझा दिया कि कष्ट न देने मात्र को अहिंसा नहीं कहते, दुष्टों, दुराचारियों, अन्यायी, अत्याचारियों को, पापी और पाजियों को मार डालना भी अहिंसा है । जिस हिंसा से अहिंसा का जन्म होता, जिस लड़ाई से शान्ति की स्थापना होती है, जिस पाप से पुण्य का उद्भव होता है, उसमें कुछ भी अनुचित या अधर्म नहीं है ।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा इस मोटी बुद्धि को छोड़ और सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर, अहिंसा की प्रतिष्ठा इसलिए नहीं है कि उससे किसी जीव का कष्ट कम होता है, कष्ट होना न होना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है, क्योंकि शरीरों का तो नित्य ही नाश होता है और आत्मा अमर है, इसलिए मारने न मारने में हिंसा-अहिंसा नहीं है । अहिंसा का तात्पर्य है 'द्वेष रहित होना' । निजी राग द्वेष से प्रेरित होकर संसार के हित-अनहित का विचार किए बिना जो कार्य किए जाते हैं वे हिंसा पूर्ण हैं । यदि लोक कल्याण के लिए, धर्म की वृद्धि के लिए किसी को मारना पड़े या हिंसा करनी पड़े तो उसमें दोष नहीं है । अर्जुन ने भगवान के वचनों का भली प्रकार मनन किया और जब उसकी समझ में अहिंसा का वास्तविक तात्पर्य आ गया तो महाभारत में जुट पड़ा । अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ तो भी अर्जुन को कुछ पाप न लगा ।

एक आप्त वचन है कि—"वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति" अर्थात् विवेकपूर्वक की हुई हिंसा, हिंसा नहीं है । जिह्वा की चाटुकारिता के लोभ में निरपराध और उपयोगी पशु-पक्षियों का माँस खाने के लिए उनकी गरदन पर छुरी चलाना पातक है । अपने अनुचित स्वार्थ की साधना के लिए निर्दोष व्यक्तियों को दुःख देना हिंसा है । किन्तु निःस्वार्थ भाव से लोक-कल्याण के लिए तथा उसी प्राणी के उपकार के लिए यदि उसे कष्ट दिया जाय तो वह हिंसा नहीं वरन् अहिंसा ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगी । डॉक्टर निःस्वार्थ भाव से रोगी की वास्तविक सेवा के लिए फोड़े को चीरता है, एक न्यायमूर्ति जज समाज की व्यवस्था कायम रखने के लिए डाकू को फाँसी की सजा का हुक्म देता है, एक धर्म प्रचारक अपने जिज्ञासु साधक को आत्म-कल्याण के लिए तपस्या के कष्टकर मार्ग में प्रवृत्त करता है । मोटी दृष्टि से देखा जाय तो वह सब हिंसा जैसा प्रतीत होता है पर असल में वह सच्ची अहिंसा है। गुण्डे बदमाशों को क्षमा कर देने वाला, हरामखोरों को दान देने वाला, दुष्टता को सहन करने वाला, देखने में अहिंसक सा प्रतीत होता है पर असल में वह घोर पातकी, हिंसक, हत्यारा है । क्योंकि बुजदिली और हीनता को अहिंसा की टट्टी में छिपता हुआ, अप्रत्यक्ष रूप से पाजीपन की मदद करता है, एक प्रकार से अनजाने में दुष्टता की जहरीली बेल को सींचकर दुनिया के लिए प्राण घातक फल उत्पन्न करने में सहायक बनता है, ऐसी अहिंसा को जड़ बुद्धि अज्ञानी ही अहिंसा कह सकते हैं ।

पातंजलि योग दर्शन के पाद २ सूत्र ३५ में कहा गया है कि—"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैर त्यागः" अर्थात् अहिंसा की साधना से उस योगी के निकट—मन में से बैर भाव निकल जाता है । बैर-भाव, द्वेष, प्रतिशोध की दृष्टि से किसी के चित्त को दुःखाना या शरीर को कष्ट देना सर्वथा अनुचित है, इस हिंसा से सावधानी के साथ बचना चाहिए । अहिंसक का अर्थ है प्रेम का पुजारी, दुर्भावना से रहित । सद्भावना और विवेक बुद्धि से यदि किसी को कष्ट देना आवश्यक जान पड़े तो अहिंसा की मर्यादा के अन्तर्गत उसकी गुंजायश है । अहिंसक को बैर-भाव छोड़ना होता है, क्रोध पर काबू करना होता है, निजी हानि-लाभ की अपेक्षा कुछ ऊँचा उठना पड़ता है, उदार, निष्पक्ष और न्यायमूर्ति बनना पड़ता है, तब उस दृष्टिकोण से जो भी निर्णय किया जाय वह अहिंसा ही होगी । परमार्थ के लिए की हुई हिंसा को किसी भी प्रकार अहिंसा से कम नहीं ठहराया जा सकता ।

महात्मा गाँधी का कथन है कि—"अहिंसा से हम जगत् को मित्र बनाना सीखते हैं, ईश्वर की—सत्य की महिमा अधिकाधिक जान पड़ती है, संकट सहते हुए भी शांति और सुख में वृद्धि होती है, हमारा साहस-हिम्मत बढ़ती है । हम कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार सीखते हैं । अभिमान दूर होता है, नम्रता बढ़ती है । परिग्रह सहज ही कम होता है और देह के अन्दर भरा हुआ मैल रोज कम होता जाता है ।" अहिंसा कायरों का नहीं वीरों का धर्म है । बैर त्याग कर, प्रेम भावना को, आत्मीयता को, प्रमुख स्थान देते हुए, बुराई का मुकाबला करना अहिंसा है । बहादुरी, निर्भीकता, स्पष्टता, सत्यनिष्ठा, इस हद तक बढ़ा लेना कि तीर तलवार उसके आगे तुच्छ जान पड़ें, अहिंसा की साधना है । शरीर की नश्वरता को समझते हुए, उसके न रहने का अवसर आने पर विचलित न होना अहिंसा है । अहिंसक की दृष्टि दूसरों को सुख देने की होती है, अधर्म और अज्ञान को हटाने से ही दुःख की निवृति और सुख की प्राप्ति हो सकती है । अहिंसा का पुजारी अपने और दूसरे के अधर्म और अज्ञान को हटाने का अविचल भाव से प्रबलतम प्रयत्न करता है जिससे सच्चा और स्थायी सुख प्राप्त हो, इस महान कार्य के लिए यदि अपने को या दूसरों को कुछ कष्ट सहना भी पड़े तो उसे उचित समझकर अहिंसक उसके लिए सदा तैयार ही रहता है ।

सत्य

मोटे तौर से जो बात जैसी सुनी है उसे वैसी ही कहना 'सत्य' कहा जाता है । किन्तु, सत्य की यह परिभाषा बहुत ही अपूर्ण और असमाधानकारक है । सत्य एक अत्यन्त विस्तीर्ण और व्यापक तत्व है । वह सृष्टि निर्माण के आधार स्तम्भों में सब से प्रधान है । सत्य भाषण उस महान सत्य का एक अत्यन्त छोटा अणु है, इतना छोटा जितना समुद्र के मुकाबले में पानी की एक बूँद ।

सत्य बोलना चाहिए, पर सत्य बोलने से पहले सत्य की व्यापकता और उसके तत्व ज्ञान को जान लेना चाहिए, क्योंकि देश, काल और पात्र के भेद से बात को तोड़-मरोड़ कर या अलंकारिक भाषा में कहना पड़ता है । धर्म ग्रन्थों में मामूली से कर्मकाण्ड के फल बहुत ही बढ़ा-चढ़ा कर लिखे गए हैं । जैसे गंगा स्नान से सात जन्मों के पाप नष्ट होना, व्रत, उपवास रखने से स्वर्ग मिलना, गौ दान से वैतरणी तर जाना, मूर्ति पूजा से मुक्ति प्राप्त होना, यह सब बातें तत्व ज्ञान दृष्टि से असत्य हैं, क्योंकि इन कर्मकाण्डों से मन में पवित्रता का संचार होना और बुद्धि का कर्म की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर झुकना तो समझ में आता है, पर यह समझ में नहीं आता कि इतनी सी मामूली क्रियाओं का इतना बड़ा फल कैसे हो सकता है ? यदि होता तो योग, यज्ञ और तप जैसे महान साधनों की क्या आवश्यकता रहती ? टके सेर मुक्ति का बाजार गर्म रहता । अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वह धर्म ग्रन्थ झूठे हैं ? क्या उन ग्रन्थों के रचयिता महानुभावों ने असत्य भाषण किया है ? नहीं उनके कथन में भी रत्ती भर झूठ नहीं है और न उन्होंने किसी स्वार्थ बुद्धि से असत्य भाषण किया है । उन्होंने एक विशेष श्रेणी के, अल्प बुद्धि के, अविश्वासी, आलसी और लालची व्यक्तियों को उनकी मनोभूमि परखते हुए एक खास तरीके से अलंकारिक भाषा में समझाया है । ऐसा करना अमुक श्रेणी के व्यक्तियों के लिए आवश्यक था, इसलिए धर्म ग्रन्थों का वह आदेश एक सीमा में सत्य ही है ।

बच्चे के फोड़े पर मरहम पट्टी करते हुए डॉक्टर उसे दिलासा देता है । बच्चे ! डरो मत, जरा भी तकलीफ न होगी । बच्चा उसकी बात पर विश्वास कर लेता है, किन्तु डॉक्टर की बात झूठी निकलती है । मरहम पट्टी के वक्त बच्चों को काफी तकलीफ होती है, वह सोचता है कि डॉक्टर झूठा है, उसने मेरे साथ असत्य भाषण किया परन्तु असल में वह झूठ बोलता नहीं है ।

अध्यापक बच्चों को पाठ पढ़ाते हैं, गणित सिखाते हैं, समझाने के लिए उन्हें ऐसे उदाहरण देने पड़ते हैं, जो अवास्तविक और असत्य होते हैं, फिर भी अध्यापक को झूठा नहीं कहा जाता ।

जिन्हें मानसिक रोग हो जाते हैं या भूत-प्रेत लगने का बहम हो जाता है, उनका तान्त्रिक या मनोवैज्ञानिक उपचार इस प्रकार करना पड़ता है जिससे पीड़ित का बहम निकल जाय । भूत लगने पर भूतहे ढंग से उसे अच्छा किया जाता है, यदि बहम बता दिया जाय तो रोगी का मन न भरेगा और उसका कष्ट न मिटेगा । तान्त्रिक और मनोविज्ञान के उपचार में प्रायः नब्बे फीसदी झूठ बोलकर रोगी को अच्छा करनां पड़ता है, परन्तु वह सब झूठ की श्रेणी में नहीं ठहराया जाता ।

राजनीति में अनेक बार झूठ को सच सिद्ध किया जाता है । दुष्टों से अपना बचाव करने के लिए झूठ बोला जा सकता है । दम्पत्ति अपने गुप्त सहवास को प्रकट नहीं करते । आर्थिक, व्यापारिक या अन्य ऐसे ही भेदों को प्रायः सच-सच नहीं बताया जाता ।

कई बार सत्य बोलना भी निषिद्ध होता है । काने को काना और लँगड़े को लँगड़ा कहकर सम्बोधन करना कोई सत्य भाषण थोड़े ही हैं । फौजी गुप्त भेदों को प्रकट कर देने वाला अथवा दुश्मन को अपने देश की सच्ची सूचना देने वाला भी अपराधी समझा जाता है और कानून से उसे कठोर सजा मिलती है । भागी हुई गाय का पता कसाई को बता देना क्या सत्य भाषण हुआ ?

इस प्रकार बोलने में ही सत्य को मर्यादित कर देना एक बहुत बड़ा भ्रम है, जिसमें अविवेकी व्यक्ति ही उलझे रह सकते हैं । सच तो यह है कि लोक-कल्याण के लिए देश, काल और पात्र का ध्यान रखते हुए नग्न सत्य की अपेक्षा अलंकारिक सत्य भाषण से ही काम लेना पड़ता है । जिस वचन से दूसरों की भलाई होती हो, सन्मार्ग के लिए प्रोत्साहन मिलता हो, वह सत्य है । कई बार हीन चरित्र वालों की झूठी प्रशंसा करने पर वे एक प्रकार की लोक लाज में बँध जाते हैं और सम्मोहन विद्या के अनुसार अपने को सचमुच प्रशंसनीय अनुभव करते हुए निश्चयपूर्वक प्रशंसा योग्य बन जाते हैं । ऐसा असत्य भाषण सत्य कहा जायेगा । किसी व्यक्ति के दोषों को खोल-खोल कर उससे कहा जाय तो वह अपने को निराश, पराजित और पतित अनुभव करता हुआ वैसा ही बन जाता है । ऐसा सत्य, असत्य से भी बढ़कर निन्दनीय है ।

भाषण सम्बन्धी सत्य की परिभाषा होनी चाहिए कि जिससे लोक-हित हो वह सत्य और जिससे अहित हो वह असत्य है । मित्र धर्म का विवेचन करती हुई रामायण उपदेश देती है कि—"गुण प्रकटै अवगुणहिं दुरावा" वहाँ दुराव को,असत्य को, धर्म माना गया है । आपका भाषण कितना सत्य है, कितना असत्य, इसकी परीक्षा इस कसौटी पर कीजिए कि इससे संसार का कितना हित और कितना अहित होता है ? सद्भावनाओं की उन्नति होती है या अवनति, सद्विचारों का विकास होता है या विनाश । पवित्र उद्देश्य के साथ निःस्वार्थ भाव से परोपकार के लिए बोला हुआ असत्य भी सत्य है और बुरी नीयत से, स्वार्थ के वशीभूत होकर पर पीड़ा के लिए बोला गया सत्य भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असत्य है । इस मर्म को भलीभाँति समझकर गिरह में बाँध लेना चाहिए ।

वास्तविक और व्यापक सत्य ऊँची वस्तु है । वह भाषण का नहीं, वरन् पहचानने का विषय है । समस्त तत्वज्ञानी उसी महान तत्व की अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार व्याख्या कर रहे हैं । विश्व की रंगस्थली, उसमें नाचने वाली कठपुतलियाँ, नचाने वाला तन्त्री तत्वतः क्या है, इसका उद्देश्य और कार्य-कारण क्या है, इस भूल-भुलैयों के खेल का दरवाजा कहाँ है, यह बाजीगरी विधा कहाँ से और क्योंकर संचालित होती है ? इसका मर्म जानना सत्य का शोध है । ईश्वर, जीव, प्रकृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके अपने को भ्रम-बन्धनों से बचाते हुए परम पद प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना मनुष्य जीवन का ध्रुव सत्य है । उसी सत्य के प्राप्त करने के लिए हमारा निरन्तर उद्योग होना चाहिए ।

भगवान वेद व्यास ने योगदर्शन २/३८ का भाष्य करते हुए सत्य की विवेचना इस प्रकार की है—

"परन्न स्वबोध संक्रान्तये वागुप्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता व प्रतिपत्ति बन्ध्या वा भवेदिति । एथा सर्वभूतोपकरार्थ प्रवृत्ता, न भूतोपघाताय । यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघात परैवस्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत् ।"

अर्थात्—'सत्य' वह है चाहे वह ठगी, भ्रम, प्रतिपत्ति बन्ध्या युक्त हो अथवा रहित । तो प्राणिमात्र के उपकारार्थ प्रयुक्त किया जाय न कि किसी प्राणी के अनिष्ट के लिए । यदि सत्यतापूर्वक कही गई यथार्थ बात से प्राणियों का अहित होता है—तो वह सत्य नहीं । प्रत्युत सत्याभाष ही है और ऐसा सत्य भाषण असत्य में परिणत होकर पाप कारक बन जाता है । जैसे कसाई के पूछने पर कि—गाय इधर गई है ? यदि 'हाँ' में उत्तर दिया जाय तो यह सत्य प्रतीत होने पर भी सत्य नहीं, प्रत्युत प्राणी घातक है । अन्य उपाय न रहने पर विवेकपूर्वक सत्कार्य के लिए असत्य भाषण करना भी सत्य ही है ।

महाभारत ने सत्य की मीमाँसा इस प्रकार की है—

"न तत्व वचन सत्यं, न तत्व वचनं मृषा ।
यद्भूत हितमत्यन्तम् तत्सत्यमिति कथ्यते ॥"

अर्थात्—बात को ज्यों की त्यों कह देना सत्य नहीं है और न बात को ज्यों की त्यों कह देना असत्य है । जिसमें प्राणियों का अधिक हित होता हो, वही 'सत्य' है ।

'सत्य' को वाणी का एक विशेषण बना देना उस महातत्व को अपमानित करना है । सत्य बोलना मामूली बात है जिसमें आवश्यकतानुसार हेर-फेर भी किया जा सकता है । सत्य को ढूँढ़ना, वास्तविकता का पता लगाना और जो-जो बात सच्ची प्रतीत हो उस पर प्राण देकर भी दृढ़ रहना, यह सत्य परायण है । 'यम' की दूसरी सीढ़ी 'सत्य बोलना' नहीं, सत्य परायण होना है । योग मार्ग के अभ्यासी को सत्यवादी होने की अपेक्षा सत्य परायण होने का साहस, निर्भीकता और ईमानदारी के साथ करना चाहिए ।

अस्तेय

'चोरी न करना' अस्तेय का यही संक्षिप्त अर्थ है, पराई चीज को बिना उसकी आज्ञा के गुप्त रूप से ले लेने को चोरी कहते हैं । दूसरे की कमाई का अनुचित रूप से अपहरण करना चोरी है, जिस वस्तु पर न्यायतः अपना स्वत्व नहीं है उसे उसके स्वामी की बिना जानकारी में या बलात्कारपूर्वक ले लेना स्तेय है, इससे बचना अस्तेय कहा जायेगा ।

'पराई चीज को बिना उसकी स्वीकृति के ले लेना' यह चोरी का मोटा अर्थ है । पशुओं का दूध, भेड़ के बाल, मक्खियों का शहद, यह पराई चीज भी हैं और उनकी स्वीकृति के बिना भी ली जाती हैं । पिता की कमाई हुई जायदाद पराई है यदि पिता न चाहते हों तो भी उनके बाद उस सम्पत्ति का अधिकार पुत्र को ही प्राप्त होगा । अपराधी से अदालत जुर्माना वसूल करती है, राज्याधिकारी आयकर, चुँगी आदि वसूल करते हैं, वह रकमें पराई हैं और मालिक इच्छापूर्वक भी नहीं देते तो भी वह चोरी नहीं है । (१) पराई चीज और (२) बिना आज्ञा इन दो ही तत्वों के आधार पर स्तेय और अस्तेय का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सकता । मान लीजिए कि कोई व्यक्ति दबाव के कारण किसी वस्तु को देने के लिए तैयार किया जाता है और वह लाचारी में आज्ञा दे देता है तो क्या वह अस्तेय हो गया ? कोई व्यक्ति अपने पास दूसरे की अमानत जमा किए हुए है किन्तु अब नीयत बिगड़ जाने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस पर अपनी मालिकी बताता है और असली मालिक को उसे लौटाने से इन्कार करता है, क्या उससे वह अमानत बलपूर्वक न लौटानी चाहिए । क्या वर्तमान समय में पराई चीज दिखाई पड़ने के कारण और बेइमानी से आज्ञा न मिलने के कारण उस अमानत को छोड़ बैठना चाहिए ?

मोटे तौर पर स्तेय और अस्तेय की विवेचना करने पर बहुत भ्रम हो सकता है । बहुत बार ऐसा होता है कि वह वस्तु पराई भी नहीं है और आज्ञा का भी प्रश्न नहीं उठता तो भी वह चोरी हो जाती है । जैसे एक दुकानदार अपने बाँट कम रखता है, पलड़ों में पासंग रखता है या कम तोलता है, दुकान में रखी हुई चीजें पराई नहीं हैं और उनमें से इतनी निकाल लेने या कम देने के लिए किसी से आज्ञा लेने की भी जरूरत नहीं है । सेर भर (१ सेर = ९३३ ग्राम) के स्थान पर उसने पन्द्रह छटाँक (१ छटाँक = ५८ ग्राम) चीज दी, वह एक छटांक जो बचाया गया है, शाब्दिक परिभाषा के अनुसार वह चोरी में शुमार नहीं होता तो भी वास्तव में वह चोरी ही है । दर्जी लोग सिलाई में कपड़ा बचाते हैं, धोबी कपड़ों को कई दिन घसीटकर पहनते हैं, चक्की वाले आटा बचाते हैं, नौकर आठ पैसे की चीज मँगाने पर सात पैसे की लाकर देते हैं, असली मालिक को इन चोरियों का पता नहीं लग पाता, इस ओर अधिक ध्यान भी नहीं जाता तो भी इनकी गणना चोरी में ही होगी, मालिक को अपनी हानि का पता न चले और गुप्त या अप्रत्यक्ष रूप से कोई चुपके-चुपके कुछ करता रहे तो भले ही वह प्रकट न होने पाये पर होगी वह चोरी ही ।

कर्तव्य की चोरी अपने ढंग की बड़ी गर्हित चोरी है । मजदूरी तय करके जितना समय या जैसा काम करने का ठहराव किया गया है उसमें कमी करना, आलस्य करना, जी चुराना, बेगार भुगतना आजकल मामूली बात हो गई है पर यह ठीक वैसी ही चोरी है जैसे किसी का ताला तोड़कर माल असबाब ले जाना । विश्वासनीय गुप्त कार्य को करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर उसका भेद प्रकट कर देना, किसी की कृति को अपनी कृति बनाना, अनाधिकार चेष्टा करना चोरी है । अपने फर्जों को अदा न करना, आश्रितों की उपेक्षा करके स्वयं विशेष सुविधाएँ भोगना, यह भी उसी सीमा में आता है जैसे—बच्चों से छिपाकर कोई चीज खाते हैं । पड़ी हुई चीज मिले तो उसके मालिक की तलाश कर उस तक पहुँचानी चाहिए, सब पर प्रकट कर देना चाहिए या मालिक का पता न चले तो अधिकारी संस्था को सौंप देना चाहिए । यदि ऐसा न किया जाय और वह वस्तु अपने पास चुपचाप रखली जाय तो वह भी चोरी है, न करने योग्य कार्य के लिए, अग्राह्य वस्तु के लिए, मन ही मन ललचाना, इसी श्रेणी का कार्य है । अपना नियत कर्तव्य करने के बदले में पुरस्कार माँगना, न करने योग्य कार्य को करने के लिए भेंट लेना यह दोनों प्रकार की रिश्वतें चोरी ही तो हैं । रिश्वतों का किस कदर बाजार गर्म है यह किसी से छिपा नहीं है, जिसको जिस काम के लिए नियत किया गया है वह उसी काम को करने के लिए अपना 'हक' माँगता है, रिश्वत 'हक' कहलाने लगी है । यह किसी विशेष कृपा के लिए नहीं वरन् ठीक तरह भलमनसाहत से काम पूरा कर देने के लिए 'हक' माँगा जाता है यदि न दिया जाय तो ऐसी अड़चनें डाली जाती हैं जिनको सहन करना मध्यमवृत्ति के मनुष्य के लिए बड़ा कठिन होता है । अधिक 'हक' देने पर तो न करने योग्य कामों को हँसी खुशी से कर देते हैं । जिन लोगों से न्याय और सद्व्यवहार की आशा की जानी चाहिए वहाँ रिश्वत ने 'हक' का रूप धारण कर लिया है, चोरी को सीनाजोरी की जुर्रत हो गई है । यह हरकतें अब बन्द होनी चाहिए ।

अस्तेय का वास्तविक तात्पर्य है—"अपना वास्तविक हक खाना" धर्म पूर्वक जो वस्तु जितनी मात्रा में अपने को मिलनी चाहिए उसे उतनी ही मात्रा में लाना, पूरा एवज चुकाकर किसी वस्तु को ग्रहण करने का ध्यान रखा जाय तो चोरी से सहज ही छुटकारा मिल सकता है । जो कुछ आपको मिल रहा है उसके बारे में विचार कीजिए कि क्या वास्तव में इस वस्तु पर मेरा धर्म पूर्वक हक है ? किसी दूसरे का भाग तो नहीं खा रहा हूँ ? जितना मुझे मिलना चाहिए उससे अधिक तो नहीं ले रहा हूँ ? अपने कर्तव्य में कमी तो नहीं कर रहा हूँ ? जिनको देना चाहिए उनको दिए बिना तो नहीं ले रहा हूँ ? इन पाँच-प्रश्नों की कसौटी पर यदि अपनी प्राप्त वस्तु को कस लिया जाय तो यह मालूम हो सकता है कि इसमें चोरी तो नहीं है या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चोरी का कितना अंश है । किसी का ताला तोड़कर या जेब काटकर कुछ ले लेना तो चोरी है ही, साथ ही कर्तव्य में त्रुटि रखना और हक से अधिक लेना भी चोरी है । इन चोरियों से बचते हुए अपनी पसीने की कमाई पर निर्भर रहना चाहिए ।

स्वयं चोरी से बचना तो आवश्यक है ही, साथ ही दूसरों को भी बचाना चाहिए, कम से कम चोरी में सहयोग करना तो बन्द कर ही देना चाहिए । रिश्वत देकर यदि कोई काम बनता हो, लाभ होता हो और न देने से हानि हो तो उस हानि को ही सहन करना चाहिए, क्योंकि पशु हत्या में जैसे काटने वाले, बेचने वाले, खाने वाले, पकाने वाले सबको पाप लगता है वैसे ही चोरी के काम में किसी प्रकार मदद करने या चोर की हिम्मत बढ़ने देने से अपने को भी पाप का भागी होना पड़ता है । यदि अपना या किसी दूसरे का हक कोई दुष्ट दुरात्मा बलात्कारपूर्वक अपहरण करता हो तो उसके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए ताकि विश्व परिवार में से चोरी और अनीति की थोड़ी-बहुत मात्रा कम हो । स्वयं चोरी न करना और न दूसरों को करने देना यह एक ही अस्तेय धर्म के दो अंग हैं, योग मार्ग के साधक को दोनों ओर उसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए जैसे साइकिल चलाने वाला दोनों पैरों को समान रूप से घुमाता है ।

ब्रह्मचर्य

आमतौर से ब्रह्मचर्य का अर्थ 'वीर्य पात न करना' समझा जाता है । जो व्यक्ति स्त्री सम्पर्क से बचते हैं, उन्हें ब्रह्मचारी कहा जाता है । यह आधा अर्थ हुआ, आधा अभी शेष है । ब्रह्म का अर्थ है "परमात्मा में आचरण करना" जीवन लक्ष में तन्मय हो जाना, सत्य की शोध में सब ओर चित्त हटाकर जुट पड़ना, ब्रह्म का ही आचरण है । इसके साधनों में 'वीर्यपात न करना' भी एक है ।

महात्मा गाँधी ने इस सम्बन्ध में बहुत ही उत्तम कहा है—"ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ सब याद रखें । ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की—सत्य की शोध में चर्या अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार । इस मूल अर्थ से सर्वेइन्द्रिय संयम का विशेष अर्थ निकलता है सिर्फ जननेन्द्रिय संयम के अधूरे अर्थ को तो हम भुला ही दें । जननेन्द्रिय निरोध को ही ब्रह्मचर्य का पालन माना गया है । मेरी राय में यह अधूरी और खोटी व्याख्या है । विषय मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है । जो और इन्द्रियों को जहाँ तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है । कान से विकार की बातें सुनना, आँख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथ से विकारों को भड़काने वाली चीज को छूना और साथ ही जननेन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान हुआ । इसीलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे उसे पहले ही से प्रत्येक इन्द्रिय को उन इन्द्रियों के विकारों से रोकने का निश्चय कर ही लिया जाना चाहिए । मैंने सदा से यह अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुकसान हुआ है । मेरा तो यह निश्चित मत है और अनुभव है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में कर लें तो जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है, तभी उसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है । इसमें मुख्य स्वाद इन्द्रिय है । मेरा अपना अनुभव तो यह है कि यदि अस्वाद व्रत का भलीभाँति पालन किया जाय तो जननेन्द्रिय का संयम बिल्कुल आसान हो जाय । स्वाद की दृष्टि से किसी वस्तु को न खाकर आवश्यकता के विचार से लेना अस्वाद है ।"

ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और काया से होना चाहिए । हमने गीता में पढ़ा है कि जो शरीर को काबू में रखता हुआ जान पड़ता है पर मन से विकार का पोषण किया करता है वह मूढ़, मिथ्याचारी है । मन को विकारपूर्ण रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर है । जहाँ मन है वहाँ अन्त को शरीर भी घिसटे बिना नहीं रहता । यहाँ एक भेद समझ लेना जरूरी है । मन को विकार वश होने देना एक बात है और मन का अपने आप अनिच्छा से बलात् विकार को प्राप्त होना या होते रहना दूसरी बात है । इस विकार में यदि हम सहायक न बनें तो आखिर जीत हमारी ही है । हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि शरीर तो काबू में रहता है पर मन नहीं रहता । इसलिए शरीर को तुरन्त ही वश में करके मन को वश में करने की रोज कोशिश करने से हम अपने कर्तव्य का पालन करते हैं—कर चुकते हैं । वीर्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उपयोग तो शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाने में है । विषय भोग में उसका उपयोग करना, उसका अति दुरुपयोग है, इसके कारण वह कई रोगों का मूल बन जाता है ।

जीवनोद्देश्य की पूर्ति में, सत्कर्मों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने के प्रयत्न में, ब्रह्म भावना की चर्या में तन्मयता प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का संयम अत्यन्त आवश्यक है । जिसकी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में दौड़ी फिरती हैं, उसका चित्त एक स्थान पर ठहर नहीं सकता और न उच्च उद्देश्यों में दिलचस्पी ले सकता है । दीर्घ जीवन, निरोगता, शरीर की पुष्टता, सुडौलता, बलबुद्धि, तेज, बुद्धि की प्रखरता आदि शारीरिक लाभों की नीव इन्द्रिय संयम के ऊपर रखी होती है, शक्तियों का खर्च भोगों में न होगा तो उसके द्वारा शरीर और मस्तिष्क बलवान हो सकेगा अन्यथा जिस प्रकार फूटे हुए दीपक में से तेल चुचाता रहता है तो वह अधिक समय तक अधिक प्रकाश के साथ न जल सकेगा, जिस वृक्ष की जड़ों में कीड़े या दीमक लग रहे हों वह निर्बल और अल्पजीवी ही होगा यही बात मनुष्य की है । असंयम के कारण इन्द्रिय भोगों में जिसकी शक्ति अधिक मात्रा में खर्च होती रहती है, वह न तो शरीरिक दृष्टि से निरोग, बलवान एवं दीर्घजीवी हो सकता है और न मानसिक दृष्टि से ही मेधावी, मनस्वी एवं प्रभावशाली हो सकता है, फिर ब्रह्म के आचरण में रत होना तो दूर की बात है ।

इन्द्रिय संयम का तात्पर्य है, विवेक के साथ मर्यादा के अन्तर्गत इन्द्रियों का उपयोग होना । इन्द्रियों के आधीन अपने को इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि भोगेच्छा को रोका न जा सके या रोकने में बहुत विरोध या क्लेष सहना पड़े । इस प्रकार के संयम की आदत डालनी चाहिए कि इन्द्रियों की इच्छा को जब चाहे तब आसानी से रोक सकें और भोग सामने हो तो भी उसे छोड़ सकें । कहने को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं पर वास्तव में दो का ही संयम करना है । नाक, कान,. आँख के भोग तो कभी-कभी और कम मात्रा में मिलते हैं, इसलिए उनकी अधिक चाट नहीं होती और न उनमें इतनी प्रबलता ही होती है । जिन पर काबू पाना है, वह हैं—स्वाद और कामवासना । जीभ के चटोरपन की प्रेरणा से किसी भी वस्तु को खाने से इन्कार कर देना चाहिए । चटपटे, मीठे, खारी, खट्टे, चिकने पदार्थों को देखकर चटोरे मनुष्यों के मुँह में पानी भर आता है, इस वृत्ति को रोकना चाहिए । जब इस प्रकार मन चल रहा हो तो हठात् उस वस्तु को न खाने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए और दृढ़तापूर्वक उसका पालन करना चाहिए । कुछ समय के लिए बीच-बीच में कुछ समय तक नमक और मीठा छोड़ने का प्रयोग करते रहना चाहिए जो वस्तु आवश्यक और लाभदायक हो उसे स्वाद रहित होते हुए भी सेवन करना चाहिए । इसी प्रकार गृहस्थ होते हुए भी कभी-कभी कुछ समय के लिए ब्रह्मचर्य से रहने के व्रत उन्हें पूरा करते रहना चाहिए । अन्य स्त्रियों को बहिन या पुत्री की दृष्टि से देखना चाहिए । कुदृष्टि के उत्पन्न होते ही अपना एक कान ऐंठ कर अपने आप जोर से चपत लगानी चाहिए । गन्दी पुस्तकों से, तस्वीरों से और संगीत से बचना चाहिए । इस प्रकार धीरे-धीरे स्वाद और कामवासना पर विजय प्राप्त की जा सकती है । किसी बात को पूरा करने के लिए मनुष्य दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाय और प्रयत्न बराबर जारी रखे तो कोई कारण नहीं कि उसमें सफलता प्राप्त न हो ।

यह नहीं कहा जाता कि स्वादिष्ट पदार्थों का खाना बिल्कुल छोड़ ही देना चाहिए या गृहस्थ होते हुए भी वीर्यपात न करने की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए । कुछ विशेष व्यक्तियों को छोड़कर सब के लिए न तो यह आवश्यक है और न लाभप्रद ही । साधारणतः स्वादिष्ट, सात्विक एवं सुरुचिपूर्ण भोजन करना शरीर को पुष्ट करता है और मर्यादा के अन्तर्गत, स्वस्थ मनस दोनों ही पक्षों की स्वाभाविक तीव्र उत्तेजना होने पर काम सेवन के मानसिक तत्वों को उत्साहित करता है, अति का निषेध है, कच्ची आयु में वीर्यपात का निषेध है, दिमागी ऐयाशी का निषेध है, इनसे बचना चाहिए । जहाँ तक हो सके कम अवसर भोग के काम आने देना चाहिए और अधिक अवसर संयम के लिए देना चाहिए । मन को भोगों की ओर से हटा लेना चाहिए अर्थात् अपनी भोग इच्छाओं पर काबू पा लेना चाहिए, ताकि वे अपने को विवश न कर सकें वरन् विवेक की आज्ञानुसार कार्य करें, ब्रह्म में आचरण करने के लिए, दिव्य तत्व में चेतना को डुबाये रहने के लिए, इन्द्रिय संयम की आवश्यकता है इसीलिए वीर्यपात में संयम रखने को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य कहा गया है, अन्य इन्द्रियों का संयम भी इसी का एक भाग है ।

अपरिग्रह

अपरिग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी लिखते हैं—"अपरिग्रह का सम्बन्ध अस्तेय से है । जो चीज मूल में चोरी की नहीं है पर अनावश्यक है, उसका संग्रह करने से वह चोरी की चीज के समान हो जाती है । परिग्रह का मतलब संचय या इकट्ठा करना है । यदि हम परमात्मा पर विश्वास रखें तो जानेंगे कि वह हमें हमारी जरूरत की जीचें रोज-रोज देता है और देगा । प्रतिदिन की आवश्यकता के अनुसार ही प्रतिदिन पैदा करने के ईश्वरीय नियम को हम जानते नहीं अथवा जानते हुए भी पालते नहीं, इससे जगत में विषमता और तज्जन्य दुःखों का अनुभव करते हैं । धनवान के घर, उसके लिए अनावश्यक अनेक चीज भरी रहती हैं, मारी-मारी फिरती हैं, बिगड़ जाती हैं । जब कि उन्हीं चीजों से अभाव में करोड़ों दर-दर भटकते हैं, भूखों मरते हैं और जाड़े में ठिठुरते हैं । यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें तो किसी को तंगी न हो और सब सन्तोष से रहें । आज तो दोनों तंगी का अनुभव करते हैं । करोड़पति, अरबपति होने की कोशिश करता है तो भी उसे सन्तोष नहीं रहता, कंगाल करोड़पति बनना चाहता है । कंगाल को पेट भर मिल जाने से ही सन्तोष नहीं पाया जाता परन्तु कंगाल को पेट भर पाने का हक है और समाज का धर्म है कि वह उसे उतना प्राप्त करादे । अतः उसके और अपने सन्तोष की खातिर पहले धनाढ्य को पहल करनी चाहिए, वह अपना अत्यन्त परिग्रह छोड़े तो कंगाल को पेट भर सहज ही मिलने लगे और दोनों पक्ष सन्तोष का सबक सीखें ।

हम नित्य अपने परिग्रह की जाँच करते रहें और जैसे बने वैसे उसे घटाते रहें । सच्ची संस्कृति-सुधार और सभ्यता का लक्षण परिग्रह की वृद्धि नहीं, बल्कि विचार और इच्छापूर्वक उसकी कमी है । जैसे-जैसे परिग्रह करते हैं, वैसे-वैसे सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है । सेवा क्षमता बढ़ती है । हम बहुतेरा ऐसा संग्रह करते हैं जिसकी आवश्यकता सिद्ध नहीं कर सकते । फलतः ऐसे अनावश्यक परिग्रह से हम पड़ौसी की चोरी करने के लिए ललचाते हैं । पर अभ्यास द्वारा आदमी अपनी आवश्यकताओं को कम कर सकता है और जैसे-जैसे कम करता जाता है, वैसे-वैसे वह सुखी और सब तरह आरोग्यवान बनता है । यहाँ यह याद रहे कि वस्तु की भाँति ही विचार का भी परिग्रह न होना चाहिए जो मनुष्य अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान ठूँस रखता है, वह परिग्रही है । जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते हैं या ईश्वर की ओर नहीं ले जाते वे सब परिग्रह में शुमार हैं, इसलिए त्याज्य हैं । आज जो बहुतेरा ज्ञान के नाम से संग्रह करते हैं, वह अज्ञान ही है, और इसलिए उससे लाभ के बदले हानि होती है, दिमाग फिर जाता है और अन्त में खाली हो जाता है । असन्तोष बढ़ता है और अनर्थों की वृद्धि होती है । इससे कोई उद्यमहीनता का अर्थ न निकाले । हमारा प्रत्येक क्षण प्रवृत्ति होना चाहिए परन्तु वह प्रवृत्ति सात्विक हो, सत्य की ओर ले जाने वाली हो । जिसने सेवा धर्म को स्वीकार किया है, वह एक क्षण भी कर्महीन नहीं रह सकता ।

मिट्टी का एक ऊँचा चबूतरा बनाना चाहें तो दूसरे स्थानों पर उतना ही नीचा गड्ढा हो जायेगा । ईश्वर ने इस सृष्टि में इतनी वस्तु उपस्थित की है कि सब लोग अपनी आवश्यकता भर लें और साधारणतः सुविधापूर्वक जीवन बिताते चलें परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुएँ इकट्ठी करता है तो स्पष्ट है कि दूसरों को उसका अभाव सहन करना पड़ेगा । अमीर लोग अपने नीचे बहुत बड़ी सम्पत्ति दबा कर बैठ जाते हैं तो असंख्य गरीबों को दुःख दारिद्र सहने के लिए विबश होना पड़ता है । साधारणतः देखने में परिग्रह कुछ बुरी बात नहीं मालूम पड़ती क्योंकि अपनी चतुरता के द्वारा ही तो वह धन कमाया गया है और अपनी कमाई रखने में क्या दोष है ? इस समस्या की गहराई में उतरने पर मालूम होता है कि चतुराई का उपयोग दूसरों की सुख वृद्धि तथा आत्मोन्नति के लिए है यदि किसी में अधिक चतुराई है तो इसका उपयोग उसे इसी मार्ग में करना चाहिए, अन्धाधुन्ध सम्पत्ति जमा करते जाने में चतुराई है, खर्च करना एक प्रकार का बुद्धि व्यभिचार है । शरीर स्त्री का अपना है वह उसका मनचाहा उपयोग कर सकती है, पर यदि वह वेश्यावृत्ति ग्रहण करे तो निश्चय ही पाप की भागी होगी क्योंकि शरीर उसका अपना भले

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही है पर उसका उपयोग निषिद्ध मार्ग में करना अनुचित है । इसी प्रकार जो अधिक बुद्धिमान हैं, उन्हें उसके द्वारा संसार के दुःखों में कमी और सुखों में वृद्धि करने का प्रयत्न करना चाहिए न कि धन संचय द्वारा उल्टा आचरण करें ।

पूँजी एक जगह रुक जाने से दूसरों की उन्नति के मार्ग बन्द हो जाते हैं । अमीर को ऐश उड़ाते देखकर गरीबों के मुँह में पानी आ जाता है, स्वाभाविक रीति से उतना कमाना तो सम्भव नहीं इसलिए उनमें असन्तोष बढ़ता है । फलतः ईर्ष्या, जलन, चोरी, कलह, संघर्ष आदि की उत्पत्ति होती है और समाज की सुख-शान्ति नष्ट होती है । गरीब को अभाव के दुःखों का दुःख, अमीर को चोर और शस्त्रुओं का भय, चैन दोनों में से एक को भी नहीं मिलता । गरीब भूख के मारे पाप करने को तैयार होता है, अमीर पैसे की इफरात से इतरा कर अनीति बरतता है, इन सारी गड़बड़ियों का पता परिग्रह है । यदि अपनी आवश्यकता भर ही लेने का संग्रह करने का सब लोग ध्यान रखें तो सहज ही विश्वव्यापी अनीति और अशान्ति का अन्त हो सकता है ।

जिसके पास विपुल धन-धान्य है, उस फालतू पैसे को सत्कर्मों के लिए दान करते रहना चाहिए । कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि पैसे की इफरत से जो अहंकार उत्पन्न होता है और अनीति की ओर पैर बढ़ता है, उसे रोके । फालतू पैसे को साथ-साथ आने वाले फिजूल खर्ची, अहमन्यता, धृष्टता फैशन, दुर्व्यसन, प्रमाद, खुशामद पसन्दगी, अविवेक आदि दुर्गुणों से विशेष रूप से सावधान रहें जहाँ तक सम्भव हो उनसे बचता रहे । सम्पत्ति का अपने को ट्रस्टी समझकर उसकी रक्षा कराने और उसका उपयोग उचित मार्ग में करने की दृष्टि रखकर धनीमानी लोग किसी कदर अपरिग्रह का पालन कर सकते हैं ।

बादशाह नासिरुद्दीन का जीवन चरित्र जिन्होंने पढ़ा है वे जानते हैं कि यह बादशाह बहुत बड़े राज्य का मालिक था और उसके खजाने अशर्फियों और जवाहरातों से भरे थे तो भी वह उसे प्रजा की सम्पत्ति समझता था और खुद टोपियाँ सींकर तथा पुस्तक लिख कर कमाता तथा उससे अपना गुजारा करता था । एक बार रसोई बनाने में उनकी बेगम का हाथ जल गया तो बेगम ने डरते-डरते एक लौंडी (नौकर) रख देने की प्रार्थना की पर नासिरुद्दीन ने स्पष्ट कह दिया कि प्रजा की अमानत में से मुझे कुछ भी पैसा खर्च करने का अधिकार नहीं है और मेरी निजी आमदनी इतनी नहीं है कि उसमें से एक नौकरानी रखी जा सके । इस आदर्श को निबाहते हुए अमीर लोग अपरिग्रह का पालन भी कर सकते हैं और सम्पत्ति को सुरक्षित भी रख सकते हैं । निजी खर्च के लिए शारीरिक परिश्रम द्वारा कुछ कामना और संचित पूँजी द्वारा होने वाली आमदनी श्रेष्ठ कर्मों में लगाते चलना, यह एक सरल तरीका है जिस पर चल कर अमीर लोग भी अपरिग्रही बन सकते हैं ।

गरीबों को जीवनोपयोगी जरूरी चीजें जुटानी चाहिए, साधारण जरूरतें पूरी हो जाने के बाद अपरिग्रह की भौतिक मर्यादा आरम्भ होती है । मन से हर एक को सदैव अपरिग्रही होना चाहिए । आदर्श यही सामने रहना चाहिए कि सच्ची जरूरतें पूरी करने के लिए ही कमाते हैं । जोड़ने, जमा करने या ऐश उड़ाने के लिए नहीं । यदि गरीब आदमी लखपती बनने के मनसूबे बाँधता है तो वह परिग्रही है । धन वैभव के बारे में यही आदर्श निश्चित किया होना चाहिए कि सच्ची जरूरतों की पूर्ति के लिए कमायेंगे, उतनी ही इच्छा करेंगे, उससे अधिक संग्रह न करेंगे । धन को जीवन का उद्देश्य नहीं वरन् एक साधन बनाना चाहिए । आत्मोन्नति और परमार्थ के जीवनोद्देश्य तो यही हैं, जीवन धारण करने योग्य पैसा कमाने के अतिरिक्त शेष समय इन्हीं कार्यों में लगाना चाहिए । पैसे की आज जो सर्वभक्षी तृष्णा हर एक के मन में दावानल की तरह धधक रही है, यह सर्वथा त्याज्य है । सादगी और गरीबी में सच्चा आनन्द है । मनुष्य उतना ही सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है जितना अपरिग्रही होगा । परिग्रही के सिर पर तो अशान्ति और अनीति ही सवार रहती है । इसी मर्म को समझाते हुए योगशास्त्र के आचार्यों ने आध्यात्म पथ के पथिक को अपरिग्रही बनाने का कठोर आदेश किया है ।

पाँच-नियम

शौच

शौच का अर्थ है पवित्र । शरीर और मन दोनों की पवित्रता से वास्तविक अर्थ पूरा होता है । जब तक भीतर-बाहर गन्दगी भरी हुई है, मैल जमा है, तब तक अन्तःचेतना में ऐसी क्षमता उत्पन्न नहीं हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती जिसके द्वारा ब्रह्म विद्या को समझा जा सके, दिलचस्पी ली जा सके या प्रगति की जा सके । जो दर्पण स्वच्छ है उसी में प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । जो मन स्वच्छ है उसी पर परमात्मा का प्रकाश पड़ सकता है । स्वच्छ शरीर में ही स्वच्छ मन का वास हो सकता है, गन्दा शरीर रोगों का घर बना रहता है और रोगी शरीर में रहने वाला मन भी रोगी हो जाता है । इस प्रकार योग साधना की प्रारम्भिक योग्यता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम शरीर का और तदुपरान्त मन का स्वच्छ बनाना आवश्यक है ।

स्वास्थ्य शौच के ऊपर निर्भर है, बीमारियों का एक मात्र कारण अशौच है । हर घड़ी शरीर में मलीनता उत्पन्न होती रहती है इसलिए उसकी सफाई पर सावधानी के साथ ध्यान रखना चाहिए । पेट में जो मल उत्पन्न होता है, उसे नित्य दोनों समय त्यागना चाहिए । यह इतना आवश्यक है कि मल त्याग को ही "शौच जाना" कहा जाने लगा है । पेट साफ रहे तो कोई भी रोग न हो, आयुर्वेद का मत है कि—"सर्वथा मेव रोगाणां निदानं कुपिता मला ।" अर्थात् सब रोगों का निदान मल का कुपित होना है । पेट में अपच होना, दस्त साफ न होना, बीमारियों का मूल कारण है, इसलिए आहार-विहार इस प्रकार रखना चाहिए कि पेट में कब्ज न होने पावे और मल त्याग में बाधा न पड़े ।

एक आप्त वचन है कि—"जल से शरीर की और सत्य से मन की शुद्धि होती है ।" नित्य शरीर को खूब रगड़-रगड़ कर काफी जल से स्नान करना चाहिए, सिर पर दो लोटे पानी लुढ़का लेने या शरीर को पानी में भिगो लेने से स्नान की आवश्यकता पूरी नहीं होती है, इससे तो देह पर जमा हुआ मैल गीला होकर फूलता है और सड़ने लगता है । स्नान के समय किसी मोटे खुरदरे कपड़े को इतना रगड़ना चाहिए कि चमड़ी लाल हो जाय, पसीना सूखकर मैल की एक हल्की-सी तह जम जाती है वह बिल्कुल छूट जाय और रोम कूप भली प्रकार खुल जायें । नौ बड़े छेद इस शरीर में हैं उनमें से मल निकलते रहते हैं, इसलिए नित्य प्रति उसकी सफाई भी जल से करनी चाहिए । मल-मूत्र की इन्द्रियाँ शौच जाने और स्नान करने के समय भली प्रकार साफ करनी चाहिए । कान, आँख, नाक के छिद्रों को भी स्वच्छ करना चाहिए जिससे कि वहाँ की गन्दगी साफ हो जाय । मुँह की सफाई का अत्याधिक महत्त्व है क्योंकि इसी छेद से अन्न-जल पेट में जाता है यदि यहाँ गन्दगी रहे तो पेट में जाने वाले अन्न-जल भी गन्दे हो जायेंगे और रोग उत्पन्न करेंगे । दातौन या मंजन से दाँतों को आगे और पीछे की ओर से रगड़-रगड़ कर साफ करना चाहिए, जबान के ऊपर मैल की एक सतह-सी जमती है उसे छुड़ाना चाहिए, मुँह में काफी पानी भर कर खलखला कर कुल्ले करने चाहिए । बालों की तेल-साबुन से सफाई करनी चाहिए जिससे उनकी जड़ों में मैल या जुयें आदि न होने पावें । तात्पर्य यह कि शरीर के हर एक भाग को कम से कम एकबार तो नित्य ही साफ कर डालना चाहिए ।

शरीर के बाद वस्त्रों का नम्बर है । कपड़े कम हों, मोटे हों, सस्ते हों, फट जाने पर सिल लिए गए हों तो कुछ हर्ज नहीं, पर यदि मैला, अशुद्ध या गन्दा कपड़ा पहना जाय तो यही बड़ी लज्जा की बात है, मनुष्यता को शर्मिन्दा करने वाली बात है । धोबी की सुविधा न हो तो अपने हाथों द्वारा साबुन से, सोड़ा से या वैसा ही स्वच्छ जल से कपड़ों को धोकर धूप में सुखाते रहा जाय तो कपड़े निर्मल रह सकते हैं । पसीने की गन्ध आने से पहले कपड़े की सफाई हो जानी चाहिए ।

वस्त्रों की सफाई को देखकर मनुष्य की सुरुचि का पता लगाया जा सकता है । अपने प्रयोग की सभी चीजों की स्वच्छता आवश्यक है, पुस्तकें, मेज, कुर्सी, पलंग, बर्तन, फर्श, घर, छड़ी, छाता, हर एक चीज में सफाई, स्वच्छता, कला और सौन्दर्य की झलक दिखाई पड़नी चाहिए ।

निःसन्देह शरीर की सफाई का मन के ऊपर असाधारण असर पड़ता है । गन्दा आदमी गन्दे विचार करेगा, अपनी गन्दगी से शर्मिन्दा रहेगा और अपने को नीच कोटि का समझेगा, लोगों से अछूत की तरह बचता रहेगा कि मुझे देख कर कोई नाक भौं सकोड़ेगा, पास बिठाने से घृणा करेगा । किन्तु जिस मनुष्य का स्वभाव स्वच्छ रहने का है जिसकी सब वस्तुएँ साफ हैं, ऐसी झिझक उसके पास भी नहीं फटक सकती । अपनी स्वच्छ और सुरुचि के कारण वह उत्साहित, प्रसन्न और सन्तुष्ट रहेगा । शौच आत्म-सम्मान का एक हल्का तेज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके शरीर और वस्त्रों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ।

सफाई बहुत ही आवश्यक है, गन्दी चीजों से बचना अपना स्वभाव बना लेना चाहिए । अशुद्ध और अपवित्र वस्तुओं के सम्पर्क से पृथक रहना चाहिए । हमारे पूर्वज स्वच्छ रहने और अस्वच्छता का स्पर्श न करने के आदी थे, अब अज्ञान के कारण पूर्वजों की बातों का असली मन्तव्य भूलकर कुछ रूढ़ियों में अन्धविश्वास किया जाने लगा है । चौका-चूल्हे का जितना विचार होता है उसमें स्वच्छता नहीं वरन् रूढ़ि प्रधान है, इसी प्रकार अमुक जाति के मनुष्य को छूना अमुक को न छूना यह भी ऐसी ही परिपाटी है, वास्तव में यह छूत-छात, जाति-पाँति के लिहाज से नहीं वरन् स्वच्छता के लिहाज थी और अब भी वही दृष्टि रखना उचित है ।

मन की सफाई सत्य से होती है । निष्कपट व्यवहार और आत्मज्ञान की खोज में प्रवृत्ति रहने से दिन-दिन स्वच्छ होती जाती है । इन्द्रिय, निग्रह और स्वार्थ से स्वच्छता की वृत्ति बढ़ती है । दया, परोपकार, त्याग, करुणा, दान, सहानुभूति, सहायता, सद्भावना, क्षमा, प्रसन्नता, सत्यनिष्ठा, दृढ़ता, निःस्वार्थता आदि सद्गुणों से अन्तःकरण निर्मल होता चलता है, सात्विक आहार-विहार को अपनाने से सतोगुणी वृत्तियाँ बढ़ती हैं और तमोगुणी गन्दगी हटती जाती हैं, यह स्वच्छता जितनी ही स्पष्ट होती है उतनी ही योग साधना की योग्यता का विकास हो जाता है । नियमों में पहला नियम शौच है । जो सफाई का ध्यान नहीं रखता वह योग के पहले नियम की ही अवहेलना करता है ।

सन्तोष

'सम' उपसर्ग पूर्वक "तुष-प्रीतौ" धातु से सन्तोष शब्द बना है । प्राति शब्द का अर्थ है प्रसन्नता । अमर कोश के प्रथम काण्ड का काल वर्ग २४वाँ श्लोक देखिये—"मुत् प्रीतिः प्रमादो हर्षः प्रमोदामोद संमदाः ।" इससे स्पष्ट है कि सन्तोष का अर्थ प्रसन्नता, खुशी आनन्द हैं । जैसी भी भली-बुरी परिस्थिति सामने हो उसमें प्रसन्न रहना, सन्तोष का तात्पर्य है ।

आजकल सन्तोष का मतलब समझा जाता है, निठल्ले बैठे रहना, कूड़ा-कचरा खाना पर हाथ-पाँव न हिलाना, उद्योग न करना, पुरुषार्थ से इन्कार करना, पराश्रित रहना, कहीं से किसी प्रकार जो कुछ मिल जाय उसी में काम चला लेना, उन्नति का प्रयत्न न करना, भाग्य के भरोसे बैठे रहना, आपत्तियों के निवारण की कोशिश न करना । आमतौर से सन्तोष का यही अर्थ किया जाता है । अर्थ का अनर्थ करना है । योगशास्त्र, धर्म और अध्यात्म विज्ञान जब से हरामखोरों के गन्दे हाथों में पड़ा है । तब से उसकी ऐसी ही दुर्गति की गई है । घोर तामस में डूबे हुए अकर्मण्य और आलसी लोगों ने अपनी हीनता और नीचता को ब्रह्म विद्या की आड़ में छिपाने की इच्छा से उस महा विज्ञान की ही दुर्गति कर डाली । इसका एक उदाहरण सन्तोष सम्बन्धी अर्थ का अनर्थ हमारे सामने मौजूद है ।

उद्योग करना, प्रयत्न जारी रखने, निरन्तर ऊँचे चढ़ना, आगे बढ़ना और ऊँची परिस्थितियाँ प्राप्त करने की चेष्टा करना मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है, इसमें कोई भी सिद्धान्त या सूत्र आज तक बाधक नहीं हुआ और न आगे हो सकता, ईश्वरीय नियम में मनुष्य के बनाये हुए सिद्धान्त रुकावट नहीं डाल सकते । यदि सन्तोष के अनर्थ, पूर्ण भाव को अपनाया जाय तो दरिद्री, रोगी, पापी, अज्ञानी, अत्याचारी, दुःखी सब अपनी-अपनी दशा में ही पड़ा रहना होगा । स्वर्ग और मुक्ति, जो अत्यन्त पुरुषार्थ के फल हैं, उनका प्राप्त होना तो दूर साधारण जीवन का आनन्द लेना भी दुर्लभ हो जायेगा । अहदी और अपाहिजों की तरह वे "सन्तोषी" लोग ? अन्धकारपूर्ण तामसिक परिस्थितियों में पड़े-पड़े सड़ते रहेंगे ।

हमें असत् को छोड़कर सत् की ओर बढ़ना होगा । सन्तोष के झूँठे अनर्थ को छोड़कर सच्चे अर्थ को ग्रहण करना होगा । आनन्दित रहना, हर घड़ी प्रसन्न रहना, बुरी दुःखदायी परिस्थिति सामने हो तो भी खिन्न न होना, यही सन्तोष का सारांश है । हर हालत में प्रसन्न रहना, मुस्कराते रहना, प्रफुल्लित रहना एक ऐसा उच्च आध्यात्मिक गुण है जो पर्वत के समान विपत्ति को राई सा हल्का बना देता है और नसों में उत्साह की बिजली का संचार करता रहता है । अक्सर देखा जाता है कि कोई अप्रिय घटना या समस्या सामने आने पर लोग बहुत घबरा जाते हैं, दुःखी होकर रोने-पीटने लगते हैं और अपना मानसिक सन्तुलन खोकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं । इन परिस्थितियों में उसकी बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी कुण्ठित हो जाती है कि कोई ठीक मार्ग निर्धारित नहीं कर पाती, उस विपत्ति से छुटकारा पाने और क्षतिपूर्ति के साधन जुटाने के लिए स्वस्थ और शान्त मन की आवश्यकता है पर जिसका मन उलझन में पड़ा हुआ दिग्भ्रान्त हो रहा है वह भला किस प्रकार सही मार्ग ढूँढ सकता है ? कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती । एक के पीछे अनेक दुःख चिपके आते हैं । कारण यह है कि अस्वस्थ बुद्धि के निर्णय एवं कार्य अनुचित होते हैं । फलस्वरूप उनमें गाँठ और भी ज्यादा उलझती जाती है । यदि सन्तोष का अभ्यास किया जाय, बुरी घड़ी में भी विचलित होने की आदत हो तो वह कठिनाई जो सामने आयी थी आसानी से हल की जा सकती है, क्षतिपूर्ति का मार्ग ढूँढ़ा जा सकता है, नई कठिनाई पैदा होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

जो वस्तुएँ प्राप्त हैं, उनका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करना, उनमें रस लेना और ईश्वर की देन समझ कर सिर-माथे पर लेना यह सन्तोष का लक्षण है । कर्म करते समय अधिक की इच्छा करना और फल भोगते समय सन्तुष्ट रहना यही सन्तोष की नीति है । जो भोजन परोसकर सामने आ गया है और उसे बदला नहीं जा सकता तो उचित है कि उसे सिर-माथे पर रखकर अमृतमय व्यंजनों की भावना से ग्रहण करें । यदि विवाह हो चुका है और किसी स्त्री को जीवन संगिनी बनाया जा चुका है तो यही उचित है कि जैसी भी कुछ काली-कुबड़ी वह है, अप्सरा समझ कर स्नेह किया जाय । कठिन परिश्रम के बाद जो मजदूरी मिली है, उस पर प्रसन्न रहा जाय । जब काम करने का समय हो तब ऊँची और अच्छी स्थिति प्राप्त करने का समय हो जी तोड़ उद्योग करना आवश्यक है, पर जब कि काम करने का अवसर समाप्त हो गया और निश्चित परिश्रम सामने आ गया है जिसका कि हटाया जाना अशक्य है तो यही उचित है कि कुड़कुड़ाना, झुंझलाना, भाग्य को कोसना, छोड़कर सन्तोष का घूँट पिया जाय, क्योंकि यह कुढ़न निरर्थक है, इससे मानसिक विक्षेप बढ़ सकता है और निराशा एवं आत्महीनता की भावनाएँ बल पकड़ सकती हैं, इससे लाभ कुछ न होगा, हानि ही अधिक रहेगी । इस हानि से बचने के लिए एक बहुत ही उत्तम ढाल अपने पास है और वह है सन्तोष ।

भाग्य में जो लिखा, वह होकर रहेगा, विधान के अंक मिट नहीं सकते, "दैव इच्छा बलीयशी", "सन्तोषी सो सदा सुखी ।" यह उक्तियाँ प्रयोग करने का ठीक समय है जब कि कोई इच्छा से न्यून, हल्का या विपरीत परिणाम सामने आये । चूँकि हर एक की मनोवांछाएँ सदैव पूरी नहीं होती हैं, असफल या अल्प सफलता मिलने के भी प्रसंग आते हैं । उन अप्रिय प्रसंगों के सामने आने पर भी चित्त की प्रसन्नता बनाये रहने के लिए, सन्तोष, भाग्य आदि की व्यवस्था है । जो सिद्धान्त जिस समय जिस कार्य के लिए है उसे उसी में प्रयोग करना चाहिए । कर्तव्य करने में सन्तोष कर बैठना तो ऐसा है, जैसा कपड़ा काटने की कैंची का उपयोग अपनी नाक काटने में कर लेना ।

सन्तोषी को प्रसन्न रहना चाहिए । हर घड़ी अपने को आनन्दित बनाये रहना चाहिए । घर में, व्यापार में, परदेश में, मित्रों में, शत्रुओं में, निन्दा में, प्रशंसा में, कष्ट में, सम्पदा में, लाभ में, हानि में, हर एक परिस्थिति में चेहरे पर प्रसन्नता छाई रहनी चाहिए, हर बात के साथ-साथ मुस्कराहट की किरणें निकलनी-चाहिए, आत्मा की महानता और दिव्यता का अनुभव करते हुए सदैव गौरवान्वित रहना चाहिए, यही सन्तोष का मर्म है । योगाभ्यासी को सन्तोषी रहना चाहिए, जिससे उसका आनन्दमय कोष विकसित होता रहे ।

तप

तप का तात्पर्य 'कष्ट सहन' है । गर्मी या तेजी लाना भी तप का एक अर्थ होता है, तपाये जाने से जैसे पानी गरम हो जाता है और हरकत करने लगता है वैसे ही तपने से मनुष्य की शक्तियाँ भी गरम हो जाती हैं, तेजी से काम करने लगती हैं । चाकू को पत्थर पर घिसने से वह गरम और पैना हो जाता है, कड़ी मशक्कत लेने पर शरीर की गर्मी बढ़ जाती है और श्वास तथा रक्त प्रवाह तेजी से चलने लगता है । 'रगड़ से गर्मी' का नियम इतना निश्चित और निर्विवाद है कि उसके उदाहरण सर्वत्र देखे जा सकते हैं । शरीर और बुद्धि की सुस्ती, मन्दता, न्यूनता और त्रुटियों को हटाकर उन्हें तेज, क्रियाशील, उन्नत, विकसित बनाने का 'तप' एक अमोघ उपाय है । प्राचीनकाल में कोई कठिन कार्य सामने आता था और उसें पूरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना साधारणतः कठिन प्रतीत होता था । जो तपस्या की जाती थी, जिससे कि योग्यताएँ अधिक सक्षम हो जायें । भौंथरा उस्तरा जब बाल नहीं काटता तो उसे तपा कर तेज कराया जाता है, शानगर के घर हो आने के पश्चात उसका भौंथरापन चला जाता है और तेजी आ जाती है फिर हजामतें बड़ी आसानी से बनने लगती हैं, तप का भी यह फल होता है, तपस्या से योग्यता इतनी तीव्र हो जाती है कि पहले जो कार्य कठिन थे पीछे वे ही बहुत आसान हो जाते हैं । तप करना स्पष्टतः अपनी शक्तियों को तेज करना, गरम करना, तपाना है । पुराण इतिहासों के पन्ने-पन्ने पर तप की अपार महिमा का वर्णन है और प्रचुर परिमाण में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जिनसे प्रतीत होता है कि तप के द्वारा लोगों ने बड़े-बड़े वरदान प्राप्त किए हैं । असम्भव प्रतीत होने वाले कार्यों में सफलता प्राप्त की है ।

प्रोफेसर निकोल्सन से उसके एक छात्र ने पूछा कि मुझे चित्रकला सीखे इतने दिन हो गए पर अभी तक कुछ भी न आया, क्या निकट भविष्य में मैं सफलता प्राप्त न कर सकूँगा । प्रोफेसर ने सिर हिला कर कहा—मुझे आशा नहीं है । छात्र ने पूछा—क्यों ? उन्होंने उत्तर दिया—चूँकि तुम एक लखपती के बेटे हो । अमीरों के लड़के कड़ी मेहनत से जी चुराते हैं । फलतः वे अपने जीवन में कोई कहने लायक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते । देखा गया है कि गरीब लोग मेहनत करके बड़े आदमी बन जाते हैं, पर बड़े आदमियों के लड़के हमेशा नीचे को खिसकते हैं, कारण यही है कि तप करने की जो लगन गरीबों के लड़कों में देखी जाती है । वह अमीरों के लड़कों में नहीं होती । तप के अभाव में उनकी शारीरिक और मानसिक योग्यताएँ ठस्स हो जाती हैं, फलतः उनके हौंसले पस्त हो जाते हैं, क्रियाशीलता को आरामतलबी खा जाती है ।

हिन्दू धर्म-शास्त्रों में बड़ी प्रचुर मात्रा में ऐसे कर्मकाण्डों का विधान है जिनमें असाधारण शारीरिक कष्ट उठाने पड़ते हैं । जाड़े के दिनों में प्रातःकाल ठण्डे जल से स्नान, व्रत, उपवास, तीर्थों की पैदल यात्रा आदि शारीरिक कष्टों को प्रमुख स्थान दिया गया है, ब्रह्मचारियों को नंगे पाँव रहना, जमीन पर सोना, स्वाद रहित भोजन करना, कड़ा शारीरिक परिश्रम करना आदि की कठोर व्यवस्था है । कोई अपराध हो जाने पर कष्टकर प्रायश्चित करने का विधान है । इस का तात्पर्य यह है कि कष्ट सहिष्णुता द्वारा जड़ता को हटाकर चैतन्यता का प्रवेश कराया जाय । परिश्रमशीलता और कष्ट-सहिष्णुता यह दो ऐसे तत्व हैं जिनके कारण बहुत-सी शारीरिक और मानसिक त्रुटियाँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं, आलस्य और आरामतलबी के साथ जो दुर्गुण रहते हैं, कष्ट-सहिष्णु सहज ही उनसे हट जाता है ।

परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि बिना विचारे, निरुद्देश्य, जड़तापूर्वक शरीर को कष्ट देना कोई तप है । बहुत से भिखमंगे लोहे के काँटों पर लेटे रहते हैं, उल्टे लटक जाते हैं, धूप में पड़े रहते हैं, आग जला कर दिन-रात तापते रहते हैं, कपड़े नहीं पहनते, किसी अंग को नष्ट कर डालते हैं, यह उजड्डपन अधिक भिक्षा या यश प्राप्त करने की एक तरकीब भले ही हो, पर इनसे तप का उद्देश्य पूरा नहीं होता । तपस्वी कष्ट को अपनाता है पर विवेकपूर्वक वह देखता है कि यह कष्ट सहन अपने लिए या दूसरों के लिए कुछ लाभप्रद होगा अथवा नहीं, यदि उसमें कुछ तथ्य दिखाई पड़ता है तो कष्ट की परवाह न करके वह उसमें जुट पड़ता है ।

विद्याध्ययन में सब ओर से चित्त हटाकर एक ही सूखे कार्य में मन को बलात् लगाना पड़ता है, ब्रह्मचर्य पालन में, इन्द्रिय संयम में, इच्छाओं को कुचलना पड़ता है, व्रत-उपवास में भूख को सहन करना पड़ता है, रात्रि जागरण में निद्रा को रोकना होता है, तीर्थ यात्रा में पैदल चलना पड़ता है, यह सब तप हैं, यदि इनमें वास्तविक लाभ की प्राप्ति होती हो । विवेक और विचारपूर्वक यह कार्य किए जायें तो शरीर और मन को लाभ पहुँचाने वाले हो सकते हैं । व्यायाम भी इसी श्रेणी में आता है । परमार्थ, सेवा, उपकार में प्रवृत्ति तप का लक्षण है, स्वयं कष्ट सहकर अपने हक की वस्तु दूसरे अधिक जरूरतमन्द को दे डालना तपस्वी का काम है । अन्याय और पाप के विरुद्ध संघर्ष खड़ा करना फिर चाहे उसमें हार, हानि, कष्ट, अपमान कटुवचन आदि कुछ भी क्यों न सहन करना पड़े तप है । पाप के विरुद्ध जो धर्म का युद्ध खड़ा किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है वह तप है, अर्जुन को 'परंतप' की उपाधि मिली थी ।

आलस्य से बचकर कठोर कामों में दिलचस्पी लेनी चाहिए, परिश्रम करने का अवसर मिले तो उसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए, नाजुकपन छोड़कर कर्मठ और कष्ट-सहिष्णु बनना चाहिए । तपाने से सोना निखरता है और कष्ट में पड़ने से मनुष्य सक्षम बनता है । इन बातों पर ध्यान रखते हुए ऐसे कष्टकर साहसपूर्ण कामों को अपनाने का सदैव उद्योग करना चाहिए जिनका परिणाम अपने लिए या दूसरों के लिए हितकर निकलता हो । तप का अभ्यास जारी रखने के लिए एकादशी, अमावस्या, पूर्णमासी या किन्हीं अन्य तिथियों को उपवास रखने का नियम बनाना चाहिए, प्रातःकाल बहुत तड़के उठना, व्यायाम करना, कुछ समय के लिए ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रत की प्रतिज्ञा करना और उसे दृढ़तापूर्वक निबाहना या इस प्रकार के अन्य कार्यों को जीवन का अंग बना लेना चाहिए । ऐसे कार्य जो प्रत्यक्ष में कष्टकर और पीछे अधिक लाभ करने वाले हैं उन्हें नियमित रूप से प्रयोग करते रहना चाहिए । कभी अवसर आये तो अन्य व्यक्तियों की सहायता के लिए तथा दुष्टता को हटाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, यही तप का मार्ग है ।

स्वाध्याय

स्वाध्याय का अर्थ है, अपने आप पढ़ना, अपने बारे में पढ़ना । गुरु की सहायता से बहुत-सी पुस्तकें पढ़ते हैं और जानकारियाँ प्राप्त करते हैं, यह शिक्षा है । शिक्षा प्राप्त करने से मस्तिष्क विकसित होता है और बहुत-सी नई बातें मालूम होती हैं, पढ़े-लिखे कहलाते हैं और वे सुविधाएँ मिलने लगती हैं जो कि पढ़े-लिखे व्यक्तियों को प्राप्त हुआ करती हैं । यह सब होते हुए भी दूसरे की बताई हुई बात से आत्म-कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मोन्नति के विषय में किसी दूसरे का चाहे वह कितना ही महान व्यक्ति क्यों न हो—कुछ भी असर नहीं पड़ सकता जब तक कि वह व्यक्ति स्वयं ही अपने ऊपर प्रभाव ग्रहण करने को तैयार न हो । महाप्रभु यीशु के प्रधान शिष्य ने उन्हें केवल मात्र तीस रुपये के लोभ में पकड़वा कर मरवा दिया । भगवान राम की धर्म माता ने उन्हें वनवास दिलाया । प्रह्लाद की बुआ उन्हें गोदी में लेकर जलाने ले गई । कृष्ण का सगा मामा उनकी जान का ग्राहक बन रहा था । इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि कोई कितना ही प्रभावशाली, तेजस्वी या सच्चा क्यों न हो पर बलपूर्वक अपने निकटस्थ सगे सम्बन्धी को भी श्रेष्ठ मार्ग पर नहीं ला सकता । आत्मोन्नति और आत्म-सुधार तो हर व्यक्ति के अपने करने का कार्य है, जो स्वयं अपने को ऊँचा उठाने और पवित्र बनाने का प्रयत्न नहीं करता, उसे दुनिया का दूसरा कोई व्यक्ति सुधार नहीं सकता ।

इसलिए आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिए योग-शास्त्र का उपदेश है कि—अपने-अपने बारे में सोचो, विचारो, खोज करो और ज्ञान प्राप्त करो । हम क्या हैं ? इस दशा में क्यों हैं ? क्या उद्देश्य है ? क्या कर रहे हैं ? क्या करना चाहिए ? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में भली प्रकार विवेचन करना, त्रुटियों को मालूम करना और निकाल बाहर करने के लिए पुरुषार्थ में तत्पर होना, यह स्वाध्याय का प्रयोजन है । अपने आप, मनन या चिन्तन द्वारा, अधिकारी लेखकों के सद्ग्रन्थों द्वारा, गुरुजनों के सत्संग या प्रवचन द्वारा जो आत्मशोध किया जाता है, वह स्वाध्याय है । अपने आपको उसी प्रकार पढ़ना, समझना जैसी किसी पुस्तक को पढ़ते या समझते हैं, स्वाध्याय है । ऊँचे उठने के लिए, आगे बढ़ने के लिए इसकी अनिवार्य आवश्यकता है, बिना इसके प्रगति नहीं हो सकती ।

आजकल स्वाध्याय के नाम पर किसी पुस्तक का तोते की तरह पाठ कर लिया जाता है और कर्तव्य की इतिश्री मानली जाती है । केवल मात्र किसी पुस्तक को रटने से वह महान कार्य पूरा नहीं हो सकता । बेशक स्वाध्याय में सद्ग्रन्थों की बड़ी भारी आवश्यकता है और उनसे असाधारण मदद मिलती है पर यह कार्य होना चाहिए विचारपूर्वक । अनुभवी विद्वानों ने जीवन तत्व के सम्बन्ध में जो खोजें की हैं और अपने अन्वेषणों को लिपिबद्ध किया है, उसे समझना चाहिए और लाभ उठाना चाहिए । अन्धविश्वास करने या बुद्धि बेचकर लकीर के फकीर बन जाने के लिए यहाँ नहीं कहा जा रहा है और न यह बताया जा रहा है कि अमुक पुस्तक में लिखी हुई बातों को बिना क्यों ? कैसे ? किए अपना लिया जाय । यदि आचार्यों की इच्छा यह होती कि जिज्ञासु अमुक पुस्तक या व्यक्ति की बातों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर आँख मींचकर आरूढ़ हो जाय तो उसका नाम 'आज्ञापालन' या कुछ और ऐसा ही रखा जाता । "स्वाध्याय" नाम से योगशास्त्र की इच्छा स्पष्ट है, वह चाहता है कि हर व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से अपने बारे में विचार करे, पुस्तकों या व्यक्तियों से कुछ मदद ली जा सकती है पर निर्णय खुद ही करना है । जो फैसला अपने आप किया जाता है, वह कारगर होता है, वहीं टिकाऊ होता है और वह निभता है । ठूँस-ठाँस कर सिखाई-पढ़ाई बात ऊपर ही ऊपर रह जाती है, पेट तक नहीं पहुँचती और जो बात पेट तक न पहुँचे उसे वाचक ज्ञान से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, कम से कम सच्ची आत्मोन्नति का द्वार तो खुल नहीं सकता, इसलिए स्वाध्याय की ही महत्ता स्वीकार करनी पड़ी है ।

अपने आप अपने बारे में विचार कीजिए, अपनी निजी बुद्धि से जीवन की गुत्थी को सुलझाइये, अपने सुर दुर्लभ मानव-जीवन का महत्त्व खुद समझिए और उसका सदुपयोग करने की कोई आदर्श योजना बनाइये । नित्य इस बात का गहरा परीक्षण करते रहिए कि आज हमसे क्या अच्छे कर्म हुए और क्या बुरे कर्म किए ? अच्छे कर्मों के लिए मन को शाबाशी दीजिए और कल फिर उससे भी अच्छे कर्म करने की तैयारी कीजिए, जो बुरे कर्म बन पड़े हैं उनके लिए पश्चात्ताप करते हुए ईश्वर से क्षमा माँगनी चाहिए और फिर उस प्रकार के काम न करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए । रात को चारपाई पर पड़ते समय, सोने से पूर्व नियम बाँधकर नित्य आत्म-निरीक्षण करना चाहिए ।

लोक-व्यवहार के सम्बन्ध में, सांसारिक गतिविधि के सम्बन्ध में, विश्व की समस्याओं के सम्बन्ध में, विचार करते रहना चाहिए और उनके सत्य-असत्य का, औचित्य-अनौचित्य का विवेचन करते हुए यह देखना चाहिए कि हमारे ऊपर विश्व की किन परिस्थितियों का कितना प्रभाव पड़ता है और उनके हानिप्रद पहलू से किस प्रकार बच सकते हैं एवं लाभप्रद पहलू को कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? संसार के अपने सम्बन्धों पर विचार करना, जिन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना है उनमें परिवर्तन करना, जिन परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को बनना है उसके लिए अपने को उसी ढाँचे में ढालना, यह सब कार्य स्वाध्याय द्वारा किए हुए निर्णय के आधार पर ही हो सकते हैं ।

स्वाध्याय के योग्य मनोभूमि तैयार करने के लिए सद्ग्रन्थों का अवलोकन बहुत ही आवश्यक है । इतिहास, पुराण, कथा-काव्य, मजहबी धर्मग्रन्थ, इस आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकते । जीवन की दार्शनिक, वास्तविक और वैज्ञानिक विवेचना से यह गुत्थी सुलझ सकती है, अतिरंजित कथा-कहानियों से नहीं । इसलिए महात्मा जेम्स ऐलन, स्वेट माडन, टॉल्सटाय, सुकरात, महात्मा गाँधी, डॉक्टर भगवानदास, श्री स्वामी सत्यभक्त वर्धा, आदि व्यवहारवादी दार्शनिकों की रचनाएँ पढ़नी चाहिए, अखण्ड ज्योति की प्रकाशित पुस्तकें भी कुछ सहायता कर सकती हैं । श्रीमद्भगवद् गीता एवं उपनिषदों को समझने की जिन्हें योग्यता है वे उन्हें पढ़ें, साम्प्रदायिकता के रंग से जो ग्रन्थ रंगे हुए न होंगे वे अधिक और स्पष्ट सत्य का दर्शन करा सकेंगे । यह बात विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए ।

आत्मोन्नति, अपनी निजी विवेचना, इच्छा, उत्कण्ठा एवं प्रयत्नशीलता द्वारा ही हो सकती है, इसलिए योग-शास्त्र का आदेश है कि ब्रह्म-विद्या के प्राप्तार्थियों को अपने आप अपने हृदय का मंथन करना चाहिए, अन्तर्मुखी होकर भीतरी तैयारी में उत्साहपूर्वक जुटना चाहिए तभी वास्तविक लाभ होगा अन्यथा कोरी दांता किट-किट या पोथी पाठ तो व्यर्थ ही सिद्ध होंगे । रई द्वारा दही मथने से घृत निकलता है, स्वाध्याय द्वारा हृदय मथने से मनोवांछा पूरी करने वाली 'चिन्तामणि' प्राप्त होती है ।

ईश्वर प्रणिधान

प्रणिधान माने है—धारण करना, स्थापित करना । ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर को धारण करना, ईश्वर को स्थापित करना । परमात्मा हमारे हृदयों में विराजमान है । गीता कहती है—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।" अर्थात्—हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ है । सर्वव्यापक परमात्मा हर एक के रोम-रोम में रम रहा है फिर भी मनुष्य उसे भूला हुआ है, उसे देखता नहीं, पहचानता नहीं और उसकी आज्ञाओं पर ध्यान नहीं देता । कहने को तो लोग ईश्वर को जानते भी हैं और मानते भी हैं पर व्यवहार में उसका एक प्रकार से बहिष्कार ही कर देते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । पुलिस सर्वव्यापक नहीं है तो भी उससे जितना डरते हैं उतना ईश्वर से नहीं डरते, अमीरों में उतनी उदारता नहीं होती तो भी अमीरों या अफसरों का जितना आदर करते हैं उतना ईश्वर का नहीं करते, स्त्री का प्रेम उतना सच्चा और स्थायी नहीं होता तो भी जितना प्यार अपनी स्त्री से करते हैं उतना ईश्वर से नहीं करते, बेटे के ब्याह में जितना खर्च कर देते हैं उससे चौथाई भी ईश्वर के निमित्त नहीं लगाते । यदि सच्चाई के साथ देखा जाय तो ईश्वर को एक बहुत ही गौण स्थान दिया जाता है या तो धन, सम्पदा, बेटा, पोता, जीत, स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, स्वर्ग, मुक्ति आदि प्राप्त करने के लिए ईश्वर को टटोलते हैं या कोई विपत्ति आ जाने पर छुटकारे के लिए उसे पुकारते हैं । लौकिक और परलौकिक बहुमूल्य सम्पदाएँ झटक लेने के लिए रोली, अक्षत, धूप, दीप में पैसा दो पैसा खर्च करते हैं, इस प्रकार एक देकर सौ लेने की व्यापार बुद्धि से ईश्वर पूजा का व्यवसाय करते हैं ।

हमारे यहाँ मथुरा में बन्दर बहुत हैं, यह रोज ही घरों में से बर्तन, कपड़े आदि उठा ले जाते हैं और लेकर दूर भाग जाते हैं । हमारा एक पड़ौसी रोटी के टुकड़े और अनाज के दाने तैयार रखता है, उसने जैसे ही किसी बन्दर के हाथ में बर्तन, कपड़ा देखा कि अनाज के दाने फेंके । बन्दर उस चीज को छोड़कर दाने खाने लगता है और वह चीज पड़ौसी के हाथ लग जाती है, इस प्रकार वह आधे पैसे का सामान खर्च करके एक दो रुपया कमा लेता है । भक्त लोग ईश्वर से भी वही चाल चलाते हैं जो हमारा पड़ौसी बन्दरों से चलाता है । ईश्वर को तरह-तरह से फुसलाया और सिखाया, पढ़ाया जाता है—"हे ईश्वर हमें अमुक चीज दे दीजिए, हमारा अमुक काम पूरा कर दीजिए, हमें यह लाभ कर दीजिए ।" मानो ईश्वर मूर्ख हो जो जानता ही नहीं कि किसे क्या वस्तु देनी चाहिए, मानो वह जो कुछ दे रहा है वह हिसाब से कम दे रहा है इसलिए उसे समझा-बुझाकर, कह-सुनकर, खुशामद दरामत से और ज्यादा देने के लिए तैयार कर लिया जाय । यह व्यापार-बुद्धि उन बालकों के योग्य है जिनको आध्यात्म विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है, वे लोभ-लालच को लेकर ईश्वर तक पहुँचें तो किसी हद तक उनका प्रयास ठीक भी माना जा सकता है क्योंकि उनकी मानसिक चेतना लोभ और भय से ही प्रभावित होती है इसलिए वे ईश्वर के दण्ड के भय से, विपत्ति निवारण की आशा से तथा मालटाल हाथ लगाने की आशा से ही ईश्वर की पूजा कर सकते हैं, उसका नाम ले सकते हैं ।

अध्यात्म विद्या का जो लोग शोध कर रहे हैं, राजयोग की साधना के लिए यम-नियमों की जो साधना करना चाहते हैं, उन्हें ईश्वर प्रणिधान का तत्व ज्ञान भली प्रकार समझना होगा और बुद्धिपूर्वक उस पर आरूढ़ होना होगा । पाँचवाँ नियम—"ईश्वर पूजा" नहीं वरन् "ईश्वर प्रणिधान" है । परमात्मा की हृदय में स्थापना करना, उसे हर घड़ी अपने साथ देखना, रोम-रोम में उसका व्यापकत्व अनुभव करना यह ईश्वर के प्रणिधान का चिह्न है । मन्दिर में मूर्ति की स्थापना की जाती है तो उसकी पूजा के लिए पुजारी नियत करना पड़ता है जो यथासमय सारी पूजा-पत्री किया करे, पुजारी अन्य कार्य भी करता है पर प्रतिमा के भोग, स्नान, शयन, आरती आदि का ध्यान विशेष सावधानी के साथ रखता है । ईश्वर प्रणिधान में ईश्वर की प्रतिमा हृदय में अन्तःकरण में स्थापित करनी होती है और उसे चौबीस घण्टे का साथी बनाना पड़ता है । पुजारी का प्रधान कार्य प्रतिमा की पूजा है । इस प्रकार प्रणिधानी को प्रधानतः ईश्वर में निमग्न रहना पड़ता है । ईश्वर को अपने में और अपने को ईश्वर में ओत-प्रोत रखना पड़ता है ।

चौबीस घण्टे साथ रहने वाले अभिन्न मित्र से जिस प्रकार हर बात में सलाह ली जाती है और उसकी उपस्थिति का ध्यान रखते हुए अनुचित कार्यों की इच्छा को दबाना पड़ता है वैसे ही ईश्वर की स्थापना के बाद होता है, सांसारिक मित्रों की अपेक्षा असंख्यगुना अधिक उच्च शक्ति और सद्गुणों से युक्त मित्र परमात्मा है, ऐसे परमात्मा को जिसने अपने अन्दर स्थापित कर लिया है, उसे अपना चौबीस घण्टे का साथी बना लिया है, निश्चय ही वह हर काम के लिए उसकी सलाह लेगा । क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? इसके लिए अन्तरात्मा से पूछा जाय तो सदैव योग्य, उचित और लाभदायक उत्तर मिलेगा । सामने पुलिस खड़ी हो तो चोर को चोरी करने से रुकना पड़ता है, परमात्मा को जो हाजिर-नाजिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझता है, वह एकान्त में, गुप्त रूप से यहाँ तक कि मन से भी पाप करने का साहस नहीं करेगा । सर्वव्यापक ईश्वर की आँखों के सामने किस प्रकार कुकर्म किया जा सकता है ? कोतवाल को सामने आते देखकर जुआरियों को भागते ही बनता है फिर जिसकी आँखें ईश्वर को हर घड़ी सामने खड़ा देखती हैं, वह अनीति के पथ पर किस प्रकार पैर बढ़ा सकता है ?

दो व्यक्ति साथ-साथ रहें तो अधिक शक्ति सम्पन्न से अल्प शक्ति वाला प्रभावित होता है और उसकी विशेषताओं को ग्रहण करने लगता है, सत्संगति का महत्त्व सर्वविदित है कि इसके प्रभाव से मनुष्य कुछ का कुछ बन जाता है । ईश्वर को साथी बना लेने से भी यही होता है, भक्त में भगवान के गुण आने लगते हैं, उसकी त्रुटियाँ हटकर ईश्वरीय दिव्य गुणों का समावेश होने लगता है । कोयलों के कारखाने में काम करने वाले के शरीर और कपड़े काले हो जाते हैं, ईश्वर के सम्पर्क में रहने वाले के कार्य और विचार सत्य से परिपूर्ण होने लगते हैं । परमात्मा महान है, दिव्य है, सत् है, चैतन्य है, आनन्दमय है, ईश्वर का साथी भी करीब-करीब ऐसा ही हो जाता है ।

कर्मकाण्ड की प्रक्रिया में पूजा-प्रार्थना का विधान है परन्तु योग-मार्ग में तो प्रणिधान की ही आवश्यकता है । "दिल के आईने में है तस्वीरे यार की, जब जरा गर्दन उठाई देखली" की भावना इतनी परिपक्व, पुष्ट और सजीव बननी चाहिए कि प्रत्यक्ष अनुभव हो जैसे कि साथ रहने वाला मित्र दिखाई देता है । ईश्वर की मन-मन्दिर में स्थापना कर लेने के बाद मनुष्य सत्कर्मों में ही प्रवृत्त रह सकता है, अपने अन्दर सात्विक गुणों को ही स्थान दे सकता है ।

यम-नियमों का तात्पर्य

राजयोग में यम-नियमों को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है । योग की सफलता के शिखर पर पहुँचने के लिए जिन साधनाओं की जरूरत है उनमें आदि गणना यम-नियमों की है । आत्मोन्नति के लिए जिन सीढ़ियों पर पाँव रखकर चढ़ना पड़ता है उनमें आरम्भिक सीढ़ी नियम हैं, जिन पर पैर रखे बिना ऊँची सीढ़ियों पर पहुँचना असम्भव है । क्रमशः चलने से ही किसी मार्ग को पार करते हुए निश्चित लक्ष तक पहुँचा जा सकता है । ऐसा नहीं हो सकता कि रास्ते की यात्रा को छोड़कर कोई एकदम ऊपर पहुँच जाय । किसी ऊँचे मकान की छत पर पहुँचने के लिए सीढ़ी-दर-सीढ़ी ही चढ़ना पड़ेगा, उसके सफल मनोरथ होने की आशा कौन कर सकता है ? जो जमीन से उचट कर एकदम छत पर पहुँचना चाहता है और बीच के फासले को यों ही दर गुजर करते हुए छोड़ देना चाहता है ।

हमारे पास प्रतिदिन योग-साधन सीखने वालों के पत्र आते रहते हैं और कई व्यक्ति मिलने के लिए भी आते हैं । यह महानुभाव बेहद उतावले होते हैं, कोई कहता है, मुझे प्राणायाम सिद्ध करा दीजिए जिससे जब तक चाहूँ जीवित रह सकूँ, कोई कहता है—समाधि लगाना सिखा दीजिए, कोई कहता है—हमारी कुण्डलिनी जगा दीजिए कोई ऋद्धि सिद्धि चाहते हैं । किसी की कुछ फरमाइश होती है, किसी की कुछ । इनकी उतावली इतनी बढ़ी-चढ़ी होती है कि एकाध हफ्ते के अन्दर सब कुछ पूरा हो जाना चाहिए । ऐसे सज्जनों को हमारे यहाँ से सूखे और कष्ट-साध्य उत्तर मिलते हैं तब वे दूसरा रास्ता ढूँढ़ते हैं, उनकी उतावली से किसी ढोंगी को अच्छा मौका हाथ लग जाता है, उलटे उस्तरे से उनकी हजामत बनाता है, पीछे जब उनके हाथ कुछ नहीं लगता तो इस महाविज्ञान के प्रति मन में दुर्भावनाएँ धारण करके निराशापूर्वक इस मार्ग से सदा के लिए हट जाते हैं ।

हम अपने पाठकों को सावधान कर देना चाहते हैं कि मार्ग का व्यतिक्रम करके एकदम ऊपर चढ़ जाने की तृष्णा न करें । प्रारम्भिक साधना यम-नियमों की है इसलिए आरम्भ यहीं से करना चाहिए । पहलवानी करने से पूर्व बीमारी दूर करने की जरूरत होती है, जिसे बुखार, पेचिश, खाँसी, सिर दर्द, सूजन आदि ने दबा रखा है उसे कुश्ती लड़ने या मुद्गर फिराने की सलाह कोई मूर्ख गुरु ही दे सकता है । यदि मनुष्य बलवान पहलवान, सुडौल, मोटा, हृष्ट-पुष्ट बनना चाहता है तो उसे सबसे पहला काम यह करना चाहिए कि शरीर में जो घुन लगे हुए हैं उन्हें हटावें, जिन कारणों से काया जर्जर हो रही है, उन्हें दूर करे । जब स्वास्थ्य साधारण दशा में आ जायेगा तभी पहलवानी करने, मुद्गर फिराने, बोझा उठाने या लम्बी यात्रा करने के मनसूबे पूरे हो सकेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग साधन एक बड़ा पुरुषार्थ है, जिसके लिए शारीरिक और मानसिक निरोगता एवं स्वस्थता की आवश्यकता है । दुर्गुण, दुर्व्यसन और कुविचारों के कारण शरीर और मन बीमार रहता है । भले ही वह बीमारी वैद्य, डॉक्टरों को नाड़ी में दिखाई न पड़े तो भी उसका प्रभाव बड़ा घातक और भयंकर होता है, कुविचार और कुसंस्कारों की रस्सियों में बँधा हुआ मन और इन्द्रिय लिप्साओं में जकड़ा हुआ शरीर उस स्वस्थता से सर्वथा वंचित रहता है । जिसकी कि योग साधक के लिए अनिवार्य आवश्यकता है । हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और लोभ इन पाँच दुष्कर्मों को निवारण करने की व्यवस्था यमों के अन्तर्गत है और मलीनता, बेचैनी, आलस्य, अज्ञान, नास्तिकता को दूर करने के लिए नियमों का विधान है । यह दस रोग ऐसे हैं जो शारीरिक और आत्मिक स्वास्थ्य को खा डालते हैं, भीतर ही भीतर मनुष्य को जर्जर कर देते हैं ।

यदि इन्हें हटा दिया जाय तो ईश्वर ने मनुष्य को जो महान शक्तियाँ दे रखी हैं उनका अपव्यय रुक जाय और उस महान सम्पदा का पूरा-पूरा लाभ उठाने का अवसर मिलने लगे । मनुष्य के अन्दर ईश्वरीय शक्तियों का इतना महान भण्डार भरा हुआ है जिनका कुछ ओर-छोर नहीं । इन शक्तियों को यह ठीक रीति से प्रकट होने का अवसर न मिले तो मनुष्य इतना प्रचण्ड शक्तिशाली बन सकता है कि उसकी महत्ताएँ देखकर साधारण लोगों को आश्चर्य करना पड़ता है । पातंजलि के योग-दर्शन में साधनपाद के सूत्र ३५ से सूत्र ४५ तक यम-नियमों को साधना से जो सिद्धियाँ मिलती हैं, उनका वर्णन किया गया है । यह सिद्धियाँ आश्चर्यजनक दिखाई देती हैं, पर वास्तव में इनमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । एक स्वस्थ शरीर के मनुष्य को कान्तवान, फुर्तीला, बलवान, तेजस्वी, प्रभावशाली, बुद्धिमान, प्रसन्नचित्त और कमाऊ होना ही चाहिए, यह स्वस्थता के स्वाभाविक चिह्न हैं, इनका होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है । हाँ, बीमार आदमी के लिए यह सब बड़ी भारी नियामतें हैं । रोग के कारण जो दीन-हीन हो रहा है उसे स्वस्थ मनुष्य के स्वाभाविक लक्षण भी देवता के वरदान प्रतीत हो सकते हैं, निर्बल और रोगी जो दाल का पानी ही प्राप्त कर सकते हैं उनके लिए तो मिठाई, पकवान खाना और हजम करना सुर दुर्लभ बात है परन्तु निरोग व्यक्ति के लिए पकवान और मिठाई खाना, पचाना साधारण-सी बात है । यम-नियमों का पालन करना आत्मा की स्वाभाविक और स्वस्थ कार्य प्रणाली है । इसके फलस्वरूप स्वभावतः वे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं जो उलटे मार्ग पर चलने वालों को आश्चर्यजनक और सुर दुर्लभ प्रतीत होती हैं ।

श्रेष्ठ आचरण, सदाचार, भलाई का जीवन, ज्ञानपूर्ण दृष्टिकोण, मनुष्यता का पालन, यही यम-नियमों का तात्पर्य है । अच्छे मार्ग पर चलना, अच्छे काम करना, अच्छाई को पसन्द करना योग की यह प्रथम सीढ़ी है । बुराई से बचकर अच्छाई का अवलम्बन करना, स्वार्थ की ओर से वृत्ति हटाकर परमार्थ में दिलचस्पी लेना, प्राणियों के साथ प्रेम और सेवा का व्यवहार करना ऐसी उत्तम नीति है जिसके द्वारा मलीनता कटती है और अन्तःकरण में पवित्रता एवं निर्मलता का आविर्भाव होने लगता है । जैसे कोरे कागज पर ही पत्र लिखे जा सकते हैं लिखे हुए पर नहीं, उसी प्रकार निर्मल अन्तःकरण पर ही योग की शिक्षा और साधना अंकित हो सकती है ।

जो साधक ब्रह्म परायण होना चाहते हैं, ब्रह्म विद्या प्राप्त करना चाहते हैं, योग में प्रवृत्त होना चाहते हैं, उनका सर्वप्रथम कार्य यह है कि अपने विचार और आचरणों को नेकी, भलाई, पवित्रता, ईमानदारी और सच्चाई से परिपूर्ण बनाने का प्रबल प्रयत्न करें । यम-नियमों की शिक्षा के अन्तर्गत योगशास्त्र के आचार्यों का यही दृढ़ आदेश है ।

यम-नियमों की शास्त्रीय विवेचना

संसारोत्तरणे युक्तिर्योग शब्दे न कथ्यते ।

—योग वाशिष्ठ ६/१३/३

संसार से पार होने की जो युक्ति है, उसे योग कहते हैं ।

मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते ।

—महोपनिषद् ५/४२

मन को सांसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा में लगाना योग है, या मनको बुरे विषयों में न जाने देने के लिए जो उपाय है, वह योग है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिंसादिभ्यो निषिद्धधर्मेभ्योयोगिनं
यमयति नियतीकरोतिइतियमः

अर्थात् हिंसा आदि निषिद्ध कर्मों से जो पुरुष को रोके वे यम हैं ।

एश्वर्यदार पुत्राद्यायान्त्यमुष्य कदाक्षयम् ।
इतिया जायते चित्तेसाहिंसा परिकीर्तिता ॥

—पद्म पु. ७/१७/८६

इसका ऐश्वर्य स्त्री पुत्रादि कब किस प्रकार नष्ट हों इस प्रकार के चित्त में विंचार आना ही हिंसा है ।

श्रीरामचन्द्र जी ने सामने आयी हुई ताड़का को देखकर स्त्री होने से मारने में शंका की तब विश्वामित्रजी ने समझाया कि—

यस्यास्तु निधनाद् रामजनाः सर्वे निराकुलाः ।
भवन्ति सततं तस्माद् तस्यापुण्य प्रदोवधः ॥

—नृसिंह पु. ४७/७६

इस एक ताड़का के मारने से हे राम ! यहाँ के सारे जन आनन्द में हो जायेंगे अतः इसका मारना पुण्यप्रद है । वाल्मीकि रामायण में भी विश्वामित्र ने कहा है कि—

मन्निपोगादिमंदेशं कुरुनिष्कंटकं पुनः ।

—बाल. २४/३०

अर्थात् मेरे कहने से इस दुष्ट ताड़का को मारकर देश को कंटक रहित कर दो ।

इस पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा है कि—

करिस्यामि नसंदेहस्ताड़कावध मुत्तमम् ।
गो ब्राह्मण हितार्थाय देशस्यास्य सुखायच ॥

—२६/४

गौ, ब्राह्मण और देश के सुख के लिए निःसन्देह ताड़का का बध करूँगा ।

सत्य की परिभाषा

इष्टं श्रुतं चानुमितं स्वानुभूतं यथार्थतः ।
कथनं सत्यमित्युक्तं पर पीड़ा विवर्जितम् ॥

—स्कं. पु. १/२/५५/१६
लिंग पु. पू. भा. ८/१३

जैसा देखा, जैसा सुना, जैसा अपने हृदय में निश्चय किया हो उसी प्रकार कहना सत्य है परन्तु वह सत्य सत्पुरुष को पीड़ादायक न हो ।

सत्यं न सत्यं खलुयत्रहिंसादयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ।
हितंनराणां भवतीह येन त्रदेवसत्य नतथान्यथैव ॥

—देवी भागवत तृ. अ. ११/३६

वह सत्य, सत्य नहीं जिससे किसी सत्पुरुष की हानि होती हो, जिस मिथ्या से किसी सत्पुरुष की रक्षा होती हो वह मिथ्या सत्य में शुमार है, वास्तव में जो जिस भाषण से सत्पुरुष का हित होता हो वह सत्य में शुमार है । किसी दुकानदार से दो मित्र सौदा ले रहे थे, दुकानदार की आँख बचाकर एक मित्र ने फल उठाकर दूसरे मित्र को दे दिया पूछने पर उठाने वाला कहता है कि 'मेरे पास तुम्हारा फल नहीं' दूसरा कहता है कि 'मैंने तुम्हारा फल नहीं उठाया' इन दोनों का भाषण अक्षरों में सत्य है परन्तु मिथ्या अवश्य है ।

परहितार्थ वाङ्मासो यथार्थत्वं सत्यम् ।

अर्थात् दूसरे के हित के लिए मन वाणी का यथार्थ व्यवहार सत्य है । यह सत्य की संक्षेप में परिभाषा है ।

अन्याये न परधनादि ग्रहणं स्तेतम् ।

—मनु. ६/६२

अर्थात् अन्याय से दूसरे का धनादि लेना चोरी है ।

ब्रह्मचर्य समस्तेन्द्रिय संयमः ।
कर्मणा मनसावाचा स्त्रीरगात्र परिवर्जनम् ।
ऋतौभार्यां तदा स्वस्थ ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥

अर्थात् मन, वाणी, शरीर से पर स्त्री का सर्वथा त्याग और अपनी स्त्री से ऋतुकाल में गमन करना ब्रह्मचर्य है ।

अपरिग्रह

यतीनां सर्व संन्यासो मनोवाक् काय कर्मणा ।
गृहस्थानां मनसास्मृतंएषोऽपरिग्रह ॥

—स्कन्द पु. १/२/५५/१६

संन्यासी शरीर निर्वाह मात्र से अधिक का मन, वाणी, शरीर से परित्याग करे और गृहस्थ मन से त्याग करे अर्थात् आसक्त न हो ।

शौच

शौचं वाक् काय मनसां शुद्धिः ॥
वाङ्मनोजल शौचानि सदायेषां द्विजन्मनाम् ।
त्रिभिः शौचेरूपेतोयः सवर्यो नात्र संशयः ॥

—वृद्ध पाराशर ६/२१६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् मिथ्या भाषण, चुगलखोरी, रूखे वचन, व्यर्थ की बातें, इनसे जिनकी वाणी रहित है । ईर्ष्या, द्वेष, छल कपट से रहित जिसका मन है, जल से जिसका शरीर वस्त्रादि शुद्ध हैं ऐसे पुरुष स्वर्गभोगी हैं इसमें संशय नहीं ।

सन्तोष

संतोषो न्यायागतेनान्नादिनाऽलंबुद्धिः ।

अर्थात् न्याय (अपने पुरुषार्थ) से पैदा हुए धनादि से प्रसन्न रहना सन्तोष है ।

तप

तपः स्वधर्म वर्तित्वम् ।

—म. भा. वन. ३१३/८८

चाहे कितना ही कष्ट पड़े फिर भी अपने धर्म (कर्तव्य-कर्म) से न डिगना तप है ।

तपः सार इन्द्रिय निग्रहः

—चाणक्य सूत्र ५/८५

इन्द्रियों को अनुचित विषयों से रोकना ही असली तप है ।

स्वाध्याय

तदहंरब्राह्मणो भवति यदहस्वाध्यायं,
नाधीते तस्मान्स्वाध्यायोऽध्यतव्यः ॥

—शतपथ ११/ ५/७

उसी दिन ब्राह्मण अब्राह्मण (ब्रह्मात्व से गिर जाता है) हो जाता है जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता, इसलिए स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए ।

स्वाध्यायान्मा प्रमदः (तैत्तिरीयोपनिषद्)

स्वाध्याय में प्रमाद मत करो ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैववाङ् मयं तपउच्यते ।

—गीता १७/१५

स्वाध्याय करना वाणी का तप है ।

स्वध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।

—योग. १/२८ व्याम साध्य

योग और स्वाध्याय की सम्पति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

"स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याय रोग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ॥

—योग १/२८ व्यासभाष्य

अर्थात्—स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करे । स्वाध्याय की सम्पत्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

"त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति ।"

—छान्दोग्य २/२३/१

धर्म के तीन स्कन्ध हैं—यज्ञ, स्वाध्याय और दान ।

"तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ।"

—योग २/१

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह क्रिया योग है ।

ये ह वै के च श्रमा हमे द्यावा पृथवी अन्तरेण ।
स्वाध्यायो हवै तेषां पराकाष्ठा ॥

इस पृथ्वी और द्युलोक के बीच में जो कुछ भी पुरुषार्थ है उसमें स्वाध्याय सर्वोपरि (पराकाष्ठा) है ।

यावन्त् हवाइमां पृथिवीं वित्तेन पूर्ण ददल्लोकं जयति
त्रिस्वावन्तं जयति भूयाँ सं वाज्ञय्य य एवं विद्वान्
अहरहः स्वाध्यायमधीत् ।

—शतपथ ११/५/७

इस धनधान्य पूर्ण समस्त पृथ्वी का दान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे तिगुना पुण्य अथवा और भी अधिक अक्षय पुण्य उस पुरुष को मिलता है जो प्रतिदिन स्वाध्याय करता है ।

यह शास्त्र वचन हमें आदेश करते हैं कि स्वाध्याय नित्य करना चाहिए । अब यह देखना चाहिए कि स्वाध्याय क्या है ? स्वाध्याय शब्द के दो अर्थ किए जाते हैं—(१) स्वयम् अध्ययनम्—अर्थात् अपने आप, बिना किसी दूसरे की सहायता के अध्ययन करना । विचार, चिन्तन, मनन द्वारा सामने उपस्थित सर्वतोन्मुखी समस्याओं को समझना और उनके सुलझाने का मार्ग तलाश करना (२) स्वस्यात्मनोऽध्ययनम्—अर्थात् अपने आपका अध्ययन करना । आत्मचिन्तन द्वारा अपने अन्दर काम करने वाली दैवी और असुरी वृत्तियों को देखते रहना और आसुरी वृत्तियों को घटाने एवं दैवी वृत्तियों को बढ़ाते रहने का पथ प्रशस्त करना । उपरोक्त दोनों ही प्रकार के स्वाध्याय आवश्यक हैं । दोनों के मिलने में ही एक पूर्ण स्वाध्याय बनता है ।

यम-नियम की महिमा

पुंसा मुपासितास्तात यथाकामं दुहन्तिच ।

—भा. ११/१९/३५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यम-नियम पर चलने से मनुष्य के सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

यम-नियमों की महत्ता असाधारण है । इनकी साधना से योग द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ सहज ही मिल जाती हैं ।

इस तरह योगाभ्यास के आरम्भिक दो चरण हैं—यम और नियम ।

यम वर्ग में पाँच अनुबन्ध आते हैं । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पाँचों ही प्रधानतया मानसिक हैं जो भीतर है उसी को बाहर प्रकट करना सत्य है । ऊँचे उद्देश्य के लिए काम करना सत्य है । छल, प्रपंच, पाखण्ड से बचे रहना सत्य है । यह मनोदशाएँ हैं । इनका प्रकटीकरण भले ही जिह्वा, हाथ आदि इन्द्रियों से होता है ।

अहिंसा का तात्पर्य है, प्रेम, करुणा, दया, उदारता, आत्मीयता और उनका प्रकटीकरण तो अन्य सभी भावनाओं की तरह शरीर से भी हो सकता है, पर वस्तुतः यह आन्तरिक भाव सम्वेदनाएँ ही हैं । उसमें डॉक्टर के ऑपरेशन या न्यायाधीश के प्राणदण्ड जैसी कठोरता की भी गुंजाइश हैं । हिंसा, अहिंसा का निर्णय क्रिया मात्र से नहीं वरन् उसके साथ जुड़ी हुई भावनाओं के आधार पर होगा ।

अस्तेय—चोरी न करना । चोरी, जेबकटी, उठाईगीरी, सेध लगाना जैसे अपराधों के रूप में ही नहीं होते, वरन् शोषण, अपहरण, मुनाफाखोरी, मिलावट, रिश्वत आदि के रूप में भी होते हैं । यह हेरा-फेरी बिना छीन-झपट के भी हो सकती है । जिसमें ग्राहक की मर्जी या सहमति भी रह सकती है । बिना उठाईगीरी करने वाले भी चोर हो सकते हैं । इसका निर्णय मनोदशा का विश्लेषण करते हुए ही किया जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है—नर-नारी के मध्य पवित्रता का सद्भाव आत्मीयता का भाव होना । रामकृष्ण परमहंस शारदामणि की तरह गृहस्थ भी उसका पालन कर सकते हैं और विश्वामित्र मेनका संयोग की तरह विरक्त भी इस दुर्गुण से शिकार हो सकते हैं । कामुक चिन्तन विशुद्ध व्यभिचार है और गाँधी जी की तरह धर्म पत्नी के प्रति उच्च भावनाएँ रखे रहना भी ब्रह्मचर्य है । इसका मात्र जननेन्द्रिय से ही सम्बन्ध नहीं है । यह भावनात्मक संयम है । इन्द्रिय संयम के साथ-साथ इसमें भाव संयम भी जुड़ा रहना चाहिए

अपरिग्रह का अर्थ है—पैसा न छूना, सामान जमा करना नहीं है वरन् यह है कि लोभ के वशीभूत न होना । जो हाथ में है उसे जनता-जनार्दन की अमानत मानना और ईमानदार ट्रस्टी की भाँति हस्तगत सम्पदा को जन-कल्याण के निमित्त की काम में लाना । उसके माध्यम से सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का प्रयोजन पूरा करना । राजा जनक की तरह पास में बहुत कुछ होते हुए भी निर्धारण के अनुसार उसे अपरिग्रह ही कहा जायेगा ।

यम निर्धारण के पाँचों पक्षों में शारीरिक क्रिया-कलाप भी जुड़ते हैं पर मात्र इतने से ही उनकी पूर्ति नहीं हो जाती । उच्चस्तरीय भावनाओं का समन्वय इन पाँचों में अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इसलिए इन्हें मानस प्रधान मनोयोग की प्रक्रिया कहा जाय तो उचित ही होगा ।

दूसरा चरण पाँच नियमों का है । शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान । यह पाँचों यदि क्रियामात्र के रूप में सम्पन्न किए जायें तो वे लोकाचार भी रह जायेंगे । शरीर और कपड़ों की सफाई सभी करते हैं पर आध्यात्मिक शौच में वैचारिक एवं भावनात्मक स्वच्छता का भी समावेश होता है । सन्तोषी तो आलसी, प्रमादी, दरिद्र स्तर के लोग भी होते हैं । भाग्यवादियों का चिन्तन इसी प्रकार का होता है, पर यहाँ संकेत इस बात का है कि अनिवार्य निर्वाह को सामान्य नागरिक स्तर पर अपनाया जाय । लोभ, मोह, अहंकार से अपने को बचाया जाय । त्रिविधि ऐषणाओं से विचरणा, आकांक्षा को मुक्त कराया जाय । तप का अर्थ धूप या अग्नि के सामने गरम होना नहीं, वरन् अपने कषाय-कल्मषों का दमन करना है । इसे इन्द्रिय संयम समय संयम, अर्थ संयम, विचार संयम भी कह सकते हैं । ऐसा मनोनिग्रही काम-काजी या परिवारी होते हुए भी अन्तःक्षेत्र का तपस्वी हो सकता है । इसी प्रकार स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकें पढ़ते रहना नहीं, वरन् 'स्व' के सम्बन्ध में अध्यवसाय निरत होना है । ईश्वर प्रणिधान में जप, ध्यान, पूजा, अर्चना के क्रिया, कृत्य ही नहीं आते । उसका वास्तविक स्वरूप है, सर्वव्यापी, कर्मफल में निष्पक्ष न्यायाधीश जैसी स्थिति के परमेश्वर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अनुशासन को ठीक तरह पालन करना । कोई भी दुष्कर्म छिपकर भी न किया जाय । कर्मफल में विलम्ब होते देखकर निष्ठा को डगमगाने न देना । सन्मार्ग पर एकाकी चलते हुए भी अपने साथ परमसत्ता की उपस्थिति अनुभव करना । यही है ईश्वर प्रणिधान जिनमें कर्मकाण्ड तो नाममात्र का है । गहराई भावनाओं को ही अपनानी पड़ती है । यही है यम-नियम रूपी योगाभ्यास के प्रारम्भिक दो चरण ।

अध्यात्म अनुशासनों का मूलभूत प्रयोजन समझें

विद्वान बनने के लिए विद्यार्थी अध्ययन करते हैं । पहलवान बनने के लिए व्यायाम किया जाता है । किसान इसलिए जोतने, बोने, सींचने में लगा रहता है कि समयानुसार फसल कटेगी और कोठे भरेंगे । व्यवसायी, शिल्पी कलाकार आदि सभी वर्ग के लोग कुछ लाभदायक उद्देश्य सामने रखकर प्रयत्नरत होते हैं । उपलब्धियों की ललक ही उन्हें प्रेरणा देती है और तत्परता-तन्मयता जुटाये रह सकने वाली मनःस्थिति बनती है ।

लक्ष्य और प्रयास में संगति होनी चाहिए । कार्य और कारण का तारतम्य बैठना चाहिए । भ्रम हो जाने से प्रयास निरर्थक चले जाते हैं और परिश्रम करने वाले को निराशा, खीज और थकान पल्ले पड़ती है । ऐसी स्थिति में लक्ष्य या प्रयास की गरिमा उपयोगिता पर से विश्वास उठने लगता है । आवश्यक है कि किसी कार्य में हाथ डालने से पूर्व यह देख लिया जाय कि जो चाहा गया है, उसके लिए यह मार्ग है भी, या नहीं, यह मार्ग जहाँ पहुँचता है वहाँ हमें जाना है या नहीं । यदि लक्ष्य और प्रयत्न के बीच विसंगति रह रही होगी, तो सफलता की सम्भावना नहीं रहती । भ्रमग्रस्त, मनःस्थिति में अपनाया गया उत्साह अन्ततः अनास्था में बदलता है । इसलिए विज्ञजन यही परामर्श देते रहे हैं कि कार्य और कारण की, लक्ष्य और प्रयास की संगति बिठाते हुए प्रयत्नरत् हुआ जाय । भ्रान्तियों और भावुकता से ग्रस्त न रहा जाय । वस्तुस्थिति को समझे बिना अपनाई गई उतावली अन्ततः साहस ही तोड़ देती है । अध्यात्म-क्षेत्र में प्रवेश करते समय इस प्रकार की भ्रान्तियों से निपट लेना आवश्यक है ।

अध्यात्म प्रयोजनों से भौतिक लाभ उपलब्ध होने की बात कही जाती रही है, और इस प्रकार के माहात्म्य बताये जाते रहे हैं, उनमें प्रायः आदि और अन्त का वर्णन दीख पड़ता है । मध्यवर्ती प्रयासों का विस्तृत उल्लेख कदाचित् इसलिए नहीं किया गया है कि जिन दिनों शास्त्र रचे गए अथवा आप्त वचन कहे गए, उन दिनों सर्वसाधारण का चिन्तन और चरित्र उच्चस्तरीय था । यह कहने की आवश्यकता नहीं समझी गई कि इस क्षेत्र के प्रवेशकर्ताओं का, व्यक्तित्व की दृष्टि से पवित्र एवं प्रखर होना आवश्यक है । इस आरम्भिक शर्त से उन दिनों सभी परिचित थे, अस्तु उसकी चर्चा विस्तारपूर्वक करने की आवश्यकता नहीं समझी गई, और आदि तथा अन्त बताते हुए यह अनुमान लगा लिया गया कि मध्यवर्ती प्रक्रिया तो सर्वविदित है, उसे तो लोग—सामान्य बुद्धि से ही समझ रहे होंगे फिर किसी को पीसने से क्या लाभ ?

बन्दूक का घोड़ा दबाने और लक्ष्य बेधने का आदेश ही कप्तान देते हैं । वे जानते हैं कि इस प्रयोजन के लिए सिपाही कारतूस को बन्दूक में भरने की आवश्यकता से अवगत होंगे ही । इसमें भूल होने की आदेश देने वाले को आशंका नहीं रहती । कोई सिपाही कारतूस भरे बिना ही घोड़ा दबा दे और निशाने पर गोली न लगने पर लक्ष्य, बन्दूक, कप्तान आदि को दोष देने लगे, तो उसका आक्रोश निरर्थक माना जायेगा और कहा जायेगा कि नली में कारतूस डालने का सामान्य ज्ञान क्यों भुला दिया जाय ?

औषधि खाने और रोग अच्छा होने की ही आमतौर से चर्चा होती रहती है, निदान, पथ्य, परिचर्या, मात्रा, अनुपात आदि का उस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन नहीं किया जाता । क्योंकि हर कोई जानता है कि इलाज कराना है तो यह बात तो ध्यान में रखनी ही होती है, उनको तो हर हालत में अपनाना ही होता है ।

डॉक्टर बनने के लिए मेडीकल कालेज में प्रवेश, इंजीनियर बनने के लिए इंजीनियरिंग कॉलेज में भर्ती के लिए दौड़-धूप करनी होती है । अभिभावक और विद्यार्थी यह जानते हैं कि डॉक्टर या इंजीनियर बनने पर धन, यश, पद आदि की दृष्टि से सन्तोषजनक स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त होती है । कॉलेज में दाखिला मिलने पर सदा ध्यान केन्द्रित रहता है । दौड़-धूप होती है और प्रवेश मिलने पर सन्तोष की साँस ली जाती है । उत्साह से आँखें चमकने लगती हैं । इस माहौल में कोई यह प्रसंग नहीं उभारता कि पाँच वर्ष तक मनोयोगपूर्वक पढ़ना पड़ेगा, फीस, पुस्तकें, बोर्डिंग खर्च आदि का प्रबन्ध भी करना होगा । सभी जानते हैं कि यह तो अनिवार्य ही है । सभी करते हैं । इसके बिना तो लक्ष्य-पूर्ति का आधार खड़ा ही नहीं हो सकता । सामान्य ज्ञान को भी अकारण दोहराने और समय नष्ट करने की आमतौर से आवश्यकता नहीं पड़ती । कोई सर्वथा अनजान हो तो बात दूसरी है ।

उपयुक्त जोड़ी, विवाह निर्धारण और सुखी गृहस्थ जीवन की सगंति बिठाते हुए प्रयोजनकर्ता प्रसन्न होते हैं । इसकी मध्यवर्ती एक शर्त भी है कि वर-वधू अपने-अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का नियमित रूप से पालन करते रहें । इसकी उपेक्षा करके तो चयन-निर्धारण कितना ही उपयुक्त क्यों न हो, विवाह सफल नहीं हो सकता और सुखी गृहस्थ की आशा नहीं बँधती । फिर भी विवाह निर्धारण के लिए दौड़-धूप करते समय उपुयक्त चयन ही पर्याप्त मान लिया जाता है । इसकी चर्चा नहीं होती कि वे दोनों किस प्रकार गृहस्थ की गाड़ी चलावेंगे । सभी जानते हैं कि वर-वधू इतना तो स्वयं ही समझते होंगे न समझते होंगे तो परिवार वाले समझा लेंगे । यह सर्वविदित तथ्य है कि गृहस्थ की सफलता विवाह-संस्कार पर नहीं, जोड़ी के कर्तव्य पालन कर निर्भर है, पर उस प्रसंग को उस निर्धारण में तूल नहीं दिया जाय । सामान्य ज्ञान की बातों का दन्तवक्कड़ कौन बनाता है ?

उपर्युक्त उदाहरण इसलिए दिए गए हैं कि अध्यात्म-क्षेत्र की योगिक साधनाओं का स्वरूप और उनका सिद्धि-प्रतिफल बताते समय भी आदि और अन्त का ही वर्णन किया जाता रहा है । इसकी बहुत अधिक चर्चा नहीं की गई कि हर साधक को उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और उदात्त व्यवहार अपनाने की शर्त पूरी करने पर ही साधक कहलाने का अधिकार मिलता है । ओछा और घिनौना व्यक्तित्व बनाये रखकर कोई मात्र पूजा-पाठ के, तन्त्र-मन्त्र के सहारे उन सफलताओं को प्राप्त नहीं कर सकता, जो माहात्म्य-प्रतिपादन में बताई गई हैं ।

योग-साधना का प्रथम सोपान "यम और नियम" हैं, जिनका तात्पर्य है—जीवनचर्या में सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का समुचित समावेश । भक्ति-साधना में 'नामापराध' का निर्धारण है । नाम तो जपा जाय, पर चरित्र दोषों से लिप्त रहा जाय, तो उस पर भगवान का नाम बदनाम करने का अपराध लगेगा और छद्म करने का दण्ड सहना पड़ेगा । भक्ति-भावना का सत्परिणाम मिलना तो दूर, उल्टा भगवान के क्रोध का भागी बनना पड़ेगा । साधनात्मक कर्मकाण्डों की फल श्रुतियों को सुनाते-समझाते समय इस तथ्य के प्रतिपादकर्ताओं को इतना तो ध्यान रखना ही होगा कि उसे इस प्रयास में दृष्टिकोण में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता का उच्चस्तरीय समावेश करना है । इसकी उपेक्षा करने पर तो शेखचिल्ली की तरह उपहासास्पद बनना पड़ेगा । वह बेचारा यह तो भूल करता रहा कि आदि और अन्त की बात सोची, मध्यवर्ती क्रिया-प्रक्रिया की उपेक्षा करके रंगीन सपने देखने लगा । यह भूल वे लोग करते हैं, जो मन्त्र-जप मात्र से सम्पदाओं, विभूतियों से घर भर लेने के दिवास्वप्न देखते रहते हैं । सिर और पैर ही सब कुछ नहीं हैं, मध्यवर्ती धड़ की भी उपयोगिता और महत्ता है । इस तथ्य से हर किसी को अवगत होना चाहिए । साधना और सिद्धि के मध्य में चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता, संयम और सेवा की जीवन-साधना अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

भूल यह होती रही है कि विकृत भ्रम-ग्रस्तता द्वारा यह समझा या समझाया गया कि देवी-देवता पूजा-पाठ के भूखे बैठे रहते हैं और उतना-सा लालच दिखाकर उन्हें कुछ भी कराने के लिए वशवर्ती किया जा सकता है । उपासना को जादूगरी, बाजीगरी के समतुल्य ठहराया गया और सोचा गया कि उससे कौतुक-कौतूहल देखने-दिखाने वाले दृश्य सामने दौड़ने लगते हैं । मनोकामना सिद्धि के लिए यह सस्ते नुस्खे बाल-बुद्धि को बहुत सुहाये । बिना पात्रता और परिश्रम के ऐसे ही हाथों की हेरा-फेरी, जीभ से कुछ कहते रहने भर से ऋद्धि-सिद्धियाँ छप्पर फाड़कर घर में कूदेंगी । ऐसे ही कुछ अनगढ़ सपने तथाकथित साधकों के सिर पर छाये रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्हें सच मानने में मनुष्य की वह मनोवैज्ञानिक दुर्बलता सहायता करती है, जिसके अनुसार वह कम परिश्रम में अधिक लाभ कमाने की विडम्बनाएँ रचता रहता है और इस चिन्तन को परिपुष्ट करते-करते दुरभिसन्धियाँ-दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है । जुआ, सट्टा, लाटरी, गड़ा खजाना आदि की ललक इसी आधार पर उभरती है । उत्तराधिकार में दान-दहेज में विपुल धन मिलने की लिप्सा भी इसी कारण प्रचण्ड बनती और लूट-खसोट को अधिकार मानती, उसके लिए हठ करती देखी गई है । एक कदम और आगे बढ़ने पर मनुष्य छल-प्रपंच रचता या अपराध, आक्रमण पर उतारू होता है । मुफ्तखोरी अनैतिकता—अवांछनीयता की जन्मदात्री है । वह जिस कारण भी पनपे, उस पूरे परिकर की निन्दा की जानी चाहिए । योग्यता और श्रमशीलता के आधार पर उचित उपार्जन की ही प्रशंसा होती है । इसके अतिरिक्त जो भी मार्ग रह जाते हैं, वे सभी अनुचित एवं अहितकर हैं । उन्हें अपनाने से व्यक्ति और समाज की हर प्रकार हानि ही हानि है ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जिस तत्वज्ञान की संरचना, जिस साधना-विधान की निर्धारणा मात्र व्यक्तित्व में पवित्रता और प्रखरता का अनुपात बढ़ाने के लिए हुई थी, उसका आधार ही उल्टा जा रहा है । वह बिना मूल्य चुकाये, जिस-तिस प्रकार सम्पदाएँ बटोरने के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहित करता है । जबकि इसके ठीक उल्टा होना चाहिए था । अध्यात्मवादी को अपरिग्रही, स्वल्प और सन्तोष एवं औसत भारतीय स्तर का निर्वाह अपनाने वाला होना चाहिए था । औचित्य का पक्षधर एवं न्याय-नीति का समर्थन करना चाहिए । मनोकामना सिद्धि का तात्पर्य एक ही है—योग्यता और श्रमशीलता की मर्यादाओं को छलांग कर तुर्त-फुर्त नैतिक या अनैतिक उपाय से मनचाही सुविधाएँ हस्तगत कर लेना । जहाँ भी ऐसी प्रवृत्ति उभरती हो, समझना चाहिए कि नीतिमत्ता पर कुठाराघात हुआ और साथ ही अध्यात्म तत्वज्ञान के आधार पर समाप्त कर देने वाला कुचक्र चल पड़ा ।

भगवान, सिद्धिपुरुष, धर्मानुष्ठान, साधना-विज्ञान सभी इस मर्यादा में बँधे हैं कि न्याय एवं औचित्य का निर्वाह होता रहे । सत्प्रवृत्तियों को, उच्चस्तरीय निर्धारणों को मान्यता मिलती रहे । उनकी प्रतिष्ठा दिन-दिन गहरी बनती चले । इसके विपरीत यदि वह समुदाय तनिक-तनिक से प्रलोभनों से, मनुहारों से प्रभावित होकर तथाकथित भक्तजनों के साथ पक्षपात बरतने लगे, तो समझना चाहिए, औचित्य के आदर्श का अन्त होने जा रहा है । भगवान भी यदि ऐसा करेंगे, सिद्ध पुरुष भी यदि इतने ओछे सिद्ध होंगे, तो फिर न्याय-नीति की रक्षा कौन करेगा ? औचित्य का संरक्षण कहाँ मिलेगा ? यदि रिश्वत और चापलूसी भगवान को भी वशवर्ती कर सकती है—न्याय की, पात्रता की उपेक्षा करके यदि व्यक्तिगत कृत-अकृत का सिलसिला चल पड़े, तो फिर सामान्य लोगों को रिश्वत, खुशामद, भाई-भतीजावाद, पक्षपात जैसे अमान्य आधारों से विरत करने की बात कैसे बनेगी ?

सामान्य निर्धारण है, उचित मूल्य चुकाकर उचित उपलब्धियाँ प्राप्त करना । यदि आधार उच्चस्तरीय सत्ताओं ने ही निरस्त कर दिया और भक्तजनों को उसकी छूट दे दी, तो फिर समझना चाहिए कि औचित्य के आधार पर कुछ पाने की कष्टसाध्य प्रक्रिया कोई क्यों अपनाता रहता है । तब तपस्या की, संयम पराक्रम की, शोधन-परिष्कार की, कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाने की कोई उपयोगिता-आवश्यकता ही न रहेगी । सभी 'शार्ट-कट' ढूढ़ेंगे । इसकी प्रतिक्रिया का प्रत्यक्ष स्वरूप होगा, औचित्य के प्रचलन और अनुशासन का समापन। यदि यह क्रम चल पड़ा तो समझना चाहिए कि पूजा-पाठ और अनौचित्य का ठाठ-बाट यही दो इस संसार में शेष रहेंगे । उस आधार का समापन हो जायेगा, जिसके लिए धर्म-अध्यात्म की, भक्ति और भगवान की आवश्यकता अनुभव की गई है ।

संकट में एक-दूसरे की सहायता करना, उठाने और बढ़ाने में सहायता करना मानवी गरिमा का एक पक्ष है । उसे यथावत् चलना चाहिए । जिनके पास आत्मबल की सम्पदा है, वे उसे सहायता के लिए भी प्रयुक्त करते हैं, पर साथ ही औचित्य का भी ध्यान रखते हैं । जिस-तिस की उचित-अनुचित मनोकामनाओं की पूर्ति में वाहवाही के बदले उसे खर्च करने लगें तो समझना चाहिए कि 'सिद्ध पुरुष' कहलाने की अध्यात्म गरिमा से वे लोग बहुत नीचे आ गए । दाता और याचक के बीच में औचित्य की कसौटी रहती है । उसे समाप्त नहीं किया जा सकता है । तथाकथित भक्तजन और सिद्ध पुरुष मिलकर भी ऐसे भ्रष्टाचार को मान्यता नहीं दिला सकते । विश्व-व्यवस्था के कुछ मूलभूत सिद्धान्त हैं और उसमें उचित मूल्य चुकाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धियाँ प्राप्त करने की भी एक परम्परा है । सस्ते मोल, मँहगे साधन समेटे लेना विश्व-व्यवस्था से सर्वथा बाहर की बात है ।

सांसारिक सम्पदाओं का सीधा-सादा-सा उपाय-उपचार है—योग्यता की वृद्धि, समग्र श्रमशीलता, व्यावहारिक शालीनता एवं सुव्यवस्था—इन आधारों को अपनाकर ही व्यक्तियों और समाजों ने प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचने में सफलताएँ पायी हैं ।

अध्यात्म-विज्ञान के विद्यार्थियों को यह तथ्य गिरह में बाँध लेना चाहिए कि वह क्षेत्र चिन्तन एवं चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करने तथा व्यक्तित्व में पवित्रता-प्रखरता भर देने की सुव्यवस्था का है । इस दिशा में जो जितना आगे बढ़ता है, उसकी पात्रता—प्रामाणिकता का स्तर उतना ऊँचा उठता जाता है । फलतः आत्मबल के रूप में साहस, संकल्प एवं पुरुषार्थ के सत्प्रयोजनों में तत्परतापूर्वक निरत देखा जाता है । सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों से व्यक्ति भरा-पूरा दीखता है । जहाँ ऐसी स्थिति होगी, वहाँ आत्मिक ही नहीं, भौतिक सम्पदाओं की भी कमी न रहेगी । जिसे आत्मविश्वास उपलब्ध है, जिसने जन-सम्मान और जन-सहयोग अर्जित कर लिया, उसके लिए भौतिक सफलताएँ एवं सम्पन्नताएँ प्राप्त कर लेने में तनिक भी कठिनाई नहीं रहती । हाँ, साथ ही इतना भी आवश्यक होता है कि अध्यात्मवादी साधनारत व्यक्ति वैभव का उपभोग नहीं करता । उपार्जन कितना ही क्यों न कर ले, उसमें से औसत नागरिकों जैसा ही निर्वाह स्वीकार करता है । शेष को उदारतापूर्वक उस लोकमंगल के लिए हाथों-हाथ वापिस कर देता है, जिसके कंधों पर सार्वजनीन सुख-शान्ति का आधार टिका हुआ है ।

मानवी काया का सूक्ष्म विश्लेषण एवं उसका योग द्वारा सुनियोजन

वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति कर अपने सुख-सुविधाओं के समान एकत्र कर लेना और उन्हें सुनियोजित ढंग से प्रयुक्त कर अपनी जीवन-यापन की पद्धति को ऊँचा उठा लेना मानवी पुरुषार्थ का ही कमाल है । उसने प्रकृति के रहस्यों को अपनी पैनी बुद्धि से खोजा और उनका उपयोग करने की विधा विकसित की उसके लिए गत शताब्दियों के वैज्ञानिक उद्भव को श्रेय दिया जा सकता है, पर यही सब कुछ नहीं है । आत्मिकी के अनुशासन के अभाव में तो भौतिक के उच्छृंखल होने के अवसर बढ़ जाते हैं । आत्मिकी अर्थात् अध्यात्म के सिद्धान्तों का सुख-सुविधाओं के सुनियोजित उपयोग हेतु परिपालन । यह परिधि इतनी विशाल है कि व्यक्ति से लेकर विश्व-परिवार के प्रत्येक घटक को अपने अन्दर समाहित कर लेती है ।

अध्यात्म मनुष्य को जीवन जीने की कला का शिक्षण देता है । मानवी काया के समस्त यन्त्रों तथा उपार्जित वैभव रूपी पुरुषार्थजन्य अनुदानों का दुरुपयोग किन परिस्थितियों को जन्म दे सकता है ? इसका समग्र स्वरूप आत्मिकी की शिक्षाओं में देखने को मिल सकता है । अध्यात्म बताता है कि मनुष्य अपने उच्चस्तर से अपनी दुर्बलताओं के कारण ही अधःपतित होता है और दुःख, क्लेश भरा नरक भोगता है । मनुष्य को इस विश्व के साथ सम्पर्क बनाकर सुखानुभूति प्राप्त करने को तीन उपकरण मिले हुए हैं । यदि वह उनका ठीक तरह उपयोग जान सके तो उसे पग-पग पर यह अनुभव होगा कि यह संसार कितना सुन्दर और जीवन कितना मधुर है । इन तीन उपकरणों के नाम हैं—(१) अन्तरात्मा, (२) मन तथा (३) इन्द्रिय समूह ।

इन्द्रियों की बनावट ऐसी अद्भुत है कि दैनिक जीवन की सामान्य प्रक्रिया में ही उन्हें पग-पग पर असाधारण सरलता अनुभव होती है । पेट भरने के लिए भोजन करना स्वाभाविक है । भगवान की कैसी महिमा है कि उसने दैनिक जीवन की शरीर यात्रा भर की नितान्त स्वाभाविक प्रक्रिया को कितना सरस बना दिया है । उपयुक्त भोजन करते हुए जीव को कितना रस मिलता है और चित्त को उस अनुभूति से कैसी प्रसन्नता होती है ।

आँख का साधारण काम है, वस्तुओं को देखना ताकि हमारी जीवन यात्रा ठीक तरह चलती रह सके । पर आँखों में कितनी विचित्र विशेषता भर दी है कि वह रूप, सौन्दर्य, कौतुक जैसी रस भरी अनुभूतियाँ ग्रहण करके चित्त को प्रफुल्लित बनाती है । संसार में उत्पादन, परिपुष्टि, विनाश का क्रम नितान्त स्वाभाविक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । मध्यवर्ती स्थिति में हर चीज तरुण और सुन्दर लगती है । क्या पुष्प, क्या मनुष्य हर किसी को तीनों स्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है, मध्यकाल सुन्दर लगता है । वस्तुतः यह तीनों ही स्थितियाँ अपने क्रम, अपने स्थान और अपने समय पर सुन्दर हैं पर आँखों को सुन्दर-असुन्दर का भेद करके मध्य स्थिति को सुन्दर समझने की कुछ विचित्र विशेषता मिली है । फलस्वरूप जो कुछ उभरता हुआ विकसित परिपुष्ट दीखता है, सो सुन्दर लगता है । सुन्दर-असुन्दर का तात्विक दृष्टि से यहाँ कुछ भी अस्तित्व नहीं है पर हमारी विचित्र आँखें ही हैं जो अपनी सौन्दर्यानुभूति वाली विशेषता के कारण हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित समीपवर्ती वस्तुओं में से सौन्दर्य वाला भाग देखती, आनन्द अनुभव करतीं, उल्लसित और पुलकित होती हैं तथा चित्त को प्रसन्न करती हैं ।

इसी प्रकार जननेन्द्रिय की प्रक्रिया है । प्रजनन मक्खी-मच्छरों, कीट-पतंगों, बीज-अंकुरों में भी चलता रहता है । यह सृष्टि का सरल स्वाभाविक क्रम है, पर हमारी जननेन्द्रिय में कैसा अजीब उल्लास सरावोरकर दिया है कि संभोग के क्षण ही नहीं—उसकी कल्पना भी मन के कोने-कोने में सिहरन, पुलकन, उमंग और आतुरता भर देती है । तत्वतः बात कुछ भी नहीं है । दो शरीर के दो अवयवों का स्पर्श-इसमें क्या अनोखापन ? क्या निरालापन है ? क्या उपलब्धि है ? फिर स्पर्श का कुछ प्रभाव हो भी तो उसकी कल्पना से किस प्रकार, क्यों, किस लिए चित्त को बेचैन करने वाली ललक पैदा होनी चाहिए ? बात कुछ भी नहीं है । जननेन्द्रिय की बनावट में एक अजीब प्रकार की सरलता का समावेश मात्र है जो हमें सामान्य, स्वाभाविक दाम्पत्य-जीवन के वास्तविक या काल्पनिक प्रत्यक्ष और परोक्ष क्षेत्र में एक विचित्र प्रकार की रसानुभूति उत्पन्न करके, जीने भर के लिए प्रयुक्त हो सकने वाले जीवन को निरन्तर उमंगों से भरता रहता है ।

ऊपर जीभ आँख की ओर जननेन्द्रिय की चर्चा हुई, कान और नाक के बारे में भी इसी प्रकार समझना चाहिए । यहाँ कान भाग वाला इन्द्रिय समूह अपने साथ रसानुभूति की विलक्षणता इसलिए धारण किए हुए है कि सरस स्वाभाविक सामान्य जीवन क्रम ऐसे ही नीरस ढर्रे का जीने भर के लिए मिला हुआ प्रतीत न हो वरन् उसमें हर घड़ी उत्साह, उल्लास रस, आनन्द बना रहे और उसे उपलब्ध करते रहने के लिए जीवन की उपयोगिता, सार्थकता और सरलता का भान होता रहे । इन्द्रिय समूह हमें इसी प्रयोजन के लिए उपलब्ध है । यदि उनका उचित, संयमित, विवेकपूर्ण, व्यवस्थापूर्वक उपयोग किया जा सके तो हमारा भौतिक सांसारिक जीवन पग-पग पर सरसता, आनन्द उपलब्ध करता रह सकता है ।

दूसरा उपकरण मन इसलिए मिला है कि संसार में जो कुछ चेतन है उसके साथ अपनी चेतना का स्पर्श करके और भी ऊँचे स्तर की आनन्दानुभूति प्राप्त करे । इन्द्रियाँ जड़ शरीर से सम्बन्धित हैं, वे जड़ पदार्थों का स्पर्श करके उस संसर्ग का सुख लूटती हैं । जड़ का जड़ से स्पर्श भी कितना सुखद हो सकता है । इस विचित्रता का अनुभव हमें इन्द्रियों के माध्यम से होता है । चेतन का चेतन के साथ, जीवधारी का जीवधारी के साथ स्पर्श-सम्पर्क होने से मित्रता, ममता, मोह, स्नेह, सद्भाव, घनिष्ठता, दया, करुणा, मुदिता जैसी अनुभूतियाँ होती हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में द्वेष, घृणा जैसे भाव भी पैदा होते हैं, पर उसका अस्तित्व इसीलिए है कि मित्रता के वातावरण में सम्पर्क, संसर्ग का आनन्द बिखरता रहे, यदि अन्धकार न हो तो प्रकाश की विशेषता ही नष्ट हो जाय । वस्तुतः मन की बनावट दूसरों के सम्पर्क में सहयोग, स्नेह भावों के आदान-प्रदान का सुख प्राप्त करने में है । मेलों-ठेलों में, सभा-सम्मेलनों में जाने की इच्छा इसलिए उठती है कि उन जन संकुल स्थानों से व्यक्ति की घनिष्ठता न सही समीपता का अदृश्य सुख तो अनायास मिलता ही है ।

चूँकि इन्द्रिय सुख और मन सम्पर्क की घनिष्ठता में सहायक एक और नया माध्यम सभ्यता के विकास के साथ-साथ बन कर खड़ा हो गया है । इसलिए अब प्रिय वह भी लगने लगा है, इस तीसरे मनुष्यकृत आकर्षण तत्व का नाम है—धन, धन में स्वभावतः कोई आकर्षण नहीं । इसमें इन्द्रिय समूह या मन को पुलकित करने वाली कोई सीधी क्षमता नहीं है । धातु के सिक्के या कागज के टुकड़े भले आदमी के लिए प्रत्यक्षतः क्यों आकर्षक हो सकते हैं, पर चूँकि वर्तमान समाज व्यवस्था के अनुसार धन के द्वारा इन्द्रिय सुख के साधन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त होते हैं । मैत्री भी सम्भव होती हैं, इसलिए धन भी प्रकारान्तर रूप से मन का प्रिय विषय बन गया । अस्तु धन की गणना भी सुखदायक माध्यमों से जोड़ ली गई है ।

तीन शरीरों को जीवात्मा धारण किए हुए है । तीनों की तीन रसानुभूतियाँ हैं । ऊपर दो की चर्चा हो चुकी हैं । स्थूल शरीर की सरलता-इन्द्रिय समूह के साथ जुड़ी हुई है । आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसे सुख इन्द्रियों द्वारा ही मिलते हैं । सूक्ष्म शरीर का प्रतीक मन है । मन की सरलता मैत्री—जन-सम्पर्क पर अवलम्बित है । परिवार मोह से लेकर समाज सम्बन्ध, नेतृत्व, सम्मिलन, उत्सव आयोजन जैसे सम्पर्क परक अवसर मन को सुख देते हैं । घटित होने वाली घटनाओं को अपने ऊपर घटित होने की सूक्ष्म सम्वेदना उत्पन्न करके वह समाज की अनेक हलचलों से भी अपने को बाँध लेता है और उन घटना क्रमों में खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ उपलब्ध करता है । उपन्यास, सिनेमा, अखबार, रेडियो आदि मन को इसी आधार पर आकर्षित करते और प्रिय लगते हैं ।

तीसरा रसानुभूति उपकरण है—अन्तरात्मा । उसका कार्य क्षेत्र 'कारण शरीर' है । उसमें उत्कृष्टता उत्कर्ष, प्रगति, गौरव की प्रवृत्ति रहती है जो उच्च भावनाओं के माध्यम से चरितार्थ होती है । मनुष्यता की श्रेष्ठता और सन्मार्ग गामिता प्रखर होती रहे इसके लिए उसमें भी एक रसानुभूति विद्यमान है—उसका नाम है वर्चस्व, यश, कामना, नेतृत्व तथा गौरव प्रदर्शन । उस आकांक्षा से प्रेरित होकर मनुष्य अगणित प्रकार की सफलताएँ प्राप्त करता है ताकि वह स्वयं दूसरों की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ, पुरुषार्थी, पराक्रमी, बुद्धिमान अनुभव करके सुख प्राप्त करे और दूसरे लोग भी उसकी विशेषताओं, विभूतियों से प्रभावित होकर उसे यश तथा मान प्रदान करें ।

कारण शरीर के साथ एक तथ्य यह और जुड़ा है कि यदि इसे सही दिशा न मिले और विकृति की ओर मुड़ जाय तो अहम्, बड़प्पन की ललक, उद्दण्डता के रूप में इसकी परिणति हो सकती है । श्रेष्ठता सहज है, मानवी गरिमा के अनुरूप है परन्तु जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार जो मनुष्य के पल्ले बँधे रहते हैं । सतत संघर्ष हेतु उसे उत्तेजित करते हैं । उनके सामने माथा टेक देने वाले आत्मिक दृष्टि से उन्नति नहीं कर पाते, भ्रम में उलझकर अपनी दुर्गति और करा लेते हैं । कारण शरीर रसमय सम्वेदना का समुच्चय काया का एक अमूल्य उपकरण है । इसका सुनियोजन कर व्यक्ति देश भक्त, सुधारक, परमार्थपरायण, विभूतिवान बनता है । सत्प्रवृत्तियों के साथ सम्मान एवं यश तो सहज की जुड़ा रहता है । ऐसे व्यक्ति छोटे-छोटे आकर्षणों एवं चाटुकारों की निन्दा प्रशंसा से प्रभावित न होकर स्वयं को सन्मार्गगामी बनाये रखते हैं ।

जब भी कभी पुरुषार्थ के साथ उच्चस्तरीय प्रयोजन जुड़ जाते हैं तो यही कारण शरीर कलाकारिता साहित्य, समाज सेवा, राष्ट्रभक्ति, दलितोत्थान, वैज्ञानिक शोध जैसे क्षेत्रों में मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ पद पर पहुँचा कर रहता है । अभी तक हुए महामानवों ने इसी स्तर की साधना की है व दैवी अनुग्रह उन पर लोक सम्मान और जन सहयोग के रूप में बरसा है । यश न पचाने वालों ने अब तक विश्व में सारी दुरभि सन्धियाँ रची हैं । सारे षड्यन्त्रों, कलह, द्वेष के मूल में अहं की विकृति ही मुख्य भूमिका निभाती है । इन सभी में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं जो उन्हें ऋषि, देवदूत स्तर तक पहुँचा सकती थीं लेकिन जीवन का एक भटकाव, शरीर के इस उपकरण का विकृत मोड़ मनुष्य को उस श्रेष्ठता से वंचित कर देता है जिसका कि वह श्रेयाधिकारी आसानी से बन सकता था । मानव का यह विश्लेषण उस स्तर तक करना इस कारण अभीष्ट भी है कि अगणित व्यक्ति अपने जीवन-प्रवाह के हिचकोलों के मूल कारण को समझ नहीं पाते ।

संक्षेप में यह मनुष्य के तीन शरीरों की, तीन रसानुभूतियों की चर्चा हुई । हमारी अगणित योजनाएँ इच्छा, आकांक्षाएँ—गतिविधियाँ इन्हीं तीन मूल प्रवृत्तियों के इर्द-गिर्द घूमती हैं जो कुछ मनुष्य सोचता है और करता है उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । भगवान ने यह तीन उपहार जीवन को सरसता से भरा-पूरा रखने के लिए दिए हैं । साथ ही उनका अस्तित्व इसलिए भी है कि व्यक्ति निरन्तर सक्रिय बना रहे । इन सुखानुभूतियों को प्राप्त करने के लिए उनके तीनों शरीर निरन्तर जुटे रहें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दमन अपने आपे का

संयम साधना में एक प्रमुख सोपान "दम" का आता है । "दम" का अर्थ है, दमन । दमन किसका ? अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्र में संव्याप्त अवांछनीयताओं का ।

विषय अध्यात्म का होने से यहाँ सर्वप्रथम अपने अन्तरंग क्षेत्र को प्रधानता देनी होगी और देखना होगा कि अपने भीतर कितना, किस प्रकार का कूड़ा-करकट किस-किस दुष्प्रवृत्ति के रूप में वहाँ जम गया है । अनुपयुक्तता अपने गुण, कर्म, स्वभाव में जिस रूप में भी जम गई हो वहाँ से उसे बुहार कर बाहर किया जाय । कुछ घटक ऐसे होते हैं जिन्हें बुहारने भर से काम नहीं चलता, वरन् उसे किसी गड्ढ़े में दबा दिया जाता है, जिससे वहाँ गढ़ा रह कर खाद बनने लगे । यह दबा देना भी दम है । इसके अतिरिक्त दबोच देना भी दम है । घर में रहने वाले, बिच्छू, साँप, कानखजूरे, बर्र, ततैये आदि को निरस्त ही करना पड़ता है । सिर में रहने वाले जुएँ और पलंग के छिद्रों में बैठे खटमलों को दबोचे बिना काम नहीं चलता । न दबोचा जाय तो वे अपने ऊपर हावी होते हैं और जीना दूभर करते हैं । मक्खी, मच्छरों को पालते तो नहीं रहा जा सकता, गली में शौचालय में उत्पन्न होने वाले कृमि कीटकों को फिनायल, चूना आदि छिड़क कर निरस्त ही करना पड़ता है । अवांछनीयता को निरस्त करना दबाना भी 'दम' का ही एक अंग है । अनुचित बढ़ेगा तो चुप नहीं बैठा रहेगा जो उचित है उसे ग्रसेगा । फसल के कीड़ों से न निपटा जाय तो उगाये अन्न को पक कर घर तक पहुँचने से पहले ही वे उसे समाप्त कर देंगे । इसलिए अवांछनीयता के विरुद्ध संघर्ष को उचित माना गया है । उसे कई बार तो सराहा भी गया है ।

मनुष्य स्वभाव में विलासिता, चटोरापन, असंयम, आलस्य आदि अनेक दुर्गुणों की घुस-पैठ हो जाती है । आवेश में आने और कटुवचन बोलते रहने की भी आदत पड़ जाती है । फिजूल खर्च और कुकल्पनाएँ भी कम हानिकारक नहीं हैं । नशेबाजी स्वभाव का अंग बन जाने से छूटने का नाम नहीं लेती और छुड़ाने पर विद्रोह खड़ा करती है । क्या इन्हें इसी रूप में सहन करते रहा जाय ? क्या उनके विरुद्ध कोई कदम न उठाया जाय ? कोई संघर्ष न छेड़ा जाय ?

कहा गया है, मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए आता है । उसके साथ अनेक निकृष्ट योनियों के स्वभाव जुड़े आते हैं और वह जन्म-जात रूप में कुसंस्कारों के भण्डार के रूप में होता है । उस अनगढ़ स्थिति को नर पशु या शूद्र कहा गया है । मानवी गरिमा के अपने उत्तरदायित्व और अनुशासन हैं । वे सीखने और सिखाने पड़ते हैं । बोलना किसी को जन्म से नहीं आता जो उच्चारण सुनता है उसका अर्थ और क्रम समझते-समझते स्वयं भी बोलने लगता है । लिखना-पढ़ना माँ के पेट से सीख कर नहीं आता । अक्षर ज्ञान और शब्दकोष स्कूल की रगड़ाई जैसी पढ़ाई से ही सीखा जाता है । कला-कौशल भी सीखे सिखाये ही जाते हैं । यह आशा करना व्यर्थ है कि सत्प्रवृत्तियों की विभूतियाँ अनायास ही उग पड़ेंगी । हेय वातावरण में पले बालक तो प्रायः कुसंस्कारी ही पाये जाते हैं ।

अपने नाक, कान, आँख, पीठ, कण्ठ, तालु, दाँत तक को हम स्वयं नहीं देख सकते तो दुर्गुणों को किस प्रकार देख पायेंगे । इन कमियों को विचारशील गुरुजन बताते हैं और मनुष्य तथा पशु के स्तर का अन्तर समझाते हुए यह बताते हैं कि यह करने योग्य है, यह नहीं यह छोड़ने योग्य और यह बढ़ाने योग्य । इस सुधार परिष्कार प्रक्रिया के आधार पर ही व्यक्तित्व निखरता है और व्यक्ति पशु से मनुष्य बनता है । इस प्रक्रिया को अपनाया जाय तो मनुष्य भी वनमानुष की तरह पुत्री, भगिनी या माता से सन्तानोत्पादन करने लगेंगे । निर्वसन घूमेंगे और मल-मूत्र त्यागने के उपरान्त सफाई करने की आवश्यकता न समझेंगे ।

जन्मजात रूप से हर मनुष्य इसी कुसंस्कारी स्थिति में उत्पन्न होता है । उसे शालीनता, शिष्टता अभिभावकों और गुरुजनों से सीखनी पड़ती है । लोक-व्यवहार के प्रभावों से भी बहुत कुछ सीखा समझा जाता है । क्या उचित है, क्या अनुचित इसे दूसरे बता सकते हैं । स्वाध्याय और सत्परामर्श से भी यह जाना जा सकता है । पर वह सुधार परिवर्तन करना स्वयं ही पड़ेगा । हम आहार, निद्रा, शिक्षा, मल-मूत्र त्याग आदि कार्य स्वयं अपने बल-बूते पर ही करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ठीक इसी प्रकार सुसंस्कारिता सम्वर्धन भी स्वयं ही करना पड़ता है । दूसरे रास्ता बता सकते हैं, पर अपने बदले वे चल नहीं सकते । चलना तो अपने ही पैरों द्वारा पड़ेगा । साथ ही आत्म-परिष्कार भी होगा ।

मन और इन्द्रियाँ इतने प्रकार की ललकें अपने भीतर सँजोये हुए हैं, जिनका कोई अन्त नहीं । महत्त्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं । आवश्यकताएँ तो पूरी की जाती हैं, पर तृष्णाएँ तो ऐसी आग हैं, जिनमें ईंधन डालते चलने पर वह अधिकाधिक प्रज्ज्वलित ही होती जायेंगी । मन न जाने कितना बड़प्पन और वैभव चाहता है । इन्द्रियों की ललक है कि जितने विलासी उपभोग इस दुनिया में हैं वे सभी अपने को उपलब्ध हो जायें । अहंकार इतना उद्वेलित है कि वह रावण की तरह देवताओं तक को नीचा दिखाना और पाटी से बाँध कर रखना चाहता है । यही तीनों वासना, तृष्णा और अहंता की दुष्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो उन्मादी पर चढ़े भूत की तरह हर घड़ी रहती हैं और अनुशासन ढीला पड़ते ही वह कर-गुजरती हैं जो नहीं किया जाना चाहिए था ।

अन्तरंग में विचारणाएँ जमती हैं और शरीर को आदतें अपना वशवर्ती बनाकर कठपुतली की तरह नचाती है । बेचारा विवेक, न्याय और औचित्य तो किसी कोने में ही पड़ा सड़ता रहता है । उनकी कोई खैर खबर तक नहीं लेता । इस दयनीय दुर्दशा में अपने-आपको उबारने के लिए जो आक्रोश एवं साहस भरे प्रयत्न किए जाते हैं, उन्हें दम कहते हैं । जिस प्रकार हिंस्र जन्तुओं का, आततायी तस्करों का दमन किया जाता है । उसी प्रकार अपनी भीतरी और बाहरी दुष्प्रवृत्तियों से लड़ा जाना चाहिए और उन्हें उल्टी से उलट कर सीधा किया जाना चाहिए ।

आत्म परिशोधन सबसे अधिक सरल भी है और सबसे अधिक कठिन भी । सरल इस मानी में कि हम जब पशुओं, परिजनों, नौकरों से मनमर्जी का काम करा सकते हैं तो अपने आपे को गलत दिशा में तोड़-मरोड़ कर सीधे रास्ते चल पड़ना क्यों दुष्कर होना चाहिए । कठिन इसलिए है कि आदतें विषाणुओं की तरह नस-नस में कण-कण में चिन्तन-चरित्र और व्यवहार में इस प्रकार जड़ें जमा लेती हैं जिन्हें सहज ही छुड़ा सकना कठिन पड़ता है । चिपकी हुई जोंक पेट भर कर खून पी लेने पर छूटती है । भले ही खींचने पर वह टूट क्यों न जाय । दुष्प्रवृत्तियों का, बुरी आदतों का स्वरूप भी प्रायः ऐसा ही है । समझाने बुझाने से तो वे मानती ही नहीं उनके लिए तब तितीक्षा स्तर का कदम उठाने की आवश्यकता पड़ती है और अपने अन्दर वाले भगवान और शैतान के बीच खड़े किए गए इस महाभारत में स्वयं दर्शक मात्र न रहकर अर्जुन की तरह गाण्डीव सधाने की और हस्त की प्रकृष्टता अपनानी पड़ती है जिससे सारा मैदान तीरों से बेध दिया जाय ।

सपेरा हर समय साँप को पालते, खिलाते हुए भी उसकी हरकतों पर पूरा ध्यान रखता है अन्यथा उसे जान से हाथ धोना पड़ सकता है । शेरों से सरकस में मनमाने काम कराने वाले रिंग मास्टर कितने कौशल और साहस का परिचय देते हैं । ठीक ऐसा ही पराक्रम अपने को पशु-स्तर से परिवर्तित करके सुसंस्कारी मनुष्य स्तर का देवोपम बनाना पड़ता है । इस तीखी, मीठी सुधार और दुलार की उभय-पक्षीय प्रक्रिया का नाम 'दम' है । अन्य किसी को दबाना भले ही विचारणीय हो पर अपना दमन प्रशिक्षण परिवर्तन तो करना ही चाहिए । योगाभ्यासी के लिए यह नितान्त आवश्यक है ।

अपरिग्रह आज क्यों इतना जरूरी है ?

भारतीय धर्म एवं संस्कृति में अपरिग्रह को मानवीय सद्गुणों में विशिष्ट स्थान मिला है । जीवन लक्ष्य की प्रथम अनिवार्यता 'यम' के अन्तर्गत इसे सत्य, अहिंसा, अस्तेय व ब्रह्मचर्य के समकक्ष स्थान प्राप्त है । इसे पंच महाव्रतों में एक माना गया है । बौद्ध व अन्याय प्रशाखाओं में भी परिग्रह को निन्दनीय ही ठहराया गया है ।

इतर धर्म दर्शन में भी इसके महत्त्व को पूरी तरह स्वीकारा गया है । इस्लाम, ईसाई, पारसी आदि धर्मों में इसे मानवीय कर्तव्य के अन्तर्गत माना गया है । परिग्रह को पाप व अपरिग्रह को पुण्य की संज्ञा भारतीय दर्शन में मिली है ।

अपरिग्रह से तात्पर्य है—"प्रकृति व समाज प्रदत्त वस्तुओं को औचित्य से अधिक अपने पास संग्रहीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं करना और न औचित्य से अधिक उपभोग करना ।" परिवार में दस सदस्य होते हैं तो चौके में जो भी रसोई बनती है या बाजार से जो मिठाई आती है—कपड़ा व अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीदी जाती हैं, उनमें प्रत्येक को समान भाग मिलता है । ठीक उसी प्रकार संसार के समस्त प्राणियों को, मनुष्यों को एक परिवार मानकर अपने भाग की वस्तुओं का उपभोग व संग्रह करना अपरिग्रह है । यह मनुष्य का धर्म है । औचित्य की इस सीमा का उल्लंघन 'पाप' माना जाता है ।

परिग्रह को पाप तथा अपरिग्रह को पुण्य क्यों माना गया है ? यह प्रश्न प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मन में उठना स्वाभाविक है । आज के कई मत व वाद परिग्रह को पाप नहीं मानते । जैसे अर्थशास्त्र पूँजी को व्यक्ति की अपनी परिग्रह वृत्ति व कष्ट सहिष्णुता का परिणाम मानता है और उसके औचित्य को स्वीकारता है । वह उसके औचित्य-अनौचित्य को नहीं देखता । यह मान्यता व्यक्ति को व्यक्तिवादी बनाती है । व्यक्तिवाद समाज की प्रगति का शत्रु है । अपरिग्रह को पुण्य मानने के पीछे मूल कारण यही है कि यह वृत्ति व्यक्ति को समाज से जोड़ती है । यह वह पुल है जो समाज व व्यक्ति के बीच की खाई को पटाता है ।

अपरिग्रही व्यक्ति समाज के हित से निरन्तर कटता जाता है । उसे अपने हित का तो ध्यान रहता है किन्तु अपने हित के साथ होने वाले दूसरों के अहित को वह नहीं देखता । वह ब्याज कमाने के लिए धन संग्रह करता है । अधिक लाभ कमाने के लिए धन संग्रह करता है । अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से ऐसी वस्तुओं पर साँप बनकर बैठ जाता है जिसके अभाव में जनता दुःखी होती है । आज ऐसे ही व्यक्तियों की समाज में बाढ़ है ।

परिग्रह का अर्थ संग्रह करना ही नहीं है, वरन् अपने उपभोग, सुख, ऐश्वर्य व अधिक लाभ पाने के उद्देश्य से इकट्ठी की हुई वस्तुएँ व धन सम्पदा आदि सभी परिग्रह की सीमा में आती हैं । जिसके पीछे लोकहित का—परमार्थ का उद्देश्य हो व प्रत्यक्ष-परोक्ष में उसका अपना हित व समाज का अहित न हो, वह परिग्रह नहीं ।

जब परिग्रह को मानव धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग निर्धारित किया गया । उन दिनों व्यक्ति की आवश्यकताएँ भी सीमित थीं । व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक आत्म-निर्भर था । पारस्परिक निर्भरता की परिधि ग्राम व प्रदेश तक ही सीमित थी । तब अपरिग्रह वृत्ति इतनी अनिवार्य नहीं थी, जितनी आज है । किन्तु आज समय बदल गया है । अपनी अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य समाज पर निर्भर है, व्यक्ति की आत्म-निर्भरता आज के वैज्ञानिक युग में लगभग समाप्त ही हो गई है । ऐसी स्थिति में अपरिग्रह का महत्त्व और भी बढ़ जाता है ।

अर्थशास्त्र की उपभोगवादी दृष्टि के कारण भी मुद्रा अपनी सार्वदेशिक तथा सार्वभौमिक क्रय-शक्ति से सम्पन्न होने के कारण परिग्रह अर्थात् संचय और भी सुलभ कर देती है । एक व्यक्ति आज अरबों-खरबों रुपयों पर अपना स्वत्व आसानी से जमाये रख सकता है । उनके रक्षण तथा स्थानान्तरण में उसे कोई विशेष जोखिम तथा व्यय नहीं उठाना पड़ता । ऐसी स्थिति में व्यक्ति की तृष्णा भी सुरसा के मुँह की तरह फैलने लगी है ।

अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, मुद्रा की क्रय-शक्ति, वैज्ञानिक प्रगति, यान्त्रिक सभ्यता, अधिकोष (बैंकिंग) सुविधाओं की प्रचुरता, यातायात व संचार के द्रुत साधनों ने मनुष्य की उपार्जन शक्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि कर दी है । वे ही साधन सामाजिक वैषम्य को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध हो रहे हैं । उसे आज की वैज्ञानिक प्रगति का एक अभिशाप मानें तो अत्युक्ति न होगी ।

दूर क्यों जायें ? हमारे देश की ही दशा देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि व्यक्ति अपने विश्व मानव परिवार के सदस्यों के हिस्से की, उनके मुँह की रोटी को किस निर्दयता से छीनकर अपने खजाने को भर रहा है । इसके लिए वह नीति-अनीति, औचित्य-अनौचित्य की चिंता नहीं करता । लोग दाने-दाने को तरसें, किन्तु स्वार्थ की मदिरा पी मदमस्त हुए लोगों को अपने गोदामों में अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से लाखों टन खाद्यान्न छिपाते हुए लज्जा नहीं आती । यही हाल अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का है । अधिक लाभ कमाने का लोभ जिन व्यापारियों को मन में शेर की दाढ़ में खून की तरह लग गया है वे जाने क्या-क्या हथकण्डे अपनाते हैं । यह बताने की आवश्यकता नहीं । उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिणामस्वरूप देश में गरीबी, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार आदि अनेकानेक समस्याएँ उठ खड़ीं हुई हैं ।

यदि रुपये को आधार मानकर देखा जाय कि किस व्यक्ति को कितना प्रतिशत मिल रहा है । तो आज की इस लूट-खसोट का स्वरूप सामने आ जाता है । हमारे देश की कुल जनसंख्या के ४० प्रतिशत व्यक्तियों की मासिक आय पन्द्रह रुपये से भी कम है । २४ प्रतिशत की आय ३०० से ५०० रुपये तथा २७ प्रतिशत उच्च मध्यवर्ग की मासिक आय पाँच से दस हजार रुपये तथा केवल ६ प्रतिशत लोगों की आय इससे अधिक है । इसी वर्ष वित्त मन्त्री ने प्रति व्यक्ति आय के जो आँकड़े प्रस्तुत किए हैं उनके अनुसार भारत में गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले कुल ३२ करोड़ आदमी हैं । २५ करोड़ से अधिक व्यक्तियों की आय राष्ट्रीय आय से भी कम है । जिसके हाथों में साधन, सत्ता व सामर्थ्य है वह हजार हाथों से धन लूट रहा है, हिस्सा छीन रहा है । उदार अर्थवाद परिग्रह की ऐसी वृत्ति समाज में लाया है कि सारा ढाँचा ही चरमरा गया है ।

सोवियत रूस की साम्यवादी क्रांति इसी वैषम्य की पृष्ठभूमि पर उपजी थी । डण्डे के बल पर, शस्त्र के बल पर उन लोगों से उनके वे खजाने छीन लिए गए जो उन्होंने लोगों का रक्त चूस-चूस कर भरे थे । किन्तु अधिनायकवाद ने इस क्रांति को भी खोखला सिद्ध कर दिया । राष्ट्रीयकरण की गतिविधियाँ हमारे देश में चलीं किन्तु इससे समस्या का वास्तविक समाधान तो हो नहीं सका, अपितु सत्ता का ढाँचा जरूर अस्त-व्यस्त हो गया ।

धर्म के शाश्वत नियमों जिनमें अपरिग्रह मूल है, का पालन आज के युग में और भी अनिवार्य हो गया है । उनके पालन में ही व्यक्ति का अपना तथा अपने समाज का हित है । यदि आज का यह भ्रमित मनुष्य पुनः उस राह पर नहीं चलता व शोषित वर्ग विद्रोह नहीं करता तो प्रकृति की दण्ड-व्यवस्था तो ज्यों की त्यों है ही । इसे अक्षरशः सत्य मानना चाहिए कि आध्यात्मिक समाजवाद एक भवितव्यता है, सत्य है । लोगों को धर्म की सम्वेदना की धुरी पर नियन्त्रित कर उन्हें उसी तरह समाजवादी की, साम्यवाद की धारा में बलात् मोड़ा जा सकता है जैसे कभी बुद्ध व महावीर के समय में हुआ था । तब भिखारी बनने में, समाज के नव-निर्माण के लिए बढ़-चढ़ कर काम करने में लोग शान का अनुभव करते थे । जो परिग्रह करता था वह निंन्दा की दृष्टि से देखा जाता था एवं सौ हाथों से कमाकर हजार हाथों से लुटाने वाले 'शत हस्तं समाहर, सहस्र हस्तं संकिर' अक्षय कीर्ति को प्राप्त होते थे । आज भी प्रायः वैसा ही समय है । समय रहते यदि मनुष्य न बदले तो समाज की बदलती दिशा धारा उसे स्वयमेव बदल देगी एवं जिनके पास बहुत अधिक है, छीनकर उसे लुटा देगी जिन्हें इसकी आवश्यकता है । इक्कीसवीं सदी यही संदेश लेकर आ रही है कि ओढ़ी हुई गरीबी ही शान की प्रतीक मानी जाने वाली है । मनुष्य समझदारी से यह कार्य स्वयमेव पहले कर ले तो उसी का हित है ।

आत्मशोधन की संयम साधना

योग विद्या का वर्गीकरण विश्लेषण अनेक दृष्टिकोणों से अनेक खण्डों में किया जा सकता है पर सरलता की दृष्टि से उसके दो विभाजन ही अधिक उपयुक्त पड़ते हैं । एक अध्यात्म-योग दूसरा हठयोग या तन्त्रयोग । अध्यात्म-योग को राजयोग भी कहा जा सकता है । दोनों का लक्ष्य एक होते हुए भी उनकी विधि व्यवस्था पृथक्-पृथक् है ।

जीवन सत्ता दो भागों में बाँटी जा सकती है शरीर और प्राण । इनके सम्मिलन से जीवन-धारा प्रवाहित होती है । इसे प्रकृति पुरुष का संयोग भी कह सकते हैं । शरीर पंच तत्वों से बना है । पंच तत्व प्रकृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । उन्हें जड़ भी कहा जाता है । जड़ का तात्पर्य है—विचार विहीन भावना शून्य । यों तो जादू में भी हलचल रहती है । प्रकृति के सब से छोटे घटक परमाणु द्रुतगति से अपनी कक्षाओं में परिभ्रमण करते रहते हैं । स्थिति के अनुरूप उनके गतिचक्र में परिवर्तन भी होता रहता है । यह हलचलें अस्तित्व बने रहने तक चलती ही रहती हैं । प्राण निकल जाने पर काया बिना किसी की प्रतीक्षा किए अपनी अन्त्येष्टि करने में स्वयं लग जाती हैं । उसमें सड़न पैदा हो जाती है । कृमि उपज पड़ते हैं जो मृत कलेवर को खा-पीकर समाप्त कर देते हैं । साथ ही स्वयं भी मर जाते हैं । चील, कौए, स्यार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुत्ते उनके कार्य में सहायता करते हैं । इससे पूर्व सम्बन्धियों, कुटुम्बियों ने वह कृत्य स्वयं पूरा कर लिया हो तो बात दूसरी है । जीवन में एक सत्ता शरीर की है जो प्रत्यक्ष दीख पड़ती है वह नाम-रूप से जानी जाती है । इसे स्थूल शरीर भी कहते हैं ।

इसके उपरान्त दूसरी सत्ता है—प्राण । जिसे मोटे रूप में चेतना या आत्मा भी कहा गया है । प्राण का प्रत्यक्षीकरण मन-मस्तिष्क के क्रिया-कलापों से जाना जाता है । प्राण जीवन को ही स्थिर नहीं रखता वरन् विचारणा एवं भावना को भी गति देता है । इसकी मूलभूत सत्ता आत्मा है जो जीवन में समाविष्ट होते हुए भी अपनी सत्ता साक्षी दृष्टा के रूप में बनाये रहती है । विचारणा और बुद्धिमत्ता प्राण की अनुकृति है । आत्मा इससे अधिक गहराई में है, वह कर्मफल व्यवस्था बनाती है । संस्कारों को यथा समय फलित होने के लिए सँजोये रखती है । योनियों में भ्रमण उसी को करना पड़ता है । परलोक में भी उसी का प्रवेश है । अजर-अमर वही है । शरीर तो जन्मते-मरते रहते हैं ।

यदि विभिन्न भेद, उपभेदों में न जाया जाय तो जीवन सत्ता के दो वर्ग विभाजन करने से काम चल जायेगा । मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय के रूप में माना जाता हैं । अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि चेतना और काया का सम्मिश्रण मन है । पीला और नीला रंग मिलने से हरा बन जाता है, पर यदि दोनों को पृथक्-पृथक् कर दिया जाय तो उस मिश्रण से बने हरे-रंग का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा । प्राण तत्व जड़, चेतन से मिली एक स्वतन्त्र इकाई मानी जाती है पर वस्तुतः वह इन दोनों का सम्मिश्रण है जो ब्रह्माण्ड से शरीर में प्रवेश करता है और समयानुसार वह अपने विशाल क्षेत्र में मिलकर घुल भी जाता है । समुद्र का जल बादल बनता है । बादल बरसते हैं और अपनी जल धार को समुद्र में जा पहुँचने के लिए धकेल देते हैं । इसी प्रकार विराट में संव्याप्त महाप्राणकाय कलेवरों में प्रवेश करके व्यक्ति प्राणवान बनता और सचेतन विद्युत् धारा के रूप में अवयवों के विभिन्न क्रिया-कलापों का सूत्र संचालन करता रहता है । यह शरीरों में उनकी स्थिति के अनुरूप न्यूनाधिक मात्रा में भी देखा जाता है । अधिकता से ओजस, तेजस, वर्चस की अभिवृद्धि देखी जाती है और न्यूनता से दुर्बलता, दीनता, हीनता आ घेरती है । प्राण को संकल्प-बल के सहारे प्राणायाम द्वारा अधिक मात्रा में खींचा और धारण किया जा सकता है । उपेक्षा बरतने पर वह गई-गुजरी स्थिति में ही पड़ा रहता है ।

शरीर प्राण और चेतना के तीन भागों में व्यक्तित्व को विभाजित किया जा सकता है । यही तीन प्रकृति जीव और ब्रह्म हैं । इन्हीं को स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं । कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के नाम से इस त्रिवर्ग की विवेचना होती रहती है । क्रमशः तीनों के केन्द्र बिन्दु नाभिक, हृदय और ब्रह्मरन्ध्र में माने गए हैं । इन्हें देव विज्ञान में शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी कहा गया है । काली, लक्ष्मी और सरस्वती भी इन्हीं की प्रतीक प्रतिनिधि हैं ।

साधना विज्ञान का प्रयोजन इन तीनों को परिष्कृत तथा प्रखर बनाना है । शरीर की स्वस्थता, सुन्दरता, मन की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, अन्तःकरण की भाव-सम्वेदना, उदार सेवा-परायणता इन्हीं तीन क्षेत्रों को समुन्नत बनाती है । अनेकानेक साधनाएँ इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती हैं ।

काया में सुदृढ़ता एवं तेजस्विता का अभिवर्धन संयम साधना से होता है । इसी का बढ़ा-चढ़ा स्वरूप तप है । प्रथम को सहज सामान्य और द्वितीय को कठिन असाधारण कहा जा सकता है । संयम का तात्पर्य है—अभ्यस्त कुटेवों को ढूँढ़ना और कठोरतापूर्वक उखाड़ फेंकना । तपस्वी को एक कदम और आगे बढ़ाना पड़ता है, उसे साधना-विधानों को अपनाकर ऐसी प्रचण्ड ऊर्जा उत्पन्न करनी होती है जो संग्रहीत कुसंस्कारों को न केवल उखाड़े वरन् अपने प्रचण्ड तप से उन्हें भस्मीभूत भी कर दे ।

आदतें सहज पीछा नहीं छोड़तीं । वे भगाने पर भी लौट-लौटकर फिर वापस आ जाती हैं । गन्दगी पर मक्खी बैठती है । उड़ा देने पर चक्कर काटकर फिर उसी स्थान पर आ धमकती है । दोष, दुर्गुणों की हानि और उनके छोड़ देने पर मिलने वाली सुविधा के सम्बन्ध में मोटी जानकारी प्रायः सभी को होती है । कुकृत्य करने वालों को भर्त्सना, प्रताड़ना मिलती प्रायः देखी जाती है । कुकर्मी का कोई सच्चा मित्र नहीं होता है । मतलब निकालने के लिए कोई चापलूसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भले ही करता रहे, पर समय पड़ने पर उसका साथ सभी छोड़ जाते हैं । इन सब बातों की चर्चा सत्साहित्य में, सत्संगों में, प्रवचन समारोहों में भी होती रहती है । इतने पर भी समझदार कहे जाने वाले लोग तक कुटेवों से ग्रसित पाये जाते हैं । पोल खुलने जैसी घटना सामने आने पर लज्जित भी होते हैं । पछताते भी हैं । किन्तु कठिनाई ज्यों की त्यों बनी रहती है । आदत छूटती नहीं । नशेबाजी की दुर्दशा उस दुर्व्यसन के कारण होती आये दिन देखी जाती है । फिर भी सुधार के कारगर लक्षण दीख नहीं पड़ते । नशेबाजी दिन-दिन बढ़ती जाती है ।

शरीर को क्षति पहुँचाने वाले यों अनेक कारण हैं । मौसम का परिवर्तन, अस्वच्छता, उद्वेग, आलस्य, अतिवाद जैसे कारण भी स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं पर प्रधान कारण असंयम को ही मानना पड़ेगा । उसके कारण उत्पादन की तुलना में अपव्यय कहीं अधिक होता है । जीवन-शक्ति की पूँजी घटती जाती है । चटोरपन के कारण तामसिक प्रकृति का आधार आवश्यकता से अधिक मात्रा में उदरस्थ होता चला जाता है । अपच की सड़न अनेकानेक रोग उत्पन्न करती है । कामुकता को अमर्यादित रूप से अपनाने वाले भी भारी मस्तिष्कीय क्षति उठाते हैं । साथ ही जीवन तत्व का महत्त्वपूर्ण भाग गँवा बैठने से खोखले हो जाते हैं ।

प्रश्न यह है कि शरीर को दुर्बल-रुग्ण बनाने वाले दुर्व्यसनों से छुटकारा कैसे पाया जाय ? इसका एक ही उत्तर है—दृढ़ प्रतिज्ञा स्तर की साहस भरी व्रतशीलता को अवधारण करना और संकल्प करना कि किसी भी हालत में निश्चय से पीछे न हटा जायेगा । सुधरी हुई दिनचर्या बननी चाहिए । व्यस्तता का इतना दबाव रहना चाहिए कि खाली दिमाग को शैतान की दुकान बनने का अवसर मिल न पाये । किसी क्षण असावधानी पाकर यदि आदत का भूत कोई आक्रमण कर ही बैठे तो उसका अविलम्ब प्रायश्चित करना चाहिए । अपने आप अपने को प्रताड़ना देनी चाहिए । भले ही वह हल्के ही किस्म की क्यों न हो ? साथ ही उस गल्ती को न दोहराये जाने के लिए अधिक कड़ा निश्चय करना चाहिए । इस पर भी गल्ती दोहराई गई हो तो पहले की अपेक्षा अधिक कठोर दण्ड सहन करना चाहिए । यह तितीक्षा के रूप में भी हो सकता है, सदाशयता को क्षति पहुँचाने पर की जाने वाली भरपाई को श्रमदान धनदान आदि के रूप में भी चरितार्थ किया जाना चाहिए । दण्ड का उद्देश्य ही यह है कि अपराधी भविष्य में वैसा करने से रुके हिचके ।

असंयम का मोटा अर्थ—चटोरपन और कामुकता के दो रूपों में ही जाना जाता है, पर उसका क्षेत्र इतना सीमित नहीं है । समय की बरबादी, पैसे की बरबादी, कुकल्पनाओं में निरत होकर की जाने वाली विचारशक्ति की बरबादी भी असंयम के अन्तर्गत आती हैं । इन्द्रिय असंयम तो उपवास, अस्वाद-व्रत, ब्रह्मचर्य, मौन आदि तितीक्षाओं के आधार पर किया जा सकता है । वे समय पर सावधानी बरतने से टल सकते हैं, किन्तु समय संयम, अर्थ संयम, विचार संयम के लिए निरन्तर जागरूकता अपनानी पड़ती है । अपने घर, परिवार की साहसी पहरेदार की तरह चौकीदारी करनी पड़ती है । जिस प्रकार साँप से, बिच्छू से, अँगारे से, खुले बिजली के तारों से दूर रहा जाता है, बचा और भागा जाता है, उसी प्रकार उपर्युक्त सभी असंयमों से प्राण बचाना चाहिए । आक्रमण होने से पहले बचाव की पूरी-पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए ।

यह सावधानी वाला व्यवहार पक्ष का प्रयोग हुआ । शरीर क्षेत्र में घुसी हुई बुरी आदतों से लड़ने के लिए और भी कई व्रत तितीक्षाओं का विधान है । अस्वाद-व्रत की साधना भी उपवास वर्ग में आती है । पेट खाली रखना, पाचन तन्त्र को विश्राम देना, नमक, शक्कर, मसाले, चिकनाई का एक निर्धारित अवधि के लिए परित्याग कर देना मनोबल को बढ़ाता है । इससे दुष्प्रवृत्तियों से जूझने और उन्हें परास्त करते रहने का साहस उभरता है । यह संकल्प बल आगे चलकर सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के अनेक प्रयोजनों में काम आता है ।

ब्रह्मचर्य को काम-क्रीड़ा से विरत होना भर नहीं मान लेना चाहिए । वह तो उसका प्रत्यक्ष स्वरूप एवं व्यावहारिक पक्ष है । इसे दबाव, अभाव से भी विवशता में निभाया जाता रहता है । कैदियों के लिए ब्रह्मचर्य एक विवशता है । साधु बन जाने पर भी मन में उठने वाली कुत्सा को कार्यान्वित कर सकने का अवसर नहीं मिलता । विधुर, विधवा, कुआरे, कुमारियाँ भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समाज व्यवस्था से अनुबन्धित होने के कारण प्रत्यक्षतः कुछ कुकृत्य कर सकने में असमर्थ हैं । कुछ गुप्त करने लग जायें तो बात दूसरी है ।

उपर्युक्त स्तर के काम-क्रीड़ा से विरत लोगों को ब्रह्मचारी नहीं कहा जा सकता । असली क्षरण तो मानसिक होता है । काम को मनसज कहा गया है । उसकी उत्पत्ति मन से होती है । मन को धोया जाय, कुदृष्टि को त्यागा जाय । नर नारी को और नारी नर को पवित्र दृष्टि से देख सके तो समझा जाना चाहिए कि समग्र इन्द्रिय संयम बन पड़ा । चटोरपन हो या कामुकता का व्यवहार रोकना ही पर्याप्त नहीं । त्यागी हुई उनकी ललक एवं अभिलाषा भी जानी चाहिए ।

इन्द्रिय निग्रह का प्रथम चरण जो पूरा कर लेता है, उनके लिए इस संयम साधना के अन्य तीन पक्ष साध सकना भी सरल हो जाता है । इन्द्रिय-जयी, समय संयमी, अर्थ संयमी, विचार संयमी बनने में उतनी अधिक कठिनाई अनुभव नहीं करता जितनी की प्रथम चरण की साधना में साहस अपनाना होता है ।

सौन्दर्य-बोध का दुरुपयोग न हो, रसना पर नियन्त्रण हो

प्रकृति के हर कण में उपयोगिता भरी पड़ी है । उसमें विद्यमान क्षमताएँ प्रत्यक्ष तो नहीं दीख पड़तीं पर उनका बारीकी से पर्यवेक्षण किया जाय तो अनेकानेक क्षमताएँ ऐसी दीख पड़ती हैं जो अद्भुत और असाधारण प्रतीत होती हैं । भौतिक विज्ञान ने उन्हीं को खोजा और करतलगत किया है । इसी आधार पर मनुष्य को प्रकृति शक्तियों का अधिष्ठाता बनने का अवसर मिला है । जितनी समर्थ प्रकृति है, उतना ही सम्पन्न मनुष्य भी हो गया है । यह बात दूसरी है कि इन क्षमताओं का सही तरीके से सही प्रयोजन के लिए सही रीति से उपयोग न बन पड़ा, अन्यथा प्रकृति पुत्र अब तक उन शक्तियों का स्वामी बन गया होता जिन्हें देवोपम कह सकते थे ।

प्रकृति की दूसरी विशिष्टता है उसकी सुन्दरता । नेत्रों का प्रत्यक्ष दर्शन और मनःसंस्थान का भाव सम्वेदन मिलकर उस सर्वत्र बिखरे पड़े सौन्दर्य को मनोरम रूप में निखारते हैं । जमीन पर घास का बिछा हरा मखमली फर्श, वृक्षों की शोभा शृंखला, पुष्प उद्यानों का सौरभ, मेघमालाएँ प्रातः सायं की स्वर्णिम दशाएँ निर्झर-सरोवर आदि एक से बढ़कर एक अपनी सुन्दरता का दिग्दर्शन कराते हैं । मन का सौन्दर्य-बोध उस प्रकृति सम्पदा को सौन्दर्य से भर देता है और जिधर भी देखा जाय उधर ही गुदगुदाने वाली छटा का बिखराव दीख पड़ता है । नेत्र इसमें सहायक होते हैं, यों उनके बिना भी कल्पना के सहारे बहुत कुछ काम चल जाता है । सूरदास जैसे अन्ध कवि विश्व में बिखरे सौन्दर्य को इतनी गहराई से देख लेते हैं जितना कि कोई आँखों वाला मन्दमति अनुभव न कर सके ।

सौन्दर्य में एक विलक्षण आकर्षण होता है । उसे पास रखने या उसके पास रहने को मन करता है । बच्चे चन्दा मामा के पास जाना चाहते हैं या उसे अपने पास बुलाना चाहते हैं । प्रभातकालीन उषा, मेघमाला का घटाटोप, जल प्रवाह, हरीतिमा आदि के भी निकट रहने को मन चलता है अथवा उन्हें अपने घर, उद्यान, पार्क में किसी प्रकार स्थापित करके मन बहलाने का तरीका खोज निकाला जाता है । प्रकृति सौन्दर्य की समीपता अतिशय लालायित करती है । देखकर आनन्द उठाने में तो कोई हर्ज नहीं पर खोट वहाँ से पैदा होता है जहाँ उन्हें बटोरने और अधिकार में रखने की चेष्टा आरम्भ होती है ।

लोग तोता-मैना आदि सुन्दर पक्षियों को उन्मुक्त आकाश में विचरण करते हुए देखने की अपेक्षा यह चाहते हैं कि उन्हें पिंजड़े में बन्द करके पास रखें । उनसे चाहे जो कहलावें । चाहे जिस मुद्रा में रहने करने के लिए विवश करें । यही सौन्दर्य का दुरुपयोग है । बगीचे में खिले हुए फूलों को तोड़ कर टोकरी में भर लेना, गुलदस्ता या हार पहन लेना इसी दुष्प्रवृत्ति का द्योतक है कि सौन्दर्य को अपने स्थान पर रहकर सभी को प्रसन्नता प्रदान कराते रहने की स्थिति में न रखने देकर उसे अपने अधिकार बन्धन में बाँध लिया गया । इसका परिणाम यह होता है कि उद्यान की शोभा चली जाती है और फूल असमय ही कुम्हला जाते हैं । यह प्रकृति के साथ अनाचार है जिसमें आँखें लोलुप और मन चोर बन कर भ्रष्टता की संरचना रचते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी काया भी सौन्दर्य का प्रतीक है । उसे सौन्दर्य-बोध वाले मन से और क़ला पारखी मन से आत्मीयता के साथ देखा जाय तो कोई भी शरीर सुन्दर लग सकता है । विशेषतया पुरुष को नारी का और नारी को पुरुष का । दोनों में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं और अपनी-अपनी कमियाँ उस अपूर्णता को पूरा करने के लिए दोनों पक्ष निकटता की आकांक्षा करते हैं । स्वाभाविक रूप से यह सहज सुगम भी है । माता और बच्चा दोनों विपरीत लिंग के होते हैं पर दोनों के बीच पटरी खूब बैठती है । बहन-भाई स्कूल साथ-साथ पढ़ने जाते हैं और हँसते-बोलते भी जाते हैं । घर में चाची, ताई, बुआ अपने-अपने ढंग से घर के छोटे-बड़ों से व्यवहार वार्तालाप करती रहती हैं, देवर-भावज की नोंक-झोंक चलती रहती है । इस तरह नर-नारी की विभिन्नता का सम्पर्क सान्निध्य रहने से घर का वातावरण शोभा-सुषमा से भर जाता है । यह प्रकृति का सौम्य अनुसरण है ।

इसमें विकृति भरा अनौचित्य तब घुलता है, जब कामुकता की दृष्टि से सौन्दर्य को निहारना आरम्भ किया जाता है । इस आधार पर तो किसी भी पवित्रतम रिश्ते के उत्तेजक अंगों को लुक छिप कर देखा जा सकता है या उनकी कल्पना की जा सकती है । इतने भर से प्रदूषण आरम्भ हो जाता है और भोली-भाली सौम्य, सरल, महिला कामिनी, रमणी, नागिन, डाकिन बन जाती है । अनैतिक कल्पनाएँ उछाल भरने लगती हैं । इसके अनेक दुष्परिणाम होते हैं । कुदृष्टि मनोरोग है । इसके कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष व्यभिचार की योजना बनने लगती है । ऊर्ध्वगामी बुद्धि तन्त्र, द्रवित होकर जननेन्द्रिय मार्ग से जागृत अथवा स्वप्न-प्रसुप्ति में गलित हो क्षरित होने लगता है । मानवी-गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने वाली वर्जनाओं का निर्वाह जब टूटता है तो नहर के किनारे टूट जाने पर अमर्यादित रूप से खेतों में पानी बिखर जाने जैसी स्थिति बन जाती है । सौन्दर्य अपने आप में आनन्द, उत्साह पुलकन का आधार है, पर उसके प्रति अनुपयुक्त दृष्टिकोण बना लेने का परिणाम ऐसा होता है, जिसे दुःखदायक ही कह सकते हैं ।

चर्चा इन्द्रिय-निग्रह प्रसंग में नेत्रों की कुमार्ग गामिता पानी कुदृष्टि पर हो रही है । दूसरों की वस्तुओं को हथिया लेने के लिए ईर्ष्या इसी आधार पर उपजती है । चोरी करने का, अपहरण करने का मन इसी आधार पर चलता है । असीम मात्रा में सुन्दर वस्तुएँ भी कोई जमा नहीं कर सकता, उनका उपभोग सम्भव नहीं । ऐसी दशा में वह अनुचित संग्रह अपने आप में एक भार बनता है । कितने ही लोग सुन्दर वस्तुएँ जमा करने के लिए घर का बड़ा भाग घेर लेते हैं । नई भूमि पर कब्जा करते हैं, नये मकान बनते हैं । सामन्त अनेक पत्नियाँ, उप-पत्नियाँ अन्तःपुरों में कैद कर रखते थे । इसके परिणामस्वरूप उन कुकृत्यों से सम्बन्धित सभी पक्ष रोष, आक्रोश से भरे रहते थे और निरन्तर विद्वेष की ऐसी आग सुलगती थी जो कभी-कभी भयानक दुर्घटनाएँ देर-सवेर में घटित कर देती थीं । अब भी वेश्यालयों से सम्बन्ध रखने वाले भड़ुये या दलाल चैन से नहीं बैठ पाते । इसी कुमार्ग पर चलते हुए उन्हें अनेकों दुर्व्यसन घेर लेते हैं । कुमार्गगामी की आँखें भी जलती रहती हैं और समय से पहले ही अपनी ज्योति एवं सूक्ष्म दर्शन विशेषता गँवा बैठता है । शरीर तो खोखले हो ही जाते हैं । अनेकों को यौन रोगों का शिकार बनना पड़ता है । बदनामी फैलने से प्रमाणिकता चली जाती है । मन डावाँडोल रहने से हाथ के काम सही तरीके से बन नहीं पड़ते । इस जाल, जंजाल से साज-सज्जा उपहार आदि में पैसा भी ढेरों ही खर्च होता है ।

आँखों के सौन्दर्य-बोध का दुरुपयोग होने की तरह दूसरी प्रबल इन्द्रिय रसना की बारी आती है । भोजन में अनेक प्रकार के स्वादों के समावेश की आकांक्षा विविध विधि व्यंजन उपलब्ध करने के लिए ललकती है । इसे जुटाने में ढेरों समय, पैसा खर्च होता है । चटोरी जीभ पेट का सत्यानाश कर देती है और अनेकानेक बीमारियों को जन्म देती है । व्यंजनों की अभिलाषा ललक-लोलुपता उत्पन्न करती है । ऐसी दशा में यह लोलुपता, साथियों की दृष्टि में मान-सम्मान गिराती है, खर्च बढ़ाती है और कुछ न कुछ नया ढूँढ़ती है । हर समय मुँह चलाते रहने के लिए विवश करती है । जिह्वा को दो इन्द्रियों के बराबर माना गया है । एक खाने वाली—स्वादेन्द्रिय दूसरी बोलने वाली—वाणी । वाणी से ही व्यक्ति की शालीनता, सज्जनता, मान्यता, भावना, स्तर एवं प्रतिभा का पता चलता है । इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीभ को ही जहाँ चटोरी बनने से रोकना है वहाँ उसे इतनी सुसंस्कृत भी बनाना है कि वार्तालाप में दूसरों पर उत्कृष्टता भरा प्रभाव छोड़ सके । इन्द्रिय संयम तब बन पड़ता है जब नेत्र, जननेन्द्रिय और जिह्वा को नियन्त्रण में रख उन्हें सुसंस्कृत बनाया जाता है ।

आत्मिक प्रगति को सरल बनाती है, संयम साधना

ऋषियों, मुनियों, साधकों, विरक्तों की तपश्चर्या कष्ट साध्य होती है । उसमें कितनी ही तितीक्षाएँ करनी पड़ती हैं । एकान्त में रहने, विरक्त बनने, मन मारने, ब्रह्मचर्य साधने, शरीर को अनेक प्रकार के कष्ट देने जैसे कृत्यों में एकनिष्ठ भाव से दीर्घ काल तक संलग्न रहना पड़ता है । लम्बे व्रत, उपवास करने, इच्छाओं को दमन करने के लिए कष्ट साध्य क्रिया-कलाप अपनाना पड़ता है जो किन्हीं विरलों के लिए ही सम्भव है । साथ ही एक कठिनाई और भी है कि यदि व्रत खण्डित हो चले तो उल्टे हानिकारक परिणाम भी हो सकते हैं । लेने के देने पड़ सकते हैं । लम्बी छलाँग लगाने वाले कभी चूक जाते हैं तो टाँग टूटने जैसी कष्टदायक जोखिम भी उठानी पड़ती है ।

सरल मार्ग तलाश करना सदा सुविधाजनक रहता है । धीमी चाल से चलने से समय तो अधिक लग जाता है पर साथ ही यह सुविधा भी है कि दौड़ने वालों की तरह बेचैनी का, उतावली का सामना भी नहीं करना पड़ता और पिछड़ जाने पर उपहास का पात्र भी नहीं बनना पड़ता तथा मनोबल भी नहीं टूटता । भविष्य में चलते रहने की हिम्मत भी बनी रहती है साथ ही गतिशीलता छोड़ बैठने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती ।

तप का सर्वसुलभ रूप हैं—संयम । छुट्टल मन की निर्बाध रूप से किसी भी दिशा में दौड़ चलने की आदत अधिकतर उच्छृंखलता के रूप में देखी जाती है । मर्यादाओं और वर्जनाओं को तोड़ते रहने की कुटेव जब परिपक्व हो जाती है तो फिर नशेबाजी की तरह उससे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है । विषबेल को फैलने से पहले ही उसे दबोच लेने में उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता जो गहरी जड़ जमा लेने पर निर्मूल करने में कठोर प्रयास करना होता है । असंयम एक प्रकार की अनुशासनहीनता है जिसे आरम्भ में ही नियन्त्रित किया जाना चाहिए । गीली लकड़ी को झुकाया जा सकता है, पर पक जाने या सूख जाने पर तो वह टूटने ही लगती है । गीली मिट्टी के बरतन बनते हैं । सूख जाने पर तो उसकी कठोरता बेकार ही हो जाती है । तब उसे किसी साँचे में ढालना सम्भव नहीं रहता ।

जिन्हें सरल स्वाभाविक जीवन-यापन करते हुए तप साधना के लाभों से लाभान्वित होना है, उन्हें सर्वतोन्मुखी संयम साधना अपनाने के लिए तत्पर होना चाहिए । उस पर संकल्पपूर्वक निष्ठा भी जमानी चाहिए ।

इन्द्रिय निग्रह में व्रत और उपवास का दर्जा ऊँचा है । उपवास का अर्थ किसी दिन साधारण भोजन का क्रम बदल देना भर नहीं है, वरन् यह भी है कि पेट को अपना उलझा हुआ काम सुलझा लेने के लिए एक दिन की छुट्टी देना । अच्छा हो यह दिन केवल जल लेकर बिताया जाय । न बन पड़े तो दूध, छाछ, रस जैसी प्रवाही वस्तुएँ सीमित मात्रा से लेकर २४ घण्टे का उपवास पूरा किया जाय । जिह्वा की लोलुपता और जल्दबाजी मिलकर निगलने में जल्दबाजी दिखाती हैं । उस कार्य को बेगार समझ कर जैसे-तैसे निबटाने की कोशिश करते हैं । यह नहीं होना चाहिए । समझा जाना चाहिए कि आधा भोजन पेट में पचता है और आधा मुँह के लार व स्रावों से । इसलिए ग्रास को मुहँ में देर तक रखा जाना चाहिए । दाँतों का काम भोजन को चक्की की तरह पीस कर बारीक करना है । साथ ही आहार के स्वाद का आनन्द लेना भी । भोजन सात्विक, हरा, सजीव और शाकाहार वर्ग का होना चाहिए, उसमें मिर्च, मसाले, शक्कर, चिकनाई की भरमार न हो । इस प्रकार भूख से कम मात्रा में नियत समय पर किया गया आहार जीवन दाता कहा जाता है । इन मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए आहार नियमन का व्रत पाला जाता रहे तो शरीर स्वस्थ और दीर्घ जीवी बना रह सकता है । साथ ही उसकी अधिक मात्रा खर्चने, बनाने में ढेरों समय खराब करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती । "जैसा खाएँ अन्न वैसा बने मन ।" की उक्ति शत-प्रतिशत सही है । यदि आहार में नशों का, मिष्ठान-पकवानों का,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अचार-मुरब्बों का समावेश रहेगा तो उससे न केवल शरीर पर वरन् मन पर भी प्रभाव पड़ेगा । अखाद्य खाने वालों की मानसिक चंचलता बढ़ी-चढ़ी रहती है । वे किसी महत्त्वपूर्ण कार्य पर मन टिका ही नहीं पाते । बेसिर-पैर की रंगीली उड़ानें उड़ते रहने में बहुमूल्य मानसिक शक्तियों का अपव्यय ही होता है । उस चेतन ऊर्जा का सदुपयोग बन पड़ने पर जो प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं । उन पर सदुपयोग ही नहीं बनता । शरीरगत क्रिया-कलापों की नियमित दिनचर्या होनी चाहिए । समय विभाजन करने और फिर उसके निर्वाह पर पूरा ध्यान देना जीवन सम्पदा की सुव्यवस्था है । जो उसे स्वभाव का अंग बनाये रहते हैं वे अधिक उपयोगी कार्य अधिक मात्रा में कर पाते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि जो खाया गया है उसका आधा चौथाई ही शरीर में लग पाता है बाकी सब निरर्थक चला जाता है । उल्टे कब्ज उत्पन्न करके अंग-प्रत्यंगों में विषाक्तता बढ़ाता है ।

आहार की ही तरह इन्द्रिय संयम में ब्रह्मचर्य को प्रधानता दी गई है । कामुकता को एक प्रकार की विकृति माना गया है । शारीरिक उत्तेजना तो गर्भधारण की आवश्यकता के लिए ही यदा-कदा उभरती है । खाली दिमाग पर शैतान छाया रहता है । यह कहावत प्रधानतया कामुक विचारों के सम्बन्ध में ही लागू होती है । देखा जाता है कि अश्लील चित्रण एवं क्रिया-कलाप खाली बैठने वालों के सिर पर चढ़ा रहता है और उसका आकर्षण चिन्तन को किन्हीं महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में लगने से रोके रहता है । वैज्ञानिक, विद्वान, मनीषी, बुद्धिजीवी, कलाकार, साहित्यकार अपने मन को साधने की कुशलता में निष्णात् होते हैं । वे मस्तिष्क में बन्दर जैसी उछल-कूद नहीं मचने देते । जिस कार्य को उपयोगी एवं आवश्यक मानते हैं उसी में एकात्म भाव से तन्मयता स्थापित करते हैं । उथले मन से, सरसरी नजर से जिन भी विकारों को आते देखते हैं, तुरन्त उन पर नियन्त्रण स्थापित कर लेते हैं ।

बिखराव का एकीकरण करना कितना चमत्कारी है, इसे सभी जानते हैं । तिनकों से रस्से बटे जाते हैं और धागे मिलकर कपड़ा बनाते हैं । भव्य भवन बिखरी ईंटों को एकत्रित करके ही बनाये जाते हैं । विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है । जो विद्यार्थी एकाग्र भाव से रुचिपूर्वक पढ़ते हैं वे अच्छे डिवीजन में उत्तीर्ण होते हैं । प्रतिस्पर्धाओं में इसी प्रकार की मनोभूमि वाले सफल होते हैं । आर्चीटेक्ट, इंजीनियर, साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि की सफलताओं का श्रेय उनकी एकाग्रता पर ही निर्भर रहता है । बया पक्षी इसी आधार पर सुन्दर घोंसला बनाता है । इन्द्रिय संयम, की ही तरह विचार संयम भी एक प्रकार की साधना तपश्चर्या है जिसे साधारण मनुष्य भी जागरूकता अपनाकर अपने अभ्यास में उतार सकता है और अभीष्ट दिशा में उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त कर सकता है । मन की एकाग्रता उन्हीं से सधती है जो अपने समय को साध लेते हैं । अर्थात् दिनचर्या बनाकर समय के श्रेष्ठतम विभाजन की योजना बनाते हैं । समय का एक क्षण भी बर्बाद नहीं होने देते । आलस्य-प्रमाद से बचते और साहसिकतापूर्वक समय को, जीवन-सम्पदा को बहुमूल्य समझकर उसके छोटे से छोटे घटक को भी सुव्यवस्थित रूप से प्रयोग में लगाते रहते हैं ।

इन्हीं सतर्कताओं में ईमानदारी का श्रम-सिक्त उपार्जन भी सम्मिलित है और उस के उपयोग में औसत नागरिक के निर्वाह स्तर के साथ तुलना करते रहना भी । जो कमाया जाय, वह असीम हो यह आवश्यक नहीं । श्रम-पूर्वक ईमानदारी से थोड़ा ही कमाया जा सकता है । उतने से ही सन्तोष करना हो और प्रसन्न रहना हो तो उसका एक ही उपाय है कि खर्च करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि उसमें कहीं अपव्यय को स्थान तो नहीं मिल रहा है । आम तौर से लोगों को अपना बड़प्पन जताने के लिए कपड़ों की, जेवरों की, शृंगार प्रसाधनों की, ठाट-बाट के प्रदर्शनों की आवश्यकता पड़ती है व इसके लिए ढेरों पैसा और समय बर्बाद करना पड़ता है । सोचा यह जाता है कि इस आधार पर अमीरी की छाप छोड़ी जा सकेगी । बड़प्पन प्रकट किया जा सकेगा किन्तु होता ठीक उल्टा है । अपनी और दूसरों की आँखों में बचकाना, ओछा, मनचला और घटिया समझे जाने का ही उपहार मिलता है । यह न हो व अर्थ-संयम भी सभी संयमों की तरह सध सके तो व्यक्तित्व विकास की क्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न होती रह सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रतशीलता का दायित्वपूर्ण निर्वाह

अपना निज का तेजोवलय यदि बढ़ता है और उच्चस्तरीय बनता है, तो उसे प्राण क्षेत्र की दिव्य विभूति मानी जा सकती है । उससे अपनी निजी न्यूनताओं को पूरा करना एवं त्रुटियों का परिशोधन-परिमार्जन कर सकना सम्भव हो सकता है । इसी को आत्मोत्कर्ष का प्रथम सोपान कहा जा सकता है । दूसरों की वास्तविक, गम्भीर एवं चिरस्थायी सेवा-सहायता कर सकना भी इसी आधार पर सम्भव है ।

योगी-यती कष्टसाध्य तपश्चर्याएँ करते हैं, पर सर्वसाधारण को लक्ष्य रखकर लिखते समय उतना ही उल्लेख किया जाता है, जो जनसाधारण से बिना कठिनाई के बन सके । इसीलिए तप जैसे भारी भरकम शब्द के स्थान पर यहाँ 'व्रत' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है । सरल शब्दों में इसे 'संयम' भी कहा जा सकता है ।

व्रतों में जिह्वा और जननेन्द्रियों को मर्यादा में रखना, वर्जनाओं में न भटकने देना प्रमुख हैं । आत्म-साधना के मार्ग पर चलने वालों को चटोरेपन पर नियन्त्रण करना चाहिए । नित्य के भोजन में सात्विक पदार्थों की सीमित मात्रा लेते रहने का क्रम चलाना चाहिए । अधिक दृढ़ता न अपनाई जा सके, तो सप्ताह में एक दिन अस्वाद-व्रत का तो पालन करना ही चाहिए । इसके लिए रविवार या गुरुवार के दिन उत्तम हैं । इस अनुपालन से दिव्य स्तर की अनुकूलताएँ निभती हैं ।

उपवास को व्रत का पर्यायवाची माना जाता है । उसकी सर्वथा उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ा जा सकता । साप्ताहिक उपवास यदि दूध-छाछ के आधार पर चल सके, शाकाहार-फलाहार लिया जा सके, तो उत्तम है । इनका रस लेकर भी प्रवाही आहार की मर्यादा निभ सकती है । इतना न बन पड़े, तो न्यूनतम इतना तो करना ही चाहिए कि अमृताशन के सहारे साप्ताहिक उपवास पूरा किया जाय । उबले हुए धान्य को अमृताशन कहते हैं । दाल, चावल, दलिया इसी वर्ग में आते हैं । परहेज तो पकवानों, मिष्ठान्नों से करना चाहिए । तले, भुने, मसालेदार, शक्कर से लबालब पदार्थों को उपवास में छोड़ ही देना चाहिए । यह मनोबल की साधना है कि सप्ताह में एक दिन का उपवास किसी-न-किसी रूप में करते ही रहा जाय । जो तीसों दिन पेट को बन्दूक की नली की तरह भरे रहते हैं, उनके लिए व्रतशीलता के आधार पर मनोबल को बढ़ा सकना कठिन है, आत्मिक प्रगति का अवरोध तो बना ही रहेगा ।

दूसरा व्रत है—ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य में शारीरिक कम और मानसिक अधिक प्रतिबन्ध है । कामुक-अश्लील चिन्तन में जितने समय मन भटकता है, समझना चाहिए कि मानसिक स्तर के ब्रह्मचर्य का उतना ही अधिक क्षरण हो रहा है । नर को नारी के प्रति और नारी को नर के प्रति मित्र-सहयोगी की समतापरक भावनाएँ रखनीं चाहिए । इसमें माता-पुत्र का, भाई-बहिन का, पिता-पुत्री का मानसिक सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है । नारी में पवित्रता के तत्व अधिक हैं । इसलिए उन्हें देवी के रूप में भी देखा जा सकता है । उसी स्तर की श्रद्धा को अपनाये रहा जा सकता है, पत्नी के साथ भी ।

शारीरिक ब्रह्मचर्य उपयोगी तो है, पर उतने ऊँचे स्तर का नहीं, जितना कि मानसिक श्रद्धा का अवलम्बन । शारीरिक समागम में जो युग्म जितना अधिक अनुशासन, पारस्परिक सहमति से पालन कर सकें, करे, पर साप्ताहिक उपवास के दिन तो उसे मर्यादा के रूप में ही निश्चित रूप से पालन करना चाहिए ।

मौन, एकान्त-सेवन, चिन्तन, मनन यह चार मानसिक संयम हैं । इनके लिए साप्ताहिक उपवास के दिन ही न्यूनतम दो घण्टे नियत रखने की व्यवस्था करनी चाहिए । कौन-सा समय किसे सुविधाजनक पड़ता है, यह देखना व्यक्ति विशेष का काम है । प्रातःकाल सुविधा न रहती हो, तो कोई अन्य समय चुना जा सकता है । एकान्त स्थान घर में भी हो सकता है और बाहर खेत, पार्क, उद्यान आदि में भी । मौन के समय सांसारिक क्रिया-कलापों वाले विचारों को न उठने दिया जाय, वरन् उन्हें आत्म-निरीक्षण आत्म-विकास की सांगोपांग योजना बनाने में ही निरत रखा जाय । मन को प्रारम्भिक स्थिति में पूर्णतया रोका तो नहीं जा सकता, उसका क्षेत्र परिवर्तित किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकता है । संसार में अपने फैलाव को समेट कर अन्तर्मुखी किया जा सकता है । आत्म-बोध और आत्म-परिष्कार की परिधि में विचारणा को केन्द्रीभूत किया जा सकता है । उपरोक्त चारों प्रयोजन एक साथ सध जाते हैं, चारों आपस में गुँथे हुए हैं ।

व्रतशीलता का महत्त्व समझा जाय । संकल्प शक्ति बढ़ाने के लिए आत्मानुशासन के निर्वाह को अति महत्त्वपूर्ण चरण माना जाय । साप्ताहिक व्रत साधना से उपर्युक्त चरण निभते रहें, तो समझना चाहिए कि चित्तवृत्ति निरोध की योगसाधना और व्रत संयम की तप-साधना का छोटा, किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रयास चल पड़ा ।

उपर्युक्त साप्ताहिक व्रत शरीर और मन की परिधि के अन्तर्गत आते हैं, पर इसी से जुड़ा हुआ दिनचर्या-नियमन का आधार भी है ।

तप, संयम, व्रत का दैनिक जीवन में समावेश करने के लिए इन्द्रिय-निग्रह के अतिरिक्त समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम को भी अपनाना पड़ता है । संयम ही जीवन है । उसका एक-एक घटक मिलकर ही जीवन रूपी महाकाल बनता है । दिनचर्या इस प्रकार बनानी चाहिए कि समय का एक क्षण भी निरर्थक न जाने पाये । प्रत्येक क्षण सार्थक, सज्जनोचित कार्यों में लगे । आलस्य और प्रमाद यही दो मनुष्य के निरन्तर साथ लगे रहने वाले शत्रु हैं । व्यस्तता ही जीवन की सार्थकता है । ओछे और घटिया कामों से समय बचाकर यदि उसे दूरगामी सत्परिणाम उत्पन्न करने वाले क्रिया-कलापों में लगाया जाय, तो उसका ऐसा प्रतिफल उपलब्ध हो सकता है, जिससे अपने को सन्तोष एवं दूसरों का सहयोग मिले ।

अर्थ संयम का तात्पर्य है—औसत नागरिक स्तर के निर्वाह से गुजर चलाना । एक पैसा भी विलासिता में अहंकारी ठाट-बाट में, प्रदर्शन और दर्प अहंकार के निमित्त खर्च न करना, लोभवश अधिक संग्रह की ललक से पिण्ड छुड़ा कर जो बचत हो सके उसे परमार्थ में लगाना । अनीतिपूर्वक कमाया हुआ, अनावश्यक रूप से संचित किया हुआ, दुर्व्यसनों में उड़ाया हुआ धन अन्ततः अनेकानेक संकट एवं दुष्परिणाम उत्पन्न करता है, पतन के गर्त में गिरा कर छोड़ता है ।

विचार संयम का तात्पर्य है—मस्तिष्क में अनावश्यक कल्पनाएँ न घुमड़ने देना । ललक-लिप्साओं की रंगीली उड़ानों में चिन्तन को न भटकने देना । ऐषणाओं, महत्त्वाकांक्षाओं में मन को न उलझने देना । विचार शक्ति को रचनात्मक योजनाओं में नियोजित किए रहना । विचार ही वे बीज हैं, जो उगने पर अपने स्तर के अनुरूप ही भविष्य का निर्माण करते हैं । महामानवों ने अपने विचारों को दिशा दी है और आदर्शों से प्रेरणा ली है । हमें भी वही करना चाहिए ।

यह चारों संयम किस प्रकार सध रहे हैं, इसका निरीक्षण-निर्धारण, चिन्तन-मनन के अन्तर्गत किया जाता है । चिन्तन का तात्पर्य है—भूतकाल की भूलों को सुधारना और वर्तमान की सार्थकता पर कड़ी नजर रखना । मनन कहते हैं—भावी योजनाओं का निर्धारण और उन्हें पूरा करने के लिए योजनाबद्ध क्रिया-कलाप का निर्धारण । यह चिन्तन-मनन थोड़ा समय हर दिन निकाल कर करते रहना चाहिए, ताकि संयम साधना में कहीं चूक न होने पावे । इसे साप्ताहिक रूप में तो विशेष तत्परतापूर्वक अपनाये जाना चाहिए । इसे आध्यात्मवादी जीवन का प्रारम्भिक पाठ समझा जाना चाहिए ।

गाँधी दर्शन पर आधारित एकादश व्रत

यों तो पुराणों में व्रतों का एक अथाह सिन्धु संचित है, किन्तु महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने पर उनमें से बहुतों ने नवीनता का परिधान धारण कर और अधिक गौरवान्वित एवं लोक पूजित हो गए । गाँधी जी के विचार मन्थन से निम्नांकित 'एकादश व्रत' राष्ट्र निर्माण की नींव हैं—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह,
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भय वर्जन ।
सर्वधर्म समानत्व स्वदेशी स्पर्श भावना,
नियम व्रत निष्ठा से ये एकादश सेव्य है ।

उपर्युक्त एकादश व्रतों में प्रारम्भ के दो 'अहिंसा और सत्य' संसार में जितने धर्म हैं, सभी के दोनों पैर हैं । यही मनुष्य के आदर्श जीवन दर्शन के मूलाधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । भारतीय दर्शन के योग शाखा के प्रवर्तक महर्षि पातंजलि के अनुसार सत्य को पहला स्थान मिलना चाहिए किन्तु महात्मा गाँधी ने अहिंसा को पहला तथा सत्य को दूसरा स्थान दिया है । इसमें भी एक दार्शनिक रहस्य है । महर्षि उपदेशों का लक्ष्य व्यक्ति को असप्रज्ञात आत्म समाधि का अनुभव कराना था । जहाँ केवल आनन्द है । दुःख का जहाँ पर लेशमात्र भी मिश्रण अथवा चिह्न नहीं है । गाँधी जी सम्प्रज्ञात समाज समाधि के प्रवर्तक थे । व्यक्ति अहिंसा के आचरण एवं अन्य अभ्यासों के पुरुषार्थ से समाधिस्थ होकर सत्य का अनुभव करता है और समाज सत्य के आचरण और सत्य के चिन्तन से अहिंसा की ओर उन्मुख होता है । व्यक्ति सत्य के लिए अहिंसक तथा समाज शान्ति, प्रिय समाज की स्थापना के लिए सत्यशील होकर अपने लक्ष्यों की दिशा में अग्रसर होता है । वस्तुतः सत्य और अहिंसा में अभेद है । मानव जीवन दर्शन एवं समाज दर्शन की युग दृष्टि में ये परस्पर अन्योन्याश्रित हैं ।

अहिंसा के स्वरूप का निर्धारण करते समय गाँधी जी ने अपने पूर्व कालिक परिभाषाओं की संकीर्णताओं को तोड़ फेंका है । प्राण हत्या का अर्थ अहिंसा का हल्कापन ही प्रकट करता है । गाँधी जी अपनी प्रकृति के अनुसार इस सिद्धान्त की गहराई में भी उतरे थे । उनका कथन था कि "कुविचार मात्र हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है तथा किसी का बुरा चाहना हिंसा है ।" अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में "आत्मनः प्रतिकुलानि परेवां न समाचरेत" ही अहिंसा पूर्णरूप है । संवेग हीनता बस अन्तरनिर्देशनों को न श्रवण कर उनकी अवहेलना कर देना ही सामान्य स्तर पर अहिंसा के रास्ते को छोड़कर भटक जाना है । अहिंसा का बटोही सहिष्णु होता है । वह पास-पड़ोस, परिवार तथा अपनी मित्र-मण्डली, आसुरी प्रकृति के वेग को उतारने के लिए चेष्टाशील रहता है तथा अपने जीवन को नमूने के रूप में समाज के समक्ष रखता है । अगर उस नमूने को देखकर समाज की भीड़ की ओर से अपशब्दों का पुरस्कार भी पाता है तो भी वह धीरतापूर्वक परिस्थिति का सामना करता हुआ अपनी मनुष्यता का परिचय देता है और सन्तोष एवं अनावेग के लिए यह सोचता है कि अज्ञान में अनेक मनुष्य ईश्वर को भी गाली देते हैं । अहिंसा का साधक यह जानता है कि दुष्ट प्रवृत्तियों के नर-नारियों द्वारा उपहास होना ध्रुव निश्चित है । भगवान तथागत् बुद्ध ने भी यह स्वीकार किया था कि "इस वसुन्धरा पर कोई ऐसा पुरुष नहीं आया जिसका केवल मान-अपमान हुआ हो । मान और अपमान अहिंसक को पथभ्रष्ट करने में असमर्थ होते हैं ।"

अहिंसा धर्म का मूलाधार है इसलिए कि अहिंसा का सिद्धान्त समाज रूपी शहर की वह बड़ी टंकी है जिसमें पानी की व्यवस्था है । अहिंसा के जल से समाज के प्राणों की तृष्णा बुझाई जाती है तथा अन्य रूपों में भी शीतलता के लाभ से समाज जीवन की प्रफुल्लता का अनुभव करता है । धर्म उस मान्यता को कहते हैं जिसमें समाज को धारण करने की शक्ति है और यह निर्विवाद सिद्ध है कि अहिंसा ही एकमात्र ऐसा सिद्धान्त है जिसमें समाज के भार को बहन करने का बल है क्योंकि अहिंसा से व्यक्ति की संवृत्तियाँ, सत्प्रवृत्तियाँ, सद्मान्यताएँ एवं आन्तरिक विश्वास अंकुरित होकर एक ऐसे विशुद्ध सामाजिक वातावरण का निर्माण कर देते हैं कि जिसमें सभ्यता और संस्कृति के विकसित होने के सुयोग और संयोग सहज हो जाते हैं । अतः अहिंसा वह ध्वनि है जो मनुष्य के (विकृत और विकास भरे मन और मस्तिष्क से नहीं) शुद्ध अन्तःकरण से आती रहती है और सच्चा अहिंसक वह है जो दूसरों के प्राणों को अपने प्राणों जैसा मानता हुआ लोक-व्यवहार और कर्म में अपने जीवन को व्याप्त रखता है ।

अब तक इस बात पर बराबर विवाद होता रहा है कि ईश्वर सत्य है अथवा असत्य है ? ईश्वर को सत्य अथवा असत्य सिद्ध करने के लिए मनुष्य की सीमित मानसिक एवं बौद्धिक शक्ति से जो कुछ पैदा हो सकता था वह किया गया अथवा असत्य विशेषण संयुक्त ईश्वर नामी वस्तु यथार्थतः है क्या ? इसका उत्तर महात्मा गाँधी जी ने दिया । गाँधी जी ने बताया कि भाई ! विवाद बन्द करो । देखो ! सत्य ही ईश्वर है । तब से सत्य की परिभाषा परिशोधित होकर मनोविज्ञान विहित एवं आचार प्रधान हो गई क्योंकि लौकिक विशेषणों के आर-पार पारलौकिक सत्ता की कल्पना करना कठिन जान पड़ता था । साथ ही साथ वह हमारे व्यवहार की दुनिया से भी दूर जा पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था । गाँधी जी का जीवन मनुष्य को समाज से दूर जंगल में ले जाकर ईश्वर प्राप्त करना नहीं था । इसलिए उन्होंने ईश्वर को जंगल से लाकर समाज में प्रतिष्ठित किया । 'सत्य ही ईश्वर है' इस परिभाषा से हमें यह स्वतः अनुभव होने लगा कि ईश्वर हमारे बीच खड़ा है । अगर हमारी वाणी, कर्म और विचारों में अहिंसाधृत सच्चाई विद्यमान है, तो हमारा अस्तित्व ईश्वर से ओत-प्रोत हुआ और इस प्रकार गाँधी जी के इंगित करने पर व्यक्ति एकाकी समाधि से सामाजिक समाधि की ओर आगे बढ़ा । राष्ट्र में नैतिक समानता की भावना जागृत हुई । गाँधी जी के शब्दों में—"विचार में, वाणी में और आचार में सत्य होना ही सत्य है । इस सत्य सम्पूर्णतः को समझने पर जगत् में कुछ और जानना बाकी नहीं रहता ।" इसका उत्तर श्री कृष्ण ने दिया है । उन्होंने अर्जुन को कर्म क्षेत्र में नियोजित करते हुए बताया है कि सत्य की प्राप्ति अभ्यास और वैराग्य से हो सकती है । अभ्यास यानी—कर्म वैराग्य—यानी विशेष लगन । गाँधी जी के अनुसार भी सच्चाई के किसी भी कार्य को विशेष लगन से करने पर व्यक्ति ईश्वर को पा सकता है । ईश्वर रूपी सत्य सत्ता से बाहर नहीं है अपितु समग्रता में अस्तित्वमात्र ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है ।

वेद की तरह गाँधी जी के अनुसार भी नैतिक आचारों को मानने वाला व्यक्ति आस्तिक है । गाँधी जी का ईश्वर विश्वासों के क्षेत्र में "एक नैतिक सत्य" है । इन नैतिक शक्तियों में ही कर्मों के फलों का निश्चय न करने के भाव हैं । मनुष्य को पूर्ण सत्य का ज्ञान नहीं होता है । इसे सापेक्ष सत्यों के ज्ञान के सहारे ही आदर्श की एक-एक सीढ़ी पर चढ़ता हुआ सत्यपरता की ओर उन्मुख होता है । इस तरह पूर्ण सत्य का अनुभव ही आत्म जीवन का अन्त है । अष्टांग योग के व्यक्तिगत मूल्यों को समान में "सत्य ही ईश्वर है" इस मान्यता से उतारा जा सकता है । गाँधी जी का सत्य यथार्थतः मानवता की सीमा में निवास करता है । त्यागमय जीवन से इस सत्य की साधना सहज हो जाती है । भोगमय जीवन गाँधी जी की दृष्टि में इसलिए वांछनीय नहीं है क्योंकि इससे सत्य का आचरण दुर्लभ हो जाता है ।

एकादश व्रत का तीसरा व्रत अस्तेय है । अस्तेय एक मिथ्या रहित सत्य की भावना है । जो वस्तु हमारे श्रम से अर्जित नहीं, उसे किसी भी साधन के सहारे अपना लेना स्तेय है । किन्तु श्रमार्जित स्वार्थ को ग्रहण करना अस्तेय है । अस्तेय शोषण की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है । बिना किसी परिश्रम के अन्यान्य द्वारा प्रकाश अथवा अन्धकार में समाज की आँखों के सामने अथवा पीछे अपनायी गई वस्तु चोरी है और चोरी न करना ही स्तेय व्रत है । इस व्रत के पालन में केवल अन्तःकरण ही नहीं शुद्ध हो जाता, अपितु सारा मानव समाज आरोग्यपूर्ण हो सकता है । समाज की दरिद्रता का बहुत कुछ कारक अस्तेय व्रत को भंग कर देना है । भारतीय प्राचीन संस्कृति के अनुसार दूसरों की वस्तु को बिना उनकी आज्ञा के अपने प्रयोग में ले लेना भी अस्तेय व्रत को भंग कर देना है । वे "दूसरे" अपने भाई-बन्धु आदि ही क्यों न हों लेकिन आज के साम्यवादी युग में उसकी परिभाषा जरा और अधिक 'उत्कृष्ट' हो गई है । अपनी आवश्यकताओं को सही जानना और उन्हीं की मात्रा में संचयरत रहना ही अस्तेय व्रत का पालन करना है । सर्वोदय के अनुसार आवश्यकता से अधिक अपने पास रखना स्तेय है और उसे समाज को दान कर देना अस्तेय है ।

गाँधी जीवन दर्शन के अनुसार सत्य और अहिंसा की खोज में अतिव्याप्त रहना ही ब्रह्मचर्य है किन्तु यह सामान्यजनों की बात नहीं है । शुद्ध मानस एवं शुद्धाचरण से वीर्य रक्षण के शौर्य और नैतिक कर्तव्य को भी हम ब्रह्मचर्य के भीतर गिनते हैं किन्तु सूक्ष्म चिन्तन से सर्वेन्द्रिय संयम ही ब्रह्मचर्य के रूप में आभासित होता है । गाँधी जी उपनिषदों के इस कथन से सहमत हैं कि भोग की इच्छा से ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन में नहीं लगा जा सकता है । सर्वव्यापी प्रेम के लिए ही ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है । जिस समय तक व्यक्ति केवल परिवार अथवा परिवार के सदस्यों में अनुरक्त है तब तक उसका प्रेम सर्वव्यापी नहीं हो सकता और आन्तरिक प्रेम की सर्वव्यापकता ही ब्रह्म विभूति की चर्या है । अपने प्रेम को किसी एक व्यक्ति को सौंप देना ब्रह्मचर्य व्रत को भंग कर देना है । ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के लिए अन्तर प्रकृति और बाह्य व्यवहार में एकता का होना आवश्यक है । भगवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री कृष्ण के अनुसार मन से स्त्री रूप का चिन्तन करता हुआ शरीर को संयम नियम की फाँसी पर चढ़ाये रखना "मिथ्याचरण" है । अतः ब्रह्मचारी वही है जिसने अपने मन को सुसंस्कारों से संस्कृत कर दिया जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर अपने दुर्जेय मन को भी अधिकृत कर लिया ।

ज्ञानतः और विज्ञानतः सब तरह से सूक्ष्म का महत्त्व स्थूल से अधिक है । उसी तरह ब्रह्मचर्य में भी उसके सूक्ष्म पहलू अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अतः ब्रह्मचर्य का उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी है और इन प्राणियों का महत्त्व शारीरिक स्वास्थ से अधिक है क्योंकि इनके अभाव में शारीरिक शक्ति आसुरी कृत्यों में भी अपने को लगा सकती है । जिनसे समाज समाधि यानी शान्तिप्रिय सत्यशील समाज की स्थापना नहीं हो सकती । अतः आत्मशक्ति को जागृत करना भी ब्रह्मचर्य का उद्देश्य है ।

असंग्रह की चर्चा करते समय आज के विज्ञान विमूढ़ विचारक अपने मन को बहुत कष्ट में पाते हैं । वे असंग्रह व्रत का सम्बन्ध निवृति मार्गी निकम्मे साधुओं के चरित्र से जोड़ देते हैं । सचमुच ही यह अज्ञानता समाज में बड़ा असन्तुलन पैदा कर देती है । असन्तुलन का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है, अपितु अध्यात्म पर आधारित यथार्थ की एक मानवी भावना है आध्यात्मिकता । यह संसार वास्तव में सत्य नहीं है यह व्यवहार में सत्य है । अतः इसकी सभी वस्तुएँ नित्य नव नूतन रूप लेती रहती हैं । इस रूपान्तर की क्रिया में फँसा हुआ विश्व अथवा कोई वस्तु अपना कैसे हो सकता है ? किसी भी वस्तु पर मनुष्य का शाश्वत सम्बन्ध नहीं हो सकता और जब शाश्वत सम्बन्ध अप्राकृतिक एवं अनैसर्गिक है तब संग्रह अथवा परिग्रह का कोई अर्थगत प्रयोजन नहीं दीख पड़ता । अतः किसी भी वस्तु में अहंभाव का आरोप अज्ञान है और अहंभाव से प्रेरित होकर किसी भी वस्तु का संग्रह करना एक अज्ञान सिद्ध कर्म है । ज्ञान तो वही है जब हम अपनी वस्तु को अपनी और जो अपनी नहीं है उसे अपनी न मानें तथा अहंभाव में विवेक च्युत होकर वस्तु संग्रह के लिए उत्कोच, मिथ्याचरण, शोषण आदि के रास्ते अपनी ईश्वरीय महनीयता से पूर्ण जीवन को न ले जायें ।

अतः किसी भी वस्तु में अहंजनित आत्मभाव के प्रतिबिम्ब को न देखना ही असंग्रह व्रत है । यहाँ तक कि शरीर तक को अपना न समझना ही "असंग्रह" व्रत का पालन करना है । अपने शरीर से अहंभाव के शिथिल होने से विषय वासनाओं रूपी गिद्धों के 'पंख' कट जाते हैं और मनुष्य का सहज ईश्वरीय जीवन नाना प्रकार के भोग रूपी मगरमच्छों के मुँह में जाने से बच जाता है । यही नहीं सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अस्तेय व्रतों के पालन के लिए भी इस व्रत का महत्त्व अधिक है ।

भारत का प्रत्येक हिन्दू अथवा हिन्दी भाषी 'यज्ञ' शब्द से परिचित है । यज्ञों में आहुति देने के पश्चात "इदम् न मम" कहने की प्रथा है । इस प्रथा अथवा विधान का तात्पर्य केवल यही है कि हे भगवान ! यह हवन सामग्री जो आहुति के रूप में तुझे दे रहा हूँ, "मेरी नहीं है ।" अर्थात् अपनी वस्तु को अपना न मानता हुआ व्यक्ति आदान-प्रदान करता हुआ भारतीय आर्य संस्कृति की लपटों को दैदीप्यमान रखता है । यही असंग्रह व्रत है । इस असंग्रह व्रत का व्यावहारिक तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी सामग्रियों में अहंभावना न रखे । इस अहंभावना के कारण महानुभाव मानवीय गुणों से पूर्ण दरिद्र अथवा अभावग्रस्त व्यक्ति को नीची नजरों से देखते हुए उससे बचकर चलते देखे जाते हैं । असंग्रह व्रत को समझे तथा उसे अपने जीवन में उतारे बिना मनुष्य मनुष्य से कट जाता है । अपरिग्रह दो कटे-कटे रहने वाले मनुष्यों को एक में जोड़ देता है । कर्मयोगियों को असंग्रह व्रत एक ऐसा मार्ग जिससे चलकर सारी मानवता प्रेम के चौराहे पर पहुँच जाये । अपरिग्रही पशुता की केंचुल का परित्याग कर देवत्व की ओर बढ़ चलता है ।

असंग्रह के पश्चात शरीर श्रम का नम्बर आता है । धीरे-धीरे सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर आ रहे हैं । शरीर श्रम को मध्ययुग में तुच्छता की दृष्टि से समृद्ध लोगों ने देखना प्रारम्भ कर दिया था जिसका परिणाम भी सामने आया । राष्ट्र के गुलाम हो जाने के साथ-साथ सांस्कृतिक सत्परम्पराएँ आदि ही नहीं यहाँ का सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और देश पर बिना किसी परिश्रम के नीतिज्ञ श्रमनिष्ठों का आधिकार हो गया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर श्रम को अपने एकादश व्रतों में स्थान देकर गाँधी जी ने श्रम की आवश्यकता का ही नहीं इसकी महानता का भी समर्थन किया । व्रत रूप में स्वीकार कर लेने से वह सिद्ध हो गया कि शरीर श्रम 'अहिंसा', 'सत्य' आदि ईश्वरीय बातों की तुलना में किसी बात में छोटा नहीं है । हम बहुत कुछ शरीर श्रम इसलिए नहीं करते हैं कि हम इसे गिरी हुई नजर से देखने के आदी हो गए हैं । लेकिन गाँधी जी के रास्ते से जिन्दगी का काफिला ले जाने वाले शरीरश्रम को अपना परम धर्म मानते हैं । प्राचीनकाल में शरीरश्रम पर ही वर्णव्यवस्था खड़ी की गई थी । हमारे देश के प्राचीन ऋषि लोग भगवान से यह प्रार्थना किया करते थे कि हे भगवन् ! हम कर्म करते हुए एक सौ वर्ष जीवित रहे । अर्थात् कर्महीन बनकर इस पृथ्वी का बोझ न बनें । गाँधी शरीरश्रम व्रत के अनुसार जब तक मनुष्य के घट में श्वास है तब तक उन्हें श्रमनिष्ठ रहना चाहिए और यह तभी सम्भव है जबकि जीवन के उषाकाल से ही हम श्रम के अभ्यासी बन जायें । जवानी से ही श्रम का पालन करने वाला जीवन की शाम आ जाने पर भी काम में लगा रहता है और व्रत की कुछ भी परवाह न करने वाला प्राणी गीदड़ की तरह मोटा होने पर गद्दे पर पौंढ़ा रहता है । अतः श्रम का अभ्यास डालने के लिए भारतीय नौजवानों को क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिए । इन्हें ही राष्ट्र को समृद्धशील बनाना है ।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भी शरीर श्रम मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है । समृद्ध हो जाना अच्छी बात है किन्तु समृद्धि मनुष्य के अंगों की शक्ति नहीं छीन ले । आज अगर समृद्ध भारतीय नागरिकों के मन में तपस्विता और कर्मनिष्ठता की भावना जाग उठे तो राष्ट्र की कायापलट जाय । एक बेजोड़ क्रान्ति हो जाय । क्योंकि समृद्ध जनों के कर्म मार्ग में गतिरोध आने की सम्भावना बहुत कम होती है ।

शरीरश्रम का केवल लौकिक महत्त्व नहीं हैं, इसमें दार्शनिक सत्य भी भरा हुआ है । जो लोक और परलोक सर्वत्र पूजित है । शरीर श्रम से अन्तःकरण की शुद्धता सम्बन्धित होती है ।

शरीरश्रम करने के बाद प्राणी अपने आश्रम को लौटता है । थकान और प्यास के मिटने पर भोजन की इच्छा तेज होती है । ठीक इसी तरह एकादश व्रतों में भी एक क्रम है । इसके क्रम भंग से गूढ़ार्थों की तारतम्यता नष्ट हो जाती है । जिस तरह मनुष्य श्रम से भोजन पर आता है, उसी तरह शरीरश्रम व्रत के पश्चात अस्वाद व्रत की व्यवस्था दी गई है । अस्वाद व्रत गाँधी जी का अपना व्रत है । वह भी किसी अन्य व्रत से कम वजन नहीं रखता । प्रायः आज के दिनों में हम शरीर धर्म के निर्वाह के लिए भोजन नहीं करते । स्वाद के आनन्द के लिए भोजन करते हैं । विदेशों में भोजन को सड़ाकर तथा शुष्क रूप देकर खाने का प्रचलन हो चला है तो भारत में भोज्य सामग्रियों को तलकर नष्ट करके खाने की परम्परा का श्रीगणेश हो गया है । मनुष्यता और पशुता में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य अपनी समझदारी से काम करता है और पशु में समझदारी नहीं होती । अतः एक व्यक्ति को मनुष्य होने के नाते यह समझ कर भोजन करने बैठना चाहिए कि हम मात्र स्वाद के लिए नहीं बल्कि जीवन के धर्म का पालन तथा शरीर परिपोषण के लिए भोजन करने जा रहे हैं । यही अस्वाद व्रत है । अस्वाद व्रत के पालन का यह अर्थ नहीं है कि आप ऐसी वस्तुओं को खाइये जिसमें कोई स्वाद न हो । वह तो निस्वाद है और निस्वाद की गणना में मिट्टी आदि आते हैं । मिट्टी आदि खाने से कभी भी शरीर की चैतन्यता कायम नहीं रह सकती । अतः अस्वाद की व्याख्या करते समय महात्मा जी ने बताया है कि भोजन को शरीर की आवश्यकता समझना चाहिए न कि उसे स्वाद के भुलावे में पड़ कर मुँह में डाल लेना चाहिए ।

अस्वाद व्रत के पालन में स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों को लेने की पूर्ण व्यवस्था है किन्तु औषधि के रूप में जिस तरह रोगी को मात्रा रूप में औषधि दी जाती है, उसी तरह इस शरीर को मात्रा और समय से ऐसे स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ दिए जा सकते हैं जो सड़ाया हुआ, सुखाया हुआ, तला हुआ तथा तामसिक और उत्तेजक न हो । अस्वाद व्रत के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ कर उसके पालन करने से मनुष्य कभी भी रोगों के चंगुल में नहीं पड़ सकता । स्वाद रसना की एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभूति है । वास्तविक जीवन से इसका किंचित मात्र सम्बन्ध नहीं है । इसलिए वास्तविक जीवन की भोज्य वस्तुओं को समझ कर उन्हें मात्रा रूप में ग्रहण करना ही अस्वाद व्रत का पालन करना है । स्वादिष्ट भोजन उसी हालत में लेना चाहिए जब कि उससे शरीर के पोषण की आशा हो । अस्वाद व्रत के पालन से प्राणी में ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पालन की शक्ति आ जाती है ।

अस्वाद के बाद गाँधी जी का "अभय" नाम का आठवाँ व्रत आता है । "अभय" मानव हृदय की एक ऐसी अवस्था है जिससे जीवन की सक्रियता कभी बाधित नहीं होती है । अभय एक ऐसी वस्तु है जिसके पास रहने से मनुष्य घोर संकटों में भी कभी निराश नहीं होता । निर्भयता एक ऐसा अस्त्र है जिस को साथ रखने पर हर मानव प्राणी कभी भी असत्य, अन्याय, असुरता आदि की शक्ति से पराजित हो अपने जीवन का मार्ग नहीं बदल देता । यही नहीं किसी भी प्रकार के रंगीन व्यक्तित्व से भी वह प्रभावित नहीं होता । निर्भयता वस्तुतः प्रत्येक मानव प्राणी के हृदय की आत्म-चेतना है । आत्म-विद्युत है ।

गाँधी जी के अनुसार शारीरिक शक्ति और शौर्य वीरता नहीं है । दुनिया के भयों से मुक्त हो जाना ही वीरता है । मौत का भय, धन-दौलत के लुट जाने का भय, कुटुम्ब-परिवार विषयक भय, रोग भय, शत्रु भय, सरकार और समाज भय आदि जितने प्रकार के भय हैं इन भयों की आँधी में हिमालय की तरह खड़ा रहना ही निर्भयता है और अभय व्रत का पालन है । मौत के भय का दमन हम अपनी आत्मभावना की शक्ति से कर सकते हैं । अहिंसा, अस्तेय और असंग्रह के व्रतों का पालन करते हुए हम चोर-डाकुओं से अपने धन-दौलत के लुट जाने के भय से मुक्त हो सकते हैं । वे आदमी कितने आश्चर्य के विषय हैं जो भूखे और नंगे मरते हुए मानव-प्राणियों के बीच में निवास करते हुए भी अपनी तिजोरियों में लाख पर लाख रखते जाते हैं । सच पूछिये तो ऐसे मनुष्य कायर हैं उन्हें अपनी अकर्मण्यता का भय है । अभय व्रत का पालन करने वाला गाँधीवादी अपनी कर्मशीलता पर दृढ़ रहता है । अभय व्रत के पालन में मनुष्य को निन्दा, स्तुति आदि से भी सत्य और अहिंसा के रास्ते से विचलित नहीं होना चाहिए । कल्पित मान और प्रतिष्ठा की रक्षा में मन न लगाने वाला व्यक्ति ही सच्चा अभय व्रती है । ऐसे भी भय आते हैं जिसमें कुटुम्ब भी खतरे के दायरे में आया हुआ नजर आता है । मनुष्य की जीविका तक के चले जाने के चिह्न दीखने लगते हैं लेकिन मिथ्या जगत की समृद्धि की आशा अथवा विनाश के भय में पड़कर सत्य और अहिंसा का प्रेमी कभी भी दिग्भ्रान्त नहीं होता, वह गाँधी मार्ग पर निरन्तर चलता रहता है । उसके मस्तिष्क में देह-भावना के स्थान पर देही की भावना होती है । परिवार के उपरान्त कभी-कभी मनुष्य रोगों के संक्रमित हो जाने के भय से रोगी की सेवा के लिए कटिबद्ध नहीं हो पाता । किन्तु सत्य का सच्चा पथिक अभय होकर सेवा का सेनानी बनने के लिए तैयार हो जाता है । अभय हो जाना एक महान मनःस्विता भी है ।

यों तो भय मात्र से छूटना बहुत ही कठिन है । अभय व्रत का पूर्ण पालन तो आत्मज्ञ प्राणी ही कर सकता है । किन्तु व्यक्ति मात्र अभय व्रत का पालन करते हुए आत्मज्ञता की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं । देश की अपनी सांस्कृतिक प्रतिभा जो यहाँ की मिट्टी और जलवायु की उपज है । उस पर पाश्चात्य संस्कृति द्वारा होते हुए हिमपात को वीरता और धीरतापूर्वक रोकने का प्रयत्न करते रहना ही सूक्ष्म दृष्टि में अभय व्रत के अन्तर्गत ज्ञात होता है । यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है— भौतिकवादी मानव प्राणी से कदापि अभय व्रत का पालन नहीं हो सकता भले ही उनके हाथों में बड़ी से बड़ी शक्ति क्यों न आ गई हो । अभय व्रत का पालन केवल आध्यात्मिक आस्तिक प्राणियों से ही सम्भव है क्योंकि देह-भावना के स्थान पर देही के अमरत्व में उनकी अविचल निष्ठा होती है । गाँधी जी के शब्दों में "अभय मोह रहित स्थिति की पराकाष्ठा है ।"

एकादश व्रत में अस्वाद और सर्वत्र भय वर्जन आध्यात्म्यपरक अधिक होने के नाते अपना उत्तरदायित्व 'सर्वधर्म समानत्व' व्रत को दे डालता है । यह गाँधी जी का नवाँ व्रत है । जहाँ सारी इकाइयाँ पूर्ण होकर बाद में अद्वैत रूप धारण कर लेती हैं । सर्वधर्म समानत्व का सरल रूपक वेदान्त की अद्वैत मान्यता है । अद्वैव में सारे दार्शनिक सिद्धान्त एक ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं । एक ब्रह्म की सत्ता को ही सत् रूप में स्वीकृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाता है । इस व्रत में भी यही होता है । विनोबा के "जीवनम् सत्ये शोधनम्" के अनुसार विश्व के सारे धर्मों में मानवता के रक्षण, अहिंसा के पालन एवं प्रेम प्रचार की ही बातें कही गई हैं । अतः धर्मों के प्रवर्तक संत एवं ज्ञानियों की भिन्नताओं के बावजूद भी उनके धुनियों में मानव वर्ग एक ही स्वरूप के अन्तरबिम्ब का दर्शन करता है । यह अन्तरबिम्ब देश, जाति और रंग की भिन्नता की भावना की लहरों में भी आन्दोलित नहीं हो पाया । इसे शुद्ध अन्तःकरण वाला निरपेक्ष व्यक्ति देख सकता है । सभी धर्मों के सिद्धान्तों एवं संतों को यौगिक अतेन्द्रिक अनुभूतियों में भी सभ्यता की झलक दीख पड़ती है । इस सभ्यता के सिद्धान्त रूपी प्रदीप की रोशनी में अपनी जीवन की रचना करना ही "सर्व धर्म समानत्व" व्रत का पालन करना है । सारे धर्मों में यह कहा गया है कि ईश्वर है । उसकी संख्या एक है । वह सत्य है । वह प्रेम से प्राप्त होता है । मनुष्य के सद्व्यवहार से प्रसन्न होता है । विश्व के नैतिक आचारों को जीवन में उतार लेने से उसके विश्वगत साक्षेप सत्यों का आभास होता है आदि । इन संत मात्र के अनुभूति सूत्रों में विश्वास रखकर अन्य धर्म वालों की कट्टरता का प्रेम व्यवहार से परिष्कार करते हुए मानव मात्र में ईश्वर की झाँकी करता हुआ उनके साथ आत्मीयता का प्रयोग करते रहना गाँधी के "सर्वधर्म समानत्व" व्रत का लक्ष्य है । "हम कुछ हैं ।" इस भावना के निर्बल हो जाने पर "सर्वधर्म समानत्व" के व्रत का पालन सरल हो जाता है और आदमी धीरे-धीरे देवता होने लगता है । गाँधी जी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हुआ था । वे केवल भारत में गुलामी की जंजीरों को ही तोड़ने के लिए नहीं थे अपितु एक नव कर्म स्फूर्ति से अपूर्ण स्फूर्ति आस्तिक समाज की रचना हेतु अवतीर्ण हुए थे । यही कारण था कि अपने व्रतों के साथ उन्होंने "स्वदेशी" व्रत का आह्वान किया । 'स्वदेशी' व्रत उन्होंने महाव्रत के नाम से पुकारा था । गाँधी जी के अनुसार स्वदेशी व्रत राष्ट्र का एक महान विस्मृत धर्म है । गाँधी जी ने स्वदेशी शब्द का सम्बन्ध स्वधर्म से जोड़ दिया था जिसके लिए भगवान श्री कृष्ण ने पहले ही कहा है कि "स्व धर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" गाँधी जी अपने स्वधर्म स्वरूपी स्वदेशी व्रत का न पालन करना भयावह ही नहीं आत्महत्या से भी अति निकृष्ट समझते थे । उनकी सारी राष्ट्र निर्माण की महत्त्वाकांक्षाएँ इसी एक व्रत में समाहित थीं । उन्होंने स्वदेशी रूपी ग्राम्य-राज्य के रूप में समर्थ गुरु रामदास के रामराज्य का सपना देखा था । स्वदेशी व्रत का तात्पर्य अपने देश के वस्त्र विचार और दर्शन के मूलभूत तत्वों एवं तन्तुओं से है । इसमें "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की महनीयता भी कूट-कूट कर भरी हुई है । इसमें राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के सार्वभौमि एवं सर्वकालिक उत्तर भी मौजूद हैं ।

गाँधी जी का अन्तिम व्रत स्पर्शभावना का था । स्पर्श के आधार परे व्यक्ति का किसी भी व्यक्ति को ऊँचा अथवा नीचा मानना घोर अज्ञानता है । अगर हमें कोई नीचा समझ कर स्पर्श करने से परहेज रखता है तो उसकी इस छोटी-सी अक्ल किसी भी ईश्वर के अविनाशी अंश में अपवित्रता नहीं आ सकती और न ही वह नीच ही हो सकता है । इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अस्पृश्यता की मनोवृत्ति को समाप्त कर देना चाहिए । इस भावना के रहते हुए कभी भी हम अपने समाज को सर्वोदय नहीं कर सकते । अस्पृश्यता की भावना मनुष्य की सबसे नीच अन्तरवृत्ति का शोधन करती है ।

महात्मा गाँधी के अनुसार, ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं—जो हमें ब्रह्म की तरफ ले जाता है । उसमें जननेन्द्रिय का संयम आ जाता है । वह संयम मन वाणी, और कर्म से होना चाहिए । अगर कोई मन से भोग करे और वाणी व स्थूल कर्म पर काबू रखे तो यह ब्रह्मचर्य में नहीं चलेगा । 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' मन पर पूरा काबू हो जाय, तो वाणी और धर्म कर्म का संयम, बहुत आसान हो जाता है । मेरी कल्पना का ब्रह्मचारी, कुदरतन तन्दुरुस्त होगा, उसका सिर तक नहीं दुखेगा, वह कुदरती तौर पर लम्बी उमर वाला होगा, उसकी बुद्धि तेज होगी, वह आलसी नहीं होगा, जिस्मानी या दिमागी काम करने में थकेगा नहीं और उसकी बाहरी सुघड़ता सिर्फ दिखावा न होकर भीतर का प्रतिबिम्ब होगी । ऐसे ब्रह्मचारी में स्थितप्रज्ञ के सब लक्षण देखने में आयेंगे ।

ऐसा ब्रह्मचारी हमें कहीं दिखाई न पड़ें, तो उसमें घबराने की कोई बात नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो स्थिरवीर्य है, जो ऊर्ध्वरिता है, उनमें ऊपर के लक्षण देखने में आवें तो कौन बड़ी बात है ? मनुष्य के जिस वीर्य में अपने जैसा जीव पैदा करने की ताकत है, जिस वीर्य के एक बूँद में इतनी ताकत है, उस वीर्य को ऊँचे ले जाना ऐसी-वैसी बात नहीं हो सकती । जिस वीर्य के एक बूँद में इतनी ताकत है, उसके हजारों बूँदों की ताकत का माप कौन लगा सकता है ।

यहाँ इस जरूरी बात पर विचार कर लेना चाहिए । पातंजलि भगवान के पाँच महाव्रतों में से किसी एक को लेकर उसकी साधना नहीं की जा सकती । यह हो सकता है तो सिर्फ सत्य के बारे में ही, क्योंकि दूसरे चार तो सत्य में छिपे हुए हैं और इस युग के लिए तो पाँच की नहीं, ग्यारह व्रतों की जरूरत है । विनोबा ने उन्हें मराठी में सूत्ररूप में रख दिया है ।

अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य असंग्रह,
शरीरश्रम अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन ।
सर्वधर्मी समानत्व, स्वदेशी स्पर्शभावना,
ही ऐकादश सेवावीं नम्रत्वें व्रतश्चियं ॥

ये सब व्रत सत्य के पालन में से निकाले जा सकते हैं । मगर जीवन इतना सरल नहीं । एक सिद्धान्तों में से अनेक उप-सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं । तो भी एक सबसे बड़े सिद्धान्त को समझने के लिए अनेक उप-सिद्धान्त जानने पड़ते हैं ।

यह भी समझना चाहिए कि सब व्रत समान हैं । एक टूटा कि सब टूटे । हमें आदत पड़ गई है कि सत्य और अहिंसा के व्रत भंग को हम साफ कर सकते हैं । इन व्रतों को तोड़ने वाले की तरफ हम अँगुली नहीं उठाते । अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नहीं । मगर माना हुआ ब्रह्मचर्य का व्रत टूटा, तो तोड़ने वाले का बुरा हाल होता है । जिस समाज में ऐसा होता है उसमें कोई बड़ा दोष होना चाहिए । ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ लेने से वह निस्तेज बनता है । उसका शुद्ध पालन नहीं होता, सच्ची कीमत नहीं आँकी जाती और दम्भ बढ़ता है । कम से कम इस व्रत का पूरा स्थूल पालन नहीं मानसिक रूप से भी पालन करना चाहिए ।

व्यापक अर्थों में ब्रह्मचर्य का अर्थ इस प्रकार समझा जा सकता है—

ब्रह्मचर्य का अर्थ है—शक्तियों का संग्रह करना, उन्हें बिखरने न देना—अपनी उन्नति में लगाना । इसका अर्थ शक्ति है, क्रियाशीलता है, तत्परता है, उत्साह है, ओजस्विता है, सहनशीलता है । इसका अर्थ मोटापन नहीं, पहलवानी नहीं है ।

ब्रह्मचर्य शारीरिक स्वास्थ्य देता है, सहनशक्ति, उत्साह तथा साहस देता है; ब्रह्मचर्य से मानसिक शक्तियों का विकास होता है और मनुष्य आत्म-उन्नति के मार्ग पर चलने लगता है ।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियों और विकारों पर सम्पूर्ण अधिकार । इसकी विस्तृत व्याख्या 'समस्त इन्द्रियों का संयम' है ।

ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागज को स्पर्श करने से नहीं होता । मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए मुझे ब्रह्मचर्य के कारण हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी काम का नहीं । जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर का स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं । ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है ।

ब्रह्मचर्य का पूरा वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की खोज । ब्रह्म सब में व्याप्त है । अतएव उसकी खोज अन्तर्ध्यान और उससे उत्पन्न होने वाले अन्तर्ज्ञान से होती है । यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना नहीं हो सकता । इसलिए सभी इन्द्रियों का तन, मन और वचन से सब समय और सब क्षेत्रों में संयम करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

जिसने स्वाद नहीं जीता, वह विषयों को नहीं जीत सकता । इसलिए ब्रह्मचारी को स्वादेन्द्रिय जीतने का भी पूरा प्रयत्न करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण

नर को नारायण और पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने का लक्ष लेकर युग-निर्माण योजना का आरम्भ हुआ है । मानव तुच्छ नहीं महान है । वह महान तत्व से अवतरित होता है, महान लक्ष लेकर इस पृथ्वी पर आता है और महानता की शानदार जिन्दगी जीते हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महान आदर्श उपस्थिति करते हुए महान तत्व को उपलब्ध करने के लिए ही उसकी जीवन-यात्रा चलती है । इस राजमार्ग पर वह चलता रहे तो उसे पग-पग पर आनन्द, सन्तोष और उल्लास भरी परिस्थिति अनुभव होगी । अपने आस-पास का सारा वातावरण उसे सज्जनता और सौम्यता से ओत-प्रोत दिखाई देगा । जहाँ बदमाशी और गन्दगी है, वहाँ उसे हटाने और मिटाने को एक परीक्षा या कसौटी की तरह समझकर सुलझे हुए दृष्टिकोण का व्यक्ति खिन्न होने की अपेक्षा कठोर कर्तव्य पालन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करेगा ।

छोटी बातों का बड़ा महत्त्व

महानता के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें छोटी बातों से अपना प्रयत्न आरम्भ करना पड़ता है । उनके मिलने से ही सर्वांगपूर्ण महानता विकसित होती है । छोटे-छोटे पिण्डों से मिलकर यह विशाल ब्रह्माण्ड बना है और हर पिण्ड सूक्ष्म अण्डों का, अणुओं का समूह मात्र है । इसी प्रकार छोटी-छोटी अच्छी आदतें, अच्छी भावना, अच्छी मान्यता, अच्छी श्रद्धा, अच्छी प्रवृत्ति, अच्छी आकांक्षा मिलकर एक सर्वतोन्मुखी श्रेष्ठता विकसित होती है । कोई महापुरुष संत या ऋषि और कुछ नहीं केवल छोटी-छोटी अच्छाइयों का एक समूह है । यह छोटी-छोटी अच्छाइयाँ यदि समाप्त हो जायें तो उसका सार वैभव बुद्धिबल और पुरुषार्थ मिलकर भी महानता की रक्षा न कर सकेगा । वह फिर तुच्छ का तुच्छ बन जायेगा । छोटी अच्छाइयाँ देखने में तुच्छ लगती हैं पर वस्तुतः इन्हीं ईंटों को चुनकर महानता का विशाल भवन खड़ा किया जाता है ।

छोटी-छोटी अच्छी या बुरी आदतें विकसित होने पर मनुष्य के जीवन को बनाने और बिगाड़ने में भारी योगदान करती हैं । चोरी, जुआ, नशा, व्यभिचार, आलस आदि की बुरी आदतें आरम्भ में बहुत छोटे रूप में ही उत्पन्न होती हैं पर जब मनुष्य के मस्तिष्क पर पूरी तरह छा जाती हैं और उसे अपना गुलाम बना लेती हैं तो फिर वह बेचारा ऐसा बेबस हो जाता है कि इन घृणित बातों से ऊपर उठ ही नहीं पाता । अपने सर्वस्व को इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों की वेदी पर बलिदान कर देता है ।

छोटी अच्छाइयों का सत्परिणाम

जिस प्रकार छोटी बुराइयाँ आरम्भ होकर भयंकर रूप धारण करती हैं, उसी प्रकार अच्छाइयों का सूक्ष्म आरम्भ यानि क्रमबद्ध रूप से अग्रसर होता रहे तो उसका अन्तिम परिणाम ऐसा महान हो सकता है जिस पर गर्व और सन्तोष व्यक्त किया जा सके । अन्नमय-कोश की साधना के यह दो व्रत भले ही छोटे लगें पर उनके परिणाम वासना पर नियन्त्रण होते चलने से मनुष्य की श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं । वासना और तृष्णा की डाकिनों में से एक को—वासना को यदि कुछ काबू में रखा जा सके तो निःसन्देह इस संसार की आधी विपत्ति हल हो सकती है । मानवीय शरीर और मन का सत्यानाश करने वाली डाकिन वासना है जिससे समाज में अगणित प्रकार के पाप, द्वेष, अनाचार, अत्याचार, उत्पन्न होते हैं । इन दोनों को सीमित किए बिना आत्मिक सद्गुणों का असीम विस्तार हो सकना सम्भव नहीं । इसलिए अध्यात्म विद्या के आचार्य विविध विधि साधनाएँ बनाकर मानव अन्तःकरणों को इन कषाय-कल्मषों से विमुक्त करने का प्रयत्न किया करते हैं । अन्नमय-कोश की साधना के लिए हमारे दो प्रयत्न भी इस दिशा में उठाये गए आरम्भिक कदम हैं जिनका सत्परिणाम, सादगी, सन्तोष, सौम्यता और शालीनता के रूप में कुछ ही समय में प्रस्फुटित देखा जा सकता है ।

गृहस्थ में तपश्चर्या का विधान

अन्तःप्रदेश में जड़ जमाकर बैठी हुई असुरता से लड़ने के लिए जो कष्टसाध्य प्रयास साधक को करना पड़ता है उसे तप कहते हैं । अन्नमय-कोश की साधना तपश्चर्या नाम से पुकारी जाती है । उसे आहार की तपश्चर्या और विहार ही तपश्चर्या दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । आहार की तपश्चर्या को अस्वाद व्रत और पदार्थ सीमाबन्ध के रूप में पिछले लेख में प्रस्तुत कर चुके हैं । विहार की तपश्चर्या में (१) ब्रह्मचर्य और (२) निरालस्य इन दो बातों को रखा गया है । काम-सेवन की समस्या व्यक्तिगत मानी जाती है, पर वस्तुतः वह पूर्णतया सामाजिक है । व्यक्तियों के स्वास्थ्य से उसका सीधा सम्बन्ध है और सन्तान की दुर्बलता से हमारी भावी पीढ़ियों का सत्यानाश होना भी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सकती । व्यक्तिगत जीवन में शरीर का खोखलापन, दुर्बलताजन्य कायाकष्ट, मूत्र रोग, जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ, अल्पायु, जबानी में बुढ़ापा, औषधियों का खर्च, उपार्जन में आसक्तता, चित्त में खिन्नता, पीड़ा, घर वालों की परेशानी, स्वजनों की घृणा और झुँझलाहट, मानसिक दीनता, चिड़-चिड़ापन, विचार-शक्ति का अभाव, चंचलता आदि अगणित व्यथाएँ ऐसी हैं जो अव्यवस्थित, अनियन्त्रित काम-सेवन करने वालों के पीछे लग जाती हैं और जीवन के रस से ही उन्हें हाथ धोकर निराशा और उदासीनता भरा निकृष्ट जीवन-यापन करने के लिए विवश होना पड़ता है ।

ब्रह्मचर्य से जीवन विकास

ब्रह्मचर्य की महत्ता का आरोग्यशास्त्र और आध्यात्मशास्त्र एक स्वर से गुणगान करते हैं । दोनों ही यह मानते हैं कि व्यक्तित्व से सर्वांगीण विकास के लिए ब्रह्मचर्य को अमृत ही मानना चाहिए । "मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दु धारणम् ।" की उक्ति में ऋषि ने यही कहा है कि ब्रह्मचर्य को ही जीवन और उसके नाश को ही मरण मानना चाहिए । जिन्हें जिन्दगी से प्यार नहीं, जो मौत के मुँह में जाने के लिए आतुर हैं उन्हें अनियन्त्रित काम-सेवन का रास्ता अपना लेना चाहिए । सर्वनाश कुछ ही समय में उनके सामने आ खड़ा होगा । महापुरुषों की महानता में सदा से ब्रह्मचर्य का बड़ा योग रहा है ।

हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि में ब्रह्मचर्य का तेज किस प्रकार प्रस्फुटित हुआ था यह सर्वविदित है । पहलवानों को इस सम्बन्ध में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है । बुद्धिजीवी लोगों में से जो उत्कृष्ट श्रेणी के हैं वे ऊर्ध्वरेता रह कर ही देर तक अपनी बौद्धिक प्रतिभा को स्थिर रख पाते हैं । कामवासना में नष्ट होने से जो शक्ति बचा ली जाती है वह ओज, तेज, सौन्दर्य-उल्लास, शौर्य, साहस, स्फूर्ति आदि महत्त्वपूर्ण तत्वों में परिणत होकर शरीर में छलकने लगती है तो मानव शरीर की शोभा और स्थिरता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ जाती है । रोगों का मुकाबला करने वाली जीवनी शक्ति उन्हीं शरीरों में रह पाती है जो अपना सार निचोड़ते रहने में सावधानी बरतते हैं । भजन, ध्यान, श्रद्धा, भक्ति और ईश्वर प्राप्ति के योग्य मनोभूमि बनाने वालों को वासना की ओर से अपना मुँह मोड़ना ही पड़ता है । जिसे इन्द्रिय लोलुपता घेरे रहती है, उसके लिए उस श्रेणी के व्यक्तियों में अपनी गणना करा सकना कठिन है ।

विवाहित जीवन की मर्यादाएँ

अविवाहित, अखण्ड ब्रह्मचारी रहना सब के बस की बात नहीं है । कोई विशिष्ट व्यक्ति इस आदर्श का पालन करें तो उनकी प्रशंसा करनी चाहिए, पर सर्वसाधारण के लिए विवाहित जीवन सरल, सुविधाजनक और सुव्यवस्थित प्रगति की दृष्टि से उचित ही है । चार वर्णाश्रमों की पद्धति वैज्ञानिक भी है और व्यावहारिक भी । नर और नारी में जो अपूर्णता है वह एक-दूसरे के साथ एकात्म होकर पूर्ण करें यह उचित है और आवश्यक भी, किन्तु विवाह होने का मतलब यह नहीं है कि दोनों सर्वनाश के खड्डे में औंधे मुँह गिरने के लिए अन्धी दौड़ लगाने लगें । महात्मा गाँधी ने "अनीति की राह पर" नामक अपनी पुस्तक में विवाहित जीवन में रहते हुए अधिकाधिक ब्रह्मचर्य पालन करने पर बहुत जोर दिया है । ये स्वयं ३६ वर्ष की आयु से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने लगे थे । पति-पत्नी की आत्मीयता, प्रेम-भावना और प्रसन्नता बढ़ाने में अन्धी वासना सहायक नहीं वरन् हानिकारक ही सिद्ध होती है । सुसन्तति की प्राप्ति और सौन्दर्य की रक्षा की दृष्टि से तो यह और भी अधिक आवश्यक है कि दाम्पत्य जीवन में ब्रह्मचर्य को समुचित स्थान मिले । वह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि महानता के ऊँचे मार्ग पर चढ़ने के लिए जिस पेट्रोल की आवश्यकता है वह इन्द्रिय संयम के द्वारा बचाकर ही एकत्रित किया जा सकता है । जिनका जीवन-रस इन घृणित छिद्रों में होकर अमर्यादित रूप से टपकता रहेगा तो उनके पास वह पूँजी बच न सकेगी जिसके मूल्य पर महानता को उपलब्ध कर सकना सम्भव होता है ।

मानसिक कुकल्पनाओं से बचें

अपने दाम्पत्य जीवन से बाहर की वासना के बारे में कल्पना करना, सोचना, उत्पन्न होना, उसके लिए कदम उठाना तो नियत काम-सेवन की अपेक्षा अनेकों गुना अधिक हानिकारक है । शास्त्रों में मानसिक और शारीरिक व्यभिचार को पाप और पतन का कारण एवं नरक में ले जाने वाला अपराध बताया गया है । नैतिकता और कानून की दृष्टि से भी वह हेय है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरोग्य, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं अध्यात्म की दृष्टि से विचार किया जाय तब तो व्यभिचार एक बहुत ही भयानक कुकर्म सिद्ध होता है । अनेकों प्रकार की अशान्तियाँ उत्पन्न करना इस हेय कर्म का प्रत्यक्ष फल सर्वत्र देखा जा सकता है ।

गायत्री उपासना की उच्चस्तरीय साधना का क्रम ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकता । पाठक जानते हैं कि गायत्री के छोटे-बड़े अनुष्ठानों के समय ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है । अन्नमय कोश की साधना सारे जीवन चलने वाली है । इसलिए वैसा निषेधात्मक प्रतिबन्ध तो इसमें नहीं है, पर इतना प्रत्येक साधक को मान कर चलना पड़ेगा कि वह अपनी काम-सेवन सम्बन्धी गतिविधियों पर आगे क्रमशः अधिक ध्यान देगा और उसे अधिक सीमाबद्ध करेगा । सृष्टि के सभी जीव-जन्तु सन्तानोत्पादन की प्रचण्ड स्फुरण होने पर ही नियत समय पर एक बार काम-सेवन करते हैं और जब तक दूसरे बच्चे की आवश्यकता न हो नर-मादा का संयोग नहीं होता । मादा की प्रेरणा पर ही नर उत्तेजित होता है । अपनी ओर से वह कभी मादा से छेड़-छाड़ नहीं करता । मनुष्य को पशु-पक्षियों से अधिक विवेकवान और संयमी होना चाहिए न कि अधिक मूर्ख और अधिक असंयमी ।

न्यूनतम मर्यादा का अनिवार्य परिपालन

इस सम्बन्ध में आज की जो स्थिति है उसे सुनने-समझने से हर विचारशील व्यक्ति की आँखें बरसने लगती हैं । वासना का मन्द विष खाकर लोग किस प्रकार आत्मघात करते चले जा रहे हैं यह करुण कथा सब प्रकार चिन्ताजनक है । इस दिशा में नियन्त्रण न रखा जा सका तो उसका परिणाम व्यक्ति और समाज के लिए सब प्रकार घातक ही होने वाला है । जन-साधारण को इस दुष्प्रवृत्ति से बचना ही चाहिए पर गायत्री उपासकों के लिए तो यह आत्मिक प्रगति का प्रधान आधार ही माना गया है । अन्नमय-कोश के साधकों को वासना पर नियन्त्रण कायम करने के लिए बड़े और साहसपूर्ण कदम उठाने चाहिए । सप्ताह में एकबार से गिरी हुई मर्यादा तो किसी की भी न रहे । इस स्तर से भी नीचे उतर पड़ना आत्मिक प्रगति के लिए ही नहीं शारीरिक सुरक्षा और मानसिक स्थिरता के लिए भी घातक है । यह न्यूनतम अवधि इस गए-गुजरे जमाने और लोगों के दुर्लभ मानसिक स्तर को देखते हुए ही मानी जा सकती है । वस्तुतः इससे अधिक बड़ी मर्यादाएँ ही बनाना किसी विचारशील या अध्यात्मवादी सद्गृहस्थों के लिए सन्तोष की बात हो सकती है । जिनका विवाह नहीं हुआ है, जोड़ा बिछुड़ चुका है या दूर-देश में रहने के कारण संयोग का अवसर नहीं है, उन्हें तो अपने पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए शक्ति संचय के लिए ही तत्पर रहना चाहिए ।

सन्तान के लिए श्रेष्ठ अनुदान

हर व्यक्ति यह पसन्द करता है कि उसे सन्तान प्राप्त हो । पूर्वकाल में तो इसके लिए कितनों ने ही कठिन तपस्या की थी और देवताओं से सन्तान का वरदान पाया था । सचमुच जिनके घर में स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, होनहार, सदाचारी बालक जन्मते हैं वे सब प्रकार से धन्य हैं । ऐसी बाल-विभूतियों की उपलब्धि में जहाँ माता-पिता की शिक्षा-दीक्षा, सुसंस्कार, स्वभाव, बुद्धिमता, आर्थिक स्थिति आदि कारण है वहाँ सबसे बड़ा कारण उनका ब्रह्मचर्य है । शरीर की अन्तिम सार धातु परिपक्व और परिपुष्ट होने पर ही इस योग्य होती है कि उससे उत्कृष्ट कोटि का प्रजनन हो सके । बालकों में ओज, तेज, साहस, पुरुषार्थ, शौर्य, धैर्य, आदर्शवाद आदि उच्चगुणों का सीधा सम्बन्ध माता-पिता के ब्रह्मचर्य से है । कामवासना के कीड़े अपना शरीर और मनोबल तो खोते ही हैं सन्तान भी दुर्बल, रोगी, अल्पायु, मन्दबुद्धि, आलसी, कायर और ऐसे ही अन्य दुर्गुणों से ग्रसित उत्पन्न होती है । अपराधी मनोवृत्ति के बालक आमतौर से असंयमी और दुराचारी माता-पिता की सन्तान होते हैं ।

सुसन्तति का अमूल्य उपहार

सन्तान के लिए लोग इच्छुक तो बहुत रहते हैं, उनके लिए खर्च भी खूब करते हैं और उत्तराधिकार में छोड़ भी बहुत जाते हैं, पर वे श्रेष्ठ सद्गुणों से सम्पन्न होकर जन्में इनके लिए तप, त्याग कुछ भी नहीं करते । ब्रह्मचर्य का अधिकाधिक पालन करना अपनी भावी सन्तान की सबसे बड़ी सेवा है । पोशाक, जेवर, दहेज, शिक्षा, भोजन, जायदाद देकर हम बच्चों का उतना भला नहीं कर सकते जितना उन्हें सुदृढ़ जीवनतत्व और सद्गुणों का आत्मिक उपहार देकर सुखी और समृद्ध बना सकते हैं । बच्चों के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माता-पिता बहुत कष्ट सहते हैं और त्याग भी करते हैं । क्या ही अच्छा होता यदि उन्होंने ब्रह्मचर्य की साधना करके उनके लिए सर्वश्रेष्ठ तप, त्याग किया होता । हर तपस्या का एक श्रेष्ठ वरदान मिलता है । ब्रह्मचर्य की तपस्या से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के अनेक लाभ, वरदानों के साथ एक ईश्वरीय उपहार यह भी है कि ऐसी होनहार सन्तान मिले जो माता-पिता के गौरव एवं यश को बढ़ाकर सच्चे अर्थों में वंश चलाने वाली होती सिद्ध होती हो ।

आलस्य एक प्रकार की आत्म-हत्या है

दूसरा व्रत निरालस्य का है । आलस्य में पड़े-पड़े हम अपना बहुमूल्य बहुत-सा समय आये दिन नष्ट करते रहते हैं । मन्द गति से, हल्का-हल्का बेमन काम करने से समय पूरा नष्ट हो जाता है पर काम एक चौथाई भी दिखाई नहीं देता, जो होता है वह भी फूहड़पन से भरा हुआ अधूरा और अनुपयुक्त । ऐसे कामों को समय और श्रम की बर्बादी ही कहा जा सकता है । लोग समझते हैं कि हम दिन भर काम करते हैं और फुरसत नहीं पाते । आलस्य और ढीलेपन की प्रवृत्ति बहुत ही बुरी है । ईश्वर ने समय रूपी सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में देकर ही मनुष्य को उसके मूल्य पर चाहे जो विभूति उपलब्ध कर सकने की सुविधा दी है पर जो लोग समय का मूल्य ही नहीं समझते और जिन्दगी के दिन ज्यों-त्यों काटते रहते हैं उन्हें निम्न कोटि का असफल और अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए ही विवश होना पड़ता है ।

समय रूपी दैवी सम्पत्ति को आलस्य से बर्बाद करना ऐसा ही है जैसे परसी हुई थाली को लात मारकर छितरा देना । आलसी मनुष्य अपने आपका सबसे बड़ा शत्रु है । शरीर के भीतर प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अपनी नियत क्रियाशीलता में अहिर्निश कार्यरत रहता है फिर बाहर की देह को ही क्यों आलसी होना चाहिए ? क्यों काम से घृणा करनी चाहिए ? क्यों परिश्रम से जी चुराना चाहिए ? आलस्य और दरिद्रता एक ही वस्तु के दो पहलू हैं । लक्ष्मी सदा उत्साही, उद्योगी और पुरुषार्थी लोगों का आश्रय ढूँढ़ती है । आलसी तो अनायास प्राप्त हुई पैतृक सम्पत्ति तक को सुरक्षित नहीं रख सकते । अध्यात्म का अर्थ है प्रबल पुरुषार्थ ।

सबेरे जल्दी उठने की आदत

अखण्ड-ज्योति परिवार के सब सदस्यों को पूरी पंचकोशी साधना कर सकना कठिन प्रतीत हो तो उसके उपयोगी अंशों को तो अपना ही लेना चाहिए, यह भी साधना ही गिनी जायेगी । जप, तप न बन पड़े तो भी ब्रह्मचर्य का सीमाबन्ध और आलस्य के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करने के लिए हममें से प्रत्येक को खड़ा हो ही जाना चाहिए । सबेरे जल्दी उठने की आदत निरालस्यता का पहला चिह्न है । जिन्हें रात की कोई खास ड्यूटी करनी पड़ती है उनकी बात दूसरी है । इन अपवादों को छोड़कर हममें से प्रत्येक को सूर्योदय से कम से कम एक घण्टा पूर्व तो उठ ही बैठना चाहिए । नित्य-कर्म से निवृत्त होकर अपने उस कार्य में लग जाना चाहिए जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है । प्रातःकाल की परिस्थिति और मनःस्थिति ऐसी होती है कि उसमें जो भी काम किया जाये वह सफल होता चला जायेगा ।

नियमित दिनचर्या और क्रमबद्धता

जल्दी उठने के लिए जल्दी सोना आवश्यक है । अपना कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए कि सूर्यास्त होने से तीन-चार घण्टे के भीतर सोने की व्यवस्था बन जाय । यह कहावत ही नहीं तथ्य भी है कि—जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, बुद्धिमान और सम्पत्तिवान बनाता है । जिनका ब्रह्ममुहूर्त सोते रहने और सुस्ती में पड़े ऐंड़ते रहने में बीतता है, उन अभागों का आधा जीवन व्यर्थ ही बर्बाद हो जाता है । सबेरे के दो-तीन घण्टे इतने मूल्यवान होते हैं कि उनकी तुलना में पूरे दिनभर के सारे घण्टे मिलकर भी कम सिद्ध होते हैं । लेखकों, कवियों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों, साधकों और सत्पुरुषों को प्रातःकाल का समय प्राणप्रिय होता है । वे उसे किसी भी मूल्य पर खोने और गँवाने को तैयार नहीं होते । समय का ठीक तरह विभाजन करके सब कार्यक्रम पर चलते हुए मनुष्य आसानी से दूना काम कर सकता है । हममें से प्रत्येक को अपनी दिनचर्या बनाते रहना चाहिए और कठोरतापूर्वक उसे पालन करते हुए अपने जीवन को क्रमबद्ध बनाना चाहिए ।

अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा

प्राचीन काल के सभी ऋषि-महर्षि अपने समय का एक-एक क्षण क्रिया संलग्न रखते थे और अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिष्यों को, छात्रों को और जनसाधारण को ऐसी ही प्रेरणा देते थे कि वे समय रूपी ईश्वरीय अमूल्य उपहार का एक क्षण भी आलस्य और प्रमाद में नष्ट न करें । क्रमबद्ध, व्यवस्थित और प्रोग्राम बनाकर समय का विभाजन करते हुए नियत समय पर नियत कार्य पूरे मनोयोग और दिलचस्पी से करना ही श्रम और समय का सदुपयोग कहा जाता है । हममें से प्रत्येक को अपनी गति-विधियाँ इसी प्रकार नियमित करनी चाहिए । एक क्षण भी बिना आलस्य में बिताए, रोटी कमाना, शरीर व्यवस्था, मनोरंजन, परिवार निर्माण, लोकसेवा, ईश्वर उपासना आदि आवश्यक कार्यों में हमारा समय बँटा हुआ हो और जब भी जो भी काम करें पूरे उत्साह, पूरे मनोयोग, पूरे परिश्रम और पूरी दिलचस्पी के साथ एक खेल समझ कर पूरा करें । इस प्रक्रिया से कार्य की उत्कृष्टता बढ़ती है और थकान पास भी नहीं फटकने पाती ।

श्रम और समय को जो लोग प्यार करते हैं । वस्तुतः वे ही उसका लाभ उठा पाते हैं । आध्यात्म मार्ग के पथिकों को, गायत्री उपासना के अन्तर्गत अन्नमय-कोश की साधना करने वालों को असंयम से लड़ना चाहिए और आलस्य से भी । इस मोर्चे की फतह करके ही आगे की प्रगति के द्वार खुलते हैं ।

अस्वाद और ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध

ब्रह्मचर्य का पालन इसलिए कठिन मालूम पड़ता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, खास कर जीभ को । जो अपनी जिह्वा को वश में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है । प्राणि-शास्त्रियों का यह कहना सच है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दर्जे तक मनुष्य नहीं करता । इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—कोशिश करके ही नहीं बल्कि स्वभाव से ही । वे केवल घास पर ही अपना गुजारा करते हैं और सो भी सहज पेट भरने लायक ही खाते हैं । खाने के लिए नहीं जीते, पर हम तो बिल्कुल विपरीत ही करते हैं । माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वाद भोजन कराती है । वह मानती है कि बालक पर परम प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम तरीका है । लेकिन ऐसा करते हुए हम उन चीजों का जायका घटाते नहीं बल्कि बढ़ाते हैं । स्वाद तो भूख में रहता है । भूख के समय सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके लगते हैं और बेस्वाद मालूम पड़ते हैं । पर हम तो न जाने क्या-क्या खाकर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता ।

जिस घर में तरह-तरह की बातें करके हम बच्चे के मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं । उसकी शादी की बातें किया करते हैं और इसी किस्म की चीजें और दृश्य भी दिखाते हैं । मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जंगली ही क्यों नहीं हो गए । मर्यादा तोड़ने को अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है । ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह की है कि पतन के अनेक अवसर पाते हुए भी वह बच सकते हैं । यदि वह ब्रह्मचर्य के रास्ते से यह सब विघ्न दूर करदें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय ।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया से शारीरिक मुलाकात करना चाहते हैं, उसके दो रास्ते हैं—एक आसुरी और दूसरा दैवी । आसुरी मार्ग है शरीर बल प्राप्त करने के लिए हर तरह के उपायों से काम लेना और माँस इत्यादि हर तरह की चीजें खाना । मेरे लड़कपन में मेरा मित्र मुझसे कहा करता था कि माँसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो अंग्रेजों से हट्टे-कट्टे नहीं हो सकेंगे । जापान को भी जब दूसरे देशों से मुकाबला करने का मौका आया तब वहाँ गौ-माँस भक्षण करने का मौका मिला । सो यदि आसुरी मत से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजों का सेवन करना होगा, परन्तु यदि दैवी मत से शरीर को तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एकमात्र उपाय है । जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मैं अपने आप पर तरस खाता हूँ ।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझसे कहीं अधिक होना चाहिए । मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ । हाँ यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ । ब्रह्मचर्य का यह अर्थ नहीं है कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने पर भी मुझमें कोई किसी प्रकार का विकार पैदा न हो, जिस तरह एक कागज को छूने से नहीं होता । मेरी बहिन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण हिचकिचना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कोई काम का नहीं । जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं, उसी का अनुभव जब हम सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं । यदि आप चाहते हैं कि बालक जैसा ब्रह्मचर्य प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास क्रम आप नहीं बना सकते । मुझ जैसा अधूरा ही क्यों न हो, पर कोई ब्रह्मचारी ही बना सकता है ।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है । ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रम से भी बढ़कर है, पर उसे हमने गिरा दिया है, इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ गया है और संन्यास का तो नाम भी नहीं रहा है । ऐसी हमारी असह्य अवस्था हो गई है ।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुसरण करके तो आप पाँच सौ बरस बाद भी पठानों का मुकाबला न कर सकेंगे । हाँ दैवी मार्ग यदि आज अनुसरण हो जाय तो आज ही मुकाबला कर सकते हो । क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण में भी हो सकता है, जबकि शारीरिक साधन करते हुए युग बीत जाते हैं ।

आँख यदि दोष करती हों तो उन्हें बन्द कर लेना चाहिए, कान दोष करे तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए । आँखों को हमेशा नीची रखकर चलने की रीति हितकर है । जिससे उन्हें दूसरी चीज देखने की फुरसत नहीं मिले । जहाँ गन्दी बातें होती हों, अथवा गन्दे गीत गाये जा रहे हों वहाँ से उठकर चल देना चाहिए । स्वादेन्द्रिय पर खूब अधिकार होना चाहिए । मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद नहीं जीता वह विषय को नहीं जीत सकता । स्वाद को जीतना बहुत कठिन है, परन्तु इस विषय की प्राप्ति पर ही दूसरी विजय की सम्भावना है । स्वाद को जीतने के लिए एक नियम तो यह है कि मसालों को सर्वथा अथवा जितना हो सके त्याग देना चाहिए और दूसरा अधिक जोरदार उपाय यह है कि इस भावना की वृद्धि हमेशा की जाय कि हम स्वाद के लिए नहीं, केवल शरीर रक्षा के लिए ही भोजन करते हैं ।

हम स्वाद के लिए हवा नहीं लेते, बल्कि श्वास के लिए लेते हैं । पानी हम केवल प्यास बुझाने के लिए ही पीते हैं । इसलिए खाना भी सहज भूख बुझाने के लिए ही खाना चाहिए । हमारे माँ-बाप हमें बचपन से ही उल्टी आदत डालते हैं । हमारे पोषण के लिए ही नहीं बल्कि अपना दुलार दिखाने के लिए तरह-तरह का स्वाद चखाकर हमें बिगाड़ देते हैं । हमें ऐसे वायुमण्डल का विरोध करना होगा तभी ब्रह्मचर्य रखा जा सकता जा सकता है ।

मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्

इस सदी की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक द्वितीय विश्वयुद्ध भी है, जिसमें देखते-देखते विश्व की जानी-मानी महाशक्तियों ने नवोदित शक्ति जर्मन-सत्ता के समक्ष घुटने टेक दिए । विश्वयुद्ध पोलैण्ड में भेजे गए जर्मन सैनिकों द्वारा छल से आरम्भ किए गए एक छोटे से छापामार हमले से शुरू हुआ । लेकिन सारे विश्व ने कुछ ही दिनों में सुना कि 'ग्रेट ब्रिटेन' के बाद विश्व की सबसे बड़ी शक्ति माने जाना वाला राष्ट्र फ्रांस बिना किसी प्रतिरोध के आत्मसमर्पण कर रहा है । यूनाइटेड किंगडम के बाद फ्रांस ही था जिसके उपनिवेश सुदूर पूर्व में दक्षिण एशिया से उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तक फैले हुए थे । नेपोलियन जिस राष्ट्र में पैदा हुआ—जहाँ की राज्य क्रांति ने विश्व की राजनीति को एक नया मोड़ दे दिया, उसका ऐसा पराभव देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था ।

मनीषियों को यह निष्कर्ष निकालने में अधिक समय नहीं लगा कि इसका कारण क्या है ? उन्होंने पाया कि असंयम ने तो जनशक्ति को खोखला बनाया । भोग प्रधान उच्छृंखल जीवनक्रम ने उस राष्ट्र को छूँछ बनाकर रख दिया था । गर्भ धारण के भय से मुक्त विलासी फ्रांसीसियों को परिवार नियोजन के साधन मानो वरदान रूप में मिले थे । शराब की कोई कमी नहीं थी । जो राष्ट्र सारे विश्व की तीन चौथाई महँगी शराब की पूर्ति करता हो, वह स्वयं कैसे उससे अछूता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता । नैतिक मर्यादाएँ भंग हो जाने से जर्मनी को फ्रांस को पराजित करने में कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा । वस्तुतः भोग-विलास की ज्वाला में जल रहे फ्रांस का पतन नहीं किया गया—उसने स्वयं अपने को निर्बल बनाकर आक्रान्ताओं को निमन्त्रण दे दिया था ।

भारतीय अध्यात्म का युगों-युगों से यह शिक्षण रहा है कि मनुष्य यदि अदूरदर्शी क्षरण को रोक सके तो उस बचत से इतना बड़ा भण्डार जमा हो सकता है जिसके बलबूते पर विपुल विभूतियों का अधिपति बन सके । संयम ही यह है । तपाये जाने पर लोहा, सोना आदि धातुएँ परिशोधित होतीं और बहुमूल्य बनती हैं । असंयम की परिणति वही होती है जैसी दुधारू गाय को पालने व टूटे बर्तन में उसका दूध दुहने पर होती है । इससे मनुष्य अपने पूर्व संचित तथा अब की उपार्जित क्षमताओं को भी गँवा नहीं बैठता, वरन् इस दुरुपयोग का दुष्परिणाम भी भोगता है । रीतिकाल के रूप में हमारे देश ने भी मध्यकाल का वह विकृतियों भरा अन्धकार युग देखा व गुलामी भरा जीवन जिया है जैसाकि फ्रांस के विषय में ऊपर वर्णित किया गया है । हर राष्ट्र की समर्थता, नागरिकों की प्रखरता इस व्यावहारिक अध्यात्म सिद्धान्त पर निर्भर है जिसे तप संयम, चरित्र निष्ठा, काम का सृजनात्मक स्वरूप जैसे पर्याय दिए गए हैं ।

मेघनाद स्वयं ब्रह्मचारी था । उसे मारने में मात्र वही समर्थ था जो स्वयं चौदह वर्ष ब्रह्मचारी रहा हो । लक्ष्मण जी ने उसी प्रधान अस्त्र को उपलब्ध किया और लम्बी अवधि तक ब्रह्मचर्य निभाया । दशरथ जी का पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराने में उन दिनों के परम संयमी शृंगी ऋषि ही समर्थ हुए जबकि असंयमी अन्य ऋषि उस स्तर का मन्त्रोच्चारण करने में सफल नहीं हो सके । अर्जुन को गाण्डीव पुरस्कार उर्वशी प्रकरण में परीक्षा द्वारा ही मिला था । भवानी ने शिवाजी को कभी न चूकने वाली तलवार प्रदान की थी, पर इससे पूर्व उसकी पात्रता एक सुन्दरी को सम्मुख करके जानी गई थी । खरा सिद्ध न होने पर तो ऐसे वरदानों से सदा वंचित रहना पड़ता है । सत्पात्र की परख करने में देवताओं की प्रधान कसौटी संयमशीलता ही रहती है ।

दो साँड़ों के टकराव को रोकने के लिए ब्रह्मचारी दयानन्द ने उन दोनों के सींग एक हाथ से पकड़ कर मरोड़ और धकेल कर दूर पटक दिए थे । अपनी संयम शक्ति के बल पर ही उन्होंने एक राजा की बग्घी रोककर दिखाई थी । प्रसिद्ध पर्वतारोही ने जब गंगा में उसकी दिशा के विपरीत नाव द्वारा गंगा सागर से देव प्रयाग तक यात्रा का दुस्साहस किया तो एक भारतीय योगी ने वाराणसी के समीप उनकी डेढ़ सौ हार्स पॉवर की नौका को एक पतली रस्सी से बाँधकर रोक दिखाया था । सारा जोर लगाया गया लेकिन नाव अपनी ही जगह धड़धड़ाती रही, आगे नहीं बढ़ सकी । आँखों से पट्टी बाँधकर कुदृष्टि का प्रतिरोध करने वाली गान्धारी ने जब आँख खोलकर अपने पुत्र को देखा तो उसका शरीर लौह-बल से युक्त हो गया । यह संयम की ही शक्ति थी कि इन्हीं आँखों से बरसती आक्रोश भरी चिंगारियों ने भगवान कृष्ण के पैरों पर प्रभाव डाला था । भीष्म, हनुमान, शंकराचार्य आदि की विशिष्ट प्रतिभाओं के पीछे उन लोगों का ब्रह्मचर्य संयम ही प्रधान कारण रहा है । ये सारे दृष्टान्त इसी एक तथ्य का प्रतिपादन करते हैं कि अधोगामी प्रवृत्तियों को रोककर शक्ति संचय किया जाय तभी ऊर्ध्वगमन प्रगति पथ पर चल सकना सम्भव है ।

इस मार्ग से पथ भ्रष्ट होने पर समर्थों को भी नीचा देखना पड़ा है । अभिमन्यु-उत्तरा संवाद पढ़ने से प्रतीत होता है कि चक्रव्यूह भेदन से एक दिन पूर्व अभिमन्यु अपना ब्रह्मचर्य गँवा बैठा और सन्तानोत्पादन को महत्त्व दे बैठा । परिणाम स्पष्ट है कि चक्रव्यूह तोड़ने में वह समर्थ न हो सका । यदि वैसा न हुआ होता तो जैसा उसका अनुमान था, वह विजयी होकर ही लौटता । नहुष की तप साधना ने उसे स्वर्गलोक तो दिया, पर अप्सराओं के प्रलोभन को देख उस सम्पदा को देखते-देखते गँवा बैठा और सर्प बनकर दुर्गतिग्रस्त हुआ । ययाति जैसे पुण्यात्मा इसी प्रसंग में अपयश और भर्त्सना के भागी बने । पाण्डु की रुग्णता को देखते हुए चिकित्सकों ने उन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने को कहा था । वह मर्यादा उन्होंने पाली नहीं । फलतः अकाल ही काल के ग्रास बने ।

कालजयी महाप्रतापी रावण की दुर्गति का कारण उसका असंयम ही था । अन्यान्य महाबली असुरों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्गति भी इसी आधार पर हुई । भस्मासुर का पार्वती पर आसक्त हो जाना ही उसके भस्म होने का कारण बना । सुन्द-उपसुन्द एक ही सुन्दरी पर आसक्त होने के कारण लड़ मरे । मनोनिग्रह, लोभनिग्रह, ब्रह्मचर्य का निर्वाह न कर पाना ही असुरों की कठोर तपश्चर्या को दुर्गतिग्रस्त बनाता रहा है । वे लोग यदि संयमी रहे होते, सदाशयता के मार्ग पर चलते तो साहस और कष्ट सहन की दृष्टि से भारी पड़ने के कारण देवताओं से भी वरिष्ठ रहे होते । मर्यादाओं का व्यतिरेक और उपयोग का असंयम ही समर्थों की समर्थता को दुर्गतिग्रस्त बना देता है ।

ये सारे उदाहरण आज की परिस्थितियों में पूरी तरह लागू होते हैं । शक्ति ह्रास से सामर्थ्य-बौद्धिक प्रखरता में कमी को भौतिकता की अन्धी दौड़ में द्रुतगति से भाग रहे जापान, जर्मनी, स्वीडन, डेनमार्क जैसे राष्ट्रों ने अब समझा है और धीरे-धीरे पूरे समाज परिकर का वातावरण बदलने का प्रयास किया है । इन्हीं राष्ट्रों में १-२ वर्ष पूर्व तक यौन-स्वेच्छाचार, कामवाद पूरी तरह संव्याप्त था । सिगमड फ्रायड के सिद्धान्तों ने तो मात्र नींव ही डाली थी पर नियो-फ्रायडिज्म के सिद्धान्तवादियों ने असंयम का उद्घोष करने—उसी को जीवन-मूल्यों का मूलभूत आधार बनाने का कार्य जोर-शोर से चालू किया । परिणति आज सबके समक्ष है । कामुकता का रुझान जो कभी फ्रांस को अपने ग्रास में लिए था—सारे विश्व में फैला हुआ है । न्यूड कॉलोनी बसाई जा रही है, नैतिक मूल्यों को एक ताक पर रखकर उपभोग को ही सब कुछ बताया जा रहा है । यह किसी भी–समाज को जर्जर कर देने भर के लिए पर्याप्त है ।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि संयम का गुणगान करने वाले—तप साधना के दर्शन को जन्म देने वाले भारत में भी यही प्रचलन आधुनिकता के नाम पर शनैः-शनैः फैल रहा है ।

अमेरिका में पिछले दिनों एक पुस्तक की काफी चर्चा हुई । "द न्यू सेलीवेसी" अर्थात् नया ब्रह्मचर्य । वहाँ इस किताब का काफी हंगामा है । इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों की आवश्यकता और उन्हें जीवन में उतारने पर तनाव, रोगों से मुक्ति तथा प्रसन्नता की प्राप्ति जैसे प्रकरणों पर चर्चा की गई है । पश्चिम के एक ऐसे राष्ट्र में जहाँ पिछले दो दशकों में सैक्स के 'सुखों' का वर्णन करने वाली पुस्तकों का ही प्रचलन रहा हो, इस पुस्तक की बढ़ती लोकप्रियता ने मनोवैज्ञानिकों को यह सोचने पर विवश किया है कि मनुष्य स्वभाव की दृष्टि से पाशविक वृत्ति प्रधान नहीं, अपितु देवत्व प्रधान है । यदि उसे वातावरण से ऊपर उठने का अवसर मिले या वह स्वयं प्रयास करे तो बहुमुखी प्रतिभा का धनी हो सकता है ।

शारीरिक बलिष्ठता, मानिसक दक्षता, प्रतिमा, प्रखरता के मूल में कामशक्ति ही परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप में कार्यरत रही है । ऋषि-मनीषी, योगी एवं तपस्वी इसी संयम साधना का आश्रय लेते और ऊर्ध्वरिता बनते थे । अथर्ववेद के ११ में काण्ड का पाँचवाँ सूक्त 'ब्रह्मचर्य सूक्त' है । २६ मन्त्रों के इस सूक्त में ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन तपश्चर्या के रूप में किया गया है और कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु पर भी विजय पाली । इस संयम में स्थिर रहने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल उपलब्ध करता है, ओजस्वी, तेजस्वी और मनस्वी बनता है । प्राचीन ऋषि-मनीषियों से लेकर गाँधी विनोबा तक इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

वीर्य-रक्षा जीवन के लिए कितनी अधिक महत्त्वपूर्ण है, इस सन्दर्भ में भी शरीर शास्त्रियों ने गहन अनुसन्धान किए हैं और पाया है कि जीवन तत्व का दुरुपयोग ही रोग-शोकों एवं मृत्यु के रूप में सामने आता है । डॉ. स्टाल ने जीवधारियों पर किए गए अनुसन्धानों को अपनी पुस्तक "बट ए यंग हसबैण्ड ऑट टु नो" में उद्धृत करते हुए बताया है कि जब कीटों में उनके वीर्य नष्ट होने की सम्भावना को रोक दिया गया, तो उनकी जीवन अवधि अपनी जाति के अन्य साथियों से बहुत अधिक बढ़ गई । इसी तरह तितलियों पर किए गए परीक्षणों में पाया गया है कि जहाँ जनन शक्ति का दुरुपयोग करने वाली तितलियाँ कुछ ही दिनों में दम तोड़ देती हैं, वहीं वह तितली, जिसने इस शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया, दो वर्षों से भी अधिक दिनों तक स्वस्थतापूर्वक जीवित रही । पशुओं पर भी इसी तरह के सफल प्रयोग हुए हैं ।

मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही तथ्य लागू होता है । प्रकृति ने मानवी काया के सारतम् तत्व ओज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में न केवल जीवनदात्री शक्ति भर दी है, वरन् उसमें वैयक्तिक जीवन को समृद्ध करने, भौतिक एवं आत्मिक सफलताएँ अर्जित करने का अद्‌भुत जादू भी भर दिया है । डॉ. गार्डनर के अनुसार इस शक्ति को शरीर में खपा लेने और मानसिक प्रखरता में लगा देने से सम्पूर्ण काया में संजीवनी शक्ति का संचार तो होता ही है, प्रतिभा के उच्चस्तरीय आयाम भी मनुष्य के सामने अपने रहस्य प्रकट कर देते हैं । चिकित्सा विज्ञानी मैकफैडन के अनुसार अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के सार रूप रेतस्-वीर्य को यदि उत्पन्न होते ही शरीर में अवशोषित, अवधारित कर लिया जाय, तो उसका परिणाम अनवरत उत्साह, उमंग एवं सुन्दर स्वास्थ्य के रूप में तो मिलेगा ही, मानसिक दक्षता बढ़ी-चढ़ी होगी । बचपन के लेकर किशोरावस्था तक बच्चों में जो सुकोमलता, लावण्य और आकर्षण रहता है, बिन्दु को स्थिर कर लेनें पर वह जीवन-पर्यन्त बना रह सकता है ।

पाश्चात्य मनीषी द्वय जेड्डीस एवं थाम्पसन ने अपनी कृति—"द एवोल्यूशन ऑफ सैक्स" में आयुर्वेद की उक्त मान्यता की पुष्टि करते हुए कहा है कि मृत्यु तथा उत्पत्ति का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट होते हुए भी हम इस सम्बन्ध में कम जानते हैं और जीवनी-शक्ति का क्षरण वासनापूर्ति में करते रहते हैं प्रायः यही माना जाता है कि जब सब प्राणियों को मरना ही है तो सन्तानोत्पत्ति भी अवश्य करनी चाहिए । ऐसा न करने से प्राणि-समुदाय का सर्वथा लोप हो जायेगा परन्तु यह एक नितान्त भ्रम है । ऐसा सोचने वाले बिरले ही होते हैं, जो विशुद्ध रूप से सन्तति को किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पैदा करते हैं । प्रायः लोग सन्तानोत्पत्ति इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्हें मरना है । इसी सत्य का उद्‌घाटन करते हुए प्रख्यात दार्शनिक गेटे कहते हैं—'मृत्यु के बचने के लिए हम सन्तानोत्पति नहीं करते, परन्तु चूँकि हम प्रजोत्पत्ति करते हैं, इसलिए उसके अवश्यम्भावी परिणाम—मृत्यु से नहीं बच पाते ।' उनका यह कथन शास्त्रों के इस कथन की पुष्टि करता है, जिसमें कहा गया है कि—बिन्दुपात में जीवन का नाश तथा बिन्दु रक्षण में जीवन की रक्षा है ।

ब्रह्मचर्य की संयम साधना वस्तुतः दमन का नहीं, काम शक्ति के परिष्कार के एवं ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया है, जिसका आरम्भ मन, वचन और कर्म से इन्द्रिय निग्रह के रूप में होता है समापन आत्मोत्कर्ष के रूप में । भौतिक और आत्मिक सफलताओं का मूल संयम शक्ति में ही सन्निहित है । प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के महापुरुषों की जीवन गाथाएँ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । महर्षि अरविन्द के शब्दों में—"ब्रह्मचर्य से हम जितना अधिक तप, तेज, प्राणविद्युत और ओजस्-तेजस् का भण्डार बढ़ा लेंगे, उतना ही हस स्वयं को शरीर, मन, हृदय और आत्मा के कार्यों के लिए चरम शक्ति से भर लेंगे ।"

संयम : हमारी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता

राम-रावण युद्ध का प्रथम दौर प्रारम्भ हुआ । रावण ने अपने सर्वोच्च सेनापति मेघनाद को ही सबसे पहले लड़ने भेजा । वह मेघनाद जिस पर रावण के युद्ध का, उसकी विजय का पूरा-पूरा दारोमदार था । मेघनाद को आता देख राम पीछे हट गए और बोले—"लक्ष्मण तुम्हें ही मेघनाद से युद्ध करना है ।"

कैसी विचित्र बात थी । अपार शक्तिशाली राम को पीछे क्यों हटना पड़ा मेघानाद से और अकेले लक्ष्मण को ही क्यों उसका सामना करने भेजा ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए राम ने ही कहा है, "लक्ष्मण, मेघनाद बारह वर्षों से तप कर रहा है, ब्रह्मचारी है और तुमने चौदह वर्ष से स्त्री का मुँह तक नहीं देखा । मेरे साथ रहकर तपस्वी, संयमी जीवन बिताया । इसलिए तुम ही मेघनाद को हरा सकते हो । मैं तो गृहस्थ हूँ ।" और सचमुच लक्ष्मण ही उसे हरा सके । मेघनाद को इन्द्रजीत कहा जाता है । इसका तात्पर्य वस्तुतः अपनी इन्द्रिओं पर विजय प्राप्त कर लेने से है ।

पितामह भीष्म के बारे में कौन हिन्दू जानता न होगा । महाभारत का वह घनघोर युद्ध जिसमें श्रीकृष्ण को भी उनके समक्ष अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी । हनुमान से लेकर महर्षि दयानन्द, विवेकानन्द तथा बहुत से महापुरुष संसार में जो कुछ कार्य कर सके उसका मूलाधार उनका संयमी ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन ही था । स्वयं महात्मा गाँधी का जीवन उस समय से प्रकाश में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आया । जब से उन्होंने अखण्ड संयम, ब्रह्मचर्य की धारणा की ।

मनुष्य का शरीर एक शक्ति उत्पादक डायनेमो की तरह है । इससे नित्य निरन्तर महत्त्वपूर्ण शक्तियों का उत्पादन होता रहता है । जब इन्हें रोककर संग्रहीत कर लिया जाता है और उचित दिशा में लगा दिया जाता है तो महान कार्य सम्पन्न होते हैं और जब इसे विषय भोगों के छिद्रों में नष्ट कर दिया जाता है तो मनुष्य दीनहीन, असहाय, परतन्त्र-परावलम्बी बन जाता है । अपने शक्ति धन को लुटा देने के बाद मनुष्य थोथा हो जाता है और रोता है । अपनी शक्ति को संचित रखकर उसका सदुपयोग करने से ही मनुष्य का जीवन प्रभावशाली, महत्त्वपूर्ण बनता है ।

इसीलिए हमारे मनीषियों ने संयम-ब्रह्मचर्य को जीवन का आवश्यक अंग बताया । उसे आवश्यक धर्म कर्तव्य कहा है । धर्म का एक अंग बना दिया । वस्तुतः ब्रह्मचर्य ही जीवन है, तेज है, शक्ति है, सामर्थ्य है । ब्रह्मचर्य के अभाव में उत्कृष्ट-जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती । मनुष्य जितना संयमी होगा, उसका व्यक्तित्व उतना ही प्रखर, तेजस्वी, सामर्थ्यवान बनेगा । दूसरे को प्रभावित कर सकेगा ।

यह ध्रुव सत्य है और हमारे प्राचीन मनीषियों से लेकर आधुनिक महापुरुषों का अनुभव सिद्ध तथ्य है कि भोगों में मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता है । गीताकार ने कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनया एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

"जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और अनित्य हैं । हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुषों को उसमें रमण नहीं करना चाहिए ।

मनुष्य जब सुख की खोज में इन्द्रिय और विषयों को साधन बनाकर प्रयत्न प्रारम्भ करता है । मन, बुद्धि को भी इसी ओर लगाता है तो इसी प्रयत्न में अनेकों दुःखों का उसके लिए सूत्रपात हो जाता है । मनुष्य जब शरीर की आवश्यकता के लिए नहीं वरन् रसना के माध्यम से अनेक स्वाद के आनन्द के लिए भोजन करता है तो भोजन की मात्रा और उसके स्वरूप का निर्णय पेट न करके जिह्वा करने लगती है । जीभ की तृप्ति के लिए मनुष्य तरह-तरह से सुस्वादु भोजन करता है और परिणाम रोग, शारीरिक कष्टों के रूप में ही प्राप्त होता है । यही बात जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में है । उसका उपयोग सन्तानोत्पादन के लिए होता है । उसके साथ जुड़ा हुआ सुख तो प्रकृति का एक पारितोषिक और वरदान है । लेकिन जब मनुष्य सन्तानोत्पादन के लिए नहीं वरन् उस सुख को प्रधान मानकर विषयों में प्रवृत्त होता है और प्रकृति की मर्यादा का उल्लंघन करता है तो परिणाम में अपनी शक्तियों का ह्रास करता है और दुःखों को निमन्त्रण देता है, अपनी जीवनी-शक्ति का नाश करके मृत्यु की ओर अग्रसर होता है ।

विषय-भोगों में, इन्द्रिय, मन, बुद्धि में, संसार और इसके पदार्थों में मनुष्य को सुख मिल ही नहीं सकता । जिसे हम सुख समझते हैं उसके बदले में वस्तुतः बड़े दुःख के रूप में मूल्य चुकाना पड़ता है । जब तक वह सुख नहीं मिलता तो उसे प्राप्त करने की बैचेनी, फिर भोगते ही वह समाप्त हो जाता है फिर नये सिरे से उसकी प्राप्ति के लिए मन, बुद्धि, इन्द्रियों को संचालित करना पड़ता है और कोल्हू के बैल की तरह एक अन्धी दौड़ में मनुष्य को इनके पीछे दौड़ते रहना पड़ता है । दुःख, पश्चाताप, क्लेश, आत्मग्लानि, आसक्ति, न जाने कितनी ही हानियाँ उठानी पड़ती हैं, इनके लिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि विषय-भोगों में हम जितने लिप्त रहते हैं, उतने ही मृत्यु और विनाश की ओर ही अग्रसर होते जाते हैं ।

क्या आपको उस व्यक्ति की घटना याद है जिसने एक सुन्दर फूल देखा, देख कर उसका मन ललचाया । उसने उसे तोड़ कर नाक से सूँघा ही था कि वह दर्द के मारे चिल्ला उठा । क्यों ? उस फूल के अन्दर एक मधुमखी बैठी थी । सूँगते समय उसी ने उसे डंक मार दिया और वह दुःख से तिलमिला उठा । विषय-भोगों का सुख भी इसी तरह है । वह हमें लुभावना लगता है । हम उसमें लीन होते हैं लेकिन परिणाम के दुःख के जहरीले डंक से भी हमें घायल होना पड़ता है ।

हमारे शरीर में निहित जीवनी शक्ति ही सर्वत्र अपना काम करती है । सुनने में, खाने में, पीने में, काम करने में, यही अपना काम करती है । अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षेत्रों में शक्ति का इतना क्षय नहीं होता जितना सम्भोग में होता हैं । एक सीमा तक जबकि भोग मर्यादित होते हैं तब शक्ति अनावश्यक रूप से खर्च नहीं होती लेकिन अमर्यादित वासना-तृप्ति में अन्य विषयों से अधिक शक्ति का क्षय होता है । इसलिए यह अधिक हानिकारक सिद्ध होता है । संयम में ब्रह्मचर्य इन्द्रिय निग्रह को ही अधिक महत्त्व दिया गया है । यद्यपि अन्य भोगों का संयम भी आवश्यक होता है लेकिन मुख्य रूप से काम-वासना तथा रसना का संयम ब्रह्मचर्य का मूलाधार है, अन्य सब इसके पूरक हैं ।

अनियन्त्रित, अमर्यादित, वासनापूर्ति का हमारे शरीर, मन, ज्ञानतन्तुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । उससे केवल कुछ शारीरिक सत्त्व जो कि महत्त्वपूर्ण होते हैं उनका क्षरण ही नहीं होता अपितु, सूक्ष्म प्राणशक्ति, जीवन शक्ति का भी बहुत बड़ा अंश व्यय होता है । इस अपव्यय से हम खोखले, रिक्त, जर्जरित बनते जाते हैं, चाहे हमारा बाहरी कलेवर कितना ही मोटा-ताजा क्यों न दीखता हो । बीमारियाँ, रोग कीटाणु जिसे धर दबाते हैं उसे मृत्यु समय से पूर्व ही उठा ले जाती है । यह सब उस जीवनी-शक्ति के अपव्यय के कारण ही होता है ।

वासना में लिप्त रहने से वह जीवन-रस जो शरीर को तेजवान, रसवान बनाता है, काफी मात्रा में नष्ट होता है और यही कारण है कि भोगी मनुष्य निस्तेज रसहीन, सूखा-सा दिखाई देता है । उसके जीवन में सरसता, चेतना एवं स्फूर्ति जैसी चीज नाममात्र को शेष रहती है । उत्साह और साहस की मात्रा ऐसे लोगों में बहुत ही कम दृष्टिगोचर होती है ।

इस तरह से होने वाले अपार क्षय को रोकने के लिए शक्तियों को संग्रहीत संचित करने के लिए, परिणाम में प्राप्त होने वाले दुःखों से बचने के लिए, हमारे पूर्वजों ने संयम, तप, ब्रह्मचर्य-जीवन के लिए आवश्यक बताया है । यह कोरी कल्पना नहीं है व्यवहार सिद्ध है । विषय में नष्ट होने वाली शक्ति को आप बचालें, उसे उपयोगी कामों में लगावें तो यह शक्ति अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों में परिवर्तित होती हुई महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर देगी । ऊर्ध्वरितम् का यही अर्थ है कि मनुष्य अपनी जीवनी-शक्ति गन्दे मार्ग में नष्ट न कर उसे संचित कर उत्कृष्ट कार्यों की साधना में लगाता है, इसे कई सूक्ष्म शक्तियों में परिवर्तित कर कला, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान आदि का सृजन करने लगता है ।

काम-शक्ति एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है जिसको निम्नगामी बनाकर उसे नष्ट करके अपने दुःखों का आधार बनाया जा सकता है, समाज में अपराधों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है या इसके विपरीत इसे संयमित कर उपयोगी महान कार्यों में व्यक्त किया जा सकता है और इसीलिए संयम की आवश्यकता को महत्त्व दिया गया है । कोई व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमताओं को बढ़ाना चाहे, महत्त्वपूर्ण सृजन अनुसन्धान का काम करना चाहे तो उसे संयम का पथ ही अपनाना पड़ेगा ।

क्या आप शक्ति-सम्पन्न, विजयी, सफल, महान जीवन बिताना चाहते हैं ? क्या आप अपना व्यक्तित्व उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं ? तो आपके लिए एक ही मार्ग है, वह है संयम का मार्ग, ब्रह्मचर्य की साधना । भोगों के पथ पर चल कर शक्ति का, महानता का, विश्वास का पथ सन्धान नहीं किया जा सकता । यह उतना ही सत्य है जितना छिद्रयुक्त घड़े में पानी का संचय नहीं किया जा सकता । संयम को छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं है अपने उत्कर्ष का, जीवन का, महानता का, सुख का, शान्ति का ।

इन्द्रिय संयम की आवश्यकता

मनुष्य के शरीर में परमात्मा ने दस इन्द्रियाँ दी हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ । १—आँख, २—कान, ३—नाक, ४—जिह्वा, ५—त्वचा । ये पाँच इन्द्रियाँ विषयों का ज्ञान प्राप्त कराती हैं । आँख से भला-बुरा देखना, कान से कोमल-कठोर शब्द सुनना, नाक से सुगन्ध-दुर्गन्ध सूँघना, जिह्वा से खाद्य-अखाद्य का स्वाद जानना, त्वचा से कोमलता-कठोरता का अनुभव करना । प्रत्येक इन्द्रिय का एक देवता होता है उसी से विषयों की उपत्ति होती है । आँख का विषय रूप है और सूर्य देवता । सूर्य या अग्नि न हो तो आँखें बेकार हैं । कान का विषय शब्द, गुण आकाश है । नाक का विषय गन्ध और गुण पृथ्वी है । जीभ का विषय रस और गुण जल है । त्वचा का विषय स्पर्श और गुण वायु है । इन गुणों और शक्तियों के कारण इन्द्रियों का उपयोग बहुत अधिक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँच कर्मेन्द्रियों में १—वाणी, २—हाथ, ३—पैर, ४—जननेन्द्रिय और ५—गुदा है । वाणी या मुख से बोलते हैं, स्वाद चखते हैं । हाथ से कार्य करते हैं, पैर से चलते हैं, जननेन्द्रिय से मूत्र त्याग और गुदा से मल निकालते हैं ।

यह इन्द्रियाँ आत्मा की सुविधाजनक विकास यात्रा के सहायक उपकरण हैं । यह आत्मा के औजार हैं, सेवक हैं, परमात्मा ने इन्हें इसलिए प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे और सुख प्राप्त करे । यह सभी इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं । सभी का कार्य जीव को उत्कर्ष और आनन्द प्राप्त कराना है । यदि उनका सदुपयोग किया जाय तो मनुष्य निरन्तर जीवन का मधुर रस चखता हुआ जन्म को सफल बना सकता है ।

ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने शरीर में ऊपर की ओर बनाई हैं और कर्मेन्द्रियाँ नीचे की ओर । इससे परमात्मा ने ज्ञान को प्रधानता दी है और यह संकेत दिया है कि ज्ञान के अनुसार, विवेक के अनुसार ही कर्म करो । इनसे तुम्हें सुख मिलेगा और अधोगामी विषयों में भटके तो यही इन्द्रियाँ तुम्हारे लिए काल रूप और विनाश का कारण बन जायेंगी ।

उपनिषदकार ने बताया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

अर्थात्—यह शरीर एक रथ है, इस पर आरूढ़ होने वाला स्वामी जीवात्मा है । जीवात्मा को यह वाहन मोक्ष प्राप्त करने के लिए मिला है । दसों इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं । मन इन घोड़ों को नियन्त्रण में रखने वाली बागडोर है । इन्द्रियों के घोड़े विषयों की सड़क पर चलते हुए मुक्ति यात्रा की ओर बढ़ते हैं । इस वाहन पर सारथी है मनुष्य की बुद्धि और उसका विवेक । यदि वह सजग है तो इन्द्रियाँ विषयों में न भटक कर कुशलतापूर्वक अपने स्वामी को परमात्मा की समीपता में पहुँचा देती हैं ।"

इन्द्रिय-संयम का सिर्फ इतना ही मतलब है कि इन्द्रियाँ जब भी विषयों की ओर दौड़ें तब उन्हें सावधानी से सम्हाला जाय और उस शक्ति को बरबाद न किया जाय जिससे आत्मा की विकास यात्रा पूरी होती है ।

इन्द्रियों का उपयोग पाप नहीं है । विषय भी आवश्यक हैं । सच तो यह है कि अन्तःकरण की विविध क्षुधाओं, तृष्णाओं को तृप्त करने का इन्द्रियाँ एकं उत्तम माध्यम हैं । शरीर की इन आवश्यकताओं को समय पर पूरा न किया जाता रहे तो जीवन का सन्तुलन उसी तरह बिगड़ सकता है जिस तरह पेट को आहार न मिलने से स्वास्थ्य-सन्तुलन बिगड़ सकता है ।

इन्द्रिय-नियन्त्रण का मूल मन्त्र है, आत्म-संयम । शरीर की शक्तियाँ जीव की विकास यात्रा के लिए उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हैं । शरीर में बल और वीर्य की प्रचुर मात्रा न रहे तो वह आत्मिक आदेशों का पालन भली प्रकार नहीं कर सकेगा । इसलिए वीर्यरक्षा आवश्यक है और सम्भोग-क्रिया को नियन्त्रित कर दिया जाता है । यह सतानोत्पत्ति का साधन है ताकि भावी पीढ़ियाँ चलती रहें, पर बेकाम वीर्य-पात का कोई उपयोग नहीं, उल्टे उसमें शारीरिक शक्ति का पतन होता है और मनुष्य की बुद्धि विभ्रमित होकर आत्म-कल्याण का मार्ग छोड़ देती है ।

आहार शरीर की बहुत बड़ी आवश्यकता है, इसे सभी जानते हैं । आहार न मिले तो जीवित रहना मुश्किल हो जाय । यह शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक धर्म है, किन्तु शरीर-रक्षा के लिए स्वाद की उपयोगिता समझ में नहीं आती । केवल स्वाद-स्वाद की लालसा में पेट खराब हो जाता है, स्वास्थ्य गिर जाता है । इस तरह आहार जो शरीर की आवश्यकता थी, वही विधर्मी बन कर हमारी शक्तियों के पतन का कारण बन जाता है । कोई भी इन्द्रिय हो उसके उपभोग की एक सीमा निर्धारित है । उस सीमा के बने रहने से ही उसका सच्चा उपयोग किया जा सकता है, पर यदि उसका अतिक्रमण किया गया तो रोग और शोक घेर लेंगे । उपकारी इन्द्रियाँ ही तब बन्धन का कारण बन जायेंगी । इसलिए इन्द्रिय-निग्रह के लिए आत्म-संयम की बड़ी आवश्यकता है ।

इतना जानते, समझते हुए भी लोग विषयासक्त देखे जाते हैं । इसका कारण भाँति-भाँति के प्रलोभन होते हैं । लोगों को तरह-तरह के भोग भोगते देख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर, शृंगार, सजावट तथा बनावट करते देख कर अविवेकी जन खुद भी वैसा ही करने के लिए लालायित होते हैं । इन प्रलोभनों में प्रायः नैतिक दृष्टि से कमजोर और निर्बल चरित्र वाले व्यक्ति ही फँसते हैं । जिनकी आवश्यकताएँ विलासी इच्छाएँ, चटोरपन, अनुचित माँगें, नशे बढ़े हुए हैं वे ही प्रायः प्रलोभनों के सामने घुटने टेकते और उनके दुष्परिणाम भोगते हैं ।

इन प्रलोभनों से बचने के लिए प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर आत्मचिन्तन करना और आत्म-संकेतों द्वारा आत्मा तथा मन को बलवान बनाना आवश्यक है—"मेरा मन पर पूर्ण अधिकार है । मैं अपने मन का स्वामी हूँ । वह मेरी आज्ञा से कार्य करता है । प्रचण्ड अग्नि और भयंकर तूफान भी मुझे नष्ट नहीं कर सकते । मैं अमर हूँ, शाश्वत हूँ । शरीर का सम्राट मैं आत्मा असंख्यों सूर्यों की शक्ति रखता हूँ । मैं विश्व को प्रेममय देखता हूँ । मेरा मन से कोई विरोध नहीं । मैं जो कुछ करता हूँ वह सब आत्म-कल्याण की भावना से होता है ।" इस प्रकार का संकल्प प्रतिदिन शरीर के तमाम झंझटों से थोड़ा समय निकालकर दुहराते रहना चाहिए । ऐसा करने से विषयों के प्रलोभनों से सावधान बने रहेंगे ।

इन दिनों इस देश में दीर्घजीवी पुरुषों की कमी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वीर्य-रक्षा पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता ।

इन्द्रिय-संयम के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत की महिमा सर्वविदित है । इसकी शक्ति अमोघ मानी गई है और आज संसार में जितने व्यक्तियों ने महान और उपयोगी कार्य कर दिखाये हैं वे किसी न किसी रूप में ब्रह्मचर्य के अनुयायी थे । आजकल के लोग जब कभी सम्भोग नीति की स्वच्छन्दता का प्रचार करते हैं तब वे केवल भोग-प्रधान पार्थिव अंश को ही ध्यान में लेते हैं । जीवन की इतनी क्षुद्र कल्पना वे ले बैठे हैं कि थोड़े ही दिनों में उन्हें यह अनुभव हो जाता है कि ऐसी स्वतन्त्रता में किसी तरह की सिद्धि नहीं है और न सच्ची तृप्ति ही । उन्हें कभी सन्तोष नहीं मिलता ।

मनुष्य शरीर में जीवात्मा का अवतरण निःसन्देह उसका बहुत बड़ा सौभाग्य होता है । विचार, विवेक और जीवन-मुक्ति के अन्य साधन जितने मनुष्य-योनि में मिले होते हैं वे अन्यत्र उपलब्ध नहीं । मनुष्य चाहे तो अनन्त विभूतियों का स्वामी बन सकता है । मनुष्य देवता बन सकता है । मनुष्य भगवान बन सकता है । सारी सम्भावनाएँ इस शरीर में सन्निहित हैं किन्तु उनका उत्कर्ष और जागरण तभी सम्भव है जब शक्तियों का संयम किया जाय और उनके अनावश्यक अपव्यय को रोका जाय । इसके लिए इन्द्रिय-संयम की मनुष्य को प्रमुख आवश्यकता है । बिना इस कक्षा को उत्तीर्ण किए कोई आत्म-कल्याण की उच्च भूमिका प्राप्त नहीं कर सकता ।

संयमी ही आत्म-जयी होते हैं

परमाणु-शक्ति को धारण करने वाला बम, कहते हैं जो कि इतनी शक्तिशाली धातु का बना होता है कि उस पर बाहरी आघात का कोई प्रभाव नहीं होता । इतनी कड़ी और मजबूत धातु का आवरण उस पर न चढ़ाया जाय तो उस बम के किसी भी क्षण विस्फोट हो जाने का खतरा बना रहेगा । मानसिक शक्ति के संगठन से आत्मा की चैतन्य शक्ति भी बढ़ती है । इस शक्ति को धारण करने के लिए भी पुष्टिमान् शरीर की आवश्यकता होती है । अतः आत्म-विजय के साधक को शक्तियों पर नियन्त्रण करने की विद्या आनी चाहिए । एक ओर शक्ति को श्रम, साधना और एकाग्रता से संचय करें और उसे इन्द्रिय-छिद्रों से निर्बाध्य बह जाने दें तो शक्तिशाली बन सकने का अनुमान गलत ही सिद्ध होगा । प्रयत्न और परिश्रम का फल संयम से मिलता है । जो अपने आवेगों, भावों और इच्छाओं को वश में रखता है, आत्म-विजय की कीर्ति का वही सच्चा अधिकारी है ।

आवेगों को निरन्तर काबू में रखने की सहनशक्ति का ही पर्याय संयम है । आवेग और इच्छाएँ मन में पैदा होती हैं, फिर उनका प्रभाव और प्रतिक्रिया इन्द्रियों पर पड़ती है । इसलिए विपरीत परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष करने की मानसिक दक्षता होनी चाहिए । अवांछित बातों का प्रभाव मस्तिक को उत्तेजित न करे यही संयम की कसौटी है ।

यूनान के विख्यात दार्शनिक 'पैरीक्लीज' के पास एक दिन कोई क्रोधी व्यक्ति आया । वह पैरीक्लीज से किसी बात पर नाराज हो गया और वहीं खड़ा होकर गालियाँ बकने लगा, पर पैरीक्लीज ने उसका जरा भी प्रतिवाद न किया । क्रोधी व्यक्ति शाम तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गालियाँ देता रहा । अँधेरा हो गया तो घर की ओर चला पड़ा तो पैरीक्लीज ने अपने नौकर को लालटेन लेकर उसे घर तक पहुँचा आने के लिए भेज दिया । इस आन्तरिक सहानुभूति से उस व्यक्ति का क्रोध पानी-पानी हो गया ।

सामान्य श्रेणी का व्यक्ति होता तो वह भी लड़ बैठता और हिंसा भड़क उठती । दोनों पक्षों की हानि होती, शक्ति खर्च होती । आत्म-संयम मनुष्य को अनेक झगड़ों से बचा कर शक्ति का अपव्यय रोक देता है ।

मानसिक संयम, शारीरिक संयम की बुनियाद है । मन इच्छानुवर्ती हो जाता है और उसकी दिशा संयम की ओर मुड़ जाती है तो शारीरिक शक्तियों का असाधारण विकास होना सम्भव है । यौगिक साधनाओं के लिए तो संयम साक्षात् कामधेनु है । बड़े-बड़े चमत्कार दिखाने वाले पहलवान राममूर्ति संयम के बल से बड़ी-बड़ी गाड़ी, मोटरों को रोक लेते थे । हाथी को छाती पर चढ़ा लेना उनके लिए सहज कार्य था । संयम ही वस्तुतः साधना की पृष्ठभूमि है । इसके बिना कोई विशेष शक्ति पाना प्रायः असम्भव ही है ।

अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेना मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट साधना है । इन्द्रियों की लालसाएँ, क्रोध, मोह, पापकर्म आदि से जो लोग घिरे रहते हैं उनके शरीर और मन का पतन निश्चित है । इस कारण उन्हें व्याधियाँ सताती रहें तो यह कुछ अनहोनी बात नहीं कही जायेगी । हीनता, दुर्बलता और मानसिक दुर्दशा का कारण ये वासनाएँ ही हैं । उनसे मुक्त हुए बिना आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं होता है । मन में जब तक क्रोध है, तब तक विष की क्या आवश्यकता ? ईर्ष्या अग्नि के समान जलाती रहती है । इन्हीं में पड़े रहने से मनुष्य जीवन का कोई भी लक्ष्य पूर्ण नहीं होता है । कठोपनिषद् में इस सम्बन्ध में बड़ी मार्मिक उक्ति दी है । लिखा है—

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोतितद्विष्णोः परमं पदम् ॥

—कठोपनिषद् १/३/९

अर्थात्—जो मनुष्य विवेकी सारथि के समान जागृति बुद्धि के द्वारा मन की लगाम को वश में रखता है वह संसार से पार होकर परमेश्वर का परम पद प्राप्त करता है ।

असंयम का प्रभाव मनुष्य जीवन पर सदैव ही दूषित होता है । गुस्से में या अपमानजनक बात सुनने के बाद उस पर तुरन्त अपना मन्तव्य प्रकट करना या अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना भला नहीं होता । कामुकता पर भी इसी तरह सद्यःनिर्णय पतनकारी होता है । आप पर उस समय जो आरोप लगाये गए है, अथवा किसी कामुक विचार ने यदि आक्रमण किया है तो उसी वक्त उसे मत मान लीजिए । थोड़ी देर रुक कर, एकान्त में जाकर उस पर विचार कर लीजिए । हित-अहित का यथोचित विचार किए बिना हानि ही उठानी पड़ती है ।

आक्रामक परिस्थिति को कुछ देर तक के लिए टाल देने से तुरन्त के आवेग से आप बच जाते हैं और निर्णय के लिए समय मिल जाता है । विपक्षी का व्यवहार भी तब तक शान्त हो जाता है । अपने मानसिक आवेशों को भी इसी तरह भुलाया-बहकाया जा सकता है । भावुकता से दूर रह कर विषय को हर दृष्टि से परख लेने से समस्या का एक अच्छा हल निकल आता है और व्यर्थ के शक्ति व्यय से बच जाते हैं ।

मनुष्य की इन्द्रियाँ रात-दिन उसे अपनी ओर खींचती रहती हैं । जीभ चाहती है कि तरह-तरह के मिठाई, पकवान और स्वादिष्ट व्यंजन खाने को मिलें । सुन्दर दृश्य देखने के लिए आँखें बार-बार उत्सुक रहती हैं, कानों को हमेशा मधुर संगीत की खोज रहती है । इन्द्रियों और मन के विषय असीम हैं । इनसे मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती वरन् जीवन दिशा पूर्णतया सांसारिक हो जाती है और आत्म-ज्ञान की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बीच में ही छूट जाती है । अनन्त सुख-सामर्थ्य, सौन्दर्य और माधुर्य का भण्डार हमारी आत्मा है । वह नित्य, शाश्वत, अव्यय और अविनाशी है । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि हीन वृत्तियों के अधीन होकर आत्म-विजय की मूलभूत आकांक्षा को मनुष्य ठुकरा देता है । कदाचित यह ज्ञान मनुष्य को मिल भी जाय तो भी वह इन प्रलोभनों से जल्दी ही नहीं छूट पाता । इसके लिए उसे संयम के अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है । संयमी व्यक्ति ही आत्मोन्नति की ओर अग्रसर हो सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भान लीजिए आप थोड़ी देर के लिए इन्द्रियों का सुख प्राप्त कर ही लेते हैं तो क्या इससे लक्ष्यपूर्ति में कुछ मदद मिल सकती है ? क्या शक्ति के अपव्यय से निराशा, उत्तेजना और असन्तोष पैदा नहीं होता है ? इन्द्रियों के सुख कभी मनुष्य को तृप्त नहीं कर पाये हैं । इसलिए उधर से मुख मोड़ने में ही मनुष्य का परम कल्याण है । वासनाओं की तृप्ति के लिए जिस तरह अभ्यास पड़ जाता है उसी तरह आत्म-संयम की प्रवृत्ति को प्रखर बनाया जा सकता है । अपने उद्यम, पुरुषार्थ, साहस, संलग्नता विवेक आदि से उच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं किन्तु इन्द्रिय-लोलुपता का सर्वप्रथम दमन करना होगा । इसके बिना कोई तपश्चर्या चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक उन्नति संम्बन्धी कभी भी फलदायक नहीं होगी । संयम ही सफलता का मूल-मन्त्र है ।

प्रायः लोगों को शिकायत रहती है कि क्या करें हम से संयम होता ही नहीं । अधिकांश व्यक्तियों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि लोगों की संकल्पशक्ति इतनी कमजोर होती है कि वे किसी उच्च विचार पर देर तक स्थिर नहीं रह पाते । एफ. डब्ल्यू. राबर्टसन ने लिखा है कि "चरित्र बल दो शक्तियों पर अवलम्बित है । दृढ़-संकल्प और आत्म-दमन । सशक्त भावों के साथ-साथ उन पर दृढ़ अधिकार होना भी सच्चरित्रता के आवश्यक अंग हैं ।

आत्मा हमें सुपथ पर ले जाती है पर उसकी बात अनसुनी कर देने की मनुष्य में बहुत बड़ी कमजोरी है । उसकी तलाश तात्कालिक सुखों की ही होती है । दूरगामी परिणामों के प्रति स्थिरता न होने के कारण ही सारा जीवन विश्रृंखलित होता है । आत्म-संयम की वृत्ति देखने में कठोर, रूखी, नीरस भले ही प्रतीत होती हो पर कालान्तर में जब शक्ति का प्रवाह हमारे अन्दर फूट पड़ता है तो सारा जीवन उल्लास और प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाता है ।

किसी भी प्रकार हो, हमें जीवन-लक्ष्य में उच्च-भावना से मन को एकाग्र करके मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । इसके लिए अनेकों मार्ग धर्म-प्रणेताओं ने निर्धारित किए हैं । अपनी शक्ति, योग्यता के अनुसार कोई भी रास्ता चुन सकते हैं । किन्तु उस पर पूर्ण एकाग्रता से चलना पड़ेगा । सारी शक्तियों को केन्द्रित करके जब शर-सन्धान किया जाता है तभी लक्ष्यपूर्ति होती है । शक्ति-संचय का मार्ग है संयम । संयमित जीवन से ही सफलता के सारे रहस्य खुलते हैं । इसी से आत्म-जय की आकांक्षा पूर्ण होती है ।

जिह्वा के संयम से स्वास्थ्य की सिद्धि

मनुष्य की स्वास्थ्य रक्षा में जिह्वा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । किन्तु बहुत कम लोग इस ओर ध्यान देते हैं । जिह्वा को असंयत तथा अस्वच्छ रखने वाले उसकी स्वास्थ्य सहायता से वंचित रह कर शीघ्र ही आरोग्य की हानि कर लेते हैं ।

खाद्य अथवा पेय पदार्थों को सेवन करने के लिए जब मुख में डाला जाता है तब सबसे पहले जिह्वा ही उसके अच्छे, खराब, ताजी, बासी, रुचिकर, अरुचिकर, तिक्त, कटु आदि होने की सूचना देती है । वह अनेक अयोग्य पदार्थों को अस्वीकार करके शरीर, स्वास्थ्य की रक्षा करती है ।

जिह्वा में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो राल नामक एक तरल तत्व उत्पन्न करके खाद्य पदार्थ में मिलाती हैं । यह तत्व खाद्य को न केवल तरल बनाकर चबाने अथवा निगलने में ही सहायक होता है, अपितु भोजन के साथ पेट में जाकर उसे जीर्ण करने में पेट की भी पाचन क्रिया में सहायक होता है । अक्सर अनुभव किया जा सकता है कि जब किसी अयोग्य अथवा अरुचिकर ऐसे पदार्थ को खाने का प्रयत्न किया जाता है जिसे जिह्वा स्वीकार नहीं करती तो वह पदार्थ जल्दी चबाते या निगलते नहीं बनता । इसका कारण यही है कि जिह्वा की अस्वीकृति के कारण उक्त ग्रन्थियाँ असहयोग करके राल का छोड़ना बन्द कर देती हैं, जिससे अवांछनीय पदार्थ न तरल होकर शीघ्र निगलने योग्य हो पाता है और न पेट में शीघ्र पचता है । इसलिए स्वास्थ्य के लिए जरूरी है कि जिह्वा का उचित सादर-सम्मान किया जाय ।

अयोग्य भोजन अथवा बार-बार खाते-पीते रहना जिह्वा का असंयम है । एक तो अपने स्वभाव के विरुद्ध उसे अरुचिकर पदार्थों का सम्पर्क पाने से उसमें विषण्णता आती है जो उसकी शक्तियों को क्षीण करती है जिससे वह कालान्तर में अच्छे-खराब, योग्य-अयोग्य भोजन की सूचना देना छोड़ देती है और इस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक अवांछनीय पदार्थ पेट में जाकर स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं । बार-बार खाते-पीते रहने से जिह्वा को अनावश्यक एवं अतिरिक्त श्रम करते रहना पड़ता है । उसकी राल ग्रन्थियाँ शिथिल होकर शुष्क रहने लगती हैं जिससे भोजन के साथ पाचक रस पेट में नहीं जा पाता, जिसका परिणाम अजीर्ण के रूप में भोगना पड़ता है, जिस प्रकार हाथ-पाँव आदि किसी भी इन्द्रिय से अनावश्यक अथवा अधिक श्रम लेने से पूरे शरीर के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है उसी प्रकार जिह्वा से भी अनावश्यक श्रम लेने से शारीरिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है ।

अधिक तिक्त, तीव्र अथवा रसातिरेक वाले पदार्थ सेवन करने से जिह्वा में एक छटपटाहट पैदा होती है और उसकी राल ग्रन्थियाँ घबरा कर एकदम राल-रस का स्रोत खोल देती हैं जिससे शीघ्र ही उनकी वह निधि समाप्त हो जाती है और उनमें छूछापन आ जाता है । साथ ही जहाँ राल भोजन को पचाने में सहायक होती है । वहाँ उसका अधिक मात्रा में स्राव होना पाचन-क्रिया पर विपरीत प्रभाव डालता है जो कि समग्र शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है । इसलिए जरूरी है कि रसना को सहसा उत्तेजित कर देने की कारणभूत तीव्रताओं तथा स्वादातिरेकताओं से बचाये रखा जाय ।

बार-बार खाने-पीने के कारण मुँह हर समय जूठा और जिह्वा गन्दी बनी रहती है । इसीलिए जूठा मुँह रहने का निषेध शास्त्रों में किया गया है । जूठे मुँह रहने से मुख का अवशिष्ट उच्छिष्ट हर समय बन्द रहने के कारण शीघ्र ही सड़ने लगता है जिससे न केवल मुँह से दुर्गन्ध ही आने लगती है बल्कि मुँहासे तथा छालों आदि के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इतना ही नहीं मुख के रोगों के विषैले तत्व तथा कीटाणु हर समय राल के साथ पेट में जाते हैं जिससे पेट तो खराब होता ही है, राल के रास्ते की कण्ठ आदि की नलियों में भी विकार पैदा हो जाते हैं । ऐसी रुग्ण स्थिति में आरोग्य की आशा किस प्रकार की जा सकती है ?

आरोग्य शास्त्र में जिह्वा की सफाई पर बहुत जोर दिया गया है । शरीर के अन्य अवयव आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव आदि तो अपने विषैले तत्व पसीना, पानी, नाक, थूक आदि के रूप में कुछ न कुछ निकालते रहते हैं, किन्तु जिह्वा को ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं होती । इसलिए उसका साफ किया जाना बहुत जरूरी है । साफ किया जाना ही क्यों, हर समय साफ रखना जरूरी है । अब जो आदमी बार-बार खाता है, पान, तम्बाकू या बीड़ी, सिगरेट आदि का सेवन करता रहता है वह भला दिन में कितनी बार जीभ धोकर उसे साफ रख सकता है । इसलिए जिह्वा को हर समय साफ रखने के लिए बीड़ी, सिगरेट, पान, तम्बाकू आदि का प्रयोग और बार-बार खाने-पीने की आदत छोड़ना भी आवश्यक है । ऐसा करना स्वास्थ्य की दिशा में एक निश्चित पग उठाना ही होगा ।

इसके अतिरिक्त जिह्वा का एक और नियन्त्रण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है वह है—वाणी का नियन्त्रण । कटु, कठोर, गन्दे अथवा अप्रिय शब्द बोलने से न केवल सुनने वाले को ही कष्ट होता है, बल्कि वह उसके मानसिक संस्थान पर भी आघात करते हैं । कटु-कठोर शब्दों के पीछे उत्तेजना तथा क्रोध का आवेग रहा करता है, जो मनुष्य की जीवनी-शक्ति के लिए शोषक शिशिर का काम करता है । मधुर, शिष्ट और प्रिय बोलने से सुनने वाले को सुख मिलता है और अपना हृदय भी शीतल होता है । समाज में अजातशत्रुता की वृद्धि होती है । जो लोग कटु, कुटिल, कठोर अथवा अप्रिय बोल कर अपने शत्रु पैदा कर लेते हैं, वे चिन्ता के रूप में अपने स्वास्थ्य को घुन लगा लेते हैं । इसलिए आवश्यक है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिए मधुर एवं मनोहर सम्भाषण किया जाय ।

कम बोलना तो स्वास्थ्य के लिए साक्षात् संजीवनी ही है । इसलिए शास्त्रों में मौन को बहुत महत्त्व दिया गया है । रोगी के शीघ्र स्वस्थ होने में उसका विवशतापूर्ण गौन तथा चिकित्सकों का यह निर्देश कि रोगी को छेड़ा न जाय बहुत सहायक होता है जो लोग मौन भाव से चुपचाप अपना कार्य करते रहते हैं, वे अधिक काम कर लेते हैं । इसका कारण यही होता है कि मौन उनके जीवन तत्व को नष्ट नहीं होने देता । मौन अथवा अल्प-सम्भाषण का नियम निबाहने वालों के मन-मस्तिष्क सक्षम तथा शरीर स्वस्थ रहा करता है ।

बोलने, बात करने आदि वाणी प्रदान प्रक्रियाओं में सबसे अधिक प्राण-वायु का व्यय होता है। जितनी थकान दिन भर काम करने में नहीं आती उससे कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक थकान एक घण्टे लगातार बात करने में आ जाती है । यही कारण है कि वाणीप्रधान, अध्यापक, प्रवचन, भाषण, प्रचार तथा वकालत आदि का पेशा करने वालों का स्वास्थ्य प्रायः सन्तोषप्रद नहीं रहता । अधिक बोलना अथवा अधिक जोर से बोलना स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक है । जोर-जोर से अलाप भर कर गाने वाले, चीख-चीख कर भाषण देने वाले अथवा उत्तेजित होकर चिल्ला उठने वाले लोग अपने स्वास्थ्य को शीघ्र ही चौपट कर लेते हैं । थोड़ी देर बोलने के बाद ही शरीर में शिथिलता और मस्तिष्क में पीड़ा हो जाती है और तब उसको दूर करने के लिए घण्टों तक मौन रह कर आराम की आवश्यकता होती है । अधिक वाचालता अथवा आवेगपूर्ण वार्तालाप से बचकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना अधिक बुद्धिमान् के लिए वांछित है ।

इस प्रकार नेक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है कि जिह्वा का संयम तथा सफाई मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है । इसके विपरीत आचरण करने वाले की ठीक से स्वस्थ रहने की आशा नहीं रखनी चाहिए ।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्यनतः"

यह अथर्वेद का सूक्त है, जिसमें मन्त्रदृष्टा ने बताया है कि ब्रह्मचर्य की साधना से विद्वान् लोग मृत्यु को जीत सकते हैं । इसी प्रकार युग-पुरुष भगवान कृष्ण ने भी कहा है—"यदिच्छन्तों ब्रह्मचर्य चरन्ति ।" अर्थात्—यदि परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य का पालन किया करो ।

उपर्युक्त दो सूक्तों से भी दो शिक्षाएँ मिलती हैं—(१) पहली यह कि ब्रह्मचर्य से मनुष्य को आयुर्बल मिलता है, अकाल मृत्यु नहीं होती, इच्छानुकूल मृत्यु होती है । (२) ब्रह्मचर्य, अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की, शोध में चर्या अर्थात् तत्सम्बन्धी आचरण । यह दोनों ही बातें ऐसी हैं जिनकी सत्यता को भारतीय संस्कृति के प्रादुर्भाव काल से अब तक लोग मानते आये हैं । देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल ईश्वर प्राप्ति की साधना में अन्तर आ सकता है किन्तु ब्रह्मचर्य किसी न किसी स्थिति में प्रत्येक विधि के साथ आवश्यक कहा गया है ।

यह बातें ज्ञान और विज्ञान की ठहरीं । किन्तु व्यावहारिक जीवन और सांसारिक कार्यक्रमों में जिस शक्ति और स्वास्थ्य, मेधा-बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है उसके लिए भी ब्रह्मचर्य उतना ही आवश्यक है जितना पहली दो स्थितियों में । गृहस्थ जीवन में जिस सुख की कल्पना की जाती है उसका श्रेय बहुत कुछ ब्रह्मचर्य-व्रत को ही कह सकते हैं । मनुष्य विचारशील प्राणी है उसे अपना आगा-पीछा, हित-अहित सोचकर चलने की क्षमता प्राप्त है । मनुष्य जीवन के सुख प्राप्त करने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित न रखे तो सुख की कितनी की कामना करें, दुःख ही भोगना पड़ता है । शारीरिक उत्तेजनाओं से उत्तेजित होकर तथा मानसिक निर्बलताओं से प्रेरित होकर बहुमूल्य जीवनी शक्ति को यों ही बर्बाद कर देना मनुष्य की घोर अज्ञानता का चिह्न है । वह जीवन शुष्क, नीरस अन्धकारमय, उच्छिष्ट अपवित्र और मृततुल्य है जिसमें मनुष्य ने शरीर सुख की क्षणिक तृप्ति के लिए हाड़-माँस के पुतले से चिपट-चिपट कर अपना जीवन स्वत्व बर्बाद कर दिया होता है । थोड़े ही दिन में जब शरीर शिथिल पड़ जाता है, इन्द्रियाँ जबाव देने लगती हैं तब होश आता है, किन्तु अकाल-मृत्यु को दरवाजे पर बुलाकर पछताने से होता भी क्या है । अतः आवश्यक है कि हम मन्त्र दृष्टा ऋषि की वाणी को हृदयंगम करें और अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया करें ।

मनुष्य को तभी बुद्धिमान् कह सकते हैं जब वह सांसारिक पदार्थों एवं घटनाओं का अध्ययन करके अपनी मानसिक उत्तेजनाओं का समाधान कर लिया करे । प्रतिदिन अनेकों ऐसे लोगों को देखते हैं जिनके शरीर सूखे, निर्बल और शक्तिहीन दिखाई देते हैं । दूसरी ओर कुछ हट्टे-कट्टे स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्ति भी दिखाई देते हैं । सम्भव है कुछ स्वस्थ पुरुषों को खान-पान की अच्छी सुविधाएँ रही हों किन्तु यदि आचरण की गहराई में जाकर देखें तो यही मालूम पड़ेगा कि दुर्बल व्यक्तियों ने असंयम किया है । शरीर की विद्युत-शक्ति, प्राण-शक्ति का अनावश्यक दुरुपयोग किया है । इसी कारण से वे अप्रिय, दुःखी, रोगी एवं अप्रसन्न दिखाई देते हैं । यह बात प्रायः हर व्यक्ति जानता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभव करता है, पर चतुर वे हैं जो इन विचारों का लाभ अपने व्यावहारिक जीवन में प्राप्त करते हैं ।

"क्षणिक रस के लिए मैं शक्ति-हीन क्यों बनूँ ? जिस वीर्य में सन्तानोत्पादन की शक्ति भरी पड़ी है उसे क्यों नष्ट करूँ ? जीवन को आल्हादित, उल्लसित एवं चमकदार रखने वाले द्रव्य का पतन क्या अच्छी बात है ? परमात्मा की इस शक्ति को विनष्ट करना सचमुच गैर जिम्मेदारी है, अपराध है, मैं इस अपराध को नहीं करूँगा ।" इस तरह के विचारों को प्रतिदिन ध्यान में लाना चाहिए । मानसिक विग्रह की स्थिति में इन पर बार-बार और गहराई से विचार करना चाहिए । वीर्य रक्षा करने वाले मनुष्य ही इस संसार के भोग भोगते हैं ।

संसार के किसी भी बाह्य पदार्थ को अपने सुख का कारण न मानना मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का परिचायक है । सुख विचार की वस्तु है, भावना से प्राप्त होता है । स्वस्थ भावनाएँ और बलिष्ठ विचारों से आमोद उत्पन्न होता है, पर विचारों की सक्रियता और भावनाओं को मस्ती तो ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होती है । शक्ति ही सुख का मूल है, यह समझ कर अपनी शारीरिक शक्ति के अपव्यय को रोकने में ही चतुरता है । बाह्य पदार्थों वाले को सुख का आधार बनाकर रहना मनुष्य की बन्धन-दशा तथा अज्ञान की अब्रह्मचारिणी स्थिति है, इसमें मनुष्य का पतन ही सम्भव है ।

कामुकता प्रायः अशुभ-चिन्तन से, अश्लील दृश्यों के अवलोकन या बार-बार मनन करने से आती है । आचरण का बीज है विचार । विचारों को सत्य की ओर या रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगाये रहें और उन्हीं में सुख अनुभव करें तो ब्रह्मचर्य धारण की एक बहुत बड़ी कठिनाई हल हो जाती है । गाँधी जी कहा करते थे कि "आलसी मनुष्य कभी भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता । वीर्य संग्रह करने वालों में एक अमोघ शक्ति पैदा होती है । उसका उपयोग अपने शरीर और मन को निरन्तर कार्यरत रखने में ही करना चाहिए, अतः प्रत्येक मनुष्य को कोई ऐसा कार्य क्षेत्र निर्धारित कर लेना चाहिए जिससे विषय-वासना की ओर भटकने के लिए मन को रंचमात्र भी समय न मिले ।"

जिसका मन किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्त हो जाता है उसके न रहने या न मिलने पर दुःख अनुभव करता है । उसका ही आश्रित, परावलम्बी बन जाता है तो यही स्थिति अब्रह्मचर्य का कारण बन जाती है । अतः अपने आत्मा के स्वरूप को सदैव ध्यान में रखकर आत्म-तृप्ति की अवस्था में जीवन-क्रम चलाना चाहिए तभी ब्रह्मचर्य की नैष्ठिक स्थिति प्राप्त की जा सकती है ।

स्त्री-पुरुषों के शरीरों की भिन्नता और स्त्री सौन्दर्य के प्रति आकर्षण से मनुष्य को विचार उत्तेजना आती है । प्रेरित और प्रभावित होकर अक्सर लोग वासना के शिकार हो जाते हैं, पर यदि भली प्रकार चिन्तन करें तो यह मालूम पड़ता है कि शरीर की विविधता या आवरण में भी पौरुष या आत्मा ही विद्यमान है । अविनश्वर आत्मा के कल्याण के लिए शरीर के प्रति आकर्षण मानवोचित नहीं है । यह सोचना चाहिए कि इस शरीर में हाड़-माँस, मल-मूत्र आदि गन्दी वस्तुएँ ही भरी पड़ी हैं । रुपहली चमक के पीछे अपनी आत्मा के कल्याण को विस्मृत नहीं किया जा सकता । दो क्षण के इन्द्रिय सुख के लिए जीवन के बहुमूल्य हित पर कुठाराघात नहीं किया जा सकता । वह करना चाहिए जिससे आत्म-ज्ञान बढ़े । मोह और काम के भाव 'आत्महित' को बेच डालना कभी विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

विषय-सुखों में भटकने वाला मनुष्य का स्वेच्छाचारी और अहंकारी मन होता है । मनोनिग्रह की समस्या, ब्रह्मचर्य-पालन की प्रमुख समस्या है । इसके लिए ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी जीवन का आचरण करना मनोनिग्रह का सर्वोत्तम उपाय है किन्तु यह उपाय उन्हें ही लाभ दे सकता है जो कुछ विचारशील हैं और जिन्होंने मनुष्य-जीवन को नाशवान समझ कर तुच्छ स्वार्थों को ठुकरा देने का साहस पैदा किया है ।

सामान्य व्यक्तियों के लिए मन को वशवर्ती बनाने के लिए आहार शुद्धि पर अधिक ध्यान देना चाहिए । मन वस्तुतः आहार की ही सूक्ष्मतम अवस्था का नाम है । अतः जैसा लोगों का आहार होता है वैसे ही उनका मन भी और तदनुरूप उनके आचरण भी होते हैं । प्रत्येक मनुष्य को अपने आहार पर काबू रखना चाहिए । भोजन केवल शरीर रक्षा, प्रसाद और औषधि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए । अधिक कडुवे, तीखे, बासी-बुसे, मिर्च-मसालेदार, चटपटे भोजन की उपयोगिता स्वास्थ्य और आरोग्य की दृष्टि से भी उचित नहीं है । आध्यात्मिक दृष्टि से तो ऐसे भोजन का कुछ महत्त्व नहीं है । मादक पदार्थ, खुले बाजारू खाद्य-पदार्थों से केवल रोग के कीटाणु ही नहीं फैल जाते वरन् उनमें आने जाने वाले लोगों के दूषित संस्कार भी प्रवेश कर जाते हैं ।

ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन के सभी लौकिक व पारमार्थिक सुखों का साधन है हमें अपने जीवन को ब्रह्मचर्यमय, रखकर शक्तिमान, कान्तिमान, मेधावान तथा विचारवान बनने का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए । जिसने इस मूलमन्त्र को समझ लिया उसके जीवन में सुखों की कोई कमी नहीं होनी चाहिए ।

इन्द्रियों का सदुपयोग करना सीखें

आत्म-कल्याण के मार्ग में इन्द्रियों की प्रबलता को प्रमुख शत्रु माना है । इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले सुखों के प्रति राग और द्वेष मिलकर मनुष्य को दिग्भ्रान्त करते रहते हैं । यही कारण है कि बाह्य-जीवन की नश्वरता को स्वीकार करते हुए भी वह आत्मा के उद्धार की बात तक नहीं सोच पाता है । शास्त्रों में इस विषय में अधिक जोर दिया गया है कि मनुष्य शरीर रहते हुए अपने स्वरूप का ज्ञान कर लेना चाहिए अन्यथा पुनः युग-युगान्तरों तक अनेकों घृणित योनियों में विचरण करना पड़ता है तब कहीं दुबारा मानव-शरीर प्राप्त करने का संयोग मिलता है । इस दुर्लभ संयोग को यों ही बर्बाद कर देना बुद्धिमानी की बात नहीं है ।

अग्नि के तेजस्वी स्वरूप को देखने के लिए ऊपर की सारी राख हटानी पड़ती है । अन्धकार फैल रहा हो तो किसी भी वस्तु का साफ-साफ स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता । उसी प्रकार अन्तःकरण के मल, विक्षेप बने रहें तो आत्म-ज्ञान प्राप्त करना सम्भव न होगा । मानसिक चंचलता और आन्तरिक मलिनता का उदय इन्द्रियों के असंयम से होता है । इसलिए गीताकार ने लिखा है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यास्य परिपन्थिनौ ॥

अर्थात्—मनुष्य को चाहिए कि इन्द्रियों के अर्थ व उनमें सन्निहित जो राग और द्वेष हैं उनकी दोनों के वश में नहीं होवे, क्योंकि आत्म-कल्याण के मार्ग में विघ्न करने वाले ये दोनों ही प्रबल शत्रु हैं ।

जिन इन्द्रियों को आत्म-विश्वास की रुकावट मानते हैं । यथार्थ में हमारे आत्म-कल्याण का कारण भी वही हैं । शत्रु के रूप में तो वे अपने बहिर्मुखी स्वभाव के कारण परिलक्षित होती हैं । जब तक इनका उपयोग बाह्य-जीवन के सुखोपभोग में करते हैं तब तक यह शत्रु हैं, किन्तु जैसे ही इन्हें आत्म-ज्ञान व आत्म-विकास की ओर मोड़ देते हैं तो इनके सत्परिणाम भी दिखाई पड़ने लगते हैं । परेशानी तभी तक रहती है जब तक ये अपने अर्थों में पूर्ण स्वच्छन्द होती है । सदुपयोग करने लगें तो इन्हीं से महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं । आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि इनकी स्वतन्त्रता विचरण की बहिर्मुखी प्रवृत्ति पर अंकुश बनाये रहें ।

किसी घोड़े को बेलगाम छोड़ दें तो वह अपने सवार को खड्डे में गिरा कर ही रहेगा । सवार की सुरक्षा सदैव इस बात पर निर्भर रहती है कि वह घोड़े के नियन्त्रण को ढीला न करे । इससे जिस दिशा में जितनी दूर जाना चाहेंगे वहीं घोड़ा सुरक्षापूर्वक आपको पहुँचा देगा । जिह्वा-इन्द्रिय को ही लीजिए । भाँति-भाँति के स्वाद-युक्त व्यंजनों की उसे सदैव लालसा बनी रहती है । चटोरपन की बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण वह स्वास्थ्य को बर्बाद करती है । जिह्वा का उपयोग वस्तुतः इसलिए है कि उससे खाद्य या अखाद्य की पहचान करते रहें । अधिक कडुवा खा लेने पर जीभ छटपटाने लगती है यह उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है कि यह अखाद्य है, उदरस्थ कर जाने का दुष्परिणाम तो बाद में मिलेगा । पाचन संस्थान की खराबी से होने वाले दुष्परिणामों से बचाने के लिए ही जीभ की तड़फड़ाहट उठी थी किन्तु इसका लाभ तभी है जब हम खाद्य और अखाद्य के भेद को स्वीकार करें, उस पर नियन्त्रण करें ।

आँखों का कार्य है सौन्दर्य-दर्शन । आत्मा के उद्गम परमात्मा के सौन्दर्य को अन्यतम कहा जाता है । उस आन्तरिक सौन्दर्य के साक्षात्कार की लालसा स्वाभाविक है । हर किसी को सुन्दर वस्तुएँ देखने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इच्छा बनी रहती है, किन्तु अधिकांश होता यह है कि लोग बाह्यरूप रंग, चमक-दमक को ही सौन्दर्य मानते हैं । बात यहीं तक रहती तब भी गनीमत थी किन्तु स्वार्थपूर्ण और वासनात्मक दृष्टिकोण के द्वारा लोग आन्तरिक सौन्दर्य पर पर्दा डाल देते हैं । विराट् का सौन्दर्य इतना अभूतपूर्व और आह्लादमय है कि एक बार उसकी अनुभूति कर पायें तो आँखें, सदैव उसे पाने के लिए ही तरसती रहेंगी । इसी दृष्टि से इनकी उपयोगिता भी है ।

इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सब विधिवत् वैज्ञानिक तथ्य पर सन्निहित है—इस विज्ञान को समझने के लिए इन्द्रियों के विषय-विकारों से दूर रहना परमावश्यक है । इन्द्रियों में आसक्त हुआ व्यक्ति कभी अध्यात्म-विज्ञान की ओर उन्मुख नहीं हो सकता । उसकी सारी चेष्टाएँ इन्हीं कुत्सित, घृणित, अदूरदर्शी, क्षणिक, सुखोपभोग के आस-पास ही चक्कर लगाया करती हैं । फलतः विराट् के साथ आत्मीयता स्थापित करने की कभी भावना तक नहीं बन पाती । तुलसीदासजी ने मानस में लिखा है—

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना, तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना ।
आवत देखहिं विषय बयारी, ते हठि देहिं कपाट उघारी ।
जब सो प्रभंजन उर गृह जाई, तबहिं दीप विज्ञान बुझाई ।
इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सोहाई, विषय भोग पर प्रीति सदाई।

अर्थात्—अनियन्त्रित इन्द्रियाँ बलात् विषयों की ओर खींच ले जाती हैं । ज्ञान-विज्ञान की बात यों ही रखी रह जाती है ।

विषयों में राग और द्वेषों में स्वछन्द विचरण करती हुई इन्द्रियों को विचार व विवेक द्वारा ही नियन्त्रण में रखा जा सकता है । भोग से कभी तृप्ति नहीं होती, इससे मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य से भटक कर दुःख, क्लेश तथा त्रासदायक परिस्थितियों में जा फँसता है । इस विचार को गहराई तक अपने अन्तःकरण में प्रवेश कर लेने से और इस पर निरन्तर चिन्तन मनन करते रहने से भोग के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम दिखाई दे जाते हैं । धीरे-धीरे इनसे घृणा उत्पन्न होने लगती है ।

इतना होने से भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इन्द्रियाँ आपके वश में आ गईं । जब कभी अनुकूल परिस्थिति बन जाती है तो इनमें प्रबल उत्तेजना उठे बिना नहीं रह पाती । ऐसी अवस्था में सारी विचार-शक्ति लड़खड़ा जाती है और एक आवेश के साथ लोग बुरे कर्मों की ओर बलात् खिंचे चले जाते हैं । यह परिस्थिति विचारों की क्षीण शक्ति के कारण ही उपस्थित होती है, इसलिए अपने प्रत्येक विचार को एक संकल्प का रूप दे देना चाहिए । बड़ी सूक्ष्मता और चतुराई से यह देखते रहना चाहिए कि इन्द्रियाँ कहीं अपनी इच्छा से तो हमें नहीं घसीट रहीं हैं । इन्द्रियों का स्वभाव जानकर उन्हें सही मार्ग पर ले जायें । इसका सबसे सरल उपाय यह है कि अपना अधिकांश समय परमात्मा के मनन-चिन्तन में लगाये रखें । जितनी देर आपका मन आन्तरिक विचारों के क्षेत्र में डूबा रहेगा उतनी देर इन्द्रिय-विषय भी बिल्कुल नहीं उठेंगे । यदि ऐसी स्थिति आती हैं तो उन्हें बहलाकर फिर से सद्-चिन्तन में लगा देना चाहिए । इसके लिए मन का संकल्पवान होना आवश्यक है, इसी से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है ।

अपनी आन्तरिक निर्मलता बनाये रखने से इन्द्रियाँ अपने आप संयमित होने लगती हैं । इस व्यवस्था का आधार सदाचरण है । द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि से ही अन्तःकरण मलिन व अपवित्र बनता है । अपनी भावनाओं में प्रेम, स्नेह, आत्मीयता, सौजन्य और सहानुभूति के बाहुल्य से ही आन्तरिक श्रेष्ठता स्थिर रहती है जब तक ऐसी स्थिति बनी रहती है तब तक दूषित विकार उत्पन्न नहीं होते और इन्द्रियाँ नियन्त्रित बनी रहती हैं ।

इन्द्रियों को आत्मा का शत्रु नहीं, सेवक मानना चाहिए । परमात्मा ने इन्हें इसलिए प्रदान किया है कि इनकी सहायता से सृष्टि संचालन की आवश्यकता पूरी हो और सुख मिले । निःसन्देह इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं । इनसे जीवात्मा का उत्कर्ष होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है । ये आत्मा के हित व कल्याण में बाधक नहीं वरन् साधन स्वरूप है । इनका सदुपयोग किया जाय तो मनुष्य जीवन का मधुर रस चखता हुआ अपना जीवन-लक्ष्य पूरा कर सकता है ।

सच तो यह है कि किसी भी इन्द्रिय का उपयोग करना पाप नहीं है । ये अन्तःकरण की विभिन्न क्षुधाओं पिपासाओं को तृप्त करने का उत्तम माध्यम है । ज्ञानेन्द्रियों की क्षुधा उचित रीति से तृप्त नहीं की जाती तो आन्तरिक क्षेत्र का सम्पूर्ण सन्तुलन ही बिगड़ जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । मानसिक गड़बड़ी पैदा होती है । बुरा तो इनका अनुचित उपयोग है । अस्वाभाविक इच्छा पूर्ति के लिए अनियन्त्रित भोग-वासना के कारण आदमी पतित बनता है । अमर्यादित और स्वेच्छाचारी इन्द्रियाँ जीवन-लक्ष्य से गिरती हैं इसलिए इन्द्रिय भोगों की सर्वत्र निन्दा की गई है । उचित रीति से भोगी गई इन्द्रियाँ दुःख का कारण नहीं होतीं । स्वाभाविक रीति से इन्द्रियों का सदुपयोग बुरा नहीं होता । हमारे शत्रु के रूप में तो अनियन्त्रित भोग-वासना होती है । इससे ही बचने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए ।

प्राणशक्ति सम्वर्धन हेतु ब्रह्मचर्य अनिवार्य

विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि जिन्हें जीवन में कुछ कहने लायक सफलता अर्जित करनी हो, उन्हें ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझ लेना चाहिए । भौतिक जीवन में जहाँ इससे संकल्प और प्रतिभा का जागरण होता है, वहीं आध्यात्मिक जीवन को विभूतिवान बनाने में इसकी महती भूमिका है ।

यों ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ तो इन्द्रिय संयम है, पर इसका शब्दार्थ इससे बिल्कुल भिन्न है । जो चर्या ब्रह्म के गिर्द चलती हो, वह ब्रह्मचर्य कहलाती है । ईश्वर प्राप्ति के लिए काम-सेवन पर नियन्त्रण प्राप्त करना प्राचीनकाल में एक आवश्यक अनुबन्ध के रूप में स्वीकार किया गया था और इस मार्ग को 'ब्रह्मचर्य' कहा गया था । चूँकि इसमें अहर्निशि ब्रह्मचर्चा और चिन्तन ही प्रमुख थे, अस्तु क्रियाबोधक नाम रखा गया । उपासना के क्षणों में ईश्वर का गुणानुवाद तो अभीष्ट था ही, इसके अतिरिक्त दिनचर्या के अन्य कामों में भी दिव्य सत्ता का सतत् स्मरण और समीपता का अनुभव किया जाता । इस प्रकार हर कार्य में ब्रह्मसत्ता के बराबर मनन के कारण ही यह मार्ग ब्रह्मचर्य कहलाया ।

आज इसकी लकीर भर पीटी जा रही है । तथाकथित भगवद्परायण लोग संयम के नाम पर स्खलन को तो किसी प्रकार रोक लेते हैं, पर मानसिक निग्रह के न बन पड़ने से जो ऊर्जा ऊपर चढ़कर व्यक्ति को उर्ध्वरिता बना सकती थी, वह दूसरे मार्ग से क्षरित होकर उन्हें खोखला बनाती रहती है । इस तरह सत्चिंतन के अभाव में शारीरिक नियमन आधे-अधूरे स्तर का बना रहता है । शायद इसी कारण से प्राचीन आचार्यों ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की थी कि मन को सदा उदात्त भूमिका में बनाये रखा जाय । इससे इन्द्रिय संयम स्वतः निभता चलेगा । निश्चित ही तब वे इस मनोविज्ञान से पूर्ण-रूपेण परिचित रहे होंगे कि मन ही कामुकता की जड़ है । उसे यदि किसी श्रेष्ठ चिन्तन में लगा दिया गया, तो फिर 'काम' का 'उल्लास' में उदात्तीकरण सम्भव है । वर्तमान में सर्वत्र इसके विपरीत आचरण हो रहा है, अतः 'काम' को परिष्कृत कर पाने में न तो सफलता मिल पाती है, न कोई वास्तविक ब्रह्मचारी बन पाता है । देखा गया है कि क्षरण को रोक लेना ही सम्प्रति ब्रह्मचर्य की कसौटी बनी हुई है, भले ही चिन्तन कितना ही अश्लील और कामोत्तेजक क्यों न हो । प्राचीन समय में ऐसी बात नहीं थी । तब विचारणा को प्रमुख और बिन्दु क्षरण को गौण माना जाता था । विचारणा यदि ठीक-ठीक सध गई, तो फिर काम-क्रीड़ा पर नियन्त्रण कोई बहुत कठिन नहीं रह जाता और यदि इन दोनों पर विजय प्राप्त कर ली गई, तो लक्ष्य तक पहुँचना सरल हो जाता है । यहाँ जानने योग्य तथ्य यह है कि काम-कौतुक से जितनी ऊर्जा बर्बाद होती है, उससे कई गुनी अधिक शक्ति मानसिक काम-सेवन से नष्ट होती रहती है । इसलिए आत्मोत्थान के लिए ऊर्जा क्षरण के उक्त दोनों मार्गों को बन्द करना पड़ता है, तभी यथार्थ उन्नति करतलगत कर पाना सम्भव है, अन्यथा दूसरों पर बड़प्पन जताने हेतु येन-केन प्रकारेण भले ही काम-वृत्ति पर रोक लगा दी गई हो, पर इससे कोई बड़े लाभ की आशा नहीं की जा सकती । आत्मोत्कर्ष जैसा महत्त्वपूर्ण प्रयोजन तो इतने भर से सध ही नहीं सकता । यह तो वैसा ही करना हुआ, जैसे किसी पात्र में रखे पानी के एक मार्ग को बन्द कर दूसरे को खोल देना । इससे अन्तर इतना ही पड़ सकता है कि जो संग्रह कुछ ही दिनों में समाप्त होने वाला था, अब वह धीरे-धीरे खत्म होगा और थोड़े अधिक समय तक चलेगा । यहाँ महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि शक्ति क्षरण के कितने रास्ते बन्द है ? महत्ता इस बात की है कि पथ पूर्णतया बन्द हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो फिर यही समझना चाहिए कि धीमी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्महत्या जैसी प्रक्रिया चल पड़ी, जिसमें व्यक्ति की मृत्यु तो नहीं होती, पर शनैः-शनैः प्राण शक्ति के क्षीण होते जाने से अन्त में खोखली काया भर शेष रह जाती है । इस अवस्था में कलेवर पुतलों की तरह चलता-फिरता दिखाई तो पड़ता है, पर कुछ कर-धर पाने में असहाय स्तर का बना रहता है । यह मरण से भी बुरी दशा है । ऐसी स्थिति में आत्मोन्नति तो क्या, भौतिक प्रगति भी भारी पड़ने लगती है और जैसे-तैसे कर जर्जर शरीर को खींचा-धकेला जाता है । इस दोहरी हानि से बचने के लिए ही असंयम से विरत रहने का उपदेश किया गया है, जबकि संयम पालने वाले न सिर्फ शरीर की दृष्टि से बलिष्ठ, ओज और तेजवान होते हैं, अपितु चेतना की दृष्टि से भी प्राणवान होते हैं । प्राणबल के लगातार इकट्ठा होते चलने से व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता और अन्ततः उसे प्राप्त कर लेता है । यह समग्र प्रक्रिया ही ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत थी, पर इसे विडम्बना ही कहना चाहिए, जिसमें आधे को पूर्ण मान लिया गया हो ।

"सेलिबैसी-ह्वाट डज इट रियली मीन" ? नामक ग्रन्थ में जॉन ट्रेबर लिखते हैं कि वीर्य वस्तुतः एक प्रकार का रसायन है, जिसकी क्षति-पूर्ति शरीर द्वारा बराबर होती रहती है । इस महत्त्वपूर्ण रसायन को रोक रखना नहीं, वरन् उस अपव्यय की सुरक्षा है, जो बिन्दुपात के साथ प्राण के एक बड़े हिस्से के रूप में बरबाद होती रहती है । यदि प्राण निर्गमन को रोक कर वीर्य को गिरा पाना किसी प्रकार सम्भव हो, तो फिर रतिक्रिया में किसी प्रकार की कोई हानि जैसी बात नहीं, पर ऐसा कर पाना शक्य नहीं । इसीलिए उस क्षति को टालने के लिए वीर्यपात को ही रोकना पड़ता है ।

'काम' का अपना एक आनन्द है । शरीर उसे भोगना चाहता है, पर जब व्यक्ति हठपूर्वक उसको रोकता और उस सुख से देह को वंचित करता है, तो अन्दर से एक तीव्र प्रतिरोध उभरता है । यही खतरनाक है । दुःख और पागलपन यहीं पैदा होते हैं । ऐसी दशा में यदि कोई दूसरा बड़ा सुख मिल जाय, तो विक्षिप्तता टल जाती और अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगता है । पागलपन तो उस स्थिति में आता है, जब मनुष्य उपलब्ध सुख को त्याग दे, किंतु सामने कोई दूसरा सुख नहीं हो । यदि कोई दूसरा बड़ा सुख मिल जाय, तो निश्चय ही वह पहले वाला छोटा और गौण हो जायेगा, एवं उसकी महत्ता नगण्य जितनी रह जायेगी, ठीक वैसे ही, जैसे छोटी रेखा के आगे कोई बड़ी लकीर खिंच जाय, तो पहले वाली अप्रधान और दूसरी प्रमुख हो जाती है ।

इसकी उपलब्धि के लिए ऋषियों ने एक सारगर्भित सूत्र दिया है । यदि उसे जीवन में उतारा गया, तो निःसन्देह उस बड़े आनन्द की प्राप्ति की जा सकेगी, जिसके आगे काम-सुख तुच्छ हो जाता है । यह सूत्र है—अर्न्तयात्रा का ? बहिर्यात्रा व्यक्ति को 'काम' में उलझाती है, जबकि अन्तर्यात्रा उसे 'राम' तत्व का रसास्वादन कराती है । इस अन्तर्यात्रा का सही ढंग से अभ्यास किया गया, तो भोग से भी अधिक रस इस अन्तर्योग में आने लगेगा । यदि इसके पीछे की वैज्ञानिकता को समझ लिया जाय, तो बात और भी स्पष्ट हो जायेगी । यथार्थ में हम जिसे सुख मानते और बाहरी वस्तुओं में तलाश करते हैं, वह वास्तव में अन्दर की मन की चीज है । बाहरी जगत से उसका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं । यदि ऐसी बात नहीं रही होती, तो किसी सामग्री के उपभोग के पश्चात वह फीकी लगती प्रतीत नहीं होती और रस की खोज में मन फिर किसी अन्य की माँग नहीं करता, पर दैनिक जीवन में अनुभव इसके विपरीत होते जान पड़ते है । इससे स्पष्ट है—मन ही सरसता और नीरसता के लिए जिम्मेदार है । इस मन के सुख की जो व्याख्या आप्तवचनों में की गई है, उसके अनुसार जब मन का योग एक विशेष प्रकार की विद्युतधारा से होता है, तो सुख की अनुभूति होती है और जब दूसरे प्रकार के प्रवाह से होता है, तब दुःख का कारण बनता है । अर्थात् दोनों स्थितियों के लिए आन्तरिक तरंगें ही उत्तरदायी हैं । ब्रह्मचर्य के दौरान इन्हीं में से एक तरंग को जगाना पड़ता है, पर यह जगे कैसे ? इसकी भी प्रक्रिया बताई गई है ।

विज्ञान के अनुसार यह तरंगें सिर के पीछे स्थित दो छोटी परस्पर सटी ग्रन्थियों के कारण पैदा होती हैं । विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि इनमें से यदि सुखोत्पादक ग्रन्थि जाग जाय, तो फिर चाहे कितना भी दारुण कष्ट उपस्थित हो जाय, भयंकर घटना घट जाय,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति को कभी भी दुःख नहीं होगा । इसी तरह क्लेश पैदा करने वाली ग्लैण्ड के जागृत होने से आदमी कदापि सुखी नहीं रह पायेगा, भले ही उसे कुबेर जितनी सम्पत्ति मिल जाय, साधनों का अम्बार लग जाय, अनुकूलता की अट्टालिका खड़ी हो जाय, पर इन सबके बावजूद वह पीड़ित बना रहेगा, कारण कि उक्त ग्रन्थियों से सम्बन्धित अन्तस् की जो सम्वेदना थी, वह जाग गई । यह जागरण व्यक्ति अथवा वस्तु के कारण भी हो सकता है, परन्तु यहाँ वे मात्र सम्वेदना को जगाने का निमित्त बनते हैं, सुख-दुःख का निमित्त तो वह भीतरी स्पन्दन ही है, जिसके कारण ग्रन्थियाँ सक्रिय बनती और तत्सम भाव की प्रतीति कराती हैं । इसे सम्वेदना का विज्ञान कहा गया है । ब्रह्मचर्य के दौरान इसी का संयम करना पड़ता है । इसके मर्म को जिसने समझ लिया, वही ठीक-ठीक उसका पालन कर सकता है, अन्यथा इसके रहस्य को जाने बिना वह बाहरी पदार्थों में ही भटकता रहेगा, संसार से पलायन करेगा, इस उम्मीद में कि शायद कंदरा में ब्रह्मचर्य सध जाय, पर वहाँ भी उसे दुःख के अतिरिक्त कुछ भी हस्तगत नहीं होगा, और जीवन यों ही बरबाद होता चला जायेगा ।

यहाँ तनिक उस शरीरशास्त्र को समझ लेना जरूरी है, जो काम वासना का निमित्त है । ज्ञातव्य है कि शरीर की अधिकांश क्रियाएँ रसस्रावों पर निर्भर हैं । यह स्राव यदि ज्यादा हुआ, तो तत्सम्बन्धी क्रिया भी असामान्य स्तर की हो जाती है और कम होने पर भी वह असामान्य बनी रहती है, पर दोनों के स्तर में अंतर होता है । अधिक रस बनने से क्रियाविधि काफी तीव्र हो जाती है, जबकि कम होने पर मंद पड़ जाती है । सामान्य भूमिका में वह तभी रह पाती है, जब हार्मोन्स सन्तुलित मात्रा में निकलें । यही सहज स्थिति है । वासना की दशा में यौन हार्मोन्स के स्राव पर पहले पिट्यूटरी का कठोर नियन्त्रण होता है । यही कारण है कि बालकों को आरम्भ के कुछ वर्षों तक काम-लिप्सा का ज्ञान तक नहीं होता, उसके सताने की बात तो दूर है, किन्तु जब वह १४-१५ साल की अवस्था के हो जाते हैं, तो निसर्ग के नियमानुसार यौन हार्मोन्स पर पिट्यूटरी ग्रन्थि का नियमन ढीला पड़ने लगता है । उसके ढीला पड़ते ही 'काम' सम्बन्धी रसस्राव गोनैड (काम केन्द्र) को प्रभावित करने लगता है । यही वह आरम्भिक अवस्था है, जिसमें 'काम' सम्बन्धी जानकारी का प्रथम उदय बालकों में होता है । बाद में जिसमें जिस अनुपात में कामरस पैदा होता है, उसमें उसी अंश में उसके प्रति ललक देखी जाती है । कई व्यक्तियों में कई बार यौन के प्रति भंयकर अतृप्ति पायी जाती है, जबकि कुछ सामान्य ढंग की अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं, तो कइयों की इसके प्रति एकदम अरुचि होती है । इन भिन्न-भिन्न मनोदशाओं के पीछे रसस्राव की भिन्न-भिन्न मात्रा की ही भूमिका होती है ।

इस यौन प्रवृत्ति को नियन्त्रित कैसे किया जाय ? इसके दो तरीके हैं—एक दमन का तरीका है, दूसरा उदात्तीकरण का है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दमन से विक्षिप्तता आ सकती है, व्यक्ति असामान्य बन सकता है, किन्तु उदात्तीकरण से आनन्द की उपलब्धि होती है । यह एक व्यापक आध्यात्मिक प्रयोग है, जिसमें काम वृत्ति को इतना परिष्कृत और विशाल बना दिया जाता है, कि सताने जैसी कोई बात शेष रह नहीं जाती ।

काम नियन्त्रण के द्वारा जब प्राण शक्ति को सम्बर्धित किया जाता है, तो वही प्रतिभा, प्रखरता, साहस, मनोबल, पुरुषार्थ, पराक्रम, विवेक सहिष्णुता जैसी कितनी ही धाराओं के रूप में प्रकट और प्रस्फुटित होती है । धृति, स्मृति, आत्मविश्वास, शारीरिक स्वस्थता, कायिक बलिष्ठता, ओज, तेज-यह सब ब्रह्मचर्य के ही सत्परिणाम हैं । जो इसे जितने अंशों में धारण करेगा, उसी परिमाण में हाथों-हाथ यह विभूतियाँ मिलती चली जायेंगी ।

ब्रह्मचर्य : रक्षा कैसे करें ?

ब्रह्मचर्य की भावना के घटते जाने और वीर्य नाश की प्रवृत्ति के जोर पकड़ते जाने के अनेक कारण हैं, पर सबसे बड़ा कारण समाज की परिस्थिति ही है । मनुष्य चाहे जैसा उच्छृंखल तथा सदाचार रहित हो उसे समाज का ध्यान रखना ही पड़ता है । यदि समाज यौन-सदाचार को महत्त्व देने वाला हो और चरित्रहीनता को हेय दृष्टि से देखता हो तो बहुत कम व्यक्ति कुमार्ग पर जाने का साहस करेंगे । उस अवस्था में सदाचार-विमुख व्यक्ति सामाजिक अपमान और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहिष्कार से बचने के लिए राजी से नहीं तो लाचारी से ही अनैतिक कार्यों की ओर एकाएक अग्रसर न होंगे । यदि जनता का सदाचारी भाग प्रभावशील हो तो व्यभिचार के इच्छुक भी उस मार्ग पर चलने से रुक सकेंगे । यदि कोई विवेकहीन वैसा कर्म करेगा भी तो वह उसी प्रकार घृणित और नीच समझा जायेगा जिस निगाह से हम वेश्या आदि को देखते हैं । इस तथ्य का विवेचन करते हुए एक विचारक ने लिखा है—

"यह बात समझने की जरूरत है कि समाज का गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा, उतनी ही उस समाज में ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक मिल सकेगी । जिस देश में बहुसंख्यक लोगों का गृहस्थ-जीवन अपवित्र होगा वहाँ बहुत से शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते ।"

महात्मा गाँधी के चार पुत्र हो जाने के पश्चात बड़ी आयु में ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया था और उसे स्वानुभव तथा अभ्यास के बल से इतनी परिपूर्ण स्थिति तक पहुँचा दिया था कि उनका जीवन करोड़ों के लिए आदर्श बन गया । उन्होंने अपने 'ब्रह्मचर्य के अनुभव' विस्तारपूर्वक लिखे हैं और उन उपायों को भी बतलाया है जिनसे उनको इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकी । नीचे उनके लेख का कुछ अंश दिया जाता है—

ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय

"ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिए । मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है । इस कारण मेरे भोजन प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे थे । मुझे अनुभव हुआ कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का करना चाहिए । ब्रह्मचारी का सर्वोत्तम भोजन तो पेड़ के पके फल हैं । फलाहार के दिनों में मेरे लिए ब्रह्मचर्य सहज था, पर जब मैं दूधाहार करने लगा तो वह कष्टसाध्य हो गया, पर दूध जैसा शरीर की रगों-नसों को मजबूत बनाने वाला और उतनी आसानी से पचने-हजम होने वाला खाद्य दूसरा नहीं है । इसलिए मैं किसी से उसके त्याग के लिए नहीं कर सकता ।"

ब्रह्मचर्य और उपवास

"इन्द्रियाँ ऐसी बलवान हैं कि चारों ओर से, ऊपर-नीचे दसों-दिशाओं से जब उन पर घेरा डाला जाता है, तभी कब्जे में रहती हैं । सभी लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं । इसलिए इन्द्रिय-दमन हेतु इच्छापूर्वक किए गए उपवासों से ब्रह्मचर्य पालन में बड़ी सहायता मिलती है । कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते । कारण यह होता है कि वे उपवास से ही सब काम पूरा हो जाने की आशा कर लेते हैं । वे बाहरी तौर पर उपवास करते हैं, पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं । उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है, जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है ।"

ब्रह्मचर्य और मनोविकार

"ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे इसलिए विफल होते हैं क्योंकि वे आहार-विहार तथा अवलोकन इत्यादि में "अब्रह्मचारी" की तरह बर्ताव किया करते हैं । संयमी तथा स्वच्छन्द और भोगी तथा त्यागी जीवन में भेद अवश्य होना चाहिए । साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है । भेद स्पष्ट रूप में दिखाई देना चाहिए । आँख से काम तो दोनों तरह के व्यक्ति लेते हैं, परन्तु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक सिनेमा में लीन रहता है । कान का उपयोग दोनों करते हैं परन्तु एक ईश्वर-भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों के सुनने में आनन्द मानता है । भोजन दोनों करते हैं परन्तु एक शरीर रूपी तीर्थ-क्षेत्र की रक्षा मात्र के लिए पेट में अन्न डाल लेता है और दूसरा स्वाद के लिए देह में अनेक चीजों को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है ।"

"ब्रह्मचर्य पालने के लिए-मन, वचन, कर्म से समस्त इन्द्रियों के संयम के लिए पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है । जब तक अपने विचारों पर इतना कब्जा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पाये, तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की आशा नहीं करनी चाहिए । जितने भी संसारी विचार हैं वे सब एक तरह के विकार हैं । उनको वश में करने का अर्थ है मन को वश में करना और मन को वश में करना वायु को भी वश में करने से भी कठिन है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यद्यपि इसमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं, पर यह न मान लेना चाहिए कि यह असाध्य है । ब्रह्मचर्य तो परम अर्थ है और परम अर्थ के लिए परम-पुरुषार्थ की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य है ?''

ईश्वर पारायणता और आस्तिक भाव

अन्त में सबसे बड़ा उपाय है—ईश्वर पारायणता और ईश्वर की कृपा पर अटल विश्वास रखना । यदि हम मन से ईश्वर का चिंतन करें, वाणी से उसकी चर्चा करें, शारीरिक कर्मों में भी यही ईश्वर-सेवा का भाव रखें तो ब्रह्मचर्य-पालन बहुत सरल हो जायेगा । उस स्थिति में काम-विकार की बात सोचने और उसकी चर्चा करने का अवसर नहीं मिलेगा । महात्मा गाँधी भी अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे । उन्होंने लिखा है कि ''जब मैं अफ्रीका से लौटकर पुनः भारत में आया तो मैंने देखा कि ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न साध्य नहीं है । अब तक मैं कहता था कि फलाहार से ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन हो जायेगा, तब तक वस्तुतः मैं एक प्रकार के विदेशी भाव में था । भारत आकर मुझे अनुभव हुआ कि सच्चे आत्मार्थी ब्रह्मचारी का अन्तिम साधन तो राम नाम और राम कृपा ही है ।

भोजन का शुद्ध और सात्विक होना

शरीर के निर्माण और विकास का मुख्य आधार हमारा आहार होता है । शरीर ही नहीं मन पर भी इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । अशुद्ध अथवा अनीति द्वारा उपार्जित आहार को करता हुआ कोई मनुष्य संयमी रह सके यह सम्भव नहीं । जो लोग अधिक मसालेदार चटपटा अथवा गरिष्ठ भोजन करते हैं वे प्रायः कब्ज के शिकार हो जाते हैं । कब्ज हो जाने पर मल को बाहर निकालने में अधिक जोर लगाना पड़ता है । लगातार ऐसा करते रहने से इसका कुप्रभाव जननेन्द्रिय और वीर्यवाहिनी नसों पर भी पड़ता है और पेशाब के साथ वीर्य निकलना आरम्भ हो जाता है । इस प्रकार वीर्य नाश होना स्वास्थ्य के लिए असंदिग्ध रूप से हानिकारक होता है ।

नशों से बचकर रहिए—सब प्रकार के नशे भी वीर्य-रक्षा के महान शत्रु हैं । शराब, ताड़ी, भाँग आदि प्रत्येक मादक पदार्थ मनुष्य के मन को उत्तेजित करता है और उसे दुराचार की ओर प्रेरित करता है । सबसे खोटा और सामान्य समझा जाने वाला 'धूम्रपान' ही वीर्य को ऐसा पतला और निर्बल कर देता है कि कुछ वर्ष तक उसका आदी होने के पश्चात संयम और वीर्य-रक्षा का उद्देश्य असम्भव हो जाता है । तम्बाकू में एक प्रकार का घातक विष 'निकोटीन' पाया जाता है, जो यदि शुद्ध अवस्था में किसी नये व्यक्ति को दे दिया जाय तो वह उसी समय मर सकता है । यद्यपि धीरे-धीरे आदत डाल लेने से उसका कुप्रभाव शीघ्र ही नहीं जान पड़ता, पर वह स्वास्थ्य को निरन्तर हानि पहुँचाता रहता है और एक दिन वह मनुष्य को निर्बल और निस्तेज ही नहीं बना डालता वरन् तरह-तरह के भयंकर रोग, जैसे कैंसर आदि उत्पन्न करके उसकी जीवन-लीला को समय से पूर्व ही समाप्त कर डालता है ।

आलस्य, प्रमाद, शृंगार-प्रियता, कृत्रिम जीवन, दुराचारी लोगों की संगति और उनकी कामुकता तथा वासनापूर्ण बातों में रस लेना, अनियमित दिनचर्या आदि अन्य अनेक बातें भी वीर्य-रक्षा की दृष्टि से आपत्तिजनक हैं । इसके कारण मनुष्य के मन को कुपथ में जाने का अवसर मिल जाता है और वह क्रमशः दूषित जीवन को अपना लेता है । यही कारण है कि प्राचीन धर्म-शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य-आश्रम के लिए ऐसे कठिन नियम बनाये थे कि वे स्त्रियों के संसर्ग से ही न बचें, वरन् किसी स्त्री के प्रति दूषित विचार भी मन में न लायें । इसमें सन्देह नहीं कि जो व्यक्ति स्वस्थ, सदाचारी, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करके इस मानव-जन्म को सार्थक करना चाहता है, उसे अपना आचार-विचार ऐसा शुद्ध और सात्विक रखना चाहिए कि अनुचित रीति से वीर्य-नाश जैसा प्रसंग उसके सम्मुख कभी उपस्थित ही न हो । ऐसा ही व्यक्ति अपना तथा अपने देश और समाज का उत्थान कर सकता है और किसी उच्च लक्ष्य को पूरा करके लोक और परलोक में सद्गति का अधिकारी बन सकता है ।

संक्षेप में ब्रह्मचर्य रक्षा के सूत्र इस प्रकार हैं—

(१) लड़के-लड़कियों का पालन सीधे-साधे और प्राकृतिक रूप से यह पूरा विश्वास रख कर करना चाहिए कि वे पवित्र हैं और पवित्र रह सकते हैं ।

(२) अचार, चटनी या मिर्च-मसाले जैसे गर्म और उत्तेजक आहारों तथा मिठाई और तले-भुने हुए चिकने व भारी पदार्थों से सब किसी को परहेज करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) पति-पत्नी को अलग-अलग कमरों में रहना चाहिए और एकान्त से बचना चाहिए ।

(४) शरीर और मन दोनों को बराबर अच्छे कामों में लगाये रहना चाहिए ।

(५) जल्दी सोने और जल्दी उठने के नियम की सख्त पाबन्दी होनी चाहिए ।

(६) बुरे साहित्य से बचना चाहिए । बुरे विचारों की दवा भले विचार हैं ।

(७) विकारों को उत्तेजना देने वाले थियेटर-सिनेमा, नाटक-तमाशों से बचना चाहिए ।

(८) स्वप्नदोष से घबराने की जरूरत नहीं है । साधारण बलवान आदमी के लिए हर बार ठण्डे पानी से स्नान कर लेना ही इसका सबसे अच्छा इलाज़ है । यह कहना ग़लती है कि स्वप्नदोष से बचने के लिए कभी-कभी संभोग कर लेना चाहिए ।

(९) सबसे बड़ी बात तो यह है कि पति-पत्नी तक के बीच में ब्रह्मचर्य को कोई असम्भव या कठिन न मान लें । इसके विपरीत ब्रह्मचर्य को जीवन का स्वाभाविक और साधारण अभ्यास समझना होगा ।

(१०) प्रतिदिन सच्चे दिल से पवित्रता के लिए प्रार्थना करने से आदमी दिनों-दिन पवित्र होता है ।

इन्द्रिय-संयम की महिमा

जो नवयुवक विदेशी काम-शास्त्र की पुस्तकें पढ़कर या अनुभवहीन लोगों की दलीलें सुनकर स्वयं भी ब्रह्मचर्य को निरर्थक कहने लगते हैं वे अपने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर अपने साथियों की दशा देखें । उनमें से हजारों जवानी में ही शक्तिहीनता का अनुभव करके ताकत की दवाएँ या टॉनिक आदि ढूँढ़ने लगते हैं । हजारों प्रमेह के शिकार होकर पीले शरीर और निस्तेज चेहरे को लिए फिरते हैं और हजारों ऐसे भी हैं जो सुजाक और गर्मी जैसे भयंकर रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन को बर्बाद कर लेते हैं । यह हो सकता है कि इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों के लोग ठण्डी आव-हवा के कारण तथा माँस-मदिरा आदि उत्तेजक आहार की अधिकता से अधिक सम्भोग के दुष्परिणामों को इतना शीघ्र अनुभव न करते हों, पर भारत जैसे गर्म आव-हवा वाले तथा शाकाहारी देश के निवासी यदि उनकी नकल करेंगे तो उन्हें अपनी गलती का प्रतिफल तुरन्त ही सहन करना होगा ।

भारत के प्राचीन मनीषियों ने इस तथ्य को उसी समय भली प्रकार समझ लिया था और इसीलिए बालकों के लिए छोटी आयु से ही किसी सद्गुरु के निकट रहकर युवावस्था तक ब्रह्मचर्य-पालन का विधान बनाया था । उसी युग में वेदों ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था—

ब्रह्मचर्य तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।

अर्थात्—"ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य स्वास्थ्य और शक्ति ही प्राप्त नहीं करता वरन् वह मृत्यु को भी जीत सकता है ।" इसका यह आशय नहीं कि वह कभी मरेगा ही नहीं, पर वह अकाल-मृत्यु को हटाकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है और शक्ति, साहस, वीरता का ऐसा उदाहरण उपस्थित कर सकता है जिसे देखकर संसार चकित रह जाय । हनुमान, लक्ष्मण, भीष्म, शंकराचार्य आदि महापुरुष इसके उदाहरण हो चुके हैं । हम भी यदि शास्त्रीय विधान के अनुसार आचरण रखते हुए सच्चे अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन करें तो वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व के कार्यों का सम्पादन और संचालन करके दिखा सकते हैं ।

वर्तमान समय में भी ब्रह्मचर्य की महत्ता के कुछ उदाहरण मिलते रहते हैं । इस युग के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य माने जाने वाले और 'महामानव' की पदवी के सच्चे अधिकारी महात्मा गाँधी ने सपत्नीक होते हुए भी ३७ वर्ष की आयु में पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर लिया था और ४० वर्ष से अधिक समय तक उसका दृढ़तापूर्वक पालन किया । इस ब्रह्मचर्य से प्राप्त शक्ति का ही प्रताप था कि वे संसार में शक्तिशाली माने जाने वाले तथा सर्वसाधन सम्पन्न अंग्रेजी साम्राज्य के आत्मबल से मुकाबला करके भारत को स्वतन्त्र करा सके । इस ब्रह्मचर्य व्रत को उन्होंने किस प्रकार ग्रहण किया और कैसे प्रयत्नपूर्वक निवाहा इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं—

"खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०६ (३७ वर्ष की आयु) में मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया । व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ । मेरी शक्ति कम थी । विकारों को कैसे दबा सकूँगा । पत्नी के साथ रहते हुए विकारों से अलिप्त रहना भी अजीब बात मालम होती थी, फिर भी मैं देख रहा था कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मेरा स्पष्ट कर्तव्य है । मेरी नीयत साफ थी । यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मैं कूद पड़ा । अब बीस वर्ष बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्चर्य होता है । संयम करने का भाव तो सन् १९०१ से ही प्रबल था और उसका पालन भी कर रहा था परन्तु जो स्वतन्त्रता और आनन्द मैं अब पाने लगा वह मुझे याद नहीं कि पहले मिला हो । ब्रह्मचर्य के सोलहों आने पालन का अर्थ है—ब्रह्मदर्शन । यह ज्ञान मुझे शास्त्रों के द्वारा न हुआ था । यह अर्थ मेरे सामने धीरे-धीरे अनुभव सिद्ध होता था । इसके लिए मन, वचन, काया से समस्त इन्द्रियों का संयम रखना अनिवार्य है । इस ब्रह्मचर्य में त्याग की बड़ी आवश्यकता है । प्रयत्नशील ब्रह्मचारी नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा तो अपने हृदय के कोने-कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करने का प्रयत्न करेगा ।''

हिन्दू धर्म की अनुपम निधि

सन्त बिनोवा का जीवन भी इस दृष्टि से आदर्श है । वे छोटी अवस्था से ही बाल ब्रह्मचारी रहे और सदा पूर्ण संयम का जीवन बिताकर अपनी शक्ति देश और जनता की सेवा में लगाते रहे हैं । इसी महाव्रत का प्रभाव है कि सत्तर वर्ष की आयु में, जबकि हमारे अधिकांश देशवासी या तो मर जाते हैं या निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं, उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रा की और 'भूदान' जैसे अद्वितीय आन्दोलन को सफल बनाकर दिखा दिया । ब्रह्मचर्य की महत्ता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

''हिन्दू धर्म ने विशिष्ट आचार के लिए एक ऐसा शब्द बनाया है जो अन्य दूसरे धर्मों में नहीं दीख पड़ता । वह है—''ब्रह्मचर्य'' । ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था हिन्दू धर्म की विशेषता है । अंग्रेजी में ब्रह्मचर्य के लिए कोई शब्द नहीं है । लेकिन उस भाषा में शब्द नहीं है, तो इसका यह मतलब नहीं कि उन लोगों में कोई संयमी हुआ ही नहीं । ईसामसीह स्वयं ब्रह्मचारी थे । वैसे वहाँ भी अच्छे-अच्छे लोग संयमी जीवन बिताते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य-आश्रम की वह कल्पना उन लोगों में नहीं है, जो हिन्दु धर्म में पायी जाती है । ब्रह्मचर्याश्रम का अर्थ यह है कि मनुष्य-जीवन को आरम्भ से ही अच्छी खाद मिले । जैसे वृक्ष को, जब वह छोटा रहता है, तब खाद की अधिक आवश्यकता होती है, बड़ा हो जाने के बाद खाद देने से जितना लाभ है, उससे अधिक लाभ जब वह छोटा रहता है, तब देने से होता है । यही मनुष्य जीवन का हाल है । यह खाद अगर अन्त तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन बराबर नहीं मिले तो कम से कम बचपन में बहुत आवश्यक है । जैसे हम बच्चों को दूध देते हैं, उन्हें अन्त तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन बराबर न मिले, तो कम से कम बचपन में तो मिलना ही चाहिए । शरीर की तरह आत्मा और बुद्धि को भी जीवन के आरम्भ में अच्छी खुराक मिलनी चाहिए, इसीलिए ब्रह्मचर्य-आश्रम की योजना बनाई गई है ।

''विषय-वासना मत रखो''—यह ब्रह्मचर्य का 'निगेटिव' या अभावात्मक रूप हुआ । सब इन्द्रियों की शक्ति आत्मा की सेवा में खर्च करो—यह उसका 'पोजीटिव' या भावात्मक रूप है । 'ब्रह्म' यानी कोई बृहद् कल्पना । अगर में चाहता हूँ कि इस छोटी-सी देह के सहारे दुनियाँ की सेवा करूँ, उसके ही काम में अपनी सब शक्ति खर्च करूँ, तो यह एक विशाल कल्पना हुई । विशाल कल्पना रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन हो जाता है । मैंने अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य रखा । उसके बाद देश की सेवा करता रहा । वहाँ भी इन्द्रिय-संयम की आवश्यकता थी । लेकिन बचपन में इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास हो चुका था, इसलिए बाद में वह कठिन मालूम नहीं हुआ । मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज है । हाँ, विशाल कल्पना मन में रखोगे, तो आसान हो जायेगा । ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी जीवन का आचरण करना, इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ ।''

ब्रह्मचर्य की विश्वव्यापी महिमा

यद्यपि सृष्टि-कर्म को स्थिर रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने गृहस्थ-आश्रम और दाम्पत्य जीवन की आवश्यकता भी स्वीकार की है पर उसमें भी संयम का पालन अनिवार्य माना है । धर्म-कर्तव्य के रूप में सन्तानोत्पत्ति और बात है और कामुकता के फेर में पड़कर अन्धाधुन्ध वीर्य-नाश करना बिल्कुल भिन्न है । इस प्रकार के आचरण को संसार के सब विद्वान् और विचारकों ने गर्हित तथा मानव-जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला माना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य की महिमा का गान करते हुए शास्त्र कहता है—

न तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्य तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरिता-भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥

अर्थात्—जननेन्द्रिय-संयम द्वारा मनुष्य देवताओं के गुण को प्राप्त हो जाता है, उसकी दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास होता है ।

"ब्रह्मचर्य" का अर्थ है-ब्रह्म (अर्थात् परमात्म तत्व) में विचरण करना अर्थात् अपने मन संयम, निग्रह, शुद्धाचरण द्वारा उसकी ओर मन, वचन, कर्म द्वारा अग्रसर होना । आज हम जीवन की इस उच्च भूमिका में तो नहीं उठ पाते इसलिए "ब्रह्मचर्य" शब्द का अर्थ है—'वीर्य रक्षा' जननेन्द्रिय का संयम, आत्मिक बल की वृद्धि । वीर्य की रक्षा करते हुए वेदाध्ययनपूर्वक ईश्वर-चिन्तन करने का नाम ब्रह्मचर्य है । दूसरे शब्दों में जिसका वीर्य ऊर्ध्वरिता है—वह ब्रह्मचारी है क्योंकि सब इन्द्रियों से अधिक चंचल जननेन्द्रिय का संयम सबसे अधिक कठिन है । ब्रह्मचर्य वह तप है, जिसके द्वारा ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है । यह एक प्रकार का व्रत है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा कर उच्च ईश्वरीय जीवन की साधना और तदनुसार बुद्धि का विकास करना पड़ता है । शुद्ध आचरण द्वारा वीर्य की मन, वचन कर्म द्वारा रक्षा करते हुए शास्त्रों में वर्णित सात्विक जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य है ।

भगवान शंकर कहते हैं—"ब्रह्मचर्य" अर्थात् वीर्य धारण करना, उसकी रक्षा करना ही उत्कृष्ट तप है । इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी कोई हो नहीं सकती । अखण्ड वीर्य को धारण करने वाला पुरुष इस लोक में प्रत्यक्ष देवता ही है । ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है, इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं, स्मरण शक्ति तीव्र होती है, मनन शक्ति बढ़ जाती है, चित्त में एकाग्रता आती है, आत्मिक बल बढ़ता है, आत्म निर्भरता, साहस, निर्भीकता आदि देव दुर्लभ गुण स्वतः प्रसूत हो जाते हैं । विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य पालन से शरीर, मन और आत्मा दृढ़ होती है । ऋषियों के अनुसार सांसारिक और परमार्थिक उन्नति का मूल ब्रह्मचर्य ही है । ब्रह्मचर्य पालन से सुख, आरोग्य और तेज बढ़ता है, बल और वीर्य में वृद्धि होती है, स्वास्थ्य और दीर्घायु मिलती है, हमारा सुख, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य सब ब्रह्मचर्य पर ही आश्रित हैं ।

शास्त्र कहता है—"जिस प्रकार समुद्र को पार करने का नौका उत्तम उपाय है, उसी प्रकार इस संसार से पार होने का उत्कृष्ट साधन ब्रह्मचर्य है । जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या करते हैं और उत्तम विद्या एवं ज्ञान से अपने मन को पवित्र बना लेते हैं, वह संसार के समस्त दुःखों, कठिनाइयों को पार कर जाते हैं । महान परिश्रमपूर्वक वीर्य का साधन करने वाले ब्रह्मचारी के लिए इस पृथ्वी पर भला किस कार्य में सफलता नहीं मिलती ? ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य मेरे (ईश्वर के) तुल्य हो जाता है । 'ब्रह्मचर्य परंतपः' अर्थात् ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तपश्चर्या है । एक ओर चारों वेदों का फल दूसरी ओर ब्रह्मचर्य का फल विशेष है ।"

स्वामी सत्येदव जी ने लिखा है—'वीर्य' शब्द में जादू भरा है । इसके उच्चारण करने से श्रेष्ठ और सात्विक भावों का संचार होने लगता है । ईश्वर वीर्यवान है । रामचन्द्रजी बड़े यशस्वी वीर्यवान राजा थे, भीष्म ने आयु भर वीर्य का संचय कर ब्रह्मचर्य धारण किया । इसी के प्रताप से भीष्म में इच्छा मृत्यु की शक्ति थी । वीर्य रक्षा ही संजीवनी है । शिवजी और शुक्राचार्य के ज्वलंत उदाहरण हमें उपलब्ध हैं । श्री हनुमान जैसे ब्रह्मचारी का बल, स्फूर्ति और पुरुषार्थ आज भी विस्मय का प्रश्न बना है । संसार में वीर्यवती जाति ही अपना साम्राज्य स्थापित कर सकी है ।

संसार में जो कुछ भी निरोग, सुन्दर, स्वरूपवान, कान्तिमय, मनोहर है, जो कुछ वीरता, ओज, पराक्रम, पौरुष, तेज, विशेषणों से प्रकट होता है तथा धैर्य, निर्भीकता, बुद्धिमत्ता, सौम्यता, मनुष्यत्व आदि गुणों से जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे सब वीर्य शब्द के अन्तर्गत हैं । जैसे सूर्य संसार को प्रकाश देता है, वैसे ही वीर्य मनुष्य, पशु-पक्षी और वृक्षों में अपना प्रभाव दिखाता है । जिस प्रकार सूर्य रश्मियों से रंग-बिरंगे फूल विकसित होकर प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते हैं, इसी प्रकार वह वीर्य भी अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में अपनी प्रभा की छटा दिखाता है ।

संसार वीर्यवान के लिए है । वीर्यवती जातियों ने संसार में राज्य किया और वीर्यवान हीन होने पर उनका नामोनिशान मिट गया । जिन मुसलमान वीरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने अपनी चमकती हुई तलवार से यूरोप, एशिया में बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापिते किए थे, वे व्यभिचार आदि दोषों में अपना सर्वस्व खो बैठे, जिन महाराष्ट्र शूरवीरों ने मुसलमानी राज्य को छिन्न-भिन्न कर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित किया था, वे ही विषय-भोग, परस्पर की फूट तथा कलह के कारण अपनी सब आशाओं पर पानी फेर बैठे । यूरोप की बड़ी-बड़ी जातियों का इतिहास भी इसी वीर्य की महिमा को बतलाता है । यूरोप की जिस स्पेन जाति ने नई दुनिया में अपनी विजय पताका उड़ाई थी, वही स्पेन समृद्धशाली होने पर विषय-भोग का शिकार बन गया और अपने उपनिवेशों को वीर्य हीनता के कारण खो बैठा ।

नित्य प्रति के जीवन में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारण का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है। वीर्य हीन डरपोक, कायर, दीन-हीन, रोगी और दुर्बल होता है । जिस व्यक्ति के शरीर में वीर्य नहीं है, वह जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि वीर्य की एक बूँद नष्ट करना मृत्यु का एक बूँद धारण करना जीवन है । वीर्यवान पुरुषार्थी होता है । साहस और हिम्मत से बोल सकता है, कठिनाई का मुकाबला कर सकता है, वह उत्साही, सजीव, शक्तिशाली और दृढ़ निश्चयी होता है । उसे रोग नहीं सताते, वासनाएँ चंचल नहीं बनातीं, दुर्बलताएँ विवश नहीं करतीं । वह प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त करता है और दया, क्षमा, शान्ति, परोपकार, भक्ति, प्रेम, वीरता, स्वतन्त्रता, सत्य द्वारा पुण्यात्मा बनता है । धन्य है ऐसा ब्रह्मचारी ।

वीर्य का प्रचण्ड प्रताप

मनुष्य के रक्त में जो जीवाणु हैं, उनका प्रमुख कारण वीर्य नामक तत्व है । रक्त में जो लाली है, जो चमक और आभा है, त्वचा में जो दमक है, उसका प्रधान कारण वीर्य तत्व ही है । वैद्यक शास्त्र में वीर्य को मनुष्य का सार तत्व माना है । हमारे भोजन से रक्त और रक्त से एक नियत मात्रा में वीर्य की उत्पत्ति होती है । आयुर्वेद का मत है—भोजन के पचने से रस, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य उत्पन्न होता है । रस से लेकर मज्जा तक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है, तत्पश्चात तीस दिन-रात और नौ घड़ी में रस से वीर्य बनता है ।

साधारणतः चालीस सेर (१ सेर = ६३३ ग्राम) खुराक से एक सेर रक्त बनता है और एक सेर खून से दो तोला वीर्य बनता है । एक मनुष्य मास में एक मन से अधिक भोजन नहीं खा सकता । इस प्रकार दो तोला (१ तोला = ११.६६४ ग्राम) वीर्य एक मास की कमाई है, जो मूर्ख और नासमझ लोग एक ही बार में नष्ट कर डालते हैं ।

विशेषज्ञों के अनुसार ४० ग्राम आहार से एक बूँद रक्त और ४० बूँद रक्त से १ बूँद वीर्य तैयार होता है । रासायनिक रूप से वीर्य में खट तथा फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है और ये दोनों जीवन-तत्व शारीरिक पोषण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । प्रारम्भिक १५ वर्ष तक प्रकृति अपने नियन्त्रण से वीर्य एकत्रित करती है । किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते वीर्य पकने लगता है और पुरुष में बाह्य तथा आन्तरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं । अण्डकोषों से बहिःस्राव भी प्रारम्भ हो जाता है । अण्डकोषों के अन्तःस्राव से पुरुष में पुरुषत्व प्रकट होता है । ब्रह्मचर्य का अभिप्राय, शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से इन जनन ग्रन्थियों को स्वस्थ रखना है । जनन ग्रन्थियों में जीवन बढ़ता रहता है । इसके संयम से आयु और स्वास्थ्य दोनों को लाभ होता है । यदि इन ग्रन्थियों का अन्तःस्राव होता रहे और शरीर में खपता रहे तो शरीर के अंगों का विकास होता है ।

वीर्य को नष्ट करने वाला नरकगामी होता है, जीवन भर रोगी, अभाग्यशाली और दुःखी रहता है । वीर्य अत्यन्त अनमोल वस्तु है । इसी के संचय से मनुष्य देवता बनता है । वीर्य के अभाव से मनुष्य की प्रत्येक प्रकार की उन्नति रुक जाती है । वीर्य चारों पुरुषार्थों का मूल है, मुक्ति देने वाला है । प्रकृति चाहती है कि वीर्य के द्वारा मनुष्य को दृढ़, मजबूत और पुरुषार्थी बनाये, मेधाशक्ति की अभिवृद्धि करे, दीर्घ जीवन, उत्साह, स्वास्थ्य प्रदान करे, आत्मा को बलवान बनावे । २५ वर्ष की आयु तक वीर्य कच्चा रहता है, किन्तु इसके अनन्तर ज्यों-ज्यों वीर्य पकने लगता है, मनुष्य अपने आपको जीवन शक्ति से पूर्ण समझता है । जो व्यक्ति मन, वचन, काया से दृढ़तापूर्वक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य पालन करता है, उसी का वीर्य परिपक्व होता है । अंग-अंग सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठते हैं, मुख तथा कपोलों पर एक अभिनव आभा दृष्टिगोचर होने लगती है, वीर्य की परिपक्वता से पूर्व, उसका अपव्यय करने से युवक आजीवन अकर्मण्य, पौरुषहीन और हीनत्व की भावना ग्रन्थि से पूर्ण बनता है ।

वीर्य एक ऐसी पूँजी है, जिसे बर्बाद कर आप बाजार में खरीद नहीं सकते, जिसके अपव्यय से आप ऐसे गरीब बनते हैं कि प्रकृति तक आपके ऊपर दया नहीं करती, आरोग्य लुट जाता है, आयु क्षीण हो जाती है । आपको एक नियमित प्रमाण में ही वीर्य की पूँजी मिलती है । यह भी आपके अपने संयम, राचन, भोजन, व्यायाम का परिणाम होता है, इसके लेए आपको स्वयं मेहनत करनी होती है । कोई आपको यह पूँजी उधार नहीं दे सकता, दया करके कोई यह अमूल्य पदार्थ आपको दान नहीं दे सकता । इसकी भिक्षा नहीं माँगी जा सकती । अतः सावधान ! अपनी इस संचित पूँजी को सम्भाल कर खूब सावधानी से व्यय कीजिए, वीर्य नाश कर मृत्यु की परेशानी की ओर, रोग, शोक की ओर न जाइये । वीर्य रक्षा द्वारा धन, मान, पद, प्रतिष्ठा गृहस्थ, बुद्धि वैभव, दीर्घायु, सम्पन्नता का आनन्द प्राप्त कीजिए । शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक जिम्मेदारियाँ उठाने के लिए ब्रह्मचारी बनिये ।

हिन्दू धर्म के आदिग्रन्थ वेदभगवान का कथन है—"वीर्य रक्षा करने से अकाल मृत्यु नहीं होती, जो मनुष्य शरीर में अनुपम वीर्य का संचय करता है, वह दीर्घजीवी होता है ।"

आयुर्वेद के आदि ग्रन्थ 'चरक-संहिता' में ब्रह्मचर्य को सांसारिक सुख का साधन ही नहीं मोक्ष-दाता भी बतलाया है—

सतामुपासनं सभ्यसतां परिवर्जनम् ।
ब्रह्मचर्योपवासश्च नियमाश्च पृथग्विधा : ॥

—*च. भा. १४३*

"सज्जनों की सेवा, दुर्जनों का त्याग, ब्रह्मचर्य उपवास, धर्मशास्त्र के नियमों का ज्ञान और अभ्यास आत्म-कल्याण का मार्ग है ।"

अब से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान बुद्ध ने घोषित किया था—"भोग और रोग साथी हैं और ब्रह्मचर्य आरोग्य का मूल है ।"

श्री गुरु गोविन्दसिंह ने कहा है—"इन्द्रिय-संयम करो, ब्रह्मचर्य पालो, इससे तुम बलवान और वीर्यवान बनोगे ।"

आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट का कथन है—"संसार में जितना सुख है, वह आयु के अधीन और आयु ब्रह्मचर्य के अधीन है ।"

'हठयोग प्रदीपिका' में लिखा है—"मनुष्य जब ऊर्ध्वरिता (ब्रह्मचारी) रहता है, तब तक अकाल-मृत्यु का भय नहीं होता ।"

'छान्दोग्योपनिषद्' में लिखा है—"एक तरफ चारों वेदों का उपदेश और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य-यदि दोनों को तौला जाय तो ब्रह्मचर्य का पलड़ा वेदों के उपदेश के पलड़े के बराबर रहता है ।"

'योगतत्वोपनिषद्' में कहा है —"जब तक वीर्य स्थिर रहता है, तब तक मनुष्य को काल का भी भय नहीं रहता ।"

भीष्म पितामह का कथन है—"तीनों लोक के साम्राज्य का त्याग करना, स्वर्ग का अधिकार छोड़ देना, इससे भी उत्तम कोई वस्तु हो तो उसको भी छोड़ देना, परन्तु ब्रह्मचर्य को भंग न करना ।"

भगवान धन्वन्तरि ने उपदेश दिया था—"जो शान्ति-कांति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता हो, उसे संसार के सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।"

इस प्रकार वेदों से लेकर मध्य काल तक के समस्त धर्म-ग्रन्थों ने ब्रह्मचर्य से होने वाले अपार लोभों और उसे नष्ट करने दुष्परिणामों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और लोगों को उपदेश दिया है कि यदि वे अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करें । आयुर्वेद शास्त्र के महान आचार्यों ने भी सब श्रेणियों के मनुष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे अपने स्वास्थ्य और आरोग्य को स्थिर रखते हुए सुखी जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं तो प्रयत्नपूर्वक वीर्यरक्षा करें । समस्त शास्त्रों के साररूप 'भगवत् गीता' ग्रन्थ में तो अनुचित विषय-वासना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नाश का मूल कारण बताया है । दूसरे अध्याय में भगवान कृष्ण कहते हैं—

ध्यायतो विषयानुप्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति ॥

अर्थात्—"जो मनुष्य मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है उसकी उनमें आसक्ति हो जाती है । आसक्ति से उन विषयों की पूर्ति की कामना होने लगती है और उस कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध होता है । क्रोध से मूढ़ भाव उत्पन्न होता है, मूढ़ता से स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है । इससे बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश होता है और वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है ।"

पाँचवें अध्याय में इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनयः एव ते ।
आद्यन्तवन्त : कौन्तेय न तेषु रमते बुध : ॥

"यह जो इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप प्रतीत होते हैं, तो भी वास्तव में वे दुःख के ही हेतु हैं और नाशवान भी हैं, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति उनमें आसक्त और लिप्त नहीं होते ।"

आगे चलकर गीताकार ने ब्रह्मचर्य को बहुत बड़ा व्रत और तप बतलाया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

—भगवत् गीता १७—१४

"देवता, द्विज, गुरु, ज्ञानीजनों का सत्कार, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शारीरिक तप कहा जाता है ।"

हमारे धर्म-शास्त्रों में शरीर को भगवान का मन्दिर माना गया है, जिसको पवित्र और शुद्ध रखना हमारा परम कर्तव्य है । इसका मुख्य साधन ब्रह्मचर्य का पालन ही है ।

आधुनिक विद्वानों द्वारा समर्थन

ब्रह्मचर्य की रक्षा और विकास का नियम ऐसा शाश्वत है कि प्राचीन ही नहीं अर्वाचीन मनीषियों ने भी उसका पूर्णतः समर्थन किया है और उसके लाभों को बतलाकर ठीक ढंग से पालन करने पर जोर दिया है । आत्मलीन स्वामी रामतीर्थ का उपदेश इस सम्बन्ध में बड़ा प्रभावशाली है—

"जैसे दीपक का तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में परिणत होता है, वैसे ही ब्रह्मचारी के अन्दर का वीर्य सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढ़ता हुआ ज्ञान-दीप्ति में परिणत हो जाता है । दुनिया के विचारों को बदलने वाला समर्थ विद्वान् हर्बर्ट स्पेन्सर और स्वीडन वर्ग अखण्ड ब्रह्मचारी थे । दुनिया का सबसे बड़ा तत्वज्ञानी 'केण्ट' भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से दीर्घायु हुआ था ।"

महायोगी अरविन्द घोष ने कहा है—"रेतस (वीर्य) का जो तत्व रति करने के काम में लगता है, जितेन्द्रिय होने से वह तत्व प्राण, मन और शरीर की शक्तियों को पोषण देने वाले एक महत्त्व के दूसरे तत्व में बदल जाता है । इस तरह आर्यों का रेतस का ओजस में रूपान्तर होने के फलस्वरूप उसकी ऊर्ध्वगति करने का आदर्श सर्वोच्च है ।"

सुप्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक साधु टी. एल. वास्वानी लिखते हैं—"ब्रह्मचर्य का मार्ग स्वर्ग का मार्ग है । स्वर्ग का राज्य ब्रह्मचारियों के लिए है । उसके द्वार पर प्रदीप्त अक्षरों में लिखा है—जो शक्तिहीन हों, भीतर न आयें ।"

स्वामी विद्यानन्द का कथन है—"ब्रह्मचर्य से परोपकार की वृत्ति जागृत होती है और परोपकार की वृत्ति के बिना किसी को मोक्ष मिलना सम्भव नहीं है ।"

स्वामी शिवानन्द की सम्मति है—"अगर आप ब्रह्मचर्य पालेंगे तो आप में अतुल बल आयेगा ।"

श्री किशोरलाल मशरुवाला ने लिखा है—"ब्रह्मचर्य का अर्थ है ईश्वर के मार्ग पर चर्या (चलना) । सब शक्तियों का ईश्वर के मार्ग में उपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है ।"

स्वामी अभयानन्द ने कहा था—"अगर आपको ब्रह्मचर्य रूपी शक्ति प्राप्त हो जाय तो ऐसी कोई वस्तु नहीं है तो आपके हाथ में नहीं आ सकती ।"

प्रो. कृष्णराव ने कहा है—"अनित्य और अद्भुत पराक्रम करने के लिए, तमाम अनुपम मानसिक तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक शक्तियाँ, प्रशंसनीय सद्गुण और दीर्घायु केवल ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त कर सकते हैं ।"

जैसा बिनोवा भावे ने कहा है, यद्यपि विदेशों में ब्रह्मचर्य को धार्मिक रूप नहीं दिया गया है, तो भी वहाँ संयमी जीवन व्यतीत करने वालों का सर्वथा अभाव नहीं है । वहाँ के विद्वानों ने भी शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसकी बड़ी प्रशंसा की है । प्रसिद्ध जीवशास्त्री डॉ. क्राउन एम. डी. ने लिखा है—

"ब्रह्मचारी यह नहीं जानता कि व्याधिग्रस्त दिन कैसा होता है । उनकी पाचन शक्ति सदा नियमित रहती है । उसको वृद्धावस्था में भी बाल्यावस्था जैसा ही आनन्द आता है ।"

डॉ. लेटशन एम. डी. ने कहा है—"प्रजोत्पादक तत्व (वीर्य) में जीवनी शक्ति का आश्चर्यकारक समूह रहता है । उसकी रक्षा करते रहने से शरीर क्षीण नहीं होता । जब इस तथ्य का शरीर में शोषण होता है, तब उसकी जीवनी-शक्ति में वृद्धि होकर स्वास्थ्य उन्नत होता है, आँखें तेजस्वी होती हैं, चाल स्थिति स्थापक बनती है, शरीर सदा जवान दिखाई देता है ।"

अमेरिका के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. बेनीडिक्ट लुस्टा का कथन है—"जितने अंशों तक जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की विशेष रूप से रक्षा करता है, उतने अंश तक वह मनुष्य विशेष महत्त्व का कार्य कर सकता है ।"

प्रो. रौवसन ने सम्मति दी है कि—"ब्रह्मचारी की बुद्धि कुशाग्र और विशद होती है, उसकी वाणी मोहक होती है, उसकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है, उसका स्वभाव आनन्दी और उत्साही होता है ।"

डॉ. गोल एम. डी. का मत है—"ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक शक्ति मिलती है । शरीर में वीर्य के संचय से और व्याप्त हो जाने से दैवी-शक्ति में अद्भुत वृद्धि होती है ।"

ब्रह्मचर्य के विषय में भ्रान्तियाँ : उसकी उपेक्षा

महापुरुषों और विद्वानों के उपर्युक्त उद्गारों को पढ़कर स्वभावतः यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि जब ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी बड़ी-चढ़ी है तो आजकल लोग उसके प्रति इतनी उपेक्षा की भावना क्यों रखते हैं ? युवकों की बात छोड़ दीजिए, आजकल दस-बारह साल के बालकों में दूषित भावनाएँ देखी जाती हैं । वे गन्दी-अश्लील बातें सरेआम करते हैं और उनमें से कितने ही परोक्ष में ऐसी हरकतें भी करते हैं, पर उनके माता-पिता और समाज के अगुआ, कोई भी इस समस्या पर विचार नहीं करते और न उन बालकों को कुटेबों से बचाकर सच्चरित्रता की शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझते हैं । अधिकांश माता-पिता तो अपने लड़के को निर्दोष और भोला-भाला समझकर इस बात की आशंका ही नहीं करते कि जल्दी या देर में वह इस तरह की बुरी आदतों का शिकार हो जायेगा । इसलिए वे उसे इस सम्बन्ध में कुछ बतलाना या दुश्चरित्रता की हानियों से सावधान करना अनावश्यक समझते हैं ।

बहुत से अभिभावक ऐसा भी सोचते हैं कि बालकों से इस विषय की चर्चा करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से वे समय से पूर्व ही इन बातों को जान जायेंगे और फिर कौतूहलवश लुक-छिपकर विपरीत आचरण करने लगेंगे । परिणाम यह होता है कि वे तो संकोच या असावधानीवश इस बात को टालते रहते हैं और बालक अपने किसी नीच प्रकृति के संगी-साथी या नौकर आदि से इस प्रकार की वीर्य-हानि करने वाली शिक्षा प्राप्त कर लेता है और शारीरिक पतन के मार्ग पर चलने लगता है । इसलिए आप इस भ्रम को सर्वथा त्याग दीजिए कि कोई अन्य व्यक्ति—शिक्षक, गुरु, उपदेशक आदि आपके बच्चे को इस विषय में उचित मार्ग-दर्शन करा देगा और वह हानिकारक दुष्कर्मों से बचा रहेगा ।

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से अधिकांश बालक कुछ समझदार होते ही मानसिक शिक्षण के लिए कुशल गुरुओं के पास पढ़ने को भेज दिए जाते थे । वे उनको साधारण पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ चरित्र सम्बन्धी शिक्षा भी देते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि लड़का वीर्य-रक्षा के नियमों का पालन करते हुए सदाचार के पथ पर चले । उसका शारीरिक और मानसिक विकास उचित रूप में हो सके और वह भावी-जीवन में सुखी तथा सफल बन सके । यह प्रणाली जब तक उपर्युक्त रूप से प्रचलित रही तब तक भारतीय नर-नारी ज्ञान, चरित्र, बुद्धि, पराक्रम, समृद्धि सभी क्षेत्रों में अग्रगामी रहे । उपर्युक्त समय तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रताप से उनके शरीर और मन में ऐसी सुदृढ़ता और शक्ति भर जाती थी कि वे अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, नागरिक कर्तव्यों का प्रशंसनीय रूप में पालन कर सकते थे और देश तथा राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा रखने में सहायक होते थे ।

काम का दमन—जिन्हें वीर्य रक्षा करनी है, उन्हें काम-वासना से घोर संघर्ष करना होगा । काम का उदय न होने दीजिए क्योंकि एक बार उत्तेजना होने से यह वासना इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि मनुष्य का सर्वनाश कर सकती है । लोक लाज, प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य, वीर्य सबका पतन हो जाता है ।

अनेक बार देखा जाता है कि प्रत्यक्ष मैथुन से इतनी हानि नहीं होती जितनी कि मानसिक मैथुन से होती है । मानसिक व्यभिचार के कारण सूखी खाज, पकने वाली खुजली, दाद, फुन्सियाँ, मुँहासे, झाई, बगलगन्ध, दुर्गन्ध युक्त पसीना तथा अन्य गुप्त रोग फैलते हैं । मानसिक व्यभिचार से दूर रहने के लिए साधक को अत्यन्त सतर्कतापूर्वक इन आठ प्रकार के मैथुनों से दूर रहना चाहिए—

(१) **स्मरण**—नारी का पढ़ा हुआ वर्णन, देखे हुए चित्र की स्मृति, सुने हुए या सिनेमा में देखी हुई नर्तकियों, अभिनेत्रियों का ध्यान चिन्तन या स्मरण । सुन्दर स्त्रियों के स्मरण से अनावश्यक उत्तेजना फैलती है, कामुकता के भाव उदय होते हैं । शरीर की गर्मी बढ़ जाती है और वीर्य (जीवन शक्ति) का नाश हो जाता है ।

(२) **कीर्तन**—स्त्रियों के रूप, गुण और अंगों की चर्चा या वर्णन करना, गन्दे गीत, सिनेमा के भद्दे गीत, शृंगारिक कविता पाठ, कजली, होली के गीत, भद्दी बातें बकना, अपशब्दों का उच्चारण हमेशा के लिए त्याग दीजिए ।

(३) **केलि**—स्त्रियों के साथ खेलना, अधिक रहना, अनावश्यक कार्य निकाल कर उनके पास रहना, उनके सम्पर्क में रहकर गेंद, ताश, शतरंज, फाग खेलना, मनोविनोद करना, स्त्रियों की संगति में आनन्द लेना कामोत्तेजना बढ़ाने वाले हैं । इससे अनजाने में गुप्त मन कामुक हो जाता है और स्वप्नदोष प्रारम्भ होता है ।

(४) **प्रेक्षण**—किसी स्त्री की ओर पापपूर्ण अथवा चोर दृष्टि से देखना । यह इस बात को स्पष्ट करता है कि मन में काम-वासना का प्रचण्ड ताण्डव मचा है । मन वासना की पूर्ति चाहता है । नीचतापूर्ण संकेत, औरतों को छिप-छिपकर देखना, मोहित हो जाना, कामुक मन का प्रत्यक्ष लक्षण है । गुप्त मन की वासना अनेक मानसिक रोगों, भावना ग्रन्थियों, पागलपन, अनिद्रा, बेढंगे व्यवहारों में प्रकट होती है ।

(५) **गुप्त भाषण**—स्त्रियों के पास बैठकर गुप्त भाषण करना, औरतों में पुनः आना-जाना और उनके साथ एकान्त में बैठने की इच्छा, बातचीत, औरतों के सौन्दर्य की चर्चा, सान्निध्य की भावना ब्रह्मचर्य नाश में समर्थ हैं ।

(६) **संकल्प**—शृंगार रस, पूर्ण वाहियात् गन्दे उपन्यास, कहानियाँ पढ़ना, वेश्याओं, अभिनेत्रियों के चित्र पास रखना, गन्दी कविताओं का उच्चारण अथवा नाटक, सिनेमा में भद्दे कामोत्तेजक दृश्य देखकर उन्हीं को प्राप्त करने का संकल्प या इरादा करना पतन का खुला द्वार है ।

(७) **अध्यवसाय**—किसी अप्राप्य या देखी-सुनी स्त्री की प्राप्ति के लिए पापपूर्ण कोशिश, लोकलाज की परवाह न कर काम तृप्ति के प्रयत्न । वेश्यागमन या गन्दी औरतों को पाने की इच्छा ।

(८) **प्रत्यक्ष सम्भोग**—अनुचित तरीके से व्यभिचार । व्यभिचार चोरी, भय, लज्जा, झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है, उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने के प्रपंच मन में उठा करते हैं । ये पाप वृत्तियाँ धीरे-धीरे मन में गहरी उतर जाती हैं और अप्रत्यक्ष मन में अड्डा जमा लेती हैं । वहीं से ये पाप वासनाएँ अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण-विकर्षण का दौर चलाती हैं । जीवन धूर्तता, मायाचार और छल से भर जाता है । व्यभिचारी व्यक्तियों में चिड़चिड़ापन, झुँझलाहट, घबराहट, आवेश, अतृप्ति छा जाती है । अमृत संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है । मानसिक उद्वेग में शरीर दिन-दिन घुलता जाता है । असंयम के कारण अधिक वीर्यपात होता है । इस प्राण तत्व के अपव्यय के कारण अनेक नवयुवक पाप के शिकार होते हैं । व्यभिचार से मनुष्य जाति की सामूहिक हानि है । अतएव यह प्रत्येक दृष्टि से त्याज्य है, अधर्म है । ब्रह्मचर्य को मानसिक व्यभिचार से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊपर जिन आठ प्रकार के मैथुनों का उल्लेख किया गया है, ठीक उनके विपरीत कार्य करने चाहिए । अपने कर्म में बड़े सावधान रहिये । सावधान ! यदि इनमें से कोई भी बात आप छिपे-छिपे करते रहे तो नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे । स्वास्थ्य, आयु और जीवन शक्ति सभी का नाश होगा । काम का उद्भव ही होने न दीजिए । कामान्ध पुरुष को स्त्री का सहवास-सम्पर्क बड़ा भला मालूम होता है, बेचारा मोहवश होकर स्त्री संग करता है और फिर वीर्य नाश कर रोगी बनता है । विषयों से कभी मन तृप्त न होगा, स्वप्नदोष और बढ़ेगा और अकाल से ही जीवन दीप बुझ जायेगा ।

सच्चा कल्याण इसी में है कि—

यच्च कामसुखे लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हत : षोडशी कलाम् ॥

अर्थात् निष्कामता में, विषयों के वैराग्य में जो सुख भरा हुआ है, उसका सोलहवाँ हिस्सा भी सुख संसार के व स्वर्ग के समस्त विषयों में तथा दिव्य ऐश्वर्यादि में नहीं है । अतः इस महा पापात्मा काम रिपु को शत्रु मानकर तुरन्त मार डालो, नहीं तो यह दुष्ट तुम्हें भक्षण कर जायेगा ।

काम शमन के उपाय—यदि काम रूपी शत्रु आपको विचलित करे तो तुरन्त ही उसे मार डालिए । कामोत्तेजना प्रारम्भ न होने दीजिए । मन में यदि वासना का तनिक भी संचार हो तो यह समझ कर न रह जाइये कि कोई हर्ज नहीं, हम कोई गंदा काम थोड़ा ही करते हैं । सोचने-विचारने, कल्पना करने में क्या हानि है ? नहीं, आपको मन से काम-वासना के सब भाव, कल्पना, इच्छा एकदम निकालनी होगी, मन को विषयों की ओर से मोड़ना होगा, उसे सात्विक विषयों में एकाग्र करना होगा तभी आप रिपु से बच सकेंगे । यदि प्रयत्न करने पर भी गुप्तेन्द्रियों में उत्तेजना हो तो काम शमन के लिए आप निम्न कार्य कीजिए—

(१) आप तुरन्त अपने वातावरण को परिवर्तित कर दीजिए । घर से बाहर निकल आइये, बाजार में घूम लीजिए, सरिता, उद्यान, जंगल, पुस्तकालय, मंदिर इत्यादि में चले जाइये । इष्टमित्र के या किसी महापुरुष के गृह पर चले जाइये ।

(२) कुछ थोड़ा-सा व्यायाम कर लीजिए । दौड़िये या कोई खेल खेलने निकल जाइये ।

(३) कुछ सात्विक ग्रन्थ, कोई मासिक पत्र, भजन, उपदेश पढ़िये । मन को वैराग्य, सदाचार, भक्तिपूर्ण उपदेशों में लगाइये ।

(४) कामोत्तेजना से शरीर में गर्मी बढ़ जाती है, श्वास गर्म आने लगती है, त्वचा का तापमान बढ़ जाता है, रक्त का वेग बढ़ जाता है । इस गर्मी के दाह में कुछ धातुएँ पिघल कर मूत्र के साथ स्रावित होने लगती हैं । अतः थोड़ा-सा ठण्डा जल पी लीजिए । स्नान कीजिए या गुप्तेन्द्रिय को धो डालिए ।

(५) यदि आप कोई उत्तेजक उपन्यास, कहानी या नाटक पढ़ रहे हैं तो उसे त्याग दीजिए । उसके स्थान पर कोई सदाचार का ग्रन्थ पढ़िये ।

(६) अकेले मत रहिये । माता-पिता, भाई इत्यादि के पास चले जाइये और कुछ काम करने लगिये । खाली मन शैतान का घर है । उससे काम लीजिए ।

(७) मन में वैराग्य की भावनाएँ लाइये । किसी मातृस्नेही का स्मरण कीजिए । किसी लाश का मानसिक चित्र बनाइये । वैराग्य की भावनाएँ काम शमन कर सकेंगी ।

(८) **पवित्र मातृभाव की दृष्टि**—वीर्य रक्षा के लिए आप स्त्रियों की ओर से अपना दृष्टिकोण बदल दीजिए । कामोद्रेक तब होता है, जब आप इन्हें पत्नी रूप में देखते हैं । आप उन्हें केवल माँ या बहिन के रूप में देखा कीजिए । 'माँ' शब्द कितना पवित्र है । माँ के सन्मुख आते ही पाप वासनाएँ दग्ध हो जाती हैं । प्रत्येक स्त्री में ईश्वर की प्रतिमा देखिये । जब कभी किसी स्त्री के प्रति वासना पैदा हो, तुरन्त अपनी माँ या ईश्वर की प्रतिमा उसमें देखिये । आपका मन लज्जा से भर जायेगा और तुरन्त उस नाशकारी विचार को त्याग देंगे । अपनी करनी पर तुम्हें बेहद शर्म आयेगी ।

यदि आप गृहस्थ हैं तो स्मरण कीजिए कि केवल एक ही स्त्री आपकी पत्नी हो सकेगी । अनेक और व्यर्थ मन को लुभाने से व्यर्थ ही उद्वेग बढ़ेगा, मन में अस्थिरता, चंचलता खींचातानी बढ़ेगी । अतः मन में उद्वेग की सृष्टि क्यों करते हैं ? इस प्रलोभन से बचिये । प्रत्येक नारी को पवित्र मातृ दृष्टि से देखिये । जब आप किसी पाप के विचार तथा अशुभ कल्पना में प्रवृत्त होते हैं तो अतृप्त संयोग, मस्तिष्क सम्बन्धी विकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है । इच्छित तृप्ति न होने पर मन अन्य कार्यों के लिए बेकाम हो जाता है, कुचेष्टाओं में उलझा रहता है । अनिद्रा एवं दुःस्वप्न आते हैं । मानसिक व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है । यह एक प्रकार का क्षय रोग है जो युवक को निर्बल, कांतिहीन और खोखला बना देता है, रक्त की गति मंद और वीर्य को पतला कर देता है । परिणामस्वरूप पागलपन, उन्माद, मृगी, नपुंसकता न्यूनाधिक रूप से प्रकट हो जाती है । एक विशेषज्ञ के अनुसार मानसिक व्यभिचार रक्तचाप की बीमारी उत्पन्न कर देता है ।

वासना भी मन से ही उत्पन्न होती है । यदि हम मन में पवित्रता रखें, दृष्टि में प्रत्येक नारी के लिए मातृ भावना रखें तो मन, वचन, कर्म सभी अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य पालन कर सकेंगे । अतः मन में कामुकता के किसी भाव, विचार या कल्पना को कदापि स्थान न दीजिए ।

(६) **मानसिक व्यभिचार से बचिए**—मानसिक संयम ब्रह्मचर्य का मूल है । यदि हमारा मन काम-वासना के इशारों पर नृत्य करता रहेगा, कभी इस, कभी उस स्त्री पर दौड़ता रहेगा तो मानसिक उत्पात कदापि न रुकेगा । रह-रहकर बुद्धि लुप्त हो जाया करेगी और वीर्य रक्षा न हो सकेगी । ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य-रक्षा का यह अर्थ कदापि नहीं है कि मन से तो चौबीसों घण्टे व्यभिचार में लिप्त रहें, कल्पनाओं के गन्दे स्थानों पर दौड़ते रहें और बाहर से ब्रह्मचारी बनने का अभिनय करें । मानसिक व्यभिचार का कुफल संक्रामक बीमारियों के रूप में मिलेगा । दूषित कल्पना कामोत्तेजना के कारण आपके सम्मुख स्वनिर्मित प्रतिमाएँ सामने ला खड़ी करेंगी जो स्वप्न प्रारम्भ कर देंगी । कुत्सित कल्पनाओं, कुविकल्पों, गन्दी-गन्दी अश्लील तस्वीरों, गन्दी पुस्तकों, स्टेशन के बुक स्टालों पर बिकने वाली कामोत्तेजक प्रेम कहानियों, उपन्यासों को सदा के लिए छोड़ दीजिए । यदि आपकी कल्पना शक्ति किसी गन्दी दलदल में फँसी है तो शुभ संकल्पों से उन्हें पवित्र कीजिए । मानसिक व्यभिचार और दुराचार का वायुमण्डल, जो सिनेमा की गन्दी फिल्मों, नाटकों, अर्द्ध नग्न नर्तकियों के नाच, नाचघरों द्वारा सभ्य जगत् में बन गया है, तोड़ दीजिए । यदि आप गुप्त रूप से कामुकता की तृप्ति में लगे हैं, तो उसे तुरन्त छोड़ दीजिए । बाजीकरण औषधियाँ, दवा-दारू, चटनी, भस्म का प्रयोग त्याग दीजिए ।

हमारी अन्तरात्मा स्वयं गन्दी बातों, पापमय जीवन से बचना चाहती है । काम-वासना की अप्राकृतिक तृप्ति तथा स्वप्नदोष के पश्चात हृदय में स्वाभाविक रूप से लज्जा, आत्म-ग्लानि, संशय, चिन्ता, क्लेश की भावनाएँ जागृत हो जाती है । प्रारम्भ में यह आत्म-ग्लानि अत्यन्त तीव्र होती है । आत्मा बुरा-बुरा कहती है, पाशविक वृत्तियों "केवल एक बार और वासना की बात सोच लूँ, केवल एक बार"—यह सोचते-सोचते अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है । पुनः पुनः काम-वासना में लिप्त रहने से अन्तरात्मा की आवाज भी उसके विरुद्ध नहीं उठ पाती । फिर मन का बाँध टूट-सा जाता है, गन्दी बात सोचते बुरा नहीं लगता, व्यभिचार, मैथुन आदि भी साधारण-सी बात प्रतीत होने लगती है, सम्पूर्ण जीवन वासनामय बन जाता है, मन कुचेष्टाओं में सदैव फँसा रहने लगता है । काम-कल्पना की आदत एक पिशाचिनी है जो मनुष्यों की सन्तानों को मार्ग-भ्रष्ट कर देती है, अतः काम-वासना का उद्भव ही न होने दीजिए । मन में वासना को स्थान ही न दीजिए । यदि उत्पन्न हो जाय तो तुरन्त उसका गला दबा दीजिए । यह न सोचिये कि जरा इस दूषित कल्पना का और मजा ले लें, बाद में इसे दबा देंगे । एक बार इस पिशाचिनी के चंगुल में फँसे, कि फँसे । इसे यहीं मार डालिए ।

धिक्कार है उस पापमय जिन्दगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की विष्ठा के ऊपर भिनभिनाने में और कुत्तों की तरह विषय-भोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है । उस व्यक्ति को धिक्कार है जो पर स्त्री कल्पना में निरत रहता है या गुप्त रूप से व्यभिचार में प्रवृत्त रहता है । खेद है उस पापमय जीवन पर जो काम-वासनामय उद्वेग तथा मानसिक आवेश में उलझा रहता है । वह जिन्दगी घृणास्पद है जो कपट, धूर्तता, मायाचार, छल, अनुचित यौन सम्बन्धों से युक्त है । जिनका जीवन इस वासनामय स्वार्थों को पूर्ण करने की उधेड़बुन में निकल गया । हाय ! वे कितने अभागे हैं । सुर दुर्लभ मानव देह रूपी बहुमूल्य रत्न इस दुर्बुद्धियों ने काँच के टुकड़ों के बदले बेच दिया है, किस मुख से वे कहेंगे कि हमने यौवन का सद्व्यय किया । इन कुबुद्धियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को अन्त में पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा । एक दिन उन्हें अपनी भयंकर भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर उनके हाथ से निकल गया होगा और सिर धुनने के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी प्राप्त न होगा ।

साधको ! आत्मा को जगाओ, वासना को दूर भगाओ, उसकी केंचुली तोड़ डालो । ब्रह्मचर्य ही जीने योग्य जिन्दगी है, यही वह जीवन है जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके । आपका जीवन प्रेम से, न्याय से, सत्य से भरा-पूरा होना चाहिए ।

(१०) **मानसी पूजा की आदत डालिए**—आप ऐसा सोचिये कि परमेश्वर आपके सामने है । आप उनकी उपस्थिति में निरन्तर रहते हैं । वे आपके कार्य ही नहीं, आपके मनोभावों, विचारों तथा गुप्त से गुप्त मन्तव्यों को भी देखते हैं । आप उनसे कुछ छिपा नहीं सकते । अतः जो कुछ भी बुरे भाव अन्तःकरण में लायेंगे, वे अपने पास रखकर आप पतित और कुपथगामी बनेंगे । आप मन में किसी घृणित विचार को स्थान ही न दीजिए कि आराध्य देव के समक्ष नीचा देखना पड़े । अपना जीवन एक खुली पुस्तक रखिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसे देख सके, उसमें कोई ऐसी गंदी बात ही न छोड़िये कि किसी के सामने आपको लज्जित होना पड़े । बाहर, भीतर एक सा रहिये ।

पूजा और उपासना की अनेक विधियाँ हैं । आप अपने अन्तःकरण में परमात्मा के किसी भी रूप—गणेश, शिव, दुर्गा, महावीर को रख लीजिए । उस मूर्ति का प्रतिबिम्ब आप अपने अन्तःकरण में देखा कीजिए । मानसी पूजा में किसी वाहन उपकरण—पुष्प, दीप, चन्दन, अक्षत की आवश्यकता नहीं होती । बाहरी मूर्ति की पूजा तो आन्तरिक मानस पूजा का प्रारम्भ है । ब्रह्मचारी को किसी वाह्य पूजा की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी मानस पूजा की । मानस पूजा के लिए किन पुष्पों की आवश्यकता है ? आपकी शुभ भावनाएँ, शिव संकल्प, भद्र कल्पनाएँ । इन पूजा के लिए कौन से धूप, दीप, चन्दन चाहिए ? आपके सुन्दर कृत्य, प्राणिमात्र की सच्ची सेवा, त्याग, क्षमा और उदारता । जैसे यज्ञ में समिधा डालकर जलाते हैं, उसी प्रकार मन की कल्मष इसमें भस्म कर दीजिए ।

अपने आराध्य देव में आप जिन गुणों का अस्तित्व समझते हैं, उनके मानसिक चित्र मानस पटल पर निर्माण कीजिए, फिर उस मानसी पूजा में इतने तल्लीन हो जाइये कि आप उसी में तदाकार हो जायें । जैसी भी स्थिति में रहें, अपने व्यक्तित्व को अपने इष्ट उद्देश्य में पिरोते रहिये । यह तदाकारिता ही सच्ची उपासना है । धीरे-धीरे आपके गुप्त मन से ऐसी प्रेरणा होने लगेगी कि वासना, कुभाव और कुकृत्य की ओर आपकी प्रवृत्ति ही न होगी । आपकी पूजा सफल हो जायेगी और इच्छित फल प्राप्त हो जायेगा । इसके अतिरिक्त—

(११) विलासप्रियता छोड़िये । (१२) सत्संग कीजिए । (१३) खान-पान में संयम बरतिये । (१४) व्यसनों से बचिये । यह सभी उपाय वीर्य रक्षा के हैं ।

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

|| अष्टांग योग में आसनों की उपयोगिता ||

भारतीय योगाभ्यास का मुख्य उद्देश्य आत्मा को ऊँचा उठाना और विभिन्न साधनों द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करना कहा गया है, पर उसके आठ अंगों में से दो ऐसे माने जाते हैं जो आध्यात्मिक के साथ ही भौतिक (शारीरिक) लाभ भी प्रदान करते हैं । वे हैं—आसन और प्राणायाम । आसन का सर्वप्रथम उद्देश्य तो स्थिर होकर कुछ घण्टे तक बैठ सकने का अभ्यास है । दूसरा उद्देश्य शारीरिक अंगों और नस नाड़ियों का ऐसा व्यायाम करना है, जिससे उनके दोष निकलकर कार्यक्षमता की वृद्धि हो सके । आसन अनेक प्रकार के हैं, हठयोग के ग्रन्थों में उनकी संख्या ८४ बतलाई है । यदि कुछ आसनों की विधि कठिन अथवा कम उपयोगी हो, तो भी २०-२५ आसन ऐसे अवश्य निकल सकते हैं जो भिन्न-भिन्न अवयवों को सशक्त बनाने के लिए निश्चित रूप से उपयोगी हैं । वर्तमान समय में संसार में जो व्यायाम पद्धतियाँ प्रचलित हैं उनसे मनुष्य की माँसपेशियाँ तो मजबूत बनती हैं, पर यह भी निश्चित है कि ऐसे हट्टे-कट्टे अथवा पहलवान व्यक्ति भी जीवन की कठिनाइयों और उतार-चढ़ावों का मुकाबला वैसी सफलता से नहीं कर पाते जैसा कि दुबला-पतला आसन और प्राणायाम का अभ्यासी । इसका कारण यही है कि पहलवान का शरीर कठोर और शक्तिशाली होने पर भी उसके भीतरी अवयव वैसे शुद्ध और स्वच्छ नहीं होते जैसे आसन, प्राणायाम करने वाले के हो जाते हैं ।

इतना ही नहीं शारीरिक व्यायाम जहाँ केवल अंग-प्रत्यंगों को ही मजबूत बनाते हैं वहाँ आसन और प्राणायाम का अभ्यास मन और मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है । इससे शरीर के भीतर अनेक मर्मस्थानों और शक्ति केन्द्रों को नियन्त्रण में रखना सम्भव हो जाता है और अधिकांश कठिनाइयों, बीमारियों, दुर्घटनाओं का मानसिक प्रतिरोध द्वारा शमन करना सम्भव हो जाता है । हम जानते हैं कि शरीर का समस्त कार-बार स्नायु-संस्थान द्वारा चलता है और प्रत्येक अंग मस्तिष्क से निकलने वाले ज्ञान तन्तुओं के द्वारा ही संचालित होता है । आसन और प्राणायाम के अभ्यास का सम्मिलित प्रभाव स्नायु संस्थान पर बहुत अधिक पड़ता है । इससे आसन और प्राणायाम का अभ्यास अच्छी तरह हो जाने—उसमें 'सिद्ध' मिल जाने पर केवल भीतरी शारीरिक अंगों को शुद्ध और सशक्त ही नहीं रखा जा सकता, वरन् कितनी ही ऐसी शक्तियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं, जो सामान्यतः कठिन अथवा असम्भव समझी जाती हैं ।

श्रम और विश्राम का सन्तुलन

वैज्ञानिक आसन पद्धति की प्रथम विशेषता यह है कि वह जहाँ कुछ अंगों से परिश्रम कराती है, वहाँ कुछ अंगों को विश्राम भी देती है । स्वास्थ्य रक्षा के लिए जैसी आवश्यकता काम की है वैसी ही विश्राम की है । इसलिए आसन-व्यायाम में जहाँ कुछ अंगों से व्यायाम कराया जाता है, वहाँ अन्य अंगों को शिथिलीकरण की क्रिया द्वारा आराम भी दिया जाता है । इतना ही नहीं जिन आसनों में शारीरिक अंगों पर अधिक जोर पड़ता है और थकावट उत्पन्न होती है तो उसके बाद ही 'शवासन' आदि का विधान बनाया गया है जिससे थकावट उसी समय दूर होकर सामान्य स्थिति आ जाय ।

दूसरी विशेषता श्वसन-क्रिया पर नियन्त्रण रखना है । अन्य प्रकार के व्यायामों में मनुष्य प्रायः हाँफने लग जाता है, जिससे लाभ के बजाय हानि उठानी पड़ती है । ऐसे लोगों को एक दिन परिश्रम करके दो दिन आराम करने की आवश्यकता होती है, पर अंग-प्रसारण के व्यायाम में श्वास को पूर्ण रूप से नियन्त्रण में रखा जाता है और उसको नियमपूर्वक खींचा और निकाला जाता है । इससे फेफड़ों की क्रिया उत्तम-रीति से होने लगती है और उनकी शक्ति बढ़ती है । यही कारण है कि प्रत्येक आसन के साथ श्वास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नियन्त्रित रीति से लेने और छोड़ने का आदेश दिया गया है ।

तीसरी विशेषता यह है कि इसमें जिस प्रकार ग्रहण करने का प्रयत्न किया जाता है, वैसे ही विसर्जन या मल-निष्कासन का भी ध्यान रखा जाता है । जो लोग केवल खाने और पचाने की क्रिया पर ही जोर देते हैं और मल-निष्कासन के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं रखते वे भी अन्त में रोगों के चंगुल में ही फँसते हैं । शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए जितना आवश्यक ग्रहण करना (एसीमिलेशन) है उतना ही महत्त्वपूर्ण निष्कासन (एलीमिनेशन) भी है । यदि मल-निष्कासन की क्रिया ठीक नहीं होगी तो गन्दगी पैदा करके रक्त को अशुद्ध कर देगी, जिससे स्वास्थ्य कभी ठीक हो ही नहीं सकेगा । आसनों में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि अन्य अंगों के साथ मल निकालने वाली आँतों और गुर्दे आदि का भी ऐसा व्यायाम हो जाय कि वे मल-मूत्र आदि को उचित रीति से निकालते रहें ।

आसन-व्यायाम में एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसके द्वारा हमारे शरीर के भीतर उन गिल्टियों (ग्लैण्ड्स) पर भी प्रभाव पड़ता है जिनसे कई प्रकार के रस निकलकर स्वास्थ्य को ठीक रखते हैं । इन गिल्टियों में गले में रहने वाली 'थायरॉइड' और आमाशय के नीचे रहने वाली 'क्लोम' का उल्लेख किया जा सकता है । प्रथम ग्रन्थि के रस से वृद्धावस्था देर से आती है और दूसरी का रस मूत्राशय को निरोग रखता है । इसके सिवा शरीर के भीतर अन्य छोटी-छोटी गिल्टियाँ हैं, जिनकी संख्या बहुत अधिक है और वे एक ऐसा रस निकाला करती हैं जो रक्त के साथ मिलकर उसकी संचालन क्रिया में सहायता पहुँचाता है । इन गिल्टियों को अन्तःस्राव ग्रन्थि या 'डक्टलेस ग्लैण्ड' कहते हैं और यदि वे अपना कार्य उचित रीति से न करें तो हमारा रक्त-संचालन सदोष हो जायेगा और स्वास्थ्य कदापि ठीक नहीं रह सकेगा ।

आसन-व्यायाम में अंगों को विभिन्न रीति से मोड़कर इन्हीं अन्तःस्थिति अंगों, संस्थानों और गिल्टियों पर दबाव डाला जाता है, उनको गतिशील बनाया जाता है, जिससे वे अपना कार्य उपयुक्त रीति से करने लगते हैं और ग्रहण तथा विसर्जन की क्रिया ठीक रहकर स्वास्थ्य सुदृढ़ बनता है ।

यौगिक व्यायाम और उसका तात्विक आधार

व्यायाम-पद्धति पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर पर अधिक दबाव डालने वाले या बहुत अधिक थका देने वाले भारी व्यायाम पहलवानों या फौजी आदमियों के लिए भले ही उपयुक्त हों पर जो साधारण व्यक्ति अपना व्यापार, नौकरी या मजदूरी नित्य नैमित्तिक कार्य करते हुए स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से चौथाई या आधा घण्टा ही इस कार्य में लगा सकने की स्थिति में है, उनके लिए सर्वथा भिन्न प्रकार के ऐसे हल्के व्यायामों की आवश्यकता है जिससे शरीर के विभिन्न कार्य यथा नियम संचालित होते रहें । इस दृष्टि से विचार करने पर शरीर तत्व-विशारदों ने योग-मार्ग की कुछ क्रियाओं को जिनमें आसन और प्राणायाम ही मुख्य हैं, विशेष रूप से उपयोगी पाया है । यद्यपि प्राचीन काल में इनका आविष्कार आत्मिक-उन्नति के लिए शरीर को स्वस्थ्य और निरोग दशा में बनाये रखने की दृष्टि से ही किया गया था और इसलिए अभी तक अनेक अनजान लोग इन्हें 'साधु और जोगियों' के मतलब की चीज ही समझते हैं, पर उनकी ऐसी मान्यता एक भ्रम ही है । स्वास्थ्य-विद्या विशारदों ने इन क्रियाओं को शारीरिक अंगों को ठीक दशा में रखने के लिए बहुत लाभदायक पाया है और उनमें से बहुत-सी क्रियाओं को कुछ परिवर्तन करके सर्वसाधारण के उपयोगी बना दिया है । आजकल इन यौगिक व्यायामों का अभ्यास कितने ही साधारण मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ही नहीं करते वरन् बहुसंख्यक स्कूलों में विद्यार्थियों को उनका सामूहिक रूप से अभ्यास कराया जाता है । भारत के अतिरिक्त विदेशों के विद्वानों का भी ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ है । यूरोप, अमेरिका के विद्यालयों में भी विभिन्न शारीरिक अंगों तथा श्वास-यन्त्र की क्रियाओं के सुधार के लिए इनका अभ्यास कराया जाता है ।

इन यौगिक व्यायामों का विशेष महत्त्व इस कारण से है कि उनका आधार कृत्रिम नहीं है वरन् प्राचीनकाल के मनीषियों ने उनका आविष्कार प्रकृति का निरीक्षण करके ही किया है । योग-ग्रन्थों में कहा गया है कि "जीव जगत में जितनी योनियाँ (श्रेणियाँ) हैं उतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही संख्या आसनों की है ।" इनका आविष्कार करने वाले ऋषि-मुनि सब प्रकार के जीव, जन्तु, वनस्पति आदि के कार्य-कलापों का निरीक्षण अपनी सूक्ष्म दृष्टि से करते रहते थे । उन्होंने अनुभव किया कि वे जीव-जन्तु बिना किसी विशेष साधन या सामग्री के जीवन-यापन करते हुए केवल प्रकृति की सहायता से सब प्रकार स्वस्थ, सशक्त और कार्यक्षम बने रहते हैं, जबकि मनुष्य प्रकृति से दूर हट जाने के कारण तरह-तरह की आधि-व्याधियों में ग्रस्त रहता है । इसलिए उन्होंने विभिन्न पशु-पक्षियों के बैठने तथा शारीरिक अंगों को खींचने तथा ढीले करने के ढंग से ऐसी विधियाँ खोजकर निकालीं जिनसे विभिन्न अंगों का व्यायाम और विश्राम का उद्देश्य पूरा हो सके और उन पर किसी प्रकार का कुप्रभाव न पड़कर उनकी क्रिया-शक्ति की वृद्धि हो सके ।

आसनों की पाँच श्रेणियाँ

इस प्रकार जिन योगासनों का प्रचार प्राचीनकाल में किया गया था वे मुख्यतः पाँच श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—(१) वे आसन जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों के रहन-सहन और उठने-बैठने के ढंग के आधार पर निकाले गए हैं, जैसे भुजंग, शलभ, मयूर, बक, कुक्कुट, मकर, उष्ट्र, हँस, काक, मत्स्य, कूर्म, सिंह, वृश्चिक आदि । (२) कुछ आसन विशेष पदार्थों की आकृति से मिलते-जुलते होने के कारण उनके नाम से प्रसिद्ध हो गए हैं, जैसे—हल, धनुष, चक्र, वज्र, शिला, नौका आदि । (३) कई प्रकार की वनस्पतियों और वृक्षों के अनुकरण पर भी कुछ आसनों का आविष्कार किया गया, जैसे—पद्मासन, लतासन, ताड़ासन, वृक्षासन आदि । (४) जो आसन शरीर के विशेष अंगों को पुष्ट बनाने या निरोग करने के उद्देश्य से प्रचलित किए गए हैं उनका नामकरण उन अंगों के नाम पर ही कर दिया गया है, जैसे—सर्वांगासन, शीर्षासन, गर्भासन, एकपाद-ग्रीवासन, हस्त पादासन आदि । (५) कुछ आसन व्यक्ति विशेष के नाम पर भी प्रसिद्ध हो गए हैं, जैसे—मत्स्येन्द्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, महावीरासन, ध्रुवासंन आदि ।

आसनों का प्राकृतिक स्वरूप

पशु-पक्षियों के रहन-सहन का यदि हम साधारण रूप से निरीक्षण करें और उनकी खास-खास क्रियाओं को ध्यान से देखें तो इस प्रकार के आसनों का मूल आधार समझ में आ सकता है । उदाहरणार्थ कुत्ता जब सुस्त पड़ा रहता है तो ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए प्रायः एक बार आगे के पैरों पर और दूसरी बार पिछले पैरों पर जोर डालकर अपने बदन को खूब जोर से आगे-पीछे की तरफ खींचता है । इससे उसके शिथिल स्नायु उत्तेजित होकर सक्रिय बन जाते हैं और रक्त का संचार बढ़ जाता है । इसी तरह अन्य पशु-पक्षी भी समय-समय पर अपने स्नायुओं पर तनाव डालकर स्फूर्ति प्राप्त किया करते हैं ।

बिल्ली जब सोकर उठती है तो अपने पैरों को कुछ नजदीक लाकर उनकी नसों को तानती है जिससे उसकी पीठ का मध्य भाग ऊँचा उठ जाता है । ऐसा करने से उसकी सुस्ती दूर होकर वह चैतन्य हो जाती है और फुर्ती से अपना काम करने लगती है ।

इसी प्रकार बन्दर, हिरन, सिंह, रीछ आदि पशु समय-समय पर ऐसी क्रियाएँ और चेष्टाएँ करते रहते हैं जिससे उनका शरीर पूर्णतः सक्रिय रहता है और चर्बी नहीं बढ़ने पाती । बन्दर जब एक मकान से दूसरे मकान पर कूदता है या सिंह जब अपने शिकार पर झपटता है तो देखा जाता है कि वे झपटने की विपरीत दिशा में अपने स्नायुओं और पेशियों को खींचते हैं । जितनी लम्बी छलाँग लगानी होती है, उतनी ही पीछे की ओर जोर डालते हैं । फिर कूदने की चेष्टा में एकदम पेशियों को ढीला छोड़कर आगे की तरफ दबाव डाल देते हैं । जिस प्रकार बाण छोड़ने के लिए धनुष की डोरी को पीछे की ओर जोर से खींचा जाता है तो वही डोरी छोड़ने पर उतने ही जोर का दबाव आगे की तरफ डालती है और बाण को दूर फेंक देती है । इसी प्रकार पीछे की तरफ खिंची हुई माँसपेशियाँ और नसें समस्त शरीर को आगे की तरफ फेंक देती हैं ।

इसी प्रकार प्राचीन अन्वेषकों ने सर्प, मत्स्य, मयूर ऊँट आदि की गतिविधियों का निरीक्षण किया और उनकी विशेषताओं पर ध्यान देकर कई लाभदायक आसनों को खोज निकाला । उदाहरण के लिए कहा जाता है कि मोर का पाचन संस्थान बड़ा प्रबल होता है और वह साँप तथा अन्य कठोर वस्तुओं को सहज में पचा डालता है । इस आधार पर मयूरासन की कल्पना करके मनुष्य के पाचन संस्थान, छाती और भुजाओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्नति की विधि निकाली गई । साँपों के विषय में किम्वदन्ती है कि उनका वीर्य सिर में एकत्रित होकर वहाँ एक प्रकार की चमक उत्पन्न कर देता है । इस आधार पर भुजंगासन का आविष्कार किया गया जिससे जठराग्नि का उद्दीपन होकर वीर्य वृद्धि में काफी सहायता मिलती है ।

शरीर तत्वविदों ने एक और ऐसी खोज की है जिससे आसनों की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है । जीव-जगत की विभिन्न योनियों को पार करने के बाद अन्त में प्रकृति ने मानव-शरीर की रचना की है । जैसे किसी यात्रा की मंजिल तय करने वाले की अनुभूति में केवल मंजिल का ही ध्यान नहीं रहता, वरन् सम्पूर्ण मार्ग के प्रधान दृश्यों की प्रतिच्छाया भी सूक्ष्म रूप से उसकी अनुभूति में स्थिर रहती है, उसी प्रकार मानव-गर्भ में प्रत्येक योनि की मुख्य विशेषताएँ भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती हैं । गर्भावस्था में मनुष्य की जो सबसे प्रथम आकृति होती है और फिर क्रमशः परिवर्तन होते हुए जिस प्रकार उसका रूपान्तर होता जाता है उसका निरीक्षण करने वाले वैज्ञानिकों का कथन है कि गर्भस्थ भ्रूण के ये विभिन्न रूप कीड़ा, मछली, मेढ़क, बन्दर आदि अनेक प्राणियों की तरह दिखाई पड़ा करते हैं । इसी सिद्धान्त के आधार पर योगियों में यह मान्यता हो गई है कि जिस प्रकार जगत में चौरासी लाख योनियाँ हैं, उसी प्रकार आसनों की संख्या भी उतनी ही हो सकती है । उपयोगिता और लाभ की दृष्टि से योगियों ने उनमें से चौरासी आसन अपने अभ्यास के लिए छाँट लिए हैं, पर सर्वसाधारण के लिए इन चौरासी आसनों का भी उपयोग नहीं है । इनमें से कई आसन तो विशेष कष्टसाध्य होने से साधारण लोगों के लिए अनुपयुक्त हैं और कुछ लम्बे समय तक ध्यान करने के लिए उपयोगी हैं । इसलिए हमने इस पुस्तक में उन बीस-पच्चीस आसनों का ही परिचय दिया है जो स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से उपयोगी हैं और बाहरी तथा भीतरी शारीरिक अंगों पर हितकारी प्रभाव डालते हैं ।

आसनों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे जीव-जगत की स्वाभाविक प्रक्रियाएँ तथा चेष्टाएँ हैं । कृत्रिम व्यायामों की तरह उनमें कोई ऐसी बात नहीं जो एक अंग को लाभ पहुँचाने के साथ दूसरे अंग को किसी प्रकार की हानि पहुँचा सके । जिस प्रकार डण्ड-बैठक, मुगदर आदि भारी व्यायामों को अधिक करने से माँसपेशियों का आकार बढ़ जाता है, उनमें अधिक परिमाण में रक्त एकत्रित हो जाता है, रक्त की अधिकता होने से मज्जातन्तु फट जाते हैं और स्नायु तथा माँसपेशियाँ थोड़े ही समय में कड़ी पड़कर निष्क्रिय हो जाती हैं । इसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और स्वास्थ्य की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है ।

इसके विपरीत आसनों का तथा अंग-संचालन का व्यायाम ऐसा होता है जैसे कि एक नवजात शिशु हाथ-पैरों को स्वभावतः ही चलाता और फेंकता रहता है, जिससे उसकी जीवनी-शक्ति बढ़ती है और शरीर का विकास होता है । शारीरिक व्यायाम एक प्राकृतिक आवश्यकता है और इसका स्वाभाविक रूप स्नायुओं तथा माँसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न करना तथा शिथिलीकरण ही है । इससे उन पर अनावश्यक दबाव न पड़कर उनकी क्रियाशक्ति बढ़ती है । इससे शरीर के विभिन्न अंग पर्याप्त समय तक अपना कार्य उचित रूप से करते रहने में समर्थ होते हैं और मनुष्य को स्वास्थ्य-युक्त दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है ।

स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से चार प्रकार के आसन

स्वास्थ्य का सुधार और वृद्धि के उद्देश्य से जो आसन किए जाने चाहिए उनको चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—(१) खिंचाव के आसन, (२) प्राणायाम के आसन, (३) बल और शक्ति बढ़ाने वाले आसन, (४) स्नायु-संचालन के आसन । जैसा हम पहले लिख चुके हैं स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से स्नायुओं और नसों का बड़ा महत्त्व है । उनके शुद्ध रहने से ही हमारे शरीर में रक्त अभिसरण ठीक तरह से हो सकता है । इससे सब अंगों को आवश्यक पोषण मिलता है और अशुद्ध पदार्थ बहाकर शरीर से बाहर निकाल दिए जाते हैं । रोग का मूल कारण किसी भी गलत अभ्यास या हानिकारक आदत के द्वारा इन रक्त-वाहिनी नसों को मलयुक्त और कड़ा बना देना ही है । जिस प्रकार घर की या शहर की नालियों में कूड़ा-करकट इकट्ठा हो जाने से पानी का बहाव कठिनाई से होने लगता है और उससे जगह-जगह गन्दगी और बदबू बढ़ने लगती है, ठीक वही हालत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी नसों की होती है । दूषित खान-पान या विपरीत आहार-विहार के कारण जब ये नसें मल या विजातीय पदार्थ से भर जाती हैं, तो उनमें रक्त का संचार कम या रुक-रुककर होने लगता है । यही स्थिति शरीर को निर्बल बनाने और तरह-तरह के रोगों का बीज-वपन करने की होती है । इसके कारण नसों में जहाँ कहीं गन्दगी ज्यादा बढ़ जाती है, वहीं पर किसी न किसी रोग के रूप में प्रकट हो जाती है ।

इस स्थिति का सुधार करने के लिए खान-पान तथा आहार-विहार को सुधारना, दूषित आदतों को छोड़ना तो आवश्यक है ही, पर साथ ही नसों में मल इकट्ठा होकर जो दोष पैदा हो गया है उसके लिए भी कोई उपाय करना आवश्यक है । इसका सबसे उत्तम और स्वाभाविक तरीका आसन-व्यायाम है । कोई औषधि इस कार्य को सिद्ध नहीं कर सकती । यदि इसके लिए किसी तीव्र औषधि का प्रयोग किया जायेगा तो उससे उल्टी हानि ही उठानी पड़ेगी क्योंकि इस प्रकार कृत्रिम रीति से रक्त की गति को तीव्र करके सफाई की चेष्टा करने से दिल कमजोर होगा और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा । लेकिन आसनों द्वारा स्नायुओं में खिंचाव उत्पन्न करके फिर उनको अन्य आसन द्वारा शिथिल करने से वे स्वयं ही अपनी सफाई आप करने लगते हैं । इस प्रकार उनकी स्थिति स्थापक-शक्ति फैलने और सिकुड़ने का गुण बढ़ने लगता है और वे सक्रिय होकर जगह-जगह चिपटे या रुके हुए मल को स्वयं ही बाहर की तरफ फेंकने लगती हैं ।

जो आसन अथवा अंग-संचालन के व्यायाम प्राणायाम के साथ अथवा साँस को नियमित रूप में भीतर खींचते और बाहर निकालते हुए किए जाते हैं उनका मुख्य उद्देश्य भी रक्त की सफाई के कार्य में सहायता देना ही होता है । इस उपाय से रक्त वाहिनी नसों द्वारा जो गन्दगी फेफड़े में लायी जाती है, वह साँस के द्वारा बाहर निकाली जाती है । स्वास्थ्याभिलाषी मनुष्यों को सदैव ताजा वायु में साँस लेने का उपदेश दिया जाता है, उसका आशय यही है कि हमारे भीतर से जो साँस बाहर निकलती है, वह शरीर में उत्पन्न होने वाली गन्दगी से युक्त हो जाती है । इसलिए यदि हम ऐसे बन्द स्थान में साँस लेंगे जहाँ हमारी और अन्य व्यक्तियों के भीतर से निकली हुई साँस ठीक तरह से बाहर नहीं निकल सकती और ताजी वायु लगातार भीतर नहीं आती तो उससे वही गन्दगी मिली हुई वायु हमारे भीतर जायेगी और उससे आन्तरिक सफाई का काम बहुत कम अंशों में पूरा हो सकेगा । लेकिन जब हम किसी खुले हुए या शुद्ध वायु के आवागमन वाले स्थान में बैठकर या खड़े होकर आसन या अंग-संचालन, व्यायाम करते हैं और साथ ही नियमित रूप से गहरी साँस खींचते और निकालते हैं तो स्नायुओं के खिंचाव से रक्त संचरण की गति बढ़कर दूषित तत्व फेफड़े में आते हैं और वहाँ प्राणप्रद वायु (ऑक्सीजन) के द्वारा उनकी सफाई होकर उन्हें श्वास द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है । इस प्रकार प्राणायामयुक्त आसन रक्त को शुद्ध करने में बहुत सहायक होते हैं ।

बलवर्धक या शक्तिप्रदायक आसन और व्यायाम वे हैं जिनसे माँसपेशियों पर खिंचाव और दबाव पड़ता है और वे पुष्ट होती हैं । शारीरिक अंगों को पुष्ट बनाना आवश्यक है, जिससे वे ताकत के कामों को करने में समर्थ हो सकें, लेकिन जैसा हम बता चुके हैं यह कार्य भारी व्यायाम द्वारा न करके स्वाभाविक अंग-संचालन द्वारा ही किया जाना चाहिए । इसके लिए खड़े होकर किए जाने वाले आसन, जैसे—सूर्य नमस्कार, एक-हस्तपादासन आदि विशेष रूप से उपयोगी होते हैं । इससे स्नायु और माँसपेशियाँ आदि सुदृढ़ बनते हैं और उनकी प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है ।

कुछ लोग अन्य दृष्टि से भी आसनों के विभाग करते हैं । जैसे—(१) खड़े होकर करने के आसन, (२) बैठकर करने के आसन, (३) भूमि पर लेटकर करने के आसन, (४) उल्टा खड़ा होकर अर्थात् सिर नीचे और पाँव ऊपर करने के आसन । इसमें से लेटकर और सिर नीचे की तरफ करने वाले आसन उन व्यक्तियों के लिए विशेष लाभदायक होते हैं जिनका दिल कमजोर होता है । अन्य लोगों के लिए सभी तरह के आसन स्वास्थ्यवर्धक और शक्तिप्रदायक होते हैं । जिन लोगों का स्वास्थ्य मजबूत है उनको आसन-व्यायाम पर्याप्त समय तक करना चाहिए जिससे पसीना आ जाय । योगशास्त्र में कहा गया है कि आसन के पश्चात जो पसीना निकले उसे बदन में ही मल लेने से विशेष लाभ होता है । इसके पश्चात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता जान पड़े तो घण्टा, आध-घण्टा ठहरकर स्नान भी किया जा सकता है, जिससे सब मैल दूर हो जायेगा । यदि सुविधा हो तो स्नान किसी नदी या तालाब में तैर कर किया जाय ऐसा स्नान विशेष स्वास्थ्यप्रद और लाभजनक सिद्ध होता है ।

आसन-व्यायाम के सम्बन्ध में विशेष सूचनाएँ

(१) यदि सम्भव हो तो आसनों का अभ्यास आठ-दस वर्ष की अवस्था से कराने की व्यवस्था करनी चाहिए । जिन बालकों का स्वास्थ्य मजबूत है उनको तो इससे भी कम उम्र में अभ्यास कराया जा सकता है; लेकिन जिन आसनों में ऐड़ी को अण्डकोषों और गुदा-स्थान के बीच में लगाया जाता है उनको सोलह-अठारह वर्ष के पूर्व नहीं करना चाहिए । इस प्रकार के आसनों में सिद्धासन मुख्य है । यह धनात्मक आसन है, इसलिए आसन-व्यायाम करने वालों को इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं होती ।

(२) जो लोग ज्यादा कमजोर, अशक्त या बुड्ढे हों, उन्हें प्रायः लेटकर किए जाने वाले आसन ही करने चाहिए । यदि स्वास्थ्य साधारणतः ठीक हो तो अपनी रुचि और सुविधानुसार अन्य प्रकार के आसन भी किए जा सकते हैं तो भी अधिक उम्र वाले व्यक्तियों को अपनी क्षमता का सदैव ध्यान रखना चाहिए । ऐसा न करने से व्यायाम लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकता । बीमारी की अवस्था में लेटकर किए जाने वाले आसन ही करने चाहिए ।

(३) प्राणायाम के साथ किया जाने वाला आसन-व्यायाम विशेष लाभदायक होता है, क्योंकि उसके द्वारा भीतरी अंगों का संचालन होता रहता है और उनका प्रभाव स्नायु-मण्डल पर विशेष रूप से पड़ता है । इस प्रकार का व्यायाम क्रमशः ही बढ़ाना चाहिए, क्योंकि श्वास को बलपूर्वक रोकने से हानि होने की सम्भावना रहती है । जिन लोगों को दिल की धड़कन की शिकायत हो या हृदय में किसी प्रकार का दोष हो उन्हें प्राणायाम सहित आसन नहीं करने चाहिए ।

(४) आसन-व्यायाम स्त्रियों के लिए भी बहुत उपयोगी हैं । स्त्रियों को प्रायः घर के भीतर रहना पड़ता है, शिक्षित स्त्रियों को भी घर से बाहर जीवन व्यतीत करने का अवसर कम ही मिलता है । इसलिए उनके लिए आसन या अंग-संचालन का व्यायाम विशेष आवश्यक है, जिससे उनका स्वास्थ्य स्थिर रह सके । लेकिन जिन आसनों में गुदा और अण्डकोषों के बीच में एड़ी लगाई जाती है उन्हें नहीं करने चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से प्रजनन अंगों पर कुप्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है । गर्भावस्था में कठिन व्यायाम बिल्कुल न किया जाय पर उस अवस्था में हल्का व्यायाम करना बहुत लाभदायक होता है और इससे प्रसव के समय कुछ भी कठिनाई नहीं जान पड़ती । इस अवधि में ब्रह्मचर्यपालन का अधिक ध्यान रखना चाहिए और खान-पान में स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का पालन करना चाहिए । मासिक-धर्म की अवस्था में भी स्त्रियों को आसन-व्यायाम वर्जित है ।

(५) यद्यपि योगशास्त्र में शीर्षासन की बहुत महिमा बतलाई गई है और उसे अनेक रोगों में हितकारी बताया गया है तो भी जिन लोगों की नाक में अधिक कफ होता हो, श्वास लेने में अधिक परिश्रम पड़ता हो या आँख, कान आदि की कोई बीमारी हो उन्हें शीर्षासन नहीं करना चाहिए अथवा इस सम्बन्ध में किसी विशेषज्ञ से सलाह लेकर निर्णय करना चाहिए । अनेक लोग शीर्षासन की विधि ठीक नहीं कर पाते, इससे उनके मस्तिष्क को हानि पहुँच जाती है । अतः इस सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखना आवश्यक है ।

(६) जो लोग आसन-व्यायाम से पूरा लाभ उठाना चाहें, उन्हें किसी विशेषज्ञ से अथवा किसी अच्छी पुस्तक से यह जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि किस आसन के बाद कौन-सा आसन किया जाय । यों मनमाने ढंग से चाहे जो आसन करते रहने से अधिक लाभ नहीं हो सकता और कभी-कभी हानि की सम्भावना भी रहती है । जैसे विशेष परिश्रम वाले आसनों के पश्चात विश्रामदायक आसन का अभ्यास करना उचित कहा गया है । किस आसन के बाद कौन-सा आसन विशेष लाभदायक होता है इसका वर्णन आवश्यक होने पर उन आसनों की विधि के साथ ही किया जायेगा ।

(७) आसन-व्यायाम के साथ डण्ड-बैठक जैसे भारी व्यायामों के करने का विधान नहीं है । आसनों के बाद अधिक परिश्रम का कार्य करने से निर्बलता बढ़ने की सम्भावना रहती है । यदि शरीर को विशेष मजबूत और सुगठित बनाने के लिए विशेष परिश्रम वाले व्यायाम करने की इच्छा हो तो आसनों तथा व्यायाम के अभ्यास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय पृथक-पृथक रखना चाहिए । जैसे सुबह आसन किए जायें और शाम को अन्य कसरतें की जायें ।

(८) आसन-व्यायाम करने वाले को तम्बाकू, बीड़ी, भांग, अफीम, चाय, कॉफी, शराब आदि जैसे दुर्व्यसनों से सर्वथा बचना चाहिए । इन नशों के कारण मनुष्य का हृदय कमजोर हो जाता है और फिर उसके लिए परिश्रम के आसन करना हानिकर होता है । जिन लोगों को पूर्वाभ्यास अथवा पिता-माता के दुर्व्यसनी होने के कारण हृदय की कमजोरी की शिकायत हो गई हो उनको यथासम्भव लेटकर किए जाने वाले आसनों का ही अभ्यास करना चाहिए । उनके द्वारा हृदय को विश्राम मिलता है और अन्य शारीरिक अंगों को अधिक लाभ होता है । इसके साथ सब प्रकार के नशों और दुर्व्यसनों का त्याग कर देना भी आवश्यक है ।

(९) आसन-व्यायाम तथा सभी तरह के व्यायामों के साथ ब्रह्मचर्य पालन का ध्यान रखना जरूरी है । वीर्य रक्षा शरीर की पौष्टिकता तथा दृढ़ता के लिए परम आवश्यक और महत्त्व की बात है । इसलिए सदैव इस सम्बन्ध में संयम रखना हर स्वास्थ्याभिलाषी का कर्तव्य है ।

(१०) खान-पान की शुद्धता तथा पवित्रता का ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है । माँस आदि तामसी पदार्थों का आहार करने वाले लोगों के लिए आसनों का अभ्यास करना और उससे लाभ उठाना कठिन होता है । इसलिए आसन प्रेमी को शुद्ध, हल्का और स्वल्प आहार करना चाहिए । दूध और घी का सामान्य प्रयोग करना आवश्यक है, पर इन पदार्थों को भी अधिक परिमाण में ग्रहण करना ठीक नहीं । सबसे मुख्य बात यही है कि हम जो कुछ खायें वह पूरी तरह हजम होकर शरीर में लग जाय और पेट में भारीपन का अनुभव न हो । भोजन की सात्विकता का ध्यान रखने से आसनों के अभ्यास में शीघ्र सफलता मिलती है ।

(११) विचारों की शुद्धता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । जो लोग विषय भोग, कामुकता, अश्लीलता के भाव मन में लाते रहते हैं या इस प्रकार की बातचीत या मनोरंजन करते रहते हैं वे कभी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकते । गन्दे या हीन विचार रखना स्वयं ही एक बड़ी बीमारी है । किसी भी उत्तम क्रिया का लाभ तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि उसमें आन्तरिक भावना का भी योग न हो ।

(१२) अनेक बार अधिक समय तक आसन-व्यायाम करने पर भी कोई विशेष शारीरिक लाभ नहीं जान पड़ता । ऐसी दशा में अभ्यासी को साधारण और मन्द गति से आसन करने के बजाय शीघ्रतापूर्वक तीव्र गति से करना चाहिए । वास्तव में सभी प्रकार के व्यायामों में फुर्ती और मुस्तैदी का गुण होना एक आवश्यक बात है । जो व्यायाम ढीलेपन से किया जायेगा उससे कोई लाभ होना कठिन ही है । वैसे योगशास्त्र में आसन का लक्षण यही कहा गया है कि साधक को लगातार निश्चल होकर एक ही अवस्था में बैठे रहना चाहिए । लेकिन वह बात ध्यानात्मक आसनों के लिए है और योगाभ्यासियों के लिए ही उसका पालन करना आवश्यक है । इसके विपरीत जो लोग स्वास्थ्य प्राप्ति की दृष्टि से आसनों का अभ्यास करते हैं उनको कोई एक आसन लगातार देर तक करने के बजाय आसन को जल्दी-जल्दी बदलकर शीघ्रतापूर्वक करना चाहिए । इस प्रकार बार-बार एक आसन की आवृत्ति करने से वह व्यायाम का रूप धारण कर लेता है ।

(१३) नियमितता और समय का ध्यान रखना एक बड़ी उपयोगी और लाभदायक प्रवृत्ति है । जो व्यक्ति इस प्रकार के व्यायाम को महत्त्वपूर्ण समझकर उसे नियत समय पर बिना नागा के करता रहेगा, वही उसका वास्तविक लाभ उठा सकेगा । चाहे जब, कभी कम और कभी अधिक, मनमाने ढंग से व्यायाम कर लेने से उसका लाभ बहुत कम हो जाता है । इसलिए जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक स्वास्थ्यवर्धक व्यायाम एक योजनाबद्ध ढंग से, लगातार, प्रतिदिन ठीक समय पर करते रहने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

(१४) इन सब नियमों का पालन करने के साथ दृढ़ इच्छाशक्ति, पूर्ण विश्वास और आन्तरिक श्रद्धा की भावना रखना भी आवश्यक है । किसी प्रकार का दबाव या विवशता का अनुभव करते हुए व्यायाम करना उसके लाभों को बहुत घटा देता है । इसलिए आसन करते समय मन में प्रसन्नता तथा उत्साह का भाव रखना तथा यह भावना रखना कि उसके द्वारा हमारी शारीरिक और मानसिक उन्नति तो हो रही है, साधारण आसन के लाभ बहुत बढ़ा देता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आसन क्यों ? और कैसे ?

यम नियमों द्वारा अन्तः चेतना की सफाई के साथ-साथ शरीर और मन को बलवान बनाने की आवश्यकता है । चिकित्सा द्वारा शरीर में से बीमारी को हटा देने के पश्चात रोगी को अच्छे भोजन की भी व्यवस्था करनी पड़ती है । फूटे हुए बर्तन के छेद बन्द कर देने के उपरान्त उसमें जल आदि भर देते हैं । खेती को जंगली पशुओं से रखाना आवश्यक है, पर इतने से ही काम नहीं चल सकता । अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए खेत में खाद देना और सींचना जरूरी है । योग साधना ऐसी ही खेती है जिसे यम-नियम द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, लोभ, मलीनता, तृष्णा, आलस्य, अज्ञान सरीखे दस जंगली पशुओं से रक्षा करनी होती है और आसनों का खाद तथा प्राणायाम का पानी देना होता है तभी सन्तोषजनक प्रगति होती है ।

आसनों की बाह्य रूपरेखा व्यायाम से मिलती-जुलती है, जिस प्रकार डण्ड-बैठक, ड्रिल आदि से कसरत होती है वैसी ही क्रिया पद्धति आसनों में देखी जाती है । स्थूल दृष्टि से देखने में आसनों की परिपाटी व्यायाम की आवश्यकता पूर्ति के लिए बनाई गई प्रतीत होती है । अतएव यह प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है कि जो लोग पहलवानी करते हैं, डण्ड-बैठक करते हैं, हॉकी, फुटबाल खेलते हैं या कड़ी मशक्कत करके जीविका उपार्जन करते हैं उनके लिए आसनों की क्या आवश्यकता है ? व्यायाम तो अन्न, जल, निद्रा की भाँति साधारण दैनिक क्रिया है, जब खान-पान, शयन, स्नान आदि की चर्चा नहीं की गई है, तो व्यायाम में ही ऐसी क्या विशेषता थी जो उसको योग साधना में प्रमुख स्थान दिया गया ?

विवेचना के पश्चात विदित हुआ है कि आसनों का गुप्त आध्यात्मिक महत्त्व है, इन क्रियाओं से उन सूर्य चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र आदि, सूक्ष्म मर्म ग्रन्थियों का जागरण होता है और कई मानसिक शक्तियों का असाधारण रूप से विकास होने लगता है, इसके साथ-साथ उच्च कोटि का शारीरिक व्यायाम तो यह है ही । आसनों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यायाम ऐसा नहीं है जिससे शरीर के सभी अंगों की यथोचित कसरत हो जाय । डण्ड-बैठक आदि में हाथ-पाँवों को अधिक मेहनत करनी पड़ती है, कभी-कभी यह मेहनत इतनी अधिक हो जाती है कि उन स्थानों के भेद तन्तु फट जाते हैं जिससे वहाँ के अंग कठोर, निर्जीव तथा बेडौल हो जाते हैं, जितनी फुर्ती और चैतन्यता चाहिए उतनी नहीं रहती । इस प्रकार एक ओर तो किन्हीं खास अंगों को आवश्यकता से अधिक कार्य करना पड़ता है और दूसरी ओर कुछ अंग बिना कसरत से ही छूट जाते हैं । इसलिए कई व्यायाम पहलवानी और मजबूती की दृष्टि से अच्छे होते हुए भी सर्वांगीण स्वस्थता की दृष्टि से निकम्मे ही ठहरते हैं । यह कमी आसनों में नहीं है, उनका विधान इस प्रकार का है कि प्रायः सभी अंगों का यथोचित मात्रा में व्यायाम हो जाता है ।

पहलवानी के लिए राजसिक और अधिक मात्रा में आहार की आवश्यकता है । जिनको पहवानों के निकट रहने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि कितनी अधिक मात्रा में और कितने बढ़िया भोजन की उन्हें आवश्यकता होती है । योगाभ्यास में यह सब वांछनीय नहीं, राजसिक आहार से वृत्तियाँ भी राजसिक बनती हैं, योगी को सात्विक आहार की आवश्यकता होती है ताकि उससे उत्पन्न हुआ रस रक्त सात्विकता को उत्पन्न करे । सात्विक आहार में उतनी ताकत नहीं होती है जितनी कि राजसिक में होती है, दूसरे अध्यात्म मार्ग में स्वल्पाहार की प्रधानता है, पहलवानों में उससे तिगुनी-चौगुनी खुराक चाहिए, इसलिए भी योग साधकों के लिए अन्य व्यायामों की अपेक्षा आसन ही अधिक उपयोगी बैठते हैं, इनमें इतनी शक्ति खर्च नहीं होती जिसकी पूर्ति के लिए राजसिक आहार को अधिक मात्रा में लेने की आवश्यकता पड़े ।

सभी मनुष्यों की शरीर रचना ऐसी नहीं होती कि वे कड़े व्यायामों का लाभ उठा सकें । जिनकी शक्तियाँ मस्तिष्क में होकर खर्च होती रहती हैं ऐसे बुद्धिजीवी लोग आमतौर से कमजोर शरीर के होते हैं, दो व्यक्तियों के साझे की एक रोटी हो और उसमें से एक अधिक खा जाय तो दूसरे को स्वभावतः कुछ भूखा रहना पड़ेगा, यही बात मानसिक कार्य करने वालों के सम्बन्ध में है, उनके शरीर को कुछ निर्बल रहना ही पड़ता है । इस युग में अशुद्ध, मिलावटी और छोटे दर्जे की खाद्य सामिग्री के ऊपर आम जनता को निर्वाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना पड़ता है, बाल-विवाह, कुसंग, अश्लील साहित्य, सिनेमा आदि के कुप्रभावों के कारण तथा नाना प्रकार की सांसारिक, शारीरिक, मानसिक आदि व्याधियों के कारण, सर्वसाधारण का स्वास्थ्य बहुत ही गिरे दर्जे का हो गया है । कई व्यक्ति स्वास्थ्य सुधार के लिए व्यायाम आरम्भ करते हैं, पर उन्हें यह बहुत ही असुविधाजनक होता है, थोड़े से डण्ड-बैठक करने से उनकी नसें दुखने लगती हैं, देह में दर्द होने लगता है, किसी प्रकार चार छः दिन क्रम जारी रखते हैं पर उनकी असुविधाएँ बढ़ती जाती हैं और अन्ततः उसे छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ता है । जिनकी जीवनी शक्ति इतनी अल्प है कि उससे दैनिक कार्य ही मुश्किल से चल पाते हैं तो फिर व्यायाम को कौन बर्दाश्त करे ?

फैशन, टीम-टाम, सभ्यता, नकलीपन, वैज्ञानिक ऐयाशी और मिथ्या ज्ञान ने हमारे सार्वजनिक स्वास्थ्य को बुरी तरह खा डाला है । चमकीली पोशाक में लिपटी हुई, रोग ग्रस्त ठठरियाँ इधर से उधर चलती डोलती दिखाई पड़ती हैं । इनमें से कितने ऐसे हैं जिनको कठोर व्यायाम की, कुश्ती लड़ने, पहलवानी करने या मुगदर हिलाने की सलाह दी जा सकती है । व्यायाम की अनिवार्य आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता, वह उतना ही जरूरी है जितना खाना और सोना । इन परिस्थितियों में वह औषधि जो योगियों के लिए उपयोगी थी सर्वसाधारण के लिए भी सर्वश्रेष्ठ बन गई है । अमृतधारा हैजे को रोकने में अच्छा काम करती है, पर बिच्छू के काटे पर भी उसका आश्चर्यजनक फल होता है । योग साधकों को आसनों से अपनी स्वास्थ्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है, पर आज की अयोगी जनता के लिए भी आसनों का व्यायाम आमतौर से बहुत ही उपोगी और हितकर होगा । इस प्रकार इस युग का सर्व दुर्लभ, सर्वोपयोगी, सर्वश्रेष्ठ और सार्वजनिक व्यायाम 'आसन' ही हो सकता है ।

हमारे पूज्यनीय पूर्वजों ने प्रकृति के सूक्ष्म नियमों का बारीकी के साथ निरीक्षण करके आसनों की रचना की है । अनेक पशु-पक्षी प्रकृति की प्रेरणा से अपनी चैतन्यता को बढ़ाने के लिए एक विशेष प्रकार से अपने अंग-प्रत्यंगों को ऐंठते, मरोड़ते या तानते हैं । कुत्ता जब सोकर उठता है तो पाँवों को जमाकर धड़ को पीछे की ओर तानता है और फिर आगे की ओर हो जाता है । बिल्ली चारों पाँवों को इकट्ठा करके धड़ को ऊपर उठाती है, पशु-पक्षियों की इन विभिन्न व्यायाम क्रियाओं का निरीक्षण करके उन्हीं के नाम पर आसनों के नाम रखे गए हैं । जैसे—मयूरासन, कुक्कुटासन, मत्सासन, शलभासन, उष्ट्रासन, विडालासन, सर्पासन आदि । यह प्राणी प्रकृति माता का आदेश सुनते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं । प्रकृति ने जीवन रक्षा और निरोगता की शिक्षा हर एक प्राणी को दे रखी है । आसनों से स्नायुओं का खिंचाव होता है, जिससे उनका विकास होता है, उनमें दृढ़ता आती है, और रक्त प्रवाह शुद्ध हो जाता है । इससे शरीर की सुस्ती दूर हो जाती है, चैतन्यता आकर किसी भी कार्य में उत्साह होता है ।

साधारणतः व्यायाम का उद्देश्य शरीर को बलवान बनाना है । परिश्रम करने से माँसपेशियाँ, पुट्ठे, नाड़ी संस्थान, मज्जा तन्तु मजबूत होते हैं, उनमें दृढ़ता और समता बढ़ती है । आसनों में यह गुण तो हैं ही साथ में चैतन्यता का लाभ विशेष है । सुस्ती दूर होकर स्फूर्ति, उत्साह, सजीवता, प्रफुल्लता का संचार खास तौर से होता है, काम में मन लगता है, देह हल्की रहती है, सुस्ती, भारीपन और जी उचटने की शिकायतों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है । जो लोग जीवन निर्वाह के लिए थका देने वाला कठोर परिश्रम करते हैं या अन्यान्य व्यायाम पद्धतियों को अपनाये हुए हैं उन्हें भी आसनों की आवश्यकता है ।

आसनों के लिए प्रातःकाल का समय सबसे श्रेष्ठ है । ब्रह्म मुहूर्त में नित्यकर्म से निवृत्त होकर आसनों के लिए तैयार होना चाहिए । यदि स्नान सबेरे ही करना हो तो आसनों से पहले कर लेना चाहिए अन्यथा उसके बाद आध घण्टे तक ठहरना चाहिए, जब तक कि शरीर की बढ़ी हुई गर्मी शान्त न हो जाय । समतल भूमि पर चटाई बिछाकर आसनों के लिए बैठना चाहिए । हल्की बनियान और ढीला जांघिया शरीर पर रहना पर्याप्त है, अधिक और चुस्त कपड़े पहने रहने से एक तो अंगों के संचालन में बाधा पड़ती है दूसरे उस समय शरीर से निकलने वाली गन्दी वायु के बाहर जाने और उसके स्थान पर नवीन स्वच्छ वायु के आने में बाधा उपस्थित होती है, अतएव यही उचित है कि लज्जा निवारण कि लिए जांघिया और हवा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनावश्यक तेजी तथा सर्दी-गर्मी से छाती को बचाने के लिए बनियान पहन रखी जाय ।

आसनों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) खड़े होकर किए जाने वाले, (२) बैठकर किए जाने वाले (३) लेटकर किए जाने वाले । खड़े होकर किए जाने वालों में हाथ-पैर और कमर का परिश्रम अधिक होता है । बैठकर किए जाने वालों में पीठ, गर्दन, कंधे अधिक श्रम करते हैं और लेटकर किए जाने वालों में पेट, छाती, गले को अधिक मेहनत करनी पड़ती है । देखना चाहिए कि हमारे दैनिक कार्यक्रम में किन अंगों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और किनको कम । जिन अंगों को अधिक कार्य करना पड़ता हो उनके लिए व्यायाम की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि कम कार्य करने वाले अंगों के लिए है । यों तो हर एक आसन में हर एक अंग को कुछ न कुछ मेहनत करनी पड़ती है, इसलिए छूटने तो कोई भी नहीं पाता, परन्तु प्रश्न अधिकता और न्यूनता का है । जो अंग कम काम करता है या अधिक निर्बल है, उसे सतेज एवं पुष्ट करने की विशेष आवश्यकता है । मध्यम मार्ग भी यही है कि अधिक कार्य करने वाले को आराम दिया जाय अन्यथा अधिक श्रम की गर्मी से वह गलने और विकृत होने लगेगा । इसी प्रकार कम काम करने वाले से परिश्रम कराया जाये, वरना वह मंद, क्रियाहीन, निकम्मा और कमजोर होकर बीमारियों का घर बन जायेगा ।

अनुभवियों का कथन है कि कमजोर, वृद्ध और बुद्धिजीवी लोगों को लेटकर किए जाने वाले आसन अधिक उपयोगी हैं, जिनके उदर तथा वक्ष में निर्बलता है, भूख कम लगती है, दस्त साफ नहीं होता, कफ, खाँसी, जुकाम आदि की शिकायत बनी रहती है उन्हें पेट पर दबाव डालने वाले आसन खासतौर से करने चाहिए । खड़े और बैठकर की जाने वाली क्रियाएँ उनके लिए गौण हैं, उनमें कम समय लगाया जाय और थोड़ा श्रम दिया जाय तो भी ठीक है ।

आसनों सम्बन्धी अनेक भारतीय और विदेशी पुस्तकें हमने पढ़ी हैं तथा इस विषय के सैकड़ों अनुभवी व्यक्तियों से काफी वार्तालाप किया है । (१) आसन कितने हैं ? (२) उनके क्या नाम हैं ? (३) कौन-सा आसन किसके लिए उपयोगी है ? इन तीन प्रश्नों पर सबके मत हमें एक दूसरे से भिन्न और विपरीत मिले हैं । एक क्रिया को अमुक पुस्तक में अमुक नाम से बताया गया है, और उसके अमुक लाभ बताये गए हैं, किन्तु दूसरी पुस्तक उसका नाम और गुण दूसरा ही बताती है । इसी प्रकार अनुभवी व्यक्तियों के अनुभव एक-दूसरे से विपरीत हैं । संख्या के बारे में कुछ ठिकाना नहीं । किसी पुस्तक में सत्ताईस, किसी में पचपन, किसी में चौरासी, किसी में एक सौ बत्तीस उनकी संख्या है । एक ही नाम के आसन की क्रियाएँ अलग-अलग तरह से पायी जाती हैं, कई-कई भेद-उपभेद भी मिलते हैं । इस प्रकार हमारी गणना में ८७३ भारतीय आसन प्राप्त हुए हैं, सम्भव है कि यह गणना अधूरी हो और कोई दूसरे सज्जन इससे भी अधिक ढूँढ़ सकें । यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के अन्यान्य देशों के आसन करीब साढ़े छः हजार तक पहुँचते हैं, इसके अतिरिक्त जो और भी होंगे उनके बारे में कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता ।

विचार करने से प्रतीत होता है कि कसरत की कोई विधि पत्थर की लकीर नहीं है । सम्भव है शुरू-शुरू में दो चार ही आसन रहे हों, पीछे अनुभव द्वारा उनकी संख्या बढ़ती गई और चौरासी हो गई । चौरासी आसन प्रसिद्ध हैं, पर अब तो अनुभव ने उनकी संख्या इससे भी अनेक गुनी कर दी है और आगे-आगे बढ़ती ही जायेगी । मानव शरीरों की बनावट एक-सी नहीं होती, उनमें फर्क पाया जाता है । इस फर्क के आधार पर आहार और विहार की अनुकूलता में भी अन्तर आता है । एक आदमी को उर्द की दाल बलवर्धक और स्वादिष्ट प्रतीत होती है, दूसरे को वह अरुचिकर तथा पेट फुला देने वाली साबित होती है । एक व्यक्ति को सर्दी सह्य होती है, गर्मी नहीं, किन्तु दूसरा गर्मी में सुखी रहता है और सर्दी में कष्ट अनुभव करता है । यही बात व्यायामों के सम्बन्ध में है, किसी की नसें इतनी कड़ी होती हैं कि वे अमुक मर्यादा तक ही मुड़ सकती हैं, किन्तु किसी का शरीर बहुत लचीला होता है, उसे काफी झुकाया या मोड़ा जा सकता है । जिन आसनों में शरीर को अधिक मोड़ने की आवश्यकता है वे लचीली बनावट के लोगों के लिए सुलभ हैं, किन्तु जिनकी नसें कड़ी एवं कठोर हैं उनके लिए दूसरी किस्म के आसन हितकर होंगे । इस भिन्न प्रकृति के आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर अनुभवियों को नये-नये आसनों की रचना करनी होती है ।

किस व्यक्ति के लिए कौन-सा आसन हितकर होगा इसका निर्णय करने से पूर्व उसकी शरीर रचना, प्रकृति, दिनचर्या, स्वास्थ्य आदि का निरीक्षण करना होता है । अमुक व्यक्ति को कौन-सा आसन करना अधिक हितकर होगा इसका ठीक-ठीक निर्णय क्षणमात्र में कोई बिरले ही अनुभवी कर सकते हैं, पर ऐसे अनुभवियों से हर एक का सम्पर्क होना सुलभ नहीं, ऐसी दशा में सबसे अच्छा मार्ग यह है कि अभ्यासी अपने अनुभव द्वारा अपना मार्ग निर्धारित करे । आसनों के चित्रों वाली दर्जनों पुस्तकें और तस्वीरें बाजार में बिकती हैं, इनमें से दो-चार खरीद लेनी चाहिए और देखना चाहिए कि इनमें से कौन-सा आसन हमारी शरीर रचना और आवश्यकता के अनुकूल पड़ता है । किसी आसन का प्रयोग करते समय बारीकी के साथ यह देखना चाहिए कि इसका दबाव किन-किन अंगों पर कितना-कितना पड़ता है । एक-दो दिन के प्रयोग से उसके द्वारा होने वाले नफा-नुकसान का भी आभास मिलने लगता है उन सब बातों को ध्यान में रखते हुए किन्हीं उपयोगी आसनों को अपने लिए चुनना चाहिए । उनकी संख्या चार-पाँच से अधिक नहीं होनी चाहिए । नित्य आप दस प्रकार के आसन लगावें इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । पेट, छाती, पीठ, कमर, कंधे, गर्दन, हाथ पैरों का यथोचित परिश्रम जिनमें हो जाय ऐसे चार पाँच आसनों से भी काम चल सकता है ।

आसनों की अनेक किस्में इसलिए नहीं हैं कि इनमें से हर एक का अभ्यास करना चाहिए वरन् इसलिए हैं कि इनमें से जो जिसे अनुकूल पड़े वह उन्हें काम में लाए । बजाज की दुकान पर सैकड़ों किस्म के कपड़े होते हैं, उनमें आपको जो रुचे उसे खरीद सकते हैं । यह जरूरी नहीं कि दुकान के सब कपड़े आपको पहनने ही पड़ें, जो कपड़ा आपको अच्छा जँचता है सम्भव है वह दूसरों को बुरा लगे और यह भी सम्भव है कि दूसरे लोग जिसे बढ़िया समझते हैं वह आपको रद्दी प्रतीत हो । आसनों के बारे में भी यही बात है । शीर्षासन की तारीफ सब ओर सुनी जाती है । बहुत लोगों को वह बहुत लाभदायक होता है, परन्तु हमने ऐसे लोगों को भी देखा है जो शीर्षासन से मस्तिष्क में अत्यधिक रक्त पहुँच जाने के कारण गर्मी बढ़ गई और वे पागल हो गए, कई को निद्रानाश, चिड़चिड़ापन, नेत्रों में जलन आदि का शिकार हो जाना पड़ा । इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि शीर्षासन बुरा है, बुराई आसन में नहीं, वह प्रकृति के अनुकूल आसन का चुनाव न करने में है । शीत प्रकृति के मस्तिष्क में रक्त की उष्णता पहुँचाने से उसमें लाभ होता है, किन्तु जो दिमाग गर्मी से जला करते हैं, जिनमें पहले से ही रक्त का दवाब अत्यधिक है उनके लिए शीर्षासन उपयोगी नहीं हो सकता । इसी प्रकार अन्य आसनों का विषय हैं, उनका चुनाव भी सावधानी से होना चाहिए और यह भी निश्चित है कि जितना अच्छा चुनाव अपने लिए खुद किया जा सकता है उतना दूसरा कोई नहीं कर सकता । कारण यह है कि अपने बारे में जितनी जानकारी खुद को होती है, उतनी दूसरों को नहीं होती ।

जिन्हें पुराने आसनों में से कोई अनुकूल न पड़ता हो या उनकी अधिक जानकारी न हो वे अपनी बुद्धि से नये आसनों का आविष्कार कर सकते हैं । आसन दो प्रकार के हैं—एक वे जिनका सम्बन्ध व्यायाम से है, दूसरे वे जो ध्यान योग की साधना के लिए सुखपूर्वक अधिक समय तक बैठे रहने के लिए हैं । ध्यान योग वाले आसनों की चर्चा हम आगे करेंगे । यहाँ तो व्यायाम सम्बन्धी प्रक्रियाओं की ही चर्चा हो रही है । इस प्रकार के आसनों का सिद्धान्त यह है कि एक साधारण स्थिति में लेटना, बैठना या खड़ा होना चाहिए । फिर अमुक अंगों को अमुक मर्यादा तक धीरे-धीरे तानते हुए ले जाना चाहिए, मर्यादा पर पहुँचकर कुछ देर ठहरना चाहिए तदुपरान्त धीरे-धीरे पूर्वक्रिया को वापस लौटाते हुए साधारण स्थिति पर पहुँच जाना चाहिए । कुछ देर साधारण स्थिति पर रहकर पुनः उसी प्रक्रिया को दुहराना चाहिए, इस प्रकार एक आसन को कई बार करना चाहिए ।

ध्यान रखने की बात यह है कि झटके से किसी आसन को नहीं करना चाहिए । धीरे-धीरे एक समान गति से अंगों को एक से तनाव के साथ नियत मर्यादा तक ले जाना चाहिए और फिर कुछ ठहर कर जब वापस लौटने लगें तो उसी प्रकार धीरे-धीरे, समान गति और समान तनाव के साथ लौटना चाहिए जैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि आसन को आरम्भ करते समय था । दबाव की जो अन्तिम मर्यादा नियत की गई है आरम्भ में उसे कुछ नीचा ही रखना चाहिए और फिर धीरे-धीरे अधिक आगे बढ़ते जाना चाहिए । आसनों की संख्या में भी यथाक्रम वृद्धि करनी चाहिए । प्रारम्भ में जिस प्रक्रिया को चार बार किया जाता है, धीरे-धीरे उसे पाँच, छः, आठ, दस, बीस आदि तक सुविधानुसार बढ़ाना चाहिए । प्रारम्भ में यदि दस मिनट अभ्यास किया जाय तो उसे धीरे-धीरे दो-चार मिनट बढ़ाते हुए घण्टे, आधा घण्टे तक ले जाना चाहिए । प्रारम्भ में ही अधिक समय लगाना उचित नहीं जिससे देह में दर्द होने लगे और दूसरे ही दिन अभ्यास को कम करने या बन्द करने के लिए विवश होना पड़े । यथाक्रम आगे बढ़ना ही उचित है, जिससे यात्रा निरन्तर आगे बढ़ती चले । रोगी और गर्भिणी स्त्रियों को व्यायाम का निषेध किया गया है—यह प्रतिबन्ध कठोर आसनों के लिए है । पीठ के बल लेटकर धीरे-धीरे अंग परिचालन करके हल्के आसनों का उपयोग वे भी कर सकते हैं । अपनी शक्ति और आवश्यकता का ध्यान रखते हुए इस पद्धति को अपनाना कभी हानिप्रद नहीं हो सकता ।

बैठने के कई आसन ऐसे हैं जिनमें एक प्रकार का बन्ध बँध जाता है । अमुक अंग से अमुक अंग को जकड़कर इकट्ठा कर दिया जाता है और कुछ देर उसी दशा में जकड़े रहना पड़ता है । मत्स्येद्रासन, जानु शिरासन, द्विहस्त, भुजासन, वातायनासन, पश्चिमोत्तान, कुक्कुटासन, गर्भासन जैसे आसन इसी प्रकार के हैं । इन आसनों पर अधिक देर न बैठना चाहिए । अनुभव के पश्चात इनकी विशेष उपयोगिता साबित नहीं होती । किसी खास अंगों पर तनाव तो इनसे पड़ता है, पर पेशियों का आकुंचन, प्रसारण तथा रक्त की चाल का तीव्र होना इनमें नहीं होता । कोई अंग अकड़ गया हो, नसों में कठोरता आ गई हो तो उन्हें तानने के लिए इनका उपयोग है, यह विशेष परिस्थिति के आसन हैं, साधारण अवस्था के नहीं ।

लेटकर किए जाने वाले आसनों में सर्वांगासन, मयूरासन, मत्स्यासन, दण्डासन, सर्पासन, धनुरासन आदि की उपयोगिता उदर के अंग-प्रत्यंगों के संचालन के लिए है । इनसे पेट, छाती, यकृत, फुफ्फुस तथा जंघाओं की कसरत हो जाती है । मध्यम बल के लोगों के लिए, कमजोरों के लिए, छुटपुट बीमारी की अवस्था में यह उत्तम हैं । इनमें अधिक दबाव नहीं पड़ता और जितनी शक्ति हो उसी के अनुसार धीरे-धीरे इन्हें आसानी के साथ किया जा सकता है ।

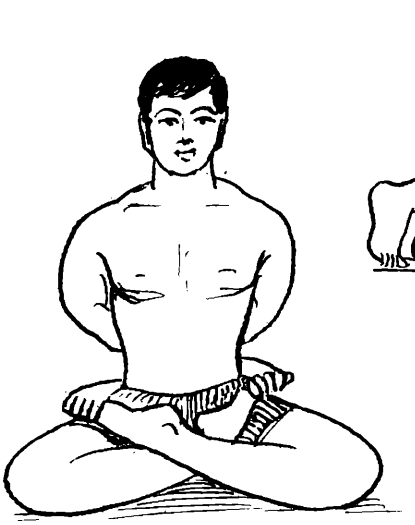
खड़े होकर हस्त पादांगुष्टासन, गरुड़ासन, वातायनासन, पादहस्तासन, उत्कटासन, ताड़ासन आदि आसन किए जाते हैं । इनसे पीठ, कंधे, रीढ़, जांघ, पिंडली तथा भुजाओं पर जोर पड़ता है और इन अंगों की भली प्रकार कसरत हो जाती है । खड़े होकर किए जाने वाले आसनों में अपेक्षाकृत शरीर पर अधिक श्रम पड़ता है । जिनका शरीर अच्छे स्वास्थ्य वाला है उनके लिए यह उपयोगी रहते हैं ।

वैसे तो हर एक आसन से शरीर के हर एक अंग पर थोड़ा-बहुत बल पड़ता है, पर अधिक मात्रा में उनका प्रभाव उपरोक्त प्रकार से ही होता है, इस पुस्तक के आरम्भ में दिए गए चित्रों में पाठक आसनों का कुछ परिचय प्राप्त कर सकते हैं और अपनी सुविधा तथा शरीर रचना के अनुसार जो उपयोगी पड़े उन्हें अपने लिए चुन सकते हैं । साधारणतः बैठकर किए जाने वाले आसनों में पश्चिमोत्तान तथा वद्ध पद्मासन, लेटकर किए जाने वालों में सर्वांगासन, मयूरासन, सर्पासन, धनुरासन और खड़े होकर किए जाने वालों में ताड़ासन, पाद हस्तासन, उत्कटासन उपयोगी हैं । यह नौ आसन प्रतिदिन करने योग्य हैं और अधिकांश व्यक्तियों के लिए उपयोगी पड़ते हैं । जो उपयोगी न पड़े उसे छोड़ देना चाहिए और इनके अतिरिक्त भी हजारों प्रचलित आसनों में से कोई हितकर प्रतीत हो तो उसे अपना लेना चाहिए ।

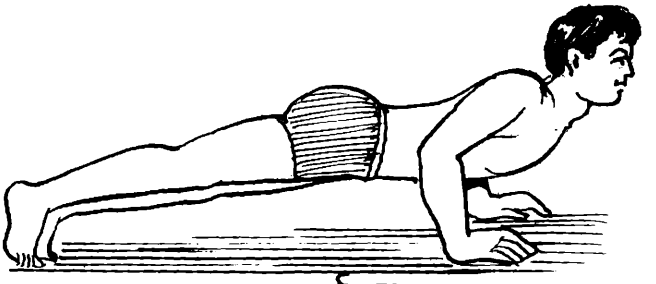
शीर्षासन—जिसे विपरीत करणी मुद्रा भी कहते हैं—की उपयोगिता के सम्बन्ध में बहुत सावधानी से परीक्षण करने की आवश्यकता है । पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में शीर्षासन की तारीफ में बड़े-बड़े लम्बे-चौड़े लेख निकलते हैं । यह गम्भीरतापूर्वक देखना चाहिए कि कितने लेखक इनमें से कलम-कौशल के धनी हैं और कितने वास्तविक अनुभवी हैं । आजकल लोगों के स्वास्थ्य बहुत ही निर्बल देखे जाते हैं, नाड़ियों की धारणा शक्ति स्वल्प होती है और उनमें रक्त बहुत न्यून मात्रा में बहता है । ऐसे लोग यदि शीर्षासन पर अधिक जोर देंगे तो शरीर का रक्त अनावश्यक मात्रा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

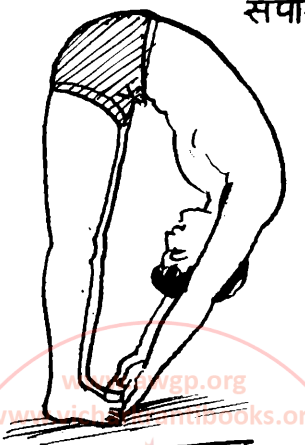
www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



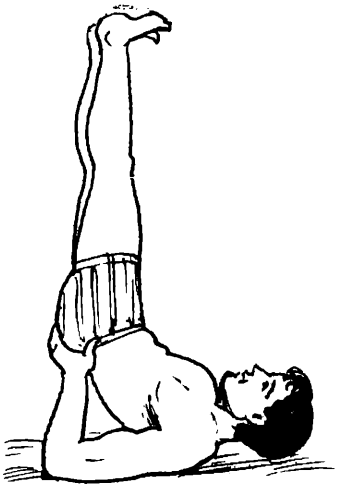
वद्धपद्मासन



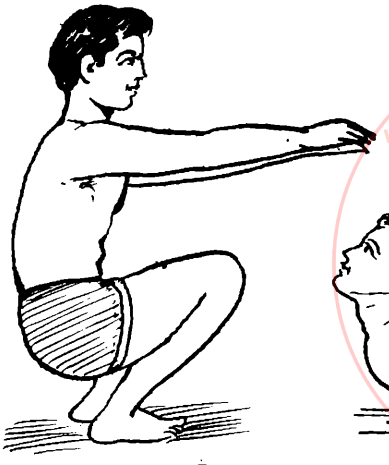
सर्पासन



पादहस्तासन



सर्वाङ्गासन



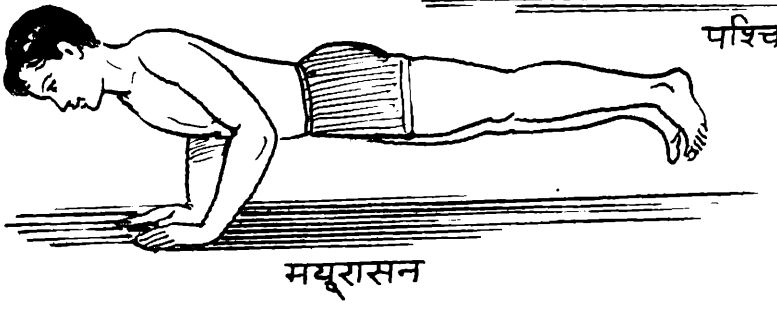
उत्कटासन



धनुरासन



पश्चिमोत्तानासन



मयूरासन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में मस्तिष्क में पहुँचकर दिमाग के निर्बल तन्तुओं में अधिक उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है जिससे अनिद्रा, सिर दर्द, क्रोध, नेत्रों में सुर्खी आदि उपद्रव खड़े हो सकते हैं । हमारे अनुभव में कई ऐसे साधक आये हैं जिन्हें शीर्षासन के कारण उपरोक्त प्रकार की हानि उठानी पड़ी है । इसलिए हम अपने पाठकों को सावधान करते हैं कि किसी अनुभवहीन व्यक्ति के कहने या किसी लेख के पढ़ने मात्र से प्रभावित होकर शीर्षासन साधना की उतावली न करें । बलवान व्यक्तियों के लिए पूर्वकाल में जो आसन बहुत ही लाभदायक थे, सम्भव है कि आज की परिस्थितियों में निर्बल व्यक्तियों को लाभप्रद न बैठें । हमारे अनुभव में सर्वांगासन की उपयोगिता बहुत है, इससे शीर्षासन की बहुत कुछ आवश्यकता पूरी हो जाती है । वैसे हम शीर्षासन के विरोधी नहीं हैं, हमारी सम्मति तो इतनी ही है कि इस अभ्यास को बहुत थोड़ी मात्रा में धीरे-धीरे आरम्भ करना चाहिए और यदि वह अपनी प्रकृति के अनुकूल जँचे तो ही उसके लिए आगे प्रयत्न जारी रखना चाहिए । सूर्य नमस्कार की व्यायाम पद्धति भी बहुत उपयोगी साबित हो रही हैं, जिनसे यह बन पड़े अवश्य अपनावें ।

अन्य आसन

पिछले पृष्ठों में हम बता चुके हैं कि आसनों का प्रधान उद्देश्य शारीरिक व्यायाम है । साथ-साथ कुछ योग चक्रों का जो जागरण हो जाता है वह अतिरिक्त लाभ है । अन्य असंख्य प्रकार के व्यायाम, खेल आजकल प्रचलित हैं इनमें भी उपरोक्त दोनों लाभ न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होते ही हैं । जिन्हें आसनों में रुचि न हो वरन् अन्य प्रकार के व्यायामों में दिलचस्पी हो वे उस मार्ग से भी शरीर को सुदृढ़ बनाने के मूल उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं । पृष्ठ १३ पर कुछ ऐसे आसनों के चित्र दिये जा रहे हैं जो सभी के लिए समान रूप से उपयोगी हैं ।

स्वास्थ्य-रक्षा के उपयोगी आसन

जैसा हम बतला चुके हैं आसन कई प्रकार से किए जाते हैं, जिनमें खड़े होकर, बैठकर, लेटकर और उल्टे होकर—ये चार श्रेणियाँ हैं । अभ्यास करने वाले को जिस अभ्यास की पूर्ति करनी हो उसी के अनुकूल आसनों का चुनाव करना चाहिए । उदाहरण के लिए जो लोग शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि करना चाहें उनके लिए एक प्रकार के आसन हितकारी रहते हैं, जो किसी विशेष शारीरिक त्रुटि या बीमारी को मिटाना चाहें उनके लिए दूसरी प्रकार के आसन उपयोगी सिद्ध होंगे और जो वृद्धावस्था में उत्पन्न होने वाली निर्बलता तथा अंगों के विकार के बचना चाहें उनके लिए तीसरी प्रकार के आसन सहायक हो सकेंगे । हम आगे इन तीनों प्रकार के आसनों का विधि और लाभों सहित वर्णन करेंगे जिनमें से पाठक अपनी आवश्यकतानुसार एक या अधिक प्रकार के आसनों का निर्वाचन कर सकते हैं ।

जिन लोगों की शारीरिक अवस्था सामान्य रूप से ठीक है, जिनमें अभी विशेष निर्बलता उत्पन्न नहीं हुई है, उनके लिए खड़े होकर किए जाने वाले आसन अधिक उपयुक्त होंगे । इनको आसनों के बजाय व्यायाम कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि इनमें शरीर की माँसपेशियों तथा स्नायुओं पर तनाव डालकर उनकी शक्ति को बढ़ाना ही मुख्य उद्देश्य होता है । हम जिस प्रकार अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं उसके फलस्वरूप शारीरिक अंगों में कुछ विजातीय द्रव्य उत्पन्न होता है । हमारी रक्त-संचार प्रणाली इस दूषित तत्व को बहाकर शरीर के बाहर निकालने की व्यवस्था करती है, पर तो भी आयु वृद्धि के साथ उसका कुछ अंश शारीरिक जोड़ों के स्थान पर रुक कर इकट्ठा होने लगता है । यही एकत्रित मल (विजातीय द्रव्य) समयानुसार तरह-तरह की त्रुटियों और व्याधियों को उत्पन्न करता है । आसन व्यायामों द्वारा उन जोड़ों (सन्धि स्थानों) का उचित रीति से संचालन हो सकता है जिससे उस मल के वहाँ से हटाकर बाहर निकलने में सहायता मिलती है । इससे शरीर शुद्ध और निर्मल होकर व्याधियों का भय जाता रहता है और स्वास्थ्य के स्थिर रहने में बहुत सहायता मिलती है ।

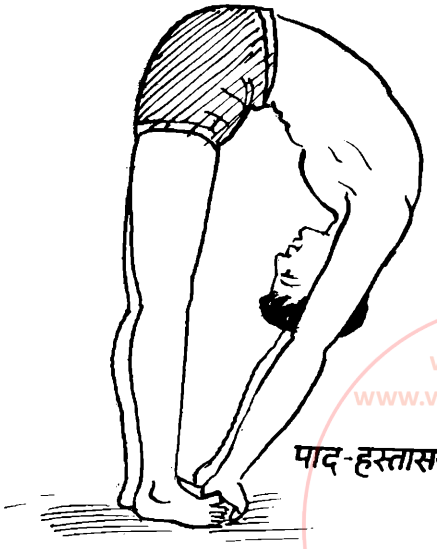
(१) पाद-हस्तासन

मानव शरीर में प्राथमिक आवश्यकता के सबसे कार्यशील अंग, पाचन-संस्थान तथा मल-निष्कासन यन्त्र हैं । यदि ये दोनों अपना काम ठीक ढंग से पूरा करते हैं तो शरीर के अन्य अंगों को उचित पोषण मिलता रहेगा और वे अपना काम उचित रीति से कर सकने में समर्थ हो सकेंगे । 'पाद-हस्तासन' इन दोनों अंगों को ठीक व्यायाम कराके कार्यक्षम बनाये रखने का बड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तम साधन है । यह एक ऐसा सरल व्यायाम है जो बालक से बूढ़े तक सबके लिए समान रूप से उपयोगी है । इसलिए इसे सामान्य रूप से स्कूलों में विद्यार्थियों से कराया जाता है और फ़ौज में सिपाही भी इसे करते हैं । यद्यपि वहाँ 'आसन' के बजाय इसके नाम भिन्न-भिन्न हैं और विधि में भी थोड़ा-सा अन्तर कर दिया जाता है, पर उसका आधार यह 'पाद-हस्तासन' ही होता है ।



पाद-हस्तासन

इस आसन का अभ्यास करने के लिए पहले तनकर सीधे खड़े हो जाइये और दोनों हाथों को भी ऊपर की तरफ पूरी ऊँचाई पर तान लीजिए । अब हाथों को धीरे-धीरे नीचे की तरफ झुकाकर जमीन की तरफ ले जाइये और दोनों पैरों के अँगूठे को पकड़ लीजिए । इस समय खास ध्यान यह रखा जाय कि दोनों पैर बिल्कुल तने रहें और घुटने जरा भी मुड़ने न पावें । इसके पश्चात सिर को भी हाथों के बीच में होकर घुटनों की तरफ झुकाया जाय यहाँ तक कि नाक घुटनों से छू जाय ।

यह इस आसन की पूर्ण अवस्था है । यह आवश्यक नहीं कि आप पहले ही दिन पैरों के अँगूठों को पकड़ लें और सर को घुटनों में भी लगा लें । ये सब अभ्यास क्रमशः ही करने चाहिए । आरम्भ में हाथों की उँगलियाँ पैरों के अँगूठों के पास न पहुँच सकें तो जहाँ तक पहुँच सकें वहीं तक ले जाइये और प्रतिदिन उसे अधिक नीचे ले जाने का प्रत्यन करते रहिये । दस-बीस दिन कोशिश करते रहने पर आप अँगूठों को पकड़ने लग जायेंगे । इसके बाद माथे को घुटनों से लगाने का प्रयत्न कीजिए । इसमें भी एक-दो महीने का समय लग सकता है । नई उम्र के लड़के जिनके अंग अभी लचकदार हैं, इसे एक-दो सप्ताह में ही करने लग जायेंगे, पर प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था वालों को यदि इसमें कई महीने लग जायें तो भी आश्चर्य नहीं । साथ ही जिन वृद्ध लोगों ने आरम्भिक अवस्था में कभी व्यायाम नहीं किया है अथवा जिन प्रौढ़ लोगों का शरीर विशेष मोटा-ताजा है, उनको पैर के अँगूठे पकड़ने में सफलता न मिले तो कोई हर्ज की बात नहीं । मुख्य तात्पर्य यही है कि उपर्युक्त क्रियाओं को करने की यथासम्भव कोशिश करनी चाहिए । उससे जितना आप कर सकेंगे उतना लाभ मिल ही जायेगा । इस आसन को करते समय पेट को जितना अधिक भीतर की तरफ खींचा जायेगा । उतनी ही इसमें सुविधा रहेगी ।

इस आसन से पैर, कमर, पीठ के स्नायुओं पर खूब खिंचाव पड़ता है और आमाशय तथा मल को निकालने वाली बड़ी आँत पर भी पर्याप्त दबाव पड़ता है । इससे इन अंगों के विकार दूर होकर ये शुद्ध और सशक्त बनते हैं । अजीर्ण, कब्ज और पेट की अन्य अनेक खराबियों के लिए यह आसन अत्यन्त लाभदायक है । इससे जठराग्नि प्रदीप्त होकर भोजन के पचने में सहायता मिलती है और शरीर को उपयुक्त परिमाण में रस और रक्त की प्राप्ति होकर स्वास्थ्य स्थिर रहता है ।

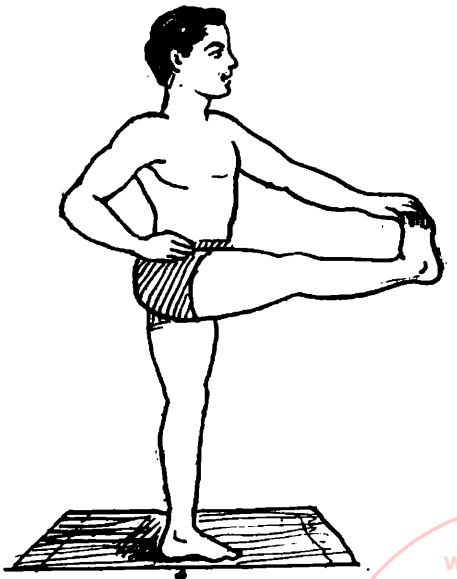
(२) हस्तपादांगुष्ठासन

सीधे खड़े होकर सिर, गर्दन, पीठ और पैरों को बिल्कुल एक सीध में रखिये । छाती सामने की तरफ तनी हुई रहे । अब एक पाँव को धीरे-धीरे इतना ऊपर उठाइये कि वह कमर के साथ समकोण बनाने लगे । दूसरा पैर बिल्कुल सीधा रहे । अब दूसरी तरफ के हाथ से इस उठे हुए पैर के अँगूठे को पकड़िये, पर पैर जरा भी झुके नहीं । इस स्थिति में आधी या एक मिनट रहकर फिर सिर को झुकाइये और यह प्रयत्न कीजिए के मस्तिष्क या नाक घुटने से छू जाय । यह जरूरी नहीं कि यह कार्य एक-दो दिन में ही हो जाये, पर धीरे-धीरे प्रयत्न किया जाता रहे तो एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दो महीने में सफलता मिल सकती है । मस्तिष्क को झुकाते समय पेट को भीतर की तरफ खींचना चाहिए, जिससे झुकने में आसानी रहेगी ।



हस्तपादांगुष्ठासन

जिन लोगों का सिर कमजोर हो या जो अधिक मुटाई के कारण इस आसन में कठिनाई का अनुभव करें उनको चाहिए कि आरम्भ में दीवार का सहारा लेकर खड़े हों और आवश्यकता समझें तो पैर के नीचे किसी कुर्सी या तिपाई का सहारा लगा लें । यदि अधिक अवस्था हो जाने के कारण इस प्रकार खड़े होने में कठिनाई जान पड़ती हो तो लेटकर भी यह व्यायाम किया जा सकता है । उस समय पीठ जमीन पर लगी रहेगी और पाँव को धीरे-धीरे उठाकर सीधा कर लिया जायेगा । इस प्रकार अभ्यास करने में अधिक जोर नहीं पड़ता । किसी कारणवश निर्बल हुए लोगों के लिए इस प्रकार लेटकर आसन करना ही अधिक हितकर सिद्ध होगा । अभ्यास करते समय पहले एक पाँव को फिर दूसरे को क्रमशः उठाना चाहिए ।

यह आसन कुछ कठिन है, इसलिए इसका समय बहुत धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए । आरम्भ में यदि चौथाई मिनट भी खड़े रहा जाय तो कोई हानि नहीं है । धीरे-धीरे शक्ति और अभ्यास के अनुसार दो-तीन मिनट तक खड़े रहने का अभ्यास बढ़ाया जा सकता है । इस आसन से जाँघ, कमर, पीठ, गला आदि के स्नायुओं पर खिंचाव पड़ता है जिससे इन सब अंगों को लाभ पहुँचता है । कमर के दर्द तथा तोंद निकलने में इस आसन से शीघ्र ही फायदा नजर आता है ।

(३) पश्चिमोत्तानासन

यह पाद-हस्तासन से मिलता-जुलता है । अन्तर इतना ही है कि वह खड़े होकर किया जाता है और यह जमीन पर बैठकर । पहले पैरों को सीधा फैलाकर बिल्कुल जमीन से मिलाकर रखा जाये, अर्थात् घुटने उठे या मुड़े न रहें । फिर झुककर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लिए जायें । जिन लोगों का पेट ज्यादा निकला होता है अथवा किसी कारणवश जिनकी रीढ़ की हड्डी में लोच नहीं होती उनको अँगूठे पकड़ने में कठिनाई जान पड़ती है । धीरे-धीरे अभ्यास करने से प्रत्येक मनुष्य इसमें सफल हो सकता है । जब अँगूठे ठीक पकड़ लिए जायें तब कुछ साँस निकालकर मस्तक को घुटनों की तरफ झुकाया जाय और यह प्रयत्न किया जाय कि नाक घुटनों से छू जाय । इस क्रिया में सबसे अधिक ध्यान इसी बात का रखना चाहिए कि घुटने और पैर बिल्कुल सीधे रहकर जमीन से लगे रहें । अगर घुटने थोड़ा भी मुड़कर ऊपर उठ गए तो इस आसन का 'तान' (नसों का तनाव) अधूरा रह जायेगा ।

इसलिए इसकी सरल विधि यही है कि अँगूठे पकड़ने और नाक को घुटनों तक पहुँचाने में शीघ्रता न की जाये, वरन् अपनी शक्ति और शारीरिक स्थिति के अनुसार जहाँ तक पहुँचा जाय उतने से ही अभ्यास करता रहे और धीरे-धीरे दो-चार महीना, जितना भी समय लगे, उतने में ही आसन को पूरा किया जाय । फिर भी अवस्था अधिक हो जाने और हड्डियों का लोच घट जाने से अगर नाक घुटने से न लग सके तो उसकी भी चिन्ता न करें । इस प्रकार के अभ्यासों में स्वाभाविकता का ध्यान रखना आवश्यक है । नसों और हड्डियों पर अधिक जोर डालने से लाभ के बजाय हानि भी हो सकती है । इसलिए अपने शरीर की स्थिति के अनुसार जितना हो सके उतने का ही अभ्यास करते रहना ही पर्याप्त है और उससे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है । जो लोग पेट के निकल आने के कारण इसमें कठिनाई का अनुभव करते हों उनको निराश होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस आसन के अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पेट स्वाभाविक स्थिति में आता जायेगा और कुछ महीनों में स्वमेव सफलता मिल जायेगी ।

शारीरिक स्थिति को सुधारने की दृष्टि से इस आसन को एक बार में चौथाई या आधा मिनट करना काफी है । हाँ, एक बार छोड़कर बार-बार अँगूठा पकड़ने से इसे तीन-चार मिनट तक किया जा सकता है ।

इस आसन से पीठ, पेट और पेडू की हड्डियों तथा नसों पर पूरा तनाव पड़ता है जिससे रक्त का संचार उत्तम रीति से होने लगता है और उनकी त्रुटियाँ दूर होकर स्वास्थ्य की उन्नति होती है । पेट सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने में इस आसन का खास महत्त्व है । अग्निमाँद्य, बदहजमी, अपच आदि की खराबी में इससे बहुत लाभ जान पड़ता है और कोष्ठबद्धता मिटकर शौच साफ आने लगता है । पर जल्दबाजी और अधिकता करने से कब्ज बढ़ भी सकता है ।

(४) भुजंगासन

पहले आसन पर पेट के बल सीधा लेटा जाय जिससे पैर, पेट, छाती और मस्तक जमीन से छूते रहें । आरम्भ में समस्त शरीर को ढीला करके जमीन से पूरी तरह मिला देने की कोशिश करनी चाहिए । उस समय पैरों के तलवे यथा सम्भव सीधे रहें, अर्थात् पैरों की अँगुलियों की नोंक जमीन को छूती रहें । दोनों हाथ कोहनी पर से मोड़कर सीने के पास लगे रहें ।

इसके पश्चात क्रमशः शरीर की पेशियों को संकोच करके सिर और छाती को ऊपर उठाने की चेष्टा की जाय । आरम्भ में इस कार्य में दोनों हाथों से भी सहारा लिया जा सकता है, पर धीरे-धीरे यह प्रयत्न करना चाहिए कि हाथों पर यथासम्भव जोर कम डाला जाय और पीठ की माँसपेशियों का संकोच करके उनकी शक्ति से ही ऊपर शरीर को ताना जाय । शरीर को ऊपर उठाते हुए नाभि को जमीन से दो-डेढ़ इन्च उठा लिया जाता है । उस समय सारे धड़ का भार पेडू के ऊपर ही आ जाता है । इस समय रीढ़ की हड्डी कमर के पास धनुषाकार हो जाती है, सिर साँप के फन की तरह बाहर निकला और उठा हो जाता है, तथा पैरों के तलवे ऊपर की ओर रहते हैं । इस आसन के लाभों का वर्णन करते हुए एक अनुभवी ने लिखा है—

"इस आसन से दोनों ओर आगे-पीछे पेट, पीठ और रीढ़ के मोड़ से धड़ की सारी पेशियों का एक बार व्यायाम और एक बार शिथिलीकरण हो जाता है । शरीर के इस भाग में आमतौर से रक्त संचार कम रहता है, पर इस आसन से पेट और पीठ की सारी पेशियों और नसों को ताजे खून की प्राप्ति काफी मात्रा में हो जाती है । इस आसन का सबसे ज्यादा दबाव रीढ़ की हड्डियों और स्नायुओं पर पड़ता है । पीठ का दर्द या थकावट तो सिर्फ एक बार भुजंगासन करते ही दूर हो जाती है । रीढ़ की हरेक हड्डी तथा वहाँ की स्नायुओं के इकत्तीस जोड़ पूरा व्यायाम और साथ ही पूरा आराम पा जाते हैं । पीठ या पेट की कोई हड्डी यदि हटी हो तो इस आसन से ठिकाने पर आ जाती है ।"

"पेट की दोनों नाड़ियों (जिनसे नौली चलती है) के पूरे व्यायाम होने के कारण भुजंगासन द्वारा सुषुम्ना नाड़ी की गति-प्रणाली में काफी वृद्धि हो जाती है । सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति ऐसी है कि वैसे उसको रक्त संचार ही नहीं मिलता । इस नाड़ी के चेतन हो जाने से अनेक महत्त्वपूर्ण शारीरिक लाभ प्राप्त होते हैं । भोजन के बाद जिन लोगों को आलस्य धर दबाता है उनका सबसे अच्छा इलाज भी भुजंगासन ही है । स्त्रियों के लिए यह आसन विशेष रूप से लाभदायक है । जो शिकायतें आमतौर से स्त्रियों के 'गुप्त रोगों' के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनका अचूक इलाज भुजंगासन है ।"

इस आसन का अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए । सर को ऊपर की तरफ उठाते और रीढ़ की हड्डी को मोड़ते हुए जब इस आसन की पूरी स्थिति प्राप्त हो जाय तब उसमें ५ या १० सेकण्ड ठहरना काफी है । एक बार ज्यादा देर तक ठहरने के बजाय ५-५ सेकण्ड ठहर कर कई बार आसन को करना अधिक उपयोगी है । सिर को ऊपर की तरफ तानते समय साँस भरते रहें और नीचे लाते समय निकालते चले जायें । जब तक पूर्ण अवस्था में ५ या १० सेकण्ड ठहरे रहें तब तक साँस रोकी जाये, अर्थात् कुम्भक की अवस्था रखें ।

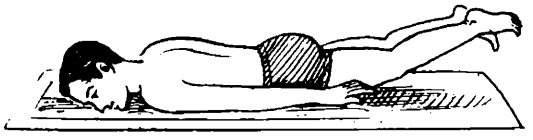
(५) शलभासन

इस आसन को भुजंगासन का उल्टा कहा जाता है । आशय यह है कि जहाँ भुजंगासन में शरीर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अगले भाग का व्यायाम होता है वहाँ शलभासन में शरीर के पिछले भाग को तानकर उठाया जाता है जिससे छाती और पेट के भीतरी अंगों को विशेष रूप से लाभ पहुँचता है । इसमें गहरी साँस खींचने का नियम होने से फेफड़ों और दिल का व्यायाम हो जाता है और पेट पर दबाव पड़ने से पाचन-संस्थान की शक्ति भी बढ़ती है । इससे पेट की अंतड़ियों पर भी प्रभाव पड़ता है जिससे कब्ज दूर होने में सहायता मिलती है ।



शलभासन

'शलभ' का अर्थ टिड्डी या बड़ा पतंगा होता है । इस आसन में मनुष्य की आकृति लगभग वैसी ही हो जाने से इसका नाम 'शलभासन' पड़ गया है । इसके लिए आसन पर पेट के बल सीधे लेटकर सिर से लेकर पेडू तक के भाग को जमीन से सटा हुआ रखना चाहिए और पैरों को सीधे रखते हुए ऊपर की ओर तानकर उठाना चाहिए ।

आसन के लिए लेटते समय दोनों हाथों को बगल में सीधा रखा जाता है और मुठठी कसकर बाँध ली जाती है, क्योंकि पैर जब ऊपर की ओर उठाये जाते हैं तो उनका अधिक भार हाथों की कलाइयों पर भी पड़ता है । इसलिए दोनों हथेलियों को उलट कर रखा जाता है, जिससे उनके द्वारा जोर लगाकर पैरों को उठाया जा सके । दूसरा अंग जिस पर जोर पड़ता है, वह छाती है । पैरों को तानते समय वहाँ की पेशियों को भी कड़ा करके जोर लगाया जाता है । पैरों को धीरे-धीरे उठा सकना सम्भव नहीं होता । इसलिए गहरी साँस भरके और बदन को कड़ा करके शीघ्रतापूर्वक पैरों को जहाँ तक सम्भव हो ऊपर की ओर ताना जाता है और जब तक इस अवस्था में रहा जाये, तब तक साँस को रोके रहना होता है ।

इस आसन में शरीर पर काफी दबाव पड़ता है और छाती की पेशियों को कड़ा करके पैरों को तानना होता है, इसलिए जिन लोगों के दिल, फेफड़े कमजोर हों या दिल धड़कने की बीमारी हो उनको इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

(६) धनुषासन

इस आसन में भुजंगासन तथा शलभासन दोनों की विशेषताओं का सम्मिलन किया गया है । सामने की तरफ धड़ को और पीछे की तरफ पैरों को मोड़कर पीठ के ऊपर दोनों पैरों को दोनों हाथों से पकड़कर सारे शरीर को तान दिया जाता है । उस समय केवल पेडू का ही थोड़ा-सा भाग और पेट जमीन से लगा रहता है और शरीर का समस्त भार उसी पर रहता है । इस आसन में शरीर की आकृति खिंचे हुए धनुष की-सी हो जाने से ही इसका ऐसा नाम पड़ा हैं ।

धनुषासन के लिए पहले पेट के बल आसन पर लेट जाइये । दोनों पैर सटे रहें । तब घुटनों को मोड़कर पिंडलियों को जाँघों पर लाइए और दोनों हाथों से दोनों टखनों को पकड़ लीजिए । तब हाथों और पैरों को खींचने की चेष्टा करते हुए सिर तथा पैरों को जहाँ तक बन सके तानिये । इस समय साँस भी भर लेनी चाहिए । ५ या १० सेकण्ड इस तनी हुई अवस्था में रहकर फिर साँस को निकालते हुए तनाव को कम कीजिए और पूर्ववत् अवस्था पर आ जाइये ।

इस आसन की क्रियाएँ शीघ्रतापूर्वक करनी होती हैं, इसलिए इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी अंग में झटका न लग जाय । साथ ही जिस समय हाथ और पैरों को परस्पर खींचकर छाती और जाँघों को ऊपर की ओर उठाने की कोशिश की जाती है तब शरीर का संतुलन बिगड़ कर किसी तरफ लुढ़क पड़ने की सम्भावना हो जाती है । इसलिए इन बातों से बचने की सावधानी रखकर ही आसन का अभ्यास करना चाहिए ।

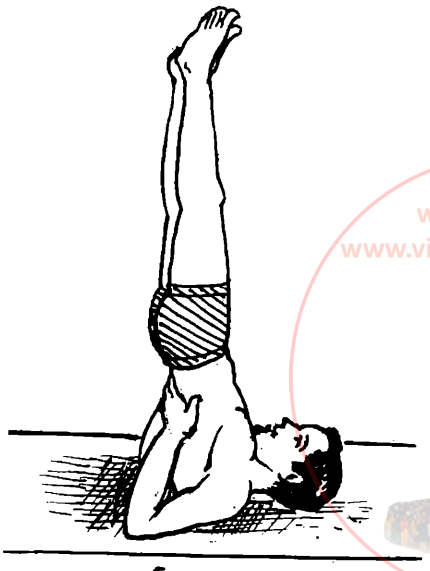
जो लाभ भुजंग और शलभ आसनों में बतलाये गए हैं, वे सब इस आसन में कुछ कम मात्रा में मिलते हैं, पर पेडू की पेशियों का व्यायाम इसमें बहुत अच्छा हो जाता है जिससे पाचन शक्ति और मल विसर्जन शक्ति की वृद्धि होती है । साथ ही भीतरी भागों में रक्त का संचार होने से बहाँ के अनेक दोष दूर हो जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(७) सर्वांगासन

आसन-विज्ञान में 'शीर्षासन' का महत्त्व बहुत अधिक बतलाया गया है और कितने ही लेखकों ने उसे सब प्रकार की व्याधियों को मिटाने की अपूर्व विधि बतलाई है, पर अन्य लोग यह भी कहते हैं कि शीर्षासन सबके लिए उपयोगी नहीं, अनेक बार उससे स्वास्थ्य में भयंकर व्यतिक्रम होता देखा जाता है । कुछ भी हो यह आसन बड़ी आयु के लोगों के लिए कठिन अवश्य है । इसलिए हम इस पुस्तक में उसका विशेष वर्णन न देकर 'सर्वांगासन' की विधि देते हैं, जिसको एक विद्वान ने 'शीर्षासन का छोटा भाई' कहा है ।



सर्वाङ्गासन

'सर्वांगासन' एक प्रकार से विशुद्ध व्यायाम की तरह है । सारे शरीर को धीरे-धीरे ऊपर की तरफ तानने से सभी अंगों को शक्ति प्राप्त होती है और रीढ़ की हड्डी का उत्तम व्यायाम हो जाता है । इस आसन की पूर्ण अवस्था में कण्ठ के भीतर रहने वाली "थायरॉइड ग्लैण्ड" (कण्ठ मणि) पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उसके द्वारा समस्त शरीर के स्वास्थ्य की उन्नति होती है । इसी दृष्टि से सम्भवतः इसका नाम सर्वांगासन रखा गया है ।

सर्वांगासन के लिए पहले एक कम्बल बिछाकर पीठ के बल सीधा लेट जाइये । दोनों हाथ बगल में रहें और सारा शरीर ढीला छोड़ दिया जाय । फिर साँस भर कर दोनों पैरों को धीरे-धीरे इतना उठाया जाय कि जमीन से एड़ियाँ लगभग एक फुट ऊँची हो जायें । उस अवस्था में चार-पाँच सेकण्ड रुककर साँस को निकालकर फिर भर लीजिए और पैरों को फिर धीरे-धीरे उठाते जाइये जिससे अन्त में वे कमर के ऊपर बिल्कुल सीधे—समकोण की अवस्था में आ जायें । इस अवस्था में भी कुछ सेकण्ड रुककर टाँगों को फिर कुछ सिर की तरफ झुकाइये और तब दोनों हाथों से पीठ को कुछ सहारा देकर छाती तक के धड़ को ऊपर की तरफ तान दीजिए । इसमें धीरे-धीरे इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि ठोड़ी छाती से छूने लगे । ऐसा होने से ही थायरॉइड गिल्टी पर दबाव पड़कर उसका व्यायाम होता है । योग-शास्त्र की परिभाषा में इसको जालन्धर बन्ध कहते हैं, पर व्यायाम की दृष्टि रखने वाले को इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं, शरीर को ऊपर तानते हुए स्वाभाविक रीति से जितना दबाव पड़ जाय उतना ही ठीक है ।

कुछ लोगों का मत है कि सर्वांगासन करते समय पीठ को हाथों से सहारा नहीं देना चाहिए वरन् हाथों को पूर्ववत् जमीन पर फैलाये हुए पीठ की पेशियों के आधार पर ही शरीर को तानना चाहिए । जिन लोगों का शरीर काफी सशक्त और स्वस्थ हो वे थोड़ी देर इस अवस्था का भी अभ्यास कर सकते हैं, पर सबके लिए इसकी आवश्यकता नहीं । क्योंकि हाथों का सहारा न रहने से शरीर को बिल्कुल सीधा रखना और उसका हिलना-डुलना न होना कठिन होता है ।

सर्वांगासन की पूर्ण स्थिति आ जाने पर आरम्भ में उसमें आधा या एक मिनट रहना ही पर्याप्त है । फिर जिस क्रम से पैरों और पीठ को ऊपर की तरफ ताना गया था उसी क्रम से उनको नीचे की तरफ लाकर सीधे लेटने की अवस्था में ले आना चाहिए । जब अभ्यास बढ़ता जाय तो चार-पाँच मिनट तक आसन की पूर्ण अवस्था में स्थिर रहना चाहिए । वैसे जो लोग केवल सर्वांगासन का ही व्यायाम करते हैं वे लगभग आधा घण्टा तक उसी स्थिति में बने रहते हैं और उसके बाद आधा घण्टा तक शवासन में पड़े रहकर विश्राम करते हैं । पर हम सब लोगों से इतना समय लगा सकने की आशा नहीं कर सकते । इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

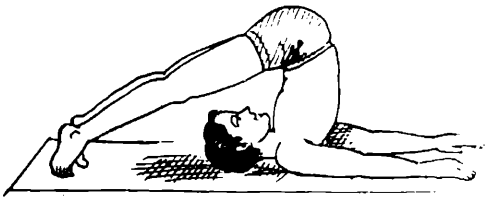
www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारण स्थिति में पाँच मिनट तक इस आसन को करना पर्याप्त होता है ।

स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य लाभों के साथ इस आसन से वीर्य के शुद्ध और स्वस्थ होने में सहायता मिलती है । जिनको इस प्रकार की कोई वीर्य सम्बन्धी शिकायत हो वे सर्वांगसन का अभ्यास करके बिना किसी औषधि के पूर्णतया निरोग हो सकते हैं और दाम्पत्य-जीवन का सन्तोषजनक रीति से निर्वाह करने की स्वाभाविक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं । ये सब गुण थायरॉइड का व्यायाम होने और उसके रस के ठीक परिमाण में निकलने से ही उत्पन्न होते हैं । इस दृष्टि से सर्वांगासन बड़ा उपयोगी माना गया है ।

(८) हलासन

शारीरिक व्यायाम और स्वास्थ्य की उन्नति की दृष्टि से हलासन का स्थान बहुत ऊँचा है । इसकी क्रिया बहुत कुछ आधुनिक 'जिमनास्टिक' से मिलती हुई है और इसके अभ्यास से भीतरी अंगों का व्यायाम होने के साथ बदन में इतना लोच आ जाता है कि वृद्धावस्था का प्रभाव बहुत समय तक दिखाई नहीं पड़ता । एक दृष्टि से हलासन को सर्वांगासन का बढ़ा हुआ रूप भी कह सकते हैं । इसकी पहली तीन-चार अवस्थाएँ सर्वांगासन के समान ही होती हैं । अन्तर इतना ही होता है कि शरीर को ऊपर की तरफ सीधा खड़ा कर देने के बजाय पीछे की तरफ मोड़ दिया जाता है और पैरों को सिर के पास ही जमीन से लगा देते हैं । यह क्रिया बहुत कुछ वैसी ही होती है, जैसी बालकों के कला खाने के समय दिखाई पड़ती है ।



हलासन

पहले आसन बिछाकर पीठ के बल बिल्कुल सीधे लेट जाइये । दोनों हाथ बगल में सीधे पड़े रहें । हाथों को जैसे का तैसा रखते हुए सर्वांगासन की तरह दोनों पैरों को मिले हुए रखकर थोड़ा-थोड़ा करके ऊपर उठाइये और बीच में कुछ सेकण्ड रुककर साँस को निकालते और भरते चलिए । जब पाँव कमर के साथ समकोण बनाने लगें अर्थात् दोनों टाँगें ऊपर की तरफ बिल्कुल सीधी हो जायें तब पुनः साँस लेकर टाँगों को सिर की तरफ झुकाते जाइये यहाँ तक कि पैर सिर के पास ही जमीन से लग जायें । यह हलासन की प्रथम अवस्था हो जाती है, पर इसका अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए । जिनका पेट मोटा होगा या रीढ़ की हड्डी कड़ी पड़ गई होगी वे जमीन पर शीघ्र पैर नहीं लगा सकेंगे । अगर जबर्दस्ती लगाने की कोशिश की जायेगी तो किसी हड्डी में खराबी आ जाने की सम्भावना रहेगी । इसलिए जितनी शक्ति हो और जैसी शरीर की अवस्था हो उसी के अनुसार पैरों को प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अधिक झुकाने की चेष्टा करनी चाहिए और अगर पैरों के ठीक तरह लगने में एक-दो महीने भी लग जायें तो इसमें कोई हानि नहीं समझनी चाहिए ।

जमीन मे पैर के अँगूठों के छू जाने के बाद जहाँ तक सम्भव हो कमर को ऊँचा उठाते हुए पैर के पंजों को सिर से दूर हटाने का प्रयत्न करना चाहिए । इससे ठोड़ी छाती के पास आती जाती है और 'थायरॉइड' गिल्टी पर दबाव पड़ता जाता है । इस प्रकार सर्वांगासन द्वारा जिस प्रकार शरीर का नवीनीकरण होता है, वैसा ही हलासन द्वारा भी होता है ।

यह प्रक्रिया पढ़ने में बहुत लम्बी जान पड़ती है, पर इस सबमें एक मिनट से अधिक समय नहीं लगता । पैरों को उठाना आरम्भ करने और तीन-चार बार चार-चार, पाँच-पाँच सेकण्ड ठहरने में आधी मिनट का समय लगेगा और आधी मिनट पैर के अँगूठों को जमीन मे लगाये रहा जाय । इसके बाद पुनः पैरों को जमीन पर लाकर फिर से आसन आरम्भ किया जाय । इस प्रकार पाँच मिनट में पाँच बार आसन करने से अच्छा व्यायाम हो जाता है । यह पाँच मिनट का व्यायाम पहले ही दिन नहीं करना चाहिए, ठहर-ठहर कर धीरे-धीरे ही अभ्यास बढ़ाना चाहिए, जिससे शरीर में किसी प्रकार की क्लान्ति प्रतीत न हो वरन् उत्साह तथा प्रसन्नता का भाव बना रहे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हलासन से पीठ और पेट का बड़ा अच्छा व्यायाम हो जाता है । इसमें रीढ़ की हड्डी सब आसनों की अपेक्षा अधिक झुकती है जिससे युवावस्था का अनुभव होने लगता है । साथ ही आमाशय और पाचन संस्थान के सब अंगों पर भी पूरा प्रभाव पड़ता है और आहार के परिपाक करने की शक्ति बढ़ने लगती है । जिन लोगों के यकृत और तिल्ली बीमारी के कारण बढ़ गए हों उनको इस आसन से आराम हो जाता है, पर यह तभी हो सकता है जब रोग आरम्भ होने के बाद शीघ्र ही इस उपाय को किया जाय । जिन लोगों के यकृत और तिल्ली काफी बढ़ गए हैं उनको तो हलासन का निषेध है । ऐसे लोगों को भुजंगासन और शलभासन जैसे आसनों से पेट की अवस्था को सुधारना होगा । अनेक अभ्यासी हलासन के अन्त में दोनों हाथों के पंजों का गस्सा-सा बनाकर माथे के नीचे लगा लेते हैं और छाती को भी ऊपर की तरफ तान देते हैं, पर रीढ़ की हड्डी पर इतना अधिक जोर बाल्यावस्था और युवावस्था में ही डाला जा सकता है । अधेड़ आयु वालों के लिए ऊपर बतलाई विधि ही पर्याप्त है ।

(९) अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन

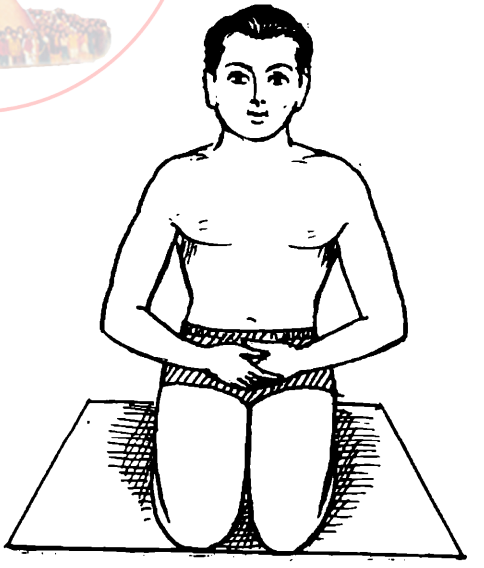
बैठकर किए जाने वाले प्रसिद्ध आसन जैसे पद्मासन और सिद्धासन अधिकांश में ध्यानात्मक होते हैं, पर कई व्यायामात्मक आसन भी बैठकर किए जाते हैं, जिनकी विधि यहाँ दी जाती है ।

बैठकर किए जाने वाले आसनों में अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन विशेष रूप से लाभजनक है । कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध हठयोगी मत्स्येन्द्रनाथ प्रायः इसी आसन पर बैठा करते थे और इसी कारण इसको यह नाम पड़ गया है ।

पहले आसन के ऊपर दोनों पैरों को फैलाकर कमर को सीधी रखते हुए बैठिये । बाएँ पैर के घुटने को मोड़कर उसकी एड़ी को गुदा के नीचे दबा कर बैठिये या उसे चूतड़ से सटा कर बैठिये । फिर दाहिने पैर के घुटने को इतना ऊपर की तरफ उठाइये कि उसका पंजा बाएँ पैर के घुटने से छू जाय । इस अवस्था में बाएँ हाथ दाहिने पैर के घुटने के पास ले जाकर उसी पैर के अँगूठे को पकड़िये और दाहिने हाथ को पीछे की तरफ ले जाते हुए सर को दाहिनी ओर मोड़ कर ठोड़ी से दाहिने कन्धे को छूने का प्रयत्न कीजिए । यही इस आसन की पूर्णावस्था है । यह आसन अधिक कठिन न होते हुए भी रीढ़ की हड्डी के व्यायाम के लिए बहुत लाभदायक है । पश्चिमोत्तासन और हलासन में तो रीढ़ केवल आगे और पीछे की तरफ मुड़ती है, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से उसका अगल-बगल मोड़ना भी आवश्यक है । यह कार्य इस आसन से होता है । इसके लिए एक बार बाएँ पैर को नीचे रखकर ठोड़ी को दाएँ कन्धे से लगाना चाहिए और दूसरी बार दाएँ पैर को नीचे रखकर, दाएँ हाथ से बाएँ पैर के अँगूठे को पकड़ कर ठोड़ी बाएँ कन्धे से लगाना चाहिए । इस प्रकार अभ्यास करने से रीढ़ की हड्डी दाएँ और बाएँ दोनों तरफ मुड़ने लगती है । इससे कमर, पीठ और जोड़ों के दर्द में बहुत शीघ्र ही लाभ होता है । इसकी पूर्णावस्था में पाँच-दस सेकण्ड ठहरना ही पर्याप्त है । प्रतिदिन ५-६ बार करने से ठीक लाभ हो सकता है ।

(१०) बज्रासन

दोनों पैर फैलाकर आसन पर बैठ जाइये । पहले बाएँ पैर को मोड़िये और बाएँ हाथ की सहायता से उसके पंजे और एड़ी को बाएँ चूतड़ से दबा दीजिए । फिर इसी प्रकार दाएँ पैर को मोड़कर उसके पंजे को दाहिने चूतड़ से दबाकर बैठ जाइये । दोनों कुछ तिरछे करके आपस में मिला लिए जायें । इस प्रकार दोनों



बज्रासन

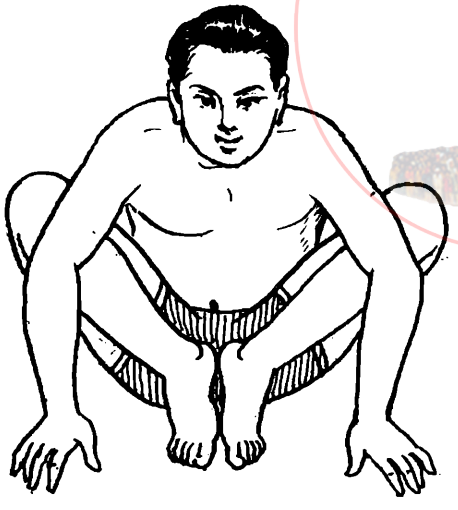
Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पैरों के पंजों पर ही समस्त शरीर का बोझ पड़ जाता है । यह व्यायाम जननेन्द्रिय की निर्बलता और दोषों को दूर करने के लिए लाभदायक माना गया है । इसके द्वारा उक्त अंगों में रक्त का संचार बढ़कर शक्ति प्राप्त होती है । बहुत से योगाभ्यास करने वाले इस आसन का ध्यानात्मक रूप में प्रयोग करके पर्याप्त समय तक इसी पर बैठे रहते हैं, पर व्यायाम की दृष्टि से अभ्यास करने वालों को एक बार में आधी या चौथाई मिनट तक ठहर कर आठ-दस बार आसन कर लेना ठीक रहता है । इसमें पैरों के तलबे अधिकांशतया ऊपर की ओर हो जाते हैं और उन दोनों को मिलाकर ही उन पर बैठा जाता है ।

(११) बकासन

यह आसन विशेष रूप से हाथों का व्यायाम करने के लिए है । पैरों को तो सामान्यतः चलने फिरने में काम लायक व्यायाम हो जाता है, पर जो लोग व्यापार, व्यवसाय या पढ़ने-लिखने का कार्य करते हैं उनके हाथ प्रायः निर्बल रह जाते हैं । इसलिए अन्य व्यायामों के साथ हाथों को मजबूत बनाने वाला कोई आसन भी अवश्य करना चाहिए ।



बकासन

इसके लिए पहले आसन पर उकडू बैठकर दोनों हाथों की हथेलियों को जमीन पर जमा कर सारे शरीर को उन्हीं के बल से ऊपर की ओर उठाना चाहिए । दोनों पैरों के पंजे भी आपस में मिले रहने चाहिए । यह आसन हाथों को घुटनों के बाहर या भीतर रखकर दोनों प्रकार से किया जा सकता है । हाथों की शक्ति बढ़ने के साथ ही पेट के भीतरी भागों पर भी इसका लाभदायक प्रभाव पड़ता है ।

(१२) गोमुखासन

इस आसन के लिए उसी प्रकार दोनों घुटने मोड़कर बैठा जाता है जैसा कि वज्रासन में बतलाया गया है । दोनों पंजे जमीन से सटे रहें और उन पर बैठकर शरीर बिल्कुल सीधा ऊपर की ओर तना रहे । शरीर का अधिकांश भार एड़ियों पर रहना चाहिए । तब बायाँ हाथ ऊपर की ओर उठाकर पीठ की ओर मोड़कर पीछे की तरफ ले जायें और दाहिने हाथ को नीचे की तरफ बगल से ऊपर ले जाकर बाएँ हाथ की तर्जनी अँगुली पकड़ने की चेष्टा की जाय । जिसका शरीर अधिक मोटा न होगा वे सहज ही अँगुली पकड़ सकते हैं, पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अँगुली पकड़ते समय समस्त शरीर पूर्ववत् सीधा और जैसी की तैसी अवस्था में रहे, किसी तरफ जरा भी झुकना या मुड़ना न चाहिए । दूसरी बार दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर पीठ के पीछे ले जायें और बाएँ हाथ से उसकी अँगुली को पकड़ें । इस प्रकार अदल-बदल कर अभ्यास करने से छाती और हाथों को विशेष लाभ होता है और जननेन्द्रिय वाला अंग भी मजबूत बनता है ।

(१३) चक्रासन

यह एक ऐसा मनोरंजक व्यायाम है, जिससे सहज ही में सब अंगों में स्फूर्ति आती है और शरीर हल्का तथा कसा हुआ बनता है । यद्यपि अनेक तो इसे खड़े होकर पीछे की तरफ झुकते हुए जमीन से हाथ लगा देने की विधि से करते हैं, पर बड़ी उम्र के व्यक्ति के लिए उस तरह करना कठिन है । उनके लिए सरल विधि यह है कि एक कम्बल बिछाकर लेट जाइये । हाथों को भी सिर के ऊपर सीधे फैलाकर जमीन पर रखिये । फिर हाथ और पैरों के पंजों के बल पर कमर को ऊपर की तरफ को उठाइये । एक दिन में अधिक न उठा जाय तो भी लगातार प्रयत्न करने से थोड़े समय में कमर काफी ऊँची होकर शरीर कमान की तरह गोल होने लग जाता है । इस अभ्यास द्वारा पेट, पीठ, कमर के अंगों को बहुत फायदा पहुँचता है । मनुष्य की रीढ़ की हड्डी जो प्रायः आगे की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर झुका करती है, वह इस आसन द्वारा उल्टी झुकने से उसकी स्थिति स्वाभाविक बन जाती है ।

(१४) आकर्ण धनुषासन

दोनों पैरों को फैलाकर आसन पर बैठ जाइये । दाएँ पैर को बिल्कुल सीधा और जमीन से मिला हुआ रखकर दाएँ हाथ से उसका अँगूठा पकड़ लीजिए जैसे पश्चिमोत्तान आसन में पकड़ा जाता है । तत्पश्चात बाएँ पाँव का अगूँठा बाएँ हाथ से खींचकर बाएँ कान के पास तक लाने का प्रयत्न कीजिए । दूसरी बार बाएँ पैर को सीधा रखकर और उसके अँगूठे को बाएँ हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ द्वारा दाएँ पैर का अँगूठा बाएँ कान के पास खींचकर लाइए । इस प्रकार का अभ्यास करने में मनुष्य की वही स्थिति हो जाती है जैसे जोर से धनुष को खींचने में होती है । इसी से इसका नाम आकर्ण धनुषासन रखा गया है । इस आसन से हाथ, पैर, घुटना, जाँघ आदि अंगों का अच्छा व्यायाम हो जाता है और इनके जोड़ों को चलने-फिरने का अवसर मिलता है ।

(१५) गरुड़ासन

सीधे खड़े होकर बाएँ पैर को दाहिने में बेल की तरह लपेट लीजिए । फिर दानों हाथों को भी इसी तरह लपेटिये जिससे पैर और हाथों के स्नायुओं पर काफी खिंचाव पड़े । इस प्रकार लपेटने से जब दोनों हथेलियाँ मिल जाती हैं तो उनकी आकृति गरुण की चोंच के समान हो जाती है जो पैर लपेटा जाता है उसके अँगूठे को जमीन पर लगाने से पैर के स्नायु खिंचते हैं, जिससे उनकी त्रुटियाँ दूर होती हैं । इस आसन को बार-बार पैर बदल कर करना चाहिए । जब पैर लपेट लिए जायें तो यथासम्भव नीचे की तरफ पैरों को झुकाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि लपेटे हुए पैर का पंजा जमीन से छू जाय । गरुणासन से घुटने के दर्द, पैर के दर्द, हाथ के दर्द में लाभ होता है । इससे इन सब अंगों के स्नायु खिंचकर उनकी उन्नति होती है । अण्डकोश की वृद्धि में भी इस आसन का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता देखा गया है ।



गरुणासन

(१६) शवासन या दण्डासन

जब अन्य प्रकार के आसनों के करने से शरीर को काफी परिश्रम करना पड़े तो अन्त में सब अंगों को विश्राम देने के लिए शवासन करना चाहिए । इसके लिए जमीन पर चारों हाथ पैरों को फैलाकर और सब शरीर को ढीला करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि किसी अंग में जरा भी तनाव न रहे । जिस प्रकार छोटा बच्चा अपने अंगों को पूर्ण रूप से शिथिल करके बिस्तर पर पड़ा रहता है, वही क्रिया शवासन में की जानी चाहिए । शवासन में हाथ व पैर खूब फैला दिए जाते हैं और दण्डासन में उनको मिलाकर रखा जाता है, लेकिन दोनों का उद्देश्य शरीर का पूर्णरूप से शिथिलीकरण ही है । इस अवसर पर साँस को भी ऐसे स्वाभाविक तरीके से लेना चाहिए जिससे ज़रा भी शब्द न हो और वह धीरे-धीरे बिना प्रयास के चलती रहे । साथ ही मन की सब वृत्तियों को भी समेटकर सब प्रकार का सोचना-विचारना बन्द कर देना चाहिए । इस प्रकार दस-पन्द्रह मिनट शरीर और मन को पूर्ण विश्राम देने से सब थकावट जाती रहती है और एक अपूर्व ताजगी का अनुभव होने लगता है ।

आसन-व्यायाम के सामान्य नियम

आसन-व्यायाम मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इसमें न किसी बाहरी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है और न ही किसी कृत्रिम यन्त्र आदि का सहारा लिया जाता है । यह तो केवल अपने विभिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंगों का विभिन्न दिशाओं में संचालन, तानना और ढीला करना मात्र है । इसलिए इसके नियम भी कोई विशेष नहीं हैं । यथासम्भव प्राकृतिक ढंग से अपना आहार-विहार रखना ही यथेष्ट रहता है । हाँ, जिन लोगों का रहन-सहन परिस्थितिवश विकृत हो गया है अथवा जो कृत्रिम जीवन के विशेष अभ्यस्त हो गए हैं उनको अपने रहन-सहन में थोड़ा परिवर्तन अवश्य करना चाहिए । इस सम्बन्ध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें ये हैं—

(१) आसन व्यायाम के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का है । गर्मी में तो सूर्योदय के पूर्व यदि इसे कर लिया जाय तो ठीक रहता है । जाड़े में भी सात-आठ बजे तक कर लेना चाहिए । यदि शाम को भी करना चाहें तो दोनों बार थोड़ा-थोड़ा समय बाँट लेना भी लाभदायक होता है ।

(२) व्यायाम आरम्भ करने से पूर्व शौच और स्नान से निवृत्त हो लेना आवश्यक है । आमाशय और मलाशय का साफ और हल्का रहना इस व्यायाम में विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि इसमें भीतरी अंगों को ही सशक्त तथा निर्दोष बनाने की विशेष रूप से चेष्टा की जाती है । इसलिए आरंभ में पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ी या कब्ज हो तो उसे साधारण उपायों से ठीक कर लेना चाहिए, पर औषधि द्वारा कब्ज को मिटाने का प्रयत्न ठीक नहीं । भोजन के हेर-फेर या एनीमा के प्रयोग से ही पेट को साफ रखना उचित है । नियमित रूप से स्नान करना भी आवश्यक है, क्योंकि इससे रक्त का संचरण ठीक हो जाता है और उसका भी आसन व्यायाम में विशेष ध्यान रखना होता है । गर्मी या बरसात में तो ठण्डे पानी से स्नान किया ही जाता है, जाड़ों में भी यदि सामर्थ्य न हो और गर्म पानी लेना पड़े तो वह कम-से-कम गर्म हो इसका ध्यान रखा जाय । गर्म पानी से अवयवों में ढीलापन आता है और ठण्डे से वे मजबूत बनते हैं, यही समझने की बात है । फिर अपनी विशेष अवस्था और परिस्थिति का ध्यान तो सर्वप्रथम रखना आवश्यक ही है ।

(३) किसी भी आसन के अभ्यास में शीघ्रता या हठ नहीं करना चाहिए । आरम्भ में अधिक व्यायाम पर जोर देने की बजाय या पूर्ण स्थिति को प्रथम दिन ही प्राप्त करने के बजाय ज्यादा ध्यान इस बात पर दिया जाय कि आसन विधि को ठीक-ठीक समझकर नियमानुसार किया जाय । जिस प्रकार पढ़ने में पहले अक्षर-ज्ञान और शब्द-निर्माण के नियमों को काफी समय तक सीखकर तब विविध विषयों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार आरम्भ में पूरा व्यायाम करने की अपेक्षा आसनों की ठीक-ठीक विधि को समझकर उसे यथातथ्य सीखने पर ही ध्यान दिया जाय । इसलिए आरम्भ में प्रत्येक क्रिया बहुत थोड़ी देर, दस-पाँच सेकण्ड ही करनी उचित है । फिर जब विधि का ज्ञान हो जायेगा तो स्वयं ही अभ्यास बढ़ता चला जायेगा ।

(४) व्यायाम में कभी अति नहीं करनी चाहिए । जो लोग बहुत जल्दी लाभ उठाने के लिए एक साथ तरह-तरह के व्यायाम अधिक मात्रा में करने लगते हैं, वे प्रायः फायदे की जगह नुकसान उठाते हैं और उनका उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ जाता है । इसलिए जब आसन-व्यायाम किया जाय उन दिनों अन्य व्यायाम, प्राणायाम अथवा दूसरे विशेष परिश्रम के काम नहीं करने चाहिए । अपनी शक्ति और ध्यान को एक विषय में केन्द्रित करने से ही विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है ।

(५) भोजन के सादा और पौष्टिक होने का ध्यान रखना आवश्यक है । मिर्च, खटाई, अधिक मसाले युक्त अथवा अधिक कृत्रिम भोजन करना सदैव हानिकारक होता है । आसन-व्यायाम के साथ भोजन जितना सादा और प्राकृतिक होगा उतना ही सुफल प्राप्त होगा । हाँ, दूध-घी का व्यवहार कुछ बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि इससे अंगों में चिकनाई आती है और व्यायाम की गर्मी भी शान्त होती है ।

(६) जो लोग गृहस्थ जीवन में रहकर इस व्यायाम को करें उन्हें ब्रह्मचर्य के नियमों का भी पालन करना चाहिए । इसका आशय दाम्पत्य-सम्बन्धों को सर्वथा त्याग देना नहीं है, पर उसमें अधिकता भी न हो इसका ध्यान रखना चाहिए । धर्म-शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र में इस सम्बन्ध में जो नियम बतलाये हैं उनके अनुसार एक महीने में दो-चार बार से अधिक विषय-सेवन अनुचित माना गया है । जिन लोगों को कोई वीर्य सम्बन्धी बीमारी या निर्बलता हो उन्हें इस सम्बन्ध में अधिक सावधान रहना चाहिए । आसन-व्यायाम से वीर्य शुद्ध होकर फिर से पुरुषत्व शक्ति प्राप्त हो जाती है, पर इसके लिए कुछ समय विषय-सेवन से बचकर वीर्य रक्षा करना आवश्यक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(७) खुले और पवित्र वातावरण में रहना विशेष महत्त्वपूर्ण है । जो लोग शहरों के बीच में बन्द कमरे में भी व्यायाम करेंगे उन्हें नाममात्र का ही लाभ मिलेगा । आसन-व्यायाम वाले को अधिक से अधिक समय शुद्ध वायु में रहने का प्रयत्न करना चाहिए और अपना निवास स्थान यदि किसी तंग और भीड़-भाड़ के मुहल्ले में हो तो व्यायाम के लिए किसी अन्य खुले हवादार स्थान या बगीचे आदि की व्यवस्था करनी चाहिए । कपड़े ऐसे न पहने जायें जिनसे शरीर में हवा लगने में बाधा पड़े । इसके सिवाय कुछ समय तक कपड़े बिल्कुल उतारकर शरीर को सूर्य की धूप लगने देना भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है ।

आसन-व्यायाम प्रत्येक आयु के स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध के लिए हितकारी है । इसका उद्देश्य पहलवानों की तरह शरीर को बहुत मोटा-ताजा या कठोर बनाना नहीं है, क्योंकि वह तो एक अस्वाभाविक अवस्था है, जो साधारण जीवन निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के लिए किसी दृष्टि से उचित नहीं कही जा सकती । इसके बजाय आसन-व्यायाम से शरीर के उन भीतरी अंगों की शुद्धि होती है, उनकी त्रुटियाँ मिटकर शक्ति की वृद्धि होती है, जो जीवन को स्थिर रखने के मुख्य आधार हैं । इसलिए आसन-व्यायाम वाला चाहे देखने में दुबला-पतला जान पड़े, पर उसके शरीर में पर्याप्त दृढ़ता होती है और सहन-शक्ति भी बढ़ी-चढ़ी होती है । हाँ, इतना आवश्यक है कि व्यायाम को समझदारी के साथ और विधिपूर्वक किया जाय । खेल-तमाशे या कौतूहल की तरह इस व्यायाम को करने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि यह केवल शारीरिक ही नहीं एक मानसिक प्रक्रिया भी है । जिस प्रकार हम डण्ड, बैठक आदि हाथ पैरों का व्यायाम प्रत्यक्ष रूप से कर सकते हैं, वैसा यह नहीं है । हमारे भीतरी अंग हमको दिखाई नहीं देते, न हम उनको हाथों से पकड़ कर या छूकर जान सकते हैं । उन पर प्रभाव डालने का उपाय तो मानसिक-भावना और संकल्प-शक्ति ही है । इसलिए बाहरी अंगों का व्यायाम जिस प्रकार अनाचारी, दुराचारी, भ्रष्ट खान-पान वाले भी करके कुछ लाभ उठा सकते हैं, वैसी बात आसन-व्यायाम में नहीं है । इसमें विचारों तथा मन की शुद्धता, पवित्रता, श्रद्धा, विश्वास आदि की भी आवश्यकता होती है । दूसरे शब्दों में कहें तो जिसको धार्मिक जीवन कहते हैं उसका अनुसरण करना आवश्यक होता है । जो इन बातों का ध्यान रखकर नियमित रूप से आसन-व्यायाम का थोड़ा भी अभ्यास करते रहेंगे वे सहज में ही सब प्रकार के रोग, दोष और शारीरिक कष्टों से बचकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकेंगे इसमें सन्देह नहीं ।

एक बहुउपयोगी योगाभ्यास सूर्य नमस्कार

स्वस्थ रहने के लिए आहार-विहार के संयम और नियमित दिनचर्या के साथ-साथ शरीर के प्रत्येक अंग का सक्रिय रहना भी आवश्यक है । इसीलिए भोजन, शयन और नियम, संयम के साथ-साथ व्यायाम की भी आवश्यकता पड़ती है । मानसिक श्रम करने वाले लोग प्रायः शारीरिक श्रम से कतराते हैं और शरीर श्रम करने वाले बौद्धिक प्रगति को अनावश्यक समझते हैं । इससे शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति बहुत कम देखने में आते हैं ।

यद्यपि बौद्धिक कार्य करने वाले भी थोड़ा बहुत श्रम तो करते ही हैं और कठोर शरीर श्रम करने वाले भी अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, पर स्वास्थ्य सन्तुलन बन नहीं पाता । बहुत से लोग व्यायाम भी करते हैं, पर फिर भी स्वस्थ नहीं रह पाते । इसका कारण व्यायाम पद्धति का त्रुटिपूर्ण होना नहीं, बल्कि मुख्य कारण यह है कि शरीर को आरोग्य प्रदान करने वाले स्नायु केन्द्रों को प्रभावित करने की आवश्यकता प्रचलित व्यायाम पद्धतियों से पूरी नहीं होती । इस सन्दर्भ में श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने लिखा है—"इस प्रकार के व्यायामों से स्नायुओं का आकार बहुत बढ़ जाता है उनमें बल भी आता है, पर स्वास्थ्य नहीं बनता, क्योंकि स्नायुओं पर अतिरिक्त भार पड़ने के कारण वहाँ के सूक्ष्म मज्जा तन्तु नष्ट होने लगते हैं ।" इसका उदाहरण पहलवानों के जीवन में देखा जा सकता है । उनके शरीर बलवान होते हैं पर शायद ही कोई पहलवान पूरी आयु जी पाता हो और जो जिन्दा रहते भी हैं उन्हें अपनी वृद्धावस्था में बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं । उनके शरीर की दशा आम आदमी से भी गई बीती बन जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहने का आशय यह नहीं है कि व्यायाम व्यर्थ की चीज है और उससे कोई लाभ नहीं होता । उनका लाभ है और शक्ति संवर्धन के लिए उन्हें किया भी जाना चाहिए, पर आरोग्य प्राप्ति के लिए इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शरीर के उन भागों से भी मल निष्काषित होता रहे, जहाँ तक व्यायाम की पहुँच नहीं है ।

उन सूक्ष्म स्थानों, स्नायुओं, कोशों से विकारों को निष्कासित करने के लिए भारतीय योग शास्त्रियों ने एक ऐसी पद्धति का विकास किया है जो व्यायाम की आवश्यकता तो पूरी करती है, मर्मस्थलों का शोधन भी करती है और साथ ही साथ आत्मिक उन्नति के सोपानों पर भी चढ़ाती है । उन मर्मस्थलों के शोधन के साथ-साथ यह शरीर के स्नायुओं को ढीला भी करती है । चिन्ता, भावुकता और कुण्ठा, परेशानियाँ हमारे स्नायुओं को कमजोर बना देती हैं और उनकी कमजोरी के कारण गठिया, कब्ज, अनिद्रा, रक्तचाप, हृदय रोग, अजीर्ण और हृदय की बीमारियों जैसे भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं । आसनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये स्नायविक दुर्बलता को दूर करते हैं और स्नायविक दुर्बलता समाप्त हो जाने से इस प्रकार के रोग आदमी के पास फटकते नहीं । किसी भी प्रकार का रोग, परेशानी और चिन्ता का न होना ही तो आरोग्य है और इन्हीं कारणों से व्यायाम की अपेक्षा योगासन अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं । एक आधुनिक चिकित्सक के अनुसार तो—योगासनों के अतिरिक्त जितने भी व्यायाम हैं वे बलवर्धन के लिए किए जाते हैं, लेकिन स्वास्थ्य साधन का उद्देश्य आसन ही पूरा करते हैं ।

अब तक आसन योगियों के ही अभ्यास माने जाते थे, पर पिछले चालीस वर्षों से स्वास्थ्य वैज्ञानिकों का ध्यान आसनों की ओर गया है तथा उन्होंने एकमत से उनकी उपयुक्तता को स्वीकार किया है । इन आसनों के कई प्रकार हैं और अलग-अलग प्रकृति के व्यक्तियों को अपनी प्रकृति के अनुरूप अलग-अलग आसन करना चाहिए, पर एक ऐसा आसन भी है जिसे हर कोई, बिना किसी आशंका या झिझक के कर सकता है और वह है—सूर्य नमस्कार । यह आसन-व्यायाम इतना सरल है कि इसे बच्चे, बूढ़े, स्त्री, निर्बल व्यक्ति सब कोई कर सकते हैं । मोटे व्यक्ति जिनके लिए किसी भी प्रकार के आसनों का अभ्यास असुविधाजनक होता है वे भी इसे कर सकते हैं और वे प्रौढ़ भी जिनकी माँसपेशियाँ कड़ी पड़ गई हैं और आसन करते समय स्नायुओं पर अधिक दबाव पड़ता है । योगासनों में कुछ आसन तो स्त्रियों के लिए उपयुक्त पड़ते हैं और कुछ प्रतिकूल, पर सूर्य नमस्कार एक ऐसी आसन प्रक्रिया है जिसमें उन्हें कोई दिक्कत नहीं आती और उनका स्वास्थ्य भी खूब बढ़ता है ।

सूर्य नमस्कार दस आसनों की एक पूर्ण आसन प्रणाली है जिनमें नमस्कारासन, पाद-हस्तासन, एकपाद प्रसारणासन, द्विपाद प्रसारणासन, अष्टांग प्रतिपादासन, सर्पासन और मयूरासन क्रम से आरम्भ कर पुनः अन्तिम आसन से प्रथम आसन पर लौटा जाता है । प्रत्येक आसन की विधि इस प्रकार है—

(१) पूर्वाभिमुख होकर बिल्कुल सीधे खड़े हों और दोनों हाथ कोहनियों से जोड़कर छाती के सामने रखें । इस समय दोनों हाथ कसकर जोड़ना, भुजाओं को कड़ा रखना तथा छाती फुलाकर पेट को जरा भीतर की ओर खींचना चाहिए । यह नमस्कारासन है ।

(२) नमस्कारासन के तुरन्त बाद कमर पर नीचे झुकिए और दोनों हाथ की हथेलियाँ जमीन से टिकाइये । घुटने मुड़ें न, हथेली का पिछला भाग पैर की सीध में रहे । आसन के समय साँस बाहर निकालकर पेट को अन्दर खींचे । यह पाद-हस्तासन है । पाद-हस्तासन के बाद आता है एकपाद प्रसारणासन ।

(३) हथेलियाँ पूर्ववत् जमीन पर टिकी रहें और दाएँ पाँव को पीछे ले जाकर पंजा जमीन से लगायें । बायाँ पाँव यथास्थान रहेगा । दायाँ पाँव आगे की ओर मुड़ जायेगा । दृष्टि सामने तथा सिर ऊँचा रहना चाहिए ।

(४) तदुपरान्त दूसरे पाँव को भी दाएँ पाँव के साथ फैला दें और दोनों पाँवों को एक समीप लाकर मिला लें । भुजाएँ सीधी रहेंगी, शरीर का सारा भार चार हथेलियों तथा पैर की अँगुलियों पर आ जायेगा तथा सिर और सीना कुछ नीचे झुक जायेगा । यह द्विपाद प्रसारणासन है । इसके बाद आता है अष्टांग प्रतिपादासन ।

(५) पूर्वोक्त आसन के बाद दोनों हाथ, दोनों पाँव, दोनों पंजे और छाती तथा मस्तक आठों अंग एक सीध में भूमि से स्पर्श कराइये । पेट जमीन को न छुये तथा शरीर तना रहे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(६) अष्टांग प्रतिपादासन के बाद हाथों को सीधा खड़ा कर दीजिए । सीना ऊपर उठायें और कमर को जमीन की ओर झुकायें, सिर ऊँचा उठा दें, आकाश की ओर सिर जितना ऊँचा उठा सकें उठायें । पंजे और हाथों पर शरीर सीधा रहे । कमर जितनी मोड़ी जा सके मोड़ें ताकि धड़ ऊपर को अधिक उठ सके । यह सर्पासन है । सर्पासन के बाद मयूरासन किया जाता है ।

(७) इससे हाथ और पाँवों के तलुये तो जमीन को स्पर्श करते रहें पर घुटने और कोहनियों के टखने झुकने न पायें । कमर जितनी हो सके ऊपर उठायें. ठोड़ी कण्ठमूल में लगी रहे और सिर नीचे रखें ।

इतने आसन कर चुकने के बाद पुनः प्रारम्भ की स्थिति में लौटना है, अतः दाहिने पाँव को आगे लाइए और एक पाद प्रसारणासन कीजिए । एकपाद प्रसारणासन में यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि पहले सूर्य नमस्कार में यदि दायाँ पैर पीछे ले जाया जाय तो दूसरे नमस्कार में बायाँ और तीसरे में फिर दायाँ । यही क्रम किए जाने वाले नमस्कारों में रखना चाहिए । एकपाद प्रसारणासन-उत्तरार्द्ध नमस्कार के बाद क्रमशः पाद हस्तासन तथा नमस्कारासन करना चाहिए ।

इस प्रकार ये दस अभ्यास मिलकर एक सूर्य नमस्कार हुआ । इनका आरम्भ पाँच से करना चाहिए और यथाशक्ति एक-एक बढ़ाते रहना चाहिए । सूर्य नमस्कार के सभी आसनों में फुर्ती और शीघ्रता अधिक लाभदायी है । प्रयत्न यह करना चाहिए कि एक सेकण्ड में एक आसन हो जाय अर्थात् दस सेकण्ड में एक पूरा नमस्कार सम्पन्न किया जा सके । अभ्यास आरम्भ करते समय आसन एकदम तो इतने कम समय में नहीं किए जा सकते उनमें कुछ देरी भी हो सकती है, पर पीछे जैसे-जैसे अभ्यास बनता जाय एक मिनट में कम से कम छः नमस्कार कर लेने की आदत तो बना ही लेनी चाहिए । पाद-हस्तासन के सम्बन्ध में नये अभ्यासियों के लिए ज्ञातव्य है कि सामान्यतः पहली ही बार में पावों को सीधे रखते हुए हथेलियों को जमीन पर टिकाना सम्भव नहीं होता । इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, शुरू में न टिके तो न सही पर घुटनों को किसी भी दशा में मुड़ने नहीं देना चाहिए । उसी स्थिति में घुटनों को रखते हुए हथेलियाँ जमीन पर टिकाने का अभ्यास करना चाहिए ।

सूर्य नमस्कार के लिए पाँच नमस्कार से आरम्भ कर १८० आसनों तक बढ़ाये जा सकते हैं । इतने नमस्कार तीस मिनट में आसानी से अभ्यास होने के बाद पूरे हो सकते हैं । प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर स्नान करने से आधा घण्टा पूर्व अथवा स्नान के बाद किया जाय । कहना नहीं होगा इसके लिए प्रातःकाल से अच्छा समय और क्या हो सकता है । स्थान की दृष्टि से कोई ऐसी जगह चुनें जहाँ एकान्त हो और खुली जगह हो । बड़े शहरों या नगरों में यह सुविधा मुश्किल से मिल पाने का यह अर्थ नहीं है कि इस महत्त्वपूर्ण प्रविधि के लाभ से वंचित रह जाया जाय । ज्वर या अन्य रोगों के समय को छोड़कर इन आसनों में कभी नागा नहीं करनी चाहिए ।

जीवन-यापन और अन्य कार्यों में ही चौबीसों घण्टे लगे रहना और अपनी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता स्वास्थ्य की उपेक्षा करना मूढ़ता ही होगी । आधे घण्टे का समय भी यद्यपि स्वास्थ्य संवर्धन के लिए दिया जाय तो कुछ हफ्तों में ही इस नमस्कार के चमत्कारी परिणाम अनुभव किए जा सकते हैं । नमस्कारासन से पृष्ठभाग के स्नायुओं को शक्ति मिलती है । लिखने-पढ़ने, दुकानदारी करने अथवा अन्य बैठकर किए जाने वाले रोजगार धन्धों में लगे लोग प्रायः झुककर बैठा करते हैं । इससे मेरुदण्ड से निकलने वाले स्नायु और उनसे सम्बन्धित अंग व पेशियों में रक्त संचार ठीक से नहीं हो पाता, फलतः कमर का दर्द, अपच, मसाने और गुर्दे की बीमारियाँ जकड़ लेती हैं । यह आसन ऐसे रोगों के आक्रमण से बचाव तो करता ही है उनसे सम्बन्धित अंगों को सुदृढ़ और मजबूत भी बनाता है ।

पादहस्तासन का लाभ बताते हुए श्री सातवालेकर ने लिखा है—इस आसन से पाँव, पीठ, कमर आदि का आरोग्य प्राप्त होता है । यकृत निर्दोष होता है, पेट का स्थान और आँतों के भाग शुद्ध होने में भी बड़ी सहायता मिलती है । इसके करने से जठराग्नि बढ़ती है, भूख बहुत लगने लगती है । अजीर्ण दूर होता है, कृमि विकार दूर होते हैं, तिल्ली के विकार कम होते हैं, पेट को स्वच्छ करता है और शौच शुद्धि होती है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिगर और प्लीहा को सशक्त बनाने में एकपाद प्रसाणासन काफी कारण भूमिका निभाता है । ये दोनों क्रिया रक्त निर्माण और रक्त संचार प्रक्रिया से सम्बद्ध निश्चित है कि सुदृढ़ अंगों का उत्पादन भी निश्चित रूप से सशक्त ही होगा । इसी प्रकार द्विपाद प्रसारणासन से हथेलियों की सब नसें, भुजाएँ, पाँवों की अंगुलियाँ और पिण्डलियों का व्यायाम होता है, वे सशक्त होती हैं ।

अनुभवी डॉक्टर तथा विख्यात योगासन व्यायाम अनुसंधानकर्त्ता डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा ने अष्टाँग प्रणिपातासन का लाभ इस प्रकार वर्णित किया है—'गर्दन, भुजाओं, छाती की पेशियों पर खिंचाव पड़ने पर यह आसन इन अंगों को स्वस्थ रखता है । पाचक अंगों का भी इसमें अच्छा व्यायाम होता है तथा कई बार इससे छाती का घेरा बढ़ता देखा गया है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अति उत्तम है, फलतः कमर की स्नायु पीड़ा दूर हो जाती है । स्त्री के जननांगों पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है तथा उनके गर्भाशय दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार और अन्य यौन रोगों की शिकायतें दूर हो जाती हैं ।

सर्पासन जिगर, फेफड़ों, आँतों और कण्ठ के साथ स्नायुओं को सबल बनाता है । इस आसन के सम्बन्ध में एक योगशास्त्री का यह भी मत है कि—यह आसन वीर्य रक्षण के लिए श्रेष्ठ आसन है । एक अकेले इस आसन को करने से वीर्य सम्बन्धी कई रोगों को दूर किया जा सकता है । मयूरासन गर्दन, पीठ, कमर, नितम्ब, पिण्डली, पैर तथा भुजदण्डों को सबल और निरोग बनाता है । यह आसन पाचन क्रिया को भी सुधारता है । गले की श्वास नलिका के दाएँ, बाएँ दो गुत्थियाँ रहती हैं, जिन्हें थायरॉयड ग्रन्थियाँ कहते हैं । जब यह ग्रन्थियाँ अपना काम करना बन्द कर देती हैं तो शरीर दुर्बल हो जाता है, त्वचा रूखी पड़ जाती है, स्मरण शक्ति कमजोर पड़ने लगती है, बाल झड़ने लगते हैं और हृदय की कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है । मयूरासन इस ग्रन्थि को स्वस्थ और सशक्त बनाता है, जिससे हृदय मजबूत बनता है और पेट के विकार भी दूर होते हैं ।

आधा घण्टे का अभ्यास इतने प्रकार के रोगों से बचाव करता है, जिनमें कितने ही तो ऐसे हैं जिन्हें असाध्य कहा जाता है—उस सूर्य नमस्कार की शोध को हम भारतवासियों का गौरव और उससे भी अधिक सौभाग्य कहना चाहिए जहाँ ऐसी वैज्ञानिक पद्धतियाँ विकसित हो सकीं जो एक साथ चिकित्सा और स्वास्थ्य संवर्धन का काम करती हैं, लेकिन यह भी कम दुर्भाग्य की बात नहीं है कि अधिकांश व्यक्ति अब तक इस महत्त्वपूर्ण अमृत संजीवनी विद्या से अनभिज्ञ ही हैं । अशिक्षित और अविकसित पिछड़े लोगों तक ही यदि यह अनभिज्ञता सीमित रही होती तो शायद उतनी क्षोभजनक स्थिति नहीं बनती जितनी कि यह तथ्य जानकर कि शिक्षित और सम्पन्न वर्ग के व्यक्ति भी अपने यहाँ की इस अमूल्य व्यायाम पद्धति को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और पाश्चात्य पद्धति के व्यायामों को आँख मूंदकर अपनाने के लिए दौड़ते हैं । जबकि विदेशी लोग भी आसन व्यायाम के लाभों से परिचित होकर उन्हें अपनाने के लिए उत्सुक दिखाई देने लगे हैं ।

हम भारतीयों के लिए तो यह और भी सौभाग्य की बात है कि सूर्य नमस्कार को सविता देवता की उपासना का भी एक प्रकार माना गया है । आयुर्वेद में तो सूर्य को आरोग्य का देवता कहा गया है । इस प्रकार सूर्य नमस्कार आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मिक उन्नति के लिए भी लाभदायक है और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिए भी । एक विद्वान के अनुसार—नित्य प्रति सूर्य नमस्कार करने वाले के अंग-प्रत्यंग प्राकृतिक व्यायाम के कारण सुदृढ़ व बलवान होते हैं और किसी प्रकार के रोग शोकादि पास नहीं फटकते । सूर्य भगवान जैसे भौतिक जगत से अन्धकार मिटाकर प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही आन्तरिक जगत में भी उनके प्रकाश प्रसार से अशुभ और असुखमयी अन्धकार की शक्तियों का नाश हो जाता है । बिना मूल्य प्राप्त इस अमूल्य उपलब्धि को व्यर्थ क्यों जाने दें ।

आध्यात्मिक साधना के लिए पद्मासन

पहले बताया जा चुका है कि आसनों के दो प्रयोजन हैं । एक व्यायाम तथा दूसरा आत्म-साधना के लिए सुखपूर्वक बैठना । साधना में चित्त को निमग्न कर देने के लिए स्नायुओं को ढीला करने की आवश्यकता होती है । जब तक माँसपेशियाँ ढीली न होंगी, चित्त शान्त अवस्था को न पहुँच सकेगा—निद्रा तभी आती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है जब पेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं, यदि वे अकड़ी रहीं तो निद्रा आना असम्भव है । अनिद्रा रोग का प्रधान कारण पेशियों का तनाव है, निद्रा लाने वाली दवाओं में पेशियों को ढीला करने का ही गुण होता है । तात्पर्य यह है कि किसी साधना में तन्मयतापूर्वक चित्त लगाने से पूर्व पेशियों को ढीला करने की आवश्यकता है । जो इस तैयारी मे जितना ही आगे बढ़ जायेगा, उसे मानसिक अभ्यासों में उतनी ही सहायता मिलेगी । शारीरिक क्रियाओं को सुसंचालित रखने में मस्तिष्क का बहुत बड़ा भाग काम करता रहता है, खास तौर से लघु मस्तिष्क का, जोकि ध्यान और धारणा का यह प्रधान उपकरण है ।

एक स्थान पर जबकि शक्तियाँ व्यय हो रही हैं तो दूसरे स्थान पर लगाने के लिए बहुत कम अंश बचेगा । यही कारण है जबकि शारीरिक उत्तेजना बढ़ रही होती है, कोई ऐसा दिमागी काम नहीं हो सकता जिसमें एकाग्रता की आवश्यकता है । संध्या-पूजा, भजन, जप, ध्यान आदि कार्यों के लिए एकान्त शान्तिपूर्ण स्थान तलाश किए जाते हैं ताकि मस्तिष्क को दूसरी तरफ न लगना पड़े । इसी प्रकार सुखकर आसन पर बैठने का विधान है ताकि शरीर सुविधा पूर्ण स्थिति में रहे और मानसिक विक्षेप उत्पन्न न होने पाये । आसन का अर्थ बिछोना भी है । यह बिछोना नरम, कोमल, गुदगुदा, स्वच्छ, सुखकर ही होना चाहिए । साथ ही बैठने का तरीका भी ऐसा हो जिसमें शरीर को किसी प्रकार की अड़चन न पड़े । वह तरीका ऐसा होना चाहिए जिसमें देह पूर्ण आराम एवं विश्राम अनुभव कर और पेशियाँ आसानी से ढीली हो जायें ।

ध्यानावस्थित योगियों के बहुत से चित्त हमारे देखने में आते हैं । गौतम बुद्ध की मूर्तियाँ और तस्वीरें पद्मासन पर विराजमान हैं । योगेश्वर शंकर भी पद्मासन पर बैठे दिखाई देते हैं । इन प्रतिमाओं के नेत्रों की ओर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि वे अधखुले से तन्द्रावस्था में हैं, जिसे योग निद्रा कहते हैं । ध्यान के लिए यह बहुत अच्छा आसन है । पालती मारकर दोनों हाथ गोदी में रख लेने चाहिएं, मेरुदण्ड को सीधी रखकर शरीर को ढीला छोड़ देना चाहिए । चित्त को बाहर से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना चाहिए और नेत्रों को अधखुले रखकर ऐसी मुद्रा बनानी चाहिए, मानो तन्द्रावस्था में चले गए हों । इस स्थिति में शरीर को रखकर ध्यान करने में बहुत आसानी होती है और इच्छित विषय में चित्त खूब लगता है ।

शवासन

'शवासन' शब्द का अर्थ है लाश । मृत व्यक्ति की लाश जिस प्रकार पड़ी रहती है, उसी प्रकार निःचेष्ट होकर शरीर को ढीला छोड़ देना शवासन कहा जाता है । समाधि अवस्था में पेशियाँ अत्यन्त शिथिल हो जाती हैं और मन का इतना लय हो जाता है कि देह का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता । चित्त देह चेतना में से हटकर ध्यान चेतना में पूर्ण रूप से चला जाता है । शवासन द्वारा उसी समाधि अवस्था की आंशिक रूप से प्राप्ति हो जाती है । जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसका देह से बिल्कुल सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है । लाश अलग पड़ी रहती है और जीव अलग उड़ जाता है । शवासन में इसी प्रकार की साधना करनी पड़ती है, यह पेशियाँ ढीली करने का सबसे उत्तम तरीका है । चित्त को जितना ही शरीर से दूर हटाया जाता है उतना ही वे निर्जीव और शिथिल होने लगती हैं । शिथिलता इस आसन का प्रधान गुण होने से शवासन का दूसरा नाम शिथिलासन भी रखा गया है ।

समतल भूमि पर चटाई बिछाकर पीठ के बल सीधे लेट जाना चाहिए । सिर के नीचे एक पतली-सी साफी या तकिया रखा जा सकता है । यदि मक्खी-मच्छरों की अधिकता हो तो मलमल का कपड़ा ऊपर डाल लेना चाहिए । शरीर को इस प्रकार ढीला छोड़ना चाहिए मानो वह बिल्कुल निर्जीव हो गया है । मन ही मन ऐसी भावनाएँ करनी चाहिए कि "मेरा प्राण शरीर से बिल्कुल अलग हो रहा है ।" यह भावना जितनी ही दृढ़ होती जाती है उतनी ही निःचेष्टता बढ़ती जाती है । तनाव कम होने के कारण हाथ, पाँव, गर्दन इधर-उधर ढुलक जाते हैं । इस आसन से कुछ देर पड़े रहने पर चित्त को बहुत शान्ति मिलती है और मन वश में होने लगता है ।

पाश्चात्य आध्यात्म विद्याविशारदों ने इस शवासन या शिथिलापन पर बहुत जोर दिया है और उसके लाभों की बहुत बड़ी विरुदावली वर्णन की है । डॉक्टर युक्लिन अपने आत्मविद्या सीखने वाले शिष्यों को सबसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहले शिथिलासन का अभ्यास कराते हैं । उनका कहना है कि किसी भी मानसिक साधना के लिए पेशियों को शिथिल करने की अनिवार्य आवश्यकता है, बिना इसके चित्त का एक स्थान पर ठहराना नहीं हो सकता और जब तक मानसिक स्थिरता न हो, तब तक इस दिशा में आशाजनक फल नहीं मिल सकता । डॉक्टर पी. ओ. वैनिट शिकागो के प्रसिद्ध मेस्मेरिज्म तत्ववेत्ता हैं, उन्होंने मेस्मेरिज्म सीखने वालों को प्रारम्भिक साधन शिथिलासन ही बताया है । पाश्चात्य विद्वान इस आसन को जमीन पर लेटकर करना अच्छा नहीं समझते । उनका अनुभव है कि आराम कुर्सी पर लेटकर करने से सुविधा रहती है । सुविधा का ध्यान रखने हुए यदि आरामकुर्सी पर उसका अभ्यास किया जाय तो कुछ बुरा नहीं है ।

पैरिस के 'मैण्टल हीलिंग इन्स्टीट्यूट' में मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति से अनेक रोगियों की चिकित्सा होती है । वहाँ रोगी भर्ती कर लिए जाते हैं और उन्हें शिथिलासान करने का आदेश दिया जाता है । जब एक-दो दिन में वह इस क्रिया को ठीक तरह करना सीख लेता है तब उस पर प्रयोग आरम्भ किए जाते हैं । उपरोक्त संस्था की संचालिका श्रीमती पाक्सले का कथन है कि बिल्कुल अजनवी के ऊपर मानसिक प्रभाव डालने में हमें जितना परिश्रम करना पड़ता है उसके एक चौथाई में ही उन बीमारियों को प्रभावित किया जा सकता है जो शिथिलासन के अच्छे अभ्यासी हो गए हैं । स्वयं डॉक्टर मैस्मर भी शिथिलीकरण की उपयोगिता पर बहुत जोर दिया करते थे और इस आसन की सफलता को मेस्मेरिज्म की आधी सफलता बताया करते थे ।

शिथलीकरण क्रिया आत्मिक साधनाओं के लिए अच्छा आरम्भ तो है ही, इसके अतिरिक्त थकान मिटाने का उसमें अद्‌भुत गुण है । जब शरीर या मन थक कर चूर हो रहा हो तो थोड़ी देर के लिए आराम कुर्सी पर लेटकर शिथिलासन कर डालें । जरा-सी देर के लिए पेशियाँ ढीली कर देने से एक नवीन चेतना और स्फूर्ति का संचार होता है और थकावट सहज ही उतर जाता है । राबर्ट क्लाइव और नेपोलियन के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे युद्ध क्षेत्र में कई-कई दिन-रात बिना सोये बिता देते थे । आश्चर्य होता है कि किस प्रकार वे अपने स्वास्थ्य को ठीक रखते होंगे ? उपरोक्त दोनों महानुभावों के निद्रा जीतने के सम्बन्ध में कई पुस्तकों में चर्चा मिलती है । नेपोलियन के एक साथी का कथन है कि युद्ध कार्य में दिन-रात व्यस्त रहते हुए भी नेपोलियन घोड़े की पीठ पर कुछ देर सुस्ता लेता था और फिर चैतन्य हो जाता था । राबर्ट क्लाइव भी बन्दूकों का सहारा लेकर इसी प्रकार सुस्ता लिया करता था । अनेक अनुभवों ने इस बात को प्रमाणित किया है कि शरीर को शिथिल करने की क्रिया द्वारा आश्चर्यजनक रीति से थकान मिट जाती है ।

पद्मासन धार्मिक विधि विधानों के लिए पूजा-पाठ, जप आदि के लिए ठीक है । ध्यान करने के लिए, आम-चिन्तन के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए और अपने ऊपर किसी अन्य द्वारा आध्यात्मिक प्रभाव ग्रहण करने के लिए शिथिलासन उत्तम है । जिन्हें आराम कुर्सी की सुविधा हो वे उसका उपयोग करें, जिन्हें न हो वे चटाई पर लेटकर इसे कर सकते हैं । पद्मासन और शिथिलासन करीब-करीब एक से ही हैं और एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते हैं ।

पद्मासन के कई प्रकार देखने में आते हैं । इनमें से साधारण रीति से पालथी मारकर हाथों को घुटनों पर रखकर बैठने की क्रिया ध्यान का पद्मासन है । दूसरे प्रकार व्यायाम सम्बन्धी हैं । दोनों पैरों को दोनों जांघों के ऊपर रखना फिर दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से बाएँ पैर का अगूँठा पकड़ना और बाएँ हाथ से दाहिने पैर का अगूँठा पकड़ना यह भी पद्मासन के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु इसे ध्यान या आत्मसाधना के काम में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि कई अंगों पर इससे बहुत अधिक तनाव पड़ता है और अधिक देर आसानी के साथ इस दशा में नहीं बैठा जा सकता । इस प्रकार की क्रिया तो व्यायाम की ही आवश्यकता पूर्ति कर सकती है ।

उपरोक्त पंक्तियों में पद्मासन के तीन प्रकारों की चर्चा की गई है । इसके अतिरिक्त जो अनेक भेद उपभेद हैं उनको अनावश्यक समझकर यहाँ चर्चा नहीं की जा रही है । स्मरण रखना चाहिए कि मेरुदंड सीधा रखकर, पालथी मारकर, हाथों को घुटनों पर रखकर, अधखुले नेत्रों से शान्ति पूर्वक बैठने का साधारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुखासन, संध्या, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, जप, प्राणायाम आदि के योग्य पद्मासन है इसे सिद्धासन भी कहते हैं । शवासन या शिथिलासन जिनमें शरीर को बिलकुल निःचेष्ट छोड़ दिया जाता है उच्चकोटि की आध्यात्मिक साधनाओं के लिए उपयुक्त हैं । ध्यान, आत्मदर्शन, समाधि, मेस्मेरिज्म, शक्तिपात, योग निद्रा, तन्मयता आदि के लिए पद्मासन की यही प्रक्रिया सर्वोत्तम है । हाथों को पीठ पीछे ले जाकर, जांघों पर रखे हुए पाँव के पंजे को पकड़ना यह व्यायाम की एक आवश्यकता पूरी करने वाला पद्मासन है, इसे वद्ध पद्मासन भी कहते हैं । इन तीनों का यथा अवसर सुविधानुसार उपयोग करना चाहिए । सम्पूर्ण आसनों में पद्मासन की उपयोगिता आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत बढ़ी-चढ़ी है । साधना करने के लिए बैठने में आसन की आवश्यकता सबसे पहले पड़ती है, इसलिए उसकी जानकारी भी पाठकों को आरम्भ में ही प्राप्त कर लेनी चाहिए ।

साधना की सफलता में आसन की उपयोगिता

राजयोग की अष्टांग साधना में 'यम' नियम के उपरान्त आसन को स्थान दिया गया है । यहाँ आसन का तात्पर्य मात्र बैठने की विधि से नहीं, वरन् उस स्थान एवं वातावरण से है जहाँ उपासना की जाय । आसन के नाम पर सिद्धासन, सर्वांगासन, पद्मासन आदि पैरों को मोड़ने-मरोड़ने की विधि विशेष को सीमित नहीं किया जाना चाहिए, वरन् उस समूचे वातावरण का संकेत सन्निहित समझा जाना चाहिए, जहाँ कि उपासना की जा रही है या की जानी है ।

स्थान एवं वातावरण का प्रभाव व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति पर पड़ता है । अवांछनीय परिस्थितियों में रहते हुए चित्त में उद्विग्नता बनी रहेगी और आत्मिक उत्कर्ष के वे प्रयोग सध न सकेंगे, जिनमें शान्ति-चित्त होने की—मानसिक स्थिरता की शर्त जुड़ी हुई है । साधना में मन न लगने, जी ऊबने, चित्त के चंचल रहने की शिकायत साधकों को प्रायः बनी रहती है । इसका कारण मन का अनगढ़ होना और निग्रह में संकल्प शक्ति का प्रयोग न किया जाना भी होता है, किन्तु बहुत करके वातावरण का प्रभाव भी छाया रहता है । उसके कारण भी मन उचटता रहता है । साधना जिस श्रद्धा, अभिरुचि, एवं विश्वासपूर्वक की जानी चाहिए, हो नहीं पाती । स्पष्ट है कि जिसमें गहरी श्रद्धा का मनोबल युक्त संकल्प का समावेश न होगा वह आत्मोत्कर्ष के लिए किया जाने वाला साधन मात्र छुट-पुट कर्मकाण्डों के सहारे सम्पन्न न हो सकेगा । अस्तु आसन की वातावरण की उपयोगिता समझी जानी चाहिए और उसके लिए अच्छे स्थान की—अच्छे वातावरण की ही नहीं, अच्छे मार्गदर्शन एवं समुचित संरक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए ।

किसके लिए कहाँ, क्या, कितना सम्भव है ? यह निर्णय करना हर व्यक्ति का अपना काम है । उसे अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्तता तलाश करनी चाहिए । घर में यदि बहुत घिचपिच हो तो समीप में कोई सुविधाजनक सज्जनता के वातावरण वाला शान्त स्थान तलाश किया जा सकता है । घर में एक हवादार कोठरी कोलाहल रहित कोने में मिल सके तो उत्तम है । खुली छत का भी उपयोग हो सकता है । कुछ भ न बन पड़े तो इतनी व्यवस्था तो बनानी ही चाहिए कि जितने समय तक उपासना की जानी है उतने समय तक लोगों का आवागमन न रहे । उपासना में कई व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं, पर वे सभी रहने आत्मतल्लीन ही चाहिए । एक की हलचलें दूसरों का ध्यान न उचटावें, तभी साथ बैठने की सार्थकता है ।

विशेष साधना के लिए शान्तिकुंज का ब्रह्मवर्चस् इसी दृष्टि से बनाया गया है । यह वही स्थान है जहाँ सातों ऋषि तप करते थे और गंगा ने पृथ्वी पर अवतरित होते समय उनकी तपश्चर्या में विघ्न डालने की अपेक्षा अपने को ही सात धाराओं में विभक्त कर लेना उचित समझा था । हरिद्वार को हिमालय का प्रवेश द्वार कहा गया है । इसे शिव लोक की संज्ञा भी दी गई थी । दक्ष प्रजापति के घर में सती यहीं जन्मी और यहीं यज्ञ कुण्ड में दग्ध हुई थीं । पार्वती ने तप करके शिव वरण जैसे कठिन संकल्प को यहीं पूरा किया था । वे सभी ऐतिहासिक स्थान इधर ही हैं । वे सभी स्थान हरिद्वार के अति समीप हैं, कुछ ही मील की परिधि में हैं । जहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने गुरु वशिष्ठ का संरक्षण एवं सामीप्य पाने और पवित्रतम वातावरण का लाभ लेने की दृष्टि से अपनी-अपनी कुटियाँ बनाई थीं और अन्तिम जीवन यहीं समाप्त किया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ऐतिहासिक चर्चा हुई । वर्तमान में भी साधना के उपयुक्त सभी विशेषताएँ और अनुकूलताएँ जुटाने को यहीं वे सभी आधार एकत्रित किए गए हैं, जिनके कारण किन्हीं स्थानों को तीर्थ कहलाने का सौभाग्य मिलता है । गंगा की गोद और हिमालय की छाया होने से सप्त ऋषियों की तपोभूमि होने से स्थान की सनातन गरिमा तो है ही । अब भी यहाँ अखण्ड दीप, नित्य यज्ञ, नियमित जप, ब्रह्म सन्दोह, आरण्यक वातावरण की परम्परा का नवीन संस्करण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । पारिवारिक स्नेह-सौजन्य से अधिक गहरा और भाव भरा वात्सल्य, दुलार देने का मातृत्व यहाँ जीवन्त है । व्यक्ति विशेष के लिए उपयुक्त परामर्श दे सकने वाले तपश्चर्या, ज्ञान-सम्पदा और अनुभवों के धनी मार्ग-दर्शक भी यहाँ अभी तो मौजूद है हीं, उसका संरक्षण एक ऐसा तथ्य है जिससे साधन की सफलता सम्भव होनी ही चाहिए ।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि इसके प्रत्यक्ष संचालक तो कठपुतली की तरह ही अपनी प्रत्यक्ष हलचलें करते हैं, परोक्ष में इसके पीछे एक अत्यन्त प्रचण्ड आत्म-शक्ति काम करती है । शान्तिकुंज एवं ब्रह्मवर्चस पर सीधा अधिकार उसी का है । परोक्ष रूप में यहाँ की गतिविधियों का उत्तरदायित्व उसी ने उठाया हुआ है । वही दिव्य सत्ता अपने अनुदान प्रदान करती और साधकों को वह आत्मबल उपहार रूप से देती है जिसके सहारे आत्मोत्कर्ष जैसे महान उद्देश्य की पूर्ति में सुविधा, सरलता एवं सफलता सम्भव हो सके । इस सब तथ्यों का समावेश होने के कारण इन आरण्यकों को दिव्यलोक, दिव्य-वातावरण, दिव्य-संरक्षण से सुसम्पन्न माना जाता है । जिन्हें जितने समय विशेष साधना करनी हो उन्हें यहाँ आकर उसे सम्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए । यों भूमि तो सर्वत्र ही भगवान की है और सभी जगह भगवान की उपस्थिति है । फिर भी यदि आसन का, वातावरण का, महत्त्व सोचा जाय तो अमुक समय तक यहाँ रहने का और साधना करने का प्रयत्न किया जा सकता है । इस क्षेत्र में अपने ही जैसे साथी-संगी तपस्वी बने रहने से एक दूसरों को प्रेरणा भी मिलती है । कन्याओं का निवास प्रत्यक्ष कुमारिका देवियों की चलती-फिरती प्रतिमाओं का दर्शन कराता है । अपने समीप में भी यथासम्भव कुछ ऐसी ही उपयुक्तता तलाश की जा सकती है ।

अब आसन की वह परिभाषा आरम्भ की जाती है, जिसका बैठने से सम्बन्ध है । आसन पैरों का ही नहीं समस्त शरीर का होता है । कमर सीधी, आँखें अधोन्मिलित, शान्त चित्त, स्थिर शरीर यह स्थिति रहनी चाहिए । मात्र ध्यान करना हो तो दोनों हाथ गोदी में रहने चाहिए अन्यथा जप में दाहिने बाएँ हाथों को इधर-उधर भटकाते नहीं रहना चाहिए वरन् एक निर्धारित क्रम से उन्हें व्यवस्थित रखना चाहिए । समस्त शरीर को सुस्थिर रखने की व्यवस्था आसन मुद्रा कहलाती है ।

पैरों को किस प्रकार मोड़कर, बैठा जाय इसका भी साधना में महत्त्व है । इस बैठक का भी शरीर पर और मन पर प्रभाव पड़ता है और उसके सहारे साधना की सफलता में सरलता उत्पन्न होती है । यहाँ इतना और स्मरण रखने योग्य है कि उक्तानपाद शीर्षासन, मत्स्यासन, मयूरासन आदि चौरासी या न्यूनाधिक संख्या में गिनाये जाने वाले आसन एक प्रकार के शारीरिक व्यायाम हैं । आरोग्य रक्षा की दृष्टि से विशेष व्यायामों जैसा ही उनका महत्त्व है । उन्हें आध्यात्मिक साधनाओं के साथ सम्मिलित नहीं किया जा सकता । चित्र-विचित्र ढंग से शरीर के अवयवों को मोड़ने-मरोड़ने से शरीरगत लाभ तो हो सकते हैं, पर मन की एकाग्रता पर तो उनके कारण उत्पन्न हुए तनाव से बाधा ही पड़ेगी ।

साधना के लिए बैठने में शरीर को सुविधा की स्थिति में रखे रहने वाली मुद्रा होनी चाहिए । इसके लिए सुखासन सर्व-सुलभ है । साधारण रीति से पालथी मारकर बैठने का नाम—उसकी सुविधा को ध्यान में रखते हुए—'सुखासन' उपयुक्त ही रखा गया है । इसे किसी भी साधना में बिना किसी संकोच के प्रयुक्त किया जा सकता है । शास्त्रकार आसन का उद्देश्य और स्वरूप समझाते हुए कहते हैं—

येन केन प्रकारेण सुखं धैर्यं च जायते ।
यत्सुखासनमित्युक्तमशक्तस्तत्समाश्रयेत् ॥ १२ ॥

—जाबालदर्शनोपनिषद् ३।१२

जिस प्रकार बैठने से शरीर को सुविधा हो, शान्ति में अड़चन न पड़े उसे सुखासन कहते हैं । निर्बल साधकों को ऐसे ही आसन का आश्रय लेना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम् ॥

—हठ. योग. प्रदीपिका १७

हठ योग का प्रथम अंग आसन है । आसन की स्थिरता से शरीर निरोग और अंगों में हल्कापन रहता है ।

सुखेनैव भवेद्यास्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयादन्यत् सुखविनाशनम् ॥

—(तेजबिन्दू.)

योग साधना के लिए सिद्धासन (विधि आगे लिखी जायेगी) श्रेष्ठ होने पर भी जिस आसन से सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्म का चिन्तन हो सके वही आसन योगी को उपादेय है ।

मार्ग-दर्शक के परामर्श एवं निर्देश के अनुसार विशेष साधनों के लिए विशेष आसनों का भी प्रयोग हो सकता है, पर ऐसे आसनों की संख्या अधिक नहीं है । उन्हें २-४ की सीमा के अन्तर्गत ही रखा गया है—

चतुरशीत्यासनानि सन्ति नाना विधानिच ।
तेभ्यश्चतुष्कमादाय मयोक्तानि ब्रवीम्यहम् ॥
सिद्धासनं ततः पद्मासनं चोग्रं च स्वस्तिकम् ॥

—(शिव संहिता ३।१००)

नाना आसनों में चौरासी मुख्य हैं । उसमें भी चार विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) सिद्धासन (२) पद्मासन (३) उग्रासन (४) स्वस्तिकासन ।

सिद्धं पद्मं तथा सिंह भदंचेति चतुष्टयम् ।
श्रेष्ठतत्रापि च सुखे तिष्ठेन्सिद्धासने सदा ॥

—हठयोग प्रदीपिका १।।३६।।

अर्थात्—सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन—ये चार साधकों के लिए श्रेष्ठ आसन हैं । इन चारों में भी सिद्धासन सुखपूर्वक सदा ही बैठने योग्य हैं ।

कुण्डलिनी जागरण प्रयोगों में मूलबन्ध और सिद्धासन का विशेष महत्त्व बताया गया है ।

"चतुर शीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाम्यसेत् ।
द्वासप्तति सहस्त्राणां नाड़ीनां मल शोधन ।"

—हठयोग

अर्थ—चौरासी आसनों में से हमेशा सिद्धासन का ही अभ्यास करना चाहिए क्योंकि वह ७२००० नाड़ियों के मल को दूर करता है ।

चतुरशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् ।
ततः शिबेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् ॥९॥
आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम् ।
एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् ॥१०॥

—गोरक्ष १।९-१०

चौरासी लक्ष योनियों के कारण आविभूत चौरासी लक्ष आसनों का विस्तार मनुष्य समझ न सकेंगे । इसलिए शिवजी ने सर्वसाधारण की सुविधा के लिए ८४ आसन मात्र योग शास्त्र में कहे हैं ।

इन चौरासी आसनों का भी बहुत विस्तार हो जाने से—इनमें भी दो ही मुख्य माने गए हैं । (१) सिद्धासन (२) पद्मासन ।

दो मुख्य आसनों में पद्मासन भी सरल है । उसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वानं तथा,
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये—
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासन प्रोच्यते ॥

—हठयोग प्रदीपिका १।४४

बायीं जांघ के ऊपर दाहिने पैर को और दाहिनी जांघ पर बाएँ पैर को रखें । पीछे की ओर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़कर और ठोड़ी को कण्ठ से सटाकर नाक के अग्रभाग को देखें यह पद्मासन है । इससे व्याधियाँ नष्ट होती हैं ।

पद्मासन की सामान्य प्रचलित रीति में पैरों पर पैर चढ़ाकर हाथ सुविधानुसार घुटनों पर अथवा गोद में रखकर बैठने का क्रम है । पीछे से हाथ ले जाकर अँगूठे पकड़ने पर उसे पद्मासन कहा जाता है ।

कुण्डलिनी जागरण प्रयोग में सिद्धासन को प्रमुखता दी जाती है । यह लगातार तो नहीं हो सकता, पर जितनी देर शक्ति चालनी मुद्रा एवं सूर्य वेधन प्राणायाम जैसे प्रयोग किए जाते हैं । उतनी देर उसे लगाना लाभदायक है । सिद्धासन का महत्त्व शास्त्रकार इस प्रकार बताते हैं—

किमन्यैर्बहुभिः पीठैः सिद्धे सिद्धासने सति ।
प्राणानिले सावधाने बद्धे केवलकुंभके ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पद्यते निरायासात्स्वयमेवोन्मनो कला ।
तथैकस्मिन्नेव दृढे सिद्धे सिद्धासने सति ।
बंधत्रयमनायासात्स्वयमेवोपजायते ॥

—हठयोग प्रदीपिका १।४३,४४

अर्थात्—सिद्धासन के सिद्ध होने पर अन्य अनेक आसनों के अभ्यास की क्या आवश्यकता ? प्राणवायु को सावधानीपूर्वक संयमित रखकर 'केवल कुम्भक' प्राणायाम का अभ्यास करते हुए सिद्धासन में दृढ़ रहकर साधना करने से उन्मनी कला स्वयमेव सिद्ध होती है और तीनों बंध भी इस अभ्यास से स्वतः हो जाते हैं ।

एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम् ।
येनाभ्यास वशात् शीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात् ।
सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिना परम् ॥

—शिव संहिता ३।१०२।१०३

यह सिद्धासन सिद्धिदायक है । इसके अभ्यास से योगनिष्पत्ति शीघ्र होती है । इसलिए प्राणवायु के अभ्यासी साधकों को यह सिद्धासन सदा करना चाहिए ।

सिद्धासन का मूल प्रयोजन मूलाधार चक्र को प्रभावित एवं उत्तेजित करना है । उसमें पैर की ऐड़ी का दबाव मूलाधार क्षेत्र पर डालना है । इस प्रकार उत्पन्न की गई उत्तेजना कुण्डलिनी कन्द को जागृत करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है । सिद्धासन का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

योनि स्थानकमङ्घ्रिमूलघरितं कृत्वा दृढं विन्यसेत् ।
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये धृत्वा सम विग्रहम ॥
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरंतरं ।
चैतन्यारण्यकपाट भेद जनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥

—गोरक्ष संहिता

योनि स्थान को बाएँ पद के मूल देश से दबा और एक चरण मेढ्र देश में आबद्ध करके एवं हृदय में ठोड़ी को जमाते हुए देह को सरल रख दोनों भौंहों के मध्य देश में दृष्टि स्थानपूर्वक यानी शिव नेत्र होकर निश्चल भाव से बैठने का नाम सिद्धासन है ।

सिद्धासन का स्वरूप अधिक अच्छी तरह समझने के लिए उसे इस प्रकार जानने और अभ्यास में लाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

सिद्धासन—कमर सीधी । ध्यान मुद्रा । बायाँ पैर इस प्रकार मोड़ें कि उसकी ऐड़ी का ऊपरी भाग 'सीवन' मलमूत्र छिद्रों के मध्यवर्ती भाग के नीचे आ जाय । स्थिति ऐसी रहनी चाहिए कि सीधे बैठने पर ऐड़ी का दबाव 'सीवन' के भीतर चल रही मूत्र नलिकाओं पर पड़े ।

दाएँ पैर को बाएँ पैर के ऊपर रखकर पालथी जैसी स्थिति बनाई जाय ऐसा करने से दाहिने पैर की ऐड़ी नाभि से लगभग चार अंगुल नीचे उसी की सीध में जमी दिखाई देगी ।

इस प्रकार दोनों ऐड़ियाँ शरीर की मध्य रेखा पर रहती हैं तथा उनके बीच मूलाधार क्षेत्र आ जाता है ।

इस प्रकार बैठने से पैरों पर दबाव पड़ता है और अधिक देर इस तरह बैठ सकने में कठिनाई होती है । अतएव आवश्यकतानुसार पैरों को बदलते रहा जा सकता है । जिस प्रकार आरम्भ में बायाँ पैर नीचे और दाहिना ऊपर रखा गया था, उसी प्रकार बदलने पर दाहिना नीचे चला जायेगा और बायाँ ऊपर आ जायेगा ।

सिद्धासन का अभ्यास आरम्भ में पाँच मिनट से करना चाहिए और जितना अभ्यास हो सके । उठने पर पैरों को कष्ट अनुभव न हो उतनी देर चलाया जा सकता है । प्रायः १५ मिनट से आधा घन्टे तक यह अभ्यास आसानी से बढ़ सकता है । इसका प्रयोग सामान्य जप में नहीं सूर्यवेधन प्राणायाम जैसी विशेष साधनाओं में ही करना चाहिए । सामान्य गायत्री जप ध्यान आदि में तो सामान्य पालथी मारकर बैठना ही पर्याप्त होता है । तनाव उपन्न करने वाले साधनों से सामान्य साधना में ध्यान बँटता है ।

शीर्षासन का महत्त्व

आसनों का महत्त्व साधारण व्यायाम से बहुत अधिक है । तभी तो योग के आठ अंगों में उन्हें स्थान दिया गया है । यदि उनमें विशेषता न होती तो कोई भी व्यायाम योग का अंग बन जाता है । कारण यह है कि निर्बल शरीर वाले, बुद्धि जीवी, रोगी, बालक, स्त्रियाँ, बुड्ढे सभी के लिए आसनों का व्यायाम ऐसा है जो बिना किसी प्रकार की आवश्यक शक्ति हरण किए शरीर के मन्द हुए कल पुर्जों को आसानी से चला देता है । साधारण व्यायाम में यह बात नहीं है । डण्ड-बैठक करने के बाद आदमी थक जाता है और सुस्ती आती है, किन्तु आसनों के बाद प्रफुल्लता, और फुर्ती का उदय होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरे अनुभव में जितने आसन आये हैं उनमें दिमागी काम करने वालों के लिए शीर्षासन सबसे श्रेष्ठ है । योग शास्त्रों में इसकी बड़ी महिमा बताई गई है और इसे आसनों का राजा कहा गया है । अपने और दूसरों के अनुभव के आधार पर मैं भी इसकी श्रेष्ठता स्वीकार करता हूँ, किन्तु बीस वर्ष से कम उम्र वालों, प्रसूता, गर्भवती और रजस्वला स्त्रियों को मैं इसकी सलाह नहीं दे सकती, क्योंकि उन्हें तो इससे उलटी हानि पहुँच सकती है ।

आरम्भ में शीर्षासन की साधना कठिन है । बिना किसी सहारे के एक दम सिर नीचे को और पैर ऊपर को करके कुछ देर खड़े रहने का अभ्यास नहीं हो सकता । इसलिए दीवार या दूसरे साथी की सहायता लेनी चाहिए । शीर्षासन करते समय कोई गुदगुदा बिछोना बिछा लेना चाहिए और दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में मिलाकर उन्हें सिर के पीछे के भाग में लगाकर उल्टा होने की कोशिश करनी चाहिए । हाथों पर सिर रखने की जरूरत नहीं है । आसानी के लिहाज से एक चौकोर छोटा तकिया सिर के नीचे रखा जा सकता है । गर्दन को बिलकुल सीधा रखना चाहिए । उसे टेड़ी-मेड़ी करने या इधर-उधर हिलाने से गर्दन में मोच बगैरह आने का अन्देशा रहता है ।

आरम्भ में दीवार का सहारा लेना ठीक है । यह जरूरी नहीं कि शरीर बिल्कुल सीधी लाइन में ही उल्टा हो । पहले-पहल तिरछा रखकर काम चलाया जा सकता है । सिर दीवार से एक, डेढ़ फुट अलग रहे और पाँव ऊपर जाकर दीवार से सट जायें, धीरे-धीरे सिर को दीवार के पास लाने का अभ्यास करना चाहिए । कुछ दिनों में बिल्कुल सीधी तरह उल्टे होने का अभ्यास हो जायेगा और फिर बिना सहारे भी उल्टा हुआ जा सकेगा । शुरू के चार पाँच दिन पन्द्रह सेकण्ड ही उल्टा होना चाहिए और फिर प्रतिदिन दो-तीन सेकण्ड के हिसाब से क्रम बढ़ाना चाहिए । साल दो साल के अभ्यास के बाद जब पूरी तरह साधना होने लगे, तब स्त्रियों को पन्द्रह-बीस मिनट और पुरुषों को आधा घण्टा यह आसन करना काफी होगा । इस आसन को करते समय साँस नाक द्वारा शान्तिपूर्वक लेनी चाहिए ।

खून पतली चीज है और पतली चीजों का स्वभाव होता है कि वे नीचे को रहें । जब शीर्षासन किया जाता है तो खून की गति नीचे की ओर अर्थात् मस्तिष्क की ओर अधिक हो जाती है । जिस प्रकार काफी पानी मिलने से सूखे हुए पौधे भी हरे हो जाते हैं, इसी प्रकार काफी रक्त मिलने से मस्तिष्क के जीवन कोष तरोताजा हो जाते हैं और उनकी शक्ति बढ़ती है । निर्बल मानसिक शक्तियाँ सबल होती हैं और स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति आदि शक्तियाँ जाग उठती हैं । सब प्रकार की दिमागी कमजोरी दूर होती हैं ।

गला, छाती, हाथ, पाँव, मजबूत होते हैं । फेफड़े मजबूत और उचित रूप से कार्य करने लगते हैं । कब्ज हमेशा के लिए दूर हो जाता है । खूब खुलकर और बँधा हुआ पैखाना आता है, सीना चौड़ा और कठोर बन जाता है । भूख लगातार बढ़ती जाती है, खून का दौरा बराबर ठीक होता है । खून शुद्ध बनने लगता है । हृदय प्रसन्न रहता है । मानसिक शक्ति बढ़ जाती है । कठिन से कठिन कार्य करने से दिल नहीं घबड़ायेगा । नेत्रों की ज्योदि बढ़ जाती है । चश्मा लगाने की आवश्यकता न पड़ेगी ।

शीर्षासन से वीर्य सम्बन्धी लाभ होता है । स्वप्नदोष, धात का पतलापन आदि विकार मिट जाते हैं एवं शरीर और मन में उत्साह मालूम होने लगता है । इस आसन के सम्बन्ध में जिन बातों को जानना आवश्यक है । वह आगे दी जा रही हैं—

यह आसन सर्वदा प्रातःकाल सूर्य उदय होने के पूर्व और सायंकाल अस्त होने के पश्चात करना उचित है । इस आसन में सबसे पहले कम से कम तीन बातों का होना परम आवश्यक है जैसे—स्थान साफ-सुथरा, हवादार और चौरस हो, दूसरे किसी वस्तु का सहारा जैसे दिवाल या मनुष्य की सहायता, तीसरी सिर के नीचे कोई गुदगुदी वस्तु अथवा तकिया या कोई मुलायम वस्तु, जिससे सिर में दर्द व कष्ट न हो ।

प्रयोग

आसन करते समय किसी वस्तु, जैसी गद्दी या कोई अन्य वस्तु सिर के तले रखें फिर आप पृथ्वी पर उल्टे लेट जायें और दोनों हाथों को तकिए से अलग जमीन पर सटा दें, या दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में बाँध दें यानी (दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक-दूसरे को आपस में पकड़ लें) अगर आसन दूसरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार से करें तो फिर दोनों हाथों को सिर के नीचे रख दें और धीरे-धीरे पिछले पैरों का भाग जमीन से ऊपर उठाते जायें, यहाँ तक कि पैर और टाँगें बिलकुल सीधी हो जायें जमीन पर केवल सिर ही रहे । आपको दो चार दिन आसन करने में सिर में चक्कर से आ जायेंगे, प्रयोग करते-करते सब ठीक हो जाते हैं । आप सीधे सिर के बल खड़े भी हो सकेंगे तरकीब यह है—पैर उठाते समय पैर दिवाल पर एकदम सटा दो और फिर उनको धीरे-धीरे दिवाल के सहारे-सहारे सीधा करो, अभ्यास करने के पश्चात फिर कष्ट न होगा और किसी वस्तु का सहारा लिए बिना आप सिर के बल उल्टे खड़े हो जावेंगे ।

आसन प्रतिदिन केवल दो ही बार सुबह और शाम करना चाहिए । पहले पाँच दिन केवल दो मिनट तक आसन करें फिर धीरे-धीरे समय इच्छानुसार बढ़ाते जायें, अधिक से अधिक १ घंटा अभ्यास करें । लेकिन साधारणतः आध घंटा करना काफी है । आसन करते समय आपको श्वास नाक के जरिये लेनी चाहिए । जब अधिक अनुभव और अभ्यास हो जाय तब जोर से नाक से श्वास लो और पेट को अन्तड़ियों से लगा दो यानी जितना दबाया जा सके दबा डालो फिर श्वास रोके रखो, जब रोकना असम्भव हो जाये, तब श्वास को धीरे-धीरे निकालो, इसी प्रकार करना चाहिए ।

शीर्षासन के लिए सूचना

प्रथम जमीन पर मुलायम कपड़ा आदि रखकर दोनों हाथों की अँगुलियाँ एक-दूसरे में मिलाकर सिर को जमीन पर रखें और धीरे-धीरे पैरों को ऊपर करते जावें यहाँ तक कि सम्पूर्ण ऊपर हो जाय । इस समय प्रथम में यदि स्वयं न कर सकें तो दूसरे मनुष्य की मदद लें, या दीवाल के साथ में करें । सिरं के नीचे कपड़ा या कोई नरम वस्तु रखना चाहिए वरना हानि होना सम्भव है । शुरूआत में १२ दिन तक तीन मिनट, बाद को पचीस दिन तक छः मिनट, पचीस से सौ दिन तक दस मिनट, तक होने के पश्चात अपनी शक्ति के अनुसार तीस से चालीस मिनट तक बढ़ सकते हैं, जिसका शरीर भारी हो तो उसे प्रथम दिन दो मिनट और बाद में प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़ाना चाहिए इससे नुकसान नहीं होकर कार्य में सुगमता होगी ।

इससे लाभ

शीर्षासन से दृष्टि बढ़ती है, हाथ की कणियों में, पोंचे में, भुजाओं में, ताकत आती है, पुरुषों का वीर्य और स्त्रियों का रजस गाढ़ा होता है, स्वप्नदोष मिटता है, सफेद बाल काले होते हैं, अन्न पाचन होता है, भूख अच्छी तरह लगती है, शरीर और चहरे पर तेज प्रकट होता है । नित्य प्रति हमेशा आधे घण्टे से एक घण्टे तक शीर्षासन छः महीने करने पर खून, माँस, मज्जा, भेद, हड्डियाँ आदि सप्त धातुएँ शुद्ध होती हैं । शरीर और मन में आनन्द, उत्साह, निर्भयता, स्फूर्ति सुविचार श्रद्धा अपने में उत्पन्न होती है । आयुष्य बढ़ती है । खुजली, फोड़े, गुमड़े, दाह, हाथ पाँव के तलुवों की जलन, निद्रा का आना, सिर की गर्मी आदि मिटती है ।

आँख ठीक होकर चश्मे उतर जायेंगे यानी आँखें तेजस्वी होकर बारीक से बारीक काम भी कर सकती हैं । दाँत मजबूत होते हैं ।

परन्तु जिसका खून प्रेशर, छाती कमजोर, फेफड़े में दर्द तथा संकुचित पना, गले का दर्द, चेपोरोग, मगज की अस्थिरता अत्यन्त विचार मग्न तथा हाथ-पाँव में अशक्ति हो, उसे किसी अनुभवी की सलाह लेने के बाद ही यह आसन करना चाहिए । स्त्रियाँ भी कर सकती हैं, परन्तु मासिक धर्म वाली और गर्भवती के लिए वर्ज्य है । समय सुबह अच्छा स्नान करने के बाद शीर्षासन करके शीघ्र ही हाथ पाँव लम्बे करीब कम से कम ५ मिनट जमीन पर सोते रहना चाहिए कारण कि पाँव के अंगूठे से लेकर विशुद्ध चक्र तक का खून सिर के तरफ अत्यन्त बहने लगता है । वह खून शीर्षासन करने के बाद शीघ्र ही सिर के भाग में से नीचे अति वेग से उतरने पर शरीर में घूमना, सिर का घूमना, फेफड़े में खून का धक्का, चक्कर आना, रक्त वाहिनी नाड़ियों में फेर-फार बगैरः हानि होने का अन्देशा है । दस वर्ष से लेकर सौ वर्ष की उम्र वाले अपनी शक्ति अनुसार हरेक स्त्री पुरुष कर सकता है ।

शीर्षासन का लाभ दस मिनट होने के बाद ही मिलेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरल और सर्वोपयोगी आसन-व्यायाम

बैठने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले बिछावन को आसन कहते हैं, किन्तु योगासन में अंगों को मोड़-मरोड़ कर शारीरिक व्यायाम की विधा को आसन कहते हैं । जप ध्यान के लिए कमर सीधी रखते हुए पालथी मारकर बैठने को सुलभासन कहते हैं । पैरों को एक-दूसरे के ऊपर रखकर ऐड़ी ऊपर की ओर रखने की अपेक्षाकृत कुछ कठिन विधि को पद्मासन कहा जाता है । इन विधियों से बैठने पर श्वास—प्रश्वास क्रिया ठीक से बन पड़ती है और ध्यान की एकाग्रता सरल हो जाती है ।

थकान दूर करने लिए शवासन का प्रचलन है । शरीर को ढीला छोड़कर निर्जीव जैसी स्थिति में चित्त पड़े रहने की इस विधि द्वारा जागृत रहते हुए सोने जैसा विश्राम मिलता है । थकान जल्दी ही दूर हो जाती है । इसे योग निद्रा या योग तन्द्रा भी कहते हैं । मानसिक एकाग्रता की पूर्व तैयारी के रूप में इस आसन का प्रयोग किया जाता है । कड़ा श्रम करने या मानसिक श्रम से थकाना आने पर इन प्रयोगों को अपनाने में शरीर का तनाव, भारीपन दूर हो जाता है । जिन्हें गहरी निद्रा न आने की शिकायत हो, वे भी इन प्रयोगों को कर सकते हैं, उन्हें इनका आवश्यक लाभ मिलने लगेगा ।

आसनों का प्रयोग सरल व्यायामों के रूप में किया जाता है । डण्ड-बैठक जैसे कई व्यायाम दुर्बल काया वालों के लिए उपयुक्त नहीं पड़ते । इसलिए उनके लिए आसनों को ही सुविधाजनक माना गया है ।

आहार से रस-रक्त बनता है । इसे सभी जानते हैं, पर साथ में यह शर्त भी जुड़ी हुई है कि जो खाया गया है उसका पाचन ठीक प्रकार हो । रक्त संचार एवं श्वास-प्रश्वास की क्रिया शिथिल न हो । इन आशंकाओं को दूर करने के लिए हल्के स्तर के व्यायामों को सीमित मात्रा में करते रहने से काम चल जाता है । उस आवश्यकता की पूर्ति आसनों द्वारा सरलता पूर्वक हो जाती है ।

दुर्बल शरीर वालों के लिए तेज चाल से टहलनें अथवा खुली हवा में दौड़ने का व्यायाम सर्वोत्तम है । ड्रिल के समय की जाने वाली 'क्विक मार्च' के अनुरूप दोनों हाथ हिलाते हुए, मुँह बन्द रखते हुए थोड़ी तेज चाल से चलने की विधि भी अपनाई जा सकती है । समय की सुविधा और शरीर की स्थिति को देखते हुए इसकी अवधि निर्धारित कर लेनी चाहिए । समय तो प्रातःकाल का ही सर्वोत्तम रहता है । जिन्हें सुविधा हो वे शाम को भी वही क्रम दुहरा सकते हैं । ध्यान इतना ही रखना है कि जिस सड़क पर चला जाये, वह गर्द, गुवार वाली न हो, उस क्षेत्र में दुर्गन्ध न उठती रहती हो । धुआँ न छाया रहता हो । अप्रिय दृश्यों वाले कसाई खाने जैसे क्षेत्रों से गुजरना भी मन की प्रसन्नता को घटा देता है । इसलिए टहलने के लिए वह दिशा चुननी चाहिए जिसमें कोलाहल कम से कम हो । वृक्षों की हरीतिमा दृष्टिगोचर होती रहे ।

व्यायाम की उपयोगिता तो आहार के समतुल्य ही मानी गई है । बैठे रहने वालों का भोजन ठीक तरह नहीं पचता । ऐसी दशा में उनकी दुर्बलता बढ़ती ही जाती है और मन्द रुग्णता का रूप धारण करती है फिर चाहे कितना ही बहुमूल्य भोजन किया जाये, कितने ही बलवर्धक रसायन सेवन किए जायें, लाभ नगण्य जितना ही दिखाई पड़ता है । यह कठिनाई विशेष रूप से उन लोगों के सामने आती है, जिन्हें एक जगह बैठकर काम करना पड़ता है । मुनीम, क्लर्क, अफसर, लेखक आदि के कार्य प्रायः ऐसे ही होते हैं, जिनमें भाग-दौड़ के लिए नहीं के बराबर ही गुंजाइश रहती है । योगीजनों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है । उन्हें जप, तप, ध्यान धारणा, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन जैसे कार्यों में ही लगा रहना पड़ता है । हल्का भोजन करने में नींद के घण्टे भी कम हो जाते हैं । ऐसी दशा में यह आवश्यक होता है कि उनके लिए किसी सरल श्रम का, हल्के व्यायाम का निर्धारण रहे, अन्यथा सर्वथा बैठे रहने पर तो निष्क्रिय चाकू को जंग लग जाने जैसी स्थिति में से शरीर को गुजरना पड़ेगा । अचल पड़ी रहने वाली झीलों का पानी सड़ने लगता है, जबकि झरने की पतली धार भी बहती रहने के कारण ताजगी लिए रहती है । दिनचर्या में शारीरिक श्रम का, भाग-दौड़ का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समावेश आवश्यक है, ताकि सभी अंग अवयवों को गतिशील बने रहने का अवसर मिलता रहे ।

आसनों की विधा विशेषतः बुद्धिजीवियों, योगीजनों की न्यून श्रमशीलता को ध्यान में रखकर बनाई गई है । शक्ति का मानसिक स्तर पर अधिक व्यय होना और शरीर का अचार के घड़े की तरह जहाँ का तहाँ रखा रहना ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें रहकर शरीर गड़बड़ाने लगे, साथ ही उस क्षति का प्रभाव मन पर भी पड़े । शारीरिक अस्वस्थता जैसे-जैसे बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे मानसिक श्रम भी कम होने लगता है । उसका स्तर गिर जाता है । अतएव सन्तुलित स्थिति को बनाये रखने के लिए मानसिक श्रम की तरह शारीरिक श्रम को भी दिनचर्या में समुचित स्थान देना चाहिए ।

व्यायामों के अनेक प्रकार हैं । अखाड़ा सँभालने वाले पहलवानों के लिए दूसरे व्यायाम हैं । खेलकूदों की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने वाले उस आवश्यकता की पूर्ति खेल के मैदानों में करते हैं । जिन्हें अवकाश है वे वृद्ध जन सुबह-शाम कई मील टहलने का क्रम बनाये रह सकते हैं । किसानों, श्रमिकों, पोस्टमैनों का परिश्रम तो उनकी आजीविका वाले कार्यों के साथ ही चलता रहता है । लुहार, धढ़ई जैसे कड़ी मेहनत करने वाले अपने दैनिक कार्य को ही व्यायाम समझ सकते हैं । उनके लिए इस सन्दर्भ में अतिरिक्त कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता नहीं है । प्रश्न उन्हीं का है, जिन्हें अधिकांश समय बैठे ठाले गुजारना पड़ता है । दफ्तर में भी उनका आसन कुर्सियों पर जमा रहता है । घर लौटने पर टी. वी. देखने, रेडियो सुनने, अखबार, पत्रिकाएँ पढ़ने जैसे शरीर को श्रम न देने वाले कार्यों में लग जाते हैं । इनके लिए हलके व्यायामों की विधा अपनाना एक प्रकार से अनिवार्य है । इसकी उपेक्षा की जाय तो शरीर न केवल आलसी बनेगा वरन् उसकी मानसिक क्षमताओं में भी निरन्तर कमी होती चली जायेगी ।

महिलाओं में से अधिकांश का कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी के भीतर ही होता है । उन्हें बुहारी लगाने, बर्तन, भोजन, रसोई बनाने, बच्चे सँभालने वाले काम करने पड़ते हैं । इनमें समय कितना ही क्यों न लग जाये, व्यस्तता कितनी ही क्यों न बनी रहे, पर कठोर स्तर का वैसा श्रम करने को नहीं मिलता, जो दिन में कम से कम एक-दो बार परिश्रमजन्य फुर्ती का संचार कर सके । इस वर्ग के लिए आसनों वाला व्यायाम सुविधाजनक पड़ता है । औसत व्यक्ति आदा घण्टा रोज भी आसन व्यायाम कर लिया करे तो गाड़ी किसी तरह घिसटती रह सकती है ।

आसन व्यायामों के अनेकानेक प्रकार हैं । उनकी संख्या ८४ तक गिनाई गई है, पर यह प्राचीन काल के निर्धारण हैं । उन्हें जादू, चमत्कार या पत्थर की लकीर जैसा नहीं मान लेना चाहिए । किसी आसन विधा से परिचित व्यक्ति की सहायता से अपने शरीर की स्थिति के अनुरूप आसन चुन लेने चाहिए । प्रयोग करने पर वे ठीक पड़ें, तो अपनाये रहना चाहिए तथा अनावश्यक दबाव पड़ता प्रतीत हो तो उन्हें बदल लेना चाहिए ।

आसनों का सामान्य सिद्धान्त यह है कि हाथ, पैर, कमर, गरदन, कंधे, पीठ आदि सभी जोड़ों वाले अंगों को पसारा, फैलाया जाय और फिर उन्हें सिकोड़ कर आरम्भिक स्थिति में लाया जाय । फैलाया भी धीरे-धीरे जाय और सिकोड़ा भी धीरे-धीरे जाय । अंगों को आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, ऊँचा-नीचा छहों स्थिति में गतिशील होने का अवसर दिया जाय । कोई अवसर ऐसा न बचे जिसमें माँसपेशियों और जोड़ों को परिश्रम न करना पड़े, यह स्थिति पैदा हो । इस मौलिक सिद्धान्त के आधार पर अपने अनुकूल आसन स्वयं भी बनाये जा सकते हैं । दुर्बल और रोगी बिस्तर पर पड़े-पड़े भी यह अंग संचालन की क्रिया करते रह सकते और उसका समुचित लाभ उठाते रह सकते हैं ।

सर्व साधारण जनों के लिए अपनी सामान्य स्थिति से ऊँचे उठकर उच्च आध्यात्मिक कक्षा में पहुँचने और आत्मिक कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए महर्षि, पातंजलि ने योग के जिन आठ अंगों का प्रतिपादन किया है, उनकी वैज्ञानिकता और उपयोगिता असंदिग्ध है । इन अंगों में से एक दो का साधन करके भी कई व्यक्ति उच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर चुके हैं । आत्मिक स्थिति की भिन्नता के कारण यह निर्धारित कर पाना कठिन है कि किसी व्यक्ति के लिए कौन-सा साधन या योग का कौन-सा अंग विशेष लाभप्रद है और शीघ्र ही अपने लक्ष्य तक पहुँचाने वाला है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्य जनों को तो क ख ग से ही आरम्भ करना चाहिए और यम नियमों का पालन करते हुए अगले चरणों का अभ्यास करना चाहिए ।

इस योग साधन की एक विशेषता यह भी है कि इसमें साधक का आत्मिक काया कल्प तो होता ही है, उसे शरीर स्वास्थ्य की दृष्टि से भी असाधारण लाभ मिलता है । अपनी आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण योग के अगले अंग आसन प्राणायाम का महत्त्व तो है ही शरीर स्वास्थ्य पर भी उसका लाभकारी प्रभाव पड़ता देखा जा सकता है । स्वास्थ्य संरक्षण के लिए व्यायाम की आवश्यकता से सभी परिचित हैं और विभिन्न आयु की स्थिति के व्यक्तियों के लिए विभिन्न व्यायाम प्रचलित है, परन्तु आसनों को सर्वोत्तम व्यायाम कहा गया है । एक तो इनमें समय भी बहुत कम लगता है, दूसरे इनके परिणाम भी शीघ्र दिखाई देने लगते हैं । इनकी विशेषताओं से प्रभावित होकर विदेशी व्यायाम प्रेमी भी अब इन्हें अपनाते जा रहे हैं, आसनों की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जिन व्यक्तियों को योग के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं मालूम वे आसन और प्राणायाम को ही योग मान रहे हैं । विदेशों में योग के रूप में ही आसनों का प्रचार हो रहा है और ये अपनी त्वरित परिणाम देने वाली विशेषताओं के कारण दिनों दिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं । यहाँ तक कि अपने शरीर को सुडौल और सुन्दर बनाने के लिए विदेशी लोग प्रायः योगासन ही करते हैं । हालीवुड के फिल्म जगत में ब्यूटी क्लीनिक चलाने वाली महिला मैडम सिस्विया अपने क्लीनिक में आने वाले हर स्त्री-पुरुष से योगासन कराती हैं ।

व्यायाम प्रेमी आसन करने वाले लोग इन्हें शारीरिक व्यायाम के रूप में ही करते हैं । यह सच है कि इनसे वे सब लाभ मिलते हैं, जो व्यायाम द्वारा मिलते हैं, लेकिन इससे भी ज्यादा सच यह है कि आसनों से शरीर के उन भीतरी हिस्सो का भी व्यायाम हो जाता है, जिनका साधारण कसरतों से नहीं होता । ऋषियों ने आसनों को योग साधना में इसलिए प्रमुख स्थान दिया है कि वे न केवल स्वास्थ्य रक्षा के लिए अतीव उपयोगी हैं, वरन् शरीर की सूक्ष्म संरचना, मर्म स्थलों को भी क्रियाशील करते हैं जो अतीव कोमल हैं और प्रकृति ने उनके लिए इतना सुरक्षा प्रबन्ध कर रखा है कि उन तक वाह्य प्रभाव नहीं पहुँच पाता ।

आसनों से उन मर्म स्थानों की सुरक्षा होती है और वे सुदृढ़ तथा क्रियाशील बनते हैं । इन मर्मों में यदि किसी प्रकार की बाधा पड़ जाय तो जीवन संकट में पड़ सकता है । ऐसे मर्म स्थान उदर और वक्ष स्थल के भीतर विशेष रूप से हैं । कंठ कूप, स्कन्ध, पुच्छ, मेरुदण्ड और ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्धित ऐसे तैंतीस मर्म स्थल योग शास्त्रियों और शरीर शास्त्रियों ने बताये हैं जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं । दोनों ने इन मर्म स्थानों के भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं, पर इनकी महत्ता से सभी परिचित हैं । इन मर्म स्थानों पर यदि कोई आघात लग जाये, रोग विशेष के कारण इनमें कोई विकृति हो जाये, रक्तभिषरण रुक जाय या और कोई गड़बड़ी उत्पन्न हो जाय तो देह भीतर ही भीतर घुलने लगती है । बाहर से कोई प्रत्यक्ष या विशेष रोग दिखाई नहीं पड़ता पर भीतर ही भीतर देह खोखली हो जाती है ।

शरीर ज्वर ग्रस्त न हो फिर भी इन मर्म स्थानों पर उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तता के कारण ऐसा लगता रहता है जैसे भीतर ही भीतर कुछ गड़बड़ है । मुँह के कडुवापन, शरीर में रोमांच, भारीपन, उदासी, हड़फूटन, सिर में दर्द, प्यास आदि जैसे लक्षण बिना कोई रोग हुए भी अनुभव होते हैं तो इसका कारण यही है कि ये मर्म स्थान किसी आघात से चोट खाये हैं । इस स्थिति में डॉक्टरों को दिखाने पर भी रोग का कोई निदान नहीं हो पाता । वैद्य डॉक्टर कुछ समझ नहीं पाते, दवादारू देते हैं, पर कुछ विशेष लाभ नहीं होता । इन मर्म स्थानों पर चोट पहुँचने से आकस्मिक मृत्यु भी हो सकती है । हानि, शोक, अपमान आदि की परिस्थितियों में कोई मानसिक आघात पहुँचता है तो ये मर्म स्थल विक्षिप्त हो जाते हैं और चोट खाये व्यक्ति के प्राण संकट में पड़ जाते हैं । ये मर्म स्थान अशक्त हो जायें तो गठिया, गंज, श्वेत कुष्ठ, पपरी, खुश्की आदि रोग उपज पड़ते और बड़ी कठिनता से ठीक होते हैं ।

कई बार मोटे-तगड़े और स्वस्थ दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति भी ऐसे मन्द रोगों से ग्रसित होते देखे गए हैं, जो उनकी शारीरिक अच्छी स्थिति को देखते हुए नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होने चाहिए थे । इन रोगों का कारण मर्म स्थानों की गड़बड़ी ही है, क्योंकि साधारण परिश्रम, उचित आहार विहार अपनाये रहने पर भी इन मर्म स्थानों का व्यायाम और पोषण नहीं हो पाता । ऋषि मुनियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर यह तथ्य देखा और पाया कि अच्छा आहार विहार रखते हुए भी विश्राम व्यायाम की व्यवस्था रखते हुए भी कई बार अज्ञात सूक्ष्म कारणों से ये मर्म स्थल विकृत हो जाते हैं और उनका आन्तरिक सन्तुलन गड़बड़ा जाने से बीमारी तथा कमजोरी आ घेरती है, जिससे योग साधन में बाधा पड़ती है । इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही उन्होंने आसनों जैसी वैज्ञानिक, सुसंगत और इन मर्मस्थानों को स्वस्थ रखने वाली प्रक्रिया पद्धति खोज निकाली थी ।

आसन अनेक हैं । उनकी संख्या बहुत बड़ी है । कहने सुनने में ही चौरासी आसन की बात प्रसिद्ध है । उनमें से कुछ आसन किन्हीं व्यक्तियों के लिए अनुकूल पड़ते हैं, तो किन्हीं के लिए प्रतिकूल, इसलिए आसन किसी योग विद्या के आचार्य की देख-रेख में ही करने चाहिए । स्वास्थ्य रक्षा और शक्ति स्फूर्ति की प्राप्ति के लिए कुछ आसन ऐसे अवश्य हैं कि जिन्हें हर कोई करते रह सकता है । शरीर को सुडौल, पुष्ट, स्वस्थ और सुन्दर रखने के लिए एक प्रसिद्ध योग चिकित्सक ने पाँच आसनों का ऐसा सेट बनाया है जिन्हें हर कोई आसानी से कर सकता है । इन आसनों के अभ्यास से शरीर स्वयं ही सुडौल बनता है । अनावश्यक रूप से कुछ अंगों पर बढ़ी चर्बी घट जाती है और शरीर का मोटापन या दुबलापन भी घटता है । सामान्य स्वस्थ व्यक्ति इन्हें बड़ी आसानी से दस पन्द्रह मिनट में कर सकते हैं और दिन भर चुस्त दुरुस्त रह सकते हैं । आसनों के इस सेट में पाद हस्तासन, धनुशासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन और शवासन ये पाँच व्यायाम सम्मिलित हैं ।

पाद हस्तासन से शरीर के सभी अंगों की पेशियों पर खिंचाव पड़ता है और उनका व्यायाम होता है । धनुशासन पेट की पेशियों को विशेष रूप से प्रभावित करता है । इससे पाचन शक्ति ठीक होती और बढ़ती है । शरीर के दूसरे अंगों की पेशियाँ भी इस आसन में खिंचती हैं, अतः शरीर सुडौल बनता है । सर्वांगासन के तो नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसमें शरीर के समस्त अंगों का व्यायाम हो जाता है और इससे देह में रक्त संचार की गति बढ़ती है । इसका विशेष लाभ यह है कि इससे गर्दन का अच्छा व्यायाम हो जाता है, फलतः गले में स्थित थायरॉयड ग्रन्थि अपना काम सुचारु रूप से करती है । इस ग्रन्थि के हारमोन्स शरीर सौष्ठव बनाने में खास हिस्सा लेते हैं । इसलिए थायरॉयड ग्रन्थि को सौन्दर्यवर्धक ग्रन्थि ब्यूटी ग्लैंड्स भी कहा जाता है । इस आसन से शरीर में यौवन आता है ।

मत्स्यासन सर्वांगासन का पूरक है । इसमें भी थायरॉयड ग्रन्थि पर अच्छा प्रभाव पड़ता है । ये दोनों आसन थायरॉयड ग्रन्थि को पूर्ण क्रियाशील बनाकर व्यक्ति को स्वस्थ तथा सुन्दर बनाते हैं । सर्वांगासन और मत्स्यासन के अभ्यास से कन्धे सुडौल बनते हैं । ये दोनों आसन स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं । इन आसनों के बाद शवासन का क्रम है । जहाँ दूसरे आसनों में शरीर को परिश्रम रत रहना पड़ता है, वहीं शवासन द्वारा शरीर को आराम दिया जाता हैं । केवल आसन ही नहीं, दूसरे किसी व्यायाम के बाद भी शवासन करना चाहिए ।

शवासन का अर्थ है, शव की भाँति शरीर को ढीला और निश्चेष्ट छोड़ देना । इस क्रिया से जहाँ एक ओर व्यायाम की थकावट दूर होती है, दूसरी ओर शरीर की पेशियों और स्नायु मण्डल का तनाव दूर होता है । शिथिलीकरण के इस आसन में चूँकि शरीर से कोई हरकत नहीं की जाती इसलिए शरीर तरोताजा एवं हल्का हो जाता है । शवासन अत्यन्त सरल होते हुए भी एक विधि संगत प्रक्रिया है । इस विधि का उपयोग करते हुए शवासन का पूरा लाभ उठाया जा सकता है । फर्श पर चित्त लेटकर इस आसन में टाँगों और हाथों को शव की तरह सीधा फैला दिया जाता है । पैर के पंजों को ढीला छोड़ दिया जाता है । गर्दन भी पूरी तरह ढीली छोड़ दी जाती है । सिर को किसी एक ओर लुढ़कने दिया जाता है । यह समझते हुए चलना पड़ता है कि शरीर का प्रत्येक अंग शिथिल और शान्त हो रहा है । चेहरे की पेशियाँ मुहँ का जबड़ा ढीला छोड़ दिया जाता है, जैसे गहरी नींद में सब अंग शिथिल और ढीले पड़ जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखों की पलकें इस तरह घुमाकर बन्द कर ली जाती हैं जैसे नींद में झपक कर आँखें बन्द हो जाती हैं । छाती की पेशियों को ढीला करने के लिए श्वास-प्रश्वास की गति बहुत धीमी कर दी जाती है, जैसे की नींद में हो जाती है । इसके साथ ही मन को भी ढीला और निस्पन्द किया जाना चाहिए । मन में कोई विचार या कल्पनाएँ अपनी ओर नहीं चलाने चाहिए । इतना सब करने पर शरीर में काफी शिथिलता आ जाती है । अब कल्पना करनी चाहिए कि और अधिक शिथिलता की लहर पैरों की ओर से चलना आरम्भ हो गई है तथा धीरे-धीरे टाँगों, जाँघों, उदर, छाती, गर्दन मुँह और सिर की ओर बढ़ती हुई पूरे शरीर को शिथिल बनाकर पूरा आराम दे रही है ।

इन सब आसनों से मुश्किल से आधा घण्टे का समय लगता है । प्रथम चार आसन एक-एक मिनट में और पाँच का आसन दस मिनट से आरम्भ करते हुए पहले चारों आसनों को पाँच मिनट तक बढ़ाना पर्याप्त है । इन आसनों को करते समय बरती जाने वाली सावधानियों के तौर पर योगशास्त्रियों का कथन है कि आसन प्रातःकाल ही करना चाहिए । स्नान आसन करने के आधा घण्टे बाद करना चाहिए । स्नान पहले किया जाय और आसन बाद में तो और अच्छा हो । यथासम्भव आसन एकान्त स्थान में करना चाहिए । गर्मी के मौसम में इन्हें खुले स्थान पर भी किया जा सकता है । सर्दियों में ऐसे कमरे में आसन करना चाहिए जहाँ शुद्ध वायु आने के लिए खिड़की, रोशनदान आदि खुले हों । कहने का तात्पर्य यह है कि आसन करते समय खुली और ताजी हवा मिल सके तो अच्छा है । शहरों में घनी आबादी के कारण जहाँ वैसी सुविधा नहीं हो, वहाँ यह नहीं सोचना चाहिए कि आसन से कोई लाभ नहीं होगा या हानि होगी । उस स्थिति में भी आसन का अभ्यास किया जा सकता है ।

आसनों में समय का ध्यान रखना और एक नियत लयबद्ध क्रम से उनका अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है । यों समय का अनुमान गिनती गिनकर भी लगाया जा सकता है, परन्तु भारतीय मनीषियों ने मन्त्र जप करते हुए मन्त्र की संख्या को ध्यान में रखकर आसन का समय नियत रखने को विशेष महत्त्व दिया है । उपरोक्त आसन स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए यौवन और शक्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा लाभदायक है । इनके अतिरिक्त और भी कई आसन ऐसे हैं जिन्हें करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं है । आसन करते समय किसी उपयुक्त मार्ग-दर्शक का परामर्श लिया जा सके तो अच्छा है ।

इन दिनों आसनों के महत्त्व को लेकर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं । वैज्ञानिक इनके लाभों पर शोध कर रहे हैं और जैसे-जैसे निष्कर्ष सामने आते जा रहे हैं, वैसे-वैसे इनकी उपयोगिता बढ़ती और सामने आती जा रही है । कहना चाहिए कि उपयोगिता तो सदा से है लेकिन उसे समझा अब जाने लगा है ।

अंग-संचालन की सुगम प्रक्रिया

स्वस्थ रहने के लिए आहार-विहार का संयम और नियमित दिनचर्या जितनी अधिक आवश्यक है, उतना ही यह भी आवश्यक है कि शरीर का प्रत्येक अंग सक्रिय रखा जाय । इस सक्रियता को बनाये रखने के लिए व्यायाम का महत्त्व एक मत से स्वीकार किया गया है । कोई भी मशीन कितनी ही सावधानी से क्यों न चलाई जाये, चलते-चलते उसमें कुछ न कुछ कूड़ा-कचरा जमा हो ही जाता है । शरीर भी एक जटिल मशीनरी ठहरी । जीवन प्रक्रिया में शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों में विकार उसी प्रकार उत्पन्न होते रहते हैं, जैसे किसी मकान में गर्द-गुवार । जिस प्रकार घर की नित्य प्रति वाली सफाई से एकत्रित कूड़े-कचरे निकलते रहते हैं, उसी प्रकार शरीर रूपी घर की भीतरी गर्द-गुवार निकलने के लिए व्यायाम का आश्रय लेना पड़ता है ।

मानव शरीर के विभिन्न संस्थान एक-दूसरे से भली-भाँति गुथे हुए हैं । एक अंग की खराबी दूसरे अंग या अंग अवयवों को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती । उदरशूल उठते ही मस्तिष्क का सारा का सारा ध्यान ऊपर ही चला जाता है । हाथ-पाँव छटपटाने लगते हैं । मामूली समझा जाने वाला काँटा गड़ने मात्र से मस्तिष्क सारा काम छोड़कर उसी को निकलवाने में जुट पड़ता है । शरीर संरचना विदों की मान्यता है कि शारीरिक अंग-अवयवों का संचालन यदि होता रहे तो पूरा शरीर स्वस्थ रखा जा सकता है । अंगों की जीवनी शक्ति अक्षुण्ण बनाये रखने तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकसित करने के लिए पर्याप्त श्रम आवश्यक होता है । यह श्रम नियोजन यदि आरोग्य के लिए किया जाता है तो स्वास्थ्यवर्धक होता है ।

व्यायाम का नाम लेते ही लोग वर्षों तक चलने वाली उन क्रियाओं की ओर ध्यान बरबस डालते हैं, जिसमें शरीर की माँसपेशियों को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रातः और सायं डण्ड-बैठक लगाने पड़ते हैं अथवा अखाड़े में कुश्ती लड़नी पड़ती है । ऐसे लोग जिन्होंने व्यायाम का शुभारम्भ ही नहीं किया, इन क्रियाओं को देखकर हताश-से हो उठते हैं और व्यायाम के नाम से कतराने लगते हैं । विभिन्न तर्क उपस्थित करते हैं । ऐसे लोगों के लिए जानने योग्य तथ्य यह है कि कठिन व्यायाम पहलवानों के लिए आवश्यक हो सकते हैं, पर सामान्य व्यक्तियों के लिए तो सामान्य व्यायाम ही उपयोगी ठहरता है ।

हमारे यहाँ होता यह है कि मानसिक कार्यों में लगे रहने वाले, शरीर एवं व्यायाम की उपेक्षा करने लगते हैं और प्रायः शारीरिक श्रम से परहेज करते हैं । व्यायाम का अतिवाद भी बुरा है, तभी तो दामोदर सातवलेकर ने लिखा है—"व्यायाम की जो पद्धतियाँ आजकल प्रचलित हैं, उनमें बोझ उठाने और एक ही प्रकार की गति एक-एक स्नायुओं को कई-कई बार करनी पड़ती है । इस प्रकार के व्यायामों से स्नायुओं का आकार बहुत बढ़ जाता है । उनमें बल भी बहुत बढ़ जाता है, पर स्वास्थ्य नहीं बनता । इसका कारण यह है कि स्नायु में अधिक गति करने से उनमें रक्त बहुत आता है और रक्त का संचय आवश्यकता से अधिक बढ़ने लगता है, जिससे वहाँ के मज्जा तन्तु नष्ट हो जाते हैं । इसलिए ऐसे व्यायामों से शक्ति तो बढ़ जाती है, पर आरोग्य नहीं बढ़ता । पहलवानों के शरीर बलवान और हृष्ट-पुष्ट होने पर भी शायद ही कोई पहलवान पूरी आयु जी पाता है और जो जिन्दा रह भी जाते हैं, उनकी वृद्धावस्था सामान्य लोगों की तुलना में अधिक दुःखदायी होती है । आम आदमी की अपेक्षा उन्हें अधिक कष्ट झेलना पड़ता है ।"

इसका मतलब यह नहीं कि व्यायाम व्यर्थ है । शक्ति संवर्धन के लिए उन्हें किया भी जाना चाहिए, पर आरोग्य प्राप्ति के लिए इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शरीर के उन भागों से भी मल निष्कासित होता रहे, जहाँ तक व्यायाम की पहुँच नहीं है । उन सूक्ष्म स्थानों, स्नायु कोषों से विकारों को निष्कासित करने के लिए भारतीय योग शास्त्रियों ने ऐसी व्यायाम पद्धति का विकास किया है, जो मर्मस्थानों के शोधन के साथ-साथ शरीर के स्नायुओं को सचेष्ट भी करता है । इन आसन व्यायामों की उपयोगिता तब और सुस्पष्ट हो गई, जब अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान भारत के स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा को योगाभ्यास करते हुए देखा गया । उनके अभ्यासों से रूसी साथी इस कदर प्रभावित हुए कि उन लोगों ने मान्यता बना ली कि अन्तरिक्ष कार्यक्रम में विशिष्ट व्यायाम-अभ्यास आवश्यक ठहरते हैं । अन्तरिक्ष में गुरुत्वाकर्षण नहीं होता, अस्तु माँसपेशियों को सुचारु रूप से सक्षम बनाये रखने के लिए वहाँ विशेष व्यायाम परम उपयोगी है । इन्स्टीट्यूट ऑफ एवीएशन मेडिसिन, बंगलौर ने भी भारतीय अन्तरिक्ष यात्रियों को प्रशिक्षण काल से ही व्यायाम के योगाभ्यासों को अनिवार्य कर लिया है ।

अमेरिका जैसे वैज्ञानिक देश ने भी अपनी टेक्नोलॉजी प्रतिभा को व्यायाम क्षेत्र में नियोजित किया है । परिणामस्वरूप नित नई-नई व्यायाम विधियाँ विकसित हो रही हैं । एक अनुसंधान शाला में माँसपेशियों को सुविकसित कर पाने के अनेकानेक पहलुओं पर शोध चल रहा था । प्रयोगों के दौरान निष्णात डॉक्टरों ने एक मेढ़क की आगे वाली दोनों टाँगों को मेज पर अच्छी तरह जकड़ दिया । पीछे की टाँगें इसलिए स्वतन्त्र रखी गईं ताकि वह हिल-डुल सके और गतिमान रहकर मेंढक जीवित बना रहे । उन सबों की मान्यता थी कि गतिशीलता के कारण स्वतन्त्र टाँगें विकसित हो पायेंगी और अन्य बँधी-बँधी लकवाग्रस्त-सी हो जायेंगी, किन्तु उस दल ने सर्वथा विपरीत परिणाम देखा जो आश्चर्यजनक था । बँधी हुई टाँगें अचल मेज से तब तक टकरातीं, जब तक वह उछलने-कूदने का प्रयास करता । वस्तुस्थिति समझ में आयी की मेढक की स्वतन्त्र टाँगें तो आगे-पीछे जोर मारती थीं किन्तु बँधी टाँगें एक ही दिशा में मेज को ही पीटती थीं, जिसके कारण उन टाँगों की पेशियाँ बढ़ी पायी गईं । इसी प्रयोग को व्यापक रूप से व्यायाम करने वाले दो दलों पर दुहराया गया । एक दल को जहाँ दौड़ना, भागना, वजन उठाने जैसा परम्परागत व्यायाम कराया गया,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहीं दूसरे दल वालों में अचल वस्तु के सहारे उनकी माँसपेशियों पर अधिक दबाव डलवाया गया । प्रयोग परिक्षणों में यह नई पद्धति उपयोगी सिद्ध हुई और "आइसोमीट्रिक" व्यायाम के नाम से अमेरिका में प्रचलित और प्रचारित हो गई । इसकी लोकप्रियता का दूसरा कारण है कि इस व्यायाम में लगने वाला अत्यल्प समय, वह भी कुछ सेकेण्डों का । यदि समय को कोई दुगुना लगा भीं दे तो लाभ दुगुना होने वाला कहाँ ? अभ्यासकर्त्ता अपनी माँसपेशियों पर अधिकाधिक दबाव किसी स्थिर वस्तु की सहायता से देता है । दीवार पर सामने की ओर से या पीठ की ओर से दबाव दिया जा सकता है । बीच दरबाजे पर खड़े होकर चौखट से अथवा किसी लोहे के फ्रेम से भी वांछित दबाव डाला जा सकता है । शर्त यह है कि दबाव अच्छा-खासा पड़ना चाहिए । यदि हम कन्धों के सामने दोनों हाथों को लगाकर दीवाल को ठेलने का अभ्यास पूरा जोर लगाकर करते हैं, तो इससे बाँह, पीठ और कन्धे की पेशियाँ बलिष्ठ होती हैं । इस प्रकार अन्य पेशियों पर दो-चार सेकण्ड को दबाव डालने वाली प्रक्रिया अपना ली जाती है ।

नव विकसित आइसोमीट्रिक व्यायाम जहाँ उत्साह, आरोग्यता और सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ है, वहीं इसके कुछ अन्य लाभ भी गिनाये गए हैं । इसमें न तो भाग-दौड़ जैसी थकाने वाली प्रक्रिया अपनानी पड़ती है और न साधन सहयोगियों की आवश्यकता अपेक्षित होती है । कपड़े पहनकर या उतारकर यह अभ्यास कहीं भी किया जा सकता है । इसके समर्थकों ने दो-चार मिनट प्रतिदिन इस हेतु लगाने तथा परिणाम परखने के लिए १५ दिन की प्रतीक्षा करने को कहा है । इसके अल्पभ्यास से ही शारीरिक स्फूर्ति बढ़ने तथा दैनन्दिन कामों में निरालस्यता आने लगती है ।

अत्यल्प अवधि का यह सरल अभ्यास उन सभी लोगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है, जिनके पास समय का अभाव है इसके अतिरिक्त ईसे कहीं भी किसी भी स्थिति में किया जा सकता है । यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है । अंग-संचालन की इस सरल-सुगम प्रक्रिया का लाभ प्रत्येक को उठाना चाहिए ।

प्रकृति परिकर के अन्य सभी जीव-जन्तुओं की गतिविधियों पर दृष्टिपात किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनकी शारीरिक हलचलें निरन्तर चलती रहती हैं । पशुओं को घास कुतरने के लिए, पक्षियों को दाने बीनने के लिए सदा भागते-दौड़ते रहना पड़ता है । जल-जन्तु भी किलोल करते रहते हैं । मक्खी-मच्छर तक एक जगह नहीं बैठते, उन्हें भोजन के लिए, विनोद के लिए सदा भगदड़ मचाते देखा जा सकता है । हिरण, बन्दर, खरगोश आदि अकारण भागते-दौड़ते देखे जाते हैं । यह सारी प्रकृति-प्रक्रिया अकारण नहीं है । इसके पीछे एक सुनिश्चित विधान है कि प्राणी कठोर शारीरिक श्रम करने में निरत रहे । हाथ-पैर आदि बाहरी अंगों को सुदृढ़ बना भीतरी अवयवों को ऐसी अतिरिक्त उत्तेजना प्रदान करता रहे जो उनकी स्वसंचालित संरचना को समर्थ सहयोग प्रदान करती रहे, स्वस्थ, दीर्घजीवन उपलब्ध करने का अवसर प्रदान करती रहे ।

श्रमजीवी वर्ग के लोगों को यह सुयोग सहज ही मिल जाता है । किसान, मजदूर, माली, ग्वाले, लुहार, बढ़ई स्तर के लोग दिनभर शारीरिक श्रम करते और सुदृढ़ एवं निरोग रहते हैं । प्रश्न उन लोगों का है जो मस्तिष्कीय श्रम के, क्लर्कों के स्तर के, कुर्सी पर बैठकर काम करते हैं, मुनीमों की तरह बहीखाता जोड़ते रहते हैं । उन्हें दफ्तर से छूटते ही शारीरिक श्रम का अवसर खोजना चाहिए । दफ्तर से घर यदि बहुत दूर न हो तो पैदल ही आया और जाया जाय । घर पर शाक-वाटिका, पुष्प वाटिका लगाने का शौक लगाया जाय । मिल-जुलकर घर का काम निपटाने से सभी सदस्यों को समानता का न्यायोचित अवसर मिलता है साथ ही कर्म-कौशल उभरता तथा अन्य उपयोगी कर्मों के लिए समय बचता है । कपड़े धोना, घर की पुताई, सफाई, टूट-फूट की मरम्मत, बर्तन माँजना जैसे कार्यों में यदि घर के सभी साथ-साथ जुट पड़ने की आदत डालें तो सभी को व्यायाम का लाभ मिलेगा । थोड़ी देर में घर साफ-सुथरा हो जायेगा । जो स्त्रियाँ दिन भर काम में उलझी रहती हैं, उन्हें और पढ़ने या गृह-उद्योग अपनाने का अवसर मिल जायेगा । इससे उनकी पात्रता भी बढ़ेगी और गृह व्यवस्था भली प्रकार रख सकने में सभी की मिली-जुली सूझबूझ काम करेगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

छोटे बच्चे पालने में पड़े-पड़े हाथ-पैर फेंकते देखे जाते हैं । प्रकृति इस प्रकार उनसे व्यायाम की आवश्यकता पूरी कराती है । प्रश्न उन बीमारों, दुर्बलों, वृद्धों, निठल्लों का रह जाता है जिनका शरीर कठोर श्रम का अभ्यस्त नहीं है । वे चाहने पर भी इस सन्दर्भ में कुछ बड़ा फैसला नहीं कर सकते । उनके लिए प्रातःकाल की खुली हवा में टहलना भी काम चलाऊ हो सकता है । गहरी साँस लेते हुए कुछ तेज चाल से हर दिन तीन मील टहला जा सके तो उतने भर से अवयवों को इतनी उत्तेजना मिल सकती है कि गाड़ी ठीक तरह लुढ़कती रहे, अवरोध उत्पन्न न होने पाये ।

जिनके लिए इतना करना भी कठिन है उनके लिए बिस्तर पर पड़े-पड़े अंगों का संचालन करते रहना आवश्यक है । उस उपक्रम को भी बेसिलसिले, बेढंगे तरीके से नहीं अपनाया जाना चाहिए । इसमें भी क्रम-व्यवस्था सम्मिलित रखी जा सकती है ।

सैनिक कवायदों में प्रायः यही होता है । अंगों को एक गति से आगे बढ़ाना, फैलाना, फिर उसी गति से उसी कोण से वापिस लौटाना । यह कार्य हाथों से, गरदन से, कमर से, पेट से बारी-बारी से लिया जा सकता है । उन्हें ऊँचा उठाया जाये, आगे बढ़ाया जाय । यह तीनों ही गतियाँ अपनाने से एक समग्र व्यायाम बनता है । जिस क्रम से उन्हें फैलाया गया है उसी के अनुरूप उन्हें सिकोड़ा भी जाय । इसमें तेजी लाने और उतावली बरतने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा करने पर थकान आने लगेगी और जहाँ-तहाँ दर्द होने लगेगा । फैलाने, सिकोड़ने में धीमी गति रखना ही ठीक है । जल्दी में अमुक संख्या पूरी करने की आवश्यकता नहीं है वरन् यह प्रत्यन करना चाहिए कि गति धीमी रहे और हर उपक्रम को पूरा करने में आवश्यक समय लगे । साथ ही यह ध्यान भी रखा जाना चाहिए कि फैलाने की क्रिया के साथ साँस अधिक से अधिक लम्बी खींची जाय और सिकोड़ना आरम्भ किया जाय तो साँस भी इस प्रकार छोड़ी जाय कि फेफड़े पूरी तरह खाली हो जायें, पेट पिचकने लगे ।

आवश्यक नहीं कि यह प्रक्रिया एक बारगी लम्बे समय तक चलाई जाय । अच्छा यह है कि कुछ देर उपरान्त बिस्तर पर पड़े-पड़े किए जाने वाले अंग संचालन करने के उपरान्त विराम ले लिया जाय । कुछ समय विश्राम करने पर थकान उतरने के पश्चात फिर वह क्रम चलाया जाय । इस प्रकार खाली समय भी कटता है और उसका सरल व्यायाम करते रहने के रूप में सदुपयोग भी हो जाता है ।

सरल आसनों द्वारा अंगों को सक्रिय कैसे बनायें ?

योगाभ्यास में आसनों की बारी यम नियम के उपरान्त आती है । आसन का मोटा अर्थ परिश्रम व्यायाम समझा जाता है और अवयवों को सक्रिय सुदृढ़ रखने के लिए उनका महत्त्व अनिवार्य रूप से स्वीकार किया जाता है ।

आसनों की संख्या कितनी ही है उनमें ६४ या ८४ प्रसिद्ध हैं । इनके स्वरूपों में भिन्नता प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविक उद्देश्य तलाश करने पर यही प्रतीत होता है कि जिन अवयवों पर साधारण व्यायामों का असर नहीं पड़ता उन पर ही इस प्रकार का दबाव पड़े कि उनकी शिथिलता सक्रियता में बदल सके ।

डण्ड-बैठक जैसी कसरतों में हाथ, सीने, जंघाओं पर ही जोर पड़ता है, किन्तु भीतरी अवयव उस क्रियाशीलता से वंचित ही बने रहते हैं । हृदय, फुप्फुस, यकृत, गुर्दे, आँतें, मूत्राशय, नितम्ब, रीढ़ आदि कई अवयवों पर सामान्य व्यायामों का नगण्य प्रभाव पड़ता है, जबकि हाथ, पैर आदि पर ही अधिक दबाव पड़ता है । इस असन्तुलन को दूर करने में योगासनों की विशेष भूमिका है । उन्हें शृंखलाबद्ध करने से शरीर के सभी अवयवों को उतना प्रभाव पहुँच जाता है, जिससे उनकी सक्रियता सतेज हो सके और निष्क्रियता जन्य विकृतियों से छुटकारा मिल सके ।

पुराने समय के कुक्कुटासन, मत्स्यासन, मयूरासन आदि पशु-पक्षियों की व्यायाम पद्धति का अनुसरण करके विनिर्मित किए गए हैं, पर उनमें कठिनाई यह है कि छोटी आयु से ही उनका अभ्यास किया जाय तो मुलायम हड्डियाँ और माँसपेशियाँ उनका अभ्यास आसानी से कर लेती हैं, पर जब आयु बड़ी हो जाती है तो इन सब में कड़ापन आ जाता है । ऐसी दशा में वे ठीक तरह बन नहीं पड़ते । झुक कर हाथों से पैरों के अँगूठे छूना बचपन में तो आसानी से हो जाता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, पर बड़ी उम्र हो जाने पर टखने की नसें भी कड़ी पड़ जाती हैं और रीढ़ की हड्डी भी एक सीमा तक ही झुक पाती है । अधिक दबाव सहन करने से वह इन्कार कर देती है । जबरदस्ती करने पर लाभ की जगह हानि होने का खतरा बढ़ जाता है । पुराने जमाने में लोगों को आरम्भ से ही अभ्यास रहता था । ऐसी दशा में उन्हें आसनों की प्रणाली कठिन नहीं पड़ती थी, किन्तु अब स्थिति बदल गई है । तदनुसार व्यायामों के आसान पक्ष पर भी नये सिरे से समयानुसार विचार करने की आवश्यकता है ।

बच्चों से लेकर बुड्ढों तक के लिए, नर-नारी सभी के लिए यह शैली उत्तम है कि विभिन्न अवयवों को क्रमशः धीरे-धीरे सिकोड़ने और फैलाने की शैली अपनाई जाय । इसमें डण्ड-बैठकों की तरह जल्दबाजी न की जाय, वरन् धीमी गति रखी जाय । धीमापन अधिक लाभदायक और महत्त्वपूर्ण है । साइकिल को भगा ले जाना उतना कठिन नहीं है जितना कि उसे धीमे अति धीमे चलाना । उसमें अपना और साइकिल का बैलेन्स अधिक ध्यान पूर्वक सँभालना पड़ता है ।

यही बात आसनों के सम्बन्ध में है । उन्हें ऊपर से नीचे की ओर करते चला जाय । गर्दन को पहले बायीं और मोड़ा जाय, पीछे दाहिनी ओर । वह अधिक से अधिक जितनी मुड़ सके उतनी मोड़नी चाहिए । अब ऊपर और नीचे ले जाने का क्रम आरम्भ करना चाहिए । सिर जितना पीछे जा सके, ठोढ़ी जितनी ऊँची उठ सके उतनी उठानी चाहिए, इसके उपरान्त उसे नीचे लाना चाहिए, यहाँ तक कि ठोढ़ी छाती से लगने की स्थिति में आ जाय । बाएँ-दाहिने या ऊपर-नीचे मोड़ने में इस बात का ध्यान रखा जाय कि गति धीमी रहे और मोड़ने की क्रिया आसानी से जितनी अधिक की जा सके उतनी करनी चाहिए । अब कन्धों की बारी आती है उन्हें भी बाएँ-दाहिने तथा नीचे-ऊपर करना चाहिए इसके बाद कोहनियों पर से हाथ को ऊपर लाने, नीचे ले जाने की क्रिया करनी चाहिए । यही बात कलाइयों, हथेलियों एवं उँगलियों को नीचे-ऊपर दाहिने-बाएँ ले जाने के सम्बन्ध में चलनी चाहिए । इसी सिलसिले में पूरे हाथ को ऊपर ले जाने, नीचे लाने का अभ्यास करना चाहिए । हाथ जोड़ने के ढंग से आगे लाने और पीछे जितने जा सकें, उतना प्रयत्न करना चाहिए ।

पेट के भीतरी अवयवों के लिए भी यही शैली काम दे जाती है । फेफड़ों में अधिक से अधिक हवा भरके उन्हें फैलाना और फिर हवा निकालते हुए उन्हें सिकोड़ना चाहिए । आँतों और आमाशय के व्यायाम के लिए थोड़ा झुकना पड़ता है । हाथ टखनों पर जमा लेने पड़ते हैं और फिर उन्हें बाहर लाने, भीतर खींचने की चेष्टा करनी होती है । यह जितना सम्भव हो, उतना ही करना चाहिए । सीमा का सदा ध्यान रखना चाहिए । दबाव तो डालना चाहिए, पर वह इतना अधिक न हो कि अंग दुःखने लगें या अनख लगने लगे । यों पेट एक है, पर इच्छा शक्ति के सहारे उसके यकृत, गुर्दे, मूत्राशय आदि को भी फुलाने-सिकोड़ने की क्रिया चल सकती है । चूँकि इसमें इच्छा शक्ति को भी प्रयत्न करना पड़ता है, पर अभ्यास होता नहीं, इसलिए सफलता कुछ देर में मिलती है फिर भी अभ्यास तो जारी रखना चाहिए । पेट के भीतरी अवयवों का अभ्यास भी इसी तरह हो जाता है और उसमें सफलता मिलने लगती है ।

रीढ़ की हड्डी के व्यायाम का तरीका यह है कि जमीन या तख्त पर सीधे लेट जाया जाय । नितम्ब जहाँ के तहाँ जमे रहें । ऊपर के धड़ को बिना कोहनियों का सहारा दिए ऊपर उठाना चाहिए । जब पूरी तरह बैठ जाने जैसी स्थिति बन जाय तो पहले की स्थिति में चित्त लेट जाने का उपक्रम करना चाहिए । इसमें भी रीढ़ को झुकने और सीधे होने का अवसर मिलता है । कमर को भी इसी प्रकार बाएँ-दाएँ और आगे-पीछे झुकाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

पैरों का व्यायाम अपेक्षाकृत सरल है । उन्हें एक-एक करके आगे-पीछे ले जाना चाहिए तथा चौड़ाने सिकोड़ने का प्रयत्न भी करना चाहिए । घुटनों पर जोर देने का तरीका यह है कि ऊपर से नीचे बैठा जाय और फिर नीचे से ऊपर उठा जाय । पैर के पंजों और उँगलियों का व्यायाम भी इसी क्रम से हो सकता है ।

जिन दुर्बल शरीर वालों से खड़े होकर यह क्रियाएँ न हो सकें, उन्हें जमीन पर पीछे लेट कर अवयवों को ऊँचा-नीचा और दायाँ-बायाँ करने का अभ्यास करना चाहिए । वह अपेक्षाकृत सरल पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्कूलों में बच्चों को प्रायः इसी क्रम से ड्रिल अभ्यास कराये जाते हैं । स्काउटिंग में भी इसी से मिलती-जुलती पद्धति काम आती है । इन दिनों की स्थिति को देखते हुए विभिन्न अंग-अवयवों को सिकोड़ने फैलाने की पद्धति ही हानि रहित और करने में सुगम पड़ती है । सभी अंगों के संचालन में आरम्भ में आधा घण्टा लगाना चाहिए । बाद में क्रमशः बढ़ाते हुए इस प्रक्रिया को एक घण्टे तक ले जाया जा सकता है । शरीर के सक्रिय होने पर मन पर भी उसका असर पड़ना स्वाभाविक है ।

आसनों-व्यायामों की वैज्ञानिक मान्यता

योग मुख्यतया जीव चेतना को ब्रह्मचेतना के साथ जोड़ देने वाली भावनात्मक एवं विचारणात्मक पद्धति है । उसमें दार्शनिकता प्रधान है तथा हलचल कम । योगी अपनी हलचलों को समेटते हैं और शरीर की शिथिलता को मन की शान्ति, एकाग्रता की स्थिति में ले जाने का प्रयत्न करते हैं । इससे अन्तर्जगत की थकान दूर होती है और ध्यान धारणा के सहारे समाधि स्तर की विश्रान्ति प्राप्त करने के उपरान्त वह स्थिति बन जाती है जिसमें नव-जीवन का नये सिरे से निर्धारण सम्भव हो सके । ब्रह्म-विद्या का तत्व-दर्शन मन और चिन्तन परक है । उपनिषद् में योग का प्रतिपादन इसी रूप में हुआ है ।

योग का भौतिक पक्ष वह है जिसमें शारीरिक हलचलों पर अधिक ध्यान दिया गया है और उसके सहारे स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्रयत्न किया गया है । इस प्रतिपादन का तर्क यह है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है । इसलिए मन को सुसंस्कृत बनाने से पूर्व शरीर को स्वस्थ बनाने की आवश्यकता है ।

तर्कों का यह सिलसिला यर्थ है । शरीर प्रथम या मन इस विवाद में पड़े बिना भी यह माना जा सकता है कि स्वास्थ्य की अपनी उपयोगिता है और प्रधान या गौण ठहराने के झंझट में पड़े बिना भी महत्त्वपूर्ण समझा जाय । इसके लिए जो योग साधन उपयोगी हो सकते हैं, उन्हें काम में लाया जाय ।

योग साधन के शरीर पक्ष में आसन, प्राणायाम, मुद्रा जैसी क्रियापरक विधियों का समावेश है । हठयोग के अन्तर्गत नैति, धोति, वस्ति, न्यौली, बजौली, खालमति आदि जित् शोधन कृत्यों का विधि विधान है उन्हें भी इस स्तर का माना जा सकता है । व्रत, उपवास एवं तितीक्षा उपचार भी लगभग इसी श्रेणी के हैं । इनका उद्देश्य शरीर को निरोग समर्थ बनाना है । फिर भी जिन सिद्धान्तों, उपायों का इस प्रकार के क्रिया-कृत्य में उपयोग किया जाता है उनका परोक्ष रूप से चेतना को परिष्कृत करने में भी कुछ न कुछ उपयोग रहता ही है । स्वास्थ्य सुधार का लाभ भी कम महत्त्व का नहीं है । उसके लिए जो उपचार काम में लाये जाते हैं उन्हें योग विद्या के भौतिक पक्ष की पूर्ति करने वाले माना और अपनाया जा सकता है ।

विज्ञान क्षेत्र में शरीर को ही प्रधानता मिली है, इसलिए योग के सन्दर्भ में उसका वही पक्ष आकर्षक लगा है जो स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए प्रयुक्त होता है । इसलिए विदेशों में आसन प्राणायाम को ही योग माना गया है, बहुत हुआ तो मानसिक एकाग्रता को भी इसमें सम्मिलित कर लिया जाता है ।

आसनों के सम्बन्ध में जो शोध देश और विदेश में चला है उससे वे अंग संचालन की सामान्य व्यायाम प्रक्रिया न रह कर उससे अधिक बढ़े-चढ़े सिद्ध हो रहे हैं । स्पष्ट है कि जिसे प्रयोगशाला स्वीकार करती है उन्हें अन्य लोग भी अपनाने लगते हैं । लगता है जिन आसन अभ्यासों को पिछले दिनों उपहासास्पद ठहराया जाता था उन्हें अगले दिनों तथाकथित लोगों को भी उपयोगिता देखते हुए आकर्षित होना पड़ेगा ।

रूस के व्यायाम-चिकित्सा के प्रोफेसर एम. सारकी सौव सैराजिनी ने "मैन ास्ट बी हैल्दी" नामक पुस्तक लिखी है । वे वहाँ अपने विषय के मर्मज्ञ एवं विशेषज्ञ समझे जाते हैं । अपनी उक्त पुस्तक में उन्होंने स्वस्थ रहने के लिए यौगिक श्वंसन का परामर्श दिया है ।

सेन्ट्रल क्लीनिकल हॉस्पीटल, मास्को के बाल-रोग विशेषज्ञ एवं सर्जन डॉ. अनातोली मैड वैस्टकाई रोगी बालकों के सरल एवं साधारण योगासनों का नुस्खा बताते हैं और इस कार्य में वह विशेष सफलता प्राप्त करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप के ही कॉन्सटेनिटन बुटिको नामक हृदय रोग विशेषज्ञ चिकित्सक ने सैकड़ों विभिन्न प्रकार के बीमारों को यौगिक क्रियाओं द्वारा ठीक करने में आशातीत सफलता प्राप्त की । उन्होंने दमा से पीड़ित व्यक्तियों को औषधियाँ देने के बजाय यौगिक श्वसन की क्रिया का अभ्यास कराया । परिणामस्वरूप उनके शरीर में प्रवेश करने वाली ऑक्सीजन व कार्बन-डाई ऑक्साइड के बीच रहने वाला असन्तुलन दूर हो गया और दमा के रोगियों को बहुत लाभ हुआ । दमा के अतिरिक्त वह यौगिक क्रियाओं द्वारा मिर्गी, उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोग जैसी भयानक बीमारियों का सफल उपचार करते हैं ।

वर्तमान समय में विश्व में करोड़ों की संख्या में मधुमेह के रोगी हैं । 'मेडीकल साइन्स' के द्वारा अभी तक इसका कोई सुनिश्चित उपचार ज्ञात नहीं हो सका है । ४०० ई. पू. सुश्रुत ने इस बीमारी के रोगियों के मूत्र में मिठास की उपस्थिति बताई थी । ईसा की १७ वीं शताब्दी में वैस्ट विली, ने मधुमेह से पीड़ित रोगी के मूत्र में शक्कर की उपस्थिति का परीक्षण करके दिखाया । मधुमेह के रोगी की समस्त अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं । प्रारम्भ में रक्त में ग्लूकोज की मात्रा कम एवं पैन्क्रियाज से स्रवित इन्सुलिन की मात्रा में कमी पायी जाती है ।

'सेन्ट्रल कॉउन्सिल फार रिसर्च इन इण्डियन इण्डिजिनस मेडीसिन एण्ड होम्योपैथी' द्वारा आयोजित-प्रथम वैज्ञानिक सम्मेलन में डॉ. धर्मवीर, नारायण वरन्दानी और स्वामी आनन्द ने मधुमेह की चिकित्सा में 'योग' का योगदान सम्बन्धी कुछ प्रयोगों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया ।

"यौगिक ट्रीटमेन्ट रिसर्च सेन्टर" नामक संस्था में विभिन्न आयु वर्ग के २८३ मधुमेह के रोगियों पर तीन महीने के लिए प्रयोग किया गया । रोगियों को सन्तुलित भोजन के रूप में ६८ ग्राम वसीय पदार्थ, ४०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, १०० ग्राम प्रोटीन और कुल २६०० कैलोरी नियमित ढंग से प्रदान किए गए । समय-समय पर उनका भार, मूत्र परीक्षण, खून में शुगर ग्लूकोज की जाँच तथा हृदय का ई. सी. जी. द्वारा परीक्षण किया गया ।

रोगियों को प्रतिदिन प्रातः सायं दो बार सर्वांगासन, हलासन मयूरासन, पादहस्तासन, उतान पादासन, शीर्षासन, जानुशिरासन, पवनमुक्तिासन, शवासन आदि सरल आसन एवं कुछ अन्यान्य यौगिक क्रियाएँ कराई जाती रहीं । साथ ही उनकी दिनचर्या नियमित क्रम से रखी गई तथा प्रार्थना, भजन-पूजन, ध्यान-साधना आदि का भी समावेश रखा गया ।

तीन महीने के परीक्षण के बाद देखा गया तो ज्ञात हुआ कि ५२ प्रतिशत रोगी लाभान्वित हुए उनमें से अधिकांश पूर्ण स्वस्थ हो गए । इस अवधि में भी जिन्हें बहुत अल्प लाभ पहुँचा या ठीक नहीं हुए वे या तो जन्म से रुग्ण थे अथवा लम्बी अवधि से बीमार रहे थे ।

'योगा लाइफ' के १९७७ के अंक में डॉ. लक्ष्मीकान्तन का 'योग ऐण्ड दी हार्ट' नामक लेख छपा था । डॉ. लक्ष्मीकान्तन मेडीकल कॉलेज मद्रास के प्रोफेसर हैं । उन्होंने गवर्नमेन्ट जनरल हॉस्पीटल में विभिन्न हृदय रोगियों पर आसनों का प्रभाव देखने के लिए प्रयोग किए । उन्होंने ऐसे उच्च रक्तचाप वाले रोगियों के ऊपर प्रयोग किए जिन्हें मेडीकल चिकित्सा से कोई विशेष फायदा नहीं हुआ । प्रोफेसर लक्ष्मीकान्तन् जी ने दो प्रकार के योगासनों का अभ्यास रखा । (१) जिनके रक्तचाप अधिक उच्च थे और हृदय कमजोर थे उनको केवल (शवासन में ही पैरों के नीचे नरम तकिया लगाना) का अभ्यास कराया इनको करने से रोगियों को काफी आराम मिला ।

(२) जिनके हृदय मजबूत थे उनके उपरोक्त अभ्यास के साथ हलासन, सर्वांगासन और विपरीतकरणी मुद्रा का भी अभ्यास कराया ।

आसनों के अभ्यास के उपरान्त रोगियों को अधिक स्फूर्ति एवं शक्ति का अनुभव हुआ और उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी गहरी नींद आने लगी ।

इसी प्रकार के परिणाम डॉ. के. के. दॉते ने भी शवासन के प्रभाव हृदय-रोग के रोगियों पर पाये हैं ।

पटना के डॉ. श्रीनिवास एवं अमेरिका के डॉ. बेनसन ने प्रयोगों के आधार पर देखा कि हृदय रोगों पर ध्यान का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

आसन व्यायाम पूर्णतः वैज्ञानिक-पद्धति है । इसमें माँसपेशियों में खिंचाव एवं फैलाव होने से रक्त प्रवाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की गति में कुछ तीव्रता आती है, जबकि अन्य व्यायाम जैसे डण्ड-बैठक आदि से दबाव पड़ता है जिससे पेशियाँ कठोर हो जाती हैं । आसनों से पेशियों में लचीलापन आता है । शरीर में स्फूर्ति की अनुभूति होती है ।

शीर्षासन को आसनों में सबसे उत्तम कहा जाता है । इस पर वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण भी किए जा रहे हैं । सर्वप्रथम 'पोलैण्ड के थर्ड क्लीनिक ऑफ मेडीसिन' के डायरेक्टर एलेक्जान्ड्री विच (जूलियन) ने शीर्षासन के द्वारा शरीर के अवयवों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया । उन्होंने एक शारीरिक एवं मानसिक रूप से सन्तुलित स्वास्थ्य वाले एकाग्र चित्त वाले व्यक्ति पर शीर्षासन के प्रभाव को देखने के लिए एक्सरे एवं ई. सी. जी. आदि उपकरणों की सहायता ली ।

प्रोफेसर जूलियन ने उस व्यक्ति से खाली पेट की स्थिति में ३०-४० मिनट शीर्षासन कराके शवासन में विश्राम कराया । आसन के पूर्व एवं बाद में किए गए परीक्षणों में निम्न निष्कर्ष निकाले ।

शीर्षासन से रक्त को जमाने वाले पदार्थ सीरम, जो रक्त में पाया जाता है, उसकी मात्रा में सन्तुलन आने लगता है । उन्होंने शीर्षासन के नियमित अभ्यास से हृदय रोग के दौरे रोके जा सकने की सम्भावना व्यक्त की है ।

रक्त में श्वेत रक्त कणों की वृद्धि पायी गई जिससे शरीर की जीवन शक्ति एवं रोग-निरोधक क्षमता में वृद्धि पायी गई ।

शीर्षासन की स्थिति में एक्सरे द्वारा देखे जाने पर वक्षस्थल फैला हुआ पाया एवं हृदय पूरी तरह दवाव रहित देखा गया ।

फेफड़ों को भी पर्याप्त खुला स्थान मिलता है । फेफड़ों में ऑक्सीजन की खपत में ३३ प्रतिशत की वृद्धि देखी गई तथा श्वास की दर एवं मात्रा में कमी पायी गई । श्वास की मात्रा तो प्रति मिनट ८ लीटर के स्थान पर ३ लीटर हो गई, परन्तु फेफड़ों की उसको 'कन्ज्यूम' करने की क्षमता बढ़ गई । निष्कासित दूषित वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में १० प्रतिशत कमी हो गई ।

भुजंगासन पर अनुसन्धान जून १९७८ चेकोस्लोवाकिया में हुआ । ''फर्स्ट कॉन्फ्रेंस आन दि एप्लीकेशन ऑफ योग इन रिहेविलिटेशन थेरॉपी'' में इस आसन पर विशेष प्रयोग किए गए । प्रयोगकर्ताओं ने पाया है कि इस आधार पर रक्तचाप और मानसिक तनाव को नियमित करने में सहायता मिलती है ।

लेनंवाला (महाराष्ट्र) के योगाश्रम में चलने वाले प्रयोगों में सर्वांगासन, मयूरासन को सामान्य स्वास्थ्य सम्वर्धन और दुर्बलताग्रसित रोगियों के लिए अन्य आसनों की तुलना में अधिक उपयोगी पाया गया ।

देश-विदेश में आसन उपचार के सम्बन्ध में चल रहे अनुसन्धान यह बताते हैं कि उन्हें सरल व्यायामों की तरह प्रयुक्त करते हुए कई ऐसे रहस्यमय लाभ उठाये जा सकते हैं जो ऐसी ही अंग संचालक की अन्य साधारण क्रिया पद्धतियों के माध्यम से सम्भव नहीं है ।

योगासन : एक समग्र उपचार प्रक्रिया

स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए केवल आहार व मनोबल ही पर्याप्त नहीं, शरीर को हिलने-डुलने का भी अतिरिक्त समय मिलना चाहिए अन्यथा उसके विभिन्न अंग-अवयव धीरे-धीरे व्याधिग्रस्त होते चले जायेंगे । योगासनों का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता रहा है यद्यपि पुरातनकाल से ही इनका आविष्कार आत्मिक उन्नति के लिए शरीर को स्वस्थ तथा निरोग दशा में बनाये रखने की दृष्टि से किया गया था, इनका मूल उद्देश्य चक्र, उपत्यिकाओं जैसे शरीर के सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों, ऊर्जा स्रोतों पर दबाव डालना तथा उनमें सन्निहित अतीन्द्रिय क्षमताओं, दिव्य सामर्थ्यों को जागृत और विकसित करना था किन्तु विज्ञान क्षेत्र में काया को ही प्रधानता मिलने के कारण योग के सम्बन्ध में उसका भौतिक पक्ष ही आकर्षक लगा है और आसन, प्राणायाम को ही योग माना तथा उसके सहारे स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्रयत्न किया गया है ।

आधुनिक स्वास्थ्य विद्या विशारदों ने भी योगाभ्यास परक आसन-व्यायामों को शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक पाया है । उनमें से बहुत-सी क्रियाओं को कुछ परिवर्तित करके सर्वसाधारण के लिए सरल बना दिया गया है । आजकल इन यौगिक व्यायामों का अभ्यास कितने ही साधारण मनुष्य व्यक्तिगत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप से करते हैं । साथ ही बहुसंख्य स्कूलों-कॉलेजों में विद्यार्थियों, खिलाड़ियों एवं अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों को उनका सामूहिक रूप से अभ्यास कराया जाता है । भारत के अतिरिक्त यूरोप और अमेरिका के कितने ही महाविद्यालयों में इस सन्दर्भ में गहन अनुसन्धान चल रहा है । विद्यार्थियों को नियमित योगाभ्यास कराया और विभिन्न शारीरिक अंगों तथा श्वसन तन्त्र आदि की क्रियाओं में हुए परिवर्तनों को जाँचा-परखा जाता है । स्वास्थ्य सम्वर्धन के साथ ही मानसिक एकाग्रता को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है ।

योगासनों के सम्बन्ध में जो शोध-अनुसंधान देश और विदेशों में चल रहा है, उसमें वे अंग-संचालन की सामान्य व्यायाम प्रक्रिया न रहकर उससे अधिक बढ़े-चढ़े सिद्ध हो रहे हैं । जिन आसन, अभ्यासों को कभी उपहासास्पद ठहराया जाता था, अब उनकी उपयोगिता देखते हुए तथाकथित सभ्यताभिमानियों को भी आकर्षित होते देखा जाता है ।

सोवियत रूस के सुप्रसिद्ध व्यायाम चिकित्सा विशेषज्ञ एम. सारकी सौव सैराजिनी ने "मैन मस्ट बी हैल्दी" नामक पुस्तक लिखी है । वे अपने विषय में मर्मज्ञ और विशेषज्ञ समझे जाते हैं । उक्त पुस्तक में उनके स्वस्थ रहने के लिए योगासन और प्राणायाम को दैनिक जीवन में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करने का परामर्श दिया है । इसी तरह सेंट्रल क्लीनिक हॉस्पीटल, मास्को के बाल-रोग विशेषज्ञ एवं सर्जन डॉ. अनातोली ने रोगी बच्चों को सरल साधारण योगासनों के माध्यम से निरोग करने में असाधारण सफलता पायी है । वहीं के डॉ. कॉनसटेनिटन बुटिंको नामक हृदय रोग विशेषज्ञ ने सैकड़ों विभिन्न प्रकार के रोगियों को यौगिक क्रियाओं द्वारा ठीक करने में आशातीत सफलता प्राप्त की है । उन्होंने दमा से पीड़ित व्यक्तियों को औषधियाँ देने के बजाय आसन और प्राणायाम का अभ्यास कराया । परिणामस्वरूप उनके शरीर में प्रवेश करने वाली ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइ-आक्साइड के बीच रहने वाला असन्तुलन दूर हो गया और दमा के रोगियों को बहुत लाभ हुआ । दमा के अतिरिक्त योगासनों द्वारा मिर्गी, उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोग जैसी घातक बीमारियों का भी उपचार करने में उन्होंने सफलता प्राप्त की है ।

इन दिनों विश्व में करोड़ों की संख्या में मधुमेह के रोगी हैं । मेडिकल साइन्स के द्वारा अभी तक इसका कोई सुनिश्चित उपचार ज्ञात नहीं हो सका है किन्तु यौगिक प्रक्रियायों द्वारा इस रोग को नियन्त्रित करने के वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किए हैं, उसने चिकित्सा के क्षेत्र में एक नई क्रांति को जन्म दिया है । इसी सन्दर्भ में पिछले दिनों अमेरिका की "यौगिक ट्रीटमेंट रिसर्च सेन्टर" नामक संस्था में शोधकर्त्ताओं द्वारा विभिन्न आयु वर्ग के २८३ मधुमेह के रोगियों पर तीन महीने के लिए प्रयोग किया गया । उन्हें सन्तुलित भोजन के रूप में ६८ ग्राम वसीय पदार्थ, ४०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट, ६०० ग्राम प्रोटीन अर्थात् कुल २६०० कैलोरी नियमित रूप से प्रदान किए गए । समय-समय पर उनका भार, मूत्र परीक्षण, रक्त शर्करा, ब्लड ग्लूकोज की जाँच तथा हृदय का ई. सी. जी. द्वारा परीक्षण किया गया ।

रोगियों को प्रतिदिन प्रातः-सायं दो बार सर्वांगासन, हलासन, मयूरासन, पादहस्तासन, उत्तान पादासन, शीर्षासन, शवासन आदि सरल आसन एवं कुछ अन्यान्य यौगिक क्रियाएँ कराई जाती रहीं । साथ ही उनकी दिनचर्या नियमित क्रम से रखीं तथा पूजा-उपासना का प्रार्थना एवं ध्यान साधना आदि का भी समावेश रखा गया ।

तीन माह के परीक्षण के बाद पाया गया कि ५२ प्रतिशत रोगी उससे लाभान्वित हुए । इस अवधि में जिन्हें बहुत अल्प लाभ पहुँचा या ठीक नहीं हुए वे या तो जन्म से रुग्ण थे अथवा लम्बी अवधि से बीमार रहे थे ।

हृदय रोगियों पर भी आसनों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है । मद्रास मेडीकल कॉलेज के मूर्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. लक्ष्मी कान्तन ने ऐसे उच्च रक्तचाप के रोगियों पर प्रयोग किए जिन्हें मेडीकल चिकित्सा से कोई विशेष फायदा नहीं हुआ । रोगियों की स्थिति के अनुसार उन्हें शवासन, हलासन, सर्वांगासन और विपरीत करणी मुद्रा का महीनों नियमित अभ्यास कराया गया । परीक्षणोपरान्त पाया गया कि रोगियों को पहले की अपेक्षा अच्छी गहरी नींद आने लगी और वे अधिक स्फूर्ति एवं शक्ति का अनुभव करने लगे । इसी प्रकार के परिणाम डॉ. के.के. दाँते ने भी शवासन के प्रभाव से हृदय रोगियों पर पाये हैं । अमेरिका के वरिष्ठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिकित्सक डॉ. बेनसन ने भी प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि शवासन एवं ध्यान का हृदय रोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

शीर्षासन को योगासनों में सबसे उत्तम माना गया है । इस पर वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण भी किए जा रहे हैं । पोलैण्ड के प्रसिद्ध चिकित्सक एवं "थर्डक्लीनिक ऑफ मेडीसिन" के निदेशक डॉ. एलेक्जेण्ड्रोविच जूलियन ने शीर्षासन द्वारा शारीरिक अवयवों पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया । इसके लिए उन्होंने शारीरिक मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों को चुना और प्रभाव को देखने के लिए एक्सरे, ई. सी. जी. आदि उपकरणों की सहायता ली । ऐसे व्यक्तियों को खाली पेट की स्थिति में ६० मिनट से लेकर क्रमशः बढ़ाते हुए ३०-४० मिनट तक नियमित रूप से चार माह तक शीर्षासन कराके शवासन कराया गया । आसन के पूर्व एवं बाद में किए गए परीक्षणों से निम्न निष्कर्ष सामने आये ।

देखा गया कि शीर्षासन से रक्त को जमाने वाले पदार्थों की मात्रा में सन्तुलन आने लगता है । इससे हृदय रोगों की रोकथाम में सफलता मिली है । आसन के प्रभाव से श्वेत रक्त कणों में अभिवृद्धि पायी गई जिससे शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग निरोधक क्षमता में वृद्धि हुई । एक्सरे द्वारा देखे जाने पर वक्षस्थल फैला हुआ पाया एवं हृदय पूरी तरह दबाव रहित देखा गया । शीर्षासन से वस्तुतः फेफड़ों को पर्याप्त खुला स्थान मिलता है, अतः उनमें ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है । यह अभिवृद्धि ३५ प्रतिशत तक देखी गई है तथा श्वास-प्रश्वास की दर एवं मात्रा में कमी पायी गई है । देखा गया है कि श्वास की मात्रा तो प्रति मिनट ८ लीटर के स्थान पर ३ लीटर हो गई, परन्तु फेफड़ों की उसको कन्ज्यूम करने, अवशोसित करने की क्षमता बढ़ गई । निष्काषित दूषित वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में ६० प्रतिशत कमी हो गई ।

लोनावाला-महाराष्ट्र के अनुसन्धानकर्त्ताओं ने सर्वांगासन एवं मयूरासन को सामान्य स्वास्थ्य सम्वर्धन और दुर्बलता ग्रसित रोगियों के लिए अन्य आसनों की तुलना में अधिक उपयोगी पाया है । चेकोस्लोवाकिया के प्रयोगकर्त्ता वैज्ञानिकों ने भुजंगासन एवं श्वासन के आधार पर मानसिक तनाव मिटाने में असाधारण रूप में सफलता पायी है ।

योगाभ्यास परक आसन, प्राणायाम पूर्णतः वैज्ञानिक व्यायाम उपचार हैं । इनमें माँसपेशियों में खिंचाव एवं फैलाव होने से रक्तप्रवाह की गति में तीव्रता तो आती ही है, साथ-साथ शरीर के सूक्ष्म ऊर्जा केन्द्रों पर भी दबाव पड़ता है । फलतः स्वास्थ्य सम्वर्धन के साथ चेतनात्मक परिष्कार एवं अन्यान्य आध्यात्मिक लाभ भी होते हैं । इन्हें जीवन में स्थान मिलना ही चाहिए ।

दुर्बलता की स्थिति में अति सरल व्यायाम

जराजीर्ण, दुर्बल, बच्चे, गर्भिणी, प्रसूता आदि की स्थिति सामान्य लोगों से भिन्न होती है । उनके लिए अपनी काया का भार सम्भालना ही कठिन पड़ता है । व्यायामों का दबाव वे बर्दाश्त नहीं कर सकते । ऐसी दशा में विशेष परिस्थिति को देखते हुए विशेष व्यायामों की बात सोचनी चाहिए । वे ऐसे होने चाहिए जिन्हें कर्त्ता का शरीर आसानी से सहन कर सके । लगातार करने की उपेक्षा उन्हें रुक-रुककर करना चाहिए जिससे थकान को उतारने का बीच-बीच में अवसर-अवकाश मिलता रहे ।

नवजात शिशु अक्सर बार-बार हाथ-पैर फेंकते रहते हैं । मौज होती है तो चिल्लाते भी हैं । उसे कहते तो रोना हैं पर वास्तव में रोना नहीं होता । उसमें मुख मुद्रा पर व्यथा और करुणा के भाव होते हैं, आँसू भी आ जाते हैं, किन्तु वह मस्ती का, फेफड़ों का, पेट का व्यायाम करने के निमित्त चिल्लाना होता है । उसमें वैसा चिन्ताजनक लक्षण कुछ भी नहीं होता । नवजात शिशुओं की इन क्रियाओं को शिक्षण मानकर कोई भी दुर्बल काय, वयोवृद्ध या विपन्न स्थिति से घिरा हुआ व्यक्ति उस प्रक्रिया का अनुगमन कर सकता है । हाथ-पैर सिकोड़ना-फेंकना ऐसा कृत्य है जिसे चारपाई पर पड़े-पड़े भी किया जा सकता है ।

हृदय का दौरा, मस्तिष्कीय स्राव क्षय आदि कुछ थोड़े ही रोग ऐसे हैं जिनमें पूर्ण विश्राम की सलाह दी जाती है और साधारण अंग-संचालन तक को रोका जाता है । बाकी अन्य हल्के रोगों में कुछ न कुछ सरल व्यायाम किया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमरा साफ हो, खिड़कियाँ खुली हों, फर्श बिछा हो तो बेलन की तरह इस दीवार से दूसरी दीवार तक लम्बाई में लुढ़का जा सकता है । इस प्रकार जितनी बार फेरे लगाये जा सकें, लगाने चाहिए ।

हर व्यायाम में इस नियम का ध्यान रखना चाहिए कि साँस मुँह से न ली जाये, न निकाली जाय । इसके लिए नाक का ही उपयोग करना चाहिए । मुँह से साँस लेने में गले की कई शिकायतें हो सकती हैं । नाक के बालों में तथा नमी में धूल कण छनते-चिपकते रहते हैं और फेफड़ों में ऐसी हवा पहुँचती है जिसमें किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं रहती है ।

फेफड़ों के व्यायाम के लिए बच्चों की तरह शोर मचाना या चिल्लाना तो शिष्टाचार के विरुद्ध पड़ेगा । पर गहरी साँस लेने का अभ्यास करते रहने में कोई हर्ज नहीं । स्वच्छ वातावरण की हर साँस में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा घुली रहती है । गहरी साँस खींचने और छोड़ने से फेफड़ों का व्यायाम होता है । उथली साँस लेने में प्रायः फेफड़ों का एक-तिहाई हिस्सा निष्क्रिय पड़ा रहता है । वह सिकुड़ भी जाता है । उसमें क्षय आदि के रोग कीटाणु जड़ जमा लेते हैं । ऑक्सीजन भी शरीर को पूरी मात्रा में नहीं मिल पाती । इसलिए गहरी साँस लेने और छोड़ते रहने का व्यायाम ऐसा है जिसमें किसी अंग पर दबाव भी अधिक नहीं पड़ता और हृदय, फेफड़े, जिगर, तिल्ली, गुर्दे से लेकर पेट और आँतों तक का व्यायाम हो जाता है । साँस इतनी गहरी ली जाय कि उसका प्रभाव पेट तक पहुँचे और पेट फुलाने, सिकोड़ने की क्रिया भी गहरी साँस लेने के साथ चलती रहे । इससे उस प्रयोजन की पूर्ति हो जाती है, जिसके लिए नवजात शिशु रोते और हो-हल्ला मचाते हैं ।

चारपाई पर पड़े-पड़े व्यायाम करने में चौरस पलंग का उपयोग करना चाहिए । उस पर मुलायम गद्दा बिछाया जा सकता है, पर उन चारपाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए जिनमें रस्सियों के ढीले होने के कारण गड्ढे पड़ जाते हैं । उनमें रीढ़ तिरछी हो जाती है, जबकि उसे सदा सीधी रहना चाहिए ।

इस स्थिति में पैरों का अधिक सरल व्यायाम साइकिल चलाने की तरह उन्हें घुमाने से हो जाता है । अशक्ति ज्यादा हो तो पैर ऊपर करके घुटनों से लेकर पंजे तक के भाग को घुमाने से रहा जा सकता है । यदि पैर बहुत थकान न मानें तो कूल्हे से लेकर पूरे पैर को लम्बा किया जा सकता है और सचमुच की साइकिल चलाने में पैरों को जो क्रिया करनी पड़ती है, उसे करते रहा जा सकता है ।

यह क्रिया हाथों की भी की जा सकती है । चर्खा कातने या सिलाई की मशीन चलाने की तरह हाथों के आधे या पूरे भाग का व्यायाम किया जा सकता है । सिलाई की मशीन चलाने में आधे हाथ को घुमाना पड़ता है । जबकि चरखा चलाने में पूरे हाथ को अपनी शारीरिक स्थिति को देखते हुए इन क्रियाओं को करते रहा जा सकता है ।

गठिया या पक्षाघात में जो अंग जकड़ गए हों उनकी भी किसी प्रकार हरकत में लाने का थोड़ा-थोड़ा प्रयत्न करना चाहिए । निःश्चेष्ट पड़े रहने पर जकड़न बढ़ती और हरकत करने से खुलती है, इस सिद्धान्त को भली प्रकार समझ लेना चाहिए ।

मालिश, माँसपेशियों का अच्छा व्यायाम है । पहलवानों की तरह तेल मालिश करना दूसरी बात है । उसमें जोर की रगड़ पड़ने से चमड़ी के छिल जाने का डर रहता है । इसलिए हाथ को फिसलाते हुए मालिश की जाती है । जोर से फिसलाने के लिए तेल की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु जो मालिश माँसपेशियों को, रक्त नलिकाओं को सक्रिय करने की दृष्टि से की जाती है, उसमें हल्के मुक्के मारने, थपथपाने जैसा उपक्रम किया जाता है । शिष्टाचार में बड़ों के पैर दबाने को उसका सम्मान कहा जाता है । यह तो चिन्ह पूजा हुई, पर सारे शरीर की इसी प्रकार थपथपाते हुए, मरोड़ते हुए मालिश की जाय तो उससे भी ताजगी आती है और थकान मिटती है । छोटे बच्चों की, प्रसूताओं की अक्सर मालिश की जाती है । बुखार आदि में भी सिर दबाने का उपचार लोकाचार के रूप में भी किया जाता है, पर यदि सचमुच उसे चिकित्सा के रूप में किया जाय तो दुर्बल या रोगी शरीर को बड़ी राहत मिल सकती है । निष्क्रिय अंग सक्रिय होकर व्यथा एवं दुर्बलता से लड़ने के लिए किसी हद तक समर्थ हो जाते हैं ।

बेचैनी में रोगी अक्सर हाथ-पैर पटकता है । यह प्रकृति संकेत पर चलने वाला स्व-उपचार है । जो अचार के घड़े की तरह निष्क्रिय पड़े रहते हैं । उनकी पीठ पर जहाँ-जहाँ घाव हो जाते हैं । चमड़ी माँस की कमी पड़ने पर हड्डियों से चिपकने का प्रयत्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती है और घाव बना देती है । ऐसी स्थिति नहीं आने देनी चाहिए । गहरी नींद को छोड़कर जागृत अवस्था में करवट बदलने का कभी-कभी उल्टे होकर पेट के बल लेटने का प्रयत्न करना चाहिए ।

दुर्बल या रोगी स्तर के व्यक्ति किस अंग को किस प्रकार हिलाते-डुलाते रह सकते हैं इसका निर्णय अपनी निज की सूझ-बूझ से जितनी अच्छी तरह से हो सकता है, उतना सही मार्ग-दर्शन दूसरे नहीं दे सकते, क्योंकि दूसरों को यह विदित नहीं होता कि कौन-सा अंग कितना दबाव सरलतापूर्वक बर्दाश्त कर सकता है । अंग सहलाकर अनेक प्रयोग, अनेक स्तर एवं तरीके कोई भी विचारशील व्यक्ति समझ से खोजता, बदलता और प्रयोग करता रह सकता है । जो प्रयोग जितनी देर तक सरलतापूर्वक सध सके, उसे उसी ढंग से अपना लेना चाहिए, किन्तु इन प्रयोगों में यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि जितनी शरीर में सामर्थ्य हो उतना ही उसे हिलाया-डुलाया जाय । साथ ही बीच-बीच में विराम-विश्राम भी देते रहा जाये, जिससे दबाव की मात्रा अधिक हो जाने पर दुर्बलता का नया दौर न बढ़ने लगे ।

यौगिक षट् क्रियाएँ

हठयोग के अन्तर्गत षट् क्रियाओं का वर्णन मिलता है । ये क्रियाएँ बहुत ही उपयोगी और लाभदायक हैं । फिर भी इनका अभ्यास करने के लिए बढ़े सतर्क रहने की आवश्यकता है । हमारी राय तो यह है कि कोई भी यौगिक क्रिया हो, किसी अनुभवी योगी अथवा समझदार व्यक्ति की देख-रेख में करनी चाहिए, तभी इनसे पूर्ण लाभ हो सकता है । कोई लेख या पुस्तक पढ़कर अपने आप क्रियाएँ करने से लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना है ।

हठयोग प्रदीपिका में (१) धोति, (२) नेति, (३) त्राटक, (४) कपाल भाति, (५) वस्ति, (६) और नौलि को षट्कर्म कहा है । कोई-कोई योगी कपाल भाति, गजकरणी, वाधी, धौकनी, और शंखप्रक्षालन—इनको भी षट्कर्म में सम्मिलित करते हैं ।

(१) धोति

मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं (१) वस्त्र धोति, (२) जल धोति, (३) वायु धोति । हठयोग प्रदीपिका में वस्त्रधोति इस प्रकार की जाती है—

"धोति चार अंगुल चौड़ी और १५ हाथ लम्बे महीन वस्त्र की बनाई जाती है । वस्त्र धोति करते समय इसे गर्म जल में भिगोकर थोड़ा निचोड़ कर दाँतों तले दबाकर चबाने का उपक्रम करते हुए निगलने की कोशिश करनी चाहिए । प्रतिदिन क्रमशः एक-एक हाथ कपड़ा निगलने का अभ्यास करते हुए कुछ दिन बाद सम्पूर्ण धोति निगली जा सकती है । पूरी धोति निगलते समय अन्तिम छोर दाँतों में दबा लेना चाहिए । नौलि करके दबे हुए सिरे को हाथ में लेकर बाहर खींच लेना चाहिए ।" इससे उदर के विकार ठीक होते हैं ।

जल धोति में पानी शीघ्रता से वमन कर दिया जाता है । गुनगुना जल लेकर उसमें कुछ नमक मिला लेना चाहिए । इच्छानुसार सेर डेढ़ सेर पानी लिया जा सकता है ।

वायु धोति में नासिका के मार्ग को बन्द करके मुँह में श्वास देते हुए वायु को पेट में इकट्ठी किया जाता है । यह वायु उड्डियान-तथा नौलि क्रिया की सहायता से गुदा द्वारा शरीर से बाहर निकाल दी जाती है । वायु को जल की भाँति धीरे-धीरे कण्ठ से ध्वनि निकालते हुए पीना चाहिए ।

(२) नेति

पहले जल नेति करनी चाहिए फिर सूत नेति । जल के लिए कुछ गुनगुना पानी लीजिए । गिलास को नाक के छेद से लगाकर पहले एक छिद्र से पानी ऊपर को खींचें और दूसरे नाक के छेद को बन्द कर लें । फिर दूसरे नाक के छिद्र से पानी को खींचें ।

सूत नेति नाक की सफाई के लिए है । १४-१६ इंज लम्बी बटे हुए सूत की मुलायम डोरी लीजिए । इसे पानी में भिगोकर थोड़ा-सा सिरे पर मोड़कर जो स्वर चलता हो उस छेद में लगावें और खूब जोर से पूरक करें । ऐसा करने से सूत का छोर गले में आ जायेगा इधर-उधर खींचने से कफ दूर हो जाता है । ऐसा ही दूसरे छेद में डालकर करें । नेति कपाल का शोधन करती है, दिव्य दृष्टि देती है, मुक्त तथा सिर की सन्धि के ऊपर सारे रोगों को दूर करती है ।

(३) त्राटक

यह नेत्रों का व्यायाम है । मन को एकाग्र और केन्द्रित करने में यह बहुत फायदे की है । किसी भी वस्तु को एकाग्रता से देखना त्राटक है । श्री गुलाबचन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैन ने त्राटक की विधि इस प्रकार लिखी है—"दीवार में एक कील गाढ़कर उस पर दर्पण टाँग दें और उस दर्पण के बीच में एक रुपये के बराबर एक गोल निशान या काले कागज का टुकड़ा चिपका दें । आइने से २-३ फुट की दूरी पर पद्मासन लगाकर या किसी कुर्सी पर बैठे जायें । फिर अपनी आँखों को बिना पलक डुलाये, उसे गोल निशान पर केन्द्रस्थ करें । कोशिश करें कि आपका चेहरा काँच में न दीखे तथा आपकी टकटकी थोड़ी देर तक उसी पर लगी रहे ।" यह अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए ।

त्राटक नेत्रों को रोगों से मुक्त करने वाला, तन्द्रा आलस्य को रोकने वाला है ।

(४) कपाल भाति

शीघ्रता पूर्वक पूरक करने को कपाल भाति कहते हैं । पद्मासन या सिद्धासन पर बैठ जाइये, नेत्र मूँद लीजिए । पहले दाहिने नासारन्ध्र से श्वास लें और दाहिने से निकालें इसी प्रकार दूसरे छिद्र से करें । इसी प्रकार जिससे साँस निकालें उसी से लें । इस क्रिया में फेफड़ों का अच्छा व्यायाम होता है और कपाल की शुद्धि होती है । श्वास नलिका में एकत्रित कफ जलकर भस्म हो जाता है ।

(५) वस्ति

हठयोग प्रदीपिका में लिखा गया है—"वस्ति क्रिया (अर्थात् एनिमा) के लिए गुदा मार्ग में बाँस की पतली एवं पोली नली प्रविष्ट कर पानी से भरे हुए टब या बर्तन में बैठें । पानी उसकी नाभि तक होना चाहिए । इस प्रकार गुदामार्ग का आकुंचन करता हुआ पानी को ऊपर की और चढ़ाने की कोशिश करें । यही वस्तिक्रम या क्षालन कहलाता है । इसका एनिमा के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है । वस्ति क्रिया के प्रभाव से गुल्म, प्लीहोदर और वात, पित्त, कफ से उत्पन्न अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं, मुख पर चमक आती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है ।

(६) नौलिक्रिया

कन्धों को झुकाकर, अतिवेग से पेट को गोलाई में घुमाने की क्रिया को नौलि कहा गया है । हठयोग प्रदीपिका में इसके लाभों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"नौलि क्रिया मदाग्नि को उत्तेजित करने वाली तथा आनन्द को देने वाली है । वह सम्पूर्ण वात, पित्त, कफादि दोष तथा अन्य रोगों का नाश करने वाली है । इस प्रकार यह हठ योग की क्रियाओं में सर्वोत्तम कही गई है । इसका अभ्यास योग्य अनुभवी व्यक्ति की संरक्षकता में करना चाहिए । अन्तड़ियों की सूजन, क्षतादि दोष, पित्त प्रकोप जनित अतिसार, पेचिश, संग्रहणी में यह क्रिया वर्जित है । किसी योग्य अनुभवी की देख-रेख में ये यौगिक क्रियाएँ करने से बहुत लाभ उठाया जा सकता है ।

पूर्ण एवं अपूर्ण कपाल भाति क्रिया

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरो ससम्भ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥

—हठयोगप्रदीपिका

अर्थात् लोहकार की भस्त्रा (धौंकनी) के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक पूरक श्वास-प्रश्वास को शान्तिपूर्वक करना योगशास्त्र में कफ दोष का नाश कहा गया है । यह क्रिया 'कपालभाति नाम से विख्यात है ।

अपूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि

प्रथम पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन में बैठ जाना चाहिए । बाएँ घुटने पर बायीं हथेली और दाहिने घुटने पर दाहिनी हथेली रखें । पीठ की रीढ़, कमर और सिर समरेखा में रहे । किंचित् छाती को फूली हुई रखने के बाद दस बार दोनों नथुनों से श्वास लेवें और छोड़ें । चक्षु बन्द रखें । दस बार श्वास क्रिया करने के बाद दो से तीन मिनट तक स्वाभाविक श्वास लेवें और उस समय आरोग्य के विचारों को करें । यह क्रिया अपूर्ण कपालभाति कर्म कहलाती है ।

सम्पूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि

उपर्युक्त अपूर्ण कपालभाति कर्म प्रतिदिन प्रातः काल तीन बार करने के चौथे दिन दस बार घर्षण (एक बार श्वास फेफड़े में भरना और झट बाहर निकालना उसका नाम घर्षण है) करें और ग्यारहवें समय प्राणवायु को यथेच्छ फेफड़े में भरकर दोनों नथुनों को दाहिने हाथ के अँगुष्ठ, तर्जनी और मध्यमा से पकड़े । सरलतापूर्वक जितनी देर श्वास रोक सकने की इच्छा हो उतनी देर जालंधर बन्द करें और फिर दोनों नथुनों से शनैः-शनैः रेचक करें, तब एक पूर्ण कपालभाति कर्म कहलाता है । इस तरह आठ दिन तक तीन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पूर्ण कपालभाति कर्म करें । आठ दिन से पन्द्रह दिन तक पाँच कपालभाति कर्म करें और पन्द्रह दिन से एक महीने तक आठ करें । एक महीने के बाद प्रतिदिन शक्ति के अनुसार आठ से बारह बार कर सकते हैं । रेचक करने के समय उड्डीयान बन्ध और मूलबन्ध रखें ।

यदि प्रारम्भ में इस कार्य का अधिक वेगपूर्वक घर्षण किया जावे तो किसी नाड़ी में आघात पहुँचना सम्भव है और शक्ति से अधिक प्रमाण में करें तो फेफड़ों में शिथिलता आ जायेगी । यह कर्म मध्यम गति से होना चाहिए । गर्भवती स्त्रियाँ, फेफड़ों में क्षत पड़ा हो, वमन रोग, मन की भ्रमित अवस्था, हृदय की निर्बलता आदि रोग से ग्रस्त हुए स्त्री, पुरुष इस कर्म को न करें ।

शारीरिक-मानसिक विश्रान्ति की प्रक्रिया : शिथलीकरण

क्रियाशील एवं विश्रान्ति परस्पर सम्बद्ध है । यों, सूक्ष्म अर्थ में तो विश्रान्ति भी एक प्रकार की क्रियाशीलता ही है । इसी अर्थ में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि व्यक्ति बिना क्रियाशील रहे एक क्षण भी नहीं रह सकता—"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।" (३।५) किन्तु सामान्यतः श्रम एवं विश्राम परस्पर पूरक हैं । विश्राम एक भिन्न प्रकार का श्रम है और इसमें उन अंगों-उपकरणों को विश्राम मिल जाता है, जो पहले श्रम कर रहे होते हैं । इस प्रकार नये सिरे से श्रमशील हो सकने के लिए विश्रान्ति आवश्यक है । निद्रा ऐसी ही विश्राम प्रक्रिया है जिसमें जागृति की स्थिति में क्रियाशील चेतन मन तथा अधिक क्रियाशील रहने वाली हाथ-पैर, नाक-कान, आँख-मुँह आदि इन्द्रियों को पूरी तरह अपनी ड्यूटी से छुट्टी मिल जाती है और स्वसंचालित संस्थानों के काम का बोझ भी बहुत हल्का पड़ जाता है । तभी यह सम्भव होता है कि नये सिरे से शक्ति का संचय हो सके और नई ताजगी के साथ पुनः कर्तव्यपालन में प्रवृत्त हुआ जा सके ।

कार्याधिक्य अथवा प्राणशक्ति के क्षरण के आधिक्य के कारण, नींद के अतिरिक्त शेष समय में भी बीच-बीच में कुछ विश्राम आवश्यक होता है । निद्रा की स्थिति में मानो शरीर अनन्त आकाश से अपने उपयोग हेतु प्राण-विद्युत की नई बैटरी प्राप्त करता है । शिथिलीकरण प्रक्रिया को प्रयोग की हुई बैटरी को ही पुनः 'चार्ज' करने की प्रक्रिया कहा जा सकता है । यह भी एक आवश्यक कार्य है । इसका अभ्यास करने पर पूरे दिनभर काम को उसी ताजगी और स्फूर्ति के साथ करते रहना सम्भव होता है, जिस फुर्ती और तत्परता के साथ सुबह व्यक्ति काम में जुटता है । यह आवश्यक इसलिए भी है कि सामान्यतः मनुष्य जाने-अनजाने अपनी प्राण शक्ति का बहुत सारा अंश तेजी से खर्च करते रहते हैं । उस कमी की पूर्ति नींद के पहले भी, बीच में कर ली जाय तो शरीर पर अधिक दबाव नहीं बढ़ पाता । साथ ही, रात में नींद की कुछ मात्रा में भी उस स्थिति में पर्याप्त हो जाती है । इस प्रकार काम के लिए अधिक समय मिल जाता है और शिथिलीकरण में लगने वाला समय घाटे का सौदा नहीं रह जाता । शिथिलीकरण की यह प्रेरणा प्राणियों में वैसे भी नैसर्गिक रूप से उत्पन्न होती है तथा विभिन्न पशु-पक्षी इस प्रक्रिया का लाभ उठाते देखे जाते हैं ।

अभ्यासवश अनजाने ही होती रहने वाली व्यर्थ की शारीरिक गतियाँ मनुष्य को कमजोर बनाती हैं । वैसे शक्ति संचय एवं व्यय में सामंजस्य का होना जरूरी है, पर ऐसा होता नहीं है । सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति संचय की तुलना में जाने-अनजाने विभिन्न प्रकार की अनुपयोगी आदतों, क्रियाओं द्वारा व्यर्थ शक्ति नष्ट करते रहते तथा कमजोर एवं रुग्ण बन जाते हैं । मानसिक उद्विग्नता में भी इसका एक बड़ा भाग यों ही बेकार चला जाता है । शिथिलीकरण द्वारा इस अपव्यय को रोका जाता है और व्यय की पूर्ति की जाती है ।

प्रकृति प्रदत्त शिथिलीकरण प्रक्रिया में अभ्यस्त जीवों में इसका सुन्दर उदाहरण देखा जा सकता है । बिल्ली विश्रामावस्था में निर्जीव पड़ी रहती है, तनाव एवं आवेश से रहित, वह स्थिर और गतिहीन पड़ी नजर आती है, पर तुरन्त हमला करना हो तो बिजली के झटके के समान झपटती है । पहले से आक्रमण के लिए उसकी माँसपेशियाँ तनी नहीं रहतीं । जरूरत पड़ने पर ताजा प्राण नस-नाड़ियों एवं माँसपेशियों में भेज दिया जाता है । यही कारण है कि विद्युत की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गति से उसकी क्रियाएँ प्रकट होती हैं । आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त उसके प्राण का अपव्यय नहीं होने पाता । शेर, कुत्ते, साँप प्रभृति अन्य जीव-जन्तुओं में भी ये विशेषताएँ देखी जा सकती हैं । बुद्धिमान कहा जाने वाला मनुष्य ही इसका अपवाद है जो बेकार की चेष्टाओं एवं मानसिक उद्वेगों में अपनी शक्ति का वरण करता रहता है ।

विचारों की क्रिया में प्रकट होना और क्रियाओं द्वारा मन का प्रभावित होना एक सर्वविदित तथ्य है । इनमें से किसी भी तथ्य को नकारा नहीं जा सकता । मन के शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों की विस्तृत व्याख्या मनोविज्ञान द्वारा की गई है । स्वास्थ्य पर मनःस्थिति के प्रभाव का प्रतिपादन मनोविज्ञान करता है । साथ ही शारीरिक स्थिति एवं उसकी विकृति का प्रभाव मनो-जगत पर पड़ता है । यह दूसरा पक्ष भी उक्त तथ्य से जुड़ा हुआ है । शिथिलीकरण में इन दोनों तथ्यों को समान रूप से ध्यान में रखा जाता है ।

शिथिलीकरण का प्रथम चरण है—"शरीर एवं मन को ढीला छोड़ देना ।" इस अभ्यास में शरीर को सभी प्रकार के तनावों से रहित कर दिया जाय । चित्त लेटकर मन को सम्पूर्ण शरीर—सिर से लेकर पैर तक के प्रत्येक अंग, माँसपेशियों, नस-नाड़ियों में घुमाया जाय । यह अभ्यास जितने मनोयोग से किया जायेगा, उसी अनुपात में सफलता मिलेगी । मन को माँसपेशियों में घुमाने पर मालूम होगा कि कहीं-कहीं की माँसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी ढीला छोड़ दिया जाय ।

अभ्यास की प्रगाढ़ता में अनुभव होता है कि शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग विश्रामावस्था में पहुँच रहे हैं । कल्पना-चित्र बनाया जाय कि हमारा शरीर और इसके अवयव सीसे की तरह भारी हैं । मन में सीसे की भाँति भारी होने की भावना बारम्बार की जाय । इसके साथ ही दोनों भुजाओं को थोड़ा-सा उठाकर तनाव रहित किया जाय । उनमें प्रवाहित प्राण को खींचने का प्रयास करें, जिससे वे अपने भार से ही गिर पड़ें । आरम्भ में यह विचित्र और कठिन लगता है, क्योंकि माँसपेशियों में आकुंचन की आदत पड़ गई है । जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय तो पैरों पर भी यह प्रयोग किया जाय । पहले एक-एक पैर को अलग-अलग, तत्पश्चात दोनों पैरों को एक साथ तनिक-सा ऊपर उठाकर इनमें से भी प्राण खींचने एवं अपने ही भार से गिर जाने का प्रयोग करें । बीच-बीच में अभ्यास के साथ विश्राम करना भी आवश्यक है । इस क्रम को अब आगे भी बढ़ाया जाय । सिर को तनिक सा उठाने एवं अपने ही भार से गिरने देने का अभ्यास, सिर को भी तनाव से रहित बनाता है ।

भूमि अथवा चारपाई, चौकी पर पड़े-पड़े यह भावना की जाय कि शरीर का सारा भार भूमि अथवा चारपाई पर है । यह कुछ विचित्र-सा लग सकता है । कोई भी सोच सकता है कि शरीर का भार भूमि पर रहता ही है, पर बात ऐसी नहीं है । तनाव की स्थिति में हम स्वयं किसी न किसी माँसपेशी में अपने भार को वहन किए रहते हैं, पर इस स्थिति से अनभिज्ञ बने रहते हैं । वहन कर रही माँसपेशी का भार भी भूमि पर ही डालने से शरीर के तनाव रहित होने की बात बनती है ।

सोते हुए बच्चे इसके सुन्दर उदाहरण हैं उनका सम्पूर्ण भार बिस्तर पर होता है । भार कम होते हुए भी उनके दबाव के चिन्ह बिस्तर पर देखने से स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं । यही स्थिति शिथिलीकरण अभ्यास में साधक को लानी चाहिए । शरीर के प्रत्येक अवयव, माँसपेशी, नस-नाड़ी के तनाव रहित होने, भार के भूमि पर पड़ने की भावना जितनी प्रगाढ़ होगी, शिथिलीकरण का उतना ही अधिक लाभ मिल सकेगा ।

शिथिलीकरण का दूसरा चरण—मन को विश्राम देना है । शारीरिक विश्राम ही पर्याप्त नहीं है, मानसिक भी उतना ही आवश्यक है, इसमें मानसिक अभ्यास का समावेश करना भी जरूरी है । शरीर एवं मन के एक दूसरे से अनन्योन्याश्रित रूप से जुड़े होने एवं एक ही स्थिति का दूसरे पर प्रभाव पड़ने के कारण ध्यान दोनों पर ही देना होगा ।

अगला अभ्यास इस प्रकार है—अधलेटी स्थिति या सुखासन में शरीर को ढीला करके बैठा जाय । बाहरी बातों, विषयों से मन को खींचें । ध्यान को बाहर से खींचकर अपनी अन्तरात्मा पर लगाया जाय । भाव यह रहे कि हम शरीर एवं मन से परे हैं । इन स्थूल आवरणों को छोड़ सकते हैं । पार्थिव शरीर से मन को हटाकर उसे अपने वास्तविक अहं भाव, आत्मा पर एकाग्र किया जाय । कल्पना की जाय कि अपने चारों ओर जो सृष्टि है, उसमें करोड़ों सूर्य हैं जो अनेकों पृथ्वी एवं ग्रह-नक्षत्रों से हम घिरे हुए हैं । अनन्तः देश एवं काल में मन के भाव फैलायें । चेतना को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्त सृष्टि से फैला हुआ देखा जाय । अब अपनी पृथ्वी एवं स्वयं की स्थिति का मूल्यांकन किया जाय कि विराट् सृष्टि, महती चेतना के समक्ष अपना अस्तित्व कितना नगण्य एवं तुच्छ है । स्थूल से ऊपर उठकर अब आगे चेतना के क्षेत्र में प्रवेश किया जाय । हम उस महती अविनाशी सर्वव्यापक चेतना के समर्थ अंश हैं, अमर, अविनाशी एवं नित्य हैं । हमारे बिना सृष्टि पूर्ण नहीं हो सकती । वह चेतना हमारे अन्दर स्फुरण कर रही है । हृदय में महासागर की तरंगें लहलहा रही हैं । इस भावना की प्रगाढ़ता के उपरान्त जब शारीरिक धरातल पर आया जायेगा, तो अनुभव होगा कि शरीर एवं मन दिव्य शक्ति से ओत-प्रोत है ।

शिथिलीकरण का वह दूसरा अभ्यास योग निद्रा के अभ्यास का आरम्भिक चरण है । योग निद्रा अपने आप में एक पूरा योगाभ्यास है । यह अभ्यास जितना ही प्रगाढ़ एवं परिपूर्ण हो सकेगा, उतना की अधिक लाभ प्राप्त होगा । पहला अभ्यास शरीर की थकान हरता है और शरीर की बैटरी को पुनः 'चार्ज' करता है । दूसरा अभ्यास नींद की भी आवश्यकता पूरी करता है और शरीर में नई चेतना का आकर्षण-धारण कराता है । यहाँ यह स्मरण कर लेना चाहिए कि निद्रा भी मात्र थकान मिटाने की प्रक्रिया नहीं, अपितु उस स्थिति में अचेतन मस्तिष्क अन्तरिक्ष संव्याप्त विद्युत-प्रवाह से अपने लिए नई विद्युतीय खुराक प्राप्त करता है । शिथिलीकरण का दूसरा अभ्यास भी इसी प्रक्रिया को पूर्ण करता है और इस प्रकार वह चेतन मन को भी विश्रान्त तथा नवीन स्फूर्ति प्रदान करता है । इस प्रकार शिथिलीकरण की उभय चरणों वाली प्रक्रिया शारीरिक, मानसिक विश्रान्ति एवं नई शक्ति के सम्पादन का उत्तम उपाय है ।

अशान्ति के क्षणों में शान्ति का आह्वान

मस्तिष्क समूचे काय तन्त्र का संचालक है । विचारधाराओं का उद्गम केन्द्र भी यही है । शान्त और प्रसन्न मन जहाँ प्रगति का, अभ्युदय का द्वार खोलता है, वहीं चिन्तित, अशान्त और उद्विग्न मस्तिष्क अनेकानेक विपदाएँ खड़ी करता है । मनोमालिन्य बढ़ाने से लेकर विनाश के पथ पर चल पड़ने तक को विवश करता है । विचार तन्त्र के लड़खड़ा जाने पर कभी-कभी गलती नाममात्र की होने पर या भ्रमवश कुछ का कुछ समझ बैठने पर भी ऐसी उत्तेजना नशे की तरह आ दबोचती है और तब तक शान्ति नहीं होती, जब तक कि अपने आपको पूरी तरह थका कर निढाल नहीं कर देती । इतना ही नहीं यदि मस्तिष्क सतत्, उत्तेजित, एवं तनावग्रस्त बना रहे तो आँतों के अल्सर से लेकर पक्षाघात, हृदयाघात जैसी प्राण संकट की स्थितियाँ भी सम्मुख आ धमकती हैं । अतः हर विचारशील को उत्तेजना उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से बचना और वास्तविक कारणों को समझते हुए अपना मानसोपचार संकल्प शक्ति के सहारे स्वयं ही करना चाहिए ।

उद्विग्न मस्तिष्क का शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत ही घातक प्रभाव पड़ता है । मनोचिकित्सा विज्ञानियों ने भी अब इसकी पुष्टि कर दी है । अतः यदि ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े तो विचारों से विचारों को काटना चाहिए । खीज के स्थान पर शान्ति और समस्वरता उत्पन्न करने वाले विचारों को आमन्त्रित करना चाहिए जो ध्यान बँटा सकें, उत्साह बढ़ा सकें । मस्तिष्क एक कार्यकारी यन्त्र के रूप में कार्य करता है, उसमें जो भरा जायेगा-परिणति भी तदनुरूप ही परिलिक्षित होगी । उसमें उत्पन्न हुई कोई भी योजना प्रभावकारी तभी बनती है, जब वह शारीरिक क्रियाओं द्वारा कार्य रूप में परिणत की जावे । सर्वप्रथम किसी वस्तु को देखकर मन में विचारों की तरंगें उत्पन्न होती हैं, तदुपरान्त शरीर को क्रिया करने का निर्देश मिलता है । स्नायुतन्त्र एवं माँसपेशियाँ सक्रिय हो उठती हैं । विवेक को जीवन्त बनाये रखने और सजगता बरतने पर अनुपयुक्तता से बचा जा सकता है । इसके लिए जिन विचारों के कारण आशंका, निराशा या उद्विग्नता उत्पन्न हुई तो, ठीक उसके प्रतिकूल विचारों को उत्पन्न किया जाय । सोचा जाय कि विपत्ति टल गई या टलने जा रही है । बादल साफ होने पर जिस प्रकार आकाश स्वच्छ होता है, समझना चाहिए कि उसी प्रकार अपने को दबोचे हुए खिन्नता-विपन्नता का वातावरण बदल जायेगा । सृजनात्मक सुखद उज्ज्वल भविष्य के अनुकूलता से भरे मानस चित्र बनाना अर्थात् "माइण्ड पिक्चरिंग" "इमेजिंग" एक ऐसी कला है जिसका अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने पर वास्तविक कठिनाइयों के बीच भी मनुष्य अपना धैर्य-साहस बनाये रह सकता है । वह उपाय ढूँढ़ सकता है, जो ऐसी दशा में सहायता कर सकें, सहायक सिद्ध हो सकें ।

वस्तुतः मानसिक उद्विग्नता, तनाव आदि व्याधियाँ और कुछ नहीं चिन्तन की दिशाधारा गड़बड़ा जाना भर है । कभी-कभी काम की अधिकता तथा चिन्तन के पटरी से उतर जाने से यह विपत्ति आ सवार होती है । प्रतिकूलताएँ तथा अनचाही घटनाएँ भी इसका कारण हो सकती हैं, किन्तु असन्तोषजनक को सर्वथा रोक सकना किसी के बस की बात नहीं है, पर मानसिक लचीलेपन से हम हर परिस्थिति में तनाव मुक्त रह सकते हैं । इसके लिए मन को प्रशिक्षित करना पड़ता है । शिथिलीकरण मुद्रा का, शवासन का अभ्यास ऐसा है जिसे आसानी से सीखा जा सकता है ।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विल्फ्रिड नार्थफील्ड ने अपनी कृति—"क्योरिंग नर्वस टेन्सन" में मस्तिष्कीय उद्विग्नता को शान्त करने तथा तनाव रहित बनाने के लिए रिलेक्सेशन अर्थात् शिथिलीकरण पर जोर दिया है । उनका कहना है कि मानवी काया की प्रकृति सदैव अपने सामान्य स्थिति में रहने की है । यही कारण है कि अपने अन्दर होने वाली छोटी-मोटी गड़बड़ियों की मरम्मत वह स्वतः करती रहती है । विश्रान्ति काल का निर्धारण इसीलिए किया गया है जिसमें मनुष्य अपनी खोई हुई शक्ति की पुनर्स्थापना कर ले ।

दूसरा कारण है श्वास का आधा-अधूरा उथला प्रयोग । प्रायः प्रत्येक व्यक्ति श्वास-प्रश्वास के प्रति लापरवाह होता है और हल्की एवं आधी साँसों से ही काम चलता है । परिणामस्वरूप न तो फेफड़े सम्पूर्ण क्षमता एवं दक्षता से कार्य कर पाते हैं और न ही स्नायु मण्डल को प्राणवायु की परिपूर्ण मात्रा मिल पाती है । पर्याप्त ऑक्सीजन न मिल पाने के कारण उनमें जमी विषाक्तता दूर नहीं हो पाती । ऐसी स्थिति में मस्तिष्क का गड़बड़ा जाना स्वाभाविक है । छोटी-सी प्रतिकूलता आ उपस्थित होने पर भी वह अशान्त हो उठता है । न सोचने योग्य चिन्तन करने तथा न उठाने योग्य कदम उठाते हुए प्रायः इन्हीं दशाओं में लोगों को देखा जाता है । मनोवैज्ञानिक इसका निवारण, उपचार गहरे एवं नियन्त्रित श्वसन में खोजते हैं । उनका कहना है कि श्वास लेना और मस्तिष्क का कार्यरत रहना एक-दूसरे से जुड़े होते हैं । इनमें से एक को प्रशिक्षणपूर्वक नियन्त्रित कर लेने पर दूसरे को सही दिशा में चलने के लिए अभ्यस्त किया जा सकता है ।

किन्तु गहरी साँस लेना "डीप ब्रीदिंग" की प्रक्रिया ऐसी है जिसे हर कोई कभी भी कर सकता है । सुबह व्यायाम करते या टहलते समय, दफ्तरों में विश्राम के क्षणों और शरीर और मन को शिथिल कर गहरी साँस खींचने और छोड़ने का अभ्यास ऐसा है जिससे शरीर और मन दोनों ही तरोताजा हो जाते हैं । इससे न केवल शारीरिक थकान मिटती है, वरन् मानसिक स्फूर्ति और सक्रियता का लाभ भी मिलता है ।

"हाउ टू रिलेक्स" नामक पुस्तक में मनोविज्ञानी विल्फ्रिड नार्थफील्ड तनाव शैथिल्य की एक अन्य सरल विधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कुर्सी पर बैठकर अथवा किसी आरामदायक स्थान पर लेटकर धीरे-धीरे साँस खींचें और भावनापूर्वक सम्पूर्ण कार्यों को प्राण उर्जा से भरा हुआ अनुभव करें । पैरों के अग्रभाग से लेकर प्रत्येक माँसपेशियों पर प्राण प्रवाह बिखेरते हुए मस्तिष्क मध्य तक उसे प्रसारित करना चाहिए और तब प्रत्येक अवयव का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते हुए उसे विश्राम दें ताकि तनावग्रस्त माँसपेशियाँ ढीली पड़ जायँ । पूरे शरीर को इस तरह तनाव रहित करने के उपरान्त उलटे क्रम से नीचे तक पुनः संकल्प पूर्वक खींची गई प्राण ऊर्जा का प्रवाह बहने देने का विश्वास किया जाय । इस पूरी प्रक्रिया में एक मिनट का समय लगता है । आरम्भ पाँच मिनट से करके इसे १५ मिनट तक क्रमशः पहुँचाया जा सकता है । इस तरह सम्पूर्ण कायतन्त्र विश्राम की स्थिति में पहुँच जायेगा ।

नियमित रूप से प्रतिदिन उपरोक्त विश्रान्ति व्यायाम करते रहने से आध्यात्मिक, मानसिक रूप से स्वस्थ बनने की संकल्पना निश्चित रूप से सफल होती है । मानवी मस्तिष्क एक क्रम चाहता है । उसे आदत अच्छी लगती है, उचित अथवा अनुचित चाहे कोई क्यों न हो ?

अशान्ति के क्षणों में साधारण शिथिलीकरण के लिए दो तरह के आसन करने की सलाह दी जाती है । ये हैं शवासन और प्राणधारण । शवासन करने के लिए पीठ के बल लेटकर जहाँ तक सम्भव हो सके वहाँ तक अपने शरीर को ढीला करना चाहिए । आँखें बन्द करके शरीर की माँसपिशियों के स्थानीय ढीलेपन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अथवा शिथिलीकरण का बोध करना चाहिए । इसके लिए पाश्चात्य पद्धति के अनुसार संकुचन की अनुभूति को उन्नत बनाने की आवश्यकता नहीं है । इस नियम के अनुसार जब कोई व्यक्ति शिथिलीकरण की दिशा में कुछ उन्नति कर लेता है, तब वह दूसरे आसन—प्राणधारण का लाभ उठाता है । इसके लिए आसन करने वाला व्यक्ति एक ओर माँसपेशियों के शिथिलीकरण में कोई बाधा इत्यादि उत्पन्न नहीं होने देता तो दूसरी ओर साँस के बाहर निकलने तथा भीतर आने की क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है और धीरे-धीरे श्वास-निश्वास के संचालन के बीच पूर्ण सामंजस्य कर लेता है । इस सतर्क तथा सामंजस्यपूर्ण साँस लेने की क्रिया का समूची स्नायु प्रणाली पर निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है । इसके द्वारा न केवल हृदय तथा फेफड़े को काफी शिथिलता प्राप्त होती है, बल्कि शरीर की माँसपेशियों के प्रत्येक अवयव का पूरी तौर से शिथिलीकरण हो जाता है । शिथिलीकरण के सम्बन्ध में प्राणधारण आसन के उपयोग से न केवल शिथिलीकरण की क्रिया कहीं अधिक आसान हो जाती है, बल्कि श्वास संचालन क्रिया पर अधिकार स्थापित कर लेने के फलस्वरूप माँसपेशियों का शिथिलीकरण अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण हो जाता है और इसके द्वारा वह मनुष्य दिन के चौबीस घण्टे श्वास को स्थिर रख सकने में समर्थ हो सकता है ।

थकान मिटाने की सरल साधना

रेल, मोटर आदि यन्त्रों को यदि लगातार चलने दिया जाय तो वे अत्यधिक गरम होकर बिगड़ने लगते हैं । मनुष्य शरीर की भी यही बात है, दिमाग की भी । वे लम्बे समय तक काम तो कर सकते हैं, पर बीच-बीच में विश्राम माँगते हैं । रात को सो लेने पर प्रातः नई स्फूर्ति लेकर उठा जाता है । साप्ताहिक विश्राम ले लेने पर अगले सप्ताह अधिक अच्छी तरह काम करते बन पड़ता है । बीच-बीच में उपवास करके पेट को छुट्टी मना लेने का अवसर मिल जाने पर पाचन तन्त्र में जो गड़बड़ी होती है वह ठीक हो जाती है । इसी प्रकार दैनिक कार्य-विधि चाहे कितनी ही लम्बी या कठिन हो, बीच-बीच में विश्राम चाहती है ।

पर यह सब कैसे सम्भव हो ? दफ्तर में पलंग थोड़े ही बिछा होता है । कारखाने में मध्यकालीन एक घण्टे का अवकाश तो मिलता है, पर वहाँ इतना खाली स्थान नहीं होता कि मजदूर पैर फैलाकर देर तक सो सके । ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, जिन्हें मध्याह्न-काल में थोड़ा सो लेने की निश्चिन्तता पूर्वक सुविधा मिल जाती हो । सामान्य-जन तो उससे वंचित ही रहते हैं । ऐसी दशा में दोपहर बाद उनकी कार्यक्षमता घट जाती है और जितना काम दोपहर तक निपटा लेते हैं उसकी तुलना में मध्याह्नोत्तर कहीं कम कर पाते हैं । यद्यपि वे अपने दायित्व को निभाने में प्रयत्नरत तो बने ही रहते हैं ।

विश्राम की मध्यवर्ती आवश्यकता का वर्तमान परिस्थितियों में किस प्रकार ताल-मेल बैठ सकता है, इसका उत्तर 'शिथिलीकरण मुद्रा' के रूप में मिल जाता है । यह क्रिया सरल है । इसे किसी भी समय पन्द्रह मिनट खाली दिखने पर सहज ही किया जा सकता है, किसी भी परिस्थिति में । दुकानदार भी तब कर सकते हैं, जब उनकी दुकान पर भीड़ न हो । अपने स्थान पर बैठे हुए भी उसे किया जा सकता है । किसी ऐसे स्थान की जरूरत नहीं पड़ती जहाँ एकान्त हो और जिसमें सोने जितने पैर फैलाने पड़ें । उसके लिए थोड़ी-सी जगह से भी काम चल सकता है । आराम कुर्सी जैसे कुछ प्रबन्ध हो जायें तो बात अधिक अच्छी तरह बन जाती है । अन्यथा दीवार से पीठ लगाकर कमर के पीछे तकिया लगाकर पैर आगे तक फैलाये जा सकते हैं, जितनी दूर कि वे आसानी से फैल सकें ।

शिथिलीकरण मुद्रा में करना इतना भर होता है कि शरीर को पूरी तरह ढीला कर दिया जाय । मन को भी कोई कल्पना, चिन्ता आदि करने से रोक देना पड़ता है । दोनों की प्रत्यक्ष गतिविधियाँ बन्द हो जाने से भी उतना विश्राम मिल जाता हैं जिससे पिछली थकान उतर सके और अगला काम करने के लिए ताजगी मिल सके ।

स्थान यथासम्भव ऐसा चुनना चाहिए जिसमें कोलाहल न हो रहा हो, ऐसा होने से ध्यान बँटता है और वह एकाग्रता नहीं आने पाती जिसकी कि इस हेतु आवश्यकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पैर फैलाकर हाथों को लम्बा करके बैठने का उद्देश्य यह है कि किसी भी अंग-अवयव पर तनाव न रहे । सभी रुई के ढेर जैसे हल्के-फुल्के प्रतीत हों । ध्यान जमाना चाहिए और कल्पना करनी चाहिए कि निद्रा की स्थिति में अवयवों पर जैसी शिथिलता चढ़ती है वैसी चढ़ने लगी । मस्तिष्क भी निद्रा के समय अपनी घुड़ दौड़ बन्द कर देता है । ऐसी स्थिति बिना गहरी निद्रा आये पूरी तरह तो नहीं बन सकती, पर संकल्प शक्ति के आधार पर उसका आधा-अधूरा रूप तो बन ही जाता है । इस स्थिति में उतनी देर रहने का प्रयत्न करना चाहिए, जितना अवकाश हो अथवा जितनी देर इस तन्द्रा में रहने का निश्चय किया हो ।

आरम्भ में थोड़ी कठिनाई पड़ती है । चैतन्य और उत्तेजित अवयवों को तन्द्रा की स्थिति में कैसे पहुँचाया जाय । इसमें संकल्प शक्ति का अधिक प्रयोग करना पड़ता है । यथार्थता से विपरीत स्थिति बनाने के लिए समर्थ मनोबल की आवश्यकता पड़ती है । इससे ढीलापन रहे तो अंग कड़े ही बने रहते हैं और जिस प्रयोजन के लिए यह किया गया था वह पूरा नहीं होता ।

अच्छा हो आरम्भिक अभ्यास घर पर रहकर किया जाय । मुलायम बिस्तर पर पैर फैलाकर चित्त स्थिति में उस प्रकार लेटा जाय जैसे कि सोते समय शरीर की स्थिति होती है । आँखें बन्द कर ली जायें । तेज प्रकाश जल रहा हो तो उसे बुझा दिया जाय । ध्यान किया जाय की गहरी नींद आने के बिल्कुल समीप है । निद्रा से पूर्व जो स्थिति शरीर और मन की बनती है वह बन रही है । अंग निश्चेष्ट हो रहे हैं, उनमें से अकड़न धीरे-धीरे समाप्त होती चली जा रही है । मन भी थक कर अपनी कोठरी में बैठ गया । कल्पनाएँ, योजनाएँ, चिन्ताएँ सभी समाप्त हो गईं ।

यह कृत्रिम निद्रा की स्थिति है । यह मनोबल के आधार पर उपन्न की जाती है । आरम्भ में शरीरगत उत्तेजना और इच्छा शक्ति की आकांक्षा के बीच संघर्ष चलता है । शरीर अपनी जागृति का परिचय देना चाहता है, जबकि इच्छा शक्ति उसे शयन जैसी स्थिति में चले जाने के लिए बाधित करती है । यह संघर्ष आरम्भ में कई दिन तक चलता रहता है । सफलता धीरे-धीरे मिलती है, किन्तु अन्ततः विजय मनोबल की ही होती है । इन्छित शिथिलता प्रकट होने लगती है और निद्रा विजय का लाभ मिलने लगता है । अभ्यास हो जाने पर यह सरल हो जाता है कि दफ्तर या कारखाने में भी इस तन्द्रा स्थिति को उत्पन्न करके उसके सहारे थकान दूर करने का लाभ उठाया जा सके । भले ही वह सफलता थोड़ी ही देर की क्यों न हो ?

निद्रा आह्वान का यह उपयोगी प्रयोग है । जिन्हें अनिद्रा की शिकायत रहती है वे इस अभ्यास के सहारे नींद को कुछ ही देर के प्रयोग से बुला सकते हैं । आमतौर से नींद अपनी मन-मर्जी से आती है उसके लिए कई लोग तरसते रहते हैं । देर से या कम मात्रा में हल्की नींद आने पर थकान बनी रहती है । बिस्तर छोड़ने पर भी आलस्य छाया रहता है । शरीर थका, टूटा-टूटा सा लगता है, किन्तु जिन्हें गहरी और पूरी नींद आती है उन्हें स्फूर्ति भी मिलती है और प्रसन्नता भी । नींद एक प्रकार का पोषण है जो थके-माँदे अवयवों को अभिनव पोषण प्रदान करता है । क्षुधित व्यक्ति को भोजन मिलने पर जिस प्रकार का सन्तोष होता है, वैसा ही सोकर उठने पर भी अनुभव होता है । निद्रा को बुलाना और भंगाना अपने वश में हो जाय तो समझना चाहिए कि एक बड़ी सिद्धि हाथ लग गई । इस उपलब्धि को हस्तगत करने के लिए कुछ दिनों उपरोक्त शिथिलीकरण मुद्रा की साधना करनी पड़ती है । आरम्भ में यत्किंचित सफलता ही मिलती है, पर निरन्तर लगे रहने पर अभ्यास न छोड़ने पर उस प्रयोग की सफलता सुनिश्चित हो जाती है । नींद को समय पर बुला सकना इस आधार पर सम्भव हो जाता है । इसके अतिरिक्त दिन में कई बार इस प्रयोग को करते हुए थकान से छुटकारा पाया जा सकता है और नई स्फूर्ति का लाभ लिया जा सकता है ।

अभ्यास-काल में निरन्तर यह अनुभव करना होता है कि सभी अंग शिथिल हो रहे हैं, इच्छा-शक्ति के आदेश का पालन कर रहे हैं, कठोरता त्याग रहे हैं और निर्जीव जैसे बन रहे हैं । चेतनाजन्य उत्तेजना से छुटकारा पा रहे हैं । इस प्रयोग को आँखें बन्द करके किसी भी समय किया जा सकता है । कोलाहल रहित किसी भी स्थान पर आवश्यकता एवं सुविधा के अनुरूप इच्छित समय तक यह स्थिति बनाये रहना सम्भव हो जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तनाव का प्रबन्ध, योग द्वारा

योगशास्त्रों में, साधना में उच्चस्तरीय विकास के लिए साधक के चित्त में सम्प्रसादवृत्ति अर्थात् सहज प्रसन्नता का होना अनिवार्य बताया गया है किन्तु सामाजिक, पारिवारिक और भावनात्मक समस्याएँ जन-साधारण से प्रायः यह प्रसन्नता छीन लेती हैं । उपासना के क्षणों में भी वह तनावग्रस्त बना रहता है और उसमें वह तल्लीनता नहीं आ पाती जो साधना की सफलता के लिए अनिवार्य है । मानसिक प्रतिक्रियाओं की यह परस्पर विरोधी खींचातानी तनाव को और बढ़ा देती है । उपासना में बैठने के लिए आसन की स्थिरता भी आवश्यक है व उसके लिए शैथिल्य का अभ्यास आवश्यक है ।

भौतिकवादिता के इस युग में यान्त्रिकता, व्यस्तता और भाग-दौड़ की अधिकता के कारण मनुष्य अपने प्रतिदिन के कार्यों में तनाव का अधिक अनुभव करता है । शहर का विश्राम रहित जीवन, औद्योगिक प्रगति के कारण होने वाली भीड़, वातावरण में बढ़ता प्रदूषण, घरेलू समस्याएँ आदि उसके मानसिक तनाव को बढ़ाती हैं । तनाव वह अवस्था है जब दो शक्तियाँ विपरीत दिशाओं में कार्य करती हैं । जब कोई व्यक्ति विशेष विधि से कार्य करना चाहता है तो दूसरी शक्ति उसे ऐसा करने से रोकती है । यही तनाव है । मनोविज्ञानियों के अनुसार यह एक चित्त विक्षेप है ।

मनीषियों का कहना है कि तनाव दूर करने का सबसे सरल तरीका यह है कि स्वयं को आराम की स्थिति में रखा जाय तथा तनाव के मूल एवं प्रथम कारण का पता लगाया जाय । यह तनाव वस्तुतः भले-बुरे विचारों के शिव और अशिव बुद्धि के बीच का संघर्ष है । योगाभ्यास द्वारा मानसिक, पेशीय एवं भावनात्मक तनाव को दूर किया जा सकता है और एक स्थिति ऐसी आती है जबकि अन्तरतम में चल रहे इस संघर्ष का अन्त हो जाता है । यह परमशान्ति की अवस्था है । इस स्थिति की प्राप्ति के लिए अनिवार्य आरम्भिक अभ्यास शिथिलीकरण का किया जाना चाहिए । स्वाभाविक शरीर चेष्टाएँ शिथिल कर देना ही शिथिलीकरण है ।

अनुसंधानकर्त्ता चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार शारीरिक-मानसिक तनाव मनुष्य को असाधारण क्षति पहुँचाते हैं । पाया गया है कि एक घण्टे का क्रोध एक दिन के बुखार जितनी क्षति पहुँचाता है । शोक-उद्वेग के सघन क्षणों में नींद, भूख सभी गायब हो जाती हैं । किसी भी कारण से उत्पन्न तनाव न केवल सामयिक पीड़ा उत्पन्न करता है, वरन् दूरगामी दुष्परिणाम भी उत्पन्न करता है । इनसे बचने के लिए प्रायः लोग शामक औषधियों, नींद की गोलियों आदि का सहारा लेते हैं । नासमझ व्यक्ति इसी के लिए नशे का सहारा लेते हैं, किन्तु ये उपचार तनाव की जड़ को नहीं उखाड़ फेंकते ।

योग विद्याविशारदों ने प्राणों के पारस्परिक विरोध को तनाव की उत्पत्ति का कारण बताया है । प्राण ऊर्जा का असन्तुलन समूचे कायतन्त्र में अतिरिक्त गर्मी भर देता है । विचारों में उलझन उत्पन्न कर देता है और इस प्रकार तनाव एवं प्राणशक्ति का असन्तुलन परस्पर पर्यायवाची बन जाते हैं ।

पौराणिक आख्यान है कि सफेद और काले रंग के दो पक्षी रस्सी द्वारा खूँटे से बँधे हैं । जब तक वे बँधे रहते हैं, तब तक उड़ने का प्रयास करते ही रहेंगे और ऐसा वे अनेकों बार करते रहते हैं । अन्ततः वे थककर शान्तिपूर्वक खूँटे के पास सो जाते हैं । यह शास्त्रीय व्यंजना वस्तुतः मानवी काया में मेरुदण्ड के भीतर विद्यमान 'इड़ा और 'पिंगला' नामक सूक्ष्म नाड़ियों के सन्दर्भ में है, जिनमें पक्षियों की तरह से दो प्राण धाराएँ निवास करती हैं, बहती हैं । दाहिनी नासिका से होकर जाने वाली 'इड़ा'—प्राणनलिका तथा बायीं नासिका छिद्र से होकर जाने वाली 'पिंगला' प्राण नलिका है । एक के बाद एक कार्य करने वाली इड़ा-पिंगला अन्तः चेतना के एक ही मार्ग से आती हैं, परन्तु जब तक वे एक के बाद एक कार्य करती हैं तब तक शान्ति की प्राप्ति नहीं होती । यह तभी होता है जब दोनों इड़ा—पिंगला एक ही केन्द्र पर आराम करती हैं और तब सुषुम्ना के जागृत होने पर ध्यान की क्रिया अपने आप आरम्भ हो जाती है । यही स्वरयोग है जो प्राणविद्या का अंग है ।

स्वर विज्ञान के अनुसार जब दोनों नासिका छिद्रों में समान रूप से प्राण-प्रवाह होता है तो यह प्रदर्शित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है कि 'सुषुम्ना' का बहाव हो रहा है । ऐसी स्थिति में सब सांसारिक कार्यों को छोड़कर व्यक्ति को उपासनारत हो जाना चाहिए, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण प्राण संस्थान में एकरूपता होती है । जब सुषुम्ना कार्य नहीं करती, तब प्रयत्न के बाद भी एकाग्रता नहीं आती । साधना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इड़ा-पिंगला के प्राण प्रवाह में एकरूपता लायी जाय । जब यह सम्भव होगा तभी सुषुम्ना क्रियाशील बनेगी ।

इसके लिए जहाँ प्राणायाम तथा स्वर साधना का अभ्यास किया जाता है, वहीं शिथिलीकरण भी एक अति उपयोगी प्रक्रिया है । शिथिलीकरण का प्रगाढ़ अभ्यास इड़ा-पिंगला के प्राण प्रवाह में संतुलन स्थापित करता है । कुछ काल तक नियमित रूप से शिथिलीकरण का अभ्यास करने से सुषुम्ना प्रवाह चलने लगता है । यह उपासना के सर्वथा उपयुक्त मनोभूमि है । यदि मस्तिष्क में तनाव हो तो उस स्थिति में उपासना के लिए बैठने के पूर्व शिथिलीकरण की प्रक्रिया द्वारा तनाव मुक्त हो लेना चाहिए, तदुपरान्त उपासना करना चाहिए ।

शिथिलीकरण की प्रक्रिया सभी प्रकार के तनावों से मुक्ति पाने का एक सहज और प्रभावशाली उपाय है । मन-मस्तिष्क में अनियन्त्रित हलचलें चल रही होती हैं तो वहाँ जल में उठ रही हिलोरों जैसी अस्थिरता बनी रहती है । उसे शान्त एवं तनावरहित बनाने पर ही तन्मयता उपन्न होगी और परमात्मा से मिलन की अनुभूति प्रगाढ़ होगी । बाकी दिन के किसी अन्य समय में भी तनाव रहित होने के लिए शिथिलीकरण मुद्रा लाभकारी होती है ।

शरीर को पूरी तरह ढीला और मन को पूरी तरह खाली करना ही शिथिलीकरण मुद्रा का उद्देश्य है । न केवल उपासना के समय, वरन् किसी भी समय तनाव से पिण्ड छुड़ाने का यह उत्तम उपचार है । इस अभ्यास के लिए शवासन सर्वाधिक उपयोगी होता है । इसमें शरीर को ऐसी स्थिति में रखना सुविधाजनक होता है जब उसमें किसी भी प्रकार का दबाव न पड़े । शवासन का अर्थ है मुर्दे की तरह निश्चेष्ट पड़े रहना । यह बिस्तर पर पड़े-पड़े भी सम्भव है और आराम कुर्सी पर बैठकर या दीवार अथवा मसनद का सहारा लेकर भी किया जा सकता है ।

इस स्थिति में पड़े रहकर यह प्रगाढ़ भावना करनी पड़ती है कि शरीर में से प्राण खिंचकर मात्र मस्तिष्क मध्य में, केन्द्रित हो गया है । शेष सभी अवयव मृतवत् पड़े हैं । उनमें कोई भी हरकत नहीं हो रही है ।

इस तरह शिथिलीकरण मुद्रा या शवासन में समस्त शरीर को उसके अंग-प्रत्यंग को शिथिल करना पड़ता है, मानो वह गहरी निद्रा में चला गया हो । साथ में मन को भी इस स्थिति में ले जाना पड़ता है, मानो क्लोरोफार्म जैसी वस्तु सूँघकर सुध-बुध खो बैठा हो ।

स्वाभाविक तौर पर ऐसी स्थिति गहरी निद्रा में ही बनती है । सभी जानते हैं कि गहरी नींद आ जाने पर थकान दूर होती और ताजगी आती है । रात को थककर चूर हुआ व्यक्ति जब रात भर गहरी नींद सो लेता है तो सबेरे उठते ही ऐसी स्फूर्ति, प्रसन्नता और ताजगी का अनुभव होता है, मानो कोई बहुमूल्य टॉनिक लिया है । नया काम हाथ में लेने की उमंगें उठने लगती हैं । प्रकृति का कितना अनुग्रह है कि हम अनेकों कारणों से शारीरिक और मानसिक थकान आमन्त्रित करते हैं और उसकी पूर्ति प्रकृति अपने ढंग से इस प्रकार कर देती है कि उसके लिए हमें कोई विसेष प्रयत्न या खर्च नहीं करना पड़ता ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि शरीर या मन इतना अधिक अस्त-व्यस्त या उत्तेजित होता है कि उसके सामने प्रकृति प्रेरणा उतना काम नहीं कर पाती जितना कि उसे करना चाहिए । ऐसी दशा में या तो नींद आती ही नहीं या इतनी हल्की उथली आती है कि उसका प्रभाव नगण्य जितना होता है और थकान मिटने का सुयोग बन नहीं पाता । ऐसी दशा में लोग आमतौर से नशीली वस्तुएँ लेते हैं । कैमिस्टों की दुकानों पर ऐसी वस्तुएँ विभिन्न नामों और रूपों के ट्रंकोलाइजरों के रूप में बिकती हैं । उन्हीं का सेवन करते हैं । उनके कारण खुमारी भर आती है । मनुष्य सुध-बुध भर भूलता है, पर उस ताजगी का लाभ नहीं ले पाता जो स्वाभाविक रूप से आने वाली गहरी नींद द्वारा मिलती है । फिर एक कठिनाई और भी है कि ट्रंकोलाइजर आदत का अंग बनते जाते हैं । उनका प्रभाव घटता जाता है । अधिक मात्रा लेने की जरूरत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है । इतना ही नहीं उनके अन्य रूप में दुष्प्रभाव (साइड एफेक्ट) भी उभरते हैं । उन कारणों में शरीर नई व्याधियों से ग्रसित होता है ।

इस स्थिति में सरल उपाय शिथिलीकरण मुद्रा के अभ्यास का है । इसमें प्रधानतया मनोबल का उपयोग करना पड़ता है । अपने आपको स्वयं संकेत देने पड़ते हैं कि हम गहरी निद्रा में जा रहे हैं । अंग शिथिल हो रहे हैं और मन में भाग-दौड़ सर्वथा बन्द कर दी । उसकी सब प्रकार की भली-बुरी कल्पनाओं से छुटकारा पा लिया ।

आरम्भ में मन इस परामर्श को मानने में आना-कानी करता है, पर पीछे लगातार प्रयत्न करने पर कुछ दिन में वह प्रशिक्षित हो जाता है और आज्ञानुसार काम करने लगता है । जब हिंस्र पशु सर्कसों में आशातीत विचित्र कार्य करने के लिए रिंग मास्टरों द्वारा प्रशिक्षित कर लिए जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि अपना शरीर अपना मस्तिष्क सदा अपने निर्देशनों की अवज्ञा ही करता रहे ।

नेपोलियन और क्लाइव में यह विशेषता पायी जाती थी कि वे हफ्तों घोड़े पर सवार रह युद्ध मोर्चे पर जागते रहते थे । थकान मिटाने के लिए इतना भर करते थे कि घोड़े को किसी पेड़ से सटाकर सवारी की स्थिति में ही पेड़ के सहारे थोड़ी देर गहरी नींद ले लेते थे । बस इतने भर से उनका काम चल जाता था और फिर नये उत्साह से काम में जुट जाते थे । ऐसा अभ्यास दूसरे लोग भी कर सकते हैं । अभ्यास की विद्या एक ही है—शिथिलीकरण ।

अभ्यास के आरम्भिक दिनों में कोलाहल रहित स्थान पर चारपाई पर लेट जाना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि शरीर सर्वथा भार रहित स्थिति में है । वह रुई जैसा हल्का हो गया, सारा वजन चारपाई पर चला गया ।

मन को शान्त करने के लिए एक कल्पना चित्र बहुत ही कारगर है । संसार में कहीं कोई व्यक्ति मकान, पदार्थ, प्राणी नहीं रहा । न उनसे सम्बन्धित कोई समस्या, विचारणा शेष रही । सर्वत्र प्रलय काल जैसी अथाह जल-राशि भरी हुई है । उसमें हम मात्र अकेले हैं । छोटे बालक की तरह पत्ते की नाव पर पड़े हुए धीमे-धीमे हवा के साथ किसी अज्ञात दिशा में बहते जा रहे हैं, कहीं कोई अवरोध नहीं, न कोई समस्या और न उसके सम्बन्ध में विचारणीय प्रसंग ।

इस प्रकार के प्रलय काल वाले चित्र तस्वीर वालों की दुकानों पर भी बिकते हैं जिसमें भगवान को जल में पत्ते के ऊपर पड़ा हुआ और पैर का अँगूठा चूसते हुए दिखाया गया है । कल्पना को ठीक तरह जमाने में यह चित्र एक आधार की तरह सहायक सिद्ध हो सकता है ।

अपनी मृत्यु की कल्पना यदि डरावनी न लगे तो वह भी कारगर सिद्ध हो सकती है । कल्पना करनी चाहिए कि शरीर और मन मूल अवस्था में शान्त निःचेष्ट पड़े हैं । हमारा प्राण उसमें से निकल गया और परलोक में ऐसी व्यवस्था हो गई कि जिन्दगी भर की थकान दूर करने के लिए लम्बी अवधि तक एक मुलायम पण्डाल पर ऐसे वातावरण में सोने को मिल गया—जहाँ सर्दी, गर्मी, मक्खी, मच्छर आदि का कोई व्यवधान नहीं है । जो चिन्ताएँ, समस्याएँ, जिम्मेदारियाँ सिर पर थीं वे मरे हुए शरीर के साथ हजारों मील नीचे रह गईं और हम उस स्थिति से बहुत ऊँचे उठकर सर्वत्र नये वातावरण में आ गए ।

युवावस्था में कठोर श्रम करने के बाद तुरन्त नींद आ जाती है पर वृद्धावस्था में ठीक उसका उल्टा होता है । बूढ़े लोग थकान से कराहते और नींद न आने की शिकायत करते हैं । ऐसी अवस्था में गर्म पानी की बाल्टी में पैर रखकर बैठना और फिर पैर पोंछ कर सो जाना लाभदायक पड़ता है । किन्हीं-किन्हीं को किसी गम्भीर विषय की किताब पढ़ते-पढ़ते नींद आ जाती है । सिर और पौरों की मालिश मन ही मन करा लेना या उस प्रकार की भावना करने लगने से भी राहत मिलती है ।

मानसिक चिन्ताएँ घाटा, अपमान, मुकदमा, आशंका, भय, निराशा, जैसे विचार मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं । तनाव की स्थिति में नींद उड़ जाती है और तब थकान का दूना अनुभव होता है । ऐसी स्थिति में कोई मनोरंजन, किस्से, कहानी कहने या सुनने लगना विचारों का केन्द्र बिन्दु बदल देता है और नींद आने लगती है । टेपरिकार्डर पर किसी वादन की मोहक ध्वनि सुनने पर ध्यान बँट जाता है और नींद आने लगती है । जो थकान मिटाने का प्रधान आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । थकान और अनिद्रा का घनिष्ठ सम्बन्ध है । खासतौर से मानसिक तनाव इस सन्दर्भ में विशेष रूप से बाधक होता है । इन परिस्थितियों में सिर पर छाये हुए विचारों से मुक्ति पाने के लिए कोई रोचक प्रसंग याद करने लगना ठीक पड़ता है ।

शरीर की थकान गुम-सुम पड़ जाने और चुप्पी साध लेने से कुछ देर में नींद आने पर उतर जाती है किन्तु मानसिक उलझनों का जंजाल ऐसा बुरा है जो थकान न होने पर भी नींद में विक्षेप डालता और थकान बढ़ाता है । ऐसी दशा में चिन्तन का जो उद्विग्न करने वाला प्रवाह चल रहा हो उसे उलट देने वाले दूसरे हल्की-फुल्की विचारधारा का आश्रय लेना ही उपयुक्त है ।

सर्दी, गर्मी, मच्छर, खटमल, जूँ आदि के कारण नींद न आ रही हो तो स्थान और बिस्तर बदल देना चाहिए । मानसिक, राम-नाम जपने लगना भी नींद बुलाने का एक तरीका है ।

शिथिलीकरण मुद्रा का, शवासन का यदि नित्य थोड़ी देर अभ्यास किया जाता रहे तो शरीर एवं मनः संस्थान उस पद्धति को आत्मसात् कर लेता है । ऐसी स्थिति में हस्तगत हो जाने पर कभी भी थकान उतारने वाली नींद इच्छानुसार बुलाई जा सकती है । विनोबा हर मौसम में शाम को छः बजे सो जाते थे और नियत समय पर सो लेते थे । गाँधी जी का भी नींद पर नियन्त्रण था । ऐसे लोगों को थकानजन्य कष्ट नहीं भुगतने पड़ते ।

इस प्रकार के शिशिलीकरण के नियमित अभ्यास से शारीरिक-मानसिक तनावों पर पूरी तरह नियंत्रण हो जाता है । यह मनोनिग्रह की भी प्रथम भूमिका है । उच्चस्तरीय आध्यात्मिक साधनों एवं ध्यान के लिए यह मनः स्थिति आवश्यक है । इससे उपासना में भी प्रगति होती है और दैनन्दिन जीवन में भी सहज प्रसन्नता समाई रहती है । प्रारम्भ में शिथिलीकरण का अभ्यास १०-१५ मिनट तक करना चाहिए, बाद में इसे आधे घण्टे तक बढ़ा सकते हैं । आध्यात्मिक विकास के इच्छुक प्रत्येक साधक को यह अभ्यास बहुत सहायक सिद्ध होता है ।

योग निद्रा द्वारा प्राण-शक्ति का सन्तुलन एवं अभिवृद्धि

प्राण तत्व ही जीवन शक्ति है और इस जीवन शक्ति के उचित उपयोग के लिए मनुष्य में प्राण-शक्ति के सन्तुलन की क्षमता होनी चाहिए । इस सन्तुलन के केन्द्र हैं—आज्ञाचक्र तथा सहस्रार । चिकित्सा विज्ञान की शब्दावली में जिन्हें पीनियल तथा पिट्यूटरी ग्लैण्ड कहा जाता है, वे इन्हीं सन्तुलन केन्द्रों के स्थूल स्वरूप हैं । योग निद्रा का अभ्यास इन दोनों ग्रन्थियों के स्वास्थ्य एवं सन्तुलन को बनाये रखता है ।

प्राण प्रवाह का वास्तविक संचालन, नियमन तो चेतना ही करती है । चेतना किसी अंग-विशेष की क्रिया का नाम नहीं है, यह भली-भाँति याद रखना चाहिए । चेतना स्वयं मस्तिष्क नहीं है, अपितु वह मस्तिष्कीय तन्त्र की भी उसी प्रकार संचालिका है, जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर तन्त्र की । उसे पदार्थ विज्ञान की भाषा में ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता । फिर भी मस्तिष्क की क्रियाओं का सम्बन्ध प्राण-प्रवाह से है । सम्पूर्ण स्नायु तन्त्र का संचालन मस्तिष्क द्वारा ही किया जाता है । इस स्नायु तन्त्र के प्राथमिक घटक स्नायु-कोश होते हैं जो पूरे स्नायुतन्त्र में असंख्य मात्रा में फैले होते है । इन स्नायुकोशाओं में धनावेशित सोडियम तथा पोटेशियम आयन होता है । स्नायु-कोशाओं की उत्तेजना ही सम्वेदनात्मक निर्देशों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित करती है । जब इन कोशाओं में उत्तेजना होती है, तो आयनों में भी कम्पन होता है । ये आयन प्राण के स्थूल वाहक हैं । आयनों का कम्पन प्रवाह प्राण प्रवाह को जन्म देता है ।

योग निद्रा के अभ्यास में जब साधक अपनी चेतना को शरीर के अंगों में इच्छा पूर्वक घुमाता है तो इन अंगों के स्नायु तन्त्र में, स्नायु कोशाओं में आयनों का कम्पन प्रवाह प्राण प्रवाह को गतिशील करता है । इस प्रकार जागरूक चेतना का व्यवस्थित परिभ्रमण व्यवस्थित प्राण प्रवाह को जन्म देता है । इसे एक प्रकार से प्राण शरीर की व्यवस्थित कसरत या व्यायाम कहा जा सकता है और इससे प्राण शरीर को उसी प्रकार शक्ति तथा स्फूर्ति मिलती है, जिस प्रकार स्थूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शरीर को आसन आदि व्यवस्थित शारीरिक व्यायामों से मिलती है ।

व्यवस्थित शारीरिक व्यायाम से शरीर के निष्क्रिय पड़े उपेक्षित या अप्रयुक्त सूक्ष्म अंगों में भी नवजीवन का संचार होता है । आसनों की तो विशेषता ही यही है । उसी प्रकार योग निद्रा द्वारा प्राण-शरीर का जो व्यायाम होता है, उससे स्नायुतन्त्र के केन्द्र, मस्तिष्क के वे क्षेत्र क्रमशः सक्रिय प्राणवान बनते हैं, जो अन्यथा निष्क्रिय ही पड़े रहते हैं । यह तो अब सुविदित तथ्य बन चुका है कि सामान्यतः सभी मनुष्य अपने मस्तिष्क की सम्पूर्ण क्षमता का अधिकतम दसवाँ भाग ही प्रयुक्त कर पाते हैं ।

योग निद्रा के अभ्यास से पीनियल ग्लैण्ड तथा पिट्यूटरी ग्लैण्ड पर भी प्रभाव पड़ता है । ये दोनों ही मानव मस्तिष्क में अवस्थित दो प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ हैं, जो अचेतन स्तर को प्रभावित करने वाले प्राण रस हार्मोन्स का स्राव करती हैं । यहाँ यह स्मरणीय है कि भारतीय शास्त्रों में एक प्रतिपादन यह भी है कि प्राण भी कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय की तरह ही इन्द्रिय है । विशेषकर सांख्ययोगी प्राण को इन्द्रिय ही मानते हैं और पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों की तरह पाँच प्राणेन्द्रियों का भी विश्लेषण करते हैं । प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान इन पंच प्राणों को ही प्राणेन्द्रिय माना जाता है । ये पाँचों आकर्षण, विकर्षण या समवितरण धारण तथा उत्थान के अपने कार्य भली-भाँति करते रहें यही प्राण सन्तुलन की स्थिति है और लम्बे समय तक योग निद्रा का अभ्यास इस स्थिति को लाने में सहायक बनता है ।

योग निद्रा की विकसित स्थिति में चेतन के शरीर से पृथक अवस्थित होने की प्रगाढ़ भावना की जाती है । उस दौरान सम्पूर्ण प्राण प्रवाह मस्तिष्कीय क्षेत्र में अधिकाधिक घनीभूत रहता है । यह स्थिति पीनियल और पिट्यूटरी ग्लैण्ड पर अधिक प्रभाव डालती है तथा उनकी प्रसुप्त अन्तः क्षमताओं को उद्दीप्त करती है । तब इन सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों में तीव्र हलचल मचती है और अनेक रहस्य अनावृत होने लगते हैं । यही अतीन्द्रिय क्षमताओं की अनुभूति का आरम्भ है । पिट्यूटरी ग्लैण्ड स्नायु तन्त्र तथा हार्मोनल सिस्टम को जोड़ती है । समस्त चयापचयन तन्त्र तथा भावना संस्थान पर इस ग्रन्थि का प्रभाव पड़ता है । इसीलिए योग निद्रा की सिद्धि द्वारा प्राण शक्ति के प्रदीपन की चयापचयन पद्धति पर यह प्रतिक्रिया भी कई बार सामने आती है कि थोड़ा-सा ही आहार पर्याप्त प्राण शक्ति देने लगता है और भोजन की मात्रा में कमी आ जाती है, किन्तु यह तभी होता है जब योग निद्रा का सुदीर्घ तथा सघन अभ्यास हो और अन्तश्चेतना प्राण शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने में समर्थ हो चुकी हो । इसी स्थिति में भाव-संस्थान की भी नई-नई सम्भावनाएँ प्रकट होने लगती हैं, जो तर्क शक्ति द्वारा नहीं समझी-समझाई जा सकतीं । वस्तुतः पिट्यूटरी ग्लैण्ड अनन्त विस्तृत परम चेतना का प्रवेश द्वार है और भाव-संस्थान की विकसित स्थिति में अनेक ऐसी बातें पूर्ण वास्तविकता के रूप में सामने आती हैं जो इसके पूर्व तक मात्र मानसिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संकल्पनाएँ ही प्रतीत होती थीं । इस प्रकार योग निद्रा से चेतना के उच्च आयामों के प्रकटीकरण का भी पथ प्रशस्त होता है तथा इस दृष्टि से वह ध्यान की अन्य विधियों के समान ही महत्त्वपूर्ण एक विधि है । वह मस्तिष्कीय सजगता का क्षेत्र विकसित करती है ।

योग निद्रा में अन्तश्चेतना मात्र दृष्टा बनी रहती है । यह स्थिति चेतन मन की दृष्टि से सुषुप्ति की होती है । ऐसी स्थिति आते ही प्रारम्भ में अचेतन मन अत्यधिक तेजी से अपना क्रीड़ा कौतुक दिखाता है । जैसे बहुत दिनों से खेलने से रोका गया कोई सबल शिशु मौका पाते ही खेलने को दौड़े । लम्बे समय तक अपने में समाहित समस्त दमित आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का अवसर पाते रहने पर यह अचेतन मन भी तृप्त हो जाता है और शान्त पड़ जाता है ।

योग निद्रा में जब प्रखर भावना के साथ प्राण-शक्ति को विशेष चक्रीय क्रम में निरन्तर प्रवाहित किया जाता है, तो टेम्पोकल कार्टेक्स का वह अंश एक बारगी झनझना उठता है, जिसमें स्मृतियाँ शृंखलाबद्ध रहती हैं । अचेतन की ये स्मृतियाँ जब प्रकट होती हैं तो साथ में भावनात्मक आवेश भी उनके साथ उभरता चलता है ।

योग निद्रा का अभ्यस्त साधक क्योंकि तटस्थ साक्षी भाव से इन सबको देखता रहता है । इसलिए ऐसी स्मृतियों तथा उनसे जुड़ी भावनाओं के प्रकाशन से दो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार से लाभ मिलता है । एक तो अचेतन का वह तनाव निष्कासित हो जाता है, उसके वे विक्षेप दूर हो जाते हैं जो अन्यथा उग्र तथा हानिकर भावनात्मक आवेशों के साथ प्रकट होते और जाने कैसी हानि पहुँचाते । दूसरे कई बार ये उभरी हुई पुरानी स्मृतियाँ बहुत लाभकारी सिद्ध होती हैं । साथ ही अचेतन के घटकों का यह नियमित पर्यवेक्षण सन्तुलन की विशेष शक्ति देता है । इस शक्ति के द्वारा प्राण-शक्ति का सन्तुलन सहज सम्भव होता है । साथ ही इस शक्ति के क्षरण की अनेक सम्भावित स्थितियाँ टल जाती हैं ।

अचेतन के इस प्रकार भरपूर अभिव्यक्त हो जाने और शान्त पड़ जाने के बाद अतिचेतन सक्रिय होता है । उस अतिचेतन का समष्टिगत चेतन प्रवाह से सम्बन्ध होता है । सक्रियता बढ़ने पर आदान-प्रदान के क्रम में भी प्रखरता, तीव्रता तथा स्पष्टता आती है । इस स्थिति में मस्तिष्क में सूक्ष्म शक्तियों की बाढ़ आ जाती है । इस दृष्टि से योग निद्रा अपने अन्तिम चरण में आत्म-साक्षात्कार की पूर्व भूमिका भी विनिर्मित करती है । इसी चरण में अतिचेतन विश्वव्यापी प्राण प्रवाह से यथेच्छ प्राण-शक्ति खींचने की क्षमता का भी उपयोग करता है । इस प्रकार योग निद्रा का साधना-विधान में एक विशिष्ट स्थान है ।

भावात्मक असन्तुलन का निदानोपचार : योग निद्रा

योग निद्रा को वैज्ञानिक निद्रा भी कह सकते हैं । जिस प्रकार किसी भी कार्य के वैज्ञानिक पक्ष को भली-भाँति जानकर और उसकी वैज्ञानिक पद्धति में प्रवीणता प्राप्त कर व्यक्ति उस कार्य को अधिक उत्तम रीति से सम्पन्न कर सकता है तथा अधिक लाभ कर सकता है, उसी प्रकार निद्रा के विज्ञान को जानना और उससे लाभ उठाना योग निद्रा की प्रक्रिया है । इसी अर्थ में उसे वैज्ञानिक निद्रा कहना उचित है ।

निद्रा विविध कार्य सम्पन्न करती है—प्रथम विश्रांति प्रदान करना, दूसरा नवीन शक्ति अर्जित करना । निद्रा के समय एक ओर जहाँ शरीर के अधिक सक्रिय रहने वाले अंगों तथा चेतन मन को विश्राम का अवसर मिलता है, वहीं उसी अवधि में अचेतन मन को अपनी दबी पड़ी इच्छाएँ अभिव्यक्त करने का भरपूर मौका मिलता है । इससे वह हल्का भी हो लेता है तथा अपने लिए वह विस्तृत अन्तरिक्ष से नई शक्ति भी अर्जित कर लेता है । यदि अचेतन मन को अभिव्यक्त होने का यह अवसर न मिल पाये तो उसकी आकांक्षाओं का दबाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह मनुष्य के मानसिक सन्तुलन को लड़खड़ा देता है । इसके परिणामस्वरूप शारीरिक स्वास्थ्य भी गड़बड़ होने लगना स्वाभाविक है ।

अतीत की संचित स्मृतियों में से वे आकांक्षाएँ जिनमें तृप्ति की ललक तीव्र होती है, अचेतन द्वारा अभिव्यक्त होने के लिए आतुर रहती हैं । जब इन दमित आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती और इनकी संख्या बढ़ती रहती है तो प्रकाशित होने की इनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा प्रचण्ड हो उठती है । उनकी यह होड़ आन्तरिक तनाव को जन्म देती है । जब यह तनाव बहुत बढ़ जाता है तो स्वाभाविक निद्रा नहीं आ पाती । यही अनिद्रा का रोग कहा जाता है । जब यह तनाव इतना अधिक बढ़ा हुआ नहीं होता, तब मन नींद के समय में वृद्धि की माँग करता है । सामाजिक, पारिवारिक जीवन के तनाव व्यक्ति को लम्बी व दीर्घकालिक नींद के लिए बाध्य करते हैं, जबकि ये ही तनाव, विशेषकर वैयक्तिक जीवन के तनाव बढ़े हुए होने पर नींद ही नहीं आने देते । ये दोनों ही स्थितियाँ असहज हैं और इन दोनों का कारण आन्तरिक सजगता का अभाव है । आन्तरिक सजगता न होने पर परिवेश के प्रति मन में उठने वाली प्रतिक्रियाओं को व्यक्ति अपनी समस्याएँ मान बैठता है और इस प्रकार उन्हें अपनी अस्मिता का ही एक अंग बना लेता है । यह स्थिति है तो हास्यास्पद, पर अधिकांश मनुष्य फँसे इसी स्थिति में रहते हैं । यह तो निद्रादेवी की कृपा है, जो वे इस स्थिति के लोगों के अधिकांश तनाव समाप्त कर देने की जिम्मेदारी स्वयं सँभालती हैं अपने चेतन मन की प्रतिक्रियाओं को अपने स्वरूप, अपनी आस्तिकता का अंग मान बैठने वाले मनुष्यों को बरबस विश्राम के लिए बाध्य कर नींद उनका भार हल्का करती रहती है । यह तथ्य भी कम ही लोग जानते हैं, अन्यथा वे तो इसे एक बाध्यकारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवेगपूर्ण ऐसी घटना मात्र मानते रहते हैं, जिस पर अपना वश नहीं, पर जो लाभकारी जरूर लगती है ।

इस नींद का लाभ समझना, उसको वशवर्ती बनाना तथा इच्छानुसार सघन बनाना—यह योग निद्रा की प्रक्रिया पद्धति है । इसलिए उसे जागरूक निद्रा कहा जा सकता है ।

वर्तमान में न्यूरो-सर्जरी के अन्तर्गत मस्तिष्क को विश्राम देने—तनाव से मुक्ति करने की विधि योग निद्रा से मिलती-जुलती ही है । कनाडा के न्यूरो-सर्जन वाइल्डर पेनफील्ड ने न्यूरोलॉजीकल रोगियों का परीक्षण करके सिद्ध किया कि मस्तिष्क से शरीर के विभिन्न अवयवों तक नाड़ी-परिपथ बने हुए हैं जो बाहरी सूचनाओं, सम्वेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं और मस्तिष्क के आदेशों को उन अवयवों तक भेजने का कार्य सम्पादित करते हैं । योग निद्रा के अभ्यास में शरीर के अंगों-प्रत्यंगों द्वारा मस्तिष्क के सम्पर्क केन्द्रों को प्रभावित किया जाता है । आधुनिक न्यूरो-सर्जन मस्तिष्कीय केन्द्रों के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंग प्रत्यंगों को प्रभावित करते हैं । योग निद्रा में भी इसी प्रकार का अवलम्बन किया जाता है ।

मनोशारीरिक रोगों के इलाज के लिए योग निद्रा की विधि सफल सिद्ध हुई है । अमेरिका के "कोर्ट बर्थ कैंसर कॉउन्सिल एण्ड रिसर्च सेण्टर" के कैंसर विशेषज्ञ कार्ल सिमेन्टन ने कैंसर के कई रोगियों पर इसका प्रयोग करके उन्हें स्वास्थ्य लाभ कराया है । इसके अन्तर्गत रोगियों को यह धारणा करनी होती है कि शरीर के प्रतिरोधी तन्त्र द्वारा कैंसर के रोगाणु नष्ट हो रहे हैं और इस प्रकार वे स्वस्थ हो रहे हैं । सिमेन्टन ने देखा कि इस प्रकार की मुद्रा में अभ्यास करने से रोगियों की स्वास्थ्य लाभ की गति कई गुनी बढ़ गई ।

कहा जाता है कि प्रसिद्ध चित्रकार सेल्वाडोर डेली प्रायः उतनी देर में अपनी झपकी पूरी कर लेता था जितनी देर में चम्मच उसके हाथ से छूटकर प्लेट पर गिरता था । स्पष्टतः यह शरीर पर मन के नियन्त्रण द्वारा विश्रान्ति की प्रक्रिया थी ।

विलियम सी. डेमेण्ट ने ध्यान एवं योग निद्रा के अभ्यास पर प्रयोग करके देखा कि उस अवस्था में व्यक्ति की चेतना का सम्बन्ध असीम चेतन-शक्ति से हो जाता है और अत्यल्प समय में अत्यधिक ऊर्जा मिल जाती है ।

मेस्मेरिज्म के अन्वेषक, प्रतिपादक फ्राजएण्टोन मेस्मेर ने कुछ लोगों को इसी प्रकार विश्राम की अवस्था में लिटा कर प्रयोग किया । प्रयोग में लोगों ने प्राण-शक्ति के प्रभाव का इस रूप में अनुभव किया मानो उनके प्राण-प्रवाह का मेस्मेर के साथ सम्बन्ध हो गया है और वह उन प्राणों का संचालन कर सकने में सक्षम है । इस प्रयोग में उन्हें गहरी नींद जैसी ताजगी का अनुभव हुआ ।

इस प्रकार योग निद्रा का आधुनिक काल में भी पर्याप्त बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता रहा है और लाभ उठाया जाता रहा है ।

योग निद्रा का आरम्भिक स्तर है शिथिलीकरण ! आराम कुर्सी पर पड़कर शरीर को ढीला छोड़ देना अथवा शवासन में लेट जाना तथा भावना करना कि शरीर का एक-एक अंग शान्त हो रहा है । उसमें से प्राण-प्रवाह खींच लिया गया है और ये अंग अब निश्चेष्ट से हो गए हैं । इसी प्रकार आगे शरीर को शीशे जैसा भारी अनुभव करने का अभ्यास किया जाता है । उस वजनी शरीर के दबाव से मानो बिस्तर या कुर्सी धँसी जा रही है । इसके उपरान्त यह अनुभव करना कि चेतना इस शरीर से पृथक एक सत्ता है, उसकी उपस्थिति इसमें प्राण-संचार करती है । चेतना स्वयं में स्वतन्त्र है तथा इच्छा-शक्ति, संकल्प बल उसकी विशिष्टता है । अपने संकल्प के अनुसार वह अपना विकास-विस्तार करने में समर्थ होती है । अभ्यास परिपक्व होने पर यह अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती है कि इस अवधि में सम्पूर्ण मनः शक्ति इसी अनुभूति पर केन्द्रित रहती है और शरीर को गहरी विश्रान्ति प्राप्त हो जाती है । इसीलिए शिथिलीकरण का यह थोड़े समय का अभ्यास लम्बी नींद का लाभ प्रदान करता है ।

योग निद्रा के अभ्यास के इन विभिन्न चरणों में सजगता, संकल्पशीलता तथा तटस्थता या निराशक्ति में तीन बातें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । इनके अभाव में यह अभ्यास सही रीति से सम्भव न होगा तथा इसका ऊपर वर्णित लाभ भी न मिलेगा । इसीलिए योग निद्रा के अभ्यासी को निद्रा के विज्ञान को समझना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है । समझ के बिना अन्ध रहस्यवादी भावना के साथ योग निद्रा के कर्मकाण्ड को करने की चेष्टा में कुछ भी प्रगति न हो सकेगी । जबकि आन्तरिक सजगता के अभ्यास से न केवल भावनात्मक असन्तुलन का निदान हो जाता है वरन् मन की एकाग्रता-शक्ति भी बढ़ती है । इस एकाग्रता शक्ति का संकल्पपूर्ण उपयोग आध्यात्मिक विकास के लिए करना योग निद्रा का अगला चरण है । इस प्रकार योग निद्रा जहाँ वैज्ञानिक निद्रा है, वहीं आध्यात्मिक साधना भी है । व्यक्तित्व विकास एवं आत्म-साक्षात्कार का यह एक सबल माध्यम है ।

योग निद्रा विश्रान्ति के साथ पूरी नींद का लाभ

निद्रा सामान्यतः शरीर के लिए अपरिहार्य है । परिश्रम से क्लान्त काया को पूर्ण विश्राम तथा नवीन स्फूर्ति प्रदान करने में गहन निद्रा ही समर्थ है । यह प्रकृति की उन महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाओं में से एक है—जो शरीर यन्त्र की स्वंचालित प्रक्रिया द्वारा सुव्यवस्थित बनाये रखती है । प्रत्येक स्वस्थ शरीर को साधारणतः छः से आठ घण्टे तक की नींद जरूरी होती है । स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मनःस्थिति होने पर इतनी नींद आ ही जाती है । यह स्वाभाविक और बाध्यतामूलक होती है ।

कार्याधिक्य के कारण कई बार नींद की समय-सीमा को घटाना पड़ता है, जबकि कई बार मानसिक तनावों के बढ़ जाने पर नींद चाहने पर भी नहीं आती । अनिद्रा का रोग और नींद की गोलियाँ लेने की विवशता इसी स्थिति का बढ़ा-चढ़ा रूप है । दोनों ही स्थितियों में अर्थात् चाहे कार्य की अधिकता के कारण नींद पूरी न ली जा सके और चाहे मानसिक तनाव के कारण नींद न आये, शरीर-यन्त्र पर प्रतिकूल और हानिकर प्रभाव पड़ता है । कई दिनों तक लगातार कम सोने पर अपच, स्फूर्तिहीनता और स्मृति शैथिल्य का सामना करना पड़ता है । अनिद्रा रोग हो गया, तब तो शरीर टूटता, कमजोर होता ही चला जाता है ।

इस स्थिति का विकल्प है—योग निद्रा । इसके अभ्यास से थोड़े ही समय में पर्याप्त स्फूर्ति प्राप्त की जा सकती है । मानसिक तनावों से उत्पन्न होने वाली अनिद्रा या न्यून निद्रा तो योग निद्रा के अभ्यासी को कभी सता ही नहीं सकती क्योंकि ऐसा कष्ट उन्हीं लोगों को होता है, जो मन पर नियन्त्रण रखने तथा घटनाक्रम में मन में उभरने वाली प्रतिक्रियाओं के प्रभाव से मुक्त होने में असमर्थ रहते हैं । योग निद्रा के अभ्यास का आरम्भ ही मन पर नियन्त्रण के अभ्यास के साथ ही होता है । अतः योग निद्रा के आरम्भिक अभ्यासी में भी इतना कौशल तो आ ही जाता है कि वह मन को बार-बार अप्रिय घटनाओं की प्रभाव-प्रतिक्रियाओं की स्मृति की ओर दौड़ने से रोक सके । इस प्रकार चाहने पर भी नींद न आ पाने की विवशता रह नहीं जाती, पर कई बार, विशेषकर उन लोगों को, जिनके उत्तरदायित्व बढ़े-चढे हैं और बहुमुखी हैं, काम के दबाव के कारण नींद के समय में बरबस कटौती करनी पड़ती है । इस विवशता से शरीर पर जो अस्वाभाविक दबाव पड़ता है उससे मुक्त होना आवश्यक है । अन्यथा शरीर सामर्थ्य का लड़खड़ा उठना सुनिश्चित है ।

निद्रा मात्र शरीर का विश्राम नहीं है, वह चेतन मन का भी विश्राम है । निद्रा के क्षणों में, दिन भर की उछल-कूद और जिम्मेदारी के निर्वाह से थका चेतन मन, अचेतन के द्वारा डाँट-डपटकर, पकड़-धकेलकर चुपचाप सोने के लिए उसी प्रकार विवश कर दिया जाता है, जिस प्रकार कि किसी ढीठ चपल शिशु की ममतामयी माता रात होने पर जबरन बिस्तर में लिटाकर, दुलार-प्यार भरी थपकियाँ देकर सोने को बाध्य कर देती है । उसके बद अचेतन की अठखेलियाँ शुरू होती हैं । बीते हुए दिन की तथा भूतकाल की भली-बुरी स्मृतियाँ अचेतन परतों में दबी रहती हैं । भय एवं आवेश के पीछे ये दबी पीड़ा की अनुभूतियाँ ही कार्य करती हैं । स्वाभाविक इच्छाएँ तथा वासनाएँ अचेतन अवस्था में पड़ी रहती हैं । जो चेतन के माध्यम से व्यक्त होना तथा अपनी तुष्टि चाहती हैं । यह न होने पर तनाव एवं आवेश की स्थिति प्रकट होती है । निद्रा से दबी हुई वासनाओं-इच्छाओं की स्मृतियों का एवं सुख-दुःख की जटिल अनुभूतियों से प्रभाव का निष्कासन स्वप्नों के रूप में होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्मृति के संकेत संग्रहीत करने वाला टेम्पोरल कार्टेक्स हाइपोथैलेमस से जुड़ा होता है । हाइपोथैलेमस भावना को नियन्त्रित करता है । प्रत्येक स्मृति एक भावनात्मक प्रवाह के साथ प्रकट होती है । दमित भावनात्मक उद्वेग निद्रा की स्थिति में बाहर निकलते हैं । तनावों के निष्कासन एवं मानसिक विक्षेपों के दूर होने से नस-नाड़ियों में एक विशेष स्मृति की अनुभूति होती है । मन प्रफुल्ल एवं शान्त हो जाता है । अचेतन मन में दबे विक्षोभों, आवेगों एवं तनावों को दूर करने का निद्रा सशक्त माध्यम है । भावनात्मक असन्तुलन के निवारण में निद्रा वस्तुतः एक नैसर्गिक उपचार है । यही कारण है कि निद्रा नई स्फूर्ति, नई ताजगी देती है । वह शरीर तथा मन, दोनों को हर दिन, नये सिरे से सन्तुलित करने का कर्तव्य पूरा करने वाली स्वयंसेवी परिचारिका है ।

किन्तु निद्रा ऐच्छिक नहीं होती । उसका दबाव अनिवार्य होता है । उसे टाले जाने पर, उसकी प्रतिक्रिया भी अनिवार्य होती है । निद्रा के लाभों से इच्छानुसार लाभ उठाने तथा उसके निर्धारित समय में होने वाली कटौती की प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं से बचने के लिए योग निद्रा का अवलम्बन आवश्यक होता है ।

सचेत भाव से किए जाने के कारण शिथिलीकरण एवं योग निद्रा वशवर्ती होते हैं । वे जब तक इच्छा हो तब तक किए जा सकते हैं, जबकि नींद पर ऐसा नियन्त्रण नहीं रहता । गहरा शिथिलीकरण योग निद्रा का अंग है । वह जितना ही गहरा होगा, उतने ही कम समय में शरीर की आवश्यकता की पूर्ति सम्भव होगी ।

इसके साथ ही योग निद्रा से मानसिक शक्ति भी प्राप्त होती है । योग निद्रा द्वारा शारीरिक धरातल से चेतना को अलग किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में सक्रिय रहने वाले मस्तिष्क का भाग पीनियल तथा पिट्यूटरी ग्लैण्ड से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है । इससे स्रावित होने वाले हारमोन्स समूचे व्यक्तित्व, चेतनात्मक स्तर को भी प्रभावित करते हैं । पीनियल ग्लैण्ड के निकट ही योगियों ने आत्मा का निवास स्थान बताया है । तृतीय नेत्र इसी को कहा गया है । इसके पूर्ण जागरण से मनुष्य सूक्ष्म जगत की हलचलों को भी पकड़ने एवं समझने लगता है । पिट्यूटरी ग्लैण्ड को व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु माना गया है । यह न्यरोनल तथा हार्मोनल सिस्टम को जो छूता है, समस्त भावनात्मक क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है । चयापचयी क्रियाएँ भी इसी के द्वारा संचालित होती है । योग ग्रन्थों में इसको सहस्रार चक्र का स्थूल केन्द्र बिन्दु माना गया है । योग निद्रा का विकसित रूप इस केन्द्र को समर्थ बनाता है । इस प्रकार योग निद्रा से शिथिलीकरण वाले लाभ तो प्राप्त होते ही हैं, शारीरिक-मानसिक ताजगी तो आती ही है साथ ही चेतना का स्तर भी विकसित होता है । सन्तुलन की सामर्थ्य एवं अन्तर्दृष्टि का विकास होता है । यह योग निद्रा की उच्चस्तरीय प्रक्रिया है, किन्तु उसकी आरम्भिक प्रक्रिया भी कम समय में पूरी और गहरी नींद का लाभ प्रदान करती है । इसका यह अर्थ नहीं है कि यह नींद का आजीवन विकल्प बन सकती है । उच्चस्तरीय योगियों को छोड़कर शेष लोगों को नियमतः पर्याप्त नींद लेनी ही चाहिए । यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर उसमें होने वाली कटौती की कमी को पूरा करने के लिए योग निद्रा का सहारा अवश्य लाभकारी होता है । इसी प्रकार, कार्यव्यस्तता में समय मिलने पर शिथिलीकरण का कुछ क्षणों का अभ्यास नई स्फूर्ति प्रदान करता है । शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक प्रफुल्लता के लिए ये प्रक्रियाएँ अत्यधिक लाभकारी हैं ।

'साइकोलॉजी टुडे' में एम. मिटलेर ने एक निद्रा के रोगी की घटना प्रकाशित की थी । उस व्यक्ति ने ऐसी धारणा बना रखी थी कि लेटने के १ घण्टे बाद उसको नींद आती है और वह ५ घण्टे से भी कम सो पाता है । इसके कारण वह दिन भर थकान अनुभव करता था । जब ई. ई. जी. द्वारा उसकी जाँच की गई तो यह पाया गया कि बिस्तर पर लेटने के १० मिनट बाद ही वह सो जाता और सात घण्टे से कुछ अधिक ही सोया रहता । उसके तनाव और चिन्ता एवं भ्रम दूर कर देने भर से उसका मिथ्या रोग दूर हो गया । वह वास्तव में कम नींद का रोगी न था । उसने स्वयं ही ऐसा सोच रखा था कि उसे कम नींद आती है ।

सर्वेक्षण से पता चला है कि लगभग ७५ प्रतिशत से अधिक लोग नींद सम्बन्धी शिकायतों को लेकर डॉक्टरों के पास पहुँचते हैं । लोग स्वाभाविक निद्रा को भूलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा रहे हैं, नशीली दवाइयों, गोलियों के सहारे सोने का प्रयास करते हैं । इस प्रकार की दवाइयाँ संसार में प्रतिवर्ष लाखों टन बनती हैं । मनुष्य जब नींद की दवा का आदी हो जाता है तो दवा का प्रभाव भी कम हो जाता है । वह तनावों से ग्रस्त हो जाता है । विश्राम न मिल पाने से तनाव की स्थिति में विषाक्त पदार्थ एवं हारमोन्स उत्पन्न हो जाते हैं । फलतः मनुष्य को अनिद्रा रोग का सामना करना पड़ता है ।

निद्रा सम्बन्धी रोग प्रायः तीन प्रकार के माने जाते हैं—

(१) **इन्सोमेनिया**—इस प्रकार के रोग में व्यक्ति को कुछ नींद तो आती है, परन्तु उसे अल्पकालीन निद्रा का पता नहीं रहता ।

(२) **डायसोमेनिया**—नींद की अवस्था में दाँत किटकिटाना, बढ़बढ़ाना, चल पड़ना, चीखना, पेशाब कर देना आदि इस रोग के लक्षण हैं । इसका कारण 'रैपिड आई मूवमेण्ट' की अनुपस्थिति बताया जाता है ।

(३) **नार्कोलेप्सी**—इसमें अत्यधिक नींद आती है अथवा नींद का दौरा पड़ता है ।

नींद सम्बन्धी अधिकतर रोग मनोशारीरिक होते हैं । निरन्तर मानसिक तनाव एवं अशान्ति के परिणामस्वरूप अनिद्रा रोग की उत्पत्ति होती है । अधिकांश रोगियों का मात्र भ्रम होता है कि उन्हें नींद नहीं आती और थका-थका अनुभव करते हैं । इसे ही अनिद्रा भ्रम कहा जाता है ।

शरीर विज्ञानियों का कथन है कि स्वस्थ रहने के लिए विश्राम का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है निद्रा । प्रत्येक व्यक्ति को नींद की आवश्यकता अलग-अलग होती है । कई व्यक्ति तीन-चार घण्टे की नींद में ही पूर्ण विश्राम ले लेते हैं । बहुत से लोग आठ-दस घण्टे सोने पर भी पर्याप्त विश्राम नहीं ले पाते । निद्रा का समय व्यक्ति विशेष को अपनी आवश्यकतानुसार दिनचर्या में समाविष्ट करना चाहिए । प्रातःकाल सूर्योदय से दो-तीन घण्टे पूर्व तक निद्रा पूरी हो जाये, समय का निर्धारण इस प्रकार किया जाय । प्रातः जल्दी उठना और रात्रि को जल्दी सो जाना उत्तम स्वास्थ्य एवं स्वस्थ मस्तिष्क के लिए सर्वोत्तम माना गया है । महापुरुष, विचारक, लेखक, मनीषी और योगी प्रातः तीन-चार बजे उठ जाते हैं और पूरे दिन स्फूर्तिवान, प्रसन्नचित्त एवं सक्रिय रहते हैं । सूर्योदय से दो-तीन घण्टे पूर्व का समय ब्रह्ममुहूर्त कहा गया है । यह समय आध्यात्मिक साधना हेतु सर्वश्रेष्ठ होता है । अन्तरिक्षीय ब्रह्माण्ड की आध्यात्मिक एवं वैचारिक शक्तियाँ पृथ्वी के निवासियों को इस समय विशिष्ट अनुदान देती हैं । हिमालय के योगी अपनी श्रेष्ठ एवं सशक्त विचार और प्राण-शक्ति को जन-कल्याण के लिए सम्प्रेषित करते हैं । ब्रह्ममुहूर्त के समय को सात्विक भाव, विचार एवं कर्मों में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । यदि आलस्य-प्रमाद वश प्रातः जल्दी न उठा गया तो फिर बाद में तो और भी सुस्ती-उदासी आती है । दिव्य प्राण-शक्ति प्रवाह के तुरन्त पश्चात तमस् आता है । यह एक आध्यात्मिक तथ्य है ।

निद्रा की एक विशेष अवस्था में शरीर को सबसे अधिक विश्राम मिलता है । वह पूर्णतः निष्क्रिय-सा रहता है । माँसपेशियाँ पूरी तरह शिथिल हो जाती हैं । इस अवस्था को वैज्ञानिक भाषा में 'रैपिड आई मूवमेण्ट' कहते हैं । इस स्थिति में ई. ई. जी. द्वारा मस्तिष्कीय तरंगों का अंकन जागृत अवस्था की तरह होता है । योग निद्रा के अभ्यास में ऐसी अवस्था प्राप्त कर पूर्ण विश्राम का लाभ हर व्यक्ति उठा सकता है । योग निद्रा के अभ्यास से, तनाव से उत्पन्न प्राण सम्बन्धी असन्तुलन दूर होता है । अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में सन्तुलन होता है परिणामस्वरूप मानसिक विश्राम मिलता है ।

सूर्योदय के समय के आस-पास पीनियल ग्लैण्ड से 'सेरॉटानिन' नामक हारमोन का स्राव सर्वाधिक मात्रा में होता है । दिवास्वप्न का कारण इस स्राव को ही माना जाता है । सेरॉटानिन से सम्बन्धित एक अन्य मेलॉटानिन नामक हारमोन भी पीनियल ग्रन्थि से स्रवित होता है । यह हारमोन काम प्रवृत्तियों के नियन्त्रण का काम करता है । यह देखा गया है कि यह मेलॉटानिन हारमोन सुबह लगभग चार बजे तक तो काम-शक्ति पर नियन्त्रण रखता है बाद में दैनिक कार्यों को करने के लिए प्राण-शक्ति को प्रवाहित होने देता है । रात में पीनियल ग्रन्थि की विशेष सक्रियता से पिट्यूटरी ग्रन्थि से 'एड्रिनो कॉर्टिको ट्राफिक' हारमोन सन्देशवाहक की तरह एड्रीनल ग्रन्थि को उत्तेजित करता है । उस समय एड्रीनल से 'कार्टिकोस्टेरॉइड' हारमोन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्रवित होकर पूरे शरीर को शक्ति से भर देता है । उद्वेगों का प्रभाव शान्त हो जाता है । एड्रीनल से 'कॉर्टिकोस्टेरॉइड' का स्राव प्रातः चार बजे के लगभग सबसे अधिक तीव्रता से होता है । अध्यात्मवेत्ता ऋषियों ने, सूक्ष्मदर्शियों ने इसी कारण प्रातः ब्राह्ममुहूर्त से पूर्ण स्फूर्ति के साथ दिनचर्या प्रारम्भ करने का नियम बनाया । जीवनचर्या को सन्तुलित बनाने के लिए, मानसिक, आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रातः ब्रह्ममुहूर्त की उपासना, साधना सर्वोत्तम मानी गई है ।

औषधि विज्ञान शारीरिक व मानसिक तनाव से मुक्ति पाने हेतु जहाँ औषधियों का उपयोग बताता वहीं मनोविज्ञान के चिकित्सक एक प्रकार के शिथिलीकरण के रूप में 'आटोजेनिक न्यूट्रलाइजेशन' अथवा 'सिस्टेमेटिक डिजेन्सीटीजेशन' पद्धति इनमें मरीज को विश्राम की दशा में धीरे-धीरे अपनी गलतियाँ व अपराध मानसिक रूप से स्वीकार करने को कहा जाता है । भयभीत वातावरण का भी दृश्यावलोकन मानसिक चिन्तन के रूप में कराया जाता है । यह सभी एक प्रकार की शिथिलीकरण प्रक्रिया ही है । योगाभ्यासों में जो शिथिलीकरण का अभ्यास कराया जाता है, उसका मूल उद्देश्य शारीरिक व मानसिक तथा भावनात्मक तनावों से मुक्ति पाना ही है । शिथिलीकरण द्वारा रक्तचाप व हाइयोथेल्मस जैसी नर्वस सिस्टम की क्रियाओं पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाता है । इसी प्रकार हृदय रोगी का एक बार इलाज करने के उपरान्त पुनः दौरा न पड़े इससे बचाने के लिए शिथिलीकरण बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है । डॉक्टरों द्वारा आटोजेनिक प्रशिक्षण भी इसी लाभ के लिए दिया जाता है, यह भी एक प्रकार का योगाभ्यास ही है । हृदय रोग का मुख्य कारण मानसिक तनाव व चिन्ताएँ हैं, जबकि इन तनावों की मुक्ति का मार्ग शिथिलीकरण है ।

शारीरिक शिथिलीकरण से माँसपेशियों का तनाव दूर होता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है । उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति सुबह से शाम तक बिना विश्राम किए लगातार काम करता रहे तो प्रतीत तो ऐसा होगा कि वह कार्य पूरा कर रहा है, किन्तु यदि उसकी कार्यक्षमता को आंका जाय तो वह घटती ही प्रतीत होगी । इसके विपरीत यदि वही व्यक्ति मध्याह्न काल में विश्राम लेकर कार्य करना पुनः शुरू करे तो नई ताजगी के साथ वह पहले की अपेक्षा ज्यादा कार्य कर सकेगा । योग शास्त्रानुसार शिथिलीकरण अथवा योग निद्रा के द्वारा प्राण-शक्ति का संचय होता है । शिथिलीकरण द्वारा एडोनोसिन ट्राइफॉस्फेट (ए. टी. पी.) को शक्ति प्राप्त होती है । इसी ए. टी. पी. को हम प्राण-शक्ति कह सकते हैं । शिथिलीकरण का ए. टी. पी. पर प्रभाव जैव रसायन विज्ञानी भी मानते हैं ।

ई. ई. जी. द्वारा परीक्षण करने पर पाया गया कि शिथिलीकरण की दशा में अल्फा तरंगों का प्रभाव बढ़ जाता है, जबकि तनावपूर्ण स्थिति में बीटा तरंगों की बहुतायत होती है । अस्तु इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि योग निद्रा अथवा शिथिलीकरण की सरल एवं प्रभावशाली प्रक्रिया के द्वारा आजकल बढ़ रहे वर्षाती मेढ़कों के समान रोगों पर नियन्त्रण पाया जा सकता है ।

ऋषियों, मुनियों के अलावा अनेकों महापुरुष ऐसे हुए हैं जो या तो सोते नहीं थे या बहुत ही कम सोकर काम चला लेते थे । लक्ष्मण जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह १२ वर्ष तक सोये ही नहीं थे । गाँधी जी भी कई-कई दिनों तक लगातार जगते रहते थे । निःसन्देह शरीर को विश्राम की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु योग निद्रा के द्वारा चन्द मिनटों में यह आवश्यकता पूरी की जा सकती है और तरोताजा हुआ जा सकता है ।

जर्मन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जोहान वालगेंग वान-योयथे ने योग निद्रा का उपयोग अपनी प्रतिभा को विकसित करने में किया था । फ्रान्ज एन्टोन मेस्मेर ने (१७३४ से १८१५ ई.) तक योग निद्रा के माध्यम से अनेकों रोगियों को ठीक किया था । १८१५ ई. में जोसेफ फिलिप्स ने लिखा था कि "योग निद्रा में रोगी उन्मुनी मुद्रा में चला जाता है और उस समय दिए गए निर्देशों को ग्रहण करता है तथा बिना जगे ही सही उत्तर देता है और एक निश्चित समय पर तरोताजा होकर उठ जाता है ।" १८३१ ई. में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में मेस्मेर ने लिखा था कि "इस प्रयोग से अर्न्तदृष्टि प्राप्त हो जाती है, स्नायुविक दुर्बलता दूर होती है । स्मरण शक्ति तीक्ष्ण होती है, आशावादी दृष्टिकोण बढ़ता है, कल्पना शक्ति बढ़ती है तथा अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण होता है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फ्रांस का तानाशाह नेपोलियन घोड़े पर बैठे-बैठे ही १५-२० मिनट में अपनी नींद पूरी कर लेता था और चौबीसों घण्टे लगातार युद्ध संचालन करता रहता था ।

सेल्वाडोर डेली नामक प्रसिद्ध चित्रकार ने योग-निद्रा में इतनी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी कि कुछ सेकण्डों के अन्दर ही अपनी नींद पूरी कर लेता था । उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह हाथ में किसी धातु का टुकड़ा ले लेता था और उस धातु के हाथ से जमीन पर गिरने तक के समय में उसकी नींद पूरी हो जाती थी ।

औद्योगिक नगरों एवं कॉलोनियों में बसे व्यक्ति अत्यन्त व्यस्त जीवन-क्रम बिताते देखे जाते हैं । उनके चारों ओर के वातावरण में कोलाहल भरा रहता है । शोर के कारण तनाव से ग्रसित रहते हैं । काम के समय के अतिरिक्त समय विभिन्न चिन्ताओं, उद्विग्नताओं, घर-परिवार की देखभाल में बीतता है । मानसिक स्थायित्व न हो पाने से नींद भी ठीक से नहीं आती । विश्राम की आवश्यकता पूरी न हो पाने से व्यक्ति अनेकों शारीरिक, मनोशारीरिक व्याधियों से घिर जाता है । दवाइयों का अत्यधिक प्रयोग लाभकारी न होकर हानिकर सिद्ध होता है । सुख-साधन, सुविधाओं की दृष्टि से भौतिक प्रगति बड़ी तीव्र गति से बढ़ी है । आत्मिक प्रगति की न्यूनता से अनेकानेक समस्याएँ और उलझनें भी बढ़ी हैं । मनोरंजन के साधनों से तनाव में वृद्धि हो जाती है । न तो पर्याप्त शारीरिक व मानसिक श्रम कर पाते हैं और न नींद के समय उचित एवं पर्याप्त विश्राम मिल पाता है ।

यौगिक विश्राम एवं योगाभ्यास से शरीर व मन में शक्ति व स्फूर्ति का संचार होता है । योगाभ्यास की नियमितता से शरीर के अन्दर सूक्ष्म परिवर्तन होने लगते हैं । आदतों में परिष्कार हो जाता है । तनाव, चिन्ता, व्यग्रता आदि मानसिक विकारों से छुटकारा मिलता चला जाता है । विश्राम एवं सजगता में मन व शरीर पर नियन्त्रण बढ़ता है और व्यक्ति का जीवन उत्कृष्ट एवं परिष्कृत होता जाता है । योग द्वारा विश्राम की सरल विधियों का अभ्यास अत्यधिक कार्य व्यस्तता में भी किया जा सकता है । यहाँ तक कि कार्य के मध्य में भी विश्राम की प्राप्ति कर नव-स्फूर्ति और शक्ति अनुभव की जा सकती है ।

कार्य को भार न समझकर उसे सहज, सरल एवं रसानुभूति के भाव से किया जाय तो तनाव, चिन्ता, व्यग्रता से बिना प्रयास के ही मुक्त रहा जा सकता है । कार्य को ही साधना मानकर किया जाय, प्रतिफल की आशा किए बिना मनोयोगपूर्वक कर्म करने से कार्य-क्षमता, कुशलता आदि में अभिवृद्धि होती है । कार्य करते समय अन्तर्मौन, श्वास के प्रति जागरूकता द्वारा ध्यान की अवस्था का विकास हो जाने पर अपने अनुभवों के प्रति सचेत रहकर स्फूर्ति को निरन्तर रखा जा सकता है ।

कार्य करते समय थकान अनुभव होने पर विश्राम प्राप्ति एवं शक्ति-ग्रहण करने के लिए कुछ क्षण कार्य बन्द कर निम्न सरल प्रक्रियाएँ अपनाई जा सकती हैं—

खूब गहरी साँस लेते हुए उदर भाग तक को पूरा भरते हुए हाथों को ऊपर की ओर तान दें । कन्धों एवं भुजाओं की पेशियों पर खिंचाव पड़े । साँस लेते समय प्राण-शक्ति प्रवाह को भीतर प्रविष्ट हो ऐसी संचय होने की भावना करें तथा श्वास छोड़ने के समय यह चिन्तन करें कि तनाव, निराशाएँ, रोग चिन्ताएँ एवं समस्याएँ दूर हो रही हैं । भरपूर उदर श्वसन और श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग रहने से शान्ति एवं शिथिलता की अनुभूति होती है । शरीर व मन को पर्याप्त विश्राम मिलता है । इसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति कहीं भी कर सकता है । अभ्यास के बाद शक्ति, स्वास्थ्य की अनुभूति होने लगती है ।

'सोना, विश्राम करना एक कला है ।' साधारणतः स्वस्थ मनुष्य को छः घण्टे की नींद पर्याप्त होती है । योग निद्रा शरीर व मन को पूर्ण विश्राम की स्थिति में पहुँचाती है । इसके अभ्यास से शरीर, मन व भावनाओं के तनाव मिट जाते हैं । विश्राम एवं नींद के लिए तनाव रहित होना चाहिए । योग निद्रा के द्वारा व्यक्ति चेतना की गहराई में प्रवेश कर नवीन शक्ति एवं आनन्द पाता है । यह सोने और जागने की मध्यावस्था कही जा सकती है । शरीर पूर्ण विश्राम पाता है, मन जागरूक रहता है । उस स्थिति में मन का सम्बन्ध अचेतन एवं अर्द्ध-चेतन से हो जाता है एवं तनावों से मुक्ति, विश्राम की अनुभूति होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग निद्रा की विधि अति सरल है । इसे हर स्थिति का व्यक्ति सुविधानुसार किसी भी समय कर सकता है । फिर भी प्रातःकाल का समय नियमित अभ्यास के लिए उपयुक्त माना गया है । खुली हवा तथा रोशनी वाले स्थान हर योग साधना के लिए आवश्यक माने गए हैं । घुटन, सीलन, सड़न जहाँ रहती है वहाँ के अनुपयुक्त वातावरण में साधना का वह लाभ नहीं मिल पाता जो अभीष्ट है । खाली पेट यह साधना अधिक सफल होती है । यदि भोजन कर लिया हो तो एक दो घण्टे ठहर कर ही यह प्रयोग करना चाहिए ।

अभ्यास इस प्रकार है—समतल भूमि पर कम्बल बिछा कर चित्त लेट जाइये । हाथ और पैरों को सीधा रखें । आखें बन्द कर ली जायें ।

ध्यान किया जाय कि शरीर का प्रत्येक अंग शिथिल एवं निर्जीव हो रहा है । मन ही मन यह धारणा की जाय कि एक-एक करके सब अवयव निःचेष्ट होते चले जा रहे हैं । निद्रावस्था में शरीर में जो शिथिलता छाई रहती है, प्रायः वैसी ही स्थिति अंग-प्रत्यंगों की हो चली ।

शरीर के साथ-साथ मन के शिथिल होने की भी धारणा करनी चाहिए । निद्रा में मन की भाग-दौड़ बन्द हो जाती है । वह थक कर अपने को सब ओर से समेट लेता है और निद्रा की गोद में अचेत होकर गिर पड़ता है । न कोई चिन्ता रहती है, न इच्छा, न किसी से राग रहता है, न द्वेष । इसी स्थिति में स्वाभाविक नींद आती है । योग निद्रा के अवसर पर भी शरीर और मन को उसी स्थिति में पहुँचाने का संकल्पपूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है ।

योग निद्रा को श्वसन या शिथिलीकरण मुद्रा भी कहते हैं । श्वसन का तात्पर्य है मुर्दे जैसी स्थिति । शिथिलीकरण अर्थात् निःचेष्ट एवं निर्जीव जैसी शिथिलता उत्पन्न करना । अभ्यासपूर्वक यह स्थिति उत्पन्न की जा सकती है और जब चाहे तब नींद का आनन्द लिया जा सकता है । स्वाभाविक नींद का तो अपना महत्त्व है, पर इस योग निद्रा में संकल्प का समावेश रहने से उसकी ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जो शरीर को नींद का और मन को शान्ति सन्तुलन का दुहरा लाभ उत्पन्न कर सकने में समर्थ है ।

स्फूर्तिदायिनी योग निद्रा अभ्यास का अंग बने

अध्यात्म साधन, में जीवन शोधन के प्रयोग से आगे बढ़कर जिस अभ्यास को आरम्भ करना पड़ता है, उसका नाम है "शरीराभ्यास से निवृत्ति ।" चेतना शरीर में रहती है यह भी ठीक है । उसका उपयोग वाहन या उपकरण के रूप में होता चला आता है यह भी ठीक है । सभी जानते हैं कि चेतना की इच्छा आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए शरीर को ही विविध क्रिया-कलाप करने पड़ते हैं । इसलिए वह स्वामिभक्त सेवक भी है । इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि दोनों की सत्ता स्वतन्त्र है । चेतना का अस्तित्व अनादिकाल से है और अनन्त काल तक रहेगा, किन्तु शरीर के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है वह माता-पिता के संयोग से बनता है और नियत अवधि पूरी करके काल चक्र द्वारा ग्रस लिया जाता है । शरीर के मर जाने पर भी चेतना बनी रहती है और वह अपने कर्म विपाक के अनुसार नया चोला पहन लेती है । नये घोंसले में रहने लगती है ।

शरीर आत्मा का आज्ञानुवर्ती सेवक है, किन्तु है वह जड़ । उसे अपना निज का ज्ञान प्राप्त नहीं है । जड़ पंच तत्वों के सम्मिश्रण से गति ही उत्पन्न हो सकती है । ज्ञान के लिए एक पृथक उपकरण है जो चेतना और शरीर का सम्मिश्रण है । यह है—मन । मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है, क्योंकि उसमें शरीर की ज्ञानेन्द्रियों के प्रति प्रमुख आकर्षण रहता है । इन्द्रियों के स्वाद उसे लुभाते हैं । फलतः चेतना का यह स्थूल भाग उन्हीं का अनुकरण करने लगता है । इन्द्रिय भोगों का बाहुल्य संचित करने और उनके उपभोग में सहायक संयोगों की प्राप्ति उसकी सहज लिप्सा बनी रहती है । इन्हीं को लोभ, मोह और अहंकार कहते हैं । यह मन के भौतिकवादी विशेषण हैं । इन्द्रिय जन्य विलासिता शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के आधार पर चली है । निमित्त काया में कान, नेत्र, जिह्वा, नासिका एवं त्वचा का निर्माण हुआ है । कामुकता त्वचा क्षेत्र के अन्तर्गत आती है । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन इन्हीं का मन्त्रिमण्डल जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तन्त्र के ऊपर प्रायः पूरी तरह हावी बना रहता है और जैसा चाहता है वैसे कर्म कराता है ।

चेतना का स्वरूप आनन्द एवं लक्ष्य भिन्न है । जागृत अवस्था में वह उनकी आवश्यकता भी अनुभव करती है । अपूर्णताओं को पूर्ण करने, कुसंस्कारों से मुक्ति पाने और अपने अन्तःकरण को देवोपम बनाने की प्रथम आकांक्षा चेनता की है । दूसरी इच्छा है नियन्ता के इस विश्व उद्यान को अधिकाधिक समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में अधिकाधिक योगदान करने की । यह दोनों आकांक्षाएँ प्रायः दबी रह जाती हैं । इन्हें जगाने हेतु वस्तु स्थिति को समझना तथा शरीर और आत्मा के स्वार्थों को पृथक करना जरूरी है । व्यामोह में न फँसना, सेवक को स्वामी न बनने देना, अपने को दासानुदास की स्थिति में पड़कर जीवन का अपव्यय न होने देना, यह सब तभी सम्भव है, जब शरीरगत मन और आत्म-चेतना के पृथकीकरण का अभ्यास कर लिया जाय । इतना बन पड़ने पर ही भौतिक आकर्षणों का दबाव घटता है और आत्मा अपने स्वरूप और लक्ष्य को समझते हुए स्रष्टा की इस अनुपम धरोहर का उचित उपयोग कर सकने में समर्थ होती है ।

यह प्रथकता मरण के समय अनुभव होती है, जब शरीर चला जाता है । उसकी बाल क्रीड़ाओं में निरत रहने का स्मरण आता है और भविष्य को अँधेरे में धकेल देने वाला बोझ ऊपर लदा होने से भारी त्रास देता है । तब पश्चात्ताप और प्रायाश्चित का समय भी निकल चुका होता है ।

इस स्थिति में दुर्गति से बचने के लिए प्रथम उपाय है कि शरीर की और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करना । मृत्यु के उपरान्त की लम्बी अवधि में आने वाली परिस्थितियों के सम्बन्धों में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय ।

प्रज्ञा योग की दैनिक साधना में प्रायः बिस्तर से उठते ही नये जन्म की और सोते समय मरण की उपमा निद्रा के साथ देने की विभा समझाई जाती है, पर वह भी थोड़े दिन में एक ढर्रा बन जाती है । चिन्तन होता रहता है, पर अन्तराल की गहराई तक वह प्रकाश नहीं पहुँचता ।

इस अभ्यास को गम्भीर एवं अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए शिथिलीकरण मुद्रा का अभ्यास करना पड़ता है । इसे शवासन भी कहते हैं, दिन में एक बार इसे जरूर कर लेना चाहिए, मन जब भी हल्का हो, व्यस्तता और उत्तेजना जिस समय कम हो उसी को इस निमित्त निर्धारित कर लेना चाहिए और फिर उस समय को इस प्रयोजन के लिए नित्य ही नियमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

जमीन या समतल तख्त पर चित्त लेटना चाहिए । तीन बार लम्बी साँस खींचनी-छोड़नी चाहिए और भावना करनी चाहिए कि चंचलता, व्यग्रता हल्की हो गई । अब शरीर और मन को इस स्थिति में पहुँचने के लिए संकल्प बल का प्रयोग करना चाहिए, मानो निद्रा आ गई । शरीर के एक-एक अवयव को शिथिल हो जाने की भावना करना चाहिये । हाथ, पैर, गर्दन आदि भारी हो गए वे उठाये नहीं उठते, चलाये नहीं चलते । मन भी योग निद्रा की स्थिति में चला गया, उसमें भी कोई संकल्प-विकल्प नहीं उठ रहे । नींद जैसी गहरी खुमारी आ रही है ।

इसके उपरान्त चेतना को शरीर में से उस प्रकार निकालकर ऊँचा उठा देना चाहिए मानो पक्षी घोंसला खाली छोड़कर ऊपर उड़ गया है । अनुभव करना चाहिए कि शरीर मृतक पड़ा है । आत्मा जीवन्त है और आकाश में उड़ते हुए अथवा किसी ऊँचे वृक्ष पर बैठकर उस विछोह का अनुभव कर रही है । शरीर अलग है और आत्मा अलग । वह पुराने कपड़े या जूते की तरह था, जिसे छोड़ दिया गया । अब अपना सूक्ष्म अस्तित्व जो रह गया । वही वास्तविक "स्व" है—जीवात्मा ।

जीवात्मा स्वामी है । शरीर सेवक था । जीवन आत्मा को सौंपा गया है और उसी के कंधे पर यह दायित्व था कि शरीर और मन को उन ऊँचे उद्देश्यों के लिए लगाये जिसके लिए यह बहुमूल्य धरोहर मिली थी । शरीर रूपी वाहन पर लगाम रखी जाय । उसे किसी भी दिशा में स्वच्छन्द विचरने का अवसर न दिया जाय—न शरीर को न मन को । चेतना को ही यह निश्चय करना है कि इस उपकरण समुच्चय का कहाँ उपयोग करे और किसी गलत कदम उठने पर तुरन्त रोक दे । इस मनः स्थिति में न्यूनतम पन्द्रह मिनट अपने को पड़ा रहने देना चाहिए और सुविधानुसार इसे बढ़ाते हुए आधे घण्टे तक पहुँचा देना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बायोफीडबैक रूपी यन्त्रों के बजाय यदि स्वतः स्व-संकेतों से स्वयं को तनाव रहित किया जा सके तो इससे बढ़कर क्या हो सकता है ?

शवासन शरीर और मन की थकान और तनाव को दूर करने का प्रयोजन पूरा करता है । धीरे-धीरे चेतना को लौटाते हुए शरीर को सजग करता है । शवासन के बाद धीमी गति से ही शरीर को उठाने का प्रयत्न करना चाहिए । इससे शारारिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ही स्तर पर एक नई चेतना, नई स्फुरणा प्राप्त होती है ।

ब्रह्मवर्चस साधना के कुछ सहयोगी आसन-व्यायाम

साधना के अन्तर्गत लिए गए योगाभ्यासों का उल्लेख पिछले पृष्ठों पर किया जा चुका है । योगी साधक को अपने महान लक्ष्य के लिए उन्हें अनिवार्य रूप से अपनाना होता है । इसके अतिरिक्त योगाभ्यास की कुछ ऐसी क्रियाएँ भी प्रचलित हैं जिन्हें न तो अनिवार्य कह सकते हैं और न निरर्थक । उन्हें यौगिक क्रियाओं के रूप में मान्यता प्राप्त है तथा उनका समुचित अभ्यास एक सीमा तक साधक को सुनिश्चित लाभ पहुँचाता है । वे हैं आसन, प्राणायाम, बन्ध एवं मुद्राएँ । इसी सहयोगी शृंखला में है साधक का आहार । इसके अन्तर्गत उपवास एवं दिव्य औषधियों का प्रयोग भी आता है ।

उपरोक्त सभी प्रक्रियाएँ साधक के लिए उपयोगी हैं, पर इन्हें आवश्यकता से अधिक महत्त्व भी नहीं दिया जाना चाहिए । साधना समग्र एवं सन्तुलित होनी चाहिए, बहुधा देखा जाता है कि साधक किसी एक पक्ष से अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं । उस स्थिति में एक को उचित से अधिक महत्त्व देने लगते हैं, जो स्वभावतः दूसरे उपयोगी पक्षों की उपेक्षा होने लगती है । ऐसा बहुधा इसलिए भी हो जाता है कि जिज्ञासु साधक केवल पुस्तकों से पढ़कर साधनाएँ प्रारम्भ करना चाहते हैं । समग्र साधना का सन्तुलन बनाकर पुस्तकें कम ही लिखी जाती हैं । किसी एक पक्ष, एक प्रक्रिया की पुस्तक में स्वाभाविक रूप से उस पक्ष के सम्बन्ध में कुछ अतिरंजित प्रतिपादन रहते हैं । उन्हीं से प्रभावित होकर साधक किसी एक पक्ष को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे जाते हैं ।

इस प्रकार के भटकाव का एक और भी कारण होता है, वह है किसी कथित सिद्धि विशेष के प्रति उद्यत आग्रह । लोग सामान्य चर्चाओं में किन्हीं विशिष्ट सिद्धियों के नमक-मिर्च लगाकर अनेक विवरण सुनते रहते हैं । कई बार सुनने और उन्हें चिंतन में स्थान मिलने से उनके प्रति मोह पैदा हो जाता है । ऐसी स्थिति में साधक योग साधना के प्रमुख उद्देश्य को जाने बिना ही उस सिद्धि विशेष के लिए योग साधना प्रारम्भ करना चाहता है । उसे जब किसी क्रिया विशेष का अतिरिक्त वर्णन मिलता है तो वह उसे अपने मोह के कारण पत्थर की लकीर मान लेता है । ऐसा साधक प्रथम तो साधना के शाश्वत् नियमों, सिद्धान्तों को जानता ही नहीं, यदि कोई उसे बतलाये भी तो पूर्वाग्रह ग्रस्त होने के कारण वह उसे मान नहीं पाता ।

योग साधनाओं के नाम पर आजकल जो कुछ सीखा-सिखाया एवं किया-कसया जा रहा है, उसमें अधिकांश ऊपर वर्णित स्तर एवं स्थिति की परिधि में आते हैं । कोई मात्र आसन शिथिलीकरण को, कोई किंचित से ध्यान एवं प्राणायाम को ही समग्र योग साधना की संज्ञा देकर उसी में लगे दिखते हैं । उन्हीं आधारों पर समाधि और कुण्डलिनी जागरण जैसी दुर्लभ सिद्धियों, उपलब्धियों का राग अलापने, बाल-विनोद से मन भरते दिखाई देते हैं । उनमें ईमानदारी से क्रमिक चरण बढ़ाकर बसने वालों का एकदम अभाव है ऐसा तो नहीं, किन्तु भटकाव में भटकने वालों की संख्या भी बेहिसाब है ।

ब्रह्मवर्चस साधना के साधक को सन्तुलित साधना क्रम में दीक्षित प्रवृत्त करने की पूरी सावधानी बरती जाती है । इसलिए विशिष्ट साधनाओं के साथ सहयोगी साधनाओं का भी विवेकपूर्ण, संतुलित समावेश इस साधना में रखा जाता है । न तो उन्हें उपेक्षा के गर्त में पड़ा रहने दिया जाता है और न अत्यधिक महत्त्व मिलने दिया जाता है । साधना प्रशिक्षण के क्रम में हर साधक की स्थिति के अनुरूप सहयोगी साधनाएँ उनके लिए निर्धारित कर दी जाती हैं । फिर भी इन साधनाओं का सर्वोपयोगी; सुलभ स्वरूप यहाँ समझाया जा रहा है । जिन्हें उन विषयों का थोड़ा-बहुत ज्ञान पहले से है, वह इन्हें पढ़कर भी कर सकते हैं । जिन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिल्कुल जानकारी नहीं है वे किसी थोड़े जानकार के सहयोग से इन्हें समझ और कर सकते हैं ।

आसन सिद्धि

साधना में आसनों का दोनों प्रकार का सम्बन्ध है—प्रत्यक्ष भी और परोक्ष भी । प्रत्यक्ष इसलिए कि साधना किसी न किसी आसन में बैठकर ही की जाती है । अधिकांश साधनाओं में मेरुदण्ड सीधा रखा जाता है । इसके लिए साधक को कोई आसन ठीक इसी प्रकार आना भी चाहिए तथा उसका अभ्यास भी होना चाहिए । ठीक प्रकार से आसन को समझकर उसे लगा लेना आसन शुद्धि कहलाती है और जितनी देर साधना करनी है उतनी देर बिना कष्ट के एक ही आसन में बैठे रहने के अभ्यास को आसन सिद्धि कहते हैं । आसन शुद्ध होना हर हालत में आवश्यक है । आसन सिद्धि जब तक नहीं होती, तब तक साधना के बीच में शान्ति से आसन बदल लेने में कोई हानि नहीं ।

साधना के समय सामान्यतः लोग सुखासन में ही बैठते हैं । वैसे इस प्रयोजन के लिए सुखासन के अतिरिक्त स्वस्तिकासन, सिद्धासन, पद्मासन एवं वज्रासन आदि भी उपयुक्त रहते हैं । कुछ विशेषज्ञों का मत है कि सिद्धासन ब्रह्मचारियों के लिए अधिक उपयुक्त है । गृहस्थों को उसका अभ्यास आधा घण्टे से अधिक न करना ही उचित है । वैसे इनमें से किसी भी आसन में साधनाएँ सुविधापूर्वक की जा सकती हैं ।

आसनों का साधना से परोक्ष सम्बन्ध है । व्यायाम के नाते व्यायाम की अनेक रीतियाँ प्रचलित हैं । सभी से स्वस्थ एवं आरोग्य मिलता है, किन्तु आसनों को यौगिक व्यायाम के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है । अन्य व्यायाम पद्धतियों की अपेक्षा आसन योग साधकों के लिए अधिक उपयुक्त व्यायाम माने जाते हैं । आसनों द्वारा शरीर के व्यायाम की आवश्यकता की पूर्ति के साथ-साथ, शरीरस्थ विकारों को बलपूर्वक शरीर से निष्कासित करने की विशेष क्षमता है । इसी के साथ शरीर की विभिन्न महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों को यह सीधे प्रभावित कर सकती है । इनके समुचित प्रयोग से शरीर की चय-उपचय प्रक्रिया तथा हारमोन्स आदि रसों के स्राव को नियन्त्रित, प्रभावित किया जाना सम्भव है । इनकी इसी विशेषता के कारण इन्हें चिकित्सा प्रक्रिया का अंग भी मान लिया गया है । योग साधनाओं द्वारा शरीरस्थ केन्द्रों, उपत्यिकाओं को जागृत एवं सक्रिय करने में आसनों से उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त हो सकता है । यह तथ्य अब विभिन्न शोध प्रयोगों द्वारा प्रकट हो चुके हैं ।

अस्तु ब्रह्मवर्चस साधना के साधकों से अपेक्षा की जाती है कि वे आसन-व्यायाम थोड़ा ही सही, पर नियमित करें । जो लोग पहले से आसन करते हैं वे अपने ढंग से करते रह सकते हैं । जिन्हें पहले से अभ्यास नहीं है, वे सुगम आसनों से यह क्रम प्रारम्भ कर सकते हैं । रुचि और समय को देखते हुए उनका अभ्यास क्रमशः बढ़ाया जा सकता है । प्रारम्भ में यदि कोई आसन शुद्ध रूप में नहीं बने तो, जितने अंशों में बने उतना करते हुए क्रमशः शुद्ध स्थिति तक जाया जा सकता है । अनुभव के आधार पर प्रारम्भिक, सुगम, माध्यमिक एवं कठिन आसनों के कुछ नाम यहाँ दिए जा रहे हैं ।

सरल अभ्यास क्रम में वज्रासन, सिद्धासन, पादास्तासन, पश्चिमोत्तान आसन, अर्द्धशलभासन, ताडासन, शवासन आदि आते हैं इन्हें नये साधक, दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति, पुरुष, महिलाएँ सभी निरापद रूप से कर सकते हैं ।

माध्यमिक अभ्यास क्रम में अर्द्धमत्स्येन्द्रासन शलभासन, धनुरासन, हलासन, गरुड़ासन जैसे आसन किए जा सकते हैं । प्रारम्भिक अभ्यास से जिनके शरीर में कुछ लचीलापन आ गया हो और कुछ तनाव सह सकते हों, ऐसे व्यक्ति इन्हें कर सकते हैं ।

कठिन अभ्यास क्रम में चक्रासन, जानुशिरासन, गर्भासन, बद्ध पद्मासन, सर्वांगासन, शीर्षासन आदि आते हैं । जिन्हें पहले से व्यायाम का पर्याप्त अभ्यास हो, शरीर सुदृढ़ एवं लचीला हो वे ही इस कठिन अभ्यास क्रम को अपना सकते हैं ।

आसनों की उपयोगिता एवं औसत व्यक्ति की सुविधाओं को ध्यान में रखकर आसन मुद्राओं पी. टी. आदि को मिलाकर कुछ ऐसे व्यायाम बना दिए गए हैं जो सभी के लिए सुगम भी हैं और आसन व्यायाम के प्रयोजन की पूर्ति भी करते हैं । सूर्य नमस्कार उन्हीं में से एक है । ऐसी और भी कई उपयोगी शृंखलाएँ प्रचलित हो गई हैं । ब्रह्मवर्चस साधकों के लिए ऐसी छोटी-छोटी तीन शृंखलाएँ बनाई गई हैं । गहन अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के आधार पर बनी यह शृंखलाएँ हर किसी के लिए सुगम और अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं । आसनों के भिन्न-भिन्न प्रयोग अलग पुस्तक 'आसन और प्राणायाम' में दिए गए हैं कोई पढ़ना चाहे तो उसे भी पढ़ सकते हैं ।

क्र. १ :—(क) सीधे खड़े हों । हाथ ऊपर उठायें । सिर भी ऊपर उठायें । श्वास खीचें और पैर की एड़ियाँ उठाते हुए हाथों सहित पूरे शरीर को पूरी शक्ति से ऊपर की ओर खिंचाव पैदा करें । (ताडासन की स्थिति) श्वास रोके रहना सुविधापूर्वक २-४ सेकण्ड इस स्थिति में रुकें ।

(ख) धीरे से श्वास निकालते हुए कमर से सामने की ओर झुकें । घुटने सीधे खिंचे हुए रखें । हाथ की अँगुलियों से पैर के अँगूठे छूने का प्रयास करें । यह बन जाय तो सिर को घुटनों से छुलाने का प्रयास करें ।

(ग) श्वास खींचते हुए सीधे खड़े हों । हाथ नीचे स्वाभाविक स्थिति में रहें । इसी स्थिति में हाथ कोहनी से मोड़े बगैर खिंचे हुए पीछे की ओर ले जावें । इसी के साथ गर्दन ऊपर उठाकर गहरी श्वास लें । १-२ सेकण्ड रुक कर स्वाभाविक स्थिति में आ जावें ।

यही क्रम प्रारम्भ में ४-५ बार दुहरावें, फिर क्रमशः बढ़ावें ।

क्र. २ :—(क) दोनों पैरों के पंजे और घुटने पंजे मिलाकर, घुटने मोड़कर पंजों पर बैठ जावें (वज्रासन की तरह) । हाथ ऊपर उठाकर श्वास खींचते हुए कमरे जितनी पीछे झुका सकें झुकावें ।

(ख) श्वास निकालते हुए आगे की ओर झुकें । पूरे झुककर हथेलियों सहित, कोहनी तक हाथ धरती से सटा दें । सिर भी जमीन से छू जाय (शशांक आसन की तरह) ।

(ग) हथेलियाँ जमीन से सटाये रखें । कोहनियाँ उठाकर हाथों पर वजन लें । पंजे जमीन पर उसी स्थान पर रखे रहकर घुटने सीधे करते हुए शरीर को आगे बढ़ायें और कोहनियाँ सीधी करते चलें (डण्ड लगाने की तरह) कोहनी सीधी हो जाने पर श्वास खींचते हुए गर्दन ऊपर खींचे, रुकें (भुजंगासन की तरह)

प्रारम्भ में यह क्रम भी ४-५ बार दुहरावें ।

क्र. ३ :—(क) धरती पर बैठें । पैर सामने की ओर सीधे करें, घुटने जमीन से उठें नहीं । पैरों को सुविधापूर्वक जितना अधिक फैला सकें फैलावें । हाथ भी कन्धों की सीध में फैला दें ।

(ख) हाथ फैले रखते हुए ही कमर घुमाकर बाएँ हाथ से दाएँ पैर का पंजा छूने का प्रयास करें ऐसा करते हुए गर्दन उल्टी दिशा में घुमाकर बाएँ पैर का पंजा देखें ।

(ग) अब स्थिति बदलें । कमर घुमाते हुए दाएँ हाथ से बाएँ पैर का पंजा छूने का प्रयास करें तथा गर्दन घुमाकर दाएँ हाथ का पंजा देखें ।

यह क्रिया मध्यम गति से १ मिनट तक दुहराते रहें । श्वास स्वाभाविक रूप से चलने दें ।

यह तीनों क्रियाएँ थोड़े अभ्यास से हर स्थिति के पुरुष एवं महिलाओं के लिए साध्य है । शक्ति एवं सुविधानुसार इन्हें क्रमशः बढ़ाया जा सकता है ।

योगासनों से विभिन्न व्याधियों का उपचार

दिल के दौरे से बचने का सबसे बढ़िया व सशक्त साधन योगाभ्यास है—यह कथन है जे. जे. अस्पताल समूह के एसोसियेटेड, प्रोफेसर डॉ. अशोक तिलपुले का । हृदय रोग पर योगाभ्यास के लम्बे अध्ययन के उपरान्त डॉ. अशोक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं ।

अपने अध्ययन के दौरान उन्होंने देखा, कि जिन रोगियों ने लगातार पाँच वर्ष तक योगाभ्यास किया, उनमें से मात्र सात प्रतिशत को ही इस दौरान दूसरा दौरा पड़ा, जबकि प्रायः २० से ३० प्रतिशत रोगियों में दूसरा दौरा पड़ता देखा जाता है ।

बम्बई में आयोजित एक संगोष्ठी में उन्होंने उपरोक्त जानकारी दी, साथ ही यह भी बताया कि योगाभ्यास को शारीरिक व्यायाम नहीं मानना चाहिए न ही उसे अन्यमनस्कता पूर्वक जैसे-तैसे मात्र रुटीन पूरा करने की तरह करना चाहिए, वरन् उल्लासपूर्वक तद्नुरूप विचारणा भावना के साथ किया जाना चाहिए, तभी उसका अधिकतम लाभ भी मिल सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग के माध्यम से कोई भी रोगी अपने शरीर का निरीक्षण-पर्यवेक्षण करना सीखकर शरीरगत कमियों व बीमारियों का पता लगा सकता है तथा अपनी प्राण शक्ति के द्वारा उन्हें ठीक भी कर सकता है ।

वैज्ञानिक योग-क्रिया का अब फिजियोलॉजिकल, न्यूरो फिजियोलॉजिकल तथा साइकोलॉजिकल धरातल पर अध्ययन कर रहे हैं, जो कि रोगी के स्पाइनल कॉर्ड की क्षति से बहुत गहन रूप से सम्बद्ध है । योगिक-क्रिया से इस प्रकार की क्षति ठीक हो जाती है तथा माँसपेशियों को भी आराम मिलता है ।

इससे चयापचय दर भी ठीक रहती है तथा प्राण-ऊर्जा का संरक्षण भी होता रहता है, जिससे शरीर की सारी क्रियाएँ भली प्रकार व सामंजस्यपूर्ण रीति से होती रहती हैं ।

इस सिलसिले में मुद्रा और प्राणायाम भी काफी सहायक सिद्ध होते हैं । कषाय-कल्मषों को हटाकर प्रसुप्त केन्दों को जागृत करने में उनकी उल्लेखनीय भूमिका रहती है ।

इनके द्वारा कम खर्च पर विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ दूर की जा सकती हैं । इन्हीं में से एक है स्पाइनल कॉर्ड सम्बन्धी शिकायत, इनके नियमित अभ्यास से इसमें काफी आराम मिलता है । पारान्लेजिक्स रोगी भी इससे लाभ उठा सकते हैं । पारान्लेजिया रोग में योग क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य होता है—अवरुद्ध अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को उचित परिमाण में रक्त की आपूर्ति करना, ताकि वे सामान्य ढंग से क्रियाशील रह सकें और स्पाइनल कॉर्ड को ठीक कर सकें ।

खेलों एवं फिजियोथेरेपी का तो अपना महत्त्व है ही, किन्तु ये योग क्रियाओं का स्थानापन्न कदापि नहीं बन सकते । अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के अनुसार योग-साधनाओं का शरीर, मन और आत्मा तीनों पर प्रभाव पड़ता है, जबकि व्यायाम और खेलों के प्रभाव मात्र शरीरगत होते हैं ।

हमारे ग्रन्थि तन्त्र ही जीवनी शक्ति के सम्प्रेषक हैं । स्पाइनल कॉलम द्वारा यह सम्प्रेषण कार्य रूप में परिणत होता है । योगिक क्रियाओं से जीवनी शक्ति की मात्रा और स्तर हमारे शरीर में शनैः-शनैः बढ़ती जाती हैं । जब इनके द्वारा रक्त संचरण की क्रिया सही हो जाती है तो इससे ग्रन्थियों की अक्षमता भी दूर हो जाती है और स्वास्थ्य में सुधार होने लगता है ।

सुषुम्ना सम्बन्धी रोग एवं हृदय के दौरे पड़ने की तरह ही एक दूसरी व्यथा है—रक्तचाप का बढ़ना-घटना । रक्त की गति स्वाभाविक न रहकर जब तीव्र या अति मन्द हो जाती है तब उसे हाई ब्लड प्रेशर या लो ब्लड प्रेशर कहते हैं । दोनों ही स्थितियों में रोगी की बेचैनी बढ़ जाती है । हाई ब्लड प्रेशर में वह उत्तेजित होता है तो लो ब्लड प्रेशर में बेहद थका हुआ, अशक्त, लुंज-पुंज हो जाता है । बेचैनी दोनों ही स्थितियों में रहती है और गहरी नींद नहीं आती । पाचन भी गड़बड़ा जाता है ।

चिकित्सा उपचार तो अनेकों चिकित्सा प्रणालियों में अनेक प्रकार के हैं, पर आत्मिक उपचारों में सरलतम है—करवट बदल लेना । इसी को स्वर परिवर्तन भी कहते हैं ।

दाहिना स्वर चलने पर शरीर में गर्मी बढ़ जाती है और बायाँ चलने पर शीतलता की मात्रा अधिक रहती है । यह स्वर बदलना अपने हाथ की बात है । कुछ देर बाएँ करवट सोते रहने पर दाहिना स्वर चलने लगेगा । इसी प्रकार दाहिने करवट से सोने पर बाँया चल पड़ेगा । स्वर परिवर्तन के साथ ही शरीर में सर्दी-गर्मी की घट-बढ़ होने लगती है ।

हाई ब्लड प्रेशर में गर्मी और 'लो' में शीतलता का अनुपात अधिक हो जाता है । इसे सन्तुलित बनाने के लिए करवट बदलकर लेटे रहने और शरीर को तनाव रहित शिथिल बना लेने की प्रक्रिया ऐसी है जिसमें लाभ तुरन्त होता है और किसी भी चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इसमें कोई खतरा नहीं है ।

यों आसन और प्राणायाम की अपनी चिकित्सा पद्धति है । उसके माध्यम से शारीरिक और मानसिक रोगों से भी छुटकारा पाया जा सकता है । उनकी अधिक जानकारी कभी शान्ति-कुंज हरिद्वार आकर प्राप्त की जा सकती है ।

साधारणतया दोनों प्रकार के ब्लड-प्रेशरों में वृषभासन—शिथिलासन से अधिक लाभ होते देखा गया है । इसी प्रकार सर्वांगासन सभी प्रकार की मेरुदण्ड सम्बन्धी, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों सम्बन्धी विकृतियों के लिए उत्तम है । यदि उचित मार्ग-दर्शन में यह सब कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना, भले ही अल्पावधि के लिए ही सही, सम्भव हो सके तो बीमारी से मुक्ति सम्भव है । यहाँ फिर यह ध्यान रखना चाहिए कि यह स्थूल उपचार वाला, व्यायामपरक "योगा" भर है, वह ध्यानयोग नहीं जो अध्यात्म पथ पर व्यक्ति को आगे बढ़ाता है ।

सूक्ष्म उपत्यिकाओं व नाड़ी गुच्छकों का जागरण योगासनों से

शारीरिक स्वस्थता और अस्वस्थता हाड़-माँस की देह में प्रकट और प्रत्यक्ष होती दीखती है । इतने पर भी तथ्य यह है कि इसका मूल कारण न तो काया में निहित है, न किसी अन्य स्थूल अवयव में । अध्यात्म विद्या के विशेषज्ञ जानते हैं कि जिस स्थूल शरीर को हम सजाने, सँवारने और सुधारने का प्रयत्न करते रहते हैं, वास्तव में वह पर्याप्त नहीं है । उसे आवश्यक तो कहा जा सकता है, पर सम्पूर्ण नहीं । उसकी परिपूर्णता स्थूल के मूल में निहित सूक्ष्म के सुधार-परिष्कार में है । समग्र स्वास्थ्य का यही मूलाधार है ।

अध्यात्म विज्ञानियों के अनुसार हमारे समस्त शरीर में नाड़ियों का एक प्रकार का जाल बिछा हुआ है । यह कंद के स्थान से निकल कर पूरी काया में फैली हुई हैं । इनकी संख्या ७२ हजार बताई जाती है । योगियों का कहना है कि स्वास्थ्य की वास्तविक कुंजी यही है । उपचार इन्हीं का होना चाहिए । जो रोग की जड़ में जीवाणुओं और विषाणुओं को कारण भूत मानते हैं, विशेषज्ञों के अनुसार वे भूल करते हैं, इसका आधारभूत कारण नाड़ी सम्बन्धी विकृति में अन्तर्निहित है । इस विकृति के फलस्वरूप शरीर में व्याप्त प्राण जर्जर हो जाता है, जिसके कारण काया में रोगाणु यत्र-तत्र अपना अड्डा बना लेते हैं और पलते-बढ़ते रहते हैं । इनका उपचार तो होना चाहिए, पर वास्तविक निमित्त की यदि उपेक्षा की गई, तो उक्त उपाय बहुत कारगर सिद्ध हो सकेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता । इससे अस्थाई लाभ मिल सकता है, पर सम्पूर्ण नहीं और इलाज के रुकते ही लक्षण पुनः प्रकट होने लगते हैं । इसीलिए वे इन सूक्ष्म मर्मस्थलों के संशोधन की बात बार-बार कहते पाये जाते हैं ।

साधना विज्ञानियों का कहना है कि नाड़ी-जाल देह में "नाड़ी गुच्छक" के रूप में फैला होता है । इन्हें अध्यात्म की भाषा में "उपत्यिका" कहते हैं । इनकी कई जातियाँ हैं । कई स्थानों पर ज्ञान तन्तुओं जैसी बहुत पतली नाड़ियाँ परस्पर चिपकी रहती हैं । कई बार यह रस्सी की तरह आपस में लिपटी और बँटी होती हैं । कई स्थानों पर गुच्छक गाँठ की तरह ठोस गोली जैसे बन जाते हैं । कितनी ही बार यह साँप की तरह समानान्तर लहराते हुए चलते हैं । अनेक जगहों में इनसे बरगद की भाँति शाखा-प्रशाखाएँ निकलती दिखाई पड़ती हैं । कितने ही अवसरों पर अनेक प्रकार के गुच्छक परस्पर मिलकर एक घेरे का निर्माण कर लेते हैं । इनके रंग और आकार में जाति के हिसाब से अन्तर पाया जाता है । "षड्न्मय महारत्न" में ग्रन्थकार ने लिखा है कि यदि सूक्ष्म स्तर का गहन अनुसंधान किया जाये, तो इन सूक्ष्म नाड़ी गुच्छकों के तापमान, अणु, परिभ्रमण एवं प्रतिभापुंज में स्फुट अन्तर दिखाई पड़ने लगेगा ।

शरीर शास्त्री इन गुच्छकों के कार्य और स्वभाव का कोई विशेष परिचय अब तक प्राप्त नहीं कर सके हैं, पर अध्यात्मवेत्ताओं का मत है कि यह उपत्यिकाएँ शरीर में अन्नमय कोश की बन्धन ग्रन्थियाँ हैं । यह अन्नमय कोश वस्तुतः है क्या ? इसे भली-भाँति समझ लेना आवश्यक है । इस रहस्य को स्पष्ट करते हुए "मृगेन्द्र आगम" में शास्त्रकार लिखते हैं कि वास्तव में इस रक्त-माँस के कलेवर को अन्नमय कोश समझने की जो आम धारणा है, वह सही नहीं है । यह माँस पिण्ड अन्नमय कोश के अन्तर्गत तो है, पर उसे ही अन्नमय कोश समझ लेना उचित नहीं । यदि यही अन्नमय कोश होता, तो मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा को स्वर्ग-नरक, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी जैसी सुखद और दुःखद स्थितियों की अनुभूति नहीं होनी चाहिएं, पर मरणोत्तर जीवन में ऐसा होता देखा जाता है । स्पष्ट है कि अन्नमय कोश शरीर का संचालक, कारण, उत्पादक, उपभोक्ता आदि तो है, पर उससे पृथक भी है । इस पृथक आपे में जब गड़बड़ी आती है, तो उसकी स्थूल सत्ता भी लड़खड़ाने लगती है और रुग्ण बन जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । ऐसे शरीर की उपत्यिकाएँ भी रोगग्रस्त हो जाती हैं । उपत्यिकाएँ अन्नमयकोश से सम्बद्ध हैं । इसलिए इनकी विकृति को जानकर अन्नमय कोश के विकास को समझा जा सकता है ।

उल्लेखनीय है कि पशु-पक्षी उतने बीमार नहीं पड़ते जितने कि मनुष्य बीमार पड़ते देखे जाते हैं । इसकी गहराई में जाने से एक ही प्रधान कारण दिखाई पड़ता है, वह है—मानव का प्रकृति के विरुद्ध आचरण । जीव-जन्तु प्रकृति-प्रेरणा से कार्य करते तथा प्रकृति के अनुरूप व्यवहार करते हैं, इसलिए यदा-कदा ही बीमार पड़ते देखे जाते हैं, जबकि मनुष्यों के अधिकांश कार्य प्रकृति के विपरीत होते हैं । इस विपरीतता से भीतर और बाहर का तारतम्य बिगड़ता है और असम्बद्धता पैदा होती है । दोनों स्तरों पर सम्बद्धता नहीं रह पाने के कारण तरह-तरह के रोग उपजते और व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में लेते रहते हैं । अन्नमय कोश में असम्बद्धता पैदा होने का सबसे प्रमुख कारण आहार-दोष है । अन्न यदि विकारग्रस्त, प्रकृति के विरुद्ध, अनीति उपार्जित हो तो इन सबसे नाड़ियाँ और अन्नमय कोश विकृत बनते हैं । विकृति-विज्ञान का उल्लेख करते हुए साधना विज्ञान के मूर्धन्य आचार्य सद्योजात लिखते हैं कि जिस अन्न से हम अपना पेट भरते हैं और शरीर रक्त-माँस का निर्माण करता है, वास्तव, में वही अन्न हमारे अन्नमय कोश और उपत्यिकाओं को बनाता-बिगाड़ता रहता है । उनके अनुसार अन्न के स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन भाग हैं । स्थूल से रस-रक्त का सृजन होता है । सूक्ष्म वाला हिस्सा मानवी प्रवृत्तियों को जन्म देता है, जबकि उसका कारण भाग संकल्प और संस्कार के लिए जिम्मेदार है । भोजन का यह अंश अच्छा-बुरा जैसा होता है, वैसे ही संस्कार हमारे अन्न से सम्बन्धित इस कोश में जमने लगते हैं । अच्छे सात्विक खाद्य में संस्कार अच्छे बनते हैं, जबकि कुधान्य से, अखाद्य से उसकी प्रकृति असात्विक हो जाती है । यही कारण है कि अण्डा, माँस जैसे अभक्ष्य को खाने से शरीर तो माँसल हो जाता है, पर उसके कारण प्रकृति इतनी अवांछनीय और अप्रिय स्तर की होती है कि अन्नमय कोश को बीमार बना देती है । यह अस्वस्थता समग्र व्यक्तित्व को प्रभावित करती है और व्यक्ति को व्यवहार की दृष्टि से अत्यन्त फूहड़, असभ्य और असंस्कृत बना देती है । यह स्पष्ट है कि रुग्ण उपत्यिकाओं वाला व्यक्ति अपने रुग्ण स्वभाव से निर्मित अस्वाभाविक और असुखकर परिस्थितियों में सर्वदा क्षुब्ध और अशान्त बना रहता है । इतना ही नहीं, कोश की अपरिष्कृति का परिणाम अदृश्य रूप से आकस्मिक रोगों के रूप में तथा जन्म-जन्मान्तर तक कुरूपता एवं शारीरक अपूर्णता के रूप में दृष्टिगोचर होता है । इसलिए इस तथ्य से परिचित लोग सदा सात्विक और सुसंस्कारी अन्न पर जोर देते हैं, ताकि स्थूल शरीर में किसी प्रकार की अपंगता, अस्वस्थता, आलस्य और कुरूपता की वृद्धि न हो ।

जिस प्रकार देह के तापमान को देखकर शारीरिक स्वस्थता-अस्वस्थता का पता चल जाता है, उसी प्रकार नाड़ी-गुच्छकों के गुण-दोषों के आधार पर सूक्ष्म शरीर की स्थिति ज्ञात हो जाती है । किसी एक जाति की नाड़ी के दोषों की अधिकता इस बात की प्रतीक है कि सूक्ष्म शरीर असन्तुलन की ओर बढ़ रहा है, तब उसे सन्तुलित-नियन्त्रित करने की आवश्यकता पड़ती है । 'इन्धिका' जाति के नाड़ी-गुच्छकों की अधिकता व्यक्ति में चंचलता, अस्थिरता, उद्विग्नता पैदा करती है । 'इन्धिका' प्रधान व्यक्ति स्थिर बैठकर काम करने में अयोग्य होता है । जिनमें ''दीर्घिं जाति की उपत्यिकाएँ अधिक होती हैं, उनमें चर्म रोग, फोड़ा-फुन्सी, पीला पेशाब, आँखों में जलन जैसे शिकायतें पैदा होने लगती हैं । जब मोचिकाओं की वृद्धि होती है, तो दस्त, जुकाम, कफ, सम्बन्धी समस्याएँ बढ़ने लगती हैं । 'आप्यायिनी' अधिक निद्रा, अनुत्साह, आलस्य, भारीपन के लिए जिम्मेदार होती हैं । 'पूषा' की बढ़ोत्तरी व्यक्ति को अति कामुक बनाती है । 'कपिला' डर, दिल की धड़कन में वृद्धि, आशंका, अस्थिर चिंतता, नपुंसकता जैसे रोग पैदा करती है । 'घूसार्वि' गुच्छक क्रोध और श्वास-प्रश्वास की तीव्रता को बढ़ाता है । ऊष्मा की अधिकता के कारण जाड़े में भी व्यक्ति को गर्मी महसूस होती है । 'आमाया' मनुष्य को जिद्दी और दुराग्रही बनाती है । ऐसे शरीरों में दवा कदाचित् ही कभी असर करती है । ऐसे मानव अपनी इच्छा से ही रोगी और निरोग बनते देखे जाते हैं । 'उद्गीथ' की अभिवृद्धि व्यक्ति को संतानहीन बना देती है । जिनमें इस जाति के गुच्छक ज्यादा होंगे, वे हर प्रकार से स्वस्थ होते हुए भी सन्तानोत्पादन के अयोग्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगे । 'असिता' की जिस शरीर में संख्या ज्यादा होती है, वह काया अपने ही लिंग की सन्तानें पैदा करने की विशेष क्षमता रखती है । स्त्री शरीर में यह कन्या पैदा करने लगती है और पुरुष शरीर में इनकी बहुलता बालक उत्पन्न करती हैं । 'युक्त हिंसा' दुष्टता, क्रूरता, अनाचार, अत्याचार जैसे कृत्यों की प्रेरणा देती है । इनसे सम्पन्न व्यक्ति जुआरी, व्यभिचारी, लम्पट, ठग, बेईमान होते देखे जाते हैं ।

इन ग्रन्थियों की न्यूनाधिकता शारीरिक स्थिति को मनोनुकूल रखने में बाधक होती है । मनुष्य चाहता है कि वह अपनी स्थिति और अवस्था को अमुक प्रकार की बना कर रखे । इसके लिए यह प्रयत्न भी करता है, पर अनेक बार यह उपाय असफल होते देखे जाते हैं, कारण कि ये उपत्यिकाएँ अन्दर ही अन्दर ऐसी क्रियाएँ एवं प्रेरणाएँ उत्पन्न करती हैं, जो बाहरी प्रयास को सफल नहीं होने देतीं और मनुष्य अपने को बार-बार असफल एवं असहाय अनुभव करता है ।

उपत्यिकाओं का यह जाल शरीर एवं मन द्वारा किए गए दुरितों, दुष्कर्मों, दुराचरणों से विकारग्रस्त बनता तथा सत्कर्मों से सन्तुलित और सुव्यवस्थित होता है । इन्हें ठीक बनाये रखने के लिए आहार-विहार का संयमित एवं सात्विक होना, दिनचर्या सही बनाये रखना, प्रकृति के निर्देशों का पालन आवश्यक माना गया है । इनके अतिरिक्त कुछ योग साधनात्मक उपाय-उपचार भी हैं, जिन्हें यदि नियमित रूप से करता रहा जाये, तो इन नाड़ी गुच्छकों का शोधन एवं इनसे उत्पन्न विकारों पर काबू पाना सरल एवं सम्भव हो जाता है । बाह्योपचार जहाँ इन्हें परिमार्जित करने में एक प्रकार से निष्फल बने रहते हैं, वहीं आध्यात्मिक अवलम्बन रामवाण सिद्ध होता है ।

उपवास इन्हीं में से एक सशक्त उपाय है, जो नाड़ियों को संशोधित करने में बहुत कारगर सिद्ध होता है । इसका एक सुविस्तृत विज्ञान है । इसी विज्ञान के आधार पर प्राचीन ऋषियों ने मास, मुहूर्त, फल को ध्यान में रखते हुए त्यौहारों से इसकी ऐसी संगति बिठाई थी कि उक्त ऋतु, मास और तिथि में जिस ग्रह की कल्याणकारी किरणें बरसती हैं, उन्हें उपवास के माध्यम से आकर्षित-अवशोषित कर अन्तः को सुविकसित बनाया जा सकता था । शास्त्रों में जो जगह-जगह अमुक उपवास के अमुक और अमुक के अमुक फल गिनाये गए हैं, वस्तुतः वह इसी विज्ञान पर आधारित हैं । उन्हें यदि आवश्यक नियमों और निर्देशों के साथ सम्पन्न किया जा सके तो आज भी इनके सहारे काफी लाभ हस्तगत किए जा सकते हैं । उपवासों के कई प्रकार हैं । सभी की अलग-अलग विशेषताएँ हैं । किस व्यक्ति को कौन-सा उपवास उपयुक्त होगा और उसके नियमोपनियम क्या होने चाहिए, इसके निर्धारण के लिए सूक्ष्म विवेचन की आवश्यकता है । इस विद्या का कोई विशेषज्ञ ही इसका निर्णय भली-भाँति कर सकता है । वस्तुतः इसके निर्धारण के समय जिन बातों को ध्यान में रखना पड़ता है, वे हैं—साधक का अन्नमय कोश किस स्थिति में है ? कौन-से नाड़ी गुच्छक विकार युक्त हो रहे हैं ? किस उत्तेजित संस्थान को शान्त करने एवं किस मर्म स्थल को सतेज करने की जरूरत है ? इतना सब जानने के पश्चात ही इस बात का निश्चय हो सकता है कि कौन-सा व्यक्ति किस प्रकार का उपवास करे ।

उपवासों के उपरान्त आन्तरिक संस्थानों को सही करने के लिए आसनों की बारी आती है । आसन इतने उपयोगी व्यायाम हैं, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आवश्यक हैं, और मर्मस्थलों को क्रियाशील बनाने में भी महत्त्वपूर्ण साबित होते हैं । इनके द्वारा आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार शरीर में भीतर की हव्यवहा-कव्यवहा नामक विद्युत-शक्ति सन्तुलित और सक्रिय बनी रहती है एवं उपत्यिकाएँ भी नियन्त्रण में रहती हैं ।

इन सब पर ध्यान दिया और दिनचर्या, आहार, विहार आदि को संयमित रखा जा सके, नियमित तप, उपवास, आसनों द्वारा भीतरी सूक्ष्म तन्त्रों पर जमा होने वाले कषाय-कल्मषों को बराबर परिमार्जित करते रहने का कोई सुनिश्चित क्रम बन सके तो कोई कारण नहीं कि हम स्वस्थ-निरोग न रह सकें । बाह्य स्वस्थता का आधार अन्तर की निरोगता और सुव्यवस्था में निहित है—इसे यदि समझा जा सके, तो हर कोई व्याधि रहित जीवन जी सकता है और स्वस्थ-प्रसन्न बना रह सकता है ।

⌘⌘⌘

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org